



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

१७५ का स्मृति क्रिकेटर-

‘कल्याण’के ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नमूदः

१—‘कल्याण’के सन् १९७९का विशेषाङ्क—‘सूर्योङ्क’ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३२ पृष्ठोंकी पाठ्यसमाची है। सूची आदिके ८ पृष्ठ अतिरिक्त हैं। यथास्थान कई बहुरंगे, सादे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं।

२—जिन ग्राहक महानुभावोंके मनीआर्डर आ गये हैं, उनको विशेषाङ्क फरवरीके अङ्कसहित रजिस्ट्रीड्वारा एवं जिनके रूपये नहीं प्राप्त हुए हैं, उनको वी० पी० ड्वारा ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार भेजा जा सकेगा।

३—मनीआर्डर—कूपमें अथवा वी०पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या कृपा० स्पष्टरूपसे अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या स्मरण न रहनेकी स्थितिमें ‘पुराना ग्राहक’ लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो ‘नया ग्राहक’ लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर ‘व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय’के पतेपर भेजें, किसी व्यक्तिके नामसे न भेजें।

४—ग्राहक-संख्या या ‘पुराना ग्राहक’ न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिख जायगा। इससे आपकी सेवामें ‘सूर्योङ्क’ नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे सम्भवतः उसकी वी०पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरड्वारा रूपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी०पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप वी० पी० लौटायें नहीं, कृपापूर्वक प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका ‘कल्याण’ व्यर्थ डाक-व्यक्तिकी हानिसे बचेगा और आप ‘कल्याण’के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

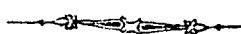
५—‘सूर्योङ्क’ परिशिष्टाङ्क(क)के साथ सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग शीघ्रति-शीघ्र भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सभी ग्राहकोंको भेजनेमें लगभग ४-५ सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। उनसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनेकी प्रार्थना है।

६—आपके ‘विशेषाङ्क’के लिफाफे (या रैपर) पर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी०पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये और उसके उल्लेखसहित पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

७—‘कल्याण-व्यवस्था-विभाग’ तथा ‘व्यवस्थापक-गीताप्रेस’के नाम अलग-अलग पत्र, पार्सल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, वीमा आदि भेजने चाहिये। पतेकी जगह केवल ‘गोरखपुर’ ही न लिखकर ‘पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)’—इस प्रकार लिखना चाहिये।

८—‘कल्याण-सम्पादन-विभाग,’ ‘साधक-संघ’ तथा ‘नाम-जप-विभाग’को भेजे जानेवाले पत्रादिपर भी अभिप्रेत विभागका नाम लिखनेके बाद ‘पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)’—इस प्रकार पूरा पता लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’ पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर २७३००५ (उ०प्र०)



श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थरत्न हैं। दोनों ही ऐसे प्राचीनादिक एवं आशीर्वादात्मक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक-दोनोंमें अपना कल्याण कर सकता है। इनके साध्यायमें वर्ण, आथम, जाति, अवस्था आदिकी कोई वाधा नहीं है। आजके नाना भयसे आक्रान्त, भोग-तमसाच्छ्रव समयमें तो इन द्वित्र्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है; अतः धर्मप्राण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक दाम पहुँचानेके सद्गुदेश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंको—जिनकी संख्या इस समय लगभग चालीस हजार है—श्रीगीताके छः प्रकारके, श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके एवं उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी शेषीमें यथाक्रम रखा गया है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्वेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होवें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम २४९३०४ (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-भढ़वाल (उ०प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके लिये सदाचार, सत्यता, सरलता, निष्कपटता, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्य-मात्रको इस सत्यसे अवगत करनेके पावन उद्देश्यसे लगभग ३० वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की गयी थी। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य घननेके इच्छुक भाई-घहनोंको ४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अधिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी कल्याण-कामी ही-पुरुषोंको इसका सदस्य घनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये। संघसे सम्बन्धित सब प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये।

संयोजक—साधक-संघ, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर २७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय द्वितीय जीवन-ग्रन्थ हैं। इनमें मानव-मात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको पढ़कर भी अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारसे लोक-गतिस्थलोंको अधिकाधिक उजागर करनेकी उप्तिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रवन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें वैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४५० (चार सौ पचास) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड भेजें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम २४९३०४ (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-भढ़वाल (उ० प्र०)

‘सूर्याङ्क’ की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या		
१—सवितृ-ग्रार्थना [ऋग्वेद]	...	१	१६—त्रिकाल-संव्यामे सूर्योपासना (ब्रह्मलीन परम- श्रद्धेय श्रीजयद्यालजी गोयन्दका)	...	१८
२—सूर्यादिके मूलस्वरूप ब्रह्मको नमस्कार [सकलित]	२	१७—ज्योतिलिङ्ग सूर्य (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रगचार्यजी महाराज)	...	२१	
३—सविता की सूत्रत श्रुति-सूक्तियाँ [संकलित]	३	१८—ज्योतिलिङ्गोके द्वादशतीर्थ [सकलित]	...	२३	
४—सूर्योपनिषद्	...	१९—आदित्यमण्डलके उपास्य श्रीसूर्यनारायण (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु रामानुजाचार्य यतीन्द्र स्वामी श्रीरामनारायणाचार्यजी महाराज)	...	२४	
५—अर्थवैदीय सूर्योपनिषद्का भावार्थ	...	२०—वैदोमे सूर्य (अनन्तश्रीविभूषित वैष्णव- पीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीविठ्ठलेशजी महाराज)	...	२६	
६—श्रीसूर्यस्य प्रातःसराणम्	...	२१—श्रीसूर्यनारायणकी बन्दना (पूज्यपाद योगिराज श्रीदेवरहवा वावा)	...	३०	
७—अनादि वैदोमे भगवान् सूर्यकी महिमा (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी- शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)	...	२२—सवितासे अभ्यर्थना [सकलित]	...	३०	
८—जयति सूर्यनारायण, जय जय [कविता] (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमान- प्रसादजी पोद्दार)	...	२३—भगवान् विवस्वानको उपदिष्ट कर्मयोग (श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	...	३१	
९—प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायण (अनन्त- श्रीविभूषित पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकशारदा- पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनव सच्चिदानन्दतीर्थजी महाराजका मङ्गलांगसन)	...	२४—भगवान् श्रीसूर्यको नित्यप्रति जल दिया करो (काशीके सिद्ध संत ब्रह्मलीन पूज्य श्रीहरिहर वावाजी महाराजके सदुपदेश) [प्रेपक— भक्त श्रीरामशशारणदासजी]	...	३५	
१०—सूर्य-तत्त्व (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीमुमेश्वरीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)	...	२५—ऋग्वेदीय सूर्यसूत्त (अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डनन्द सरस्वतीजी महाराज)	...	३६	
११—सूर्यका प्रभाव (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्य काञ्चीकामकोटि- पीठाधीश्वर स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद)	...	२६—श्रीसूर्यदेवका विवेचन (श्रीपीताम्बरपीठस्य राघवगुरु श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज, दतिया)	...	३९	
१२—नित्यप्रतिकी उपासना (महामना पूज्य श्रीमालवीयजी महाराज)	...	२७—प्रभाकर नमोऽस्तु ते (श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकम्)	४०		
१३—सूर्य और निम्बार्क-सम्प्रदाय (अनन्त- श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्कचार्य पीठा- धीश्वर श्री‘श्रीजी’ श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवा- चार्यजी महाराज)	...	२८—भगवान् आदित्यका ध्यान (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	...	४१	
१४—भगवान् सूर्य—हमारे प्रत्यक्ष देवता (अनन्त- श्रीविभूषित पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)	...	२९—सूर्योपासनाके नियमसे लाभ (स्वामी श्री- कृष्णानन्द सरस्वतीजी महाराज)	...	४२	
१५—वायु प्राणके उपजीव्य आदित्य [सकलित]		३०—पुराणोमे सूर्योपासना (अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	...	४३	
		३१—भगवान् सूर्यकी सर्वव्यापकता (अनन्तश्री बीतराग स्वामी नारायणश्रमजी महाराज)	...	४५	
		३२—सूर्योपासनासे श्रीकृष्ण-ग्रासि (पूज्य श्रीराम- दासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर)	...	४९	

३३—आदित्यो वै प्राणः (स्वामी श्रीओकारानन्दजी आदिवदीरी)	५०
३४—परव्रह्म परमात्माके प्रतीक भगवान् सूर्य (स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराज नियामी-फ्लोरिडा, संयुक्त राज्य, अमेरिका)	... ५३	
३५—वेदोमे श्रीसूर्यदेवकी उपासना (श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावाचस्पति, विद्यावागीश, विद्यानिधि)	... ५४	
३६—वैदिक वाद्ययमे सूर्य और उनका महत्व (आचार्य पं० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)	... ५७	
३७—श्रीसूर्य-तत्त्व-चिन्तन (डॉ० श्रीत्रिसुवनदास दामोदरदासजी सेठ)	... ६५	
३८—वेदोमे सूर्यविज्ञान (स्व० म० म० प० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)	... ६७	
३९—उदययेऽ सूर्यः [सकलित]	... ७६	
४०—वैदिक सूर्यविज्ञानका रहस्य (स्व० म० म० आचार्य प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०)	... ७७	
४१—वेदोमे भगवान् सूर्य (श्रीमनोहर वि० अ०)	८८	
४२—वेदोमे भगवान् सूर्यकी महत्ता और स्तुतियाँ (श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री 'रसिकेश')	... ९१	
४३—ग्रन्थवेदमे सूर्य-संदर्भ	... ९४	
४४—औपनिषद् श्रुतियोमे सूर्य (डॉ० श्रीसियारामजी सक्षेना 'प्रवर', एम० ए०, (द्व), पी-एन्स० डी०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)	... ९६	
४५—सूर्यमण्डलसे ऊपर जानेवाले [सकलित]	... १०४	
४६—तैत्तिरीय आरण्यकमे असंख्य सूर्योंके अस्तित्वका वर्णन (श्रीसुब्रायगणेशजी भट्ट)	... १०५	
४७—स जयति [सकलित]	... १०६	
४८—तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार आदित्यका जन्म (श्रीसुवहाण्यजी शर्मा, गोकर्ण)	... १०७	
४९—प्रकाशमान सूर्यको नमस्कार [सकलित]	... १०७	
५०—ग्रामण-ग्रन्थोमे सूर्य-तत्त्व (अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीधरचार्यजी महाराज)	... १०८	
५१—वैष्णवागममे सूर्य (डॉ० श्रीसियारामजी राक्षेना 'प्रवर')	... १११	
५२—उच्छीर्षक-दर्शनमें सूर्य (विद्यावाचस्पति पं० श्रीकण्ठजी शर्मा, 'चक्रपाणि' शास्त्री)	... १२०	
५३—श्रीवैखानस भगवन्छात्र तथा आदित्य (सूर्य) (चल्लपत्ति भास्कर श्रीरामकृष्णमाचायुलुजी, एम० ए०, वी० एड०)	... १२४	
५४—सूर्यकी उदीच्य प्रतिमा [संकलित]	... १२७	
५५—वेदाङ्ग—शिक्षा-ग्रन्थोमे सूर्यदेवता (प्रो० पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र)	... १२८	
५६—वेदाध्ययनमे सूर्य-सावित्री [संकलित]	... १२९	
५७—योगशास्त्रीय सूर्यसंयमनके मूल सूत्रकी व्याख्या [संकलित]	... १३०	
५८—‘दिशि दिशतु शिवम्’ [संकलित]	... १३५	
५९—नाडीचक्र और सूर्य (श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी)	१३६	
६०—योगमे शरीरस्य शक्ति-केन्द्र सूर्यचक्रका महत्व (प० श्रीभूगुनन्दनजी मिश्र)	... १४०	
६१—मार्कंण्डेयपुराणका सूर्य-संदर्भ—		
(१) सूर्यका तत्त्व, वेदोका प्राकृत्य, ब्रह्माजी-द्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सूष्टिरचना-का आरम्भ	... १४३	
(२) सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमे राजा राज्य-वर्धनकी कथा	... १४८	
६२—ब्रह्मपुराणमें सूर्य-प्रसङ्ग—		
(१) कोणादित्यकी महिमा	... १५२	
(२) भगवान् सूर्यकी महिमा	... १५४	
(३) सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन	... १५९	
(४) श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोका वर्णन	... १६१	
६३—भागवतीय सौर-संदर्भ—		
(१) सूर्यके रथ और उसकी गति	... १६४	
(२) भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गति	... १६५	
(३) शिशुमारचक्रका वर्णन	... १६७	
(४) राहु आदिकी स्थिति और नीचेके अतल आदि लोकोंका वर्णन	... १६८	
६४—श्रीमद्भागवतके हिरण्यमय पुरुष (श्रीरत्नलाल-जी गुप्त)	... १६९	
६५—श्रीविष्णुपुराणमें सूर्य-संदर्भ—		
(१) सूर्य, नक्षत्र एवं रात्रियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र और लोकपाल आदिका वर्णन	... १७१	
(२) ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र	... १७६	

(३) द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन	१७७	७५—नमो महामतिमात्र [कविता] (श्रीदनुमान-प्रसादजी शुल्क) २२२
(४) सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन	१७८	७६—वश-परम्परा और सूर्यवंश [संकलित] २२३	
(५) नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्या	७७—‘पावनी नः पुनातु’ [संकलित] २२८	
	१७९	७८—सूर्यकी उत्पत्ति-कथा—पौराणिक दृष्टि (साहित्य-मार्तण्ड प्रो० श्रीरजनसूर्यदेवजी, एम० ए० (त्रय), स्वर्णपदकप्राप्त, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालि-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार) २२९	
६६—अनिषुराणमें सूर्य-प्रकरण—		७९—जय सूरज [कविता] (प० श्रीसूरजचंदजी गाह ‘सत्यप्रेसी’, डॉनीजी) २३२	
(१) कश्यप आदिके वशका वर्णन	१८१	८०—पुराणमें सूर्यवंशका विस्तार (डॉ० श्रीभूपसिंह-जी राजपूत) २३३	
(२) सूर्योदि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंके प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन	१८३	८१—सुमित्रान्त सूर्यवंश [संकलित] २३४	
(३) सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन	१८४	८२—भगवान् भुवनभास्कर और उनकी वंश-परम्परा-की ऐतिहासिकता (डॉ० श्रीरजनजी, एम० ए०, पी-एच० डी०) २३७	
(४) सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि	१८६		
(५) संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजाका वर्णन	१८६		
६७—लिङ्गपुराणमें सूर्योंपासनाकी विधि (अनन्तश्री-विभूषित पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	... १८७		
६८—मत्स्यपुराणमें सूर्य-संदर्भ	... १९२		
६९—पद्मपुराणीय सूर्य-संदर्भ—			
(१) भगवान् सूर्यका तथा संकान्तिमें दानका माहात्म्य	... २०१	८३—सूर्यसे सृष्टिका वैदिक विज्ञान (वेदान्वेषक श्रृंगि श्रीरणछोड़दासजी ‘उद्घव’) २४१	
(२) भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा	... २०३	८४—भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य (राष्ट्रपति-नुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०) २४४	
७०—सूर्य-पूजाका फल [संकलित]	... २०६	८५—सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति [संकलित] २४७	
७१—भविष्यपुराणमें सूर्य-संदर्भ—	... २०७	८६—सूर्यतत्त्व (सूर्योंपासना) (प० श्रीआद्याचरणजी ज्ञा, व्याकरण-साहित्याचार्य) २४८	
(१) सप्तमीकर्त्पवर्णन-प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-सवाद	... २०८	८७—सूर्यतत्त्व-विवेचन (प० श्रीकिंगोरचन्द्रजी मिश्र, एम०एस॒-सी०, वी०एल० (स्वर्ण-पदक प्राप्त), वी०एड० (स्वर्णपदक प्राप्त)) २५०	
(२) आदित्यके नित्याराधन-विधिका वर्णन	२०८	८८—हम सबका कर्त्याण करे [कविता] (प० श्रीवावूलालजी द्विवेदी) २५३	
(३) रथ-सप्तमी-माहात्म्यका वर्णन	... २०९	८९—सूर्यतत्त्वकी मीमांसा (श्रीविश्वनाथजी शास्त्री) २५४	
(४) सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन	... २१०	९०—सूर्यकी विश्व-मान्यता [संकलित] २५८	
(५) सूर्यके विराटरूपका वर्णन	... २११	९१—ब्रह्माण्डात्मा—सूर्यभगवान् (शास्त्रार्थमहारथी प० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री) २५९	
(६) आदित्यवारका माहात्म्य	... २११	९२—सूर्य आत्मा जगतस्तथुपश्च (श्रीगिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार) २६१	
(७) सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन	... २१२	९३—सूर्य-ब्रह्म-समन्वय (श्रीब्रजबलभद्ररणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ) २६३	
(८) ब्रह्मवृत्त सूर्य-स्तुति	... २१३		
७२—महाभारतमें सूर्यदेव (कु० सुप्रमा उक्सेना, एम० ए० (संस्कृत), रामायण-विशारद, आयुर्वेदरत्न)	... २१४		
७३—महाभारतोत्त सूर्यस्तोत्रका चमत्कार (महाकवि श्रीवनमालिदासजी शास्त्री)	... २१९		
७४—वात्मीकिभास्यमें सूर्यकी वंशावली (विद्यावारिधि श्रीसुधीरनारायणजी टाकुर (सीताराम-शरण) व्या०-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न)	२२१		

१४—सर्वोपकारी सूर्य [संकलित]	... २६४	११४—कर्मयोगी सूर्यका श्रेष्ठत्व [संकलित]	... ३२४
१५—चराचरके आत्मा सूर्यदेव (श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार) २६५	११५—सौरोपासना (स्वामी श्रीशिवानन्दजी)	... ३२५
१६—कल्याण-मूर्ति सूर्यदेव (श्रीमत् प्रभुपाद आचार्य श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी)	... २७१	११६—भगवान् भुवन-भास्कर और गायत्री-मन्त्र (श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)	... ३२७
१७—सर्वस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण (पं० श्रीवैद्यनाथजी अभिहोत्री)	... २७२	११७—अध्युपनिषद्	... ३२९
१८—अप्रतिमरूप रथि अग-जग-स्वामी [कविता] (श्रीनथुनीजी तिवारी)	... २७४	११८—कृष्णजुवेंदीय चाकुपोपनिषद्	... ३३१
१९—भारतीय संस्कृतिमें सूर्य (प्र० डॉ० श्रीरामजी उपाध्याय एम०ए०, डी०लिट०)	... २७५	११९—भगवान् सूर्यका सर्वनेत्रोगहर चाकुपोपनिषद् (पं० श्रीमथुरनाथजी शुक्र)	... ३३३
२००—भगवान् भास्कर (डॉ० श्रीमोतीलालजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	... २७८	१२०—चक्षुदृष्टि एवं सूर्योपासना (श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव शास्त्री, एम०ए०, एम०ओ०एल०)	... ३३३
२०१—सूर्यदेवता, तुम्हे प्रणाम ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	२८२	१२१—सूर्य और आरोग्य (डॉ० श्रीवैद्यप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)	... ३३८
२०२—जैन-आगमोंमें सूर्य (आचार्य श्रीतुलसी)	... २८५	१२२—श्रीसूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ (डॉ० श्रीमुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग, एम० ए०, एल-एल० वी०, एन०डी०)	३४४
२०३—आदित्यकी व्रतस्वरूपमें उपासना [संकलित]	... २८८	१२३—भगवान् सूर्य और उनकी आराधनासे आरोग्य-लाभ (श्रीनकुलप्रसादजी ज्ञा 'नलिन')	... ३४७
२०४—सूर्यकी महिमा और उपासना (याजिकसम्मान पिंडत श्रीवैद्यनीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)	... २८८	१२४—ज्योति तेरी जलती है [कविता] (श्रीकन्हैयासिंहजी विशेन, एम०ए०, एल-एल०वी०)	... ३५०
२०५—सूर्योपासनाका महत्व (आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्त-जी 'कपिघज', एम० ए०, पी-एच० डी०, काव्यरत्न)	... २९१	१२५—सूर्यचिकित्सा (पं० श्रीशंकरलालजी गौड़, साहित्य-व्याकरणशास्त्री)	... ३५१
२०६—वैदिक धर्ममें सूर्योपासना (डॉ० श्रीनीरजाकान्त-देव चौधरी, विद्यार्थी, एम० ए०, एल-एल० वी०, पी-एच० डी०)	... २९६	१२६—सूर्यसे विनय [संकलित]	... ३५२
२०७—भगवान् सूर्यका दिव्य स्वरूप और उनकी उपासना (महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीगमजी शास्त्री, कर्मकाण्ड-विशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार)	... ३०१	१२७—इवेतकुष और सूर्योपासना (श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य)	... ३५३
२०८—सूर्य-दर्ढनका तान्त्रिक अनुभूत प्रयोग (पं० श्रीकैलासचन्द्रजी शर्मा)	... ३०५	१२८—सूर्यक्रियें कल्पवृक्षतुल्य हैं [प्रेषक—श्रीअश्विनीकुमारजी श्रीवास्तव 'अनल']	... ३५३
२०९—काशीकी आदिलोपासना (प्र० श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम० ए०, एल० टी०, व्याकरणाचार्य)	... ३०६	१२९—प्राकृतिक चिकित्सा और सूर्य-क्रियें (महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीमजनानन्दजी सरस्वती)	... ३५६
२१०—आदित्यके प्रातःस्मरणीय द्वादश नाम [संकलित]	... ३११	१३०—ज्योतिप और सूर्य (स्वामी श्रीसीतारामजी ज्योतिपाचार्य, एम०ए०)	... ३५८
२११—भगवान् सूर्यदेव और उनकी पूजा-परम्पराएँ (डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम० ए०, पी-एच०डी० (द्वय), डी०लिट०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)	... ३१२	१३१—ज्योतिप्रमेस सूर्यका परिभाषिक संक्षिप्त विवरण [संकलित]	... ३६१
२१२—सूर्योपासनाकी परम्परा (डॉ० पं० श्रीरमाकान्तजी चिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी०)	... ३१७	१३२—जन्माङ्कपर सूर्यका प्रभाव (ज्योतिपाचार्य श्रीवैद्यरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न)	... ३६२
२१३—सूर्योराधना-रहस्य (श्रीवैद्यरंगवलीजी व्रजचारी)	३२३	१३३—विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल (पं० श्रीकामेश्वरजी उपाध्याय, शास्त्री)	... ३६६
		१३४—सूर्यादि ग्रहोंका प्रभाव [संकलित]	... ३६८

१३५—ग्रहणक रहस्य—विविध दृष्टि (पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि)	... ३६९	१५२—सूर्योदाहनसे वेश्याका भी उद्धार (पं० श्रीसोमनाथजी शिमिरे, 'व्यास')	... ४०७
१३६—ग्रहणमें स्नानादिके नियम [संकलित]	... ३७२	१५३—भगवान् श्रीसूर्यदेवकी उपासनासे विपत्तिसे छुटकारा (जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिषीठाधीश्वर ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीकृष्णवोधारमजी महाराजका उद्घोषण) (प्रेपक—श्रीगमशरणदासजी)	... ४०८
१३७—सूर्यचन्द्र-ग्रहण-विमर्श ३७३	१५४—सूर्यका महत्व (प्रेपक—श्रीघनश्यामजी)	... ४०९
१३८—वैदिक सूर्य तथा विज्ञान (श्रीपण्डितनन्दजी वर्मा) ३८०	१५५—सूर्यपूजाकी व्यापकता (डॉ श्रीसुरेशनन्दजी राय, एम० ए०, डी० फिल०, एल०-एल० वी०)	४१०
१३९—वैज्ञानिक सौरतथ्य (प्रेपक—श्रीजगन्नाथ-प्रसादजी, वी० काम०) ३८२	१५६—गयाके तीर्थ [संकलित]	... ४१३
१४०—सूर्य, सौरमण्डल, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा (श्रीगोरखनाथसिंहजी, एम० ए०, अंग्रेजी-दर्शन) ३८३	१५७—सूर्यपूजाकी परम्परा और प्रतिमाएँ (आचार्य पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	... ४१४
१४१—विज्ञान-दर्गन-समन्वय [संकलित]	... ३८८	१५८—नेपालमे सूर्य-तीर्थ (प्रेपक—पं० श्रीसोमनाथजी शिमिरे 'व्यास')	... ४१५
१४२—पुराणोंमें सूर्यसम्बन्धी कथा (श्रीतारिणीशजी ज्ञा) ३८९	१५९—वैदिक सूर्यका महत्व और मन्दिर (श्रीसावलिया विहारीलालजी वर्मा, एम० वी० एल०)	... ४१६
१४३—सूर्योपस्थान और सूर्य-नमस्कार [संकलित]	३९०	१६०—भारतमे सूर्यपूजा और सूर्य-मन्दिर (श्रीउमिया-शंकरजी व्यास)	... ४१८
१४४—काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ (श्रीरघ्नेश्यामजी लेमका, एम० ए०, साहित्यरत्न) ३९१	१६१—सूर्यनारायण-मन्दिर, मलतगा (प्रेपक—श्रीकशिनाथजी कुलकर्णी)	... ४२२
१४५—आचार्य श्रीसूर्य और अध्येता श्रीहनुमान् (श्रीरामपदारथसिंहजी) ३९४	१६२—भारतीय पुरातत्त्वमे सूर्य (प्रोफेसर श्रीकृष्ण-दत्तजी वाजेपेयी)	... ४२३
१४६—साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा (श्रीकृष्ण-गोपालजी माथुर) ३९८	१६३—भारतमे सूर्य-मूर्तियाँ (श्रीहर्षदराय प्राण-शंकरजी बधको)	... ४२५
१४७—भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र (आचार्य श्रीबल-गमजी शास्त्री, एम० ए०)	... ४००	१६४—भारतके अत्यन्त प्रसिद्ध तीन प्राचीन सूर्य-मन्दिर (पं० श्रीजीनकीनाथजी शर्मा)	... ४२७
१४८—सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा (साधु श्रीबलरामदासजी महाराज)	... ४०२	१६५—नारायण ! नमोऽस्तु ते (आचार्य पं० श्रीराजवलिजी त्रिपाठी, एम० ए०, शास्त्राचार्य, साहित्य-शास्त्री, साहित्यरत्न)	... ४२९
१४९—सूर्यभक्त गृहिणी जरत्कार (ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	... ४०४	१६६—सूर्यप्रशस्ति [कविता] (श्रीशंकरसिंहजी, वेदालंकार, एम० ए० हिंदी-संस्कृत)	... ४३०
१५०—मानवीय जीवनमें सुधा धुल जाये [कविता] (डॉ० श्रीछोटेलालजी शर्मा, 'नागेन्द्र', एम० ए०, पी-एन्स० डी०, वी० एड०)	... ४०४	१६७—क्षमा-प्रार्थना और नम्र नियेदन	... ४३१
१५१—कलियुगमें भी सूर्यनारायणकी कृपा (श्रीअवध-किंगोरदासजी श्रीवैष्णव प्रेमनिधि)	... ४०५		

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

१—विश्वात्मा श्रीसूर्यनारायण	... मुख-पृष्ठ
२—भगवान् भुवन भास्कर	... १
३—विवस्वान् (सूर्य) और भगवान् नारायण	... ३३
४—भगवान् सूर्यनारायण	... ४१
५—सूर्यवंशावतंस श्रीराम	... २२२
६—पञ्चदेवोंमें सूर्य	... २९८

७—सावित्रीका चिकाल-स्थान	... ३२८
८—आचार्य सूर्य और अध्येता हनुमान् रेखा-चित्र	... ३९४
९—लोकसाक्षी भगवान् भास्कर	... प्रथम आवरण-पृष्ठ
१०—सन्ध्योपासनामे संलग्न साधक	... १९
११—सर्वभ्राता सूर्यग्रहणका दृश्य	... ३७५
१२—ग्रहोंकी सूर्य-परिक्रमा	... ३८४

मङ्गलाशंसापञ्चकम्

सूर्याङ्को मङ्गलं कुर्याद् दद्याद् भक्ति जने जने ।

कल्याणं लभतां लोको धर्मो विजयतेराम् ॥ १ ॥

श्रीसूर्यनारायण-सम्बन्धी यह विशेषाङ्क विश्वका मङ्गल करे और प्रत्येक व्यक्तिमें—जन-जनमें भक्तिका भाव भर दे । सभी लोग कल्याण प्राप्त करें और धर्मकी अतिशय विजय हो ।

आर्याणां देवता सूर्यो विश्वचक्षुर्जगत्पतिः ।

कर्मणां प्रेरको देवः पूज्यो ध्येयश्च सर्वदा ॥ २ ॥

श्रीसूर्य भारतीय-धर्मशील जनताके मूलतः देवता हैं । वे विश्वनेत्र (लोकलोचनके अधिदेव) और जगत्पति हैं—विश्व-खामी हैं । वे शुभकर्मोंके प्रेरक, विश्वमें सर्वाविक तेजखी—ज्योतिर्धन हैं । वे नर-नारी, बाल-बृद्ध—सब प्राणियोंके सदा पूज्य और ध्येय हैं । उनका पूजन और ध्यान सदा करना चाहिये ।

सूर्यं सम्पूजयेन्नित्यं सावित्रीं च जपेत् तथा ।

सूर्यार्घ्यं सन्ध्ययोर्द्यावामस्कुर्याच्च भास्करम् ॥ ३ ॥

श्रीसूर्यनारायणकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और सावित्री-(गायत्री-) मन्त्रका जप भी करना चाहिये । दोनों सन्ध्याओंमें (प्रातः-सायं-दोनों वेलाओंमें) अर्धाञ्जलि देनी चाहिये और ‘सूर्य-नमस्कार’ करना चाहिये ।

देशोऽयं भारतश्श्रेष्ठः पञ्चदेवपूजकः ।

सौरधर्मप्रवर्त्तीं च सूर्योपासक आदितः ॥ ४ ॥

यह भारतवर्प (कर्मभूमि होने एवं अपनी विशिष्ट उपासनापद्धतिके कारण) सूबसे उत्तम देश है । यह पञ्चदेवोंका आरम्भसे ही पूजक और उपासक है । सौरस्यमकौप्रवर्तन (सर्वप्रथम प्रचलन) इसीने किया एवं यह स्यं सृष्टिके आरम्भसे ही सूर्यकी उपासना करता चला आया है । (अतः हम सब भारत-वासियोंको सूर्यकी उपासना-अर्चना सदैव करनी चाहिये ।)

प्रज्ञाविद्वानसंयुक्ता सूर्योपास्तिर्दिने दिने ।

सदाचारोऽपि वृद्धस्याद् वैराग्यं वोधयेत् तथा ॥ ५ ॥

हमारी सूर्योपासना प्रज्ञा (प्रकृष्ट ज्ञान) और प्राचीन-नवीन विज्ञानसे समन्वित होती जाय—दिनानुदिन हमारे देशमें उपासना, आराधना और सदृश्यवहारोंका आचार भी बढ़ता जाय तथा चरम परम सिद्धिके लिये विषयोंका विराग, वोधका विषय बने—वैराग्यकी भी महत्ता बढ़े ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

(यजु० अ० ७ म० ४१)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



ध्येयः सदा सवित्रमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयपुरुष्टतशङ्खचक्रः ॥

वर्ष ५३	गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०४, जनवरी १९७९	संख्या १ पूर्ण संख्या ६२६
---------	--	------------------------------

सवित्र-प्रार्थना

३० विश्वानि देव सवित्रदुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥
(ऋक् ० ५ । ८२ । ५, श० यजु० ३० । ३)

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सुष्ठि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देवीष्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव ! आप हमारे सम्पूर्ण आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों)को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायें, दूर करें, किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभौति) ले जायें, दें—‘यद् भद्रं तन्न आ सुव ।’

सूर्यादिके मूलस्वरूप ब्रह्मको नमस्कार

ॐ यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अर्जिं यश्वक आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(—अर्थं० १०।७।३३)

सतत उदय होनेवाले सूर्य और चन्द्र जिनकी थाँखें हैं, जिन्होंने अग्निको अपना मुख बनाया है, उन महान् ब्रह्म (व्यापक परमेश्वर) को हम नमस्कार करते हैं ।

ॐ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्वशं ता आपः स प्रजापतिः ॥

(—शुद्धयजु० ३२।१)

वे ही अग्नि हैं, आदित्य हैं, वायु हैं, चन्द्रमा हैं, शुक्र हैं, परम ब्रह्म है तथा जलाधिपति वश और प्रजापति हैं—सब उन्हीं परमात्माके नाम हैं ।

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(—शुद्धयजु० ३१।१८)

मैं आदित्य स्वरूपवाले सूर्यमण्डलस्य महान् पुरुषको, जो अन्धकारसे भी परे, पूर्ण प्रकाश देनेवाले और परमात्मा हैं, उनको जानता हूँ । उन्हींको जानकर मनुष्य मृत्युको लौंघ जाता है । मनुष्यके लिये मोक्ष-प्राप्तिका दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।

तं देवाः सर्वेऽपितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ पतद्वै तत् ॥

(—कठो० २।१।९)

जहाँसे सूर्य उदित होते हैं और जहाँ वे अस्त होते हैं उस प्राणात्मामे (अन्नादि और वाणादिक) सम्पूर्ण देवता अर्पित हैं । उनका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता । ये ही वह ब्रह्म हैं ।

ॐ असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

मृत्योर्मा॒ऽमृतं गमय ॥ (—शतपथब्रा० १४।४।१३०)

हे भगवन् ! आप हमे असत्से सत्त्वकी ओर और तमसे ज्योतिकी ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर ले चले ।

ॐ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु

स्वस्ति गोम्यो जगते पुरुषेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुविद्वं नो अस्तु

ज्योतेव दृशेम सूर्यम् ॥

(—अर्थं० १।३१।४)

हमारे माता, पिता, गौओ, जगत्के अन्य सब प्राणी और पुरुषोंका कल्याण हो । हमारे लिये सब वस्तुएँ कल्याणकारक और सुगमतासे प्राप्त होने योग्य हो । हम दीर्घकालतक सर्वप्रकाशक सूर्य भगवानका दर्शन करते रहे ।

ॐ मधुमाद्मो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः ।

माध्वीर्गचो भवन्तु नः ॥ (—ऋू० १।९०।८)

हमारे लिये वनस्पति, सूर्य और उनकी किरणें माधुर्ययुक्त हैं । (सबके मूल परमज्येति ब्रह्म भ्राजिष्णवोंके नमस्कार है, विश्वहेतवे नमः)

सविताकी सून्त श्रुति-सूक्तियाँ

ॐ चित्रं देवानामुदगाद्नीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आपा धावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च ॥ (—शुक्लयजु० ७ । ४२)

जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं; मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एव समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर तथा जड़म—सबके अन्तर्यामी आत्मा है, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष-लोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्रयरूपसे उदित हो रहे हैं।

X X X

ॐ तच्छुद्दैवहितं पुरस्ताच्छुकमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं
शृणुयाम शरदः शतं प्रभ्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥ (—शुक्लयजु० ३६ । २४)

देवता आदि सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेवाले और सबके नेत्ररूप वे तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशमे उदित हो रहे हैं। (उनके प्रसादसे) हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहे, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हमसे बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हो। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे भी अधिक कालतक हम देखें, जीवे, मुने, बोलें एवं अदीन बने रहे कभी दीन न हो।

X X X

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। वृशो विश्वाय सूर्यम् ॥

(—शुक्लयजु० ७ । ४१)

सम्पूर्ण जगत्‌को भगवान् सूर्यका दर्शन कराने (या दृष्टि प्रदान करने)के लिये जगत्‌मे उत्पन्न हुए समस्त प्राणियोंके जाता उन सूर्यदेवको छन्दोमय अश्व ऊपर-ही-ऊपर शीघ्रगतिसे लिये जा रहे हैं।

X X X

न प्रमिये सवितुद्दैवस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।

यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्धमन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥

(—ऋ० ४ । ५४ । ४)

हे सवितः! आप सबको उत्पन्न करते हैं। आप दिव्य गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण भुवनोंको धारण करते हैं। आपका यह कर्म अविनाशी है। आपके हाथ शोभन अङ्गुलियो (किरणो)से युक्त हैं। आप उनके द्वारा भूमण्डल तथा द्युलोकके सभी प्राणियोंको अभ्युदयके लिये प्रेरित करते हैं। आपका यह कर्म सतत अवाधगतिसे होता रहता है।

X X X

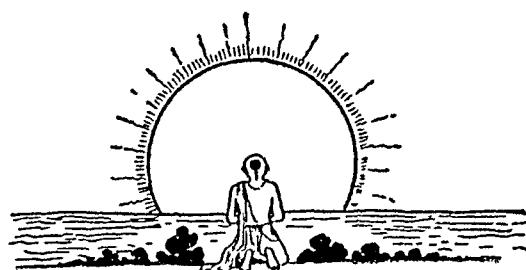
ॐ उद्धयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमग्नम ज्योतिरुत्तमम् ।

(—शुक्लयजु० २० । २१)

हे सविता देव ! हम अन्धकारसे ऊपर उठकर स्वर्गलोकको तथा देवताओंसे अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेवको भलीभृति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्माको प्राप्त हो।

सूर्योपनिषद्

हरिः ॐ ॥ अथ सूर्यार्थर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः । व्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । आदित्यो देवता । हंसः सोऽहमग्निनारायणयुक्तं वीजम् । हल्लेशा शक्तिः । वियदादिसर्गसंयुक्तं कीलकम् । चतुर्विधपुरुपार्थ-सिद्धयर्थे चिनियोगः । पट्स्वरारूढेन वीजेन पड़ङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम् । सप्ताश्वरथितं हिरण्यवर्णं चतुर्मुखं पद्माद्वयाभयवरदहस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै व्राह्मणः । ॐ भूर्भुवःसुवः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भगों देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च । सूर्योदै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । सूर्यादृशः पर्जन्योऽन्नमात्मा नमस्त आदित्य । त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि । त्वमेव प्रत्यक्षं व्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि । त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि । त्वमेव प्रत्यक्षमर्थर्वासि । त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि । आदित्याद्वायुर्जायते । आदित्याङ्गमिर्जायते । आदित्यादपो जायन्ते । आदित्याज्योतिर्जायते । आदित्यादव्योम दिशो जायन्ते । आदित्यादेवा जायन्ते । आदित्याद्वेदा जायन्ते । आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । असावादित्यो व्रह्म । आदित्योऽन्तःकरणमनोवृद्धिचित्ताहङ्काराः । आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः । आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरनव्रागाः । आदित्यो वै वाक्-पाणिपादपायूपस्थाः । आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः । आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः । नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मां पाहि । ब्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः । सूर्योद भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च । चक्षुनों देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः । आदित्याय विद्वहे सहस्रकिरणाय धीमहि । ततः सूर्यः प्रचोदयात् । सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतार्ति सविता नो रासता दीर्घमायुः । ओमित्येकाक्षरं व्रह्म । वृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इत्यक्षरद्वयम् । आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि । एतस्यैव सूर्यस्याएषाक्षरो मनुः । यः सदाहरहर्जपति स वै व्राह्मणो भवति । स वै व्राह्मणो भवति । सूर्योभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्ममुच्यते । अलक्ष्मीर्नश्यति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अगस्यागमनात्पूतो भवति । पतितसम्मापणात्पूतो भवति । असत्सम्मापणात्पूतो भवति । मध्याहे सूर्योभिमुखः पठेत् । सद्योत्पन्न-पञ्चमहापातकात्पुच्यते । सैपा साचित्रीं विद्या न किञ्चिदपि न कस्मैचित् प्रशंसयेत् । य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाज्ञायते । पशुन्विन्दति । वेदार्थालं लभते । त्रिकालमेतजप्त्वा क्रतुशतफलमवाप्नोति । यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ (—इति सूर्योपनिषद् ।)



अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद् का भावार्थ

आदित्यकी सर्वव्यापकता—सूर्यमन्त्रके जपका महात्म्य

हरिः ॐ । अब सूर्यदेवतासम्बन्धी अथर्ववेदीय मन्त्रोंकी व्याख्या करेंगे । इस सूर्यदेवसम्बन्धी अथर्वाङ्गि-रस-मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि है । गायत्री छन्द है । आदित्य देवता हैं । ‘हंसः’ ‘सोऽहम्’ अभिनारायणयुक्त वीज है । हृल्लेखा शक्ति है । वियत् आदि सृष्टिसे सयुक्त कीलक है । चारों प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है । छः स्वरोपर आरु वीजके साथ, छः अङ्गोवाले, लाल कमलपर स्थित, सात घोडोवाले रथपर सवार, हिरण्यवर्ण, चतुर्भुज तथा चारों हाथोंमें क्रमशः दो कमल तथा वर और अभयमुद्रा धारण किये, कालचक्रके प्रणेता श्रीसूर्यनारायणको जो इस प्रकार जानता है, निश्चयपूर्वक वही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) है । जो प्रणवके अर्थभूत सच्चिदानन्दमय तथा भूः, भुवः और स्वः स्वरूपसे त्रिभुवनमय एवं सम्पूर्ण जगत्की सुष्ठि करनेवाले हैं, उन भगवान् सूर्यदेवके संश्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा देते रहते हैं । भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण जङ्गम तथा स्थावर-जगत्के आत्मा हैं, निश्चयपूर्वक सूर्यनारायणसे ही ये भूत उत्पन्न होते हैं । सूर्यसे यज्ञ, मेघ, अन्न (बल-वीर्य) और आत्मा (चेतना) का आविर्भाव होता है । आदित्य ! आपको हमारा नमस्कार है । आप ही प्रत्यक्ष कर्मकर्ता हैं, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं । आप ही प्रत्यक्ष विष्णु हैं, आप ही प्रत्यक्ष रुद्र हैं । आप ही प्रत्यक्ष ऋग्वेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष यजुर्वेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष रामायेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष अथर्ववेद हैं । आप ही समस्त छन्दःस्वरूप हैं ।

आदित्यसे वायु उत्पन्न होती है । आदित्यसे भूमि उत्पन्न होती है, आदित्यसे जल उत्पन्न होता है । आदित्यसे ज्योति (अग्नि) उत्पन्न होती है । आदित्यसे आकाश और दिशाएँ उत्पन्न होती हैं । आदित्यसे देवता उत्पन्न होते हैं । आदित्यसे वेद उत्पन्न होते हैं । निश्चय ही ये आदित्यदेवता इस ब्रह्माण्ड-मण्डलको तपाते (गर्भों देते) हैं । वे आदित्य ब्रह्म हैं । आदित्य ही अन्तकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप हैं । आदित्य ही प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान—इन पॉचों प्राणोंके

रूपमें विराजते हैं । आदित्य ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और ध्राण—इन पॉच इन्द्रियोंके रूपमें कार्य कर रहे हैं । आदित्य ही वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—ये पॉचों कर्मेन्द्रिय हैं । आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोंके पॉच विपय हैं । आदित्य ही वचन, आदान, गमन, मल-त्याग और आनन्द—ये कर्मेन्द्रियोंके पॉच विपय बन रहे हैं । आनन्दमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय आदित्य ही हैं । मित्रदेवता तथा सूर्यदेवको नमस्कार है । प्रभो ! आप मृत्युसे मेरी रक्षा करे । दीसिमान् तथा विश्वके कारणरूप सूर्यनारायणको नमस्कार है । सूर्यसे सम्पूर्ण चराचर जीव उत्पन्न होते हैं, सूर्यके द्वारा ही उनका पालन होता है और फिर सूर्यमें ही वे लक्षको प्राप्त होते हैं । जो सूर्यनारायण हैं, वह मैं ही हूँ । सविता देवता हमारे नेत्र हैं तथा पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण जो पर्वतनामसे प्रसिद्ध हैं, वे सूर्य ही हमारे चक्षु हैं । सबको धारण करनेवाले धाता नामसे प्रसिद्ध वे आदित्यदेव हमारे नेत्रोंको दृष्टिगति प्रदान करें ।

(श्रीसूर्यगायत्री—) ‘हम भगवान् आदित्यको जानते हैं—पूजते हैं, हम सहस्र (अनन्त) किरणोंसे मण्डित भगवान् सूर्यनारायणका ध्यान करते हैं, वे सूर्यदेव हमें प्रेरणा प्रदान करे ।’ (‘आदित्याय विद्महे सहस्र-किरणाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ।’) पीछे सविता देवता हैं, आगे सवितादेवता हैं, बाये सविता-देवता हैं और दक्षिण भागमें भी (तथा ऊपरनीचे भी) सविता देवता हैं । सवितादेवता हमारे लिये सब कुछ प्रसव (उत्पन्न) करे (सभी अभीष्ट वस्तुएँ दे) । सवितादेवता हमें दीर्घ आयु प्रदान करे । ‘ॐ’ यह एकाक्षर मन्त्र ब्रह्म है । ‘घृणिः’ यह दो अक्षरोंका मन्त्र है, ‘सूर्यः’ यह दो अक्षरोंका मन्त्र है । ‘आदित्यः’ इस मन्त्रमें तीन अक्षर हैं । इन सबको मिलाकर सूर्यनारायणका अष्टाक्षर महामन्त्र—‘ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्’ बनता है । यही अथर्वाङ्गिरस सूर्यमन्त्र है । इस मन्त्रका जो प्रतिदिन जप करता है, वही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) होता है, वही ब्राह्मण होता है ।

सूर्यनागयणकी ओर मुख करके जपनेसे महाव्याधिके भयसे मुक्त हो जाता है। उसका दारिद्र्य नष्ट हो जाता है। सारे दोपो—पापेसे वह मुक्त हो जाता है। मध्याह्नमें सूर्यकी ओर मुख करके इसका जप करे। यो करनेसे मनुष्य सद्यः उत्पन्न पौच महापातकोंसे छूट जाता है। यह सावित्रीविद्या है, इसकी किसी अपात्रसे कुछ भी प्रगसा (परिचर्चा) न करे। जो

महाभाग इसका त्रिकाल—प्रातः, मध्याह्न और मायकाल पाठ करता है, वह भाग्यवान् हो जाता है, उसे गौ आदि पशुओंका लाभ होता है। वह वेदके अभिप्राप्तका ज्ञाता होता है। इसका जप करनेसे सैकड़ों यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो नूर्दिवेताके इन नशवृप्त रक्ते समय (अर्थात् आदिवन मामांग) इसका जप करता है, वह महामृत्युसे तर जाता है, जो उस प्रकारसे जानता है, वह भी महामृत्युमें तर जाता है।

अर्थवेदीय सूर्योपनिषद् समाप्त ।

श्रीसूर्यस्य प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
स्पं हि मण्डलमृत्तोऽथ तनुर्यजूपि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
त्रहाहरात्मकमलक्ष्यमन्त्यरूपम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि तरणि तनुवाङ्मनोभि-
ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नेतर्मर्चितं च ।
ब्रुष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघशशुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत् यः ।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

मैं उन सूर्यभगवान्के श्रेष्ठ रूपका प्रातःसमय स्मरण करता हूँ, जिनका मण्डल मृगवेद, तनु यजुर्वेद और किरणे सामवेद हैं तथा जो ब्रह्मा और शङ्करके रूप हैं। जो जगत् ही उत्पत्ति, रक्षा और नाशके कारण हैं, अलःय और अचिन्त्यव्यवस्थ हैं ॥ १ ॥ मैं प्रातः-काल शरीर, बाणी और मनके द्वाग ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजिन, ब्रुष्टिकाण एवं ब्रुष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि (सूर्यभगवान्) को नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जो पापोंके समूह तथा गतुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कण्ठबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्तिसम्पन्न आदिदेव सविता (सूर्यभगवान्) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ ॥ ३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सूर्यके स्मरणरूप इन तीनों श्लोकोंका पाठ करेगा, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त कर लेगा ॥ ४ ॥

अनादि वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नाय शुद्धेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शक्तराचार्य स्वामी
श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

जीवात्मा परमात्माका अंश है। सांसारिक दुःख-द्वन्द्वोंसे छुटकारा जीवको भी मिल सकता है, जब वह अपना वास्तविक स्वरूप जानकर भगवत्स्वरूप त्रिप्ति बननेका प्रयत्न करे। अपना वास्तविक स्वरूप ठींक तरहसे जाननेका एकमात्र उपाय भगवान्‌की कृपाको पा लेना है। गीता (७ । १४)में भगवान्‌ने कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

‘जो मेरी शरणमें आते हैं, वे मायासे पार पा जाते हैं—तर जाते हैं।’

वह कृपा हमको तभी मिलेगी, जब हम बाह्य संसारसे उपरत होकर उस परमात्मरूपकी निष्ठासे उपासना करेंगे। उपासनासे ज्ञान और ज्ञानसे परमपद मिलता है। यदि लौकिक श्रेष्ठ कामनाको लेकर हम उपासना करे तो भगवत्सम्पर्कसे उसकी सिद्धि होनेके पश्चात् भगवत्प्राप्ति भी हो जाती है। इस प्रकारकी उपासना अभ्युदय और निःश्रेयस ढोनेका साधन बनती है। उपासनाएँ अनेक प्रकारकी हैं। हम शालग्रामशिलामें विष्णुबुद्धि करके उसकी जो पूजा करते हैं, वह भी उपासना है। शास्त्रोंमें इस प्रकार अनेकानेक वस्तुओंको प्रतीक बनाकर उसमें परमात्म-भावना करनेका विधान है। अन्य देवताकी स्वतन्त्र उपासना श्रेष्ठ नहीं है। भगवद्ग्रावनासे किसी भी देवकी उपासना ही श्रेष्ठ है। जो अन्य देवोंकी स्वतन्त्र उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं—

अथ योऽन्यदेवतासुपासते पशुरेव स देवानाम् ।
(—बृहदारण्यक ०)

भगवद्ग्रावनाओंसे की जानेवाली उपासनाओंमें श्रीसूर्यमण्डलमें परमात्माकी भावना करना भी एक और बड़ी ही महत्वका विषय है। अनादिकालसे ऋषि-महर्पियोंने

इस प्रकार उपासनाकर, अपने जीवनको धन्य बनाया और हमें मार्ग-दर्शन कराया है। उनके बताये मार्गपर चलनेवाले हम आस्तिक लोग प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं। मध्याह्नमें की जानेवाली उपासनामें यह मन्त्र पढ़ते हैं—

य उदगान्महितोऽर्णवात्
विश्वाजमानः सलिलस्य मध्यात् ।
स मा वृषभो लोहिताक्षः
सूर्यो विपश्चिन्मनसा फुनातु ॥
(—तैत्तिरीयसहिता)

‘सारे भूमण्डलपर व्यास हुए महासमुद्रके जलके बीचसे ऊपर उठकर सुशोभित हुए, वे रक्तनेत्र, अरुण-किरण, समस्त मानव-कृत कर्मोंके फलाभिर्वर्षक, सकलकर्मसाक्षीभूत सर्वज्ञ श्रीसूर्यदेव कृपापूर्वक मुझे अपने मनसे पवित्र करे।’

वैदिक-सूक्तिमें पले हुए हम भारतीय हिंदू संध्याकी बड़ी महत्ता मानते हैं। संध्या उषाकाल और सायंकाल-दो समय तो अवश्य ही करनी चाहिये। मध्याह्नमें माध्याह्निक संध्या भी करना आवश्यक है। उन उपासनाओंमें भगवान् सूर्य ही उपास्य होते हैं। हम उन भगवान् सूर्यको अर्थ देते हैं। जिस गायत्रीमन्त्रसे भगवान्‌का चिन्तन करते हैं, उसका अर्थ शास्त्रोंमें सूर्यपरक भी बताया गया है—

यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिगोचराः ।
प्रेरयेत् तस्य यद् भर्गः तद्वरेण्यमुपास्यहे ॥
(—बृहद्योगियाज्ञवल्क्य)

हमारे कर्मोंका फल देनेवाले सविता है। वे ही धर्मादि-विषयक हमारी बुद्धि-वृत्तियोंके प्रेरक हैं। हम उन परमात्मा सविताकी श्रेष्ठ ज्योतिकी उपासना करते हैं। गायत्रीमन्त्रका इस प्रकार सूर्यमें समन्वय किया गया है। प्रातः और मध्याह्नकी वेलाओंमें उपस्थान भी

भगवान् श्रीसूर्यका ही होता है। संथा किये विना किसी भी मनुष्यका कोई भी वैदिक धर्म-कार्य सफल नहीं होता। इससे हम जान सकते हैं कि वैदिक विधानोंमें सूर्यकी कितनी महत्ता है। संध्या-अनुष्ठानमें सूर्य-मण्डलमें भगवान् नारायणका ध्यान करनेका विधान है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती

नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी

हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

(—वृहत्पाराशारस्मृति)

‘भगवान् नारायण तपे हुए स्वर्णजैसे कान्तिमान् शरीरधारण किये हुए हैं। उनके गलेमें हार एवं सिरपर किरीट विराजमान हैं। उनके कान मकर-कुण्डलसे सुशोभित हैं। वे कंगनसे अलङ्कृत अपने दोनों हाथोंमें भक्तभयनिवारणके लिये शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं। वे सूर्यमण्डलमें कमलासनपर वैठे हैं।’ इसी प्रकार गायत्रीका जप करते समय भी सूर्यमण्डलमें भगवान्का चिन्तन करना चाहिये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावणके साथ युद्ध करते समय श्रान्त होकर चिन्तित होते हैं कि कैसे युद्धमें विजय पा सकेंगे। तब महर्षि अगस्त्य आकर रामजीको आदित्यहृदयका उपदेश देते हैं और उसका फल भी बतलाते हैं—

पत्नमापत्सु वृद्धेषु कान्तारेषु भयेषु च ।

कीर्तयन् पुरुषः कश्चित् नावसीदति राघव ॥

(—वाल्मीकि० ६ । १०५ । २५)

‘राघव ! विपत्तिमें फँसा हुआ, बने जंगलोंमें भटकता हुआ और भयोंसे फिर्कतव्यविमुड़ व्यक्ति इस आदित्य-हृदयका जप करके सारे दुःखोंसे पार पा जाता है।’ वाल्मीकिरामायणकी इस कथासे भगवान् आदित्यका महत्त्व जान सकते हैं।

योगशास्त्रमें भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि ‘भुवनश्चानं सूर्ये संयमात्’—‘सूर्यमें संयमन करनेसे सारे संसारका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।’ चित्तका संयम करनेसे मिलने-वाली सिद्धियोंके निरूपणके अवसरपर यह ब्रात कही गयी है। धर्मशास्त्र कहता है कि सामान्य समयमें भी यदि कोई अग्नुचित्व प्राप्त हो तो सूर्यको देखो, तुम पवित्र हो जाओगे (स्मृतिरत्नाकर)। वीमारियोंसे पीड़ित हो तो सूर्यकी उपासना करो—‘आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।’

इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंके कारण हैं। वे हमारी उपासनाके मूल विन्दु हैं। इसी प्रकार मन्त्रशास्त्रोंमें भी उनके अनेक मन्त्र प्रतिपादित हैं, जिनके अनुष्ठानसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्ति पाकर हम सुखी और कृतार्थ बन सकते हैं।

जयति सूर्यनारायण, जय जय

(रचयिता—नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आदिदेव, आदित्य, दिवाकर, विमु, तमिस्तहर ।

तपन, भानु, भास्कर, ज्योतिर्मय, विष्णु, विभाकर ॥

शंख-चक्रधर, रत्नहार-केयूर-सुकुट्ठधर ।

लोकचक्षु, लोकेश, दुःख-दारिद्र्य-कष्टहर ॥

सविता देव अनादि, सृष्टि-जीवन-पालनकर ।

पाप-तापहर, मङ्गलकर, मङ्गल-विग्रह-धर ॥

महातेज, मार्तण्ड, मनोहर, महारोगहर ।

जयति सूर्य नारायण, जय जय सर्व सुखाकर ॥

(—पदरत्नाकर ८८५)

प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायण

(अनन्तश्रीविभूषित पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगदुक शकराचार्य स्वामी
श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराजका मङ्गलाशंसन)

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। तत्त्वतः तो वे परब्रह्म हैं। वे स्थावर-जड़मात्मक समस्त विश्वकी आत्मा हैं। सूर्योपनिषद् (१ । ४) के अनुसार सूर्यसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है एवं उन्हींमें विलय होता है। उनके उग्रासवा साधकको स्वयं भी सूर्यमें ब्रह्मात्मभावना करनेका निर्देश दिया गया है—‘यः सूर्योऽहमेव च ।’ भगवान् आवश्वराचार्यद्वारा प्रवर्तित पश्चायतनोपासनामें वे अन्यतम उपासय हैं। उनकी उपासनाधा विधान वेदोंमें तो है ही उनके अतिरिक्त

सूर्योपनिषद्, चाक्षुषोपनिषद्, अश्युपनिषदादि उपनिषदें खतन्त्र रूपसे सूर्योपासनाका ही विधान करती हैं।

रूर्य समस्त नेत्र-रोगको (तथा अन्य सभी रोगोंको) दूर करनेवाले देवता हैं—‘न तस्याक्षिरोगो भवति’ (अश्युपनिषद्) । ‘आरोग्यं भास्करादिच्छंत्’ आदि पुराण-व्रचन इस विषयमें परम प्रसिद्ध हैं।

भगवान् सूर्य सबका श्रेय करें। ‘कल्याण’ का ‘सूर्यङ्क’ ‘कल्याण’के पाठकों तथा विश्वका कल्याण करे—इस आशीर्वाद एवं शुभाशंसाके साथ हम सबके प्रति अपना मङ्गलाशंसन प्रेषित करते हैं। ‘शिवसंकल्पमस्तु ।’



सूर्य-तत्त्व

(—अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वा नाय श्रीकाशीमुमेषपीठाधीश्वर जगदुगुरु शकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

मारतीय सत्कृत-वाङ्मयकी सनातन-परम्परामें भगवान् भास्करका स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, सूर्यनि, पुराण, रामायण, महाभारतादि प्रन्थ भगवान् सूर्यकी महिमासे परिष्कृत हैं। विजय एवं स्वास्थ्यलाभार्थ और कुष्ठादि रोग-निवारणार्थ विविध अनुष्टानों तथा स्तोत्रोंका वर्णन उक्त प्रन्थोंमें विविध प्रवारसे प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। वात्तव्यमें भारतीय सनातन धर्म भगवान् सविताकी गहिमा एवं प्रकाशसे अनुप्राणित तथा आलोकित है। गर्य-गहिमा अद्विनीय है।

वेद ही हमारे धर्मको मूल हैं। शास्त्रानुसार वेदाध्ययन उपनीतके लिये ही निहित है। उपनयन-सत्कारका मुख्य उद्देश्य सावित्री-उपादेश है—‘सावित्र्या ब्राह्मणमुपनवीत ।’ ‘तत्सवितुर्वेण्यम्’के आधारपर गायत्रीमन्त्रमें सवितादेव ही ध्येय हैं। सवितादेवके वरेण्य तेजके

ध्यानादिके कथनसे स्पष्ट है कि इस मन्त्रमें सविता देवताकी प्रार्थना है।

सविता कौन ?—गायत्रीमन्त्रके सविता देवता कौन हैं ? सविता शब्द सूर्यका पर्यायवाचक है। ‘भानुर्हसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः’ (अमर १ । ३ । ३८)—इसके आधारपर भानु, हंस, सहस्राशु, तपन, सविता, रवि—ये सब सूर्यके अनेक नाम हैं, अतः सविता गृह्य है, सूर्यमण्डल-तर्गत सूर्यमिमानी देवविशेष है, चेतन हैं। हम अपने शास्त्रोंका अध्ययन कर यह कह सकते हैं कि जैसे जल आदिके अविद्यातु देवता चेतन होते हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्षतः सूर्यमण्डल गले ही जड़ प्रतीत हों, परंतु उनके अभिगानी देवता चेतन हैं—‘योऽस्मावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्’ (यजु० वा० स० ४० । १७) यह मन्त्र गी आदित्यमण्डलस्य पुरुषको चेतन प्रमाणित करता है।

हमारे शास्त्रोंमें अथ्यात्मादि भेदसे त्रिविध अर्थकी तर्क तथा प्रमाणसम्मत व्यवस्था है, अतः अथ्यात्म-सूर्य वह है, जो सब ज्योतिर्योक्ती ज्योति और ज्योतिष्मती योग-प्रवृत्तिका कारणरूप शुद्ध प्रकाश है।

जिस प्रकाशराशि सूर्यमण्डलका हम प्रतिदिन दर्शन करते हैं, वह अधिभूत सूर्य है। इस सूर्यमण्डलमें परिव्याप्त चेतनदेव अधिदैव शक्ति ही आधिदैविक सूर्य हैं। तात्पर्य यह है कि गूर्य या सविता चेतन हैं।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

(—ईशोपनिषद् १५)

इस मन्त्रमे कार्य-कारणात्मक आदित्यमण्डलस्य पुरुषकी प्रार्थना करते हुए सत्यधर्मा अधिकारी कहता है— ‘हे पूषन् ! आदित्यमण्डलस्य सत्यस्यरूप ब्रह्मका मुख हिरण्मय पात्रसे ढका हुआ है। मुझ सत्यधर्माको आत्माकी उपलब्धिके लिये आप उसे हटा दीजिये।’ भगवान् शंकराचार्य लिखते हैं—

…सत्यस्यैवादित्यमण्डलस्य ब्रह्मणोऽपिहित-
माच्छादितं मुखं द्वारम् । तत्त्वं हे पूषन् अपावृणु—
अपसारय ॥ (—शाकरभाष्य)॥

‘हे पूषन् ! मुझ सत्योपासकको आदित्यमण्डलस्य सत्यरूप ब्रह्मकी उपलब्धिके लिये आच्छादक तेजको हटा दें।’

पूषन्नेकर्ये यम सूर्यं प्राजापत्यं व्यूहं रश्मीन्
समूहं तेजों वत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (—ईशोप १६)

जगत्के प्रोपक, एकाकी गमनशील, सबके नियन्ता, रश्मियोंके स्रोत, रसोके ग्रहण करनेवाले हैं सूर्य ! हे प्रजापतिपुत्र ! आप अपनी किरणों-(उष्ण)-को हटाइये—दूर कीजिये और अपनी तापक ज्योतिको शान्त कीजिये। आपका जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है, उसे (आपकी कृपासे) मैं देखता हूँ (देख सकूँ) । मैं भूत्यकी भाँति

याचना नहीं करता, अपितु आदित्यमण्डलस्य जो पुरुष है या प्राणवुद्धयात्मरूपसे जिसने समस्त जगत्को पूर्ण कर दिया है, किंवा जो शरीररूप पुरमें शयनके कारण पुरुष कहलाता है, वह मैं ही हूँ ।

भगवान् शंकराचार्य वेदान्तसूत्रके देवताधिकरण (१ । ३ । ३३)में ‘देवताओंका शरीर नहीं होता इत्यादि’—मीमांसक भत्तका खण्डन करते हुए लिखते हैं—

‘ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवता-वचनाः शब्दाः, चेतनावन्तमैर्वर्याद्युपेतं तं देवता-त्मानं सर्मर्ययन्ति, मन्त्रार्थवादेषु तथा व्यवहारात् । अस्ति तर्हैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्ट च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम् । तथा हि श्रूयते सुव्रह्मण्यार्थवादे मेधातिथिम्... इन्द्रो मेषो भूत्वा जहार । स्मर्यते च आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुर्णीमुपजगाम ह इति... ज्योतिरादेस्तु भूतधातोरादित्यादिष्वप्यचेतनत्वसम्यु-पगम्यते, चेतनास्त्वधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिषु व्यवहारादित्युक्तम् ।

तात्पर्य यह कि आदित्यमें ज्योतिर्मण्डलरूप भूतांश अचेतन है, किंतु देवतात्मा अधिष्ठाता चेतन ही है। जैसे हमलोगोंका शरीर वस्तुतः अचेतन है, परतु प्रत्येक जीवित शरीरका एक अधिपति जीवात्मा चेतन होता है, उसी प्रकार देवशरीरोंका अधिपति स्वामी या अधिष्ठाता रहता है। जैसे जीवका शरीर उसके अधीन है, वैसे ही भगवान् गूर्यके अधीन उनका सूर्यरूपी तेजोमण्डल देह है।

इसपर बहुत पहलेकी पढ़ी एक कहानी याद आती है, जो तथ्यपर आधारित है। मिस्टर जार्ज नामक एक अमेरिकन विज्ञानके प्रोफेसर थे। वे एक बार मध्याह्नके समयमें पाँच मिनटक खुले शरीरसे धूपमे खड़े रहे; पथ्यात् अपने कमरेमें आकर थरमामीटरसे अपना तापमान देखा तो तीन डिग्री ज्वर था। दूसरे दिन जार्ज महाशयने पुष्ण और फल लेकर सूर्यको धूप दिखाकर सूर्यको प्रणाम किया।

और वैसे ही नगे बदन मध्याह्नमें लगभग ११ मिनट धूपमें रहे; पश्चात् कमरेमें आकर थरमामीटरसे तापमान देखा तो वह नामल (सामान्य) था। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वैज्ञानिकोंका सूर्य केवल अनिका गोला है, जड़ है— यह सिद्धान्त टीक नहीं, अपितु सूर्य चेतन हैं, देव हैं। उनमें प्रसन्नता है, अप्रसन्नता है। अतः हमारे यहाँ सूर्यदेव ही सन्ध्यादिकमेंमें उपास्य तथा पूज्य हैं।

आदित्यहृदयस्तोत्रके द्वारा भगवान् रामने सूर्यनारायण-की स्तुति की थी। श्रीहनुमान् जीने भगवान् सूर्यके सांनिध्यमें अध्ययन किया था, ऐसे अनेक उपाख्यान सूर्यकी चेतनतामें ज्वलन्त उदाहरण है। भविष्यपुराणके आदित्यहृदयके—‘यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्।’—इस श्लोकमें सूर्यको विष्णु-भगवान्का स्वरूप (आत्मा) कहा गया है। यही क्यों, वेद भी सूर्यको चराचरात्मक जगत्की आत्मा कहते हैं— ‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च’, ‘विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः’ (ऋ० १ । १६४ । २१)। इस मन्त्रमें सूर्यको धीर अर्थात् बुद्धिप्रेरक कहा है ‘धियमारयतो धीरः’। अतएव आस्तिक द्विज प्रतिदिन सन्ध्यामें ‘धियो यो नः प्रचोदयात्’ इस प्रकार बुद्धिके अच्छे कामोंमें लगानेके लिये प्रार्थना करते हैं।

‘सूर्य’ शब्दकी व्युत्पत्ति

निरुक्तकार यास्कने ‘सूर्य’ शब्दकी निरुक्ति— ‘सूर्यः सतेर्वा सुवतेर्वा’ (१२ । २ । १४) इस प्रकार की है। ‘सिद्धान्तकौमुदी’के वृत्य-प्रकरणके ‘राजसूयसूर्य०’ (पा० ३ । १ । ११४) इस मूत्रसे निपातनकर सूर्य शब्दकी सिद्धि इस प्रकार है—‘सरति (गच्छति) आकाश इति सूर्यः’ (भवादि० प०), यद्वा पू व्रेरणे (तुदादि० प०), क्यपो रुट्, ‘सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति सूर्यः’। इस प्रकार

‘सूर्य’ शब्दकी व्युत्पत्तिसे यह स्पष्ट है कि सूर्य भगवान् चेतन हैं। प्रेरकता चेतनका गुण है।

हमारे धर्ममें पञ्चदेवोंकी उपासनाका वर्णन मिलता है। ‘कामिल-तत्त्व’में भी आता है—

आकाशस्याधिष्ठो विष्णुरज्ञेशचैव महेश्वरी ।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिष्ठः ॥
गुरुर्वो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधा गताम् ।
परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम् ॥

आकाशके अधिष्ठित विष्णु, अग्निकी महेश्वरी, वायु-तत्त्वके अधिष्ठित सूर्य, पृथ्वीके शिव एवं जलके अधिष्ठित भगवान् गणेश हैं। योगपारज्ञत्त गुरुओंको चाहिये कि वे शिष्योंकी प्रकृति एवं प्रवृत्तिकी (तत्वानुसार) परीक्षा कर उनके उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेवका निर्णय करे।

इस कथनका तात्पर्य यह है कि परमात्मा और उक्त पञ्चदेवोंकी उपासनाएँ पाँच प्रकारकी हैं। अतः जैसे विष्णुभगवान् या शिवादिस्वरूप परमात्मा ही है, उसी प्रकार भगवान् सूर्य भी परमात्मा ही है। ‘उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्’—यह योगशास्त्रका वचन है। इसके आधारपर सगुण ब्रह्मकी ही पञ्चतत्त्वमेदानुसार पञ्चमूर्तियाँ हैं। हम भारतीय जबतक इन भगवान् भास्करकी गायत्री-मन्त्रके द्वारा उपासना करते रहे, तबतक भारत ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न, स्वस्थ, शान्त एवं सुखी रहा। वर्तमान दुर्दशा एवं उत्पीडनको देखते हुए भगवान् भास्करकी उपासना अत्यावश्यक है।

भारतीय पुनः भगवान् भास्करका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर अन्युदय एवं निःश्रेयसके पथपर चलकर भारतको ‘भा’-रत (प्रभापूरित) करें—इस उद्देश्यमें ‘कल्याण’ का संचालकमण्डल सफल हो, यही हमारी सूर्य-भगवान्से प्रार्थना है

सूर्यका प्रभाव

(अनन्तश्रीविभूपित जगद्गुरु शकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्य काञ्चीकामकोटिपीटाधीश्वर स्वामी
श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद)

‘पूर्ण वेद—सम्पूर्ण वेदवाङ्मय धर्मका मूल (स्रोत) है । वेदोऽखिलो धर्ममूलम्’—इस मनु-वचनके अनुसार वेदोद्वारा प्रतिपाद्य—विवेच्य विषय (अर्थ) धर्म है । अतः यज्ञ (वेद-विहित पावन कर्तव्य कर्म) धर्मका स्वरूप है जो समयके अधीन है । समयका विधायक (व्यवहार-व्यवस्था-नियामक) ज्योतिपशास्त्र है और यह ज्योतिपशास्त्र (ज्योतिपशास्त्रका विषय) आदित्य—श्रीसूर्यके अधीन है । सूर्य ही दिन-रातके कालका विभाजन करते हैं । ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहारके मूल कारण हैं—इन्हींके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और उसका संहार होता है । (अतएव सूर्यदेव ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्वरूप हैं—त्रिदेवमय हैं) ।

सूर्यकी किरणें सभी लोकोमें प्रसूत होती हैं । ये (सूर्य) ही ग्रहोंके राजा और प्रवर्तक हैं । ये रात्रिमें अपनी शक्ति अग्निमें निहित कर डेते हैं । ये ही (सूर्यदेव) निखिल वेदोंके प्रतिपाद्य हैं । ये आकाश-मण्डलमें प्रतिदिन नियमसे सत्यमार्ग (क्रान्तिवृत्त ?) पर स्थं धूमते हुए संसारका सचालन करते हैं । आकाशमें देखे जानेवाले नक्षत्र, ग्रह और राशिमण्डल इन्हींकी शक्ति (आकर्षण-शक्ति) से टिके हुए हैं—यह शास्त्रोंमें कहा गया है ।

थके प्राणी रात्रिमें सुस होकर सूर्योदयके समय पुनः जागरूक हो जाते हैं । ऋग्वेद कहता है कि सूर्य ही अपने तेजसे सबको प्रकाशित करते हैं । यजुर्वेदमें कहा गया है कि ये ही सम्पूर्ण भुवनको उज्जीवित करते हैं । अथर्ववेदमें प्रतिपादित है कि ये सूर्य हृदयकी दुर्वलता—हृद्रोग और कासरोगको प्रशमित करते हैं । सूर्यकी किरणें पृथ्वीपरके गीले पदार्थोंको सोख लेती हैं

और (खारे) समुद्र-जलको स्थय पीकर पीनेयोग्य बना देती हैं । (किरणोंके उपकार अनेक और महान् हैं ।)

नैमित्तरण्यमें (पौराणिक) सूतजीने यज्ञसमारम्भके अवसानमें—सत्रान्तमें शौनकादि ऋषियोंके लिये सविताके विषयमें विस्तृत व्याख्या की । (इससे स्पष्ट है कि) सूर्योपासना भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चली आती है । आद्य श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा स्थापित पड़विध (साधना) मतोंमें सौर-मत अन्यतम है । पुराणोंमें स्थल-स्थलपर सूर्यकी प्रशंसा तो है ही, उपपुराणोंमें अन्यतम् सूर्यपुराणमें भी सूर्यके सम्बन्धमें विस्तारसे व्युत्पन्न विषय बहुत स्पष्टतासे वर्णन किया गया है । उसके आधारपर यहाँ कुछ लिखा जा रहा है ।

महर्षि वसिपुजीने सूर्यवर्णाय वृहद्ब्रह्मको अभिलङ्घ-कर सूर्यके वैभव (महत्व) का वर्णन किया है । चन्द्रमाणा नदीके तीरपर (ब्रसे) साम्बुपुरमें बहुत समयसे सूर्य प्रतिस्थापित है । वहाँपर की गयी उनकी पूजा अक्षय्य (अनश्वर) फल देती है । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अभिशास उनके पुत्र साम्बने अपने कोढ़के रोगको सूर्यके अनुग्रहसे शमित कर दिया । (सूर्यकी उपासनासे कुष्ठ-जैसे भयंकर रोग हृष्ट जाते हैं—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साम्बोपाख्यान है ।)

सूर्यकी पत्नी छायादेवी तथा पुत्र काक-नाहन शर्नेश्वर और यम हैं । सूर्य राजरत्न माणिक्यके अविदेवता हैं । इनका रथ सुवर्णमय है । इनके सारथि (रथ हॉकनेवाले) ऊरु-हृति (अनूरु) अरुण हैं ।

सूर्यकी किरणोंमें से चार सौ किरणे जल वरसाती हैं, तीस किरणें हिम (शीत) उत्पन्न करती हैं । इन्हीं

सूर्यसे ओपवि-शक्तियाँ बढ़ती हैं। आगमे हुत हवि (आहुति) सूर्यतक पहुँचकर अन्न उत्पन्न करती है। पृज्ञसे पर्जन्य और पर्जन्यसे अन्नका होना शास्त्रसिद्ध एवं लोकप्रसिद्ध है।

सूर्य जपापुण्यके सदृश (अड्हुलके फूलके समान) लाल वर्णवाले हैं। शास्त्र-वेत्ता—शास्त्रके मर्मको जाननेवाले आदित्यके भीतर 'हिरण्यभ्यपुरुष' की उपासना करते हैं। पौराणिक जन (पुराण जाननेवाले लोग) कहते हैं कि भगवान् भानु आदिमे हजारो सिरवाले थे और उनका मण्डल नौ हजार योजनोमें फैला हुआ था। वे पूर्वभिमुख प्रादुर्भूत हुए थे।

ये (सूर्य) प्रतिदिन मेरुर्पर्वतके चारों ओर घूमते रहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्यदेवकी उपासना कर-

'शुक्लयजुर्वेद' को प्रकाशित किया। सूर्यके ही अनुग्रहसे देवी द्रौपदीने अक्षय पात्र प्राप्त किया था*। महर्षि अगस्त्यने युद्धक्षेत्रमें (श्रान्त) श्रीरामको आदित्य-द्वयस्तोत्रका उपदेश दिया था (जिसके पाठसे श्रीराम विजयी हुए)। अपनी पुत्रीके शापसे कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकवि 'सूर्यशतक'+ नामक स्तोत्र बनाकर सूर्यके अनुग्रहसे उससे (कोहसे) छूटे। इन्हींके अनुग्रहसे सत्राजितने स्यमन्तकमणि+ प्राप्त की थी।

इति (दिग्दर्शित) प्रभाववाले सूर्यकी सेवा-भक्ति किंवा आराधना करते हुए सभी आस्तिकजन ऐहिक अभ्युन्नति-'प्रेय' और पारलौकिक उत्कर्प-'श्रेय' (कल्याण) प्राप्त करें—यह हमारी आशंसा है। 'नाशस्यारमृदिः' ।

नित्यप्रतिकी उपासना

ध्येयः सदा सवित्रमण्डलमध्यवर्ती

नारायणः सरसिजासनसंनिधिष्ठः ।

प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको प्रातःकाल स्नानकर और सायंकाल हाथ, मुँह, पैर धोकर सूर्यके सामने खड़े होकर सूर्यमण्डलमें विराजमान सारे जगत्के प्राणियोंके आधार परब्रह्म नारायणको 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रसे अर्च देकर यदि जल न मिले तो मात्र हाथ जोड़कर मनको पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक १०८

बार अथवा २८ बार या कम-से-कम १० बार प्रातः-काल 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका ओर सायंकाल 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रको जपना तथा जपके उपरान्त परमात्माका ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहियेः—

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार ।

दृढ़ राखौ मोहि धर्ममें विनवौ धारंधार ॥

चंदा शूरज तुम रचे रचे सकल संसार ।

दृढ़ राखौ मोहि सत्यमें विनवौ धारंधार ॥

—महाभाना पूज्य श्रीमालवीयजी महाराज

* अक्षयपात्रकी कथा कथा-सन्दर्भमें पढ़े।

+ सूर्यशतककी रचना करनेवाले मयूरकवि सातवीं शताब्दीमें हुए थे। उन्होंने जनकल्याण एवं कुष्ठरोगजनित आत्म-वेदनासे मुक्ति पानेके लिये 'सूर्यशतक' की रचना की। सूर्यशतक उत्कृष्ट कोटिका सूर्य-स्तोत्र है। प्रसिद्ध है कि मयूरों नाम भगवान्विवरन्तःकरणादिसर्वावयवनिर्वृत्तिसिद्धये सर्वजनोपकाराय च आदित्यस्य स्तुतिं श्लोकगतकेन प्रणीतवान्।

‡ स्यमन्तकमणिकी कथा इसी विगेपाङ्को कथाभागमें मिलेगी।

§ 'सनातनर्वमंप्रदीपक'से

सूर्य और निम्बार्क-भग्नदाय

(—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री‘श्रीजी’ श्रीराधामवंशरागण देवाचार्यजी महापात्र)

अंशुमाली भगवान् भुवनभास्कर श्रीसूर्यकी महिमा अनन्त एवं असीम है। वेदमाता गायत्रीमे जहाँ निखिलान्तरात्मा, सर्वदृष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्रीसर्वेश्वरका प्रतिपादन है, वहाँ सक्रिता नामसे महाभाग सूर्यका भी परिवोध है। श्रुति, सृति, पुराण और सूत्रतन्त्र आदि शास्त्रोमे तथा साहित्य एवं काव्य आदि उच्चतम प्रन्थोमें सूर्य-स्वरूप, सूर्य-प्रशस्ति, सूर्य-स्तवन तथा सूर्य-वन्दन आदिका सुन्दरतम वर्णन विपुलरूपसे विद्यमान है। यथार्थमें समग्र सृष्टिका जीवन तथा धारण-सम्प्रोगण भगवान् सूर्यकी अतुष्ठित लोकोत्तर शक्तिपर ही निर्भर है। वेदोमें—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपक्ष’, ‘दशे विश्वाय सूर्यम्’—अर्थात् समस्त जगत्के आत्मरूपमें सूर्य हैं तथा सारे सप्तारके दृष्टि-दाता सूर्य हैं—आदि विस्तारसे विवेचित हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान् श्रीकृष्णने भी निम्बनि-स्वरूपके वर्णनमें—‘ज्योतिषिं रघिरंशुमान्’-से स्थयको ही इङ्गित किया है। प्रश्नोपनिषद्के ‘स तेजसि सूर्यं सम्पन्नः’—इसवचनसे यह प्रतिपादन किया गया है कि वे अखिलान्तरात्मा श्रीप्रभु तेजोमय सूर्यरूपमें भी प्रतिष्ठित हैं। पातञ्जलयोगसूत्र (३। २६) में वर्णित है कि ‘भुवनज्ञानं सूर्यं संयमात्’ अर्थात् सूर्यके ध्यान करनेसे ही निखिलभुवनका ज्ञान प्राप्त होता है। तपःपूत पुण्यात्मा धीर पुरुप भी सूर्यमार्गसे ही श्रीभगवद्भाग एवं श्रीभगवद्भावापत्तिस्त्रूप मोक्षकी प्राप्ति करते हैं। मुण्डकोपनिषद्के निम्नाङ्कित मन्त्रसे यह भाव स्पष्ट हो जाता है—

तपःश्रद्धे ये ह्यपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैश्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥

(१। २। ११)

इसी प्रकार व्रद्धमूत्रके—‘रद्धम्यनुसारी’, ‘अचिन्त्यवान् चतुप्रथिने’—इन दो मूत्रोंसे उपर्युक्त निर्वचनका ही प्रतिपादन है। ‘रद्धम्यनुसारी’ इस मूत्रके वेदान्त पारिजात सौरभाष्यमें आधाचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्कने रपटीकरण किया है—

‘विद्वान् मूर्ढन्या नाड्या निकम्य मूर्धरद्धमीन-
नुमारेणोर्ध्वं गच्छति, तैरेव रद्धिमभिग्निवधागणात्’
अर्थात् पवित्रात्मा विद्वान् भक्त इस पाष्ठमीनिक शरीरसे निष्क्रमण कर सूर्य-रद्धिमयोमें प्रवेश करता है तथा उन्हीं रद्धिमयोंके मार्गसे द्वितीय ऊर्ध्व लोकमें चढ़ जाता है। इससे भगवान् सूर्यकी अनन्त, अचिन्त्य एवं अपरिमित महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

अब यहाँ निम्बार्क-सिद्धान्तमें भी भगवान् सूर्यका जो वर्चस्व तथा उनका स्वाभाविक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है, वह भी परम द्रष्टव्य है। सर्वप्रथम निम्बार्क—इस नामसे ही सूर्यका सम्बन्ध स्पष्टतया परिलक्षित होता है, यथा—‘निम्बे अर्कः निम्बार्कः।’ इसमें समर्मी-तपुस्य समाससे ‘निम्ब वृक्षावर सूर्य’—ऐसा परिवोध होता है। ‘भविष्योत्तरपुराण’ एवं ‘निम्बार्क-साहित्य’में निम्बार्क-सम्बन्धी एक विशिष्टतम दिव्य घटनाका उल्लेख है। एक समयकी बात है कि पितामह ब्रह्मा कृत्रिम वेणुवनाकर दिवाभोजी संन्यासीके रूपमें व्रजमण्डलके वीच गिरिराज गोवर्धनकी उत्त्यकामें सुशोभित श्रीनिम्बार्क-तपस्थलीपर गये और वहाँ उन्होंने सुदर्शनचक्रावतार—श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यके चक्रावतार-स्वरूपका परिज्ञान प्राप्त करना चाहा। अपने आश्रममे आये हुए अतिथिका स्वागत होना चाहिये—इस विचारसे श्रीआचार्यवर्यने यतिको भोजनके लिये संकेत किया। यद्यपि सूर्य अस्त हो चुके थे, किंतु आचार्यश्रीने रात्रिमें भी सूर्यका दर्शन

कराया और यतिस्थप्रब्रह्माका आतिथ्य किया। फिर सूर्यके अन्तर्हित होनेपर हठात् रात्रिका समय सामने आ गया। यह देखकर ब्रह्मा विस्मित हुए तथा समाधिस्थ होकर उन्होंने श्रीनिम्बार्क भगवान्के बकावतार-स्वरूपका यथार्थ अनुभव किया एवं तत्काल प्रत्यक्ष ब्रह्माके रूपमे प्रकट हो श्रीआचार्यवर्यको निम्बार्क नामसे सम्बोधित किया। इस लोकमङ्गलकारी घटनासे पूर्व ‘आचार्यश्रीका’ नियमानन्द नाम ही प्रख्यात था। वस्तुतः श्रीमान् आधाचार्यका यह सम्पूर्ण चरित भगवान् सूर्यसे ख्यातवतः सम्बन्ध रखता है।

‘निम्बार्क’ नामसे यह भी एक गूढ़तम रहस्य सम्बन्धितया स्पष्ट है कि ‘सर्वरोगहरो निम्बः’। आयुर्वेदके इस महनीय वचनसे सिद्ध है कि समस्त रोग निम्बके वृक्षसे शान्त हो जाते हैं। रोगसे प्रसित जो मानव निम्बका समाश्रय ले तो वह निश्चय ही असान्य भीणण रोगोसे मुक्ति सुलभतया प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रशस्त एवं प्रखर महिमाका वर्णन समग्र शास्त्रोमे विविध रूपसे उपलब्ध है। सूर्यगीतामे यह प्रसङ्ग अवलोकनीय है—

विश्वप्रकाशक श्रीमन् सर्वशक्तिनिकेतन ।
जगन्नियन्तः सर्वेश विश्वप्राणश्रय प्रभो ॥

हे श्रीमन् ! आप सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, समस्त शक्तियोके अधिष्ठान, जगन्नियन्ता, सर्वेश एवं विश्वके प्राणधार प्रभु हैं।

इस उमयविध दृष्टिसे निम्ब और अर्क (सूर्य) का वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष ही है। वस्तुतः निम्बार्क नामसे सूर्यका यह स्वाभाविक सम्बन्ध स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त एक यह भी विलक्षणता है कि इस समय जहाँ राजस्थानमे स्थित पुष्करक्षेत्रके अन्तर्गत श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायका एकमात्र आचार्यपीठ अ० भा० श्रीनिम्बार्क-चार्यपीठ है, वह भी भगवान् सूर्यका अति प्राचीन पौराणिक पुण्यस्थ तीर्थ है। इस तीर्थका सुन्दरतम

वर्णन पद्मपुराण (१५८। १-२४) मे ‘निम्बार्कदेवतीर्थ-माहात्म्य’ नामसे विलित है; जैसे—पिपलाद-तीर्थसे कुछ दूर साम्राज्यी नदीके किनारे सम्पूर्ण आधि-ज्याधियोको मिटानेवाला पिच्छुमन्दारक (निम्बार्क-तीर्थ) है। प्राचीन समयमें एक कोलाहल नामक दैत्य था। उसके साथ देवताओंका युद्ध छिड़ गया। उस दैत्यके प्रहारोसे घबड़ाकर अपने प्राण बचानेके उद्देश्यसे देवता सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षोंपर जा चढ़े।

जवतक महाविष्णुने उस कोलाहल दैत्यका वध नहीं किया, तबतक शंकर विल्ववृक्षपर, विष्णु पीपलवृक्षपर, इन्द्र शिरीप-वृक्षपर और सूर्य निम्बवृक्षपर छिपे रहे। जो-जो देवता जिन-जिन वृक्षोंपर रहे थे, वे-वे वृक्ष उन-उन देवताओंके नामसे विल्यात हुए। इसी कारणसे इन देववृक्षोंको काटना निषिद्ध माना जाता है। जिस स्थानपर सूर्यने निम्बवृक्षपर निवास किया था, वह ‘निम्बार्कतीर्थ’ कहलाया। इस तीर्थमे स्नान करके निम्बस्थ (नीमवृक्ष-पर विराजमान) गूर्ह-(निम्बार्क-) की पूजा की जाय तो पूजा करनेवाले व्यक्तिके समस्त रोग-दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है।

आदित्य, भास्कर, भानु, चित्रभानु, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्रांशु और पूषन्, (पूषी) इन बारह नामोंका पवित्र होकर जप करनेसे धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति होती है। इन बारह नामोंमेंसे किसी भी एक नामका जप करनेवाला ब्राह्मण सात जन्मोतक धनाढ़ी एवं वेदपारङ्गत होता है। क्षत्रिय राजा और वैश्य धन-सम्पन्न हो जाता है। शूद्र तीनों वर्णोंका भक्त बन जाता है। अधिक क्या कहा जाय, हे पार्वति ! निम्बार्क-तीर्थसे बढ़कर और कोई तीर्थ नहीं है, न भविष्यमें ऐसा तीर्थ हो सकता है; क्योंकि इस तीर्थमें केवल स्नान और आचमन करनेमात्रसे ही व्यक्ति मुक्ति- (भगवत्प्राप्ति-) का पात्र बन जाता है।

भगवान् सूर्य-हमारे प्रत्यक्ष देवता

(अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रमाद)

सभी प्राणियोंको जन्मसे ही भगवान् सूर्यके दर्शन होते हैं । ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं । अन्य किसी देवताकी स्थितिमें कुछ संदेह भी हो सकता है, किन्तु भगवान् सूर्यकी सत्तामें किसीको संदेहके लिये कोई अवसर ही नहीं है । सभी लोग इनका प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) प्राप्त करते हैं ।

‘मृ गतौ’ अथवा ‘मृ प्रेरणे’ से क्यप्र प्रत्यय होनेपर ‘सूर्य’ शब्द निष्पत्त होता है । ‘सरति आकाशे—इति सूर्यः’—जो आकाशमें निराधार भ्रमण करता है अथवा ‘सुचति कर्मणि लोकं प्रेरयति’—जो (उदयमात्रसे) अखिल विश्वको अपने-आपने कर्ममें प्रवृत्त करता है, वह सूर्य है । व्याकरण-शास्त्रमें इसी अर्थमें—‘राजसूर्यसूर्यसूषोद्य-रुच्यकुप्यकृष्टपृच्छ्याव्यथ्याः’ (पा० स० ३ । १ । ११४) इस पाणिनि-सूत्रसे निपातन होकर भी सूर्य शब्द बनता है ।

अखिल विश्वमें प्रकाश देनेवाला, अनन्त तेजका भण्डार-मण्डल ही सूर्य शब्दका वाच्यार्थ है और इसका लक्ष्यार्थ है—मण्डलभिमानी पुरुष—चेनन-आत्मा तथा उसका अन्तर्यामी । ऋग्वेदसंहिता कहतो है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च (शू० स० १ । ११५ । १)

अर्थात्—‘भगवान् सूर्य सभी स्थावर-जड़मात्मक विश्वके अन्तरात्मा हैं ।’

‘कालात्मा पुरुष भी सूर्य ही है ।’ ऋग्वेदसंहिताका वचन है—

‘सत् मुञ्जन्ति रथमेकचक्र-
मेको अश्वो वहनि सतनामा ।
चक्रमजरमन्त्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्युः ॥’
(शू० स० १ । १६४ । २)

अर्थात् इम कालात्मा पुरुषका रथ बहुत ही विलक्षण है । रंहणस्वभाव (गमनशील) होनेके कारण उसे रथ कहा जाता है । वह अनवरत (सतत) गमन किया करता है । उस रथमें संवत्सरात्मा एक ही चक्र है । अहोरात्रने निर्वाहकों लिये (अहोरात्रके स्वरूप-निर्माणके लिये) उसमें सात अश्व जोड़े जाते हैं—‘रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सम तुरगाः ।’ ये सात अश्व ही सात दिन हैं । वर्तुतः अश्व एक ही है, किन्तु सात नाम होनेके कारण सात अश्व कहे जाते हैं । उस एक चक्रमें ही (भूत, भविष्य और वर्तमान) ये तीन नामियाँ हैं । वह रथ अजर-अगर (जरा-मरणसे रहित) अर्थात् अविमाशी है एवं अनर्य अर्थात् अव्यन्त दृढ़ है अर्थात् कभी शिथिल नहीं होता । इसी कालात्मा पुरुषके सहारे पिण्डज, अण्डज, स्थावर, ऊष्मज सभी प्रकारके प्राणी टिकें हुए हैं । ऐसे रथपर स्थित इन भुजनभास्करको देववर (समझकर) मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता—मुक्त हो जाता है—

‘रथस्यं भास्करं द्वष्टा पुनर्जन्म त विद्यते ।’

शतपथब्राह्मणमें भगवान् सूर्यको त्रयीमय कहा गया है—‘यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्षयं ता ऋच्चः स प्रृचां लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स सामनां लोकोऽथ य एय पतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूऽपि स यजुषां लोकः ॥’ (१० । ५ । २ । १)

इरा श्रुतिमें भगवान् सूर्यके दिव्य गृहस्थानीय मण्डलकी खुति की गयी है । मण्डलकी खुतिसे मण्डलभिमानी पुरुष और उसकी खुतिसे अन्तर्यामीकी खुति खमावतः सिद्ध है । यह जो सर्वप्राणिनेत्रगोचर आकाशका भूपण वर्तुलाकार मण्डल है, वह महदुक्ष (वृहती सहस्र नामसे प्रसिद्ध होनेमें शास्त्रविशेष) है तथा वही ऋक् है ।

जो इस मण्डलमें अर्चि (सर्वजगत्प्रकाशक तेज) है, वह 'भावात्र' नामक क्रतु (यज्ञकर्ता) विशेष है और बृहत् रथन्तर आदि साम भी वही है तथा जो मण्डलाभिमानी पुरुष है, वह अग्नि (अर्थात् अग्न्युपलक्षित सर्वदेव) है तथा यजुप् भी वही पुरुष है । अपने तेजसे तीनों लोकोंको पूरित करनेके कारण वह पुरुष है— 'आ प्रा यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्' अथवा सभी प्राणियोंके शरीररूप पुरुषे शयन करनेके कारण वह पुरुष है— 'सर्वासु पूर्वु द्वेषे' (श० ब्रा० १४ । २ । ५ । १८) अथवा सभी पापोंको भस्म कर देनेके कारण वह पुरुष है— 'सर्वान् पापमन औपत्तसात्पुरुषः' (श० ब्रा० १४ । १ । २ । २) । छान्दोग्य उपनिषदमें इस पुरुषका वर्णन किया गया है—

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यशमश्चुर्हिरण्यकेश आ प्रणखात्सर्वं एव सुर्वर्णः । स एव सर्वेभ्यः पापमभ्य उदित उदेति ह व सर्वेभ्यः पापाभ्यो य एवं वेद (छा० उ० १ । ६ । ६-७) । श्रुति भी आदित्यरूपमें इसी अन्तर्यामी पुरुषका वर्णन कर रही है 'अन्तस्तद्वग्मीपदेशात्' (ब्र० स० १ । १ । २०)— इस ब्रह्मसूत्रमें भी यह निर्णय किया गया है कि इस छान्दोग्यश्रुतिमें प्रतिपादित पुरुष अन्तर्यामी है । इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदेवमय हैं— 'तस्मात्परमेश्वरं एवेहोपदिश्यते इत्यादि' (गाकरभाष्य) ।

श्रीमद्भाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डमें आदित्य-हृदयस्तोत्रके द्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी स्तुति की गयी है । उसमें कहा गया है कि ये ही भगवान् सूर्य व्रहा, विष्णु, शिव, स्कन्द और प्रजापति हैं । महेन्द्र, वरुण, काल, यम, सोम आदि भी यही हैं—

एष व्रहा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
महेन्द्रो धत्तदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः ॥

आपत्तिके समयमें, भयङ्कर विप्रम परिस्थितिमें, जनशून्य अरण्यमें, अत्यन्त भयदायी घोर समयमें अथवा महासमुद्रमें इनका स्वरण, कीर्तन और स्तुति करनेसे प्राणी सभी विपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है—

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिद्वावसीदति राधव ॥

तीनों सध्याओंमें गायत्री-मन्त्रद्वारा इन्हींकी उपासना की जाती है । इनकी अर्चनासे सबकी मनःकामनाएँ पूर्ण होती है । भगवान् श्रीरामने युद्धक्षेत्रमें इनकी आराधना करके रावणपर विजय प्राप्त की थी । इनका स्तोत्र 'आदित्यहृदय' वरदानी है, अमोघ है । उसके द्वारा इनकी स्तुति करनेसे सभी आपदाओंसे छुटकारा पाकर प्राणी अन्तमें परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ।

वाह्य प्राणके उपजीव्य आदित्य

आदित्यो ह चै वायाः प्राण उदयत्येष हेनं चाकुंगं प्राणमनुग्रहानः ।
पृथिव्यां या देवता रौपा पुरुपस्यापानमवष्ट्रयान्तरा यदाकाशः स समानो वायुव्यानः ॥
तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपवान्ततेजाः पुनर्गच्छिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ।

(—प्रश्नोपनिषद् ३ । ८-९)

निश्चय ही आदित्य वाह्य प्राण है । यह इस चाकुप (नेत्रेन्द्रियस्थित) प्राणपर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है । पृथिवीमें जो देवता हैं, वे पुरुषके अपानवायुको आकर्षण किये हुए हैं । इन दोनोंके मध्यमें जो आकाश है, वह समान है और वायु ही व्यान है । लोकप्रसिद्ध [आदित्यस्तु] तेज ही उदान है । अतः जिसका तेज (शारीरिक उष्मा) शान्त हो जाता है, वह मनमें लीन हुई इन्द्रियोंके सहित पुनर्जन्मको [अथवा पुनर्जन्मके हेतुभूत मृत्युको] प्राप्त हो जाता है ।

त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्योपासना

(—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

समयकी गति सूर्यके द्वारा नियमित होती है। सूर्य भगवान् जब उदय होते हैं, तब दिनका प्रारम्भ तथा रात्रिका शेष होता है, इसको प्रातःकाल कहते हैं। जब सूर्य आकाशके शिखरपर आखड़ होते हैं, उस समयको दिनका मध्य अथवा मध्याह्न कहते हैं और जब वे अस्ताचलको चले जाते हैं, तब दिनका शेष एवं रात्रिका प्रारम्भ होता है। इसे सायंकाल कहते हैं। ये तीन काल उपासनाके मुख्य काल माने गये हैं। यो तो जीवनका प्रत्येक क्षण उपासनामय होना चाहिये, परंतु इन तीन कालोंमें तो भगवान्की उपासना नितान्त आवश्यक बतलायी गयी है। इन तीनों समयोंकी उपासनाके नाम ही क्रमशः प्रातःसन्ध्या, मध्याहसन्ध्या और सायंसन्ध्या है। प्रत्येक वस्तुकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—उत्पत्ति, पूर्ण विकास और विनाश। ऐसे ही जीवनकी भी तीन ही दशाएँ होती हैं—जन्म, पूर्ण युवावस्था और मृत्यु। हमें इन अवस्थाओंका स्मरण दिलानेके लिये तथा इस प्रकार हमारे अंदर संसारके प्रति वैराग्यकी भावना जागृत करनेके लिये ही मानो सूर्य भगवान् प्रतिदिन उदय होने, उन्नतिके शिखरपर आखड़ होने और फिर अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान्की इस त्रिविध लीलाके साथ ही हमारे शास्त्रोंने तीन कालकी उपासना जोड़ दी है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसीलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। यही नहीं, सर्गके आदिमे भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमे प्रकट होते हैं, इसीलिये पञ्चदेवोंमें सूर्यकी भी गणना है। यो भी वे भगवान्की ग्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ, हमारे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकर, विश्वके पोषक एवं प्राणदाता तथा

समस्त चराचर प्राणियोंके आधार हैं। वे प्रत्यक्ष दीग्ननेत्राले सारे देवोंमें श्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्यामें सूर्यरूपसे ही भगवान्की उपासना की जाती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु एवं नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है और मरनेके समय वे हमें अपने लोकमेंसे होकर भगवान्के परमधाममें ले जाते हैं; क्योंकि भगवान्के परमधामका रास्ता सूर्य-लोकमेंसे होकर ही गया है। शास्त्रोंमें लिखा है कि योगी लोग तथा कर्तव्यरूपसे युद्धमें शत्रुके समुख लडते हुए प्राण देनेवाले क्षत्रिय वीर सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान्के धाममें चले जाते हैं। हमारी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य यदि हमें भी उस लक्ष्यतक पहुँचा दे तो इसमें उनके लिये कौन बड़ी बात है। भगवान् अपने भक्तोंपर सदा ही अनुग्रह करते आये हैं। हम यदि जीवनभर नियमपूर्वक श्रद्धा एवं भक्तिके साथ निष्क्रामावसे उनकी आराधना करेंगे, तो क्या वे मरते समय हमारी इतनी भी सहायता नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। भक्तोंकी रक्षा करना तो भगवान्का विरद्ध ही छहरा। अतः जो लोग आदरपूर्वक तथा नियमसे बिना नागा (प्रतिदिन) तीनों समय अथवा कम-से-कम दो समय (प्रातःकाल एवं सायंकाल) ही भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं, उन्हे विश्वास करना चाहिये कि उनका कल्याण निश्चित है और वे मरते समय भगवान् सूर्यकी कृपासे अवश्य परमगतिको प्राप्त होंगे।

इस प्रकार युक्तिसे भी भगवान् सूर्यकी उपासना हमारे लिये अत्यन्त कल्याणकारक, थोड़े परिश्रमके बदलेमें महान् फल देनेवाली, अतएव अवश्यकर्तव्य है। अतः द्विजातिमात्रको चाहिये कि वे लोग नियमपूर्वक त्रिकालसन्ध्याके रूपमें भगवान् सूर्यकी उपासना-

किया करें और इस प्रकार लौकिक, एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारके लाभ उठावें।



‘उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिघ्ययन् कुर्वन्
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।’

अर्थात् ‘उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी उपासना करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है ।’ (तै० आ० प्र० २ अ० २)

जब कोई हमारे पूज्य महापुरुष हमारे नगरमें आते हैं और उसकी सूचना हमे पहलेसे मिली हुई रहती है तो हम उनका खागत करनेके लिये अर्ध्य, चन्दन, फूल, माला आदि पूजाकी सामग्री लेकर पहलेसे ही स्टेशनपर पहुँच जाते हैं, उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते हैं और आते ही उनकी बड़ी आवभगत एवं प्रेमके साथ खागत करते हैं। हमारे इस व्यवहारसे उन आगन्तुक महापुरुषको बड़ी प्रसन्नता होती है और यदि हम निष्कामभावसे अपना कर्तव्य समझकर उनका खागत करते हैं तो वे हमारे इस प्रेमके आभारी बन जाते हैं और चाहते हैं कि किस प्रकार बदलेमें वे भी हमारी कोई सेवा करें। हम यह भी देखते हैं कि कुछ लोग अपने पूज्य पुरुषके आगमनकी सूचना होनेपर भी उनके खागतके लिये समयपर स्टेशन नहीं पहुँच पाते और जब वे गाड़ीसे उत्तरकर प्लेटफार्मपर पहुँच जाते हैं, तब दौड़े हुए आते हैं और देरके लिये क्षमा-याचना करते हुए उनकी पूजा करते हैं। और, कुछ इतने

आलसी होते हैं कि जब हमारे पूज्य पुरुष अपने डेरेपर पहुँच जाते हैं और अपने कार्यमें लग जाते हैं, तब वे धीरे-धीरे फुरसतसे अपना अन्य सब काम निपटाकर आते हैं और उन आगन्तुक महानुभावकी पूजा करते हैं। वे महानुभाव तो तीनों ही प्रकारके खागत करनेवालोंकी पूजासे प्रसन्न होते हैं और उनका उपकार मानते हैं, पूजा न करनेवालोंकी अपेक्षा देर-सवेर करनेवाले भी अच्छे हैं, किंतु दर्जेका अन्तर तो रहता ही है। जो जितनी तत्परता, लगान, प्रेम एवं आदर-बुद्धिसे पूजा करते हैं, उनकी पूजा उतनी ही महत्वकी और मूल्यवान् होती है और पूजा ग्रहण करनेवालेको उससे उतनी ही प्रसन्नता होती है।

सन्ध्याके सम्बन्धमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायण प्रतिदिन सवेरे हमारे इस भूमण्डलपर महापुरुषकी भाँति पधारते हैं, उनसे बढ़कर हमारा पूज्य पात्र और कौन होगा। अतः हमें चाहिये कि हम ब्राह्मसुहृत्तमें ठठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर उनका खागत करनेके लिये उनके आगमनसे पूर्व ही तैयार हो जायें और आते ही वडे प्रेमसे चन्दन, पुष्प आदिसे युक्त शुद्ध ताजे जलसे उन्हे अर्ध्य प्रदान करे, उनकी स्तुति करे, जप करे। भगवान् सूर्यको तीन बार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्ध्य प्रदान करना, गायत्रीमन्त्रका (जिसमें उन्हींकी परमात्मभावसे स्तुति की गयी है) जप करना और खड़े होकर उनका उपस्थान करना, स्तुति करना—ये ही सन्ध्योपासनके मुख्य अङ्ग हैं, शेष कर्म इन्हींके अङ्गभूत एवं सहायक है। जो लोग सूर्योदयके समय सन्ध्या करने वैठते हैं, वे एक प्रकारसे अतिथिके स्टेशनपर पहुँच जाने और गाड़ीसे उत्तर जानेपर उनकी पूजा करने दौड़ते हैं और जो लोग सूर्योदय हो जानेके बाद फुरसतसे अन्य आवश्यक कायेसि निवृत्त होकर सन्ध्या करने वैठते हैं, वे मानो अतिथिके अपने डेरेपर पहुँच जानेपर धीरे-धीरे उनका खागत करने पहुँचते हैं।

जो लोग सन्ध्योपासन करते ही नहीं, उनकी अपेक्षा तो वे भी अच्छे हैं जो देर-सवेर, कुछ भी खानेके पूर्व

सन्ध्या कर लेते हैं। उनके द्वारा कर्मका अनुष्ठान तो हो ही जाता है और इस प्रकार शास्त्रकी आज्ञाका निर्वाह हो जाता है। वे कर्मलोपके प्रायथित्तके भागी नहीं होते। उनकी अपेक्षा वे अच्छे हैं, जो प्रातःकालमें तारोंके लुप्त हो जानेपर सन्ध्या प्रारम्भ करते हैं। किंतु उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जो उपाकालमें ही तारे रहते सन्ध्या करने वैठ जाते हैं, सूर्योदय होनेतक खड़े होकर गायत्री-मन्त्रका जप करते हैं। इस प्रकार अपने पूज्य आगन्तुक महापुरुषकी प्रतीक्षामें उन्हींके चिन्तनमें उतना समय व्यतीत करते हैं और उनका पदार्पण, उनका दर्शन होते ही जप बंद कर उनकी स्तुति, उनका उपस्थान करते हैं।* इसी बातको छक्यमें रखकर सन्ध्याके उत्तम, मध्यम और अधम—तीन भेद किये गये हैं।

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या चिधा स्मृता ॥
(—देवीभागवत ११ । १६ । ४)

प्रातःसन्ध्याके लिये जो बात कही गयी है, साय-सन्ध्याके लिये उससे विपरीत बात समझनी चाहिये। अर्थात् सायंसन्ध्या उत्तम वह कहलाती है, जो सूर्यके रहते की जायतथा मध्यम वह है, जो सूर्यस्त होनेपर की जाय और अधम वह है, जो तारोंके दिखायी देनेपर की जाय—

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या चिधा स्मृता ॥
(—देवीभागवत ११ । १६ । ५)

कारण वह है कि अपने पूज्य पुरुषके विदा होते समय पहलेहीसे सब काम ढोड़कर जो उनके साय-साथ स्टेशन पहुँचता है, उन्हे आरामसे गाड़ीपर विठानेकी व्यवस्था कर देता है और गाड़ीके छूटनेपर हाथ जोड़े हुए प्लेटफार्मपर खड़ा-खड़ा प्रेमसे उनकी और ताकता रहता है एवं गाड़ीके आँखोंसे ओङ्कल हो

जानेपर ही स्टेशनसे लौटता है, वही मनुष्य उनका सबसे अविक सम्मान करता है और प्रेमपात्र बनता है। जो मनुष्य ठीक गाड़ीके छूटनेके समय हाँफता हुआ स्टेशनपर पहुँचता है और चलते-चलते दूरसे अतिथिके दर्शन कर पाता है, वह निश्चय ही अतिथिकी दृष्टिमें उतना प्रेमी नहीं ठहरता, यद्यपि उसके प्रेमसे भी महानुभाव अतिथि प्रसन्न ही होते हैं और उसके ऊपर प्रेमभरी दृष्टि रखते हैं। उससे भी नीचे दर्जेका प्रेमी वह समझा जाता है, जो अतिथिके चले जानेपर पीछेमे स्टेशन पहुँचता है, फिर पत्रद्वारा अपने दर्दमें पहुँचनेकी मूचना देता है और क्षमायाचना करता है। महानुभाव अतिथि उसके भी आतिथ्यको मान लेते हैं और उसपर प्रसन्न ही होते हैं।

यहाँ यह नहीं मानना चाहिये कि भगवान् भी साधारण मनुष्योंकी भाँति राग-द्रेपसे युक्त है, वे पूजा करनेवालेपर प्रसन्न होते हैं और न करनेवालोंपर नाराज होते हैं या उनका अहित करते हैं। भगवान्की सामान्य कृपा सबपर समानरूपसे रहती है। मूर्धनारायण अपनी उपासना न करनेवालोंको भी उतना ही ताप एवं प्रकाश देते हैं, जितना वे उपासना करनेवालोंको देते हैं। उसमें न्यूनाविकाता नहीं होती। हाँ, जो लोग उनसे विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, जन्म-मरणके चक्कसे छूटना चाहते हैं, उनके लिये तो उनकी उपासना-की आवश्यकता है ही और उसमें आठर एवं प्रेमकी दृष्टिसे तारतम्य भी होता ही है।

किसी कार्यमें प्रेम और आदरवुद्धि होनेसे वह अपने-आप ठीक समयपर और नियमपूर्वक होने लगता है। जो लोग इस प्रकार इन तीनों बातोंका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान् मूर्धनारायणकी जीवनभर उपासना करते हैं, उनकी मुक्ति निश्चितरूपसे होती है। †

* पूर्वी सन्ध्यां सनदत्रामुपासीत यथाविधि । गायत्रीमध्यसेतावद्

† (तत्त्व-चिन्तामणि भाग पाँचसे)

यावदादित्यदर्गनम् ॥

(—क्षणीतस्मृति ४ । १८)

ज्योतिर्लिङ्ग सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगदुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रगचार्यजी महागज)

पुराणमें ज्योतिर्लिङ्गका विशिष्ट लिङ्गमें परिणन है। 'ज्योतिर्लिङ्ग' यह समस्त पद है। उसका विग्रह 'ज्योतिश्च तलिङ्गं च'—इस प्रकार है। अर्थ है ज्योतिरूप लिङ्ग। इनमें ज्योतिका स्वरूप प्रसिद्ध है। लिङ्गका स्वरूप 'लीनम् अर्थं गमयति इति लिङ्गम्'—इस व्युत्पत्तिसे हेतु, कार्य और गमन आदि है। दर्शनमें असूर्त पदार्थका लिङ्ग सूर्त और 'कारण' को 'लिङ्ग' माना गया है। परतु 'लयं गच्छति यत्र च'—इस व्युत्पत्तिसे विज्ञानकी भाषामें सृष्टिका उपादान कारण भी लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। वेदमें क्षर तत्त्वसे मिश्रित अक्षर तत्त्व विश्वका उपादान कारण माना गया है। इस तत्त्वसे ही संचरकालमें सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है एव प्रतिसंचरकालमें उसीमें ही लीन हो जाता है, अतः यह 'लयं गच्छति यत्र च' के आधारसे लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। प्रकृति (क्षर तत्त्व) से आलिङ्गित पुरुष—(अक्षर तत्त्व-) का ही स्थूल रूप शिवलिङ्ग है।

नाना लिङ्ग—यह विश्वका उपादान क्षर मिश्रित अक्षर तत्त्व अनन्त प्रकारका है। इसलिये सृष्टिधाराएँ भी अनन्त प्रकारकी हैं। नाना प्रकारकी सृष्टिधाराओंके प्रवर्तक नाना प्रकारके लिङ्गों (अक्षर-तत्त्वों) का प्रतिपादन करनेवाला पुराण लिङ्गपुराण है। सृष्टिके इन अनन्त लिङ्गमें एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है और वह है भगवान् सूर्य। ज्योतिर्लिङ्गरूपी सूर्य भिन्न-भिन्न १२ प्रकारकी ज्योतियोंमें समाविष्ट हैं। अतः ज्योतिर्लिङ्गोंकी सख्या भी बाहर ही है। यह ज्योतिर्वन सूर्यमण्डल अपने अन्तर्यामी अक्षरका अनुमापक होनेसे भी लिङ्ग है और ज्योतिरूप होनेमें 'ज्योतिर्लिङ्ग' है।

किसका लिङ्ग ?—सृष्टिके उत्पादक नाना लिङ्गमें सूर्यरूप एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है। यह कहा गया है, परंतु इस सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्गके विषयमें वेदवेच्चाओंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कातिग्रंथ वेदज्ञोंका मत है कि यह सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्ग रुद्रका लिङ्ग है, शिवलिङ्ग नहीं, कारण कि सौर उत्ताप रौद्र है, सौम्य नहीं। सूर्यमें रुद्र प्राणोंके परस्पर संघर्षसे उत्ताप उत्पन्न होता है; शिवता (सौम्यता) के साथ इसका विरोध है। अतः उत्तापत्तम-वाला सूर्यमण्डल रुद्रलिङ्ग है; शिवलिङ्ग नहीं है।

अन्य वेदज्ञ विद्वानोंका मत है कि यजुर्वेदमें एक ही परमात्माके दो रूप माने गये हैं—घोर और शिव; जैसा कि श्रुति कहती है—'रुद्रोवा पप उद्गिनश्च तस्यैते द्वे तन्यौ घोरान्या शिवान्या च।' इस श्रुतिके अनुसार परमात्माके दो रूप हैं—घोर और शिव। उसका घोररूप अग्नि है और शिवरूप सोम है। उसके घोर-भावके दर्शन अग्नियोंमें और शिवभावके दर्शन सोमग्ने होते हैं। उष्णकालकी उष्णतम वायुमें रौद्रभाव प्रत्यक्ष है। वर्षकालकी आर्द्धतामें शिवभाव प्रत्यक्ष है। जैसे एक ही वायुके अवस्थामेंदसे दो रूप हैं, वैसे एक ही परमात्माके रुद्र और शिव—ये दो रूप हैं; अतः जो रुद्रलिङ्ग है, वह शिवलिङ्ग भी है। जो शिवलिङ्ग है, वह रुद्रलिङ्ग भी है।

सूर्यमें पचपन रुद्र—नेदवेच्चाओंका मत है कि ज्योतिर्लिङ्गरूप सूर्य पचपन रुद्रप्राणोंकी समाप्ति है। इसमें विश्वके सब पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। इस सम्बन्धमें 'ब्रह्मसमत्वम्'में भी वेदज्ञ विद्वान् गुरुचरण श्रीमधुसूदन ज्ञा महोदयका आवेदन है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि—ये तीन ज्योतियाँ उस मदेश्वरके तीन नेत्र हैं। यह सूर्यमगवान्का रुद्र-अवतार है। धावापुर्यिवीमें

रुद्रप्राण व्याप्ति है। वह एक ईश्वर है। उस त्रिनेत्र रुद्रदेवके यह रोदसी (द्यावा पृथ्वी) अनुमापक होनेसे लिङ्ग है। सौर उत्ताप रौद्र है। वह रुद्र प्राणोंके परस्पर सघर्षसे उत्पन्न होता है। सूर्य-मण्डलके चारों तरफ रुद्रवायु रहती है। यह रुद्र पृथ्वी-अन्तरिक्ष और द्युलोकमें ग्यारह कलाओंसे युक्त होकर फिरता है।

अधियज्ञमें ११ रुद्र—अधियज्ञमें रुद्रकी ११ कलाओंके नाम इस प्रकार हैं। ये नाम तीन प्रकारके हैं; अर्थात् अधियज्ञमें एक-एक रुद्रकलाके तीन-तीन नाम हैं—

(१) सप्ताट्, कृशानु, आहवनीय, (२) विभु, प्रवाहण, आग्निर्वीय, (३) अवस्यु, दुवखान्, अच्छावाकीय, (४) अधारि, बम्भारि, नेष्टीय, (५) उक्षिक्, कवि, पोत्रीय, (६) वुध, वैश्ववेदस, ब्राह्मणाज्ञास्य, (७) वहि, हव्यवाट्, होत्रीय, (८) खात्र, प्रचेता, प्रशास्त्रीय, (९) शुन्ध्यु, शुन्ध्यु, मार्जालीप, (१०) अहिर्द्वृच्य, अहिर्द्वृच्य, प्रत्यगार्हपत्य, (११) अज एकपात्, अज एकपात्, नूतनगार्हपत्य—ये ग्यारह रुद्र अधियज्ञमें हैं, वे अग्नियों ही हैं, परतु अन्तरिक्षमें निवास करनेसे इनको रुद्र कहते हैं। इनको 'विणयग्नि' भी कहते हैं। विश्वमें इनके भिन्न-भिन्न कार्य है, जिनका वर्णन वेदके ब्राह्मण ग्रन्थोंमें आया है।

अधिभूतमें ग्यारह रुद्र—अधिभूतमें रुद्रकी ११ कलाएँ इस प्रकार हैं—१—पृथ्वी, २—जल, ३—तेज, ४—वायु, ५—आकाश, ६—सूर्य, ७—चन्द्र, ८—आत्मा, ९—प्रवान, १०—पावक, ११—शुचि। इनमें पहलेके आठ शिव (शान्त) हैं। अन्तिमके तीन रुद्र (धोर) हैं।

अध्यात्ममें ११ रुद्र—जीवात्माके शरीरमें रहनेवाले रुद्र अध्यात्म रुद्र है। अध्यात्म शब्दमें विद्यमान 'आत्मा' शब्द शरीरका वाचक है। इसलिये

शरीरमें रहनेवाली सब शक्तियाँ आध्यात्म शक्तियाँ कहलाती हैं। इस रुद्रके दो प्रकार हैं।

प्रथम प्रकार—२ श्रोत्र प्राण, २ चक्षु प्राण, २ नासा प्राण, १ वाक् प्राण, १ नाभिप्राण, १ उपस्थ प्राण, १ वायु प्राण, १ आत्मप्राण (मध्य प्राण) मिलाकर ये अध्यात्ममें ११ रुद्र रहते हैं।

अध्यात्मके रुद्रोंका दूसरा प्रकार ऐसा है—

(१) वाक् प्राण, (२) पाणि-प्राण, (३) पाद प्राण, (४) उपस्थ प्राण, (५) पायु प्राण, (६) श्रोत्र प्राण, (७) त्वक् प्राण, (८) चक्षुःप्राण, (९) जिह्वा प्राण, (१०) घ्राण प्राण, (११) मनःप्राण।

अधिदैवतमें ११ रुद्र—सूर्यमण्डलमें रहनेवाले भिन्न-भिन्न ग्यारह प्रकारके वायु अधिदैवतमें ११ रुद्र माने गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विरुपाक्ष, २—भैरव, ३—नकुलीश, ४—सेनानी, ५—त्र्यम्बक, ६—सावित्रि, ७—जयन्त, ८—पिनाकी, ९—अपराजित, १०—अहिर्द्वृच्य और ११—अज एकपात्। इनमें नौ रुद्रोंके नाम पुराणोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे उपलब्ध हैं। इनके नामोंके अनेक भेद हैं।

आन्तरिक्षके ११ रुद्र—अन्तरिक्षमें रहनेवाली ११ कलाओंके नाम इस प्रकार हैं—१—भ्रजमान, २—व्यवदात, ३—वासुकि, ४—वैद्युत, ५—रजत, ६—पुरुष, ७—श्याम, ८—कपिल, ९—अतिलोहित, १०—ऊर्च्च और ११—अवपत्तन।

इनके कार्य—वेदके ब्राह्मणग्रन्थों एवं पुराणोंमें इन सब रुद्रोंके भिन्न कार्योंका वर्णन है। जिज्ञासुओंको वहाँ ही देखना चाहिये। इनमें पौच्छाँ रुद्र 'रजत' है। वेदका आवेदन है कि इसके औंसुओंसे 'रजत' धातु उत्पन्न होता है। रजत नामके रुद्रके औंसुओंसे उत्पन्न होनेके कारण धातुका नाम भी 'रजत' रखा गया है, कारणसे कार्य सदा अभिन्न रहता है।

एकलिंग—

पते च पञ्चाशत् रुद्रा यत्र समाश्रिताः ।
तदेकं लिङ्गमाख्यातं तत्रेदं सर्वमास्थितम् ॥
'प्रतिमुख ग्यारह-ग्यारह कलाओसे युक्त इस पञ्चाशत्
रुद्रकी सब कलाओका जहाँ एक स्थलमे सनिपात होता
है, वह एकलिङ्ग शब्दसे व्यवहृत है और वह है भगवान् सूर्य ।
भगवान् सूर्यमे ५५ रुद्रसमाश्रित हैं, अतः वे 'एकलिङ्ग'
हैं । इस एकलिङ्गमें विश्वके सब पदार्थ समाये हुए हैं
अर्थात् इसमे आरूढ हैं ।' राजस्थानमे विराजमान
एकलिङ्गजी इस एकलिङ्गजीकी ही प्रतिमा है । यह
एकलिङ्ग तेजोमय है । अति उम्र है, अति भीषण
(भैरव) है । यह सबको तत्क्षण भस्त कर दे, यदि
इसके चारों ओर जलका परिभ्रमण न हो । चारों ओरसे
जलसे अभिप्ति होकर यह रुद्र ही साम्ब (सजल)
बनकर शान्त होनेसे शिवरूपमे परिणत हो जाता है ।
इसके मस्तकपर प्राणरूप सत्य ब्रह्म हैं और नीचे अनन्त-
रूप विष्णु हैं । इसलिये यह एक ही मूर्ति ब्रह्म, विष्णु
और महेश्वररूप तीन देव है । तीन देवोसे युक्त इस एक
मूर्तिको एक ब्रह्माण्ड कहते हैं । यही सम्पूर्ण विश्व है ।

वारह ज्योतिर्लिङ्ग—यह सूर्यज्योति वारह प्रकार-

की है । इसलिये ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह हैं । यह
सूर्यमण्डल जिस अमूर्त अक्षर (अन्तर्यामी) का लिङ्ग
(गमक) है, वह अमृत अक्षर इसमे विराजमान है ।
उपनिषदोमे अक्षरको अन्तर्यामी भी कहा है । वह
निश्चित अपने लिङ्ग सूर्यमण्डलमे प्रतिष्ठित है, इसलिये
शास्त्रोमे सूर्यमण्डलमे उसकी उपासना विहित है—

‘ध्येयः सदा सवित्रमण्डलमध्यवर्ती

नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।’

मूर्तिमात्र लिङ्ग—लिङ्ग शब्दसे केवल शिवलिङ्ग
ही अभिप्रेत है । यह एक भ्रम है । देवताओकी सब
मूर्तियोको भगवान् कृष्णने लिङ्ग कहा है । महाभागवत
भगवान् शंकराचार्यजीने भी विष्णु-मूर्तिके लिये ‘परब्रह्म-
लिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्’—ऐसा कहा है । श्रीरामानुज-
सम्प्रदायमे भगवान्की मूर्तिको भी एक अवतार माना
है । इसका नाम अर्चावतार है । इन लिङ्गों (मूर्तियो)-
के विषयमे गुरुचरण श्रीमधुसूदन ज्ञा महाभागका यह
यथार्थ विज्ञान है—

यस्य लिङ्गमियं मूर्तिरालिङ्गं तदिह स्थितम् ।

तदसरं तदमृतं तलिङ्गलिङ्गितं ध्रुवम् ॥

ज्योतिर्लिङ्गोंके द्वादशतीर्थ ✓

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् । उज्जितिन्यां
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् । वाराणस्यां च विश्वेशं व्यम्बकं गौतमीतटे ॥
दैव्यनाथं चिताभूमौ नगेशं दास्तकावने । सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सप्तजन्मकृतं पापं सरणेन विनश्यति ॥
एतेषां दर्शनादेव पातकं नैव तिष्ठति । कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टे महेश्वरः ॥

(१) सौराष्ट्र-प्रदेशमे श्रीसोमनाथ, (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जितिनीमें श्रीमहाकाल, (४)
(नर्मदा-तटपर) श्रीओकारेश्वर अथवा अमरेश्वर, (५) हिमाच्छादित केदारस्थण्डमें श्रीकेदारनाथ, (६) डाकिनी नामक
स्थानमे श्रीभीमशङ्कर, (७) काशीमे श्रीविश्वनाथ, (८) गौतमी (गोदावरी) तटपर श्रीव्यम्बकेश्वर, (९) चिताभूमिमें
श्रीदैव्यनाथ, (१०) दास्तकावनमे श्रीनागेश्वर, (११), सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर और (१२) घुश्मेश्वर—ये द्वादश
ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जिनका बडा माहात्म्य है । जो कोई नित्य प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, उसके सात
जन्मोत्तकके पाप क्षीण हो जाते हैं । इनके दर्शनमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है । जिसपर भगवान् शंकर प्रसन्न होते
हैं, उसके पाप क्षय हुए बिना नहीं रहते । [शङ्कर और सूर्य दोनोका अभेद प्रतिपादन भी शास्त्रोमे है । परम्परामे प्राप्त
ज्योतिर्लिङ्गोंके ये तीर्थ हैं । (शिवपु० ज्ञा० स० अ० ३८)]

आदित्यमण्डलके उपास्य श्रीसूर्यनारायण

(—अनन्तश्रीविभूषित जगत्कुरु गमानुजाचार्य यतीन्द्र खामी श्रीगगनारायणाचार्यजी महाराज)

प्रमुख वेदिक उपासनाओंमें सूर्योपासना अन्यतम है। मानव-जीवनके नित्यन्नैमित्तिक काम्य कर्मोंकी आधारशिला श्रीसूर्य ही हैं। पुराणादि ग्रन्थोंमें जो चार प्रवासके कालों (मानुपकाल, पितृकाल, देवकाल और ब्राह्मकाल) की गणना की गयी है, उसके भी आधार भूर्य ही हैं। दिन और रातका विभाग भी सूर्यपर ही आधारित है। प्राणी जितने कालतक सूर्यको देखता है, उतने कालको दिन तथा जितने कालतक वह सूर्यको नहीं ढेख पाता, उतने कालको रात मानता है। इसी तरह पितृदेव एवं ब्रह्मके अहोरात्रकी व्यवस्था भी सूर्यपर ही आश्रित है।

भारतीय चिन्तन-पद्धतिके अनुसार सूर्योपासना किये जिन कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्मका अधिकारी नहीं बन सकता। सायुज्य मुक्तिके गार्गमें सूर्य-मण्डलका भेदन करनेवाला योगी ही उसका वास्तविक अधिकारी माना गया है। वर्णाश्रम-धर्मोंके अनुसार साध्योपासना तथा गायत्रीऋता अनुष्टुप् ऊर्णवेता उपासक तीनों कालोंमें गायत्रीके द्वारा तेजोग्राय सूर्यरूप परमान्मासे सन्मार्ग-दर्शन एवं सद्बुद्धिकी प्राप्तिके लिये अप्यर्थना किया करता है।

वेदोंने सूर्यके मात्रात्म्यको बतलाते हुए उसे जड़-जड़म-जगत्की आत्मा बतलाया है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्तुपश्च’। भगवान् श्रीकृष्णने दूर्य और चन्द्रमाके भीतर विद्यमान तेजको अपना ही तेज बतलाया है—‘यच्चन्द्रमसि यच्चाद्यौ तत्त्वेजो विद्धि मामकम्।’ शास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाको भगवान् का नेत्र भी बतलाया गया है।

विग्रह परमात्माके नेत्र—सूर्यसे ही मानव-नेत्रोंको

* सूर्यश्रासी नारायणः इति सूर्यनारायणः (रूर्ध्व ही नारायण है)।

ज्योतिकी प्राप्ति होती है। उपनिषदोंमें मायाके बन्धनोंसे छुटकारा पाने तथा सर्वात्मना ब्रह्मप्राप्तिके लिये मधुविद्या, पुरुषविद्या, शाष्ठिल्यविद्या, सर्वग्रब्रह्मविद्या, उपवोशल्यविद्या, प्राणविद्या, पञ्चाम्रविद्या, पाण्डिविद्या, वैश्वानरविद्या आदि ३२ विद्याओं (उपासनाओं)का विस्तारके साथ उल्लेख है। उनमें उद्दीय-विद्याके अन्तर्गत अन्तरादित्यविद्याका वर्णन किया गया है। उसके उपासक निदिव्यासनके द्वारा शुक्ल तेजवो ऋग्वेद, नीलवर्ण या कान्तिवो सामवेदके रूपमें देखते हैं। अन्तरादित्यविद्याकी दृष्टिमें सूर्य-मण्डलके उपास्यरूपसे जिस पुरुषका वर्णन है, वह पुरुष श्रीसूर्यनारायण ही हैं। त्रिचारकी दृष्टिसे सूर्यनारायण—पदमें कर्मधारय समास* समझना नाहिये। गूर्ध्वस्तरूप भगवान् का अत्यन्त गनोज्ञ वर्णन इस विद्याया प्रतिपाद्य विषय है। सम्पूर्ण जगत्वो अपने प्रकाशद्वारा स्वखाभिप्रेत कर्ममें प्रवर्तक होनेके कारण नारायणका एक नाम सूर्य भी है—इस बातको इरोपनियद्वी—‘पूर्वनेकर्षे यम सूर्य’—इत्यादि श्रुति बतलाती है।

आदित्यमण्डलके आराध्य देवताका वर्णन छान्दो-ग्योपनिषद्के १। ६। ६। ७ में आया है। श्रुतिके अनुसार आदित्यमण्डलमें उसका जो अन्तर्यामी मनोज्ञ प्रकाशस्तरूप पुरुष दिखायी देता है—जिसकी दाढ़ी, केश स्वर्णकी भाँति चमचमाते हैं तथा जो नखसे शिखापर्यन्त स्वर्णिम मनोज्ञ प्रकाशयुक्त है, जिसकी अर्चि धमलदलके सदृश है, उस सूर्यमण्डलान्तर्वर्ती पुरुषका नाम ‘उत्’ है; क्योंकि वह कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त है—‘अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते। हिरण्यदम्भुर्द्विरण्यकेत्ता आप्णखात् सर्वं पव-

स्तुर्णः । तस्य यथा काप्यासं पुण्डरीकमेवमधिर्णा
तस्योदिति लाम । स एष स्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः ।

ब्रह्मन्मूत्रके भाष्यकारोने 'अन्तस्तद्वग्मोपदेशात्'
(१ । १ । २)—सूक्तका विषय-वाचक इस श्रुतिको माना है और 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरएदाण्यः'—(पा० मू० ४ । ? । ८५) इस पाणिर्नायानुशासनके अनुसार एवत्-
प्रत्ययान्त आदित्य पटको आदित्यमण्डलका वाचक
माना है । आदित्यमण्डलके भीतर रहनेवाले पुरुषको
सम्पूर्ण जगत्के प्रेरक भूर्य-खरूप भगवान् नारायण ही
माने गये हैं । प्रकृत श्रुति उन्हीं भगवान् नागयणके
मनोहर रूपका वर्णन प्रस्तुत करती है ।

आदित्य इनको आदित्यमण्डलका वाचक उल्लिखित भी
माना गया है कि 'य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः'—
इस बृहदारण्यक श्रुति नवा 'य एष एतस्मिन्
मण्डलेऽचिदि पुरुषः'—स्तु तैत्तिरीय श्रुतिमें मण्डलवर्ती
पुरुषका वर्णन मिलता है । उपर्युक्त आदित्यमण्डलवर्ती
पुरुषके नेत्रोंके विशेषणस्थलमें आया हुआ 'काप्यास'
एव भाष्यकारोंकी दृष्टिमें विवादाभ्युद है ।

श्रीभाष्यकार 'काप्यास' पटको कमलका वाचक
मानते हैं । श्रुतप्रवाशिकाकारोने काप्यास पटको कमलका
वाचक मानते हुए उसकी दो प्रकारकी व्युत्पत्तियाँ
दिखलायी हैं—

(१) 'कम् जलम् पिवताति कर्पि,, तेन
आस्यते क्षिष्यते विकास्यते इति काप्यासः'—इस
व्युत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि जलेंका अपनी किरणोद्धारा
शोषण करनेके कारण भूर्य व्रति कहलाता है और
किरणोद्धारा विकसित किये जानेके कारण कमल काप्यास
कहलाता है ।

(२) अथवा जलको ही पांकर पुष्ट होनेवाला कमल-
नाल कपिशब्दसे कहा जाता है और उसपर रहनेके कारण
कमलपुष्ट काप्यास अहलाता है—'कम् जलम् पिवतीनि

कर्पि: तत्र आस्ते उपनिषद्गति चत् तत् काप्यासम् ।'
इस प्रकार आदित्यमण्डलवर्तीं पुरुषके नेत्रोंकी उपमा
बाल कमलसे उक्त श्रुतिमें बतलायी गयी है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि आदित्य-मण्डलमें रहनेवाले
जिन पुरुषका उपास्यरूपसे वर्णन है, वे कौन हैं?—
आदित्यशब्दसे कोई जीव कहा जाता है अथवा परमात्मा?
इसके उत्तरमें ब्रह्ममूत्रकार वादरायणका कहना है कि
आदित्यमण्डलमें रहनेवाले पुरुषके जो धर्म बतलाये गये हैं,
वे धर्म परमात्माके ही हो सकते हैं, जीवके नहीं; क्योंकि
श्रुति उसको अकर्मवश्य बतलाती है । छान्दोग्योपनिषद्के
आठवे प्रापाटकमें परमात्माको ही अकर्मवश्य बतलाया गया
है—'एष अत्माऽपहतपाप्मा ।' साथ ही बृहदारण्य-
कोपनिषद्के अन्तर्यामित्वमें आदित्य शब्दाभिधेय जीवसे
मिल ही आदित्यान्तर्यामी पुरुषको बतलाते हुए महर्षि
याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो परमात्मा आदित्यके भीतर
हते हुए आदित्यकी अपेक्षा अन्तरङ्ग हैं, जिन्हे आदित्य
भी नहीं जानते और आदित्य जिनके शरीर हैं, जो
आदित्यके भीतर रहकर उनका नियमन किया करते
हैं, वे ही अमृत परमात्मा तुम्हारे भी अन्तरात्मा हैं ।

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न
चेद् यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यन्तरो यम-
यत्येष त आन्मान्तर्यम्यसृतः ॥

अतएव आदित्यमण्डलके उपास्य देशता भगवान्
नागयण ही हैं—जिस प्रकार देव आदि शरीरोंके वाचक
शब्द देवादि शरीरवाले आत्माके भीतर रहनेवाले अन्तरात्मा
परमात्माके भी वाचक होते हैं । यह अन्तरात्मा विज्ञानके
पश्चात् ज्ञान होता है ।

आदित्यहृदयके १३८वें श्लोकमें बतलाया गया है
कि सवितृ-मण्डलके भीतर रहनेवाले पद्मासनसे बैठे हुए
केयूर, मकर, कुण्डल, किरीटधारी तथा हारपहने, शङ्ख-
चक्रधारी स्वर्णके सदृश देवीप्यमान शरीरवाले भगवान्
नागयणका सदा ध्यान करना चाहिये ।

ध्येयः सदा सवित्रमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरचान् मकरकुण्डलचान् किरीटी

हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

सूर्योपनिपदमें सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें एकमात्र कारण सूर्यको ही वतलाया गया है और उन्हींको सम्पूर्ण जगत्की आत्मा तथा ब्रह्म वतलाया गया है—‘सूर्यादौ चैखलियमानि भूतानि जायन्ते । असावादित्यो

ब्रह्म ।’ सूर्योपनिपदकी श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि तथा उसका पालन सूर्य ही करते हैं। सम्पूर्ण जगत्का लय सूर्यमें ही होता है और जो सूर्य है वही मैं हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत्की अन्तरात्मा सूर्य ही हैं ।

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।

सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

मद्रासकी लाइब्रेरीमें सुरक्षित सूर्यतापिनी-उपनिपदके अनुसार सूर्य त्रिवेवात्मक तथा प्रत्यक्ष देवता हैं ।

वेदोमें सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित वैष्णवपीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीविष्णुलेशजी महाराज)

नित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्यान्नेः ।
आप्रा धावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा
जगत्स्तस्युपश्च ॥ (ऋ० १।११५ । १, शुक्रयजु० १६)

तत्वतः वेदोमें एक एवं अद्वितीय ब्रह्मका ही प्रतिपादन है—‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।’ जब उसको क्रीडा करनेकी इच्छा हुई तो किसके साथ क्रीडा करे, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। ‘एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्’—इस श्रुतिके अनुसार अकेले ब्रह्मको दूसरेकी असिलाषा हुई—‘स एच्छत एकोऽहं वहु स्याम्’; ‘सोऽकामयत वहु स्यां प्रजायेय’ (तै० उ० २।६) —उसने इच्छा की, मैं अकेला हूँ, वहुत हो जाऊँ; उसने कामना की—मैं वहुत हो जाऊँ और सृष्टि करूँ ‘आत्मानं स्वयमकुरुत’ (तै० उ० २।७) —फिर उस ब्रह्मने अपनेको जगदरूपसे परिणत कर लिया; ‘सच्च त्वच्चाभवत्’ (तै० उ० २।८) —वह स्थावर-जङ्गमरूपमें परिणत हो गया। जगत् प्रपञ्चात्मक है और अहंता-ममतारूप जो संसार है, वह मिथ्या है। विशिष्टादैत्यतमें जगत् सत्य है। ‘तदनन्यत्वमारभणशब्दादिभ्यः’—इस सूत्रके श्रीभाष्यसे स्पष्ट है कि ब्रह्म सभी स्थावर-जङ्गमात्मक कार्यका कारण है, और ‘कार्यकारणयोर्भेदात्’—इस सिद्धान्तसे कार्यकी कारणके साथ अभिन्नता होनेसे जगत् ब्रह्मरूप होनेसे सत्य सिद्ध होता है। ‘वाचारभूमिं विकारो नामधेयं

सृच्चिकेत्येव सत्यम्”—इस श्रुतिसे भी जगत्की सत्यता सिद्ध होती है। इस जगत्में अन्तर्यामीरूपसे वही प्रविष्ट है। ‘तत् सुष्टुचा तदनुप्राविशत्’—इस श्रुतिसे जगत्के अंदर सभी प्राणियोंके प्रेरक एवं प्रवर्तक वे ही परमात्मा हैं। वे ही स्थावर-जङ्गमके खरूपभूत हैं। जगत्, जीव और अन्तर्यामी—ये तीन भेद कार्यवश किये गये हैं। इनमें जगत् जड़, जीव चेतन और कूटस्थ एवं आनन्द-मय है। चेतनके सम्पर्कसे जड़ भी चेतन-सा प्रतीत होता है और वह ज्योतिर्मय होनेसे त्रिलोकीको प्रकाशित करनेवाला है।

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों लोक समष्टि ब्रह्मण्डस्वरूप होनेसे विराट्-पदवाच्य भगवान्-के स्थूल रूप हैं। अतः जगत् सत्य है। उपर्युक्त तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेके लिये अग्नि, वायु, सूर्य-रूपसे वे ही क्षिति, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें स्थित हैं। ये तीनों देवता उसी परमात्माकी विभूतियाँ हैं। उनमेंसे एक ही महान् आत्मा देवता है, जो सूर्य कहलाता है। वे सभी भूतोंके अन्तर्यामी हैं—‘एक एव चा महानात्मा देवता स सूर्य इत्याचक्षते । स हि सर्वभूतात्मा तदुक्तं परमर्यिणा सूर्य आत्मा

जगतस्तस्थुपश्च' (सर्वानुकमपरिभाषा १२।२),
 'अन्तर्याम्यधिदैवादिपु तद्वर्मव्यपदेशात्' (ब्र० सू०)
 इस परमपिंसूत्रसे सभी देववर्गोंका अन्तर्यामी परमेश्वर
 सिद्ध हैं । इसमें निम्नलिखित श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।
 (छा० उ० १।६।६)

य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते ।
 (छा० उ० ४।११।२)

स यश्चायं पुरुषे यश्चायमादित्ये स एकः ।
 (तै० उ० ३।४)

'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न
 वेद यस्यादित्यः शरीरम् एष आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ।'
 —इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणित करती हैं कि सभी
 देवोंके अन्तर्यामी भगवान् हैं । यही कारण है—
 सृतियाँ आत्माकी परिभाषा करती हुई कहती हैं—

यश्चाप्नोति यदादत्ते यच्चान्ति विषयान्तिः ।
 यच्चास्य संततो भावस्तस्यादात्मेति कथ्यते ॥

तेजोमय ज्योतिःस्वरूप परमात्मासे तीन ज्योतियाँ
 निकर्ली—अग्नि, वायु, सूर्य । इनमेंसे सर्वाधिक प्रकाशमान
 सूर्य ही है । उस तेजसमूहरूप सूर्य-मण्डलके अन्तर्गत
 नारायण ही उपास्य हैं । सूर्यका शब्दर्थ है सर्वप्रेरक ।
 पूर्व प्रेरणे (तुदादि) धातुसे 'सुवर्ति कर्मणि तत्तद्-
 व्यापारे लोकं प्रेरयति इति सूर्यः'—इस व्युत्पत्तिमें
 पूर्व धातुसे क्यप् प्रत्यय एव रुदागम करनेपर 'सूर्य' शब्द
 निष्पन्न होता है । अथवा 'सरति आकाशे इति सूर्यः'
 इस व्युत्पत्तिसे कर्तमि क्यप् प्रत्ययके निपातनसे उत्तर करने-
 पर 'राजसूर्यसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्या'
 इस पाणिनीय सूत्रसे 'सूर्य' शब्द सिद्ध होता है । वह
 सर्वप्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रवर्तक होनेसे मित्र, वरुण
 और अग्निका चक्षुःस्थानीय है—'चष्टे इति चक्षुः ।
 चक्षुपश्चक्षुः'—इस श्रुतिसे प्रतिपाद्य है । वह सभीकी
 चक्षुरिन्द्रियका अधिष्ठाता देव है, उसके विना कोई
 भी वस्तु दृश्य नहीं होती । कहा है—

दीद्यति क्रीडति स्वस्तिन् द्योतते रोचते दिवि ।
 यसाद् देवस्ततः प्रोक्तः स्तूयते देवमानवैः ॥
 अतः वही अपने तेजपुञ्जसे तपता हुआ उदित होता
 है और मृतप्राय सम्पूर्ण जगत् चेतनवत् उपलब्ध होता
 है, इसलिये वह सभी स्थावर-जड़मात्मक प्राणिजातका
 जीवात्मा है । 'योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां
 प्राणानादप्योदेति'—इस श्रुतिसे उपर्युक्त विषयकी पुष्टि
 होती है ।

'य एषोऽन्तरादित्ये'—इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतिपादित
 सूर्यमण्डलाभिमानी आदित्यदेव है और सभी प्राणियोंके
 हृदय-आकाशमें चिह्नप्रसे परमात्मा स्थित हैं तथा जो
 समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म हैं, वे सभी एक ही
 वस्तु हैं । अतः सूर्य और ब्रह्ममें अनन्यता होनेसे सर्वात्मत्व
 सिद्ध होता है । 'यदतः परो द्विवो ज्योतिर्दीप्यते, यश्चायं
 पुरुषे यश्चायमादित्ये स एकः'—(तै० उ० ३।४)—
 इत्यादि श्रुतियाँ इस बातकी सम्पुष्टि करती हैं कि सूर्य-
 मण्डलके अन्तर्गत नारायणके तेजसे ही सभी ब्रह्माण्डगत
 सूर्य, चन्द्र, अग्नि और विद्युत् आदि प्रकाश वस्तु
 प्रकाशित होते हैं, क्योंकि वह स्वप्रकाशमान है । उसको
 अग्निस्फुलिङ्गवत् कोई प्रकाशित नहीं कर सकता है ।
 उपनिषदें कहती हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
 नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
 तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
 तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
 (मुण्डकोप० २।२।१०)

श्रीमद्भगवद्गीतामें योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने
 भी अर्जुनके प्रति इसकी पुष्टि की है कि
 ज्योतिर्मय वस्तुओं एवं सूर्यादिकोमें जो प्रकाश है, वह
 मेरा ही प्रकाश है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
 यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
 (१५।१२)

हम पहले कह चुके हैं कि सभी तेजस्वियोंमें सूर्य-मण्डल अधिक तेजस्वी है, उसीके भीतर विगजान हिरण्य ज्योतिपुल्ल श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् थेय है। इसी आशयसे सम्बोहन-तन्त्रोक्त गोपालकवचमें भी कहा गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थः कृष्णो ध्येयो महामतिः ।

भगवान् सूर्य रथमें स्थित होकर सम्पूर्ण लोकोंका कन्याण करनेके लिये विश्व-भ्रमण करते हैं और अपने द्वारा स्थापित मर्यादाका निरोक्षण करते हुए उदयास्तद्वारा प्राणियोंकी जीवनभूत आयुका आदान करनेसे आदित्य कहलाते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्णमातो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽ-
देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
याति देवः प्रवता यात्युद्गता
याति शुभ्राभ्यो यजतोहरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप
विश्वा दुरिता वाधमानः ॥

—इन मन्त्रोंमें 'याति' पद गमनार्थक है, अतः सूर्यका भ्रमण करना सिद्ध होता है, 'अचला' पृथ्वीका भ्रमण असम्भव है। वह तो चक्षुके द्वामानेसे धूमती-सी दिखलायी दर्ना है—'चक्षुगा ध्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः'—यह भागवतके इस वाक्यरो ज्ञात होता है। शुक्लयजुर्वेदमें भी सूर्यका असहायगृहणे विचरण लिखा है—

सूर्य एकाङ्गी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
(शू० १० २३, शत० २० २ । २ । ६ । १०)
सप्त अश्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
(शू० १ । ५० । ८)

सूर्य-रथके वाहक सात अश्व हैं जो सप्त व्याहृति छन्द हैं। एक पहियेके रथको सप्त नामका घोड़ा वहन करता है, जैसा श्रुत्यन्तरमें कहा है—

सप्त शुञ्जन्ति रथ्यमेकचक्र-
मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

उपर्युक्त श्रुतियोंसे मूर्य-भ्रक्ता भ्रमण करना मिल देता है। आर्दत्यरथवा वर्णने श्रीविष्णुपुराणमें विस्तारसे और अन्यान्य पुराणोंमें सक्षिप्त स्थाने आया है। श्रीमद्भागवतमें सूर्य-न्यूहका वर्णन वडे शुन्दा दृग्मे किया गया है तथा पञ्चम स्कन्धमें मूर्यका गति, क्रिया और उदयास्तद्वारा विभान-वौधन भलामानि वर्णित है। इस प्रकार श्रुति, रस्ति, पुराण एव उनिषदोंमें सूर्यका भ्रमणद्वारा उदयास्तद्वाल सूर्यके दर्शन-अदर्शनसे प्रतिपादित है। इससे अहोगत तथा तिदा-विदिशाओंका विभाग होता है।

पूर्वायरं चरता माययन्ता
शिशू कीवर्णां परि यातो शब्दरम् ।
विश्वान्यन्तो सुवनभिच्चप्
ऋत्यूर्ल्यो विश्वज्ञायते पुनः ॥

(शू० १० । ८५ । ११)

अर्थात्, मूर्य पदने विचरते हैं, चन्द्रमा उनका अनुसरण करते हैं। भगवान्के तनसे प्रकाश्य मूर्य हैं और मूर्यके तेजसे प्रकाश्य चन्द्रमा है; क्योंकि वे जलमय विद्धि हैं। उसपर मूर्यका किरणोंके पड़नेसे उज्ज्वल शीतल चन्द्रकान्ति प्रकाशमान होकर फैलती है, जैसे गृहद्वारपर स्थित हर्षणपर मूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अन्तर्गृह प्रकाशित होता है। इस प्रकार पौर्वायर्यसे, स्वप्रज्ञानसे मूर्य और चन्द्रमा ब्रह्मोक (अन्तर्ग्रह)में विचरण करते हैं, अर्थात् दो वालकोंकी तरह विद्वार करते हैं। उन दोनोंमें आदित्य सकल भुवनोंका अवलोकन करते हैं और चन्द्रमा वसन्त आदि ऋतुओंका विभान करते हुए मास, अर्धमास बनाते हुए वारस्वार प्रादृमूर्त होते हैं—जन्मते हैं। यद्यपि दोनोंका पुनः-पुनः प्रादृमूर्ति तो नहीं होता, तथापि सूर्यको क्षय—प्रवृद्धि आदि अमीष नहीं है। चन्द्रमाकी कलाओंके घटने-घटनेसे पुनर्जन्म होना युक्त है। अतएव तैत्तिरीयवालणमें कहा है कि 'चन्द्रमा वै जायते पुनः' (३ । १ । ५ । ४) 'त्वं त्वं भवति जायमानः' (शू० ८ । ३ । १९) रातमें सभी प्राणियोंका आलोक वैश्वानरके ढांचीन रहता है। रात्रिके बाद वे ही सूर्य बनकर उद्दित होते हैं।

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि-

स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।

(ऋ० १० | ८८ | ६)

‘भर्तीति भानुः’—इस व्युत्पत्तिसे ‘भानु’ शब्द भी मूर्ध-
भानु वाचक है । वे भगवान् के तेजसे दीप होकर प्रकाश-
मान होते हैं तथा अन्तरिक्षमे भ्रमण करते हुए समस्त
द्युलोक एव भूलोकको प्रकाशित करते हैं ।

भानुः शुक्रेण शोचिपा व्यद्यौन्

प्रारुद्धच्छ्रोदसी मातरा शुचिः ।

(ऋ० ९ | ५ | १२)

सविता सकल जनोके दुःखका निवारण
करनेवाली वृष्टिको उपजानेसे सविता-पद-वाच्य वे ही
सूर्यमण्डलमध्यवर्ती नारायण हैं । ‘याभिरादित्यस्तपति
रश्मिरत्ताभिः पर्जन्यो वर्षति’ (श्रुति) तथा
‘आदित्याज्ञायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः’ ।
(सृति) एव ‘अष्टौ मासान्निपीनं यद् भूस्या-
श्चोदमयं वसु । स्वगोभिर्मौकुमारेभे पर्जन्यः काल
आगते (भा० १० | २० | ५)—प्रभृति पुराणादि
वचनोसे वे ही वर्षा करते हैं अथवा ‘सूर्यते इति सविता’
सम्पूर्ण जगत्के प्रसवकर्ता उद्गमस्थानीय है । अथवा—
‘सूर्ये सकलश्रेयांसि ध्यातृणामसौ सविता’ अर्थात् सभी
‘यात्रवर्गोंके सकल श्रेयका कारण होनेसे वे ही सविता-
पद-वाच्य हैं । ‘उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन्
व्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्चनुते’—यह श्रुति भी इसी
वातको प्रमाणित करती है । आदिति देवमाताके शरीरसे
उत्पन्न होनेके कारण वे ही आदित्य-पदवाच्य हैं । अर्धवृ
व्राह्मणमें अदितिके आठ पुत्रोंकी परिणामना है—मित्र,
वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और
आदित्य । इनमेंसे आदित्यको मार्तण्ड भी कहते हैं ।
इस आठवें पुत्रको उपरकी ओर उछाल दिया, पुनः
प्राणियोंके जनन-मरणके लिये उसका आहरण कर
लिया, इससे सिद्ध होता है कि प्राणियोंके जनन-मरण
सूर्योदय-मूर्यास्तके अधीन हैं । प्राणियोंके जीनहेतु
आयुका आटान करनेसे आदित्य है ।

अष्टौ पुत्रासो अदितेऽ जातास्तान्वस्पति ।

देवौ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत् ॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरूप प्रैत् पूर्वं युगम् ।

प्रजायै सृत्यवे त्वत् पुनर्मार्तण्डमाभरत् ॥

(ऋ० १० | ७२ | ८९)

सम्पूर्ण विश्वका प्रसव करनेवाले सर्व-प्रेरक सविता-
देवता ही अपने नियमन-साधनोसे, वृष्टि-प्रदानादि-
उपायोंसे पृथ्वीको सुखसे अवस्थित रखते हैं तथा वे ही
आलम्बनरहित प्रदेशमे द्युलोकको दृढ़ करते हैं, जिससे
नीचे न गिरे । वे ही अन्तरिक्षगत होकर वायवीय पाञ्चोंसे
बैंधे हुए मेघमय समुद्रको दुहते हैं—

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरणा-

दस्कम्भने सविता द्यामदंहत् ।

अद्वमिवाद्युक्तद्विमन्तरिक्ष-

मतूर्ते वद्दं सविता समुद्रम् ॥

(ऋ० १० | १४९ | १)

वे सूर्य केवल सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, प्रवर्तक,
धारक, प्रेरकमात्र ही नहीं, अपितु आरोग्यकारक भी
हैं । सूर्यकी उपासनासे दुःखप्नसे जनित अनिष्ट एवं
नवग्रहजन्य पीड़का भी परिहार होता है एव व्रतके
यिवातक राक्षसोंसे भी रक्षा करनेवाले सूर्य हैं ।
ऋग्वेदमे इसका ज्वलन्त प्रमाण है ।

येन सूर्यं ज्योतिषा वाधसे तमो

जगद्य विश्वमुदियर्पि भानुना ।

तेनासद्विश्वामिलिरामनाहुति-

मणामीवामय दुस्स्वप्न्यं सुव ॥

विश्वस्य हि प्रेपितो रक्षसि व्रतम् ॥

(ऋ० १० | ३७ | ४५)

इसी कारण पुराणमूर्धन्यं मत्स्यमहापुराणमें
कहा है कि—

‘आरोग्यं भास्करादिच्छेत्’

इस प्रकार वेदने भगवान् सूर्यको विविधरूपमें
देखकर उनके ख्वरूपका विशद विवेचन किया है । अस्तु !
भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको शुभ कर्ममि लगायें—

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

श्रीसूर्यनारायणकी बन्दना

(पूज्यपाद योगिराज श्रीदेवरहवा वाचा)

सूर्य साक्षात् परमात्मस्वरूप हैं। शास्त्र एक कण्ठसे इनकी बन्दना, अर्चना (पूजा-पाठ) को मानवका परम कर्तव्य बतलाते हैं।

सूर्यसे ही सभी ऋतुएँ होती हैं। सूर्यको ही कालचक्रका प्रणेता और प्रणवरूप माना गया है। सूर्यसे ही सभी जीव उत्पन्न होते हैं। सभी योनियोंमें जो जीव हैं, उनका आविर्भाव, ग्रेरण-प्रोपण आदि सब सूर्यसे ही होते हैं और अन्तमें सभी जीव उन्हींमें विलीन हो जाते हैं। उनकी उपासना करनी चाहिये। उनका नित्य जपनीय गायत्री-मन्त्र यह है—

ॐ आदित्याव विद्ध्वहे सहस्रकिरणाव धीमहि
तत्रः सूर्यः प्रचोदयात् ।

सूर्यका एक नाम आदित्य भी है। आदित्यसे अग्नि, जल, वायु, आकाश तथा भूमिकी उत्पत्ति हुई है। देवताओंकी उत्पत्ति भी सूर्यसे ही मानी गयी है। इस समस्त ब्रह्माण्ड-मण्डलको अकेले सूर्य ही तपाते हैं;

सूर्य आदित्य-ब्रह्म हैं। सूर्य ही हमारे शरीरमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदिके रूपमें व्याप्त हैं। हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों कर्मेन्द्रियोंको भी वे ही प्रभावित करनेवाले हैं। इस प्रकार सूर्यको सभी दृष्टियोंसे बहुत महत्व प्राप्त है।

प्राणिमात्रके हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होनेके कारण वे सूर्य‘ब्रह्म’ हैं और सबके लिये उपास्य हैं। जप करनेके लिये सूर्यका एक विशेष अष्टाक्षर मन्त्र महत्वपूर्ण है—

ॐ धृणिः सूर्य आदित्योम् ।

प्रतिदिन इस मन्त्रके जपसे महाब्याधिसे पीड़ित व्यक्ति मुक्त हो जाता है और वह सभी दोषोंसे विरहित होकर अन्तमें भावान्से जा मिलता है। अतएव ऐसे सर्वज्ञ सूर्यभगवान्स्को हम सभीका सादर नमस्कार है जो सदा कल्याण करनेवाले हैं।

(प्रेपक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी एडवोकेट)

सवितासे अभ्यर्थना

अचिन्ती चच्चक्षमा देव्ये जने दीनैर्दैशैः प्रभूती पूरुपत्वता ।

देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवता दनागसः ॥

(—शू० वै० ४ । ५४ । ३, तै० स० ४ । १ । ११)

हे सविता ! आपका जीवन दिव्य गुणोंसे भरा हुआ है। हम अज्ञानवश या असावधानीके कारण आपके प्रति अपराध एवं श्रद्धा-निष्ठामें प्रमाद कर देते हैं। हमारे दुर्वल पुत्र-पौत्रादि अपराध कर देते हैं। फलतः उनके अपराधसे हम भी (विशेष) अपराधी हो जाते हैं। यही क्यों, हम अपनी चतुराई, ऐश्वर्य या पौस्यके मदसे अन्य देवों या मनुष्योंके प्रति (भी) अपराध कर देते हैं। आप उन सब प्रकारके अपराधोंको क्षमा कर हमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दीजिये। हमारी यही अभ्यर्थना है।

भगवान् विवस्वानको उपदेश कर्मयोग

(लेखक—श्रद्देय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्मयोगमें दो शब्द हैं—कर्म और योग। कर्म-का अर्थ है करना और योगका अर्थ है समता—‘समत्वं योग उच्यते’ अर्थात् समतापूर्वक निष्कामभावसे शाश्वतिविहित कर्मोंका आचरण ही कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोगमें निपिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग तथा फल और आसक्तिका त्याग करके विहित कर्मोंका आचरण करना चाहिये। भगवान् ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

(गीता २ । ४७)

‘तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये त् कर्मोंके फलका हेतु मत बन तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।’

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, पदार्थ, धन-सम्पत्ति आदि जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब-का-सब ससारसे, भगवान्-से अथवा प्रकृतिसे मिला है। अतः ‘अपना’ और ‘अपने लिये’ न होकर संसारका एवं संसारके लिये ही है (अथवा भगवान्-का और भगवान्-के लिये अथवा प्रकृतिका एवं प्रकृतिके लिये है)—ऐसा मानते हुए निःस्वार्थभावसे दूसरोंको सुख पहुँचाने (अथवा संसारकी सामग्रीको संसारकी ही सेवामें लगा देने) को ही कर्मयोग कहते हैं।

१. गीता २ । ४८ । २. वही ३ । ५ ।

३. ‘इष्टकामधुक्’ का अर्थ है ‘कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला।’ यहाँ यदि इष्ट धारुसे ‘इष्ट’ पदकी निष्पत्ति करेगे तो इसी श्लोकके पहिले उपक्रम (३ । ९)से विरोध होगा; क्योंकि उसमें स्पष्ट कहा है कि कर्तव्यके लिये कर्म करनेके अतिरिक्त कर्म करनेसे बन्धन होगा। फिर अपनी वातको ब्रह्माजीके बच्चनोंसे पृष्ठ करने हेतु यहाँ कर्तव्यकर्म करनेसे ‘इच्छित भोग-पदार्थकी प्राप्ति करनेवाला’ यह अर्थ सगत प्रतीत नहीं होता। एवं इसी प्रसङ्गके उपसहायमें ‘भुजने ते त्वं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्’ (३ । १३)से भी विरोध होगा। अतएव ‘इष्ट’ पद देवपूजा-समातिकरणार्थक ‘यज्’ धारुसे निष्पत्ति है, जिसका अर्थ है—कर्तव्यकर्मसे भावित। यज्+क्त, ‘यज्ञिस्त्वपि०’—से संप्रसारण, ‘व्रश्वभ्रस्त०’—से ‘ज्’ को ‘प्’ ततः छुत्व—इस प्रकार ‘इष्ट’ शब्द बना है। इसी प्रकार ३ । १२ में भी इष्ट शब्द ‘यज्’ धारुसे ही निष्पत्ति समझना चाहिये। “काम्यन्त इति कामाः”। इस व्युत्पत्तिसे काम शब्दका अर्थ पदार्थ एवं सामग्री है।

कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म किये विना नहीं रह सकता; क्योंकि (संसारकी मूलभूत) प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है। अतः प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी प्राणी क्रियारहित कैसे रह सकता है?। यथपि पशु, पक्षी तथा वृक्ष आदि योनियोंमें भी स्वाभाविक क्रियाएँ होती रहती हैं; परतु फल और आसक्तिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे कर्म करनेकी क्षमता उनमें नहीं है, केवल मनुष्ययोनिमें ही ऐसा ज्ञान सुलभ है। वस्तुतः मनुष्य-शरीरका निर्माण ही कर्मयोगके आचरणके लिये हुआ है और इसमें सम्पूर्ण सामग्री केवल कर्म करनेके लिये ही है। जैसा कि सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी प्रजाओंको उपदेश देते हुए ब्रह्माजीके शब्दोंमें श्रीभगवान् कहते हैं—

‘अनेन प्रसविष्यव्यमेष वोऽस्त्विष्यप्रकामधुक् ।’
(गीता ३ । १०)

‘तुम यज्ञ (कर्तव्यकर्म)के द्वारा उन्नतिको प्राप्त करो, यह (कर्तव्यकर्म) तुम्हे कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला हो।’ मनुष्यको प्रत्येक कर्म कर्तव्यबुद्धिसे ही करना चाहिये (गीता १८ । ९)। शाश्वतिविहित कर्म करना कर्तव्य है—केवल इस भावसे ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग कर कर्म करनेसे वै कर्म बन्धनकारक नहीं होते।

कर्मयोगका ठीक-ठीक पालन करनेसे ज्ञान और भक्तिकी प्राप्ति स्थितः हो जाती है। कर्मयोगका पालन करनेसे अपना ही नहीं, अपितु संसारका भी परम हित होता है। दूसरे लोग देखें या न देखें, समझें या न समझें, अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन करनेसे दूसरे लोगोंको कर्तव्य-पालनकी प्रेरणा स्थितः मिलती है।

दूसरोंकी सेवामें प्रीतिकी मुख्यता होनेके कारण कर्मयोगमें निःसदेह भोक्तापनका नाश हो जाता है। इसके साथ ही व्यक्ति तथा पदार्थ आदिसे अपने लिये सुख-की चाह एवं आशा न होनेके कारण एवं व्यक्ति आदिके संगठनसे होनेवाली इन विद्याओंका भी अपने साथ कोई सम्बन्ध न होनेसे कर्तापनका भी नाश स्थितः हो जाता है। कर्मयोगी किया करते समय ही अपनेको कर्ता मानता है। भोक्तापन और कर्तापन एक दूसरेपर ही अबलम्बित हैं। जब भोक्तापन मिट जायगा तो कर्तापनका अस्तित्व ही नहीं रहेगा और कर्तापन यदि नहीं है तो भोक्तापनका भी कोई आधार नहीं। इन दोनोंमें भी भोक्तापनका त्याग सुगम है।

भोगोंमें रचेन्पचे होनेके कारण उनके संयोगजन्य सुखोंमें आसक्तिसे भले ही यह कठिन प्रतीत होता हो, किंतु जो परिवार तथा धन आदिके बीचमे फँसा हुआ भी

अपने उद्धारकी इच्छा रखना है, उसके लिये कर्मयोगकी प्रणाली अधिक सुगम है। अतः भगवान् ने श्रीमद्भागवत-में 'कर्मयोगस्तु कामिनाम्' (११ । २० । ७) कहा है।

वस्तुतः मानव-शरीर कर्मयोग-पद्धतिसे मोक्षके लिये ही मिला है। चाहे किसी मार्गका साधक क्यों न हो, किंतु उसे कर्मयोगकी प्रणालीको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

यथापि कन्याण-प्राप्तिके लिये श्रीभगवान् ने गीतामें दो निष्ठाएँ बतायी हैं—(१) ज्ञानयोग एवं (२) कर्मयोग। इन दोनोंमें ज्ञानकी प्राप्तिके अनेक उपायोंमें शास्त्रीय पद्धतिसे ज्ञानार्जनकी प्रक्रिया भी गीतामें वर्णित है^१। इस शास्त्रीय पद्धतिसे अर्जित फल-(तत्त्व) ज्ञानकी महिमा श्रीभगवान् ने बही है^२, तथापि अन्तमें यह बताया है कि वही तत्त्वज्ञान कर्मयोगकी प्रणालीसे निश्चय ही स्वयं अपने-आप ग्राप कर लेना है—‘नत्त्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति’ (-४।३८) अर्थात् ज्ञानयोग गुरुपरम्परा (गीता ४ । ३४) एवं कर्मयोगके अधीन है और कठिन भी है^३ जब कि कर्मयोगकी प्रणालीमें गुरुकी अनिवार्यता नहीं है,^४ करनेमें सुगम है,^५ फल भी जीव्र प्राप्त होना है^६ तथा कर्मयोगका

१-तदिदिग्नि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेश्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

(गीता ४ । ३४)

२-यज्जात्वा न पुनर्मोहयेव यास्यसि पाण्डव । येन भूतान्यंशेण द्रष्ट्यस्यात्मन्यथो मयि ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवैनैव द्विजिनं मंत्ररिष्यसि ॥

यथैधासि समिद्भोगिन्मर्भस्यात्मकुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्यात्मकुरुते तथा ॥

(वही ४ । ३५-३७)

३-सन्यासस्तु महावाहो दुःखमातुमयोगतः । योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नन्दिरेणाधिगच्छति ॥

(वही ५ । ६)

४-तत्त्वय योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ (वही ४ । ३८)

५-शेयः स नित्यंन्यासी यो न द्रेष्टि न वाहृति । निर्द्वन्द्वो हि महावाहो मुन्य वन्धात्प्रमुच्यते ॥ (वही ५ । ३)

६-योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नन्दिरेणाधिगच्छति ॥ (वही ५ । ६)

कल्याण

विवस्वान् (सूर्य) और भगवान् नारायण



कर्मयोगका प्रथम उपदेश

अनुष्ठान करनेपर वह अवश्य ही 'फलप्राप्तिवाला' हो जाता है—‘कालेनात्मनि विन्दति’ (४।३८)

श्रीभगवान्‌ने सर्वसाक्षी सूर्यको सृष्टिके प्रारम्भमे कर्मयोगका उपदेश इसलिये दिया था कि जैसे सूर्यके प्रकाशमे अनेक कर्म होते हैं; किंतु वे उन कर्मोंसे वैय नहीं सकते; क्योंकि सूर्यके प्रकाशमे भले ही वे कर्म हो; परतु सूर्यका उन कर्मोंसे अपना क्वोई सम्बन्ध नहीं, वैसे ही चेतनकी साक्षीमे सम्पूर्ण कर्म होनेमे वे (कर्म) वन्धनकारक नहीं होते; हाँ, उनसे यदि सुख-चाहका थोड़ा-सा भी सम्बन्ध होगा तो वह अवश्य ही वन्धनकारक हो जायगा। जैसे सूर्यमे कर्मोंका भोक्तापन नहीं है, वैसे ही कर्तापन भी नहीं है। साथ-ही-साथ नियत कर्मका किसी भी अवस्थामे त्याग न करना तथा नियत समयपर कार्यके लिये तत्पर रहना भी सूर्यकी अपनी विलक्षणता है; जैसे—

‘यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।’
(गीता १३।३३)

कर्मयोगीको भी इसी प्रकार अपने नियत कर्मोंको नियत समयपर करनेके लिये तत्पर रहना चाहिये। इसलिये कर्मयोगका वास्तविक अधिकारी सूर्यको जानकर ही श्रीभगवान्‌ने उनको ही सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश दिया था और उसकी परम्पराका उल्लेख करते हुए इसके विषयको उत्तम रहस्य कहा है—

इमं विवस्ते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽन्वीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥

१—‘कालेन’ इस शब्दमे ‘कालाव्वनोरत्यन्तसंयोगे’ (पा० सू० २।३।५) से प्राप्त द्वितीया विभक्तिका प्रतिषेध कर ‘अपवर्गं तृतीया’ (पा० सू० २।३।६) इस सूक्ष्मसे फल-प्राप्तिके अर्थमे तृतीया विभक्ति हुई है। यद्यपि उक्त सूत्रके द्वारा कालवाचो शब्दमे तृतीयाका विवान है, तथापि कालातीतके व्यपदेशके लिये तो ‘काल’ एवं ‘नन्दिर’ आदि शब्दोंका ही प्रयोग होता है। अतः ‘नन्दिरेण’ (५।६) एवं ‘कालेन’ (४।३८) से यह ध्वनित होता है कि कर्मयोगसे जीव तथा अवश्य फलकी प्राप्ति होती है—इसमे संदेह नहीं।

२ त्रिशोषण वस्ते आच्छादयति इति विवस्वान्। विपूर्वकं वस्म् धानुमे विवप्त् मनुप् आदि प्रक्रियामे यह शब्द सिद्ध होता है।

स पवर्यं मया तेऽद्य योजः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥
(गीता ४।१—३)

‘मैंने इस अविनाशी योगको विवस्वान् (सूर्य) से कहा था। मूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इश्वाकुसे कहा। हे परंतप अर्जुन ! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना, किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमे लुप्तप्राय हो गया। त मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझे कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है।’

सृष्टिमे जो सर्वप्रथम उत्पन्न होता है, उसे ही (कर्तव्यका) उपदेश दिया जाता है। उपदेश देनेका तात्पर्य है—कर्तव्यका ज्ञान कराना। सृष्टिकालमे सर्वप्रथम सूर्यकी उत्पत्ति हुई और फिर सूर्यसे समस्त लोक उत्पन्न हुए। हमारे शास्त्रोंमें सूर्यको ‘सविता’ कहा गया है, जिसका अर्थ है—उत्पन्न करनेवाला।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यसुपतिष्ठते।
आदित्याज्ञायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु० ३।७६)

‘अग्निमे सम्यक् प्रकारसे सनर्पित आहुति सूर्यतक पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं।’ पाथ्यात्य विज्ञान भी सूर्यको सम्पूर्ण सृष्टिका कारण मानता है। सबको उत्पन्न करनेवाले सूर्यको सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश देनेका अभिप्राय उनसे उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टिको परम्परासे कर्मयोग सुलभ करा देना था।

भगवान्‌के द्वारा दिये गये कर्मयोगके उपदेशका सूर्यने पालन किया । फलस्वरूप यह कर्मयोग परम्पराको प्राप्त होकर कई पीढ़ियोंतक चलता रहा । जनक आदि राजाओंने तथा अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा एवं ऋषि-महर्षियोंने इस कर्मयोगका आचरण करके परम सिद्धि प्राप्त की । बहुत काल बीतनेपर जब वह योग लुप्तप्राप्त हो गया, तब पुनः भगवान्‌ने अर्जुनको उसका उपदेश दिया ।

सूर्य सम्पूर्ण जगत्‌के नेत्र हैं, उनसे ही सबको ज्ञान प्राप्त होता है एवं उनके उदय होनेपर समस्त प्राणी जाग्रत्‌ हो जाते हैं और अपने-अपने क्रमोंमें लग जाते हैं । सूर्यसे ही मनुष्योंमें कर्तव्यपरायणता आती है । इसी अभिप्रायसे भगवान्‌ सूर्यको सम्पूर्ण जगत्‌का आत्मा कहा गया है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुष्टश्च’ । अतएव सूर्यको जो उपदेश प्राप्त होगा, वह सम्पूर्ण प्राणियोंको भी स्वतः प्राप्त हो जायगा । इसीलिये भगवान्‌ने सर्वप्रथम सूर्यको ही उपदेश दिया ।

सम्पूर्ण प्राणी अन्से उत्पन्न होते हैं और अनकी उत्पत्ति वर्पसे होती है । वर्पके अधिष्ठात्रेवता सूर्य हैं । वे

ही अपनी क्रिरणोंसे जलवा आकर्षण कर उगे वर्पके रूपमें पृथ्वीपर वरसाते हैं । इसीलिये सम्पूर्ण प्राणियोंका जीनन भगवान्‌ सूर्यपर ही आवृत है । सूर्यके आधारपर ही सम्पूर्ण सृष्टि-चक्र चल रहा है * । सूर्यको उपदेश मिलनेके पश्चात् उनकी कृपासे संसारको शिक्षा मिली है । जैसे पृथ्वीसे लिये गये जलको प्राणियोंके हितार्थ सूर्य पुनः पृथ्वीपर ही वरसा देते हैं, वैसे ही राजाओंने भी प्रजासे (कर आदिके रूपमें) लिये गये धनको प्रजाके ही हितमे लगा देनेकी उनसे शिक्षा प्रहण की † ।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, अन्य लोग भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं । अतएव राजा जैसा आचरण करता है, प्रजा भी वैसा ही आचरण करने लगती है—‘यथा राजा तथा प्रजा’ । राजाको भगवान्‌की विभूति कहा गया है—‘वराणां च वराधिपम्’ । राजाओंमें सर्वप्रथम सूर्यका स्थान हुआ । सूर्य तथा भविष्यमें होनेवाले अन्य राजाओंने उस कर्मयोगका आचरण किया । वे राजा लोग राज्यके भोगोंमें आसक्त हुए बिना सुचारूरूपसे राज्यका संचालन करते थे ।

* महाभारतमें सूर्यके प्रति कहा गया है—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् । त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ॥

त्वं गतिः सर्वसाम्ब्राना योगिना त्वं परायणम् । अनावृत्तार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम् ॥

त्वया सधायने लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते । त्वया पवित्रीक्रियते निर्वाजं पाल्यते त्वया ॥

(बनपर्व ३ । ३६-३८)

‘सूर्यदेव । आप सम्पूर्ण जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं । आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान और कर्मानुष्ठानमें लगे हुए पुरुषोंके सदाचार हैं ।

सम्पूर्ण साख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान आप ही हैं । आप ही सब कर्मयोगियोंके आश्रय हैं । आप ही मोक्षके उन्मुक्तद्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं ।

आप ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं । आपसे ही यह प्रकाशित होता है । आप ही इसे पवित्र करते हैं और आपके ही द्वारा निःस्वार्थभावसे उसका पालन किया जाता है ।

† महाराज दिलीपके सन्दर्भमें महाकवि कालिदासने लिखा है—

प्रजानामेव भूत्यर्थं म ताम्यो वलिमग्रहीत् । सहस्रगुणसुत्संषुमादत्ते हि रस रविः ॥

(ख्युवंश १ । १८)

‘जैसे सूर्य सहस्रगुना वर्गसानेके लिये ही पृथ्वीके जलका आकर्षण करते हैं, वैसे ही (सूर्यवंशी) राजा भी अपनी प्रजाके हितके लिये ही प्रजासे कर लिया करते थे ।

‡ गीता १० । ३७

प्रजाके हितमे उनकी सामाविक प्रवृत्ति रहती थी। कर्मयोगका पालन करनेके कारण राजाओंमें इतना विलक्षण ज्ञान होता था कि बड़े-बड़े ऋषि भी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उनके पास जाया करते थे। श्रीवेदव्यास-जीके पुत्र शुकदेवजी भी ज्ञानप्राप्तिके लिये राजर्षि जनकके पास गये थे। छान्दोग्योपनिषद्‌के पाँचवें अध्यायमें भी आता है कि ब्रह्मविद्या सीखनेके लिये कई ऋषि एक साथ महाराज अश्वपतिके पास गये थे।

शङ्का—जिसे ज्ञान नहीं होता, उसीको उपदेश दिया जाता है। सूर्य तो स्वयं ज्ञानस्वरूप भगवान् ही

हैं; फिर उन्हे उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता थी?

समाधान—जिस प्रकार अर्जुन महान् ज्ञानी नर-ऋषिके अवतार थे; परतु लोकसंप्रहके लिये उन्हे भी उपदेश देनेकी आवश्यकता हुई। ठीक उसी प्रकार भगवान्‌ने सूर्यको उपदेश दिया—जिसके फलस्वरूप ससारका महान् उपकार हुआ और हो रहा है।

वास्तवमें नारायणके रूपमें उपदेश देना और सूर्यके रूपमें उपदेश ग्रहण करना जगन्नाथसूत्रधार भगवान्‌की एक लीला ही समझनी चाहिये, जो कि ससारके हितके लिये बहुत आवश्यक थी।

भगवान् श्रीसूर्यको नित्यप्रति जल दिया करो

(काशीके सिद्ध संत व्रह्मलीन पूज्य श्रीहरिहर वावाजी महाराजके सदुपदेश)

श्रीविश्वनाथपुरी काशीमे ब्रह्मलीन प्रातःस्मरणीय सिद्धसत श्रीहरिहर वावाजी अस्सी घाटपर पतितपावनी भगवती भागीरथीजीमे नौकापर दिग्घवररूपमे रहा करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, विद्वान्, संत-महात्मा आपके दर्शनार्थ आया करते थे। पूज्य महामना मालवीयजी महाराज तो आपको साक्षात् शंकरस्वरूप ही मानकर सदा श्रद्धासे आपके श्रीचरणोंमें नतमस्तक हुआ करते थे। आपने बहुत कालतक श्रीगङ्गाजीमे खडे होकर भगवान् श्रीसूर्यकी ओर मुख करके घोर अमोघ तपस्या की थी। आपके दर्शनार्थ जो भी जाता था, उसे आप (१) श्रीरामनाम जपने और (२) भगवान् श्रीसूर्यको जल देनेका उपदेश दिया करते थे। सतस्वभाववश कृपापूर्वक आपने हजारों मनुष्योंको निष्ठासे सूर्याध्वना एव सूर्यके रूपमें परमात्माकी भक्ति करना सिखाया था। आपका उपदेश होता था—नित्य-प्रति श्रीसूर्यको जल दिया करो। प्रश्नोत्तर-क्रममें उनके उपदेशके दो प्रसंग दिये जा रहे हैं—

(१) प्रश्न—पूज्यपाद वावाजी ! हमारा कल्याण कैसे होगा ?

पूज्य वावा—तुम किस जातिके हो ?

महाराजजी—मैं तो जातिका वैश्य हूँ।

पूज्य वावा—तुम नित्यप्रति स्नान करके लोटेमें जल लेकर भगवान् श्रीसूर्यनारायणको जल दिया करो और भगवान् सूर्यको नित्यप्रति भक्तिभावसहित हाथ जोड़कर प्रणाम किया करो। कम-से-कम एक माला रामनाम जपा करो, इसके साथ ही अपना जीवन धर्म-मय बनाओ। यही तुम्हारे कल्याणका मार्ग है।

(२) एक खी—महाराजजी ! हम खियोके कल्याणका साधन क्या है ?

पूज्य वावा—तुम अपने पूज्य पतिकी श्रद्धासे सेवा किया करो। साथ-साथ तुम भी भगवान् सूर्यदेवको नित्यप्रति जलका अर्ध दिया करो। मालापर 'राम-राम' का जप, जब भी समय मिले, अवश्य कर लिया करो। ऐसा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्‌की कृपा-से निश्चय ही आत्मकल्याण होगा।

प्रेपक—भक्त श्रीरामशशाणदासजी

ऋग्वेदीय सूर्यसूक्त

(—अनन्तश्रीखामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महागाज)

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आग्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्युष्मश्च ॥

‘प्रकाशमान रशियोका समूह अथवा राशि-राशि देवगण सूर्यमण्डलके रूपमे उदित हो रहे हैं । यह मित्र, वरुण, अग्नि और सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं । इन्होने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्षको अपने देवीप्यमान तेजसे सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है । इस मण्डलमें जो सूर्य हैं, वह अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेक्ष परमात्मा हैं तथा जड़म एव स्थावर सृष्टिके आत्मा हैं ।’

व्याख्या—

चित्रम्—इस शब्दका अर्थ सायणने आश्र्वय कर दिया है । स्कन्दस्खामीने ‘विचित्र-विचित्र’ और पूज्य वेङ्कटनाथने चयनीय अर्थात् चयन करने योग्य कहा है । मुद्रल सायणसे सहमत है । चयनीय अर्थ वैज्ञानिक पक्षका है । किरणोके चयनसे नाना प्रकारके व्यावहारिक कार्य सिद्ध हो सकते हैं । ऊर्जा-चयन उसी सन्दर्भका कार्य है ।

देवानाम्—क्षीरस्खामी, माधव आदिके अनुरूपमे ‘दिव्य’ धातु अनेक अर्थोमि प्रसिद्ध है—कीड़ा, विजिगीया, व्यवहार, द्युति, सुति, मोद, मठ, स्वप्न, कान्ति, गति; यथायोग्य सभी अर्थोमि जोड़ सकते हैं ।

सूर्यान्मा—सूर्य सम्पूर्ण स्थावर-जड़मात्मक कार्यवर्गके कारण है । कार्य कारणसे अतिरिक्त नहीं होता (ब्रह्मसूत्र २ । १ । १४) । चराचर जगत्का जीवनदाता होनेसे सूर्यको आत्मा कहा है । गूर्योदय होनेपर निश्चेष्ट जगत् चेतनयुक्त—सचेष्ट हो जाता है । सूर्य सबका प्राण अपने साथ लेकर आते हैं (तैत्तिरीय आ० १ । १४ । १ । १) ।

आग्रा:—यह ‘प्रा पूरणः’ धातुका लड्डुकारका रूप है । अर्थ है—भर देता है, तर कर देना है ।

जो सबका आत्मा है, वही सब शरीरमें फुरनेवाले ‘मै-मैं’का एक आत्मा है । अर्थात् नूर्यान्तर्यामी और अन्तःकरणान्तर्यामी चैतन्य उग्रधिनिर्मुक्त दृष्टिसे एक ही हैं । सूर्य शब्दका मूल है ‘सू’ धातु, जिसका अर्थ गति है अथवा ‘पु’ धातु जिसका अर्थ प्रेरणा है—‘धियो यो नः प्रचोदयात्’: तान्पर्य यह कि प्रेरक परमात्मा ही सूर्य है ।

सूर्यो देवीमुपसं रांचमानां
मत्यो न योपामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥

सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उपादेवीके पीछे-पीछे चलते हैं—जैसे कोई मनुष्य सर्वाङ्ग-सुन्दरी युवतीका अनुगमन करे ! जब सुन्दरी उपा प्रकट होती है, तब प्रकाशके देवता सूर्यकी आराधना करनेके लिये कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य-कर्मका सम्पादन करते हैं । सूर्य कल्याणरूप है और उनकी आराधनासे कर्तव्य-कर्मके पालनसे कल्याणकी प्राप्ति होती है ।

व्याख्या—

देवीम्—दानादि-युग्मयुक्त ।

युगानि—‘युग’ शब्द कालका वाचक है । उससे तत्त्व-कालके कर्तव्य लक्षित होते हैं; जैसे—दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र आदि । ‘युग’ शब्दका दूसरा अर्थ है—हलके या रथके अवयव (ऊए) जिन्हे वैलके कन्धेपर रखते हैं । प्रातःकाल किसान लोग जुप लेलेकर खेती करनेके लिये वरमे निकलते हैं । अभिग्राय यह है कि अन्तर्यामीकी प्रेरणासे सूर्यके प्रकाशमें लोग अपने-

अपने कर्तव्यका वहन करते हैं। प्रेरणा और ज्ञानके बिना कर्तव्य-पालनमें प्रवृत्ति नहीं होती। किसी-किसीके मतमें युग शब्दका अर्थ युगम्—जोड़ा अर्थात् पनि-पनी है। इस पक्षमें अर्थ होगा—दोनों मिलकर पूरी शक्तिसे कर्तव्य-कर्मका पालन करते हैं।

मन्त्र—इस शब्दका अर्थ है—मरणशील मनुष्य।

भद्रम्—'भद्र रमयनि' अर्थात् जो होनेके साथ ही कल्याणकारी हो। तात्पर्य यह है कि मनुष्यको अन्तर्यामीकी प्रेरणासे कर्म करना चाहिये, अज्ञान-अन्धकारमें नहीं। अपना उद्देश्य मङ्गल हो, कर्म मङ्गलमय हो, मङ्गलमयकी पूजा हो।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य

चित्रा एतग्वा अनुमायासः।
नमस्यन्तो द्विच आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥

'सूर्यका यह रश्मि-मण्डल अश्वके समान उन्हें सर्वत्र पहुँचानेवाला चित्र-विचित्र एव कल्याणरूप है। यह प्रतिदिन अपने पथपर ही चलता है और अर्चनीय तथा बन्दनीय है। यह सबको नमता है, नमनकी प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोकके ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वीका परिभ्रमण कर लेता है।'

प्रिवेचन—

इस मन्त्रमें रश्मि-मण्डलके व्याजसे मानव-समाजके उन्नति-पथका निर्देश है। मनमें कल्याण-भावना हो। जीवन गतिशील हो। प्रकाशमयी दृष्टि हो। परिस्थितिका ध्यान हो। परम्परासे अनुभूत हो। जनताकी अनुकूलता हो, हृदयमें विनय हो। लोकदृष्टिसे प्रशस्त हो। ऐसा चरित्र उन्नतिकी ओर त्वरित गतिसे बढ़ता है और सारे विश्वको व्याप्त कर लेता है।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेद्युक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते स्मिस्मै॥

'सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्यका यह ईश्वरत्व और महत्त्व है कि वे प्रारम्भ किये हुए, किंतु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मको ज्यो-का-त्यो छोड़कर अस्ताचल जाने समय अपनी किरणोंको इस लोकसे अपने आपसे समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने रसाकर्पी किरणों और घोड़ोंको एक स्थानसे खींचकर दूसरे स्थानपर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अन्धकारके ढक्कनसे सबको ढक्का देती है।'

प्रिवेचन—

सूर्यकी स्वतन्त्रता ही ईश्वरता है। वे कर्मसूक्त नहीं हैं। स्वतन्त्रतासे कर्म पूरा होनेके पहले ही उसे छोड़ देते हैं। कर्म-पूर्तिकी अपेक्षा या प्रतीक्षा नहीं करते। ठीक इसी प्रकार मनुष्यको चाहिये कि वह फलासक्तिसे तो दूर रहे ही, कर्मसक्तिसे भी बचे। आजतक सृष्टिके कर्म किसने पूरे किये हैं? केवल कालका पेट भरते हुए अपने कर्तव्य करते चलना चाहिये। कर्तव्य-कर्म छोड़ना नहीं चाहिये।

सूर्यकी महिमा अथवा माहात्म्य यह है कि इन कैली हुई किरणोंको समेट लेना बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी महान् प्रयत्न और लम्बे समयके द्वारा भी साध्य नहीं है, किंतु सूर्य उन्हें बिना परिश्रमके तत्काल उपसंहृत कर लेते हैं। मनुष्यको अपने कर्मोंका जाल उतना ही फैलाना चाहिये, जितना वह अनायास और तत्काल समेट सकता हो; अन्यथा वह अपने फैलाये जालमें स्वयं फँस जायगा। सूर्यका यह स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य ही उनका देवत्व अथवा ईश्वरत्व है।

सूर्यकी उपस्थिति ही ज्ञान-प्रकाशका विस्तार करती है; दिन होता है। लोग कर्म करते हैं। उनकी अनुपस्थिति अज्ञानान्धकार है, उसमें लोग अपने कर्तव्य-कर्म छोड़ देते हैं। वही रात्रि है।

व्याख्या—

कर्तुः—यह कर्मका वाचक है। सं जभार—इसमे 'ह' का 'भ' हो गया है। सधस्य—सह स्थान अथवा रथ। सिमः—सर्व।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्योँ रूपं कृषुते घोरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशादस्य पाजः
कृष्णमन्यद्वरितः सं भरन्ति ॥

'प्रेरक सूर्य प्रातःकाल मित्र, वरुण और समग्र सृष्टिको सामनेसे प्रकाशित करनेके लिये प्राचीके आकाशीय अितिजमें अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं। इनकी रसभोजी रस्मियाँ अथवा हरे धोडे बलशाली रात्रिकालीन अन्धकारके निवारणमें समर्थ विलक्षण तेज धारण करते हैं। उन्हींके अन्यत्र जानेसे रात्रिमें काले अन्धकारकी सृष्टि होती है।'

विवेचन—

दिनका देवता मित्र है, रात्रिका वरुण। इनसे सभी जगत् उपलक्षित होता है। सूर्य दोनों देवताओं तथा जगत्के प्रकाशक एवं प्रेरक है। दिन और रात—दोनोंका विभाग सूर्यसे ही होता है।

पाजः—यह रक्षणार्थक 'पा' धातुसे बना रूप है। इसका अर्थ है बल। इसका कभी अन्त नहीं होता। सम्पूर्ण जगत्में व्यापक और देवीप्यमान है। यह बल ही प्रकाशका आनयन और अपनयन करता है। यहाँ यह कहा गया है कि सूर्यकी किरणोंमें ही इतना बल है कि सूर्यकी महिमाका गान कोई नहीं कर सकता।

कन्द स्थामीने कहा है कि जब सूर्य मेरुसे व्यवहित होते हैं तब तमकी सृष्टि करते हैं, इसलिये देशान्तरस्थ सूर्यका ही रूप तम है।

सूर्यका भौतिक रूप सूर्यमण्डल है। आधिदैविक रूप तदन्तर्यामी पुरुप है। आध्यात्मिक पुरुप नेत्रस्थ

ज्योतिर्मय द्रष्टा है। नामस्थात्मक उपाधिके पृथक्करणसे सूर्य वस्त्र ही है।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः
पिपृता निरवद्यात् ।

तच्चो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः

सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

(—शुर्वेद सं० १ । ११५ । १-६)

'हे प्रकाशमान सूर्यरश्मियो ! आज सूर्योदयके समय इधर-उधर विखरकर तुम लोग हमें पापोंसे निकाल-कर बचा लो। न केवल पापसे ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, गर्हणीय है, दुःख-दारिद्र्य है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोकके अविष्टातृ देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें।'

विवेचन—

प्रातःकालीन प्रार्थनामें रात्रि-सचित समग्र शक्तियोंका सञ्जिवेश हो जाता है। प्रार्थनामें बल और दृढ़ता आ जाती है। वह जीवन-निर्माणके लिये एक सुनहरा अवसर है। प्रार्थनासे भावना प्रवित्र होती है।

'मित्र' मृत्युसे बचानेवाला अभिमानी देवता है और वरुण अनिष्टोंका निवारक रात्रि-अभिमानी। अदिति अखण्डनीय अथवा उदीन देवमाता हैं। सिन्धु स्वन्दनशील जलका अभिमानी देवता है और पृथिवी भूलोककी अविष्टातृ देवता है, द्यौ द्युलोकका देवता है।

इन सब देवताओंसे प्रार्थना करनेका अर्थ है—हमारे जीवनमें पापकर्म, दुःख-दारिद्र्य और गर्हणीयके लिये कोई स्थान न रह जाय और हम शुद्ध सच्चरित्र, कर्मण्य एवं अम्बुदयशील होकर ज्योतिर्मय ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके अधिकारी हो जायें।

श्रीसूर्यदेवका विवेचन

(श्रीपीताम्बरापीठस्थ राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज, दतिया)

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

(-कृत्येव १ । ३५ । २)

यह वैदिक मन्त्र भगवान् सूर्यकी पूजामे विनियुक्त है । इसमें उनके धाम एवं स्थितिका वर्णन है । कृष्णवर्ण रजोगुणके द्वारा वे संसारमें अमृत और मरण दोनोंके नियामक हैं । हिरण्यरूप रथके ऊपर बैठे हुए ऐसे सविता (देव) सब जगत्के प्रेक्षक एवं प्रेरक हैं । चौढ़ह भुवनोंको देखते हुए वे अपना व्यवहार-कार्य कर रहे हैं । विद्वानोंकी मान्यता है कि कालका नियमन चन्द्र और सूर्य दोनोंके द्वारा हो रहा है । सूर्य दिनके स्थामी तथा चन्द्रमा रात्रि-विशेषकर तिथि-नक्षत्रोंके स्थामी हैं । तिथियों सोलह हैं, ये ही चन्द्रमाकी पोडश कलाएँ हैं । सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं, जिनसे सौरपथके वारह मास निर्मित होते हैं । प्रत्येक मासमें कृष्ण और शुक्र दो पक्ष आते हैं । सरोदयशास्त्रमें भी कृष्णपक्ष सूर्यका और शुक्रपक्ष चन्द्रमाका माना गया है । मन्त्रमें जो ‘आकृष्णेन’ पद आया है, उससे यह वात स्पष्ट होती है । योगशास्त्रमें इडा-पिङ्गला जो दो नाडियाँ हैं, उनमें इडा चन्द्रमाकी तथा पिङ्गला सूर्यकी नाड़ी मानी गयी है । नियमानुसार इन्हीं दो नाडियोंमें पॉचों तत्त्वोंका प्रवाह होता है । आनन्द और क्रियाके अधिष्ठान चन्द्र है । ज्ञानके अधिष्ठान सूर्य है । इन्हीं सूर्यके ध्यानमें—

आदित्यं सर्वकर्त्तरं कलाद्वादशसंयुतम् ।
पद्महस्तद्वयं वन्दे सर्वलोककभास्करम् ॥

—इत्यादि क्षोक कहे गये हैं, जो मन्त्रार्थको स्पष्ट करते हैं । इसीलिये महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके विभूति-पाद, २६में—‘भुवनज्ञानं सूर्यं संयमात्’ सूर्यमें संयम करनेसे भुवनोंका ज्ञान होता है—कहा है । यह मन्त्रमें आये—‘भुवनानि पश्यन्’ पदको स्पष्ट करता

है । सत्ताईस नक्षत्र, वारह राशियों और नवग्रह —ये सब काल-तत्त्वके सूचक हैं । इनमें सूर्य प्रधान हैं । कालतत्त्व इन्हींके द्वारा नियमन करता है । भगवान् सूर्यके दैविक पक्षका यह परिचय है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च—सम्पूर्ण चराचर जगत्की आत्मा सूर्य है । आव्यात्मिक पक्षमें जिसे साधनामार्गमें परालिङ्ग कहते हैं, शिवका सर्वोत्कृष्ट रूप है । इसमें शिव और विष्णुका अभेद रूप है । इसीको उपनिषदों तथा पुराणोंमें विष्णुका परम पद कहा है—‘तद् विष्णोः परमं पदम् ।’

जब वही परमतत्त्व भक्तोंकी रक्षा, धर्मकी स्थापना और दुष्टोंके दमनार्थ चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होता है, तब उसे श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं । सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाला यही परम तत्त्व श्रीरामचन्द्र है । तन्त्रसाधनामें ऐसा माना जाता है कि चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होनेवाला परमतत्त्व आनन्द, भैरव है, सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाले शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग है, अग्निमण्डलकी सप्त जिहाएँ हैं । इसका मुण्डकोपनिषद्में इस प्रकार वर्णन है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
चिस्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी
लेलायमाला इति सप्त जिहा ॥

(२ । ४)

इनसे प्रकट होनेवाले सप्त भैरव हैं, जिनके नाम इस प्रकार है—मन्थानभैरव, फट्कारभैरव, षट्चक्रभैरव, एकात्मभैरव, हविर्भक्ष्यभैरव, चण्डभैरव और भ्रमरभास्करभैरव ।

महात्मा तुलसीदासने रामायणमें श्रीरामजी एवं शिवजीका अभेदसम्बन्ध प्रतिपादन किया है । इसका

पुराणोंमें भी स्पष्टस्तुतमें वर्णन आया है। मन्त्रमें आये अमृतपदसे उक्त आध्यात्मिक स्वरूप और मर्त्यपदसे ससारका जीवन-मरण खमात्रतः स्पष्ट है। तान्त्रिक साधनामें इसी परमतत्त्वको इस प्रकार वराया गया है—

चित्रभानुशशिभानुरूपकः:

त्रिविकेण नियतेषु वस्तुषु ।
तत्त्वदात्मकतया विमर्शनं
तत्समष्टिगुरुपादुकाजपः ॥

(चिदिलस २)

अग्नि, चन्द्र, सूर्य ये ही त्रिविन्दु प्रत्येक तत्त्व एवं पदार्थमें विद्यमान हैं। इन तीनोंका समष्टिगुरुप ही परब्रह्म-स्वरूप गुरुका स्मरण है। चन्द्रविन्दुसे श्रीकृष्ण, सूर्य-विन्दुसे श्रीराम तथा अग्निविन्दुसे श्रीपरशुराम-अवतार माने गये हैं। तीनोंकी एकता उस परमतत्त्वमें वरायी गयी है। इनका आराधन करनेसे जीवका सर्वप्रकारका कल्याण होता है। शब्दब्रह्मका आविर्भवि भी उक्त

तीनों मण्डलोंसे हुआ है। चन्द्रमण्डलसे प्रोडश खर, सूर्यमण्डलसे चौबीस व्यञ्जन तथा अग्निमण्डलसे आठ वर्ण-तक आविर्भूत हुए हैं। म-वर्ण त्रिन्दुस्थानीय है। इसी शब्दब्रह्मसे समस्त व्यावहारिक ज्ञान होता है।

गीता (१५। १२)में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्ग्रासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाद्यौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

‘जो चन्द्र, सूर्य और अग्निमें तेज है, वह मैं हूँ। वह मेरा ही स्वरूप है।’ (वस्तुतः सभी तेजस्वी पदार्थ उसीके तेजसे अनुप्राप्ति है।)

‘आरोग्यं भास्करादिच्छेत्’ (म० पु०) मानसिक और वाह्य दोनों रोगोंकी निवृत्ति भगवान् सूर्यकी उपसनासे हो जाती है। और भी सूर्यभगवान्के अनेक रहस्य हैं, जो साधना करनेवालोंको व्यक्त हो जाते हैं। अतः सूर्याध्यान आवश्यक कर्तव्य है।

प्रभाकर नमोऽस्तु ते

[श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकम्]

आदिदेव तमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर । दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
ससाश्वरथमारुढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् । इवेतपश्चधरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ २ ॥
लोहितं रथमारुढं सर्वलोकपितामहम् । महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ३ ॥
त्रिगुणं च महाद्वारं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम् । महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ४ ॥
द्वृहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च । प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ५ ॥
वन्धूकपुष्पपञ्चकाशं हारकुण्डलभूषितम् । एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ६ ॥
तं सूर्यं जगकर्तारं महातेजःप्रदीपयम् । महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ७ ॥
तं सूर्यं जगतां नाथं श्नानविद्वान्मोक्षदम् । महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमास्यहम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टक सम्पूर्णम् ।

हे आदिदेव भास्कर ! आपको प्रणाम है। हे दिवाकर ! आपको नमस्कार है। हे प्रभाकर ! आपको प्रणाम है, आप मुक्षपर प्रसन्न हो ॥ १ ॥ सात घोड़ोवाले रथपर आरुढ़, हाथमें श्वेत कमल धारण किये हुए, प्रचण्ड तेजस्वी कश्यपकुमार सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ लोहित वर्णके रथपर आरुढ़ सर्वलोकपितामह महापापहरी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ जो त्रिगुणमय-ब्रह्म, विष्णु और शिवस्वरूप हैं, उन महापापहरी महान् चीर श्रीसूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ जो वडे हुए तेजके पुञ्ज और वायु तथा आकाशके स्वरूप हैं, उन समस्त लोकोंके अधिपति भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ जो वन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान रक्तवर्ण हैं और हार तथा कुण्डलोंसे विभूषित हैं, उन एक चक्रधारी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ महान् तेजके प्रकाशक, जगत्के कर्ता, महापापहरी उन सूर्यभगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥ श्नान-विज्ञान तथा मोक्षके प्रदाना, वडे-से-त्रडे पापोंके अपहरणकर्ता, जगत्के स्वामी उन भगवान् सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

—६३—

कल्याण



भगवान् सूर्यनारायण

भगवान् आदित्यका ध्यान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जो जिस वस्तुको परम आवश्यक मानकर उसे प्राप्त करना चाहता है, उसके चित्तसे उस वस्तुका चिन्तन स्वाभाविक ही बार-बार होता है एवं उसके चित्तमें अपने ध्येय पदार्थकी धारणा दृढ़ हो जाती है और आगे चलकर वही धारणा—चित्तवृत्तियोके सर्वथा ध्येयाकार बन जानेपर ‘ध्यान’के रूपमें परिणत हो जाती है। जितने कालतक वृत्तियों ध्येयाकार रहती हैं, उतने कालकी स्थितिकी ध्यान कहा जाता है। ध्यानकी वर्णी महिमा है। भगवान् ने श्रीमद्भागवतमें कहा है कि जो पुरुष निरन्तर विषयोका ध्यान करता है, उसका चित्त विषयमें फँस जाता है और जो मेरा ध्यान करता है, वह मुझमें लीन हो जाता है। योग अनेक है, जैसे—भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, ल्ययोग, मन्त्रयोग, हठयोग और निष्काम कर्मयोग, इनमेंसे किसी-न-किसी रूपमें सभी योगमें ध्यानकी आवश्यकता और उपयोगिता है। इस ध्यानसे ही भगवान् के स्वरूपमें समाधि और ध्यानसे ही भगवान् की प्राप्ति भी होती है।

ध्यानके अनेक प्रकार है। साधककों अपने-अपने अधिकार, रुचि और अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारके ध्यानका अभ्यास करना चाहिये; परंतु साथ ही मनमें इतना निश्चय रखना चाहिये कि सत्य तत्त्व परमात्मा एक ही है। वे एक ही अपनेको अनेक रूपमें धारण कर लेते हैं। भक्त जिस रूपमें उन्हें पकड़ना चाहे, उसके उसी रूपमें वे पकड़ें आ जाते हैं। निर्गुण, निराकार और सगुण, साकार सभी उन्हींके रूप हैं। श्रीशिंगु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, शक्ति, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण आदि सभी

एक ही हैं। प्राप्त मार्गके अनुभव भिन्न-भिन्न होते हुए भी सबके अन्तमें प्राप्त होनेवाला सत्य एक ही है। इसी सत्यके कोटिशः विविध प्रकाश हैं। हम किसी भी प्रकाशका अवलम्बन करके उस मूल प्रकाशको पा सकते हैं; क्योंकि ये सभी प्रकाश न्यूनाधिक शक्तिवाले दीखनेपर भी वस्तुतः उस मूल सत्यसे सर्वथा अभिन्न और पूर्ण ही हैं। वे स्वयं ही विभिन्न प्रकाशोंमें अवर्तीर्ण होकर अपनेको अपने ही सामने प्रकाशित कर रहे हैं।

ध्यानके समय शरीर, मस्तक और गलेको सीधा रखना चाहिये। रीढ़की हड्डी सीधी रहे। कुवड़ाकर न बैठे। जबतक ध्येयके आकारकी वृत्ति सर्वथा न बने, शरीरका बोध बना रहे और सासारिक रुकुरणाएँ मनमें उठती रहे, तबतक इष्ट* मन्त्रका जप करता रहे और बारबार चित्तको ध्येयमें लगानेकी चेष्टा करता रहे। ल्य (नींद), चिक्केप, कपाय, रसाखाद, आलस्य, प्रमाद एवं दम्भ आदि दोपोसे बचे रहनेके लिये भी प्रयत्नशील रहे। यह विधि नियमित ध्यानके लिये है। यो तो साधक-को सभी समय, सभी क्रियाओंमें अर्थात् खाते-पीते-सोते, उठते-बैठते, सुनते-बोलते तथा चलते-फिरते चित्तको संसारकी व्यर्थ रुकुरणओंसे रहित करके अपने इष्ट—सूर्य-नारायणका चिन्तन और ध्यान करना चाहिये। ध्यानके समय ऑखे मूँद लेनी चाहिये अथवा नासिकाके अग्र-भागपर दृष्टि जमाकर रखनी चाहिये।

ऑखे मूँदकर अथवा अभ्यास हो जानेपर प्रत्यक्ष सूर्यमण्डलमें देखे कि उद्दिव्य रथके भीतरी भागमें पश्चासनपर

* प्रत्येक देवताके मन्त्र भिन्न होते हैं, और वे अनेक भी होते हैं। साधारणतः इष्ट नाम-मन्त्र—ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ सूर्याय नमः। प्रभृति सर्वसाधारणके शेय हैं।

विश्वात्मा चतुर्भुज, परम सुन्दर प्रफुल्ल कमलसदृशा
मुखमण्डलवाले हिरण्यवर्ण पुरुष विराजित हैं। उनके
केश, मूँछे और नख भी हिरण्यमय हैं। उनका दर्शन
पायोंका नाश करनेवाला है। वे सभी लोगोंको अभय
देनेवाले हैं। उनके ललाटकी आमा पद्मके गर्भपत्रके
समान लाल हैं। वे समस्त जगत्के प्रकाशक और सब
लोगोंके अद्वितीय साक्षी हैं। मुनिजन उनका दर्शन
और स्तवन कर रहे हैं।' ऐसे भगवान् आदित्यका दर्शन
करके यह निश्चय करे कि वे आदित्य मुझसे अभिन्न
हैं। फिर इस निश्चयके साथ ही अपनेको उनमें चित्त-
वृत्तिके द्वारा विलीन कर दे।

ध्यानकी अमित महिमा है। महर्षि पतञ्जलिने
अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच
महान् क्लेश वताये हैं। संयमादि क्रियायोगसे ये क्षीण
होते हैं—उनका ठमन होता है, परतु समूल नाश नहीं
होता। वीजस्त्रपसे ये छिपे रह जाते हैं और अनुकूल
अवसर और सङ्घ पाकर पुनः अद्वित एवं फुलिल्ल-
फलित हो जाते हैं; परंतु ध्यानयोगी तो क्रमशः पूर्ण
समाधिमें परिणत होकर उनके वीजतक्को नष्ट कर देता
है। ध्यानका आनन्द कोई लिखकर नहीं वता सकता।
इसके महत्त्व और आनन्दका पता तो साधना करने-
पर ही लगता है। (—भगवच्चर्चा भाग तीनसे)

—३४६—

सूर्योपासनाके नियमसे लाभ

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान् सूर्य परमात्माके ही प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। ये
आरोग्यके अविष्टार देवता हैं। मत्स्यपुराण (६७ ।
७१) का वचन है कि 'आरोग्यं भास्करादि-
च्छेत्' अर्थात्—आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी
चहिये; क्योंकि इनकी उपासना करनेसे मनुष्य नीरोग
रहता है। वेदके कथनानुसार परमात्माकी आँखोंसे
सूर्यकी उत्पत्ति मानी जाती है—चक्षोः सूर्योऽजायत ।

श्रीमद्भगवद्गीताके कथनानुसार ये भगवान्की आँखें
हैं—शशिसूर्यनेत्रम् । (—११ । १९)

श्रीरामचरितमानसमे भी कहा है—नयन दिवाकर
कच घन माला (—६ । १५ । ३) आँखोंके सम्पूर्ण रोग
सूर्यकीउपासनासे ठीक हो जाते हैं।

भगवान् सूर्यमें जो प्रभा है, वह परमात्माकी ही प्रभा
है—वह परमात्माकी ही विभूति है—

(१) प्रभास्मि शशिसूर्ययोः (—गीता ७ । ८)

(२) यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाम्नौ तत्तेजो विज्ञ मामकम् ॥

(—गीता १५ । १२)

भगवान् कहते हैं—'जो सूर्यगत तेज समस्त
जगत्को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा एवं
अग्निमें है, उस तेजको तू मेरा ही तेज जान ।'

इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा और सूर्य—ये दोनों
अभिन्न हैं। सूर्यकी उपासना करनेवाला परमात्माकी ही
उपासना करता है। अतः नियमपूर्वक सूर्योपासना करना
प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। ऐसा करनेसे जीवनमें
अनेक लाभ होते हैं; आशु, विद्या, बुद्धि, वल, तेज और
मुक्तितक्की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसमें संदेह नहीं
करना चाहिये।

सूर्योपासकोंको निम्न नियमोंका पालन करना
परम आवश्यक है—

(१) प्रतिदिन सूर्योदयके पूर्व ही शश्या त्यागकर
शौच-स्नान करना चाहिये।

(२) स्नानोपरान्त श्रीसूर्यभगवान्को अर्घ्य देकर
प्रणाम करे।

(३) सन्ध्या-समय भी अर्ध देकर प्रणाम करना चाहिये ।

(४) प्रतिदिन सूर्यके २१ नाम, १०८ नाम या १२ नामसे युक्त स्तोत्रका पाठ करे । सूर्यसहस्रनाम-का पाठ भी महान् लाभकारक है ।

(५) आदित्य-हृदयका पाठ प्रतिदिन करे ।

(६) नेत्रोगसे बचने एवं अंधापनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्का पाठ प्रतिदिन करके भगवान् सूर्य-को प्रणाम करे ।

(७) रविवारको तेल, नमक और अदरखका सेवन नहीं करे और न किसीको करावे ।

(८) रविवारको एक-भूक्त करे । हविष्याच्च खाकर रहे । ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे ।

उपासक स्मरण रखें कि भगवान् श्रीरामने आदित्य-हृदयका पाठ करके ही रावणपर विजय पायी थी । धर्मराज युधिष्ठिरने सूर्यके एक सौ आठ नामोका जप करके ही अक्षयपात्र प्राप्त किया था । समर्थ श्रीरामदासजी भगवान् सूर्यको प्रतिदिन एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे । संत श्रीतुलसीदासजीने सूर्यका स्तवन किया था । इसलिये सूर्योपासना सबके लिये लाभप्रद है ।

पुराणोंमें सूर्योपासना

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

एकमात्र है ध्येय सुवन्नभास्कर भगवन्ता ।

ध्यान त्रिकाल महान करें ऋषि मुनि सब सन्ता ॥

क्षमलासन आसीन भक्त ऊँडल श्रुति वारे ।

कनक करनि केयूर मुकुट मणिमय शिर धारे ॥

वर्ण सुवर्ण समान वपु, सब कर्मनिके साक्ष्य हैं ।

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष है ॥

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव है । हम सब सनातन वैदिक धर्मविलम्बी सर्वदा-सदा सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं; क्योंकि वे हमारे सभी शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी हैं । इसीलिये हम सब कर्मोंके अन्तमें सूर्य भगवान्‌को अर्ध देकर कहते हैं—‘हे भगवान् विवस्वान् ! आप विष्णुके तेजसे युक्त हैं, परम पवित्र हैं, सम्पूर्ण जगत्‌के सविता है और समस्त शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं ।’* हमारा कोई कर्म सूर्य-नारायणसे छिपा नहीं है । इसीलिये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायकाल हम त्रिपदा गायत्रीके माध्यमसे सूर्य-

नारायणकी उपासना करते हैं । हम द्विजातियोंको बाल्यकालसे ही गायत्रीकी दीक्षा दी जाती है । गायत्री-मन्त्र सूर्यनारायणकी उपासना ही है । गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं । गायत्री वेदोकी माता है । चारो वेदोमें गायत्रीमन्त्र है । गायत्रीकी उपासना करनेवालोंको अन्य किसी मन्त्रकी उपासनाकी अनिवार्यता नहीं है । गायत्री सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय है । इसीलिये देवीभागवतमें कहा है—केवल गायत्री-उपासना ही नित्य है । इसी वातको समस्त वेदोने कहा है । गायत्री-उपासनाके विना ब्राह्मणका अधःपात छोड़ता है । द्विजाति केवल गायत्रीमें ही निष्णात हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है । मनुजीने लिये कहा है—द्विज अन्य मन्त्रोमें श्रम करे चाहे न करे, परंतु जो द्विज गायत्रीको छोड़कर अन्य मन्त्रोमें श्रम करता है वह नरकका भागी होता है । इसीलिये सत्य-युगादिमें ऋषि-मुनि तथा उत्तम द्विज गायत्रीपरायण होते थे । †

*—नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्करे विष्णुतेजसे ।

†—गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदः समीरिता । यथा विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥

तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि । गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

सूर्यनारायणमें गायत्री-मन्त्रद्वारा अपने इष्टकी उपासना कर सकते हैं।

समस्त पुराणोंमें गायत्री-महिमा तथा सूर्योपासनाको सनातन बताया गया है। उनमें सूर्योपासनापर वहाँ बल दिया गया है। वाराहपुराणकी कथा है— श्रीकृष्णभगवान् का पुत्र साम्व अत्यन्त ही सुन्दर था। उसके सौन्दर्यके कारण भगवान् की सोलह हजार एक सौ रानियोंके मनमें कुछ विकृति पैदा हो गयी। भगवान् ने नारदजीके द्वारा इस ब्रातको जानकर और उसकी परीक्षा करके साम्वको कोढ़ी होनेका शाप दे दिया। तब नारदजीने उसे सूर्योपासनाका ही उपर्युक्त दिया ॥। साम्वने मथुरामें जाकर सूर्यनारायणकी उपासना की। इससे उसका कुष्ठरोग चल गया। फिर तो वह सुवर्णकं समान कान्तिवाला हो गया, और मथुरामें उसने सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित की। मार्कण्डेयपुराणमें मार्तण्ड-सूर्यकी उत्पत्तिका तथा उनकी सज्जा और छाया दोनों पनियोंका और छः सतानोंका विस्तारसे वर्णन आया है। अन्तमें कहा गया है कि जो सूर्यसम्बन्धी देवोंके जन्मकी तथा सूर्यमाहात्म्यको लुनता है या पढ़ता है, वह आपक्षिसे छूट जाता है और महान् यश प्राप्त करता है। इसके

मुननेसे दिन-रात्रिमें किये हुए पाप नष्ट हो जाने हैं। विष्णुपुराणमें प्रजापालके पूष्टनेपर महानपा महर्षिने बताया है कि जो सनातननारायण-ज्ञानशक्ति अर्थात् ब्रह्मने जब पक्षमें दो होनेकी इच्छा की, तभी वह अक्षिं तेजस्वपमें सूर्य बनकर जगतमें प्रकट हुई। वे नारायण ही तेजस्वपमें सूर्य बनकर प्रकाशित हो रहे हैं। इतना बताकर फिर सूर्यकं मण्डलका और उनके रथ पवत्रके परिमाण आदिका विस्तारसे वर्णन किया है। उनके रथके साथ कौन-कौनसे देवता, ऋषि, अप्सरा, गन्धर्व आदि विस्त-किस मासमें चलते हैं, उपासनाके लिये इसका वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भागवतमें भी आया है। इन द्वादशा-दित्योंकी पृथक्-पृथक् मासमें उपासना करनेकी पद्धति बतायी गयी है। श्रीमद्भागवतमें इस उपासनाका माहात्म्य बताते हुए कहा गया है—‘ये सब सूर्यभगवान् की विभूतियों हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।’ फिर अन्तमें सूर्यको साक्षात् नारायणका स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि ‘अनादि, अनन्त, अजन्मा,

..... कुर्यादन्यत्र वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम् ।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पगः । देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वद्विजोत्तमाः ॥ (—देवीभागवत्)

* ततस्तु नारदेनैव साम्बगापविनाशकः । आदिष्ठे हि महान् धर्म आदित्यारायनं प्रति ॥
साम्व साम्व महावाहो शृणु जाम्बवतीमुत् । पूर्वाच्चले च पूर्वाहे उद्यतं तु विभावसुम् ॥
नमस्कुर यथान्वय वेदांपनिपदादिभिः । त्वयार्चितो रविः भूत्वा तुष्टिं वासति नान्यथा ॥

(—वाराहपु० ३० १७७ । ३२—३४)

†..... य इदं जन्म देवाना रवेमाहात्म्यमेव च ॥
विवस्तम्भु जातानां शृणुयाद् वा पठेत् तथा । आपद प्राप्य मुच्येत् प्राप्नुयाच्च महद्यगः ॥
अहोरात्रकृतं पापमेतन्द्यमयति श्रुतम् । माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥

(—मार्कण्डेयपुराण)

* एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः । स्मरतां सन्थयोर्नृणां हस्तयंहो दिने दिने ॥

(—श्रीमद्भा० १२ । ११ । ४५)

भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोका पालन-पोषण करते हैं । * कूर्मपुराणमें भगवान् सूर्यनारायणकी अमृतमयी रश्मियोका विस्तारसे वर्णन किया गया है और कौनसे ग्रह किस अमृतमयी रश्मिसे तृप्त होते हैं, इसका वर्णन करते हुए अन्तमें कहा गया है—‘चन्द्रमाका कभी नाश नहीं होता । सूर्यको निमित्त बनाकर उनकी रश्मियोके द्वारा देवतागण अमृत-पान करते हैं । उन्हींके कारण चन्द्रमामें क्षय और वृद्धि दिखायी

देती है ।’ † इसी पुराणके १०१ अध्यायमें सूर्य-चन्द्रके परिभ्रमणकी गतियोका वर्णन है ।

निष्कर्ष यह कि—वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणमें सूर्यकी सर्वज्ञता, सर्वाविद्यता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं ।

—५३५—

भगवान् सूर्यकी सर्वव्यापकता

(लेखक—वीतराग स्वामी अनन्तश्री नारायणाश्रमजी महाराज)

सूर्यकी उत्पत्ति

सूर्यकी उत्पत्ति—संसारकी उत्पत्तिके पहले सर्वत्र एकमात्र अन्धकार ही भरा हुआ था—‘तमः आसीत्’—श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण दिशाएँ अवर्णात्मक तमसे व्याप्त थीं । सर्वशक्तिमान् परमात्मा हिरण्यगर्भका परम उत्कर्प तेज उस दिग्नन्तव्यापिनी अन्धकारमयी निशामें आत्मप्रकाशके रूपमें उदित हुआ—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च’—और उस अध्यात्म-प्रकाशके आविर्भावसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार समाप्त हो गया ।

व्याकरण-शास्त्रकी दृष्टिमें सूर्य शब्द ‘सृ’ धातुसे बना है । इसका अर्थ है ‘गतौ यस्मात् परो नास्ति’ अर्थात् जिसके प्रकाशके समान अन्यतम प्रकाश इस भूतलापर नहीं है, उसे सूर्य कहते हैं ।

शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत्संतिष्ठते यतः ।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषियः ॥

(—साम्बुद्धु० ९ । १९)

* एव ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिश्चरः ।

+ न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते । एव सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः ॥

कल्पे कल्पे स्वमात्मान व्यूह लोकानवत्यजः ॥

(—श्रीमद्भा० १२ । ११ । ५०)

(—कूर्मपुराण अ० ४०)

द्वयागण-नेत्रोंके मध्यमें आविर्भूत होकर सम्पूर्ण संसारके तम्-(अन्धकार)का अन्त कर डाला—

यथा पुर्यं कदम्बस्य समन्तान् केसरैर्द्वृतम् ।
तर्यैव तेजसो गोलं समन्नाद् रश्मिमिद्वृतम् ॥

(-गान्ध्रु० ७ । ३५)

जिस प्रकार कदम्बका फूल अनिमुन्दर केशर-किञ्चल्कने आद्वृत रहता है, उसी प्रकार भगवान् सहस्ररथि सूर्य भी अखण्ड मण्डलाकार तेजःपुञ्ज-रश्मिसे सुभी दिशाओंमें व्याप्त हो गये हैं। उस गोल आकारमें व्याप्त तेजःपुञ्जके मध्य वेदमें वर्णित सहस्र-गीर्जा भगवान् हिरण्यगर्भ उपस्थित थे। जिस प्रकार किञ्चल कुम्भमें अग्नि व्याप्त होकर अग्नि-कुम्भके सहश्र हो जाता है, उसी प्रकार सहस्र रश्मिवाले सूर्यका दिव्य रश्मिमण्डल अग्निकुम्भके आकारमें होकर पृथ्वी एवं आकाशमण्डलको संसन्द करने लगा।

सप्त तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिकः ।
पाद्यवेनोर्जग्यदैवं प्रतपन्तेप सर्वतः ॥

(-गान्ध्रु० ७ । ५६)

परम दिव्य तेजस्मृह ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक ईमिनान हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं। उनका कार्य पाताललोकसे द्रष्टव्योक्त-पर्यन्तके चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले ग्रागिणोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करता है। सूर्य-मण्डलव्याप्ति पश्चात् तेज ऊर्ध्वकी ओर द्रष्टव्योक्त-पर्यन्त उद्दीपन करता है। उम तेजकी शक्ति संज्ञा है। दूसरा तेज अगेगामी—पृथ्वीसे पाताल-पर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'श्लाय' है। पुराणी कथाओं अनुसार संज्ञा नया छाया—ये दोनों दृष्टिकों नहियां मानी गयी हैं।

सर्वत् नूर्दीर्घीं वे दोनों दृष्टिकों शक्तिके स्थानपर निर्मल दर्शन रखती हैं। पुराण-कथाके अनुसार

भगवान् सूर्यका तेज अग्निके समान अत्यन्त दीप्तिमान् तथा प्राणिमात्रके लिये असश था। युग-निर्माणके समय सम्पूर्ण मुनि एवं महर्षि भगवान् सूर्यके अप्रधर्ष्य तेजसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे। देवताओं, मुनियों एवं महर्षियोंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने त्वष्टासे सूर्यके तेजपर नियन्त्रण करनेके लिये कहा। त्वष्टाने भ्रामी नामक यन्त्रद्वारा भगवान् सूर्यके तेजको नियन्त्रित कर व्यवहारमें उपयुक्त करने योग्य बना दिया। तत्पश्चात् संज्ञा तथा छाया नामकी वे दो पक्षियाँ सूर्यके तेजका उपभोग करने लगीं।

सूर्यका ऊर्ध्वगामी द्यु-तेज संज्ञासे संयुक्त हो जानेपर सम्पूर्ण संसारके प्राणियोंमें ज्ञान-संवित् चेतना-रूपसे स्थित हुआ। अतः संज्ञासे सम्बद्ध होकर सब प्राणी निःश्रेयस्‌की ओर चलने लगे। दूसरा अघोगामी तेज छाया-शक्तिसे संयुक्त हुआ। फिर तो छायासे अनुप्राणित होकर संसारके सब प्राणी क्रिया-कर्मकी ओर प्रवृत्त होने लगे। अर्थात् संज्ञासे संवित्-चेतना—ज्ञानद्वारा श्रेय तथा छायासे कर्मपरायण क्रियादश होकर प्रेयकी ओर समस्त संसारके प्राणी प्रवृत्त हुए।

देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है। वह मुनि एवं महर्षियोंके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है। श्रेयोगामी शक्ति संज्ञाका भगवान् सूर्यके द्युलोकव्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेवर विद्या नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। यह दैवात्य शक्तिके नामसे विद्यात हुई। देवता, मुनि एवं महर्षि इसी श्रेयोगामी विद्या शक्तिकी उपायना श्रद्धा-भक्तिसे करने लगे। 'विद्ययासृतमद्वतुते'—इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपायनासे उन्हें अमृत-पानका अवसर मिल। प्रस्तु यह होता है कि अमृत किस मार्गमें प्राप्त हुआ?

केन मार्गेणामृतत्वमश्नुते इत्युच्यते
तद्यत्तस्त्यमसौ स आदित्यो य एव एतस्मि-
न्मण्डले पुरुषः (शाङ्करभाष्य) ।

उत्तरमे—सत्य ही आदित्य है । उस आदित्य-
में विद्यमान हिरण्यम् पुरुष ही अमृत है । मुनि,
महर्षि और देवताओंने उसी हिरण्यम् तेजकी उपासना-
मयी विद्याके द्वारा अमृत-पान किया । अविद्या
प्रेय-मार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है । भगवान्
सूर्यका अधोव्यास तेज छायासे संयुक्त होनेपर यानी
छाया और तेजके परस्पर मिलनसे अविद्या नामकी
कन्या उत्पन्न हुई । छाया अविद्याकी जननी है ।
अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी
पड़ता है ।

वेद-शास्त्रके जाननेवाले विद्वान् भी प्रेय—ऐहिक
विषय-सुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी
प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं । अविद्या
कर्मका स्वरूप है । कामनासे युक्त होकर कर्म करनेपर
अदर्शनात्मक तमोव्यापिनी बुद्धि उद्दित होती है ।
इससे मनुष्य परस्परमे न पहचानकर अभिमानके
वशीभूत हुए कर्म करते हैं ।

सूर्यरश्मि-ग्रह-मण्डल

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्ये व्यवस्थितः ।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम् ॥
तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः ।
त्रिणिरश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च ॥
(—साम्बूपु० ७ । ५७-५८)

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं । जिस प्रकार
घरके मध्यमे उज्ज्वल दीपक ऊपर-नीचे—सम्पूर्ण घरको
प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के
अधिष्ठित सूर्य हजारो रश्मियोंसे ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचेके
भागोंको प्रकाशित करते हैं ।

सूर्यका तेज अग्निकुम्भके समान आकाशके मध्य
चमकता है । उस अखण्डमण्डलाकार तेजसे उत्पन्न
किरणें ही रश्मि हैं । सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्नि-
का ऊष्मा परस्पर मिल जानेपर सूर्यकी रश्मि बनती है ।
सूर्यकी हजारो रश्मियोंमें तीन सौ रश्मियाँ पृथ्वीपर,
चार सौ चान्द्रमस पितर-लोकपर तथा तीन सौ देव-
लोकपर प्रकाश फैलाती हैं । रश्मिके साथ सूर्य-तेज-
का प्रकाश तथा अग्नि-तेजका ऊष्मा—दोनोंके
परस्पर मिश्रणसे ही दिन बनता है । केवल अग्निके
ऊष्माके साथ सूर्यका तेज मिलनेपर रात्रि होती
है । यथा—

प्रकाशयं च तथौष्णयं च सूर्यग्न्योर्ये च तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादात्यायेते दिवानिशम् ॥
(—साम्बूपु० ३० ७)

सूर्य दिन-रातमे समान प्रकाश करते हैं । उनकी
रश्मियाँ रात्रिमे अन्धकार तथा दिनमे प्रकाश उत्पन्न
करती हैं । सूर्यका नित्य प्रकाशमान तेज दिनमे,
प्रकाश उष्णमे तथा रात्रिमे केवल अग्नि उष्णमें
विद्यमान रहता है । सूर्यकी रश्मियाँ व्यापक हैं । परस्पर
मिलकर गरमी, वर्षा-सरदीका वातावरण उत्पन्न करती
हैं ।

नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
चन्द्राद्याश्च ग्रहाः सर्वे विशेषाः सूर्यसम्भवाः ॥
(—साम्बूपु० ७ । ६०)

अखण्डमण्डलाकारमें व्याप्त भगवान् सूर्यका तेज
एक है । जिस प्रकार उनकी रश्मियोंसे दिन-रात्रि, गरमी-
वर्षा, सरदी उत्पन्न होकर नियमित व्यवहारमे प्रतिष्ठित
है, उसी प्रकार चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि
ग्रह तथा नक्षत्र-मण्डल सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न होकर उसीमें
प्रतिष्ठित—अधिष्ठित रहते हैं ।

सूर्यकी हजारो रश्मियाँ हैं—जैसा कि पहले वर्णन
किया जा चुका है; उनमे सात रश्मियाँ सुख्य हैं । ये

सात रश्मियाँ ही ग्रह-नक्षत्र-मण्डलकी प्रतिष्ठा मानी गयी हैं। ये सात रश्मियाँ क्रमशः (१) सुपुण्णा, (२) सुरादना, (३) उदन्वसु-सयष्ठसु, (४) विश्वकर्मा (५) उदावसु, (६) विश्वव्यचा, अखराट् तथा (७) हरिकेश हैं। उक्त रश्मियोंका कार्य क्रमशः इस प्रकार है—

१-सुपुण्णा—यह रश्मि कृष्णपक्षमें क्षीण चन्द्र-कलाओपर नियन्त्रण करती है और शुक्लपक्षमें उन कलाओंका आविर्भाव करती है। चन्द्रमा सूर्यकी सुपुण्णा रश्मिसे पूर्णकला प्राप्त करके अमृतका प्रसारण करते हैं। संसारके सभी जड़-चेतन प्राणी चन्द्रमाकी पूर्णकलासे क्षारित अमृतको सूर्य-रश्मिसे उपलब्धकर जीवित रहते हैं।

२-सुरादना—चन्द्रमाकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गयी है। सूर्यकी रश्मिसे ही देवता अमृत-पान करते हैं। इसलिये वे चन्द्रमाके नामसे विद्यात हैं। चन्द्रमामें जो शीत किरणे हैं, वे सूर्यकी रश्मियाँ हैं। इसीसे चन्द्रमा अमृतकी रक्षा करते हैं।

३-उदन्वसु—इस सूर्य-रश्मिसे मङ्गल ग्रहका आविर्भाव हुआ है। मङ्गल प्राणिमात्रके शरीरमें रक्त संचालन करते हैं। इसी रश्मिसे प्राणिमात्रके शरीरमें रक्तका संचालन होता है। यह सूर्य-रश्मि सभी प्रकारके रक्त-दोपसे प्राणियोंको मुक्त कराकर आरोग्य, ऐश्वर्य तथा तेजका अभ्युदय कराती है।

४-विश्वकर्मा—यह रश्मि वृध नामक ग्रहका निर्माण करती है। वृव प्राणिमात्रके शुभचिन्तक ग्रह है। इस रश्मिके उपयोगसे मनुष्यकी मानसिक उद्घिन्ता शान्त होती है—शान्ति मिलती है।

५-उदावसु—यह रश्मि वृहस्पति नामक ग्रहका निर्माण करती है। वृहस्पति प्राणिमात्रके अभ्युदय—निःश्रेयसप्रदायक है। शुरुके अनुकूल-प्रतिकूलमें मनुष्यका उत्थान-पतन होता है। इस सूर्य-रश्मिके सेवनसे

मनुष्यके सभी प्रतिकूल वातावरण निरस्त होते और अनुकूल वातावरण उपस्थित होते हैं।

६-विश्वव्यचा—इस सूर्य-रश्मिसे शुक्र तथा शनि नामक दो ग्रह उत्पन्न हुए हैं। शुक्र वीर्यके अधिष्ठान है। मनुष्यका जीवन शुक्रसे ही निर्मित होता है। शनिदेव मृत्युके अधिष्ठान हैं। जीवन एवं मृत्यु दोनोंका नियन्त्रण उक्त सूर्यकी रश्मिसे है, जिसके कारण संसारके प्राणी जन्मके उपरान्त पूर्ण आयु व्यतीत—उपगोग करके मरते हैं।

७-हरिकेश—आकाशके सम्पूर्ण नक्षत्र इसी सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न हुए हैं। नक्षत्र-कार्य प्राणिमात्रके तेज, वल और वीर्यका क्षण-द्वयवसे रक्षण करना है। यह सूर्य रश्मि नक्षत्र, तेज, वल, वीर्यके प्रभावमें प्राणीके आचरित शुभ-अशुभ कर्मफलको मरणोपरान्त परलोकमें प्रदान करती है।

क्षणा मुहर्ना दिवसा निशा: पञ्चस्त्यैव च।
मासा: संवत्सराश्चैव ऋत्वोऽथ युगानि च ॥
तदादित्यादते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादते न नियमो न ननेविहरणं क्रिया ॥
(साम्बुद्ध०, अ० ८ । ७-८)

भगवान् सूर्य काल-रूपमें—अविचल प्रतिष्ठामें स्थित हैं। क्षणसे भी सूक्ष्मातीत काल हैं। वह क्षणकी अवस्थासे अतीत होनेके कारण अत्यन्त मूक्षमस्वरूप माने गये हैं। कालसे अतीत अन्यतम अवस्था नहीं होती। यद्यपि उनकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टिसे सूक्ष्मातीत मानी गयी है तथापि लोकव्यवहारकी दृष्टिमें क्षण, सुहृत्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष—ये सब कालकी अवस्था माने गये हैं। मृत्यु और अमृत—ये दोनों कालरूप सूर्यके अवयव हैं, इनके द्वारा भगवान् सूर्य कालके रूपमें क्षणसे संवत्सर-पर्यन्तकी अवस्थाका उपयोग करते हैं। जब सारा संसार प्रलयमें कालसूर्यके मुखमें कवलित होने लगता है, तब

कालरूप सूर्य मृत्युके आकारमें दिखलायी पड़ते हैं। जिस अवस्थामें काल-सूर्यके तेजसे सहारका आविर्भाव होने लगता है, उस अवस्थामें भगवान् सूर्य-काल अमृतके रूपमें साक्षात् होते हैं।

वस्तुतः—

सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसूतौ पुरा ॥

(साम्बुद्ध० ८।५)

प्रलय—मृत्युके समय समस्त स्तरको रूपका अभाव रहता है। उत्पत्तिके समय सभी संसार अमृतसे व्याप्त भाव-स्वरूप दिखलायी पड़ता है। भाव तथा अभावकी अवस्था कालरूप भगवान् सूर्यसे उत्पन्न होती है। सूर्यके ऊपर गमन करनेवाली बुलोकगामी सज्जारश्मि अमृत है। आदित्यमण्डलमें विद्यमान अन्तर्यामी परमात्मा रश्मिमय-ज्योतिर्मय-हिरण्यप्राप्तसे आच्छन्न हैं।

रथमीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः (शांकरभाष्य) सूर्यरश्मि ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्राणशक्ति है। वह दिव्य अमृत-रससे प्राणियोंको जीवन प्रदान करती है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, उपिक्—ये सात व्याहृतियों सूर्यके सप्तरश्मिसे उत्पन्न हुई हैं। व्याहृतियों रश्मियोंके अवयव हैं; जिनके द्वारा ज्ञान (चेतना-संवित्) संज्ञा उपलब्ध होती है। वैदिक कालके मुनि, महर्षि सूर्य रश्मि पान करके सूर्य-रश्मिके अवयव सप्त-व्याहृति तथा सम्पूर्ण वेदका साक्षात् अनुभव करते थे यानी सूर्यरश्मिके प्रभावसे व्याहृति एवं ऋग्यजु-साम-अथर्ववेद मुनि-महर्षियोंके हृदयमें आविर्भूत हो जाते थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्हीं सूर्य-रश्मियोंको पीकर ही व्याहृति एवं वेदको अन्तर्मानसमें आविर्भूत किया था। (क्रमशः)

—६३—

सूर्योपासनासे श्रीकृष्ण-प्राप्ति

(लेखक—पूज्य श्रीरामदासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर)

भगवान् भुवनभास्कर मानवमात्रके उपास्यदेव हैं। विश्वके सभी धर्मों, मतों, पथों एवं जाति-उपजातियोंमें भगवान् श्रीआदित्यनारायणके श्रीचरणोंमें श्रद्धाके फूल चढ़ाये जाते हैं। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता है, नित्य दर्शन देते हैं एवं नित्य पूजा ग्रहण करते हैं। उनके अमोघ आशीर्वादसे प्राणी अपनी ऐहलैकिक यात्राको सानन्द सम्पन्न कर लेता है।

धर्मप्राप्त भारतवर्षमें—विशेषतः हिंदू-जातिमें आरम्भसे ही सूर्यनारायणकी पूजा विविध पद्धतियोंसे होती चली आयी है। वैदिक ग्रन्थोंसे लेकर आजतक समस्त आर्यग्रन्थोंमें भगवान् सूर्यदेवकी प्रचुर महिमा एवं आराधनाके प्रकारोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार—ये सूर्यदेव समस्त लोकोंके आत्मा तथा आदिकर्ता हैं। श्रीहरि ही सूर्यके रूपमें

विराजमान है। समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल कारण होनेसे ऋषियोंने विविध प्रकारसे उनके गुणोंका गान किया है। सूर्यरूप श्रीहरिका ही माया उपाधिके कारण देश, काल, क्रिया, कर्ता, करण, कर्म, योगादि वेदमन्त्र, द्रव्य और व्रीहि आदि फलरूपमें नौ प्रकारका वर्णन किया गया है—

एक एवं हि लोकानां सूर्य आत्माऽदिकृद्धरिः ।
सर्वचेदक्रियामूलमृपिभिर्वृद्धोद्दितः ॥
कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः ॥
(श्रीमद्भा० १२। ११। ३०-३१)

लोकयात्रा समुचित रूपसे चले—इसलिये वर्षके बारहो महीनोंमें अपने भिन्न-भिन्न गणोंके साथ ये ही भ्रमण करते हैं। ऋषिगण वैदिक मन्त्रोंसे इनकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व और अप्सराएँ आगे-आगे गायन, नृत्य करती

हैं, यक्षगण रथकी साज-सजा करते और नागाण बाँधे रखते हैं, राक्षस पीछेसे ढकेलते हैं तो वालखिल्य ऋषि आगे सुन्नति करते चलते हैं। इस प्रकार आदि-अन्तहीन भगवान् सूर्य कल्प-कल्पमें लोकोका पालन करते आये हैं—

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः ।

कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूहा लोकानवत्यजः ॥

(श्रीमद्भा० १२ । ११ । ५०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् सूर्य उभय लोक-संरक्षक, साधकोंके मार्गदर्शक, लोकयात्राके पालक एवं जगत्के प्राणियोंके लिये कल्याणस्तम्भ हैं। अन्य नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी भौति सूर्य-उपासना भी हमारे जीवनका एक अङ्ग है, ‘उद्दिते जुहोति अनुदेतिजुहोति’ आदि वाक्योंके द्वारा साधक अपने अन्तःकरणकी

मलिनताओं, वासनाओं, हृदयान कल्पिताओंका पवित्री-करण करता है। त्रिकाल-संध्यामें भी नारायणस्तरूप सूर्यका वरण करके अपनी बुद्धिको सङ्कर्मके लिये प्रेरित किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि जब जीव भगवान् सूर्यकी उपासनाके द्वारा मायिक जगत्के व्यापोहरे निकलकर ऊपर उठता है और परामर परवृक्ष श्रीकृष्णका साक्षात्कार करता है, तब वह पुण्यग्रहित विद्वान् प्रभुकी समताको प्राप्त कर लेता है—

यदा पश्यते पश्यते स्वमवर्णं

कर्तारमीशं पुरुषं महान्तम् ।

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय

निरञ्जनं परमं साम्यमुपैति ॥

(—मुण्डक ३ । १ । ३)

आदित्यो वै प्राणः

(लेखक-स्वामी श्रीओकारानन्दजी आदिवदी)

अपने दोनो पाँवोंको फैलाकर मृगराजने अङ्गड़ाई ली और भुवन-भास्करके स्वागतमे कुमकुम विखेती उपा देवीकी और ऊर्ध्व मुखकर ‘आ॒ऽयोऽ॒म्’ का गम्भीर नाद किया। ओकारके उत्तरोत्तर द्रुत ल्यवद्ध तृतीय निनादने चब्बल भावनाओंको भयभीत करनेकी ही भौति मृग एवं शशकस्मूहोंको प्रकापित कर दिया और वे ज्ञाड़ियोंकी ओटमें दुवक गये। सूर्योदय हो रहा था—‘यत्पुरोद्यात्स द्विकारस्तदस्य पश्चोऽन्वायत्तास्तसाच्चे हिं कुर्वन्ति’ (छान्दोग्योपनिषद् २ । ९ । २) ।

‘घेनुओने’ ‘हं॒३ वां॒३’ की ध्वनिकर भगवान् सूर्यका स्वागत किया और बछड़े पीठपर पूँछ रखकर पयःपान-हेतु बन्धनमुक्त होनेके लिये उतावले हो उठे। ग्राम-वधूने चक्रीकी ल्यपर सुर मिलाते हुए अपनी प्रभातीके लोक-गीतकी अन्तिम पंक्ति समाप्त की—‘उडो लालजी तोर भयो है ।’

अपने गीले कौपीनको एक ओर फैलाकर ब्राह्म-मुहूर्तमें ही गङ्गा-स्नानकर लौटे वैदिक महर्गिने मन्दिरके प्राङ्गणमे लगे घण्टेका निनाद किया और उसकी वाणी छूट पड़ी—

अपसेधन् रक्षसो यातुधाना-

नस्याद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यस्तो-

उरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ॥

(—ऋ० १ । ३५ । १०)

‘हे स्वर्णाभायुत किरणोवाले, प्राणशक्तिप्रदाता, उत्तम नेता, सुखदाता, निज शक्तिसे सम्पन्न देव ! यहाँ पथरे । प्रत्येक रात्रिमें सुन्नति किये जानेपर राक्षसों तथा यातना देनेवालोंको दूर करते हुए सूर्योदय यहाँ शुभगमन करें ।’

वेदमन्त्रकी इन ऋचाओंके साथ ही सारायि अरुणने अपने स्वामी आदित्यके रथकी गतिको

बढ़ा दिया। दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। इसे देख उपासकने सिर झुकाया—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

‘विद्वके कण-अणके नियामक प्रत्यक्ष देव भगवान् दिवाकरका शुभागमन इतना आहादकारी है कि उसकी तुलना अर्वणीय है। सतत गतिशील अद्भुत आभायुक्त, हिरण्य-बलाओं-(किरणों)- से अलंकृत रथारुढ, चित्र-चित्र किरणोंसे अन्वकारका नाश करनेवाले भगवान् आदित्य बढ़ रहे हैं’—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं
हिरण्यशाभ्यं यजतो वृहन्तम् ।

आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः
कृष्णा रजांसि तविर्ण दधानः ॥

(—ऋ० १ । ३५ । ४)

अपनी उपासनामे निरन्तर ध्यानरत सुकेशा, सत्यकाम, गार्य, कौसल्य, वैदर्भी तथा कवन्धीका अनुष्ठान वर्णों चलता रहा। सभीका शोधविषय परब्रह्मका अन्वेषण था। सभीने अपने-अपने मतानुसार परब्रह्मका विवेचन किया और अन्तमे अपने विषयके समापन-प्रतिपादनहेतु वे भगवान् पिप्पलादके सभीप उपस्थित हुए। सभीके हाथोंमे समिधा देखकर ब्रह्मज्ञानी महर्षि समझ गये कि ये सभी विधिवत् ब्रह्मविद्या-प्राप्तिहेतु आये हैं। गुरु-शिष्यकी वैदिक परम्परानुरूप पिप्पलादने कहा—‘तुम सभी तप, इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य और श्रद्धसे युक्त हो, गुरु-निष्ठानुरूप एक वर्प आश्रममे निवास करो’ तत्पश्चात् मैं तुम्हारी शङ्काओंका समाधान करूँगा।’

गुरुकुलवासकी अवधिको कुशलतापूर्वक निर्वहन कर महर्षि कत्त्वके प्रपौत्र कवन्धीने मुनि पिप्पलादसे पूछा—‘भगवन् ! ये सम्पूर्ण प्रजाएँ किससे उत्पन्न

‘भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।’ तब पिप्पलादने गम्भीर गिरामें कहा—

आदित्यो ह वै प्राणो रथिरेव चन्द्रमा रथिर्वा पतत्सर्वं यन्मूर्त चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रथिः ॥ अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिपु संनिधत्ते ॥ यद्विशिणाम्…… सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

(—प्रश्नो० १ । ५—८)

‘निश्चय ही, आदित्य ही प्राण और चन्द्रमा ही रथि है। सभी स्थूल और सूक्ष्म मूर्त और अमूर्त रथि ही हैं, अतः मूर्ति ही रथि है। जिस समय उदय होकर सूर्य पूर्व दिशामें प्रवेश करते हैं, उससे पूर्व दिशाके प्राणोंको सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण अपनी किरणोंमें उन्हे प्रविष्ट कर लेते हैं। इसी प्रकार सभी दिशाओंको वे आत्म-भूत कर लेते हैं। वे भोक्ता होनेके कारण वैश्वानर, विश्वरूप प्राण और अग्निरूप हो प्रकट होते हैं। ये सर्वरूप, ज्ञानसम्पन्न, समस्त प्राणोंके आश्रयदाता सूर्य ही सम्पूर्ण प्रजाके जनक है।’

महान् वैज्ञानिक लार्ड केलिवनने सूर्यकी आयु पचास करोड़ वर्ष ऑक्कर जो भूल की थी या हेल्म होल्ट्जके सूर्य-सम्बन्धी अन्वेषण आजके वैज्ञानिक पैट्रिक सूर आदि अमान्य घोषित कर चुके हैं, उन सभीको हमारी उपनिषदे चुनौती देती प्रतीत होती है। वे न तो सूर्यके विकीरणका कारण गुरुत्वाकर्षणीय आकुञ्जन मानती हैं और न सूर्यको हाइड्रोजनसे हीलियममें परिवर्तित द्रव्यकी संज्ञा देती है, वरन् अपने निश्चयका डिमडिम घोष करती हैं कि ‘आदित्यो ब्रह्म’। सूर्य-सम्बन्धी वैज्ञानिक छान्दोग्योपनिषद्के इक्कीसवे खण्डका सूख्म अध्ययन करें तो उन्हे सूर्य-सम्बन्धी वैदिक मान्यताओंका ज्ञान हो जायगा। सूर्यके भाग्यके साथ जुड़ी पृथ्वीके रहस्य सूर्यको बिना समझे अधूरे रहेंगे। अस्तु,

यज्ञानुष्ठानोंकी उपादेयता, वाङ्छित फलप्रदायक शक्ति तथा आवश्यकता वैदिककालसे वर्तमानतक स्थान्तः-सुखायके एकमात्र साधनके रूपमें निरन्तर वनी हुई है और चाहे किसी भी उपलब्धिहेतु यज्ञसमारम्भ हो, सभीमें सूर्यका स्थान सर्वोपरि है ।

अग्निहोत्री पुरुष दीतिमान् अग्निशिखाओंमें आहुतियो-द्वारा अग्निहोत्रादि कर्मका जो आचरण करता है, उस यजमानकी आहुतियोंको देवताओंके एकमात्र स्थामी इन्द्रके पास ले जानेका गुस्तर कार्य मूर्यकिरणोद्वारा ही सम्पन्न होता है—

एहोर्हाति तमाहुतयः सुचर्चसः

सूर्यस्य रक्षिमभिर्यजमानं वहन्ति ।

(—मुण्डक० २।६)

रंग-विरंगे मुस्काते सुगन्धित पुष्प, सुखादु फलोंसे लदे वृक्ष ‘अनन्त हि भूतानां ज्येष्ठम्’का प्रतिपादन करती-लहलहाती फसले—इन सभीका आधार आदित्य ही तो है ।

प्रभाकर उद्गीत होते हुए भी प्रजाओंके अन्न-उत्पत्तिके लिये उद्गान करते हैं । इतना ही नहीं, वे उदित होकर अन्धकार एवं तजन्य भयका भी नाश करते हैं ।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुर्हाथसुपास्ती-
तोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्घायति उद्यंस्तमोभयमपहन्त्य-
पहन्ता ह वै भवस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥

(—छान्दो० ३।१)

विभावसुकी विभिन्न दृष्टियोंसे उपासना—जैसे वृहत्सामो-पासना, आध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना, आत्मयज्ञो-पासना, विराट्कोपोपासना आदिका विशद विवरण इसी उपनिषद्में विस्तारपूर्वक समझाया गया है । महर्पिण्योने इसी प्रकारके व्रत-ग्रहणसे आत्माको दीक्षित किया और जीवनको यज्ञ वनाकर उस सत्यको उपलब्ध किया जो ब्रह्माण्डको धारण करनेवाला मध्यविन्दु वना ।

शकलके पुत्र विद्गवकी शङ्काओंका समाधान करते हुए महर्पिण्यो याज्ञवल्क्यने जिन तौतीस देवताओंका विवरण समझाया है, वे भी सूर्यके विना अधूरे रहते—‘त्रिशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिशदिन्द्रद्यैव प्रजापनिश्च त्रयस्त्रियाविति ।’

(—वृहदारण्यक० ३।९।२)

वे आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापनि हैं । अर्जुनके व्यामोहको भंग करनेका उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं अदितिके वारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोवान् सूर्य हूँ—‘आदित्यानामहं विष्णुर्योनिपां रविरंगुमान् ।’ (गीता १०। २१) यदि भगवान् रवि उक्ति न हों तो सभी ऑखोवाले चक्षुविहीन हो जायें । ऑख सूर्यके प्रकाशसे ही देखती है—‘प्राचिशादित्यथश्चुर्भूत्वा-क्षिणी’ (ऐतरेयो० १२। ४) इसीलिये तो चराचर विश्व सूर्यके समक्ष न त हैं—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे

जगत्प्रसूतिश्चितिनाशहेतवे ।

त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे

विरञ्जिनारायणशङ्करात्मने ॥

यस्योदयेनेह जगत् प्रवृद्ध्यते

प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये ।

ब्रह्मोन्द्रनाशरायणरुद्रवन्दितः

स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः ॥

मन्त्र-त्रायणके उस उपदेष्टाके स्वरमें स्वर मिलाकर आइये हम सब भी उस सङ्कल्पको दोहराये ।

सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रवर्चीमि
तच्छक्तेयम् । तेनर्ध्यासम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥

हे व्रतपति सूर्य ! आजसे मैं अनुत (असत्य) से सत्यकी ओर, अज्ञानसे प्रकाशकी ओर जानेका व्रत ले रहा हूँ । आपको उसकी सूचना दे रहा हूँ । मैं उसे निभा सकूँ । उस मार्गपर आगे बढ़ सकूँ ।

परब्रह्म परमात्माके प्रतीक भगवान् सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्तिष्यानन्दजी महाराजमिथामी-फ्लोरिडा, सं० १० अमेरिका)

अति प्राचीन कालसे आजतक किसीने मानवके मस्तिष्कको इतना आकृष्ट एवं चमत्कृत नहीं किया है, जिनना कि पूर्णमे उदित हो अनन्त आकाशमे विचरण करते हुए पश्चिममे अस्त होनेवाले परम तेजस्वी एवं स्तुत्य भगवान् सूर्य कर रहे हैं। इनकी किरणोंके बिना इस पृथ्वीपर प्राणिमात्रका जीवन सम्भव नहीं है। ग्रायः सभी व्यक्ति इन परम तेजस्वी भगवान् सूर्यका स्वागत एवं पूजन करते हैं। समयकी कल्पना, दिन और रातका आवागमन, मास एवं ऋतुओंका विभाजन तथा चन्द्रमाके क्षय एवं बृद्धिद्वारा कृष्ण एवं शुक्र-पक्षोंका होना आदि—सभी व्यावहारिक बाँतें मानव-जीवनको निरन्तर प्रभावित करती हैं। इन सबके कारण भगवान् सूर्य ही है। अनादिकालसे ही मनुष्य-जीवनकी अनन्त प्रेरणाओं एवं इच्छाओंको पूर्ण करनेके भावमय मन्त्र वेदमे अभिव्यक्त हैं—

‘असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
सृत्योर्मासृतं गमय ।’

प्रभो ! आप मुझे असतसे सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमृतत्वकी ओर ले चले। अन्धकारमय जागतिक प्रपञ्चोंसे आत्मप्रकाशकी ओर चलना ही मानव-जीवनकी उचित यात्रा है। माया, मोह या अज्ञान—ये समस्त सत्य शक्तियोंके विरुद्ध एक निरन्तर सधर्ष हैं; जो क्रोध, धृणा, हिंसा, लोभ एवं समस्त दुर्गुणोंके रूपमे विद्यमान हैं और जिसका मूल कारण अविद्या तथा जन्म-जन्मान्तरकी वासना है, उसे अज्ञान कहते हैं। परंतु ज्ञान-स्वरूप सूर्य ऐसा प्रकाशका स्रोत है, जो अनन्तके सर्वोच्च प्रकाशके साथ प्राणीको जोड़ता है। प्रकाश परम पवित्र चेतनाका प्रतीक है। विश्वके सभी धर्मोंने सामान्यरूपसे प्रकाशको ईश्वरकी उपस्थितिका प्रतीक चुना है। अतएव विश्व-

भरके समस्त मन्दिरों, चत्वे एवं पूजनीय स्थानोंमें दीपक जलाये जाते हैं। गीताने भी उस अनन्तका वर्णन—‘ज्योतिपामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते’—अन्धकारके परे एवं प्रकाशोंका भी प्रकाश आदिरूपसे किया है। निदान, परब्रह्म ज्योतियोका भी ज्योति है। जो मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है, वह परमात्मा वोधस्वरूप, जाननेयोग्य (ज्ञेय) एवं तात्त्विक ज्ञानसे प्राप्त करने योग्य है। पर वह तो सबके हृदयमें ही विराजमान है। उपनिषदोंके द्रष्टा ऋषि कहते हैं—‘भूः भुवः तथा स्वः’—इन तीन लोकोंके अविद्याता उस श्रेष्ठ कल्याणकारी सूर्यदेवताके ‘भर्ग’का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको सन्मार्गके प्रति प्रेरित करता है। सूर्योपनिषद् के अनुसार सूर्य सम्पूर्ण विश्वके आत्मा है। मृत्युसे रक्षा पानेके लिये उन्हे प्रणाम किया जाता है। सूर्योपनिषद् के अनुसार सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं रक्षा होती है तथा सूर्यमें ही उन सबका अवसान होता है। मैं वही हूँ, जो सूर्य हूँ—

‘नमो मित्राय भानवे सूर्योर्मा पाहि ।

भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः ॥

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।

सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

(—सूर्योपनिषद् २ । ४ ।)

देवयान एवं पितृयान (धूम्रमार्ग तथा अर्चिमार्ग)—

उपनिषदोंने श्रेय और प्रेयके दो मार्ग बतलाये हैं। पहलेको देवयान या अर्चिमार्ग तथा दूसरेको पितृयान अथवा धूम्रमार्ग कहा है। श्रेयोमार्गके पथिक अर्चिमार्गका अनुसरण करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो प्रेयमार्गका अनुसरण करते हैं, वे निरन्तर जन्म एवं मृत्युके चक्रमें पड़े रहते हैं। पहलेवाले मार्गका अनुसरण

करनेवाले शाश्वत सूर्यकी ओर जाते हैं। ग्रेयोमार्गवाले इन्द्रियोंके मिथ्या सुखमे मोहित हुए रहते हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरा अन्य मार्ग भी उन लोगोंके लिये है, जो पापपूर्ण कायोंमें सठा लिस है। उनके लिये जो मार्ग है, वह अन्धकार एवं नारकीय यातनाओंसे सम्बन्ध है। अज्ञानमार्गका अनुसरण करनेवाले पापी नरकको प्राप्त करते हैं। जो गुणवान् हैं, किंतु अहंभावसे पूर्ण होनेके कारण माया-मोहको दूर करनेमें असमर्थ हैं, वे अपने इन कर्मोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँके स्वर्गीय आनन्दोंका अनुभव करके पुनः इस मृत्युलोकमें लौट आते हैं। ये दोनों दक्षिणायन या धूम्रमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं। जो वार-ग्रार सांसारिक जन्म-मरणकी आवृत्ति करता है, किंतु अहंभावसे उत्पन्न माया-मोहको नष्टकर जिसने परमात्मासे एकत्व स्थापित कर लिया है, वह पाप-पुण्यसे मुक्त होकर कर्म

एवं उनके फलोंसे ऊपर उठकर आत्म-ग्रकाशको प्राप्त कर लेता है। इन्हे ही अन्तिमार्गका अनुयायी कहा गया है। पिण्ठलाठ मुनि कहते हैं—

अथ्रोत्तरेण तपस्ना ब्रह्मन्यर्थं श्रद्धया
विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते ।
एतद्वै प्राणानामायतनभेतद्भूतमभय-
मेतत्परायणमेतस्मात् पुनरावर्तन्त ॥
(—प्रश्नानामिपद् १ । १०)

जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिसे विश्वासपूर्वक व्रतचर्य तथा तपस्यासे अपने जीवनको सूर्यरूपी ईश्वरकी खोजमें लगा दिया है, वे उत्तरी मार्गसे जाते और सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं। ये दिव्य सूर्य प्राणोंके मूलक्षोत्तम हैं। ये वह अस्तुतमय, निर्भय तथा सर्वोक्तुष्ट स्थान हैं, जहाँसे किसीको पुनरागमनगृह्य संसृतिचक्रमें लौटना नहीं पड़ता, अतः मानवजीवनकी चरममिदिके लिये इन सूर्यदेवकी सावना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है।
(अनुवादक—जगिंगेश्वर त्रिपाठी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

—५३४—

वेदोंमें श्रीसूर्यदेवकी उपासना

(लेखक—श्रीदीनानायजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावाचस्पति, विद्यावागीश, विद्यानिधि)

वेदोंमें श्रीसूर्यकी उपासनाकी विवृति भरी हुई है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च' (यजु० माथ्य० ७ । ४२) सूर्य चलनशील पदार्थों तथा स्थिर वस्तुओंकी आत्मा है। यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रयसे ही स्थित है। सूर्यके अभावमे यह जगत् नहीं रह सकता। सूर्य ऊपराके पुञ्ज हैं। जगत्मे ऊपरा न होनेपर जल नहीं रह सकता। केवल वर्फ ही रहेगी। सूर्यसे ही अग्नि तथा विद्युत् प्राप्त होती है। वृष्टिका जल भी सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

सूर्य चेतन देवता है; इस गियरमें यहॉतक कहा जाता है कि सभी पदार्थ चेतन हुआ करते हैं। इसी अभिग्रायसे व्याकरण महाभाष्यमें एक वार्तिक आया है— 'सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्' (३ । १ । ७)—इस

वार्तिकके विवरणमें कहा गया है—'सर्वं चेतनावत् ।' वस्तुतः सभी पदार्थ चेतनावान् हैं।

'दुष्कृताय चरकाचार्यम्'में एक आधुनिक विद्वान् ने लिखा है—वस्तुतः अभिमानी देवताकी कल्पना भी अर्वाचीन विद्वानोंद्वारा सुष्टु है। प्राचीन आचार्य 'अचेतनेषु चेतनावत्' अर्थात्—अचेतनमें चेतनवत् व्यवहार औपचारिक (गौण) मानते थे। इसी नियमसे ही 'शृणोत ग्रावाणः' (कृ० य० तै० स० १ । ३ । १३ । १) आदि वैदिक वाक्योंका सामज्ञस्य संपन्न हो जाता है। उसमे अभिमानी देवताकी कल्पनाकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। हमारे अनुसार यह कथन युक्त नहीं है। यह वचन महाभाष्यस्य उक्त वार्तिकके आधारसे प्रवृत्त प्रतीत होता है। वस्तुतः यहों

‘चेतनावत्’ पाठ है, ‘चेतनवत्’ नहीं और यहों ‘मतुप्’ प्रत्यय है, ‘वति’ नहीं। (अर्थात् सभी पदार्थ चेतनावाले हैं, न कि चेतनके समान।)

उक्त वार्तिकके विवरणमें महाभाष्यमें कहा है—
‘अथवा सर्वं चेतनावत्।’ एवं हि आह—‘कंसकः सर्पति, शिरीषोऽयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनु पर्येति।’ अयस्कान्तमयःसंकामति। ऋषिश्च (वेदम्) पठति—‘शृणोत ग्रावाणः।’ (कृ० य० तै० सं० १। ३। १३। १)

उपर्युक्त वाक्योंको देकर सिद्ध किया गया है कि सभी दीख रही जड़ वस्तुएँ वेदानुसार चेतन हैं। श्रीकैयट तथा नागेशभट्टने भी यही सिद्ध किया है। वार्तमानिक विज्ञान भी यही सिद्ध करता है। इन अपूर्व बातोंको देखकर वैज्ञानिकोंकी यह धारणा हो गयी है कि समस्त चराचरमें सारभूत वस्तु कोई भी नहीं और सासारमें कोई पदार्थ भी जड़ नहीं है। इसी कारण वैज्ञानिक लोग सूर्यमें भी प्रसन्नता-अप्रसन्नताके परमाणु मानने लगे हैं।

इसका विवरण इस प्रकार है—कैम्प्रिज युनिवर्सिटी —लदनमें सूर्यके विषयमें एक लेक्चर हुआ था। उस व्याख्याताने कहा—उत्तरी अमेरिकाके ग्रेनलैंड प्रदेशमें एक दफीने (माणिक्य)का खोदना शुरू हुआ था। वहों दफीना तो मिला नहीं, एक देवमन्दिर अवश्य मिला। उसमें सूर्यकी एक सूर्ति है, उसके सामने एक हिंदू व्यक्ति प्रणाम कर रहा है। सामने ही अग्निसे धूओं उठ रहा है, जिससे मालूम होता है कि अग्निमें कुछ सुगम्भित द्रव्य डाला गया है। इधर-उधर फूल पड़े हैं। यह सब दृश्य पत्थरोंसे बनाया गया है।

इस विचित्र सूर्यमन्दिरसे मालूम हुआ कि किसी युगमें हिंदुओंका राज्य अमेरिकातक फैला था। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि हिंदुओंका विश्वास था कि सूर्य प्रसन्न तथा अप्रसन्न भी हो सकते

हैं। यदि ऐसा न होता, तो एक हिंदू सूर्यकी इस प्रकार नमस्कारादि पूजा क्यों करता? इस विषयको लेकर वैज्ञानिक सासारमें क्रान्ति उत्पन्न हो गयी।

मिस्टर जार्ज नामक किसी विज्ञानके प्रोफेसरने सूर्यके विषयमें यह परीक्षा की कि सूर्यमें कृपाशक्ति है या नहीं? हिंदुओंकी सूर्यपूजाका पता भारतीय प्राचीन इतिहाससे पहले ही था। मिस्टर जार्जने सोचा कि हिंदुओंकी सूर्योपासना क्या मूर्खतापूर्ण थी या वास्तविक? इसकी एक दिन रोचक परीक्षा हुई। मईका महीना था। पूरे दोपहरके समय केवल पजामा पहनकर मि० जार्ज नंगे शरीर धूपमें ठहरे। पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरकर वे कमरेमें गये। थर्मामीटरसे उन्होंने अपना तापमान देखा। तीन डिग्रीतक बुखार चढ़ा था। दूसरे दिन उस महाशयने श्रद्धासे फूल-फलोंका उपहार तैयार किया। अग्निमें धूप जलाया। अब वे पूरे दोपहरमें नंगे शरीर धूपमें गये। उन्होंने सूर्यके सामने श्रद्धासे फूल-फल चढ़ाये। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जब वे अपने कमरेमें गये तो उन्होंने देखा कि आज वे ग्याह मिनटतक सूर्यके सामने रहे। थर्मामीटरसे मालूम हुआ कि आज उनका तापमान नामल (सामान्य) रहा। उसका पारा ठंडककी ओर रहा।

इससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि सूर्य केवल अग्निका गोला और जड़ है, वैज्ञानिकोंका यह सिद्धान्त गलत है। उसमें प्रसन्नता और अप्रसन्नताका तत्त्व भी विद्यमान है। यह विवरण वरालेकपुर (इटावा)की ‘अनुभूत योगमाला’ पत्रिकामें छपा था। वेदमें सूर्यके लिये कहा है—‘इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः’ (ऋ० १। १६४। २१)। इससे सूर्यको बुद्धियुक्त बताया गया है और ‘धियो यो नः प्रचोदयात्’ (यज० माण्य० ३। ३५)। इस मन्त्रके द्वारा उसी सूर्यसे धार्मिक लोग बुद्धिकी प्रार्थना किया करते हैं।

इसीलिये वेदमें 'उद्यते नमः', 'उदायते नमः' 'उद्विताय नमः' (अर्थव० १७। १। २२) 'अस्त्वं यते नमोऽस्त्वयेष्यते नमोऽस्त्वमिताय नमः' (२३) सूर्यकी उदय और अस्तकी तीन दशाओंको नमस्कार किया गया है। इसी मूलको लेकर—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातः सन्ध्या विद्या मता ॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या विद्या मता ॥

—सन्ध्योपासनाके ये तीन भेद वताये गये हैं।

ऋग्यो दीर्घसन्ध्यल्वाद् दीर्घमायुरबाण्जुयुः।
प्रह्लां यशश्च कीर्तिं च व्रह्मवर्चसमेव च ॥
(मनु० ४। ९४)

ऋग्योंकी सन्ध्या लम्बी होनेसे उनकी आयु भी लम्बी होती थी। उनका यश तथा वृक्ष भी नेत्र होता था। इसको मनुस्मृतिमें इस प्रकार रपष किया गया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपन् तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यग् ऋग्यविभाजनात्॥
(मनु० २। १०१)

सावित्री-मन्त्रकी मुख्यताका कारण अटप्पमें जो भी हो, (क्योंकि वह वेदकी सारस्यम् है) पर दृष्टमें भी मुख्य है। इसकी मुख्यताका कारण यह है कि इस मन्त्रमें बुद्धिकी प्रार्थना है। मूर्यसे बुद्धिकी प्रार्थना इस कारण है कि वे बुद्धिके अविद्याता देव हैं। इनके बुद्धिके दाता होनेसे मूर्योदयके समय चोरोंकी चौर्य-प्रवृत्ति और जारोंकी जारता-प्रवृत्ति हट जाती है।

मूर्यसे ही वैज्ञानिकोंने एक ऐसी सूई बनायी है कि जिसके इन्जेक्शनसे कुल्टा खियोमे खदूबुद्धि उद्दित हो जाती है और मर्वसावारणका भय हट जाता है। बुद्धिकी प्रार्थनासे ही बृहा कुमारी वर तथा वृद्धान्ध व्राह्मण वरस्त्वपसे सब कुछ मौग ले सकता है। इस कारण सावित्री-मन्त्र बुद्धिदाता होनेसे सभी कुछ देनेवाला है। अतः उसकी महत्ता स्पष्ट है। एक बृहा कुमारीने

पति, पुत्र, धन्य, गाय, यौवन आदि चाहते हुए तपस्या की। वरदाता देवताने राश्वात् लोकर उमे केवल एक वर मौगनेके लिये कहा। उसने वर मौगा—मैं अपने पुत्रको बहुत धी-दृढ़ मिला सोनेके पात्रोंमें मान खाना हुआ देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार उसने अपने यौवन, पति, पुत्र, सोना, धन्य और गाय आदिको मांग लिया। इसी प्रकार एक जन्मान्ध, निर्धन, अविवाहित द्राहणकी भी कथा है।

देवताके मुखसे एक वरकी प्राप्ति जानकर उसने भी देवतासे वर मौगा, 'मैं अपने पोतेको गज्यसिंहासनपर वैद्य देवता चाहता हूँ।' इस प्रकार उसने एक वरमें अपनी ओर्डें, धन, पुत्र, यौवन, विवाह, धी, पुत्र, पौत्र आदि संतान मी मौग ली। यही बात है—बुद्धिकी प्रार्थनाकी। हमारे जो कार्य सिद्ध नहीं होते, उसका कारण है बुद्धिकी विरोत्ता। इसलिये प्रसिद्ध है—

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।'

महाभारतमें देवताओंके लिये कहा है—देवता उडा लेकर पशुपालकी मौति पुरुषकी रक्षा नहीं करते। जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि दे दिया करते हैं। जिसे गिराना चाहते हैं—उसकी बुद्धि छीन लिया करते हैं (महाभारत, उद्योगपर्व ३४। ८०-८१)। इससे जब बुद्धिकी महत्ता सिद्ध हुई तब बुद्धिप्रद सावित्री-मन्त्रकी भी महत्ता सिद्ध हो गयी।

इसलिये इस वेदमाता सावित्रीका वेदमें महान् फल कहा है। (अर्थव० १९। ७?। ?)—'स्तुतामया वरदा वेदमाता प्र चोद्यन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं व्रह्मवर्चसम्। महां दत्त्वा व्रजत व्रह्मलोकम्' (अर्थव० १९। ७?। १)।

ऐसी वेदमाताके पति सूर्यदेवका वेदमें कितना भारी फल लिखा है। 'योऽस्त्वौ आदित्ये पुरुषः सोऽसावहम्' (वजु० माघ० ४०। १७)। ऐसे सूर्यदेवकी सन्ध्या आदिद्वारा उपासना करना सभी हृजोंका कर्तव्य है।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्य और उनका महत्त्व

(लेखक—आचार्य प० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)

विश्वमें जीवन और गतिके महान् प्रेरक, हमारी इस पृथ्वीको अपने गर्भसे उत्पन्न करनेवाले और गतिमानके रूपमें सम्पूर्ण संसारके सभी गतिमानोंमें प्रमुख सूर्य^१ चराचर विश्वके संचालक; घटी, पल, अहोरात्र, मास एवं ऋतु आदि समयके प्रवर्तक प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका नाम सौर-मण्डल-वाचक शब्दके (व्युत्पत्ति-मूलक स्वारस्यके) अनुख्य है। यही कारण है कि सूर्यकी कल्पनामें सौर-शरीरका भान बराबर बना रहता है^२।

ऋग्वेदमें सूर्यदेवको चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तोंमें प्रायः सूर्य शब्दसे भौतिक सौर-मण्डलका वोध होता है; यथा—ऋषि हमें बतलाते हैं कि आकाशमें सूर्यका ज्वलन्त प्रकाश मानो अमृत अग्निदेवका मुख है^३। मृतककी चक्षु (आँखें) उसमें चली जाती है^४। सूर्य विराट् ब्रह्मकी आँखोंसे उत्पन्न हैं। वे सूर्यदेव दूरदृष्टि, सर्वदृष्टि और अशेष जगतीके सर्वेक्षक हैं^५।

१. ‘सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुषु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादि-व्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः॥—(ऋग्वेद ९। ११४। ३ पर सायण)

और भी देखें—‘सूते श्रियमिति सूर्यः॥’ (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर); ‘स्वरति—आचरति कर्म स्वीर्यते अर्चरते भक्तैरिति सूर्यः॥’ (निष्ठु ३। १), तुलनीय—‘सूर्यकी निष्पत्ति वैदिक ‘स्वर’ से हुई, जो ग्रीक helios से सम्बद्ध है। (मैकडॉकल, ‘वैदिक देवशास्त्र’, पृष्ठ ६६) तथा—

सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा। सु ईर्यत्वाय यो द्योषः सर्वकर्माणि सन्दधत् ॥

(बृहददेवता ७। १२८। १)

२. तुलनीय—अपामीवा वाधते वेति सूर्यम् ॥ (ऋ० १। ३५। ९)

और भी देखें—उपा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्तसूर्य उर्विया ज्योतिरश्वेत् ॥ (ऋ० १। १२४। १)

३. अन्नेस्तीकं बृहतः सपर्य दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ (ऋ० १०। ७। ३)

४. सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा ॥ (ऋ० १०। १६। ३) और भी देखें—(१) चक्षोः सूर्यो अज्ञायत । (ऋ० १०। १०। १३)

(२) चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ (ऋ० १०। १५८। ३)

(३) चक्षुर्नो वेहि चक्षुपे चक्षुर्विल्यै तनूम्यः ॥ (ऋ० १०। १५८। ४)

इसीलिये अर्थवेदमें सूर्यको चक्षुओंका पति बताया गया है और उनसे अपनी रक्षाकी कामना की गयी है—

सूर्यश्रुषुपामधिपतिः स मावतु ॥

(अर्थव० ५। २४। ९)

अर्थवेदमें यह उल्लेख भी है कि वे प्राणियोंके एक नेत्र हैं, जो आकाश, पृथिवी और चलको परोक्ष (अत्यन्त श्रेष्ठता—निपुणता)से देखते हैं।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽतिपश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुगरुरोह दिवं महीम् ॥

(अर्थव० १३। १। ४५)

तुलनीय—‘त्वं भानो लगतश्चक्षुः॥—(महाभास्त ३। १६६)

५. श नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु ॥ (ऋ० ७। ३५। ८)

और भी देखें—दूरेष्टो देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय जंसत् ॥ (ऋ० १०। ३७। १)

६. सूराय विश्वचक्षुषे ॥ (ऋ० १। ५०। १२)

७. त सूर्ये हरितिः सप्त यह्निः सप्तश्च विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ (ऋ० ४। १३। ३)

सूर्यके द्वारा उद्बुद्ध होनेपर मनुष्य अपने लक्ष्योंकी ओर निकल पड़ते हैं और स्वर्कर्तव्योंको पूरा करनेमें व्यस्त हो जाते हैं^१। सूर्य मानवजातिके लिये उद्वोधक बनकर उद्दित होते हैं^२। वे चर और अचर विश्व-सभीकी आत्मा तथा उनके रक्षक हैं^३। उनके (दिव्य) रथ^४-को एक ही घोड़ा (सारथि अथवा सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्ति)^५ परिवहन करता है, जिसका नाम एतश है^६। उनके रथको अगणित

घोडे अथवा घोड़ियों^७ खीचते हैं। ये संख्यामें सात हैं^८। ये घोडे (अथवा घोड़ियाँ) अन्य कुछ नहीं, सूर्यकी किरणें ही हैं^९। ऐसा अन्यत्र भी कहा गया है। 'सूर्यकी किरणें ही उन्हें लाती हैं'^{१०}। इन किरणोंका प्रादुर्भाव यतः सूर्यके रथसे होना है, अतः किरणों (घोड़ियों) को रथकी (सात) पुत्रियोंके रूपमें प्रहण किया गया है^{११}।

एक चक्र-धारी^{१२} सूर्यके पथका निर्माण वरुणने किया है^{१३}। इस कार्यमें उनके सहायकोंका नाम अन्यत्र मित्र

८. उद्देति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुपाणाम् ॥—(ऋ० ७ | ६३ | १)
और भी देखें—(१) दिवो रक्ष्म उरचक्षा उद्देति ॥ (ऋ० ७ | ६३ | ४)

(२) नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ (ऋ० ७ | ६३ | ४)

९. उद्देति प्रसवीता जनाना महान् केतुरण्वः सूर्यस्य ॥ (ऋ० ७ | ६३ | २)

और भी देखें—एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समान न प्रमिनाति धाम ॥ (ऋ० ७ | ६३ | ३)

१०. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च ॥ (ऋ० १ | ११५ | १) (यजु० ७ | ४२)

और भी देखें—विश्वस्य सातुर्जगतश्च गोपाः ॥ (ऋ० ७ | ६० | २)

तुल्नीय—त्वमत्मा सर्वदेहिनाम् ॥ (महाभारत ३ | १६६)

११. महाभारत (५ | १७०) में भी इनके दिव्य रथका उल्लेख मिलता है।

१२. मेरे विचारसे एकवचन 'एतश' शब्द या तो सारथिके लिये या सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्तिके लिये प्रयुक्त हुआ है। वह इसलिये कि श्रुग्वेदमें अन्यत्र घोड़ियों (हरितः) तथा 'एतशमें भेदकर उसे उनके ऊपर बताया गया है। यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीस्तप्ता एतशे कः ॥ (ऋ० ५ | २९ | ५) इस प्रकार 'एतश' सारथिके लिये सुनिश्चित होता है; जब कि एक अन्य रथ, जहाँ सविताको एतश बताते हुए उनके द्वारा पार्थिव लोकोंको मापे जानेका उल्लेख है—यः पार्थिवानि विमसे स एतशो रजासि देवः सविता महित्वना ॥ (ऋ० ५ | ८१ | ३)—एतशको दिव्यशक्ति घोषित करता है।

१३. समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ (ऋ० ७ | ६३ | २) तुल्नीय—अयुक्त सूर्य एतशं पवमानः ॥ (ऋ० ९ | ६३ | ७)

१४. भद्रा अशा हरितः सूर्यस्य ॥ (ऋ० १ | ११५ | ३ और भी ऋ० १० | ३७ | ३ तथा ऋ० १० | ४९ | ७)

१५. सप्त त्वा हरितां रथं वहन्ति देव सूर्य ॥ (ऋ० १ | ५० | ८, १ | ५० | ९, और—ऋ० ७ | ६० | ३)

१६. त सूर्य इहितः सप्त यहीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ (ऋ० ४ | १३ | ३; और भी देखें ४ | १३ | ४)

१७. तत्रैव (वर्णी)

१८. अयुक्त सप्त शुन्युवः सूर्यो रथस्य नप्त्यः ॥ (ऋ० १ | ५० | ९)

१९. मुपाय सूर्य कवे चक्रमीशान वोजसा ॥ और (ऋ० ४ | ३० | ४)

श्रुग्वेदके दो अन्य स्थलोपर सूर्यचक्रका उल्लेख इन शब्दोंमें है—

(१) त्वायुजा नि विदत् सूर्यस्येन्द्रशक्तं सहसा सद्य इन्दो ॥ (ऋ० ४ | २८ | २)

(२) प्रान्यचक्रमवृहः सूर्यस्य ॥ (ऋ० ५ | २९ | १०)

२०—(ऋ० १ | २४ | ८)

और अर्यमा लिया गया है^{२१}। वरुणने ऐसा क्यों किया ? सम्भवतः इसलिये कि सूर्य मापका साधन है^{२२} और इस पीतेसे वरुण अपना काम करते हैं^{२३}। अपनी सुर्वण-मय नौकाओंसहित पूषा उनका सन्देशवाहक है। पूषा-की नौकाएँ अन्तरिक्षखण्डी समुद्रमें संतरण करती हैं^{२४}। अग्नि और यज्ञके समान उनको प्रकट करनेवाली भी उषा है^{२५}। वे उषाओंके उत्सङ्घमेंसे चमकते हैं^{२६}। इसलिये उन्हें एक स्थानपर उपमाके रूपमें उषाके द्वारा लाया गया इतें और चमकीला घोड़ा बताया गया है^{२७}। उनके पिता (क्रीड़ाक्षेत्र) घौ है^{२८}। देवताओंने^{२९} उन्हें, जबकि वे समुद्रमें घिलीन थे, वहाँसे उभारा^{३०} और अग्निके ही एक रूपमें^{३१} उन्हें घौमें टाँगा^{३२}। उनकी उत्पत्ति विश्वपुरुषके नेत्रसे हुई है^{३३}। वही विश्वपुरुषके नेत्र भी हैं^{३४}। वह एक उड़नेवाले^{३५} पक्षी है^{३६}, पक्षियोंमें भी वाज^{३७}। वह आकाशके रत्न है^{३८}। उनकी उपमा एक चित्र वर्णके पथरसे दी गयी है, जो आकाशके मध्यमें विराजमान है^{३९}। उन व्योतिष्ठान-आयुधको मित्र और वरुण बादल और वर्षासे

२१. (ऋ० ७।६०।४ और भी देखें—७।८७।१)

२२. (ऋ० २।१५।३, ऋ० ३।३८।३)

२३. मानेनेव तस्थिवौ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (ऋ० ५।८५।५)

२४. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्यीरन्तरिक्षे चरन्ति । ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य ॥ (ऋ० ६।५८।३)

२५. (ऋ० ७।८०।२ और भी देखें—ऋ० ७।७८।३)

२६. विभ्राजमान उषसामुपस्थादैमैरुदेत्यनुमद्यमानः ॥ (ऋ० ७।६३।३)

२७. (ऋ० ७।७७।३; तुलनीय ऋ० ७।७६।१)

२८. दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ (ऋ० १०।३७।१) युलोकसे रक्षा करनेके लिये सूर्यसे की गयी प्रार्थनासे तुलनीय स्थों नो दिवस्पातु ॥ (ऋ० १०।१५८।१) और भी देखें—सूर्यो द्युस्थानः ॥ (निश्चत्त ७।५)

२९. इन देवताओंमे इन्द्र, विष्णु, सोम, वरुण, मित्र, अग्नि आदिका नाम उल्लेखनीय है।

३०. यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गृहमा सूर्यमज्जर्तन ॥ (ऋ० १०।७२।७)

३१. अत्यन्त महत्पूर्ण देवता अग्नि उसके उपासक पुरोहितोंकी दृष्टिमें युलोकमें सूर्यके भीतर प्रवर्तमान अग्निके रूपमें आविर्भूत हुए हैं।

३२. यदेदेनमदध्यर्यजियांसो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ॥ (ऋ० १०।८८।११)

३३. चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ (ऋ० १०।९०।१३)

३४. मुक्तिकोपनिपदके उस स्थलसे तुलनीय, जिसमें उन्हे और चन्द्रमाको एक साथ, विशद्ग्रूप परमात्माका नेत्र बताया गया है। ‘चक्षुपी चन्द्रसूर्यौ’ और भी देखें स्मृतिवचन—चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।

३५. उदपसदसौ सूर्यः ॥ (ऋ० १।१९।९)

३६. पतञ्जलमस्तुरस्य मायया ॥ (ऋ० १०।१७७।१) और भी देखें—पतञ्जलो वाच मनसा विभर्ति ॥ (ऋ० १०।१७७।२।) उस मन्त्रसे तुलनीय, जिसमें उन्हें अरुणको सुपर्ण बताया गया है। उक्ता समुद्रो अर्शणः सुपर्णः ॥ (ऋ० ५।४७।३)

३७. (ऋ० ७।६३।५, ऋ० ५।४५।९)

३८. दिवो रक्षम उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७।६३।४) और भी देखें—रक्षमो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ (ऋ० ६।५१।१)

३९. मध्ये दिवो निहितः पृश्निरक्षमा ॥ (ऋ० ५।४७।३) और भी देखें—अथ यदश्च संश्रितमायीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुहृ वै तमश्मेत्याचक्षते ॥ (शतपथब्राह्मण ६।१।३।३)

आवृत करते हैं^{४०} और जब मित्र तथा वरुण उन्हें अपने वादल और वपकि आवरण से मुक्त करते हैं, तो वे मित्र और वरुण के द्वारा आकाशमें छोड़े गये ज्योतिष्मान् रथ प्रतीत होते हैं^{४१}।

सूर्य अनिश्चित चराचर (प्रकाश के प्राणियों) के लिये चमकते हैं^{४२}। उनका यह चमकना मनुष्यों और देवताओं के लिये एक समान है^{४३}। अन्धकार को चम्पके समान लपेटते हुए^{४४} वे उसका विघ्नं स करते हैं^{४५}। इस प्रकार उन्हें अन्धकार के प्राणियों और यातुधानों को पराजित करते देर नहीं लगती^{४६}। वे दिनों को नापते^{४७} और आयु के दिनों को बढ़ाते हैं^{४८}। वे वीमारी और प्रत्येक प्रकार के दुःखपनका

विनाश करते हैं^{४९}। जीवनका अर्थ ही सूर्योदय का वर्णन करना है^{५०}। सभी प्राणी उनपर अवलम्बित हैं^{५१}। अपनी महत्त्वके कारण वे देवों के द्विव्य पुरोहित (नायक) हैं^{५२}। आकाश उन्हीं के द्वारा ठहरा हुआ है^{५३}। उन्हें विश्वकर्मा भी कहा गया है^{५४}। सभी प्राणियों को और उनके भलें-बुरे कर्मों को निहारने में समर्थ होने के कारण^{५५} वे मित्र, वरुण और अग्निकी आँख हैं;^{५६} अर्थात् मित्र, वरुण और अग्नि उनसे ही सब प्राणियों के भलें-बुरे कर्मों की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसीलिये ऋग्वेदमें यत्र-तत्र उनके उदयके समय उनसे प्रार्थना की गयी है कि वे मित्र, वरुण एवं अन्य देवताओं के समझ मनुष्यों-

४०. (ऋ० ५ | ६३ | ४)

४१. सूर्यमाधत्यो दिवि चित्रं रथम्॥ (ऋ० ५ | ६३ | ७)

४२. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षा: साधारणः सूर्यो मानुपाणाम्॥ (ऋ० ७ | ६३ | १)

४३. प्रत्युद् देवानां विशः प्रत्युदेवि मानुषान्॥ (ऋ० १ | ५० | ५)

४४. चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि॥ (ऋ० ७ | ६३ | १) तुलनीय—दविष्वतो रथमयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वत्तः॥ (ऋ० ४ | १३ | ४)

४५. येन सूर्यं ज्योतिः वाधसे तमः॥ (ऋ० १० | ३७ | ४)

४६. उत्सुरस्तात्सूर्यं एति विश्वदृष्टे अद्यष्टा। अद्यष्टात्सर्वाङ्गम्भयन्त्सर्वाश्र यातुधान्यः॥ (ऋ० १ | १९१ | ८) और भी देखें—(१) (ऋ० १ | १९१ | ९) (२) (ऋ० ७ | १०४ | २)

४७. (ऋ० १ | ५० | ७)

४८. (ऋ० ८ | ४८ | ७)

४९. (ऋ० १० | ३७ | ४)

५०. ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ४ | २५ | ४) और भी देखें—पश्येम तु सूर्यमुज्ज्ञान्तम्॥ (ऋ० ६ | ५२ | ५)

५१. सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥ (ऋ० १ | १६४ | १४)

५२. महा देवानामसुर्यः पुरोहितः॥ (ऋ० ८ | ९० | १२)

५३. सूर्येनोत्तमिता दृश्यौ॥ (ऋ० १० | ८५ | १)

५४. येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १० | १७० | ४)

५५. पश्यज्ञन्मानि सूर्य॥ (ऋ० १ | ५० | ७) और भी देखें—(१) ऋजु मर्त्येषु वृजिना च पश्यन्नभि च षट् सूर्ये अर्थं एवान्॥ (ऋ० ६ | ५१ | २) (२) उमे उदेति सूर्यों अभिज्ञन्। विश्वस्य स्यातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्त्येषु वृजिना च पश्यन्॥ (ऋ० ७ | ६० | २)

(३) उद्वां चक्षुर्वर्षण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभियो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्तु मर्त्येष्वा चिकेत॥

(ऋ० ७ | ६१ | १)

५६. चक्षुर्मित्रस्य वर्षणस्याग्नेः॥ (ऋ० १ | ११५ | १) और भी देखें—(६ | ५१ | १; ७ | ६१ | १; ७ | ६३ | १; १० | ३७ | १) अवेस्तामें भी 'हरे' अर्थात् सूर्यके शीघ्रगामी घोड़ों को अहुरमज्जदा (वरुण) का नेत्र बताया गया है।

को निषाप घोषित करें^{५७}। एक स्थलपर घटाओंके मध्य घिर गये सूर्यके आलंकारिक वर्णनका सार है कि इन्द्रने उनका हनन किया^{५८} और उनके चक्रको चुरा लिया^{५९}। (इन्द्र वर्षा-बादलके देवता हैं।)

सूर्य रात्रिके समय निम्नतलसे यात्रा करते हैं^{६०}। उनका रात्रिके एक ओर उदय और दूसरी ओर अस्त होता है^{६१}। वे इन्द्रके अधीन हैं^{६२}। अग्निमें दी

हुई आहुति वे ही प्राप्त करते हैं। उससे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है^{६३}। उनको कभी-कभी एक असुर (राहु) छायारूपसे प्रस लेता है^{६४}। अजन्म होनेके कारण सदा प्रकाशित उनका उच्चतम पद ही पितरोंका आवास है^{६५}। अश्रोंका दान करनेवाले उनके साथ निवास करते हैं^{६६}। उनका रक्षक

५७. यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्वम् ॥ (शृ० ७ । ६० । १) और (शृ० ७ । ६२ । २)

५८. संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ॥ (१० । ४३ । ५)

५९. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान व्योजसा ॥ (शृ० १ । १७५ । ४) और भी देखें—यत्रोत वाधितेष्यश्चकं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ (शृ० ४ । ३० । ४)

६०. अहश्च कृष्णमहर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेदाभिः ॥ (शृ० ६ । ९ । १) और (शृ० ७ । ८० । १)

सूर्यके रात्रिपथके विषयमें ऐतरेयावाहणका मत यह है कि रात्रिके समय सूर्यकी चमक ऊपरकी ओर होती है और फिर वह इस प्रकार गोल धूम जाता है कि दिनमें उसकी चमक नीचेकी ओर हो जाती है। ‘शत्रीमेवावस्तात्कुरुतेऽहः परस्तात्’ (३ । ४४ । ४)। शृग्वेदकी एक उक्तिके अनुसार सूर्यका प्रकाश कभी ‘रशत्’ अर्थात् चमकनेवाला और कभी ‘कृष्ण’ होता है। (शृ० १ । ११५ । ५)

एक दूसरे मन्त्रमें वर्णित है कि पूर्वकी ओर सूर्यके साथ चलनेवाला ‘रजस्’ उस प्रकाशसे भिन्न है, जिसके साथ वह उदय होता है। देखें—(शृ० १० । ३७ । ३)

६१. (शृ० ५ । ८१ । ४)

६२. यस्य व्रते वरणो यस्य सूर्यः ॥ (शृ० १ । १०१ । ३)

६३. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेन्न ततः प्रजाः ॥
(मनुस्मृति ३ । ७६)

६४. सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविद्यदासुरः ॥ शृग्वेद, और भी देखें—राहुसे कहा गया है—

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्राकौं छादयिष्यसि । भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥
(ब्रह्मपुराण)

‘तुम पूर्णिमा आदि पर्वोंके दिनोंमें चन्द्रमा और सूर्यको आच्छादित करोगे । कभी पृथिवीकी छायारूपसे चन्द्रपर और कभी चन्द्रकी छायारूपसे सूर्यपर तुम्हारा आक्रमण होगा।’

पृथिवीकी छाया चन्द्रमापर पड़नेसे चन्द्रग्रहण और चन्द्रमाकी छाया सूर्यपर पड़नेसे सूर्यग्रहण होनेके वैज्ञानिक रहस्योदायाटनसे तुलनीय।

६५. यत्रानुकाम चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः । लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्त्रव्र माममृतं कृष्ण ॥ (शृ० ९ । ११३ । ९)

६६. उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्युर्ये अशदाः सह ते सूर्येण । हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुः ॥ (शृ० १० । १०७ । २)

सूर्यका सांनिध्य प्राप्त करनेवाले एक शृष्टिके सम्बन्धमें वर्णित है कि वे ज्ञानद्वारा स्वर्णिम हंस बनकर स्वर्गमें गये और वहाँ उन्होंने सूर्यका सांनिध्य प्राप्त किया। अहीना हाऽऽश्चयः । सावित्रं विदाव्वकार । सह हंसो हिरण्यमयो भूत्वा स्वर्गलोकमियाय । आदित्यस्य सायुज्यम् ॥ (तै० ग्रा० ३ । १० । ९ । ११) और भी देखें—कि तद् यजे यजमानः कुरुते येन जीवन्तसुवर्गं लोकमेतति जीवग्रहो वा एष यददान्योऽनभिषुतस्य गृह्णाति । जीवन्तस्मैवैनं सुवर्गं लोकं गमयति ॥
(तै० सं० ६ । ६ । ९ । २०३)

सहस्रनयन कविको वतलाया गया है^{१३} । कृष्णदेवमें इनको समर्पित पूजा सुन्दर सूक्तका भाव है—सर्वभूतोंके आत्मा प्रकाशमान सूर्यकी घजाएँ आकाशमें ही गमन करती हैं । सर्वदर्शी सूर्यकी रश्मियोंके प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोरोंके समान छिप जाते हैं । सूर्यकी घजारूप रश्मियाँ प्रज्वलित अग्निके समान मनुष्योंकी ओर जाती हुई सप्त दिखायी देती हैं । हे सूर्य ! तुम वेगवान् सबके दर्शन करने योग्य हो । तुम प्रकाशवाले सबको प्रकाशित करते हो । सूर्य ! तुम देवगण, मनुष्य तथा सभी प्राणियोंके निमित्त साक्षात् हुए तेज़ को प्रकाशित करनेके लिये आकाशमें गमन करते हो । हे पवित्रताकारक वरण (सूर्य) । तुम जिस नेत्रसे मनुष्योंकी ओर देखते हो, हम उस नेत्रको प्रणाम करते हैं । हे सूर्य ! राश्रियोंको दिनोंसे पृथक् करते हुए और जीवमात्रको देखते हुए तुम विस्तृत आकाशमें गमन करते हो । हे दूरदृष्टि सूर्य ! तेजवन्त रश्मियोंसहित

६७. सहस्रणीयाः कवयो वे गोपायन्ति सूर्यम् । (शू० १० । १५४ । ५)

६८. देविये (शू० वे० १ । ५० । १—१०) अर्थवेदमें उपलब्ध इनको समर्पित एक विस्तृत सूक्तका कुछ अंश इस सूक्तका ही प्रतिरूप प्रतीत होता है । (देव० । १३ । २)

६९. त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः किन्यावताम् । त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायगम् ।

अनावृतार्गत्याद्वारं त्वं गतित्वं सूमुक्षुताम् ॥ (महाभारत ५ । १६६)

७०. यद्हो ब्रह्मणः प्रांकं सहस्रुगुणभितम् । तस्य त्वमादिरन्तश्च कालजैः सम्प्रकीर्तिः ॥

(महाभारत ५ । १७०)

७१. (वही ५ । १८५)

७२. ज्योतिष-शास्त्रके सिद्धान्तानुसार पञ्चभूतमय सूर्यप्रवान ब्रह्माण्डका संक्षिप्त परिचय इच्छ प्रकार दिया जा सकता है—‘प्रत्येक ब्रह्माण्डकी केन्द्रशक्ति सूर्य है’ । तदनुसार वे ब्रह्माण्डवत्तों सूर्य इस ब्रह्माण्डके केन्द्रस्थानीय हैं । समस्त ग्रह-उपग्रह उन्हींकी आकर्षण-विकर्षण-शक्तिके प्रभावसे उनके चारों ओर अनुष्ठण प्रदर्शिणा किया जाता है । समस्त ब्रह्माण्डमें एतदतिरिक्त ज्योतिष्मान् कोई भी वस्तु नहीं है । समस्त ज्योतिके आधाररूप सूर्यसे ही ब्रह्माण्डके अन्तर्गत समस्त ग्रह-उपग्रहमें ज्योतिका सद्वार देता है । हमारे सूर्य-परिवारमें अद्यतक ऐसे २६८ ग्रह-उपग्रह देखे गये हैं जो सूर्यकी ज्योतिसे ज्योतिष्मान् होकर उनके चारों ओर घूमते हैं । ग्रहण सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं और उपग्रहण ग्रहोंकी प्रदक्षिणा करते हैं । इन सब ग्रह-उपग्रहोंको छेकर सूर्य ध्रुवके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं ।

७३. प्र० ० हेन्डरसन (Prop. A. Henderson) का वचन है—“it would take ray of light a billion - years to go ‘around’ the Universe, travelling at the rate

त्यारोही हुए तुमको सात धोड़े चलाते हैं । सूर्य रथकी पुत्रीरूप स्थिये उड़नेवाली सात अश्रियोंको रथमें जोड़कर आकाशमें गमन करते हैं; (ऐसे) अन्यकार-के ऊपर विस्तृत प्रकाशको फैलाते हुए देवताओंमें श्रेष्ठ सूर्यको हम प्राप्त हो^{१४} (महाभारतमें उपलब्ध एक स्तोत्रके अनुसार वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी योनि, कृत्य करनेवालोंका आचार, सर्वसांख्योंकी गति, योगियोंके परम परायण और सुमुआ-काङ्क्षियोंकी गति है^{१५} । यही नहीं, वे उस सहस्रुगुका आदि और अन्त हैं, जो ब्रह्माका दिन कहलाता है^{१६} । मनु, मनुषुओं, मनुसे उपन सम्पूर्ण जगत् और सम्पूर्ण मन्वन्तरोंके अधिपति होनेके कारण वे प्रलयका समय उपस्थित होनेमर सब कुछ भस्त कर देनेवाले संवर्तक अनिको अपने क्रोधसे उत्पन्न करते हैं^{१७} ।)

सूर्य अनेक हैं; वह इस प्रकार कि प्रत्येक ब्रह्माण्डकी^{१८} केन्द्रशक्ति उसके अपने एक पृथक् सूर्य है^{१९} और श्रीभगवान्का विराट् स्थूल देह अनन्त-

कोटि ब्रह्माण्डोंसे सुशोभित है^{७४}। प्रत्येक सूर्य सविता^{७५} परमात्मा^{७६}। तात्पर्य यह है कि सूर्य भौतिक सौर-मण्डल हैं। सविता^{७६} अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमि एक के स्थूल देवता हैं, जबकि सविता उनमें अन्तर्निहित समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्म दिव्यशक्तिका ध्यानावस्थित महर्षियोंके अन्तःकरणमें

of 186,000 miles per second. The sun is the supreme existence in the whole solar system All of the sun we are fitted to receive comes to us as the sunshine, illuminating, vivifying, pleasant, bringing into existence all that is living on this plane."—ब्रह्माण्ड इतना बड़ा है कि प्रति सेकंड १८६००० मील चलनेवाली एक रशिमिको ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करनेमें करोड़ों वर्ष लग जायगा। लिटरेरी डाइजेस्टकी इस सम्मतिसे तुलनीय—

"Our own universe—we mean this limited Einsteinian universe—is a thousand million times larger than the region now telescopically accessible to us."—दूरध्वीनसे जहाँतकका पता लगता है, उससे कई करोड़ मीलतक ब्रह्माण्डका विस्तार है। इस ब्रह्माण्डमें सबसे उत्तम वस्तु सूर्य हैं। उनकी किरणोंमें जो प्राणशक्ति है, उसके बलसे ही विश्वके सब जड़चेतन पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

७४. आइन्स्टीन (Einstein) के अनुसार ब्रह्माण्डकी सीमा तो है; किंतु इसकी सीमाका पता लगाना असम्भव है। इसके चारों ओर और भी ब्रह्माण्ड होंगे। ".. the universe is finite but unbounded; 'space being affected with a curvature which makes it return upon itself' Outside, there may be other universes—admits Einstein."

७५. यास्क 'सविता'की परिभाषा करते हुए कहते हैं—'सविता सर्वस्य प्रसविता' (निरुक्त १०। ३१)—'सविता' अर्थात् सबका प्रेरक। आचार्य शकरके अनुसार, 'सर्वस्य जगतः प्रसविता सविता' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर)। विष्णुपुराणके शब्दोंमें, 'प्रजाना प्रसवनात्सवितेति निगद्यते' (१। ३०। १५)। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है। 'सविता देवानां प्रसविता' (सविता देवोंके भी उपजीव्य हैं) (१। १। २। १७)।

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा अन्य मिल्ती-जुलती अनेक परिभाषाओंके सम्बन्धमें ए० ए० मैकडॉनल्के इस व्याख्यात्मक वचन-से प्रकृत विषय तुलनीय कि "सूर्य धातुका, जिससे 'सविता' शब्द बना है, इस शब्दके साथ लगातार प्रयोग हुआ है और वह भी एक ऐसे ढगसे जो कि प्रृथग्वेदकी अपनी विशेषता है। उन्हीं कार्योंकी अभिव्यक्ति दूसरे किसी भी देवताके सम्बन्धमें किसी और ही धातुसे की गयी है। साथ ही 'सविता'के सम्बन्धमें न केवल सूर्य धातुका, अपितु इससे निष्पत्त अनेक शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है, जैसे कि प्रसवित् और प्रसव। बार-बार आनेवाले इन एक धातुज प्रयोगोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस धातुका अर्थ 'प्रेरित करना', 'उद्बुद्ध करना' और 'प्रचोदित करना' रहा है।"

पुष्टिके लिये इस विशिष्ट प्रयोगके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अन्तमें कहा है कि 'स्पष्ट है कि 'सूर्य'धातुका यह प्रयोग प्रायः सविताके लिये ही हुआ है। ('वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ ७४-५)

७६. अनेक मन्त्रोंमें सूर्य और सविता अविविक्त ढगसे एक ही देवता बनकर आते हैं। यथा—
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेष्ट्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृष्णन्। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यों रश्मिभिश्चेकितानः ॥

(शृ० ४। १४। २)

"सविता देवने अपनी ज्योतिको ऊँचा उभारा है और इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकोंप्रकाशित किया है; सूर्य प्रसारताके साथ चमकते हुए ध्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षको अपनी किरणोंसे आपूरित कर रहे हैं"।

एक और सूल्तके प्रथम—(शृ० ७। ६३। १),

द्वितीय—(शृ० ७। ६३। २)

और चतुर्थ—(शृ० ७। ६३। ४)

प्रादुर्भूत आध्यात्मिक प्रेरणाके अनुसार वर्णित रूप^५ ।

(क्रमांकः)

—मन्त्रोंमें सूर्यका वर्णन उन्हीं पदोंके द्वारा हुआ है, जो प्रायः सविताके लिये प्रयुक्त होते हैं; और तृतीय मन्त्रमें तो सविताको स्पष्टतया सूर्यका तट्टू कहा गया है।

यही नहीं, अन्य अनेक सूक्तोंमें भी दोनों देवताओंको पृथक् करके देखना कठिन हो गया है। देखिये—
(१) (ऋ० १० । १५८ । १, २, ३ और ५)

(२) (ऋ० १ । ३५ । १—११) (३) (ऋ० १ । १२४ । १)

शत० ब्रा० में भी देखें—‘असौ वै सविता य एष सूर्यस्तपति’ ॥ (३ । २ । ३ । १८) (इसमें अभिन्नता स्पष्ट है।)

यद्यपि निरुक्तमें भी कहा गया है—‘आदित्योऽपि सवितोच्यते’ ॥ (१० । ३२), तथापि उनकी हास्तिमें सविताका काल अन्यकारकी निवृत्ति होनेके उपरान्त आता है। “सविता व्याख्यातः । तस्य कालो यदा द्यौपहृतमस्काकीर्ण-रश्मिर्घृति” (नि० १२ । १२) । इसी प्रकार ऋचेदके मन्त्र ५ । ८१ । ४ पर सायण भी सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयसे अस्ततक सूर्य कहते हैं—‘उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमवर्ती सूर्य इति ।’ परंतु यदि ऋषियोंने सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयास्ततक सूर्यके रूपमें देखा होता तो उनके द्वारा सूर्योदयके पश्चात् भी स्तोताको प्रेरित करनेके लिये सविताकी मित्र, अर्यमा और भगके साथ स्तुति न की जाती (ऋ० ७ । ६६ । ४) ।

यही नहीं, ऐसी स्थितिमें अन्यत्र (१० । १३९ । १) उन्हें ‘सूर्यरश्मियोसे सम्पन्न’ विशेषणसे युक्त भी कभी न किया जाता—‘सूर्यरश्मिहरिकेद्यः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदं अयान् अजखम्’ फिर, सविताकी स्तुति अस्तंगामी सूर्यके रूपमें भी की गयी है (आगे पढ़िये) ।

अतः सविताको संपूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप पञ्चद्वापरमात्मा-अर्थमें ग्रहण करना ही अधिक समीचीन है। आर्य ऋषियोंने इसी रूपको ग्रहण कर सवितृ-मण्डल मन्त्रवर्ती नारायणको ध्यातव्य बताया है।

७७. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणरूपे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां वाधते वैति सूर्यम् ॥

(ऋ० १ । ३५ । ९)

और भी देखें—उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्च्यसि ॥ (ऋ० ५ । ८१ । ४)

तुलनीय—

येन द्यौश्च ग्रा पृथिवी च दल्हा येन स्वः स्तमितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यं कन्दसी अवसा तस्तभाने अम्बैक्षेता मनसा रेजमाने । यत्राधि सूर्य उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋ० १० । १२१ । ५-६)

७८. भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्यं कहते हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्वासयतेऽस्तिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(गीता १५ । १२)

कठोपनिषद् (२ । ३ । १५)में वर्णित है—‘परमात्माकी ज्योतिसे ही सूर्य, चन्द्र आदिमें ज्योति आती है और उसीसे यह सारा संसार आलोकित है—तसेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

और भी देखें—स यथा सैन्धववनो अनन्तरोऽवाहाः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरे अयमात्मा अनन्तरोऽवाहाः कृत्स्नः प्रजानघन एव ।

‘जिस प्रकार सैन्धववर्ण भीतर-वाहर सर्वत्र ही लवणमय है, उसी प्रकार वात्मा भी भीतर-वाहर सर्वत्र ज्ञानमय है । उसीकी चित्सन्ताका आध्यात्मिक विलास ज्ञानरूपसे वेदके द्वारा, अधिदैव विलास शक्तिरूपसे सूर्यात्माके द्वारा और अधिभूत विलास (स्थूल) ज्योतिरुपसे सूर्यगोलक, अग्नि तथा अन्यान्य ज्योतिष्करणके द्वारा वृश्यसंसारमें विलसित है ।’

तुलनीय—विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते ॥

(छान्दोग्योपनिषद् ३ । १९ । १—४)

श्रीसूर्य-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—डा० श्रीत्रिमुखनदास दामोदरदासजी सेठ)

ऋग्वेद कहता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपच्छ ।

(१ । ११५ । १)

‘सूर्य सबकी आत्मा हैं’—प्राणखरूप होनेसे वे सबकी आत्मा हैं। उषाके बाद ही सूर्यका उदय होता है। सूर्यके प्रत्यक्ष देव होनेसे उनकी पूजाके लिये किसी भी प्रकारकी मूर्तिकी आवश्यकता नहीं रहती।

ऋग्वेद आगे कहता है—

नः सूर्यस्य लंघशो ययोथाः (२ । ३३ । १)

हम सूर्यके प्रकाशसे कभी दूर न रहें। सूर्य स्थावर-जङ्गम सभीकी आत्मा हैं। वेदोंने सूर्यका महत्व प्रतिपादित किया है। यदि सूर्य न हों तो पलभरके लिये भी स्थावर-जङ्गम जगत् अपना अस्तित्व न टिका सके। सूर्य सबका प्राण है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

(शू० १० । ११० । ३)

‘परमेश्वरने सूर्य और चन्द्रमाको यथापूर्व—पूर्व कल्पवत्-निर्माण किया है।’ यहाँ सूर्य प्राण हैं और चन्द्रमा रयि है। श्री शक्तिको रयि कहते हैं। प्राण स्वयंप्रकाशी है और रयि परप्रकाशी है। चन्द्रमाका प्रकाश सूर्यसे लिया हुआ प्रकाश है। ब्रह्मका प्रथम आविष्कार आदित्य या सूर्य ही है, जिससे पूरा सौर मण्डल बना है। प्रश्नोपनिषद् (१ । ५) कहता है—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेच चन्द्रमाः ।

‘निःसंदेह सूर्य ही प्राण हैं और चन्द्रमा ही रयि है।’

‘यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सञ्चिन्धत्ते।’ (प्र० ३० । १ । ६)

सूर्यकी किरणोंसे ही सम्पूर्ण जगत्में प्राणतत्त्वका संचार होता है। जहाँ प्राण पहुँचता है, वहाँ ही जीवन

जीता है। अतः धरोंकी रचना ऐसी बनायी जाती है कि उनमें अधिक-से-अधिक सूर्यकी रश्मियाँ आयें और धरको शुद्ध करें। रोगोत्पादक कीटाणुओंका विनाश इन्हीं सूर्य-रश्मियोंसे होता है। सूर्यका जो यह उदय होता है, वह सम्पूर्ण प्राणमय है। उदय होते ही वे अपनी प्राणपूर्ण किरणोंसे सभी दिशा-उपदिशाओंको व्याप कर देते हैं और सर्वत्र अपनी अद्भुत प्राणशक्तिसे सबको नवजीवन प्रदान करते हैं।

सूर्य यज्ञके उत्तमकर्ता एवं उसके मुख हैं। उत्तम संकल्प करनेवाले देव सूर्यको प्राप्त होते हैं। सूर्यदेवद्वारा सर्वं शुभ कर्मोंके ज्ञोतरूप यज्ञ बना है। उस यज्ञसे जो सामर्थ्य प्राप्त होती है, वह सब मुझे प्राप्त होवें।

(अर्थव० १३ । १ । १३-१४)

ये सूर्य अहो-रात्रका निर्माण करते हैं। पृथ्वीके जिस अर्ध भूभागमें प्रत्यक्ष होते हैं, वहाँ दिन और अन्य अर्ध भूभागमें रात्रि होती है। इस अन्तरिक्षमें विराजमान तेजस्वी सूर्यकी हम सुन्ति करते हैं। वे हमारे मार्ग-दर्शक बने। (अर्थव० १३ । २ । ४३)

जिनकी प्रेरणासे वायु और जलके प्रवाह चलते हैं, जो सबका ध्वंस करते हैं, जिनसे सब जीवित रहते हैं, जो प्राणसे पृथ्वीको तृप्त और अपानसे समुद्रको परिपूर्ण करते हैं, जिनमें अग्नि आदि सर्वदेव एक पंडित्कर्में आश्रित हैं (अर्थव० १३ । ३ । २-५), वे सूर्यदेव गायत्रीके अमृतमय केन्द्रमें स्थित हैं।

ये सूर्य वैश्वानर विश्वरूप प्राणात्रि हैं। (प्र० ३० १ । ७) वे ही सबका चैतन्य हैं। वे ही सबकी प्रेरक शक्ति हैं। वे ही सबकी ज्योति हैं। वे प्रजाओंके प्राण सूर्य, विश्वको रूप देनेवाले, रश्मियोवाले प्रकाशमान हैं। उनसे ही ज्ञान और धनकी उत्पत्ति हुई है। अगर

सूर्य न होते तो ज्ञान कहाँसे उत्पन्न होता और सूर्यकी अग्नि न होती तो रूप भी न होते । अतः वे ज्ञान और धनके उत्पादक हैं ।

सूर्यके कालखरूपका भी वर्णन किया जाता है । सूर्य आकाशमें जिस मार्गसे गमन करते हैं, उस आकाशपथको 'रविपथ' कहते हैं । उस मार्गको सत्ताईस भागोमें विभक्त करके उनके 'नक्षत्र' नाम दिये गये हैं । इस विशाल आकाशस्थानको 'सौर-जगत्' कहते हैं । इस भ्रमणपथमें सूर्यके साथ, उनके आस-गासमें नवप्रह धूमते हैं । उनमें पृथ्वीका भी समावेश हो जाता है । इन सत्ताईस नक्षत्रोंके अधिष्ठाता देवके रूपमें एक सूर्य ही हैं; परंतु बारह महीने और बारह राशियोंकी गणना करनेसे उन सूर्यके बारह नाम हैं । वर्षमें सूर्यकी दो गतियाँ होती हैं, जिनको उत्तरायण और दक्षिणायण कहते हैं । सूर्य जब उत्तरायणमें गमन करते हैं, तब दिन दीर्घ बन जाते हैं और सूर्यके तेजमें वृद्धि होती है । दक्षिणायनमें गमन करनेपर रात्रि दीर्घ हो जाती है और तेज-बलकी कमी हो जाती है ।

सत्यरूपी सूर्यके उदय होनेसे पहले 'उषा'का प्रादुर्भाव होता है । 'उषा'के प्रादुर्भावके साथ सम्पूर्ण यज्ञोंकी क्रियाएँ भी आती हैं । इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेद के छठे मण्डलमें किया गया है । सूर्यगीता कहती है—

ब्रह्माण्डानि च पिण्डानि समष्टिव्यष्टिभेदतः ।
परस्परविमिश्राणि सन्त्यनन्तानि संस्थया ॥
(१ । २१)

ब्रह्माण्ड और पिण्ड, समष्टि और व्यष्टि-मेदसे परस्पर मिले हुए हैं और उनकी संस्था अनन्त है ।

यदा कुण्डलिनी शक्तिरविर्भवति साधके ।
तदा स पञ्चकोशे मत्तेजोऽनुभवति भुवम् ॥
(१ । ४८)

साधकमें जब कुण्डलिनी-शक्तिका आविर्भाव होता है, तब वह अवश्य ही पञ्चकोशोंमें मेरे (सूर्यके) तेजका अनुभव करता है ।

पीठोत्पन्नकरेष्वेषु साधनेष्वप्तकेष्वपि ।
योगिभिस्तु निजं देहं साधनोत्तममीरितम् ॥
(१ । ६०)

पीठको उत्पन्न करनेवाले आठ साधनोंमें योगियोंने निज देहको ही उत्तम साधन कहा है ।

यथा सर्वेषु कायेषु गदां तिष्ठति गोरसः ॥
तथापि गोस्तनादेव ज्वतीति विनिश्चितम् ।
तथैव मामिका शक्तिर्विद्यमानाऽपि सर्वतः ॥
नित्यनैभित्तिकैः पीठेराविर्भवति भूतले ।
(१ । ८१-८३)

जिस प्रकार गौके समस्त शरीरमें गोरस रहता है, परंतु स्तनसे ही वह निर्गत होता है, उसी प्रकार मेरी शक्ति सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी पृथ्वीपर नित्य और नैमित्तिक पीठोंद्वारा आविर्भूत होती है ।

मरणे दाधीनश्चेत्तेजस्तत्त्वं समाप्तिः ।
अथवा धूम्रतत्त्वं स शुरुं कृष्णगतिश्चितः ॥
(यो० गी० ८ । ७६)

जिस पुरुषकी मृत्यु होनेपर भी उसका मृत शरीर दहनहीन रहे अथवा अघोर स्थलमें या अरण्यमें मरनेसे दहन-कार्यके अभावमें दहन-क्रियाका अभाव हो, तो उस तत्त्वका देवता उसे सूर्यरूप तेजतत्त्वमें ग्रहण करता है ।

एकस्मिन्नयने भृशं तपति यः काले स दाहकमो
येनातन्यतयत्प्रकाशसमये नैषां पदं दुर्लभम् ।
सा व्योमावयवस्य यज्ञ विदिता लोके गतिः शाश्वती
श्री सूर्यः सुरसेवितोऽपि हि महोदेवः स नखायताम् ॥

जिनकी देवोनि सेवा की है, ऐसे वे भगवान् सूर्य-नारायण हैं । जो एक अयन (उत्तरायण)में बहुत तपते हैं, जिन्होंने प्रतिदिन समयानुसार नियमित गति की है, जिनके प्रकाशसे कोई भी स्थान रिक्त नहीं रहता है और जिनकी धाखण्ड गति इस पृथ्वीलोकमें किसीके द्वारा भी जाननेमें नहीं आती है, ऐसे आकाशमें गति करनेवाले सूर्यदेव इमारा सदा रक्षण करें ।

वेदोंमें सूर्य-विज्ञान

(लेखक-त्र० म०म० प० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

सूर्यका विज्ञान वेद-मन्त्रोंमें बहुत आया है। वेद सूर्यको ही सब चराचर जगत्का उत्पादक कहता है—
 ‘नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः’ और इसको ही ‘प्राणः प्रजानाम्’ कहा जाता है। वेदोंमें सूर्यको इन्द्र शब्दसे भी कहा गया है। उस इन्द्र नामसे ही सूर्यकी स्तुतिका ऋग्वेदीय मन्त्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

इन्द्राय निरो अनिशितसर्गाऽथपः प्रेरणं सगरस्य वुभात् ।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्यका बोधक है। इन्द्र शब्द अन्तरिक्षके देवता विद्युतके लिये भी प्रयुक्त है और द्युलोकके देवता सूर्यके लिये भी। इन्द्र शब्दका दोनों ही प्रकारका अर्थ सायण-भाष्यमें भी प्राप्त होता है। इन्द्र चौदह भेदोंसे श्रुतिमें वर्णित हैं। उन भेदोंका संग्रह ब्रह्मविज्ञानके इस पथमें किया गया है—

इन्द्रा हि वाक् प्राणधियो घलं गति-

विद्युतप्रकाशो द्वरतापराक्रमाः ।

शुक्लादिवर्णा रविचन्द्रपुरुषा-

बुत्साह आत्मेति मताश्चतुर्दशः ॥

ये हैं—१—वाक्, २—प्राण, ३—मन, ४—बल, ५—गति, ६—विद्युत, ७—प्रकाश, ८—ऐश्वर्य, ९—पराक्रम, १०—रूप, ११—सूर्य, १२—चन्द्रमा, १३—उत्साह और १४—आत्मा। इन्द्रका विज्ञान श्रुतिमें सबसे गम्भीर है। अस्तु! दो विशेषण इन्द्रके आते हैं—एक सहखान् और दूसरा मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्षस्य वायु वा विद्युतस्त्रूप है और सहखान् इन्द्र सूर्यस्त्रूप है। यहाँ भी यह सूक्ष्म विभाग है कि शूर्य-मण्डलको द्युलोक कहा जाता है और उसमें ग्रातिष्ठित प्राणगृहिङ्कि देवताओंको इन्द्र कहा जाता है। शुरुतमें लक्षित इष्टका दल्लेख है—‘श्यामितरसं पृथिव्यो दथा श्यैतिष्ठेष अस्तु गम्भीरी’—जैसे पृथिवीके गर्भमें अनि है, वैसे द्युलोक (सूर्य-मण्डल) के गर्भमें इन्द्र है। सार्वत्र यह कि

पूर्वोक्त मन्त्रमें इन्द्र पदका अर्थ सूर्य है। तब मन्त्रका स्पष्टार्थ यह हुआ—‘यह महान् स्तुतिस्त्रूप वाणी इन्द्रके लिये प्रयुक्त है।’ इन्द्र अन्तरिक्षके मध्यसे जलको प्रेरित करता है और अपनी शक्तियोंसे पृथिवीलोक और द्युलोक—दोनोंको रोके हुए है, जैसे कि अक्ष रथके चक्रोंको रोके रहता है। विचारिये कि इससे अधिक आकर्षणका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है? फिर भी, यहाँ केवल इन्द्र शब्द आनेसे यदि यह संदेह रहे कि यहाँ इन्द्र सूर्यका नाम है या वायुका? तो इसी सूक्तका—इससे दो मन्त्र पूर्वका मन्त्र देखिये, जिसमें सूर्य शब्द स्पष्ट है—

स सूर्यः पर्युरु वरांस्येन्द्रो च वृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
 अतिष्ठन्तमपश्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥

(ऋ० १०। ८९। २)

यहाँ श्रीमाधवाचार्य ‘वरांसि’ का अर्थ तेज वत्ताते हैं। उनके मतानुसार मन्त्रका अर्थ है कि ‘वह सूर्यस्त्रूप इन्द्र बहुत-से तेजोंको इस प्रकार धुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथके चक्रोंको धुमाता है और यह अपने प्रकाशसे कृष्णवर्णके अन्धकारपर इस प्रकार आधात करता है, जैसे तेज चलनेवाले घोड़ेपर चालुकका आधात किया जाता है।’ किंतु, सत्यव्रत सामश्रमी महाशय यहाँ ‘वरांसि’ का अर्थ नक्षत्र आदिका मण्डल करते हैं, जो कि यहाँ सुसंगत है और सब मन्त्रका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह हो जाता है कि ‘सूर्यस्त्रूप इन्द्र समस्त महान् मण्डलोंको रथचक्रकी भाँति धुमाता है।’ इसमें ज्ञाकर्षणज्ञ विज्ञान धनिक ल्यष्ट हो जाता है और श्रीमाधवाचार्यके धर्मके अनुसार भी तेजोमण्डलका धुमाना क्षैर इन्द्र शब्दका अर्थ सूर्य होना अभिव्यक्त ही है। फिर भी संदेह हो तो सूर्य उक्ते मध्यमें और

सबके आकर्षक हैं, इस विज्ञानको दूसरे मन्त्रोंमें भी स्पष्ट देखिये—

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम् । विश्वस्य नाभिं
चरतो ध्रुवस्य । (श० १० । ५ । ३)
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः । (४ । ५२ । २)
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्युः । (१ । १६४ । २)

—इत्यादि वहूत-से मन्त्रोंमें भगवान् सूर्यका नाभिस्थानपर, अर्थात् मध्यमें रहना और सब लोकोंको धारण करना स्पष्ट रूपसे कहा गया है। और भी देखिये—

तिस्रो मातृख्योन् पितॄन् विभ्रदेक
अर्धस्तस्थौ नेमभवग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुख्य पृष्ठे
विश्वविदं चाचमविश्वमिन्वाम् ॥
(श० १ । १६४ । १०)

मातृ शब्द पृथ्वी और पितॄ शब्द द्युका वाचक है, जो वेदमें वहुधा प्रयुक्त होता है। इस मन्त्रका अर्थ यह है कि एक ही सूर्य तीन पृथ्वी और तीन द्युलोकोंको धारण करते हुए ऊपर स्थित हैं। इनको कोई भी ग्लानिको प्राप्त नहीं करा सकते, अर्थात् दवा नहीं सकते। उस द्युलोकके पृष्ठपर सभी देवता संसारके जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होनेवाली वाक्‌को परस्पर बोलते हैं।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत धन् त्रीणि व्रता विदये
अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् चरुण
मित्र चारु ॥
(श० २ । २७ । ८)

—इसका अर्थ यह है—‘आदित्य तीन भूमि और तीन द्युलोकोंको धारण करते हैं। इन आदित्योंके अन्तर्ज्ञानमें वा यज्ञमें तीन प्रकारके व्रत, अर्थात् कर्म

हैं। हे अर्यमा, चरुण, मित्र नामक आदित्य-देवताओं। अतसे तुम्हारा सुन्दर अनिविशिष्ट महत्व है।’

इस प्रकार कई एक मन्त्रोंमें तीन भूमि एवं तीन द्युलोकोंका धारण सूर्यके द्वारा बताया गया है। सत्यव्रत सामश्रयी महाशयका विचार है कि ऐ छहों मह यहाँ सूर्यके आवर्णणमें स्थित बताये गये हैं। पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें रहनेवाले चन्द्रमा, दुष और शुक्—ये तीन भूमियोंके नामसे कहे गये हैं और सूर्यसे ऊपरके मंगल, बृहस्पति और शनि—ये द्युके नामसे कहे गये हैं। यो इन सब महोंका धारणाकर्पण सूर्यके द्वारा सिद्ध हाँ जाता है।’

‘श्रीगुरुजी’ तीन भूमि और तीन द्युलोककी यह व्याप्त्या उपयुक्त नहीं मानते; क्योंकि यों विचार करनेपर प्रह-नक्षत्र आदि भूमि बहुत हैं। तीन-तीनका परिच्छेद ठीक नहीं बैठता। यहाँ तीन भूमि और तीन द्युलोकका अभिप्राय दूसरा है। छान्दोग्योपनिषद्‌में बताये हुए तेज, अप्, अन्‌के त्रिवृत्करणके अनुसार प्रत्येक मण्डलमें तेज, अप्, अन् तीनोंकी स्थिति है और प्रत्येक मण्डलमें पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य—यह त्रिलोकी नियत रहती है। इस त्रिलोकीमें भी प्रत्येकमें तेज, अप्, अन् तीनोंका भाग है। इनमेंसे अन्नका भाग पृथ्वी, अप्‌का भाग अन्तरिक्ष और तेजका भाग द्यु कहलाता है। तब तीनों मण्डलोंको मिलाकर तीन भूमि और तीन द्यु हो जाते हैं। ये तीनों भूत और रवि हैं और इनका धारण करनेवाला प्राण-रूप आदित्य-देवता है, जो ‘तथा द्यौस्त्रिन्द्रेण गर्भिणींमें बताया गया है।

अथवा दूसरा अभिप्राय यह है कि छान्दोग्योप-निषद्‌में सत्से जो तेज, अप् और अन्‌की सृष्टि

१. लेखकके आचार्य स्व० श्रीवेदमहार्णव मधुसूदनजी ज्ञा ।

बतलायी गयी है। उनमें प्रत्येक फिर तीन-तीन प्रकारका होता है। तेजके भी तीन भेद हैं— तेज, अप्, अन्। अप्के भी तीन भेद हैं— तेज, अप्, अन् और अन्के भी तीन भेद हैं— तेज, अप्, अन्। इनमें प्रथम वर्गकी अन्न-अवस्था और द्वितीय वर्गकी तेज-अवस्था एकरूप होती है, अर्थात् तेज-वर्गका अन् और अप्-वर्गका तेज एक ही है। यों ही अप्के वर्गका अन् और अन्के वर्गका तेज एक ही है। तब नौमेंसे दो घट जानेपर सात रह जाते हैं। ये ही सात व्याहति या सात लोक प्रसिद्ध हैं— भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। वहाँ भूः पृथ्वी है। भुवः जल है या जल-प्रधान अन्तरिक्ष है। स्वः तेज या तेजः प्रधान द्युलोक है। महः वायु या केवल वायु-प्रधान लोक है। जनः आकाश या वायुमण्डल-वहिर्भूत शुद्ध आकाशलोक है। तपः किया या सकल क्रियाके मूल कारणभूत प्राण-प्रजापतिका लोक है। सत्यम् सत्त्वकी पहली व्याकृत-अवस्था मन या मनोमय परमेष्ठीका लोक है। अब इनमें भूः, भुवः, स्वः— ये तीनों पृथ्वी कहलाते हैं। स्वः, महः, जनः— ये तीनों अन्तरिक्ष कहलाते हैं और जनः, तपः, सत्यम्— ये तीनों द्वा हैं, जिनका धारण पूर्वोक्त मन्त्रोंमें सूर्यद्वारा बताया गया है। अब चाहे संसारमें सैकड़ों-हजारों मण्डल या गोल बन जायें, अनन्त पृथ्वी-गोल हों, किंतु तत्त्व-विचारसे सात व्याहतियोंसे बाहर कोई नहीं हो सकता। अतएव यह व्यापक अर्थ है। श्रीमाधवा-चार्यने भी 'तिस्मो भूमीः' से व्याहतियाँ ही ली हैं। अस्तु, चाहे कोई भी अर्थ स्वीकार कीजिये; किंतु सूर्यका धारणाकर्षण-विज्ञान इन मन्त्रोंमें अवश्य ही मानना पड़ेगा। नौ भूमियों या सैकड़ों-हजारों भूमियोंका इन्द्र या सूर्यके अधिकारमें बद्ध रहना भी मन्त्रोंमें बताया गया है, और सूर्यका चक्रकी भाँति सबको धूमना

और स्वयं भी अपनी धुरीपर धूमना पूर्वोक्त मन्त्रोंमें और 'विवर्तते अहनी चक्रियैव' इत्यादि वहुत-से मन्त्रोंमें स्फुट रूपसे कहा गया है।

भूमिके भ्रमणका भी संकेत मन्त्रोंमें कई जगह प्राप्त होता है। केवल इतना ही नहीं, भूमि अपनी धुरीपर क्यों धूमती है? इसका कारण एक मन्त्रमें विलक्षण ढंगसे प्रकट किया गया है—

यज्ञ इन्द्रमवद्यद् यद् भूमि व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि ॥

(ऋ० म० ८। १४५)

मन्त्रका सीधा अर्थ यह है कि 'यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, इन्द्र द्युलोकमें ओपश— अर्थात् शृंग बनाता हुआ पृथ्वीको विवर्तित करता है अर्थात् धूमाता है।' किरण जिस समय किसी मूर्ति पदार्थपर आधात करके लैटती है, तब उसका गमन-मार्ग आगमन-मार्गसे कुछ अन्तरपर होता है। उसे ही वैज्ञानिक भाषामें शृङ्ग या ओपश कहते हैं। तब किरणोंके आधातसे पृथ्वीका धूमना इस मन्त्रसे प्राप्त होता है। (अवश्य ही यह उन्मत्त-प्रलाप नहीं है, किंतु इसके स्पष्टीकरणके लिये गहरी परीक्षाकी आवश्यकता है। सम्भव है कि किसी समय परीक्षासे यह विज्ञान स्फुट हो जाय और कोई बड़ी गम्भीर बात इसमेंसे प्रकट हो पडे।)

और भी सूर्यका और सूर्यके रथ और अशोका वर्णन देखिये—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-
मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
चिनाभि चक्रमजरमनर्व
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्युः ॥

(ऋ० १। १६४। २)

'सूर्यके एक पहियेके रथमें सात घोड़े जुड़े हुए हैं। वरुतः (जोड़े सात नहीं) एक दी सात

नामका या सात जगह नमन करनेवाला थोड़ा इस रथको चलाता है। इस रथचक्रकी तीन नामियाँ हैं। यह चक्र (पहिया) शिथिल नहीं, अत्यन्त दृढ़ है और कभी जीर्ण नहीं होता। इसीके आधारपर सारे लोक स्थिर हैं।' यह हुआ सीधा शब्दार्थ। अब इसके विज्ञानपर दृष्टि डाली जाय।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि देवताओंके रथ, अश्व, आयुध आदि उन देवताओंसे अत्यन्त मिन्न नहीं होते; किंतु परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उनका स्वरूप ही रथ, अश्व, आयुध आदि रूपोंसे वर्णित हुआ है अर्थात् आवश्यकता होनेपर वे अपने स्वरूपसे ही रथ, अश्व आदि प्रकट कर लेते हैं। मनुष्योंकी भाँति काष्ठ आदिके रथ आदि बनानेकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती। अतएव श्रुति रथ, अश्व, आयुध आदि रूपसे देवताओंकी ही स्तुति करती है। अस्तु, इसके अनुसार यहाँ रथ शब्दका तात्पर्य सूर्यके ही वर्णनमें है। रथ शब्दकी सिद्धि करते हुए निरुक्तकारने कहा है कि यह स्थिरका विपरीत है, अर्थात् 'स्थिर' शब्द ही वर्ण-विपर्यय होकर 'रथ' शब्दके रूपमें आ गया है। अतः सूर्यकी स्थिरताका भी प्रमाण कई विद्वान् इससे निकालते हैं।

रथ और रथीमें मेदकी ही यदि अपेक्षा हो, तो सौर-जगन्मण्डल—सूर्यकिरण-क्रान्त ब्रह्माण्ड सूर्यका रथ मानना चाहिये। पुराणमें सूर्यकी गतिके प्रदेश क्रान्तिवृत्तको सूर्यरथ बताया गया है—

साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः।
आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्लेन या गतिः॥
स रथोऽधिष्ठितोदेवैरादित्यैश्वृपिभिस्तथा। इत्यादि
(वि० पु० २। १०। १-२)

संवत्सर इस रथका चक्र (पहिया) माना गया है। वस्तुतः संवत्सररूप काल ही इस सब जगत्को फिरा रहा है। कालके ही कारण जगत् धूम रहा है। परिणाम होना—एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें चला

जाना ही जगत्का जगत्पन है। उसका कारण काल ही है। सुतरां, सौर जगत्का पहिया संवत्सररूप काल हुआ। इस संवत्सररूप चक्रका मन्त्रके उत्तराधिमें वर्णन हुआ है। तीन इसकी नामियाँ हैं, एक संवत्सरमें तीन वार जगत्की स्थिति विलकुल पट्ट जाती है। वे ही तीन ऋतुएँ (शीत, उष्ण, वर्षा) यहाँ चक्रकी नामि बतलायी गयी हैं। पौँच-छः ऋतुओंका जो विभाग है, उसके अनुसार अन्यत्र पौँच या छः अरे बताये जाते हैं—

त्रिनामिमति पञ्चारे पञ्जेमिन्यक्षयात्मके।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥
(वि० पु० २। ८। ४)

अथवा तीन—भूत, वर्तमान, भविष्यत्-मेदसे मिन्न काल इस चक्रकी नामियाँ हैं। जो व्याख्याता चक्र पठसे भी सौर जगत् (ब्रह्माण्ड)का ही प्रहण करते हैं, उनके मनसे भूमि, अन्तरिक्ष और दिव-नामके तीनों लोकोंकी तीन नामि हैं।

और इस चक्रका विशेषण दिया गया है—‘अनर्वम्’। इसकी व्याख्या करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि ‘अप्रल्युतमन्यसिन्’ अर्थात् यह सूर्य-मण्डल किसी दूसरे आधारपर नहीं है। यह ‘अजरा है, अर्थात् जीर्ण नहीं होता और इसीके आधारपर सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। इस व्याख्याके अनुसार सूर्य-मण्डलके आकर्षणसे सब लोग बैंधे हुए हैं एवं सूर्य अपने ही आधारपर हैं, वे किसी दूसरेके आकर्षणपर बद्द नहीं हैं। यह आधुनिक विज्ञानसे स्फुट हो जाता है। संवत्सररूप कालको चक्र माननेके पक्षमें भी इन तीनों विशेषणोंकी संगति स्पष्ट है। कालके ही आधारपर सब हैं, काल किसीके आधारपर नहीं और काल कभी जीर्ण भी नहीं होता।

‘ मेद माननेवाले वायुको सूर्यका अश्व कहते हैं अर्थात् वायुमण्डलके आधारसे सूर्य चारों ओर धूमते हैं। वह

वायु वस्तुतः एक है; किंतु स्थान-भेदसे उसकी आवह-प्रवह आदि सात संज्ञाएँ हो गयी हैं। अतएव कहा गया कि 'एक ही सात नामका या सात स्थानोंमें नमन करनेवाला अश्व वहन करता है।' किंतु निरुक्तकारके मतानुसार अशन, अर्थात् सब स्थानोंमें व्याप्त होनेके कारण सूर्य ही अश्व है। किंतु सूर्यमण्डल हमसे बहुत दूर है। उसे हमारे समीप सूर्यकी किरणे पहुँचाती है। सूर्य अश्व है, तो किरणे वला (लगाम) है। जहाँ किरणे ले जाती हैं, वहाँ सूर्यको भी जाना पड़ता है। (लगाम या रास और किरण—दोनोंका नाम संस्कृतमें 'रस्मि' है—यह भी ध्यान देनेकी बात है।) इससे सूर्यको वहन करनेवाली किरणें ही सूर्यश्च हुईं। कई भावोंसे मन्त्रोंका विचार होता है—कहीं सूर्य अश्व तो रस्मि वला, कहीं सूर्य अश्वरोही, तो किरण अश्व आदि। वह किरण भी वस्तुतः एक अर्थात् एक जातिकी है, किंतु किरणें सात भी कही जा सकती हैं। सात कहनेके भी अनेक कारण हैं। किरणोंके सात रूप होनेके कारण भी उन्हें सात कह सकते हैं। अथवा संसारमें वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर—ये छः ऋतुएँ होती हैं और सातवीं एक साधारण ऋतु। इन सातोंका कारण सूर्यकी किरणें ही हैं। सूर्यकी किरणोंके ही तारतम्यसे सब परिवर्तन होते हैं। इसलिये सात प्रकारका परिवर्तन करनेवाली सूर्य-किरणोंकी अवस्थाएँ भी सात हुईं। अथवा भूमि, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और शनि—इन सातों ग्रहों और लोकोंमें या भूः भुवः स्वः आदि सातों भुवनोंमें प्रकाश पहुँचानेवाले और इन सभी लोकोंसे रस आदि लेनेवाली सूर्य-किरणें ही हैं। अतः सात स्थानोंके सम्बन्धसे इन्हे सात कहा जाता है, यह बात 'सप्तनाम' पदसे और भी सुट होती है। सूर्यकी किरणें सात स्थानोंमें नत होती हैं। प्रकारान्तरमें यह 'सप्तनाम' पद सूर्यका

विशेषण है, अर्थात् सात रस्मियाँ सूर्यसे रस प्राप्त करती रहती हैं। सातों लोकोंसे इसका आहरण सूर्य-रस्मिद्वारा होता है अथवा सातों ऋषियों सूर्यकी स्तुति करते हैं। यहाँ भी ऋषियों तारा-रूप प्रह भी लिये जा सकते हैं और वसिष्ठ आदि ऋषियों भी। इस प्रकार, मन्त्रार्थका अधिकतर विस्तार हो जाता है।

अब पाठक देखेंगे कि पुराणों और वृद्ध पुरुषोंके मुखसे जिन बातोंको सुनकर आजकलके विज्ञानी सज्जनोंका हास्य नहीं रुकता, वे ही बातें साक्षात् वेदमें भी आ गयी हैं। उनका तात्पर्य भी ऐसा निकल पड़ा कि बात-की-बातमें बहुत-सी विद्याका ज्ञान हो जाय। क्या अब भी वे हँसी उड़ानेकी ही बातें हैं? क्या पुराणोंमें भी इनका यही स्पष्ट अभिप्राय उद्घासित नहीं है? खेद इसी जातका है कि हम इधर विचार नहीं करते।

अब इन तीनों देवताओंका परस्पर कैसा सम्बन्ध है? इसका प्रतिपादक एक मन्त्र भी यहाँ उद्घृत किया जाता है—

अस्य चामस्य पलितस्य होतु-
स्तस्य भ्राता मव्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या-
आपश्च विश्पर्ति सप्तपुत्रम् ॥
(शू० १ । १६४ । १)

दीर्घतपा ऋषिके द्वारा प्रकाशित इस मन्त्रका निरुक्त-कारने केवल अधिदैवत (देवता-पक्षका) अर्थ किया है और भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने अधिदैवत और अध्यात्म—दो अर्थ किये हैं। पहला अधिदैवत अर्थ इस प्रकार है—

(चामस्य) सबकी सेवा करने योग्य या सबको प्रकाश देनेवाले, (पलितस्य) सम्पूर्ण लोकके पालक, (होतुः) स्तुतिके द्वारा यज्ञादिमें आह्वान करने योग्य, (तस्य अस्य) सुप्रसिद्ध इन प्रत्यक्ष देव सूर्यका,

(मध्यमः भ्राता) वीचका भाई अन्तरिक्षस्थ वायु अथवा विद्युत्-रूप अग्नि (अश्नः अस्ति) सर्व-व्यापक है। (अस्य तृतीयः भ्राता) इन्हीं सूर्यदेवका तीसरा भाई (धृतपृष्ठः) धृतको अपने पृष्ठपर धारण करनेवाला—धृतसे प्रदीप होनेवाला अग्नि है। (अत्र) इन तीनोंमें (सप्तपुत्रम्) सर्वत्र फैलनेवाले सात किरण-रूप पुत्रोंके साथ सूर्यदेवको ही मै (विश्पतिम्) सबका स्वामी और सबका पालन करनेवाला (अपश्यम्) जानता हूँ। इस अर्थसे सिद्ध हुआ कि अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों लोकोंके तीन मुख्य देवता हैं। इन तीनोंमें परस्पर सम्बन्ध है और सूर्य सबमें मुख्य हैं। इस मन्त्रमें विशेषणोंके द्वारा कई एक विशेष विज्ञान प्रकट होते हैं; उन्हींका वर्णन नीचे किया जाता है।

वामस्थ—निरुक्तकार ‘वन्’ धातुसे इस शब्दकी सिद्धि मानते हैं। धातुका अर्थ है—संभक्ति, अर्थात् सम्यक् भाजन या संविभाग—वाँठना। इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य सबको अपना प्रकाश और वृष्टि-जल आदि बांटते रहते हैं। इतर सभी सूर्यके अधीन रहते हैं। यज्ञमें भी सूर्यकी ही प्रधान स्तुति की जाती है।

पलितस्थ—निरुक्तकार इसका पालक अर्थ करते हैं; अर्थात् सूर्य सबका पालन करनेवाले हैं। किंतु पलित शब्द श्वेत केशका भी वाचक है और श्वेत केशके सम्बन्धसे कई जगह वृद्धका भी वाचक हो जाता है। अतः इसका यह भी तात्पर्य है कि सूर्य सबसे वृद्ध (प्राचीन) हैं।

होतुः—यह शब्द वेदमें ‘हृ’ धातु और ‘द्वा’ धातु—दोनोंसे बनाया जाता है। हृ धातुका अर्थ है—दान, आदान और प्रीणन। द्वा धातुका अर्थ है—सर्वा, आहान और शब्द। अतः इस विशेषणके अनेक तात्पर्य हो सकते हैं—जैसा कि सूर्य हमें वृष्टि-जलका

दान करते हैं, पृथ्वीमेंसे रसका आहरण (भोजन) करते हैं और सबको प्रसन्न रखते हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंके नाभि-रूप केन्द्र-स्थानमें स्थित रहकर मानो उनसे सर्वां कर रहे हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंका आहान-रूप आकर्पण करते रहते हैं और तापके द्वारा वायुमें गति उत्पन्न कर उसके द्वारा शब्द भी कराते हैं। चतुर्थ पादमें भी सूर्यके ढो विशेषण हैं।

विश्पतिम्—प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाले और उनका पालन करनेवाले। ‘नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः’ इत्यादि श्रुतियोंमें स्पष्ट रूपसे सूर्यको सबका उत्पादक कहा है।

सप्तपुत्रम्—यहाँ पुत्र शब्दका रश्मियोंसे ही प्रयोजन है। यह सभीका अभिमत है। अतः इसका तात्पर्य हुआ कि रश्मियाँ (सप्त) बड़े वेगसे फैलनेवाली हैं। और उनमें सात भाग हुआ करते हैं; सूर्य अदिति-के सप्तम पुत्र हैं—इस ऐतिहासिक पक्षका अर्थ भी यहाँ ध्यान देने योग्य है।

भ्राता—इसका निरुक्तकार अर्थ करते हैं कि भरण करनेयोग्य अथवा भरण करनेवाला। इससे यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि अपनी रश्मियोंके द्वारा आकृष्ट रसको सूर्यदेव वायुमें समर्पित करते हैं, वायुको गति आदि भी अपनी किरणोंद्वारा देते हैं अथवा वायु सूर्यसे अन्तरिक्षस्थ रसको हरण कर लेता है, मानो तीनों लोकोंके स्वामी सूर्यदेव ही थे, उनसे अन्तरिक्ष स्थान वायुने छीन लिया।

मध्यमः—पदसे विद्युत्-(विजलीकी आग) का ग्रहण करनेपर भी ये अर्थ इस प्रकार ही ज्ञातव्य हैं। उसकी उत्पत्तिमें भी निरुक्तकार सूर्यको कारण मानते हैं और वह भी मध्यम स्थानका हरण करता है।

अश्नः—इससे वायु और विद्युत्की व्यापकता सिद्ध होती है। इनके बिना कोई स्थान नहीं—सर्वत्र वायु और विद्युत् अनुस्थूत रहती हैं।

आता—इसका अभिप्राय भी पूर्ववत् है। सूर्य अपने प्रकाशद्वारा इसका भरण करते हैं; अर्थात् अग्निमें तेज सूर्यसे ही आया है और यह भी अपने लिये सूर्यके राज्यमेंसे पृथ्वी-रूप स्थान छीन लेता है।

घृतपृष्ठः—घृतसे अग्निकी वृद्धि होती है; अथवा घृत शब्द द्रव्यका वाचक होनेसे सोमका उपलक्षक है। अग्नि सदा सोमके पृष्ठपर आखड़ रहती है। बिना सोमके अग्नि नहीं रह सकती और बिना अग्निके सोम नहीं मिलता—‘अशीषोमात्मकं जगत्।’

इस प्रकार देवताओंके विशेषणोंसे छोटे-छोटे शब्दोंमें विज्ञानकी बहुत-सी बाते प्रकट होती हैं। देवता-विज्ञान ही श्रुतिका मुख्य विज्ञान है। ऐसे मन्त्रोंके अर्थ सम्यक् समझकर आधुनिक विज्ञानसे उनकी तुलना करनेपर हमारे विज्ञानसे उक्त आधुनिक विज्ञानका जितने अंशमें भेद है, वह भी स्पष्ट हो सकता है। इस प्रकारकी चेष्टासे हम भी अपने शास्त्रोंका तत्त्व समझ सकेंगे और आधुनिक विज्ञानको भी अधिक लाभ होगा; क्योंकि आधुनिक विज्ञानका अभी कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। सम्भव है, उनको भी इन प्राचीन सिद्धान्तोंसे बहुत अंशोंमें सहायता मिले। अस्तु, अब सक्षेपमें उक्त मन्त्रका आधात्मिक अर्थ भी लिखा जाता है।

(वामस्य) समस्त जगत्का उद्गिरण करनेवाला अर्थात् अपने शरीरमें स्थित जगत्को बाहर प्रकाशित करनेवाला, (पलितस्य) सबका पालक, अथवा सबसे प्राचीन, (होतुः) सबको फिर अपनेमें ले लेनेवाला अर्थात् संहार करनेवाला—सृष्टि, स्थिति, ल्यके कारण परमात्माका (आता) भाग हरण करनेवाला अर्थात् अंशरूप (अश्नः) व्यापनशील (सम्यमः अस्ति) सबके मध्यमें रहनेवाला सूत्रात्मा है। और (अस्य) इसी परमात्माका (तृतीयः आता) तीसरा आता

(घृतपृष्ठः अस्ति) विराट् है। घृतपृष्ठ शब्द जलका भी वाचक है और जलसे उस जलका कार्य स्थूल शरीर लक्षित होता है। उस शरीरका स्पर्श करनेवाला स्थूल शरीराभिमानी विराट् सिद्ध हुआ। (अत्र) इन सबमें (विश्वपतिम्) सब प्रजाओंके खामी, (सप्तपुत्रम्) सातों लोक जिसके पुत्र हैं, ऐसे परमात्माको (अपश्यम्) जानता हूँ; अर्थात् उसका जानना परम श्रेयस्कर है। इसका तात्पर्य यही है कि सम्पूर्ण जगत्का खाधीन कारण एक परमात्मा है और सूत्रात्मा एवं विराट्, जो सूक्ष्म दशा और स्थूल दशाके अभिमानी, वेदान्त-दर्शनमें माने गये हैं—दोनों इसी परमात्माके अंश हैं।

अब आप लोगोंने विचार किया होगा कि वेदमें विज्ञान प्रकट करनेकी शैली कुछ अद्भुत है। ऊपरसे देखनेपर जो बात हमें साधारण-सी दिखायी देती है, वही विचार करनेपर बड़ी गहरी सिद्ध हो जाती है। इसका एक रोचक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

अश्वमेध यज्ञमें मध्यके दिन एक ब्रह्मोद्यका प्रकरण है। एक स्थानपर होता, अर्धवर्यु, उद्ग्राता, ब्रह्मा—इन सबका परस्पर प्रश्नोत्तर होता है। इस प्रश्नोत्तरके मन्त्र ऋग्वेदसहिता और यजुर्वेदसहिता—दोनोंमें आये हैं। उनमेंसे एक प्रश्नोत्तर देखिये—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः

पृच्छामि यत्र भुवनस्य नामिः।

(ऋ० १ । १६४ । ३४, यजु० २३ । ६१)

यह यजमान और अर्धवर्युका संवाद है। यजमान कहता है कि ‘मैं तुमसे पृथ्वीका सबसे अन्तका भाग पूछता हूँ और भुवन अर्थात् उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंकी नामि जहाँ हैं, वह (स्थान) पूछता हूँ।’ इनमें दो प्रश्न हुए—एक यह कि पृथ्वीकी जहाँ समाप्ति होती है, वह अवधि-भाग कौन-सा है और उत्पन्न होनेवाले

सब पदार्थोंकी नामि कहाँ है ! अब उत्तर सुनिये ।
अधर्यु कहता है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः ।

अयं यज्ञो भुवनस्य नामिः ॥
(पूर्वसे आगेका मन्त्र)

यज्ञकी वेदीको दिखाकर अधर्यु कहता है कि 'यह वेदी ही पृथ्वीका सबसे अन्तिम अवधि-भाग है और यह यज्ञ सब भुवनोंकी नामि है ।' स्थूल दृष्टिसे कुछ भी समझमें नहीं आता । वात क्या हुई ? भारतवर्षके हर एक प्रान्तके प्रत्येक स्थानमें यज्ञ होते थे । सभी जगह कहा जाता है कि यह वेदी पृथ्वीका अन्त है । भला सब जगह पृथ्वीका अन्त किस प्रकार आ गया ?

यह तो एक विनोद-जैसी वात माल्यम होती है । दो गाँवबाले एक जगह खड़े थे । एक अपनी समझदारीकी बड़ी डींग मार रहा था । दूसरेने उससे पूछा—'अच्छा, तू बड़ा समश्वर है, तो वता सब जमीनका बीच कहाँ है ?' पहला था बड़ा चतुर । उसने इटसे अपनी लाठी एक जगह गाढ़कर कह दिया—'यही कुल जमीनका बीच है ।' दूसरा पूछने लगा—'कैसे ?' तो पहलेने जवाब दिया कि 'तू जाकर नाप आ । गलत हो तो मुझसे कहना ।' अब वह न नाप सकता था, न पहलेकी वात झूठी हो सकती थी । यह एक उपहासका गल्प प्रसिद्ध है । तो क्या वेद भी ऐसी ही मजाककी वातें बताता है ? नहीं, विचार करनेपर आपको प्रतीत होगा कि इन अक्षरोंमें वेद भगवान्‌ने बहुत कुछ कह दिया है । पहले एक मोटी वात लीजिये । आदि और अन्त, समतल, लम्बे तथा चौकोर प्रभृति रूप पदार्थकी नियत होते हैं । किन्तु गोल वस्तुका कोई आदि-अन्त या थोर-चोर नियन नहीं होता । जहाँसे भी प्रारम्भ मान लें, उसके समीप ही अन्त आ जायगा । भूमि

गोल है, इससे इसका आदि-अन्त नियत नहीं । जहाँसे एक मनुष्य चलना आरम्भ करे, उसके समीप भागमें ही प्राप्त होकर (आकर) वह अपनी प्रदणिणा समाप्त करेगा । ऐसा अवसर नहीं आयगा कि जहाँ जाते-जाते वह सक जाय और आगे भूमि न रहे । इससे अधर्यु यजमानको बताता है कि भाई ! भूमिका अन्त क्या पूछने हो, वह तो गोल है । हर एक जगह उसके आदि-अन्तकी कल्पना की जा सकती है । इससे तुम दूर क्यों जाते हो । समझ लो कि तुम्हारी यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है । जहा आदिकी कल्पना करोगे, वहाँपर अन्त भी बन जायगा । इससे वेद भगवान्‌ने एक रोचक प्रश्नोत्तरके रूपमें पृथ्वीका गोल होना हमें बता दिया ।

अब याज्ञिक प्रसङ्गमें इन मन्त्रोंका दूसरा भाव देखिये । यज्ञके कुण्डों और वेदीका सन्निवेश प्राकृत सन्निवेशके आवारपर कल्पित किया जाता है । सूर्यके सम्बन्धसे पृथ्वीपर जो प्राकृत यज्ञ हो रहा है, उसमें एक ओर सूर्यका गोला है, दूसरी ओर पृथ्वी है और मध्यमें अन्तरिक्ष है । अन्तरिक्षद्वारा ही सूर्य-किरणोंसे सब पदार्थ पृथ्वीपर आते हैं । इस सन्निवेशके अनुसार यज्ञमें भी ऐसा सन्निवेश बनाया जाता है कि पूर्वमें आहवनीय कुण्ड, पश्चिममें गार्हपत्य कुण्ड और दोनोंके बीचमे वेदी । तब यहाँ आहवनीय कुण्ड सूर्यके स्थानमें है । गार्हपत्य पृथ्वीके स्थानमें और वेदी अन्तरिक्षके स्थानमें है । इस विभागको दृष्टिमें रखकर जब यह कहा जाता है कि यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है, तो उसका यह अभिप्राय स्पष्ट समझमें आ सकता है कि पृथ्वीका अन्त वहीं है, जहाँसे अन्तरिक्षका प्रारम्भ है । वेदी-रूप अन्तरिक्ष ही पृथ्वीका दूसरा अन्त है । इसके अतिरिक्त पृथ्वीका और कोई अन्त नहीं हो सकता ।

इन मन्त्रोंको समझानेका एक तीसरा प्रकार भी है और वह इन दोनोंसे गम्भीर है । ऋग्वेद-भाष्यमें इस

मन्त्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमाधवाचार्यने ब्राह्मणकी
यह श्रुति उद्धृत की है—

एतावती वै पृथिवी यावती वेदिरिति श्रुतेः ।

अर्थात् जितनी वेदी है, उतनी ही पृथ्वी है । इसका
तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण पृथ्वीरूप वेदीपर सूर्य-
किरणोंके सम्बन्धसे आदान-प्रदानरूप यज्ञ वरावर हो
रहा है । अग्नि पृथ्वीमें सर्वत्र अभिव्यास है और विना
आहुतिके वह कभी ठहरती नहीं है । वह अन्नाद है ।
उसे प्रतिक्षण अन्नकी आवश्यकता है । इससे वह स्वयं
बाहरसे अन्न लेती रहती है और सूर्य अग्नि आदिको
अन्न देते रहते भी है । जहाँ यह अन्न-अन्नादभाव
अथवा आदान-प्रदानकी क्रिया न हो, वहाँ पृथ्वी रह ही
नहीं सकती । उससे स्पष्ट ही सिद्ध है कि जहाँतक
प्राकृत यज्ञकी वेदी है, वहाँतक पृथिवी भी है । बस,
इसी अभिप्रायको मन्त्रने भी स्पष्ट किया है कि वेदी ही
पृथ्वीका अन्त है । अन्त पदको आदिका भी उपलक्षक
समझना चाहिये । पृथ्वीका आदि-अन्त जो कुछ भी है,
वह वेदीमय है । यह वेदी जहाँ नहीं, वहाँ पृथ्वी
भी नहीं है ।

आजकलका विज्ञान जिसको मुख्य आवार मान
रहा है, उस विद्युतका प्रसंग वेदमें किस प्रकार है ?
यह भी देखिये—

अप्सरने सधिष्ठु सौपधीरनुरुच्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः । (यजु० १२ । ३६)

अर्थात् 'हे अग्निदेव ! जलमें तुम्हारा स्थान है, तुम
ओपधियोंमें भी व्याप रहते हो और गर्भमें रहते हुए
भी फिर प्रकट होते हो ।' ऐसे मन्त्रोंमें अग्नि सामान्य
पद है और उससे पार्थिव अग्नि और वैद्युत अग्नि—
दोनोंका ग्रहण होता है । किंतु इससे भी विद्युतका
जलमें रहना स्पष्ट न माना जा सके, तो खास विद्युतके
लिये ही यह मन्त्र देखिये—

यो अनिध्मो दीदयदप्त्यन्तं
र्यो विप्रास ईर्वते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मयुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥
(ऋ० १० । ३० । ४)

'जो विना ईधनकी अग्नि जलके भीतर दीप हो
रही है, यज्ञमें मेघावी लोग जिसकी स्तुति करते हैं,
वह हमें 'अपां नपात' मधुयुक्त रस देवे—जिस रससे
इन्द्र वृद्धिको प्राप्त होता है और वलके कार्य करता है ।'

इस मन्त्रमें विना ईधनके जलके भीतर प्रदीप होने-
वाली जो अग्नि बतलायी गयी है, वह विद्युतके अतिरिक्त
कौन-सी हो सकती है, यह आप ही विचार करे ।
फिर भी कोई सज्जन यह कहकर टालनेका यन्त्र करें
कि जलमें वड्डवानलके रहनेका पुराना ख्याल है, यही
यहाँ कहा गया होगा तो उन्हे देखना होगा कि इसमें
उस अनिको 'अपां नपात' देवता वताया गया है और
'अपां नपात' निघण्टुमें अन्तरिक्षके देवताओंमें ही आता
है । तब 'अन्तरिक्षकी अग्नि जलके भीतर प्रज्वलित'
इतना कहनेपर भी यदि विद्युत न समझी जा सके,
तो फिर समझनेका प्रकार कठिनतासे मिल सकेगा ।

अभि प्रवन्त समनेव योपाः
कल्याण्यः स्वयमानासो अग्निम् ।
कृतस्य धाराः समिधो नसन्त
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥
(ऋ० ४ । ५८ । ८)

इस मन्त्रमें भी भगवान् यास्कने विद्युतका विज्ञान
और जलसे उसका उद्भव स्पष्ट ही लिखा है । विस्तारकी
आवश्यकता नहीं । यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि
विद्युत् और उसकी उत्पत्ति आदिका परिचय वेदमें स्पष्ट है;
प्रत्युत जहाँ आजकलका विज्ञान विद्युतपर सब कुछ
अवलम्बित करता हुआ भी अभीतक यह न जान सका
कि विद्युत् वस्तु क्या है ? वह 'मैटर' है या नहीं ?
इसका विवाद अभी निर्णयपर ही नहीं पहुँचा, वहाँ

वेदने इसे 'इन्द्र देवता' का रूप मानते हुए इसका प्राणविशेष 'शक्तिविशेष' (पन्जी) (अनमैटेरियल) होना स्थग उद्घोषित कर रखा है । (देवता प्राणविशेष है, यह पूर्व कहा जा चुका है) और, इसे सूर्यका भ्राता कहते हुए सूर्यसे ही इसका उद्गव भी मान रखा है । यों जिन सिद्धान्तोंका आविष्कार वैज्ञानिकोंके लिये अभी शेष ही है, वे भी वेदमें निश्चित रूपसे उपलब्ध हो जाते हैं ।

रूपके सम्बन्धमें वर्तमान विज्ञानका मत है कि जिन वस्तुओंमें हम रूप देखते हैं, उनमें रूप नहीं; रूप सूर्यकी किरणोंमें है । वस्तुओंमें एक प्रकारकी मिल-मिल शक्ति है, जिसके कारण कोई वस्तु सूर्य-किरणके किसी रूपको उगल देती है और दोपर रूपोंको खा जाती है । तात्पर्य यह कि रूपोंका आधार—रूपोंको बनानेवाली सूर्य-किरणें हैं । आप देखिये; वेद भी रूप-विज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश करता है—

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्
विपुरुपे अहनी द्यौरिवासि ।

विश्वा हि साया अवसि स्वधावो
भद्रा ते पूषन्निह रानिरस्तु ॥
(शू० ६।५८।१)

इस मन्त्रमें भाष्यकार श्रीमाधवाचार्यने भी शुक्र-शुक्र-रूप और यजत-कृष्ण-रूप यही अर्थ किया है । पूरा देवताकी स्तुति है कि 'रूप तुम्हारे हैं, तुम्हाँ इन दोनोंके द्वारा मिल-मिल प्रकारकी सब मायाओंको बनाते हो या रखा करते हो ।'

इससे यह भी प्रकट किया गया है कि रूप मुख्यतः दो ही हैं—शुक्र और कृष्ण । उन्होंके संमिश्रणसे सन्धि-स्थान रूप-रूप और फिर परस्पर मेलसे नाना रूप बन जाते हैं । यों यहाँ 'पूरा' देवताको रूपका काण माना गया है और—'इन्द्रो रूपाणि कनिकदचरत् ।' से तैत्तिरीयसंहिता इत्यादिमें इन्द्रको सब रूपोंका बनानेवाल कहा गया है । तात्पर्य यह कि सूर्य-किरण-संसक्त देवता ही रूपोंके उत्पादक हैं । यह विज्ञान हमें इन मन्त्रोंमें मिल जाता है । [वैदिक सूर्य-विज्ञानकी इन वातोंके परिग्रेष्यमें आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंको परिशीलन करना चाहिये और उभय विज्ञानोंके सम्बन्धका प्रयास करना चाहिये—स०]

'उदयत्येप सूर्यः'

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येप सूर्यः ॥

सूर्यकं तत्वके ज्ञाताओंका कहना है कि ये किरणजालसे मणिडत एवं प्रकाशमय, तपते हुए सूर्य विश्वके समस्त रूपोंके केन्द्र हैं । सभी रूप (रग और आकृतियाँ) सूर्यसे उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं । ये सविता ही सबके उत्पत्तिस्थान हैं और ये ही सबकी जीवन-ज्योतिके मूल-स्रोत हैं । ये सर्वज्ञ और सर्वाधार हैं, ये वैश्वानर (अग्नि) और प्राण-शक्तिके रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं और सबको धारण किये हुए हैं । समस्त जगत्के प्राणरूप सूर्य अद्वितीय हैं—इनके समान विश्वमें अन्य कोई भी जीवनी शक्ति नहीं है । ये सहस्ररश्मि—सूर्य हमारे शतशः अवहारोंको सिद्ध करते हुए उदित होते हैं । (प्रश्नोप० १।८)

वैदिक सूर्यविज्ञानका रहस्य

(लेखक—ख० म० स० आचार्य प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०)

(क) उपक्रम

बहुत दिन पहलेकी बात है, जिस दिन महापुरुष परमहंस श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजका पता लगा था; तब उनके सम्बन्धमें बहुत-सी अलौकिक शक्तिकी बाते सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उनपर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था। यथापि ‘अचिन्त्यमहिमानः खलु योगिनः’ (योगियोंकी महिमा अचिन्त्य होती है)—इस शास्त्र-वाक्यपर मैं विश्वास करता था और देश-विदेशके प्राचीन और नवीन युगोंमें विभिन्न सम्प्रदायोंके जिन विभूतिसम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओंकी कथाएँ ग्रन्थोंमें पढ़ता था, उनके जीवनमें घटित अनेक अलौकिक घटनाओंपर भी मेरा विश्वास था, तथापि आज भी हमलोगोंके बीचमें ऐसे कोई योगी महात्मा विद्यमान है, यह बात प्रत्यक्ष-दर्शकी मुखसे सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयझम नहीं कर पाता था। इसलिये एक दिन संदेह-नाश तथा औत्सुक्यकी निवृत्तिके लिये महापुरुषके दर्शनार्थ मैं गया।

उस समय सच्चा समीपप्राय थी, सूर्यस्तम्भमें कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैंने जाकर देखा, बहुसख्यक भक्तों और दर्शकोंसे घिरे हुए पृथक् आसनपर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्र-चर्मपर विराजमान हैं। उनकी सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए विशाल नेत्र हैं, पक्की हुई उम्र है, गलेमे सफेद जनेऊ है, शरीरपर काषाय वस्त्र हैं और चरणोंमें भक्तोंके चढाये हुए पुष्प तथा पुष्पमालाओंके ढेर लगे हैं। पास ही एक सच्छ काशमीरी उपलसे बना हुआ गोल यन्त्रविशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योगविद्या और प्राचीन आर्षविज्ञानके गूढ़तम रहस्योंकी उपदेशके बहाने साधारणरूपमें व्याख्या कर रहे थे। कुछ समयतक उनका उपदेश

उननेपर जान पड़ा कि इनमें अनन्य साधारण विशेषता है; क्योंकि उनकी प्रत्येक बातपर इतना जोर था, मानो वे अपनी अनुभवसिद्ध बात कह रहे हैं—केवल शास्त्रवचनोंकी आवृत्तिमात्र नहीं। इतना ही नहीं, वे प्रसङ्गपर ऐसा भी कहते जाते थे कि शास्त्रकी सभी बाते सत्य हैं, आवश्यकता पड़नेपर किसी भी समय योग्य अधिकारीको मैं दिखला भी सकता हूँ। उस समय ‘जात्यन्तरपरिणाम’ का विषय चल रहा था। वे समझा रहे थे कि जगत्‌में सर्वत्र ही सत्तामात्ररूपसे सूक्ष्मभावसे सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परंतु जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित होती है, वही अभिव्यक्त और इन्द्रियगोचर होता है। जिसका ऐसा नहीं होता, वह अभिव्यक्त नहीं होना—नहीं हो सकता। अतएव इनकी व्यञ्जनाका कौशल जान लेनेपर किसी भी स्थानसे किसी भी वस्तुका आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यासयोग और साधनाका यही रहस्य है। हम व्यवहार-जगत्‌में जिस पदार्थको जिस रूपमें पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है, वह केवल हम जिस रूपमें पहचानते हैं, वही है—यह बात किसीको नहीं समझनी चाहिये। लोहेका टुकड़ा केवल लोहा ही है सो बात नहीं है, उसमे सारी प्रकृति अव्यक्त-रूपमें निहित है; परंतु लौहभावकी प्रधानतासे अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भावको (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो पूर्वभाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायगा और उस सुवर्णादिके प्रबुद्धभावके प्रबल हो जानेसे वह वस्तु फिर उसी नाम और रूपमें परिचित होगी। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ, वह अव्यक्त हो गया

और सुवर्णभाव अव्यक्तताको हटाकर प्रकाशित हो गया। आपातदृष्टिसे यही समझमें आयेगा कि लोहा ही सोना हो गया है—परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। कहना नहीं होगा कि यही योगशास्त्रका 'जात्यन्तरपरिणाम' है। पतञ्जलिजी कहते हैं कि प्रकृतिके आपूरणसे 'जात्यन्तरपरिणाम' होता है—एकजातीय वस्तु अन्यजातीय वस्तुमें परिणत होती है ('जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्')। यह कैसे होता है, सो भी योगशास्त्रमें बतलाया गया है।†

* यंगियोने 'मूलपृथक्त्व' कहकर अव्यक्तभावसे वीज-निष्ठरूपमें भी पृथक्ताकी सत्ता स्थीकार की है। ये न करनेसे सृष्टिवैचित्र्यका कोई मूल नहीं रह जाता। व्यासदेवने कहा है, 'जात्यनुच्छेदेन सर्वं रुद्धात्मकम्।' इससे यह जाना जाता है कि जातिका उच्छेद प्रलयमें भी नहीं होता, प्रलय और अव्यक्तावस्थामें भी जातिमें रुद्धता है—परन्तु वह अधिष्ठानके लोपके कारण अव्यक्त रहता है। सृष्टिके साथ-ही-साथ उसकी स्फूर्ति होती है। प्रलयकी परमावस्थाये समस्त प्रकृतिपर ही आवरण पड़ जाता है, इसलिये उसमें विकारोन्मुख परिणाम नहीं रहता। साधारणतः जितको सृष्टि कहा जाता है, वह आंशिक सृष्टि और आंशिक प्रलय होता है—आवरण जहाँ नहीं है, वहाँ निरन्तर विकार पैदा होता रहता है, जहाँ है, वहाँ कोई भी विकार नहीं होता। जहाँ कोई आवरण नहीं होता, वहाँ प्रकृति सर्वतोंभावसे मुक्त होकर अखिल परिणामकी ओर उन्मुख हो जाती है। युगपत् अनन्त आकारेका स्फुरण होता है, इसलिये किसी विशिष्ट आकारका भान नहीं होता, उसको निराकार स्फूर्ति कहते हैं, वही भ्राता है।

+ पतञ्जलिका सिद्धान्त है—'निमित्तमप्रयोजकम्'—निमित्तकारण उपादानस्वरूपा प्रकृतिको प्रेरणा नहीं कर सकता। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरणको दूर करता है। आवरण दूर होनेपर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने आप ही अपने विकारोके रूपमें परिणत होने लगती है। लोहमें सुवर्ण-प्रकृति है, वह आवरणसे ढकी है—और लौह-प्रकृति आवरणसे मुक्त है, इसीसे लौहपरिणाम चल रहा है; किन्तु यदि सुवर्ण-प्रकृतिका यह आवरण किसी उपायसे (यंग या आर्पविज्ञानसे) हटा दिया जाय तो लौह-प्रकृति ढक लायगी और सुवर्ण-प्रकृति परिणामकी धारामें विकार उत्पन्न करेगी। यह स्वाभाविक है, यह कौशल ही प्रकृति विद्या है। परंतु इसके द्वारा अस्तको सत् नहीं किया जा सकता। केवल अव्यक्तको व्यक्त किया जा सकता है। वस्तुतः सत्कार्यवादमें सृष्टिमात्र ही अभिव्यक्त है। जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं, (नासतो विथते भावो नाभावो विद्यते सतः)। इसीसे श्रूति कहते हैं कि निमित्त प्रकृतिको प्रेरित नहीं कर सकता—प्रवृत्ति नहीं दे सकता। प्रकृतिमें विकारोन्मुखताकी ओर स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है। प्रतिवन्धक रहनेके कारण वह कार्य कर नहीं पाती। पूर्वीकृत कौशल या निमित्त (धर्मधर्म और इनी प्रकार निमित्त) इस प्रतिवन्धकसे केवल हटा भर देता है।

क्रान्तदर्शी कविने कहा है—

शमग्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि वाहात्मकमस्ति तेजः। सपर्णानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति ॥
इससे जाना जाता है, जो शीतल (शमग्रधान) है उसमें भी 'दाहात्मक तेजः' या ताप है, परंतु वह गूढ है। अर्थात् सभी जगह सभी वस्तुएँ हैं, परंतु जो गूढ है (छिपी है) वह देखनेमें नहीं आती। उसी क्रिया भी नहीं होती। जो व्यक्त है, उसीकी क्रिया होती है, वही दृश्य है। 'गूढः' धर्मकी क्रिया न हो सकनेजा कारण 'व्यक्तः' धर्मकी प्रधानता है। यदि व्यक्त धर्म वाह्य तेज (अन्य तेज)- के द्वारा अभिभूत कर दिया जाय तो विद्यमान धर्म जो अभीतक गुस था, वह अनभिभूत होनेके कारण प्रकट हो जाता है और क्रिया करने लगता है।

कुछ देखतक जिज्ञासुरूपसे मेरे पूछताठ तरनेपर उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें यह करके डिग्गता हैं।' इतना कहकर उन्होंने आसनपरसे पक्क गुलबजाँ कुछ हाथमें लेकर मुझसे पूछा—'वोलो, इसको किस रूपमें बदल दिया जाय ?' वहाँ जवाफ़ नहीं था, इसीसे मैंने उसको जवाफ़ बना देनेके लिये उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार बर ली और वार्ये हाथमें गुलबजाँ का फ़ल लेकर दाहिने हाथसे उस स्फटिकयन्त्रके द्वारा उसपर विक्रीर्ण सूर्यरङ्गिमको संहत करने लगे। मैंने

देखा, उसमें क्रमशः एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई—धीरे-धीरे तमाम गुलाबका छल खिलीन होकर अव्यक्त हो गया और उसकी जगह एक ताजा हालका खिला हुआ द्वूमका जवा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जपापुष्पको मैं अपने घर ले आया था। * खामीजीने कहा—‘इसी प्रकार समस्त जगतमें प्रकृतिका खेल हो रहा है, जो इस खेलके तत्त्वको कुछ समझते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेलसे मोहित होकर आत्मविस्मृत हो जाता है। योगके बिना इस ज्ञान या विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार विज्ञानके बिना वास्तविक योगपदपर आरोहण नहीं किया जा सकता।’

मैंने पूछा—‘तब तो योगीके लिये सभी कुछ सम्भव है ?’ उन्होंने कहा—‘निश्चय ही है, जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्यकी कोई इयत्ता नहीं है, क्या हो सकता है और क्या नहीं, कोई निर्दिष्ट सीमारेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा महाशक्तिका पूरा पता और किसीको प्राप्त नहीं है, न प्राप्त हो ही सकता है। जो निर्मल होकर ‘परमेश्वरकी शक्तिके साथ जितना युक्त हो सकते हैं, उनमें उतनी ही ऐसी शक्तिकी स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना एक दिनमें नहीं होता, क्रमशः होता है। इसीलिये

शुद्धिके तारतम्यके अनुसार शक्तिका स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक्षप्रकारसे सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर-सायुज्यकी प्राप्ति होती है। उस समय योगीकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अष्टठनघटनापटीयसी माया उसकी इच्छाके उत्पन्न होते ही उसे पूर्ण कर दिया करती है।’

मैंने पूछा—‘इस छलका परिवर्तन आपने योगबलसे किया या और किसी उपायसे ?’ खामीजी बोले—‘उपायमात्र ही तो योग है। दो वस्तुओंको एकत्र करनेको ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्यविज्ञानद्वारा बनाया है। योगबल या शुद्ध इच्छाशक्तिसे भी सुष्टुष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परंतु इच्छाशक्तिका प्रयोग न करके विज्ञानकौशलसे भी सुष्टुष्टियादि कार्य किये जा सकते हैं।’ मैंने पूछा—‘सूर्यविज्ञान क्या है ?’ उन्होंने कहा, ‘सूर्य ही जगत्का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्यकी रस्म अथवा वर्णमालाको भलीभाँति पहचान गया है और वर्णोंको शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थोंका संघटन या विघटन कर सकता है। वह

* घर लानेका कारण यह था कि औँखोद्वारा देखनेपर भी उस समय मैं वह धारणा नहीं कर पाता था कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। मुझे अस्पष्टरूपसे ऐसा भान होता था कि इसमें कहीं मेरा दृष्टिभ्रम तो नहीं है, मैं कहीं सम्मोहनी विद्या (मैस्मेरिज्म)के बर्चीभूत होकर ही जवा-फूलकी कोई सत्ता न होनेपर भी जवाफूल तो नहीं देख रहा हूँ। लोग Optical illusion, hallucination, hypnotism आदि शब्दोंके द्वारा इसी प्रकार ऐसी सृष्टिक्रियाको समझानेकी चेष्टा किया करते हैं। ये लोग अज्ञ हैं, क्योंकि सम्मोहनविद्याके प्रभावसे अथवा तज्जातीय अन्य कारणोंसे जिस सृष्टिका प्रकाश होता है वह प्रातिभासिक होती है, स्थायी नहीं होती। वह लौकिक व्यवहारमें भी नहीं आ सकती। परंतु व्यावहारिक सृष्टि इससे अलग है। स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें जैसे भेद हैं, वैसे ही प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्तामें भी पृथक्ता है। वेदान्तियोंकी जीवसृष्टि और ईश्वरसृष्टिका भेद भी इस प्रसङ्गमें आलोचनीय है। वस्तुतः मैंने अज्ञानवश ही संदेह किया था। वह जपापुष्प जागतिक जपापुष्पोंकी तरह ही व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था, द्रष्टव्यके दृष्टिभ्रमसे उत्पन्न आभासमात्र नहीं था। इस फूलको मैंने बहुत दिनोंतक अपने पास पेटीमें बढ़े जतनसे रखा और लोगोंको दिखाया था, वहुत दिन बीत जानेपर वह सूख गया।

देखता है कि सभी पदार्थोंका मूल बीज इस रसिमन्त्रयके विभिन्न प्रकारके संयोगसे ही उत्पन्न होता है। वर्गभेदसे और विभिन्न वर्णोंके संयोगसे मेड, विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रसिमेड और विभिन्न रसिमयोंके मिश्रण-मेदसे जगत्के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टिमें बीज-सृष्टिका एक रूप है। सूक्ष्म दृष्टिमें अव्यक्त गर्भमें बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार संस्थान-मेदजनक रसिमविशेषके संयोग-वियोग-विशेषसे और इच्छाशक्ति या सञ्चयसमूल्यके प्रभावसे भी सृष्टि होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इसीलिये योग और विज्ञानके एक होनेपर भी एक प्रकारसे दोनोंका किन्नित् पृथक्सूखपर्याप्त अवहार होता है। रसिमयोंको शुद्धरूपसे पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्यविज्ञानका प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। सुख-दृश्य, पाप-पुण्य, काम-कोश, लोभ, प्रीनि, भक्ति आदि सभी चैतन्यिक वृत्तियाँ और संस्कार भी रसिमयोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तुके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। अनपव जो इस योजन और वियोजनकी प्रणालीको जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं—निर्माण भी का सकते हैं और संहार भी, परिवर्तनकी तो कोई बात ही नहीं। यही सूर्यविज्ञान है।

मैंने पूछा—‘आपको यह कहासे मिला? मैंने तो कहीं भी इस विज्ञानका नाम नहीं सुना।’ उन्होंने हँसकर कहा, ‘तुम लोग बच्चे हो, तुम लोगोंका ज्ञान ही कितना है? यह विज्ञान भारतकी ही वस्तु है—उच्च कोटिके क्षयित्वगण इसको जानते थे और उपर्युक्त क्षेत्रमें इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञानके पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और निवृतमें गुप्तरूपसे रहते हैं। मैंने ख्याल निवृतके उपान्तभागमें ज्ञानगंज नामक वड़े भारी योगाश्रममें रहकर

एक योगी और विक्रानवित भट्टापुरासे दीर्घाल्लक्ष कठोर साधना करके इस विद्याको नामा ऐसी ही और भी अनेक लूप विद्याओंको सामा है। यह अव्यन्त ही जग्निय और दुर्गम विषय है—इसका दायित्व भी अव्यन्त अधिक है। इसीलिये आचार्यगण सदसा किसीको यदि विषय करनी सिखाते।

मैंने पूछा, ‘म्या इस प्रकारकी दीर्घ भी विद्याएँ हैं? उन्होंने कहा, ‘है नहीं तो क्या? चन्द्रविज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायुविज्ञान, क्षयकियान, शब्दविज्ञान और मनोविज्ञान इत्यादि व्यूत विद्याएँ हैं। केवल नाम लुनकर ही तुम क्या समझोगे? तुमदोगोंने शाखेमें किन विद्याओंके नाममात्र सुने हैं, वे तथा उनके अतिरिक्त और भी न मान्यम कितनी और हैं?’

इस प्रकार वातें होनेन्द्रोने संघर्ष हो चली। पास ही घड़ी रखकी थी। भट्टापुरासे देखा, अब समय नहीं है, वे तुरंत निवृत्यकियाके लिये उठ लंडे हृष, और कियागृहमें प्रविष्ट हो गये। दूसरे सब लोग अरने-आपने स्थानोंको लौट आये।

इसके बाद मैं प्रायः प्रतिदिन ही उनके पास जाता और उनका सङ्ग करता। इस प्रकार क्रमशः अन्तर्ज्ञाता बढ़ गयी। क्रमशः नाना प्रकारकी अन्तीकिक वातें मैं प्रत्यक्ष देखने लगा। किनीं दंगी, उनकी संस्था वल्लाना कठिन है। दूरसे, नजदीकसे, स्थूलरूपमें, सूक्ष्मरूपसे, भौतिक जगतमें, द्रिव्य जगतमें—यहाँतक कि आत्मिक जगतमें भी—मैं उनकी असंख्य प्रकारकी लोकोत्तर शक्तिके लेड्को देख-देखकर स्तम्भित होने लगा। केवल मैंने निजमें ख्याल जो कुछ देखा और अनुभव किया है, उसीको छिखा जाय तो एक महाभारत बन सकता है। परंतु यहाँ उन सब वातोंको लिखनेकी आवश्यकता नहीं है और सारी वातें बिना विचार सर्वत्र प्रकट करने योग्य भी नहीं हैं। मैं यहाँ यथासम्भव निरपेक्ष-

सूर्यसे स्थामीजी महोदयके उपदेश और प्रदर्शित (सूर्य-) विज्ञानके सम्बन्धमें दो-चार बातें लिखेंगा ।

(ख) सूर्यविज्ञानका रहस्य

यद्यपि कालधर्मके कारण हम सौरविज्ञान या सावित्री-विद्याको भूल गये हैं, तथापि यह सत्य है कि प्राचीन कालमें यही विद्या ब्राह्मण-धर्मकी और वैदिक साधनाकी भित्तिस्तरूप थी । सूर्यमण्डलतक ही संसार है, सूर्यमण्डलका भेद करनेपर ही मुक्ति मिल सकती है— यह बात ऋषिगण जानते थे । वस्तुतः सूर्यमण्डलतक ही वेद या शब्दब्रह्म है—उसके बाद सत्य या परब्रह्म है । शब्दब्रह्ममें निष्णात ही परब्रह्मको पा सकता है—

शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।

—यह बात जो लोग कहा करते, वे जानते थे कि शब्दब्रह्मका अतिकामण किये बिना या सूर्यमण्डलको लौंघे बिना सत्यमें नहीं पहुँचा जाता । श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

य एष संसारतरुः पुराणः
कर्मात्मकः पुष्पफले प्रस्तुते ॥
द्वे अस्य धीरे शतमूलविनालः
पञ्चस्तन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ।
द्वौकशास्त्रे द्विसुपर्णनीड़-
स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कंप्रविष्टः ॥
(११ । १२ । २१-२२)

‘यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है—जिसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पाँच स्तन्ध, पाँच रस, ग्यारह शाखाएँ हैं; जिनमें दो पक्षियोंका निवासस्थान है, जिसके तीन वल्कल और दो फल हैं ।* यह संसार-वृक्ष

* बीज=पृथ्य-पाप । मूल=वासना (शत=असंख्य) । नाल=गुण । स्तन्ध=भूत । रस=गव्यादि विप्रय । शाखा=इन्द्रिय । फल=सुख-दुःख । सुर्पण या पक्षी=जीवात्मा और परमात्मा । नीड़=वासस्थान । वल्कल-धातु अर्थात् बात, पितृ और इलेष्मा ।

+ षूङ् ग्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम् । सुनोति सूर्यते वा उत्पादयति चराचर जगत् स सविता ।
शू प्रसवैश्वर्योः—सर्ववस्तूनां प्रसवः उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यस्य च ।

सूर्यमण्डलपर्यन्त व्यास है । श्रीवरस्थामी ओर विश्वनाथ दोनोंने कहा है—अर्कप्रवृष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्यासः । तत्रिभिर्द्य गतस्य संसारभावात् ।

प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये यह सूर्य ही साधन है । श्रुतिमें आया है कि सूर्यमें रहनेवाला पुरुष मैं हूँ—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसाधादित्ये पुरुषः सोऽहम् ॥
(मैत्री-उपनिषद् ६ । ३५)

सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है, यह श्रुतिने स्पष्टरूपमें निर्देश किया है । इसी मैत्री-उपनिषद्में लिखा है कि प्रसवधर्मके कारण ही सूर्यका ‘सविता’ नाम सार्थक हुआ है (सवनात् सविता) ।† वृहद्योगियाश्ववल्क्यमें स्पष्ट तौरपर लिखा है—

सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूर्यते ॥
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ।
(९ । ५५-५६)

सूर्योपनिषद्में सूर्यके जगत्की उत्पत्ति उसके पालन और नाशका हेतु होनेका वर्णन आया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

आचार्य शौनकने वृहदेवतामे उच्चस्वरसे कहा है कि एकमात्र सूर्यसे ही भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त खाचर और जड़म पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं ।

यही प्रजापति तथा सत् और असत्के योनिस्तरूप हैं—यह अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म हैं । ये तीन

नाल=गुण । स्तन्ध=भूत । रस=गव्यादि विप्रय । शाखा=

भागोमें विभक्त होकर तीन लोकोमें वर्तमान हैं—समस्त देवता इनकी रूपिमें निविष्ट हैं—

भवद् भूतं भविष्यत्वं जड़मं स्थावरं च यत् ।
अस्त्वैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति ।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रक्षिषु ॥

सूर्यसिद्धान्तनामक ज्योतिष-ग्रन्थमें लिखा है कि ये सब जगत्के आदि हैं, इस कारण ये आदित्य हैं। जगत्को प्रसव करते हैं, इस कारण सूर्य और सविता हैं—ये तमोमण्डलके उस पार परम ज्योतिःस्वरूप हैं—
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रस्त्व्या सूर्य उच्यते ।
परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च ॥

यह जो परम ज्योतिकी बात कही गयी, वह शब्द-प्रब्रह्मय मन्त्रज्योति है—यही अखण्ड अविभक्त प्रणवात्मक वेदस्वरूप है—इसीसे विभक्त होकर ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयका आविर्भाव होता है। सूर्यपुराणमें इसीलिये स्पष्ट कहा गया है कि—

नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम् ।

अर्थात् परंधाम सूर्य ऋक्-यजुः-साम रूप हैं; उन्हें नमस्कार है।

विद्यामाधवकारने भी इसीलिये सूर्यको 'त्रयीमय' और 'अमेयांगुनिधि'के नामसे निर्देश किया है और कहा है कि ये तीनो जगत्के 'प्रबोधहेतु' हैं। उन्होने कहा है कि सूर्यके बिना 'सर्वदर्शित्व' सम्भव नहीं; इसीसे मानो शंकरने उन्हें नेत्ररूपसे धारण किया है। सूर्यसे ही सब भूतोंके चैतन्यका उन्मेष और निमेष होता है, यह श्रुतिमें भी लिखा है—

योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानाद-योदेति । असौ योऽस्त्वमेति स सर्वेषां भूतानां प्राणा-नादायास्तमेति ॥

विष्णुपुराणके याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र (अश ३,

अध्याय ५)में सूर्यको 'विमुक्तिका द्वार', 'ऋग्यजुः-सामभूत', 'त्रयीधामवान्', 'अग्नीपोमभूत', 'जगत्के कारणात्मा' और 'परम सौपुष्टतेजोधारणकारी' कहकर क्यों वर्णन किया गया है, यह बात अब समझमें आवेगी। अग्नि और सोम मूलतः सूर्यसे अभिन्न हैं, यह श्रुतिसे भी माल्हम होता है।

उद्यन्तं वादित्यमग्निरुक्तमारोहति सुपुष्टः
सूर्यरक्षिमश्चन्द्रया गन्धर्वः ।

श्रुतिमें आया है कि सूर्य पूर्वाह्नमें ऋग्वारा, मध्याह्नमें यजुःवारा और अस्तकालमें सामवारा युक्त होते हैं—

ऋग्मिः पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते
यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्वः ।
सामवेदेनास्तमये महीयते
वैदैरसून्यविभिरेति सूर्यः ॥

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि ऋक् ही सूर्यका मण्डल और यजुः तथा साम उनकी मूर्ति हैं—यह कालात्मक, कालकृत, त्रयीमय भगवान् हैं।

ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यजूषि च ।
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद् विशुः ॥

वस्तुतः प्रणव या उङ्गकार या उद्गीथ ही सूर्य हैं—ये नादव्रह्म हैं, ये निरन्तर ख करते हैं, इस कारण 'रवि' नामसे विल्यात हैं। छान्दोग्य-उपनिषद् (१ । ४ । १-५) में है कि त्रयीविद्या या छन्दोरूप तीन वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रखा है। इसके बाहर मृत्युराज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डरकर सबसे पहले वेदकी शरण प्रहण की और छन्दों-द्वारा अपनेको आच्छादित किया—अपना गोपन या रक्षा (गुप्=रक्षा) की; तथापि मृत्युने उन लोगोंको देख लिया था—जिस तरह जलके अंदर मछली दिखायी पड़ती है, उसी तरह। जलके दृष्टान्तसे माल्हम होता है कि वेदत्रय जलवत् खच्छ आवरण है। मधुविद्यामें भी वेदको 'आपः' या जल कहा गया है। एक हिसाबसे

यही पुराणवर्णित कारणवारि है *। देवताओंने उस समय वेदसे निकलकर नादका आश्रय ग्रहण किया। इसीसे वेद-अन्तमें नादका आश्रय लिया जाता है। यही अमर अभय पद है। उसके बाद (छा० १।५। १-५ में ही) स्पष्ट कहा गया है कि उद्दीथ या प्रणव ही सूर्य हैं— ये सर्वदा नाद करते हैं। इस प्रणव-सूर्यकी दो अवस्थाएँ हैं। एक अवस्थामें इनकी रश्मिमाला चारों ओर विकीर्ण हुई है। दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियाँ संहृत होकर मध्यविन्दुमें विलीन हुई हैं। यह द्वितीय अवस्था ही प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है। ऋषि कौशीतक प्राचीन कालमें इसके उपासक थे। प्रथम अवस्था प्रणव-सूर्यकी सृष्टयुन्मुख अवस्था है। उन्होने अपने पुत्रसे प्रथम उपासनाकी बात कही। उद्दीथ वा प्रणव ही अधिदेवरूपमें सूर्य हैं, यह कहकर अध्यात्मदृष्टिसे यही प्राण है, यह समझाया गया है।

प्रश्नोपनिषद् (५। १-७) में लिखा है कि उँच्कारका अभिध्यान प्रयाणकालतक करनेसे अभिध्यानके

मेदके कारण भिन्न-भिन्न लोक अधिकृत (लोकजय) होते हैं। यह उँच्कार ही 'पर' और 'अपर' ब्रह्म है। एक मात्राके अभिध्यानके फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संचेदित होकर शीघ्र ही जगतीको यानी पृथिवीको प्राप्त होता है। उस समय ऋक् उसको अनुष्ठानोंकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह तपस्या, ब्रह्मर्चय और श्रद्धाद्वारा सम्पन्न होकर महिमाका अनुभव करता है। द्विमात्राके अभिध्यानके फलसे मनःसम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय यजुः उसको अन्तरिक्षमें ले जाते हैं। वह सोमलोकमें जाता है और विमुति-का अनुभव कर पुनरावर्तन करता है। त्रिमात्राके—आर्यात् उँच्कारके—द्वारा परम पुरुषके अभिध्यानके प्रभावसे तेजः या सूर्यमें सम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय साधक सूर्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। जिस तरह सौपकी बाह्य त्वचा या केंचुल खिसक पड़ती है—सूर्यमण्डलस्थ आत्मा भी उसी तरह समस्त पार्षी या मलसे विमुक्त हो जाता है। पुँ वहाँसे साम उसे ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। साधक सूर्यसे—'जीववन'से

* वेदसे ही सृष्टि होती है, यह इस प्रसङ्गमें स्वरण रखना चाहिये। वेद ही शब्द-ब्रह्म है।

+ ये रश्मियाँ ठीक रास्तोंके समान हैं। जिस तरह रास्ता एक गाँवसे दूसरे गाँवतक फैला रहता है, उसी तरह सब राशियाँ भी इह छोकसे परलोक पर्यन्त कैली हुई हैं। इनकी एक सीमापर सूर्यमण्डल है और दूसरी सीमापर नाड़ीचक्र। सुषुप्तिकालमें जीव इस नाड़ीके भीतर प्रवेश करता है—उस समय स्वप्न नहीं रहता, शान्ति उत्पन्न होती है। यह तेजःस्थान है। देहत्यागके बाद जीव इन सब रश्मियोंका अवलम्बन लेकर, उँचारभावनाकी सहायतासे ऊपर उठता है। सङ्कल्पमात्रसे ही मनमें वैग होता है और उसी वैगसे सूर्यपर्यन्त उत्थान होता है। सूर्य ब्रह्मण्डके द्वारस्वरूप है—जानी इस द्वारको भेदकर सत्यमें और अमर धाममें पहुँच सकते हैं, अजानी नहीं पहुँच सकते। दृदयसे चारों ओर असंख्य नाड़ीयाँ या पथ फैले हुए हैं—केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्ढीकी ओर गया हुआ है। इसी सूक्ष्म पथसे चल सकनेपर सूर्यद्वार अतिक्रम किया जाता है। अन्यान्य पथोंसे चलनेपर भुवनकोशमें ही आवद्ध रहना पड़ता है। यद्यपि भुवनकोशका केन्द्र सूर्य होनेके कारण समस्त भुवन एक प्रकारसे सौरलोकके ही अन्तर्गत हैं, तथापि केन्द्रमें प्रविष्ट न हो सकनेके कारण सौरमण्डलके बाहर जाना असम्भव हो जाता है।

पुँ श्रीवैष्णव भी इसे स्वीकार करते हैं। सूर्यमण्डलमें प्रवेश किये विना जीवका लिङ्ग-शरीर नहीं नष्ट होता। लिङ्ग-शरीरके मुक्त हुए विना जीवकी मुक्ति कहाँ? जीव रविमण्डलमें अनेपर ही पवित्र होता है और उसके सब क्लेश दग्ध हो जाते हैं। ऐसा महाभारतमें भी कहा है। पिथागोरसके मतसे भी शुद्धिमण्डल सूर्यम स्थित है—सूर्य जगत्के मध्यमें अवस्थित है। जीवमात्र ही यहाँ अनेपर अपने आत्मभावको प्राप्त करते और पवित्र होते हैं। अस्तुका भी कहना है कि पिथागोरसके मतसे शुद्धिमण्डल या Sphere of fire सूर्यस्थ है।

—परात्पर पुरमें सोये हुए पुरुषका दर्शन करता है। तीनों मात्राएँ पृथक्-पृथक् विनश्चर और मृत्युमती हैं; परंतु एकीभूत होनेपर ये ही अजर और अमर भावको प्राप्त करानेवाली हैं।

इससे माल्दम होता है कि वेदन्तय पृथक् रूपमें लोकन्त्रयको प्राप्त करानेवाले हैं—ऋग् भूलोकको, यजुः अन्तरिक्षलोकको और साम खर्गलोकको प्राप्त करानेवाला है। ये तीनों लोक पुनरावर्तनशील हैं। ये ही प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं। वेदन्तयको धनीभूत करनेपर ही उँकाररूप ऐक्यका सुरण होता है। उसके द्वारा पुरुषोत्तमका अभिधान होता है। वेदन्तय जब सूर्य हैं एवं प्रणव जब वेदका ही धनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य प्रणवका ही बाध्य विकास है, इसमें कोई सदेह नहीं।

हमारे ऋषियोंका कहना है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल भैदकर जगत्में उत्तर आता है। शुद्ध भूमिसे जगत्में अवतीर्ण होनेके लिये और जगत्से शुद्ध धाममें जानेके लिये सूर्य ही द्वारस्वरूप है। पिथागोरसने कहा है कि सूर्य एक तेजोधारकमात्र है—इसीमेंसे होकर आत्मज्योतिः जगत्में उत्तरती है। प्लेटोका कहना है कि ज्योतिः Kabalis और अन्यान्य तत्त्वदर्शियोंके मतसे परम पदार्थका प्रथम विकास है।* अपनी रश्मिसे ईश्वरने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य प्रकाश या तापकी प्रभा नहीं है, वक्ति Focus है, यह एक Lens मात्र है, जिसके प्रभावसे आदिम ज्योतिका रश्मिसमूह स्थूल Material बन जाता है, हमारे सौरजगत्में एकत्र होता है और नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करता है।

सूर्यरश्मियों अनन्त हैं—जातिमें और संख्यामें अनन्त हैं। परंतु मूल प्रभा एक ही है—यह शुक्लवर्ण

है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल, नील इत्यादिके परस्पर मिलनेके कारण और भी विभिन्न उपवर्णोंके रूपमें प्रकाशित होता है। शुक्लसे सर्वप्रथम लाल, नील प्रभूति प्रथम स्तरका आविर्भाव होता है। शुक्लसे अनीन जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तः संघर्षका फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तरसे परस्पर संयोग या घहिःसंसर्ग होनेके कारण द्वितीय स्तरका आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टिसे पहली शुद्ध सृष्टि है और दूसरी मैलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकाशसे भी यही बात माल्दम होती है। बहु एक और अखण्ड है। यह अत्रिभक्त रहता हुआ भी पुरुष और प्रकृतिस्वरूपमें द्विधा विभक्त होता है—यही आत्मविभाग या अन्तःसंघर्षसे उत्पन्न सामाजिक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्बन्ध या घहिःसंघर्षसे आविर्भूत हुई है—यही मैलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्यविज्ञानका मूल सिद्धान्त समझनेके लिये इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है—विशेषतः अन्तके तीनोंको।

ऊपर जो शुक्लवर्णकी बात कही गयी है, यही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंगका खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले गुरुपदिष्ट क्रमसे इस सादे प्रकाशके सुरणको प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्णके विश्लेषणसे प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता

है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादेकी सहायता अत्यावश्यक है, क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्थिर रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्णना परिचय पाना सम्भव नहीं।

रंगीन चश्मेके द्वारा जो कुछ दिखायी देता है, वह दृश्यका रूप नहीं होता, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। योगशास्त्रमें जिस तरह चित्तशुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, उसी तरह सूर्यविज्ञानमें भी वर्णशुद्धि हुए बिना वर्णभेदका तत्त्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हम जगत्‌में जो कुछ देखते हैं, सब मिश्रण है—उसका विश्लेषण करनेपर सघटक शुद्ध वर्णका साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णोंको अलग-अलग सादे वर्णके ऊपर डालकर पहचानना होता है। सृष्टिके अंदर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है वह आपेक्षिक है। पहले विशुद्ध शुक्लवर्णको कौशलसे प्रस्फुटित कर लेना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है, पहले ही कहा है कि समस्त जगत्‌सादेके ऊपर खेल रहा है; रंगोंके इस खेलको स्थानविशेषमें अवरुद्ध कर देनेसे ही वहाँपर तुरत शुक्ल तेजका विकास हो जाता है। इस शुक्लको कुछ कालतक स्तम्भित करके उससे पूर्वोक्त विचित्र वर्णोंका स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्णपरिचय हो जानेपर सब वर्णोंके संयोजन और वियोजनको अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णोंके निर्दिष्ट क्रमसे मिलनेपर निर्दिष्ट वस्तुकी सृष्टि होती है, क्रमभङ्ग करनेसे नहीं होती। किस वस्तुमें कौन-कौन वर्ण किस क्रमसे रहते हैं,

यह सीखना होता है। उन सब वर्णोंको ठीक उसी क्रमसे सजानेपर ठीक उस वस्तुकी उत्पत्ति होगी—अन्यथा नहीं। जगत्‌के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्णसञ्चार्षजन्य हैं, तब जो पुरुष वर्णपरिचय तथा वर्णसंयोजन और वियोजनकी प्रणाली जानते हैं, उनके लिये उन पदार्थोंवाली सृष्टि और संहार करना सम्भव न होनेका कोई कारण नहीं।

साधारणतः: लोग जिसे वर्ण कहते हैं, वह सूर्यविज्ञानविद्वांशुमें ठीक वर्ण नहीं—वर्णकी छटामात्र है। शुद्ध तत्त्वका आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्णका पता पानेका कोई उपाय नहीं। काकतालीय न्यायसे भी पाना कठिन है—क्योंकि एक ही वर्णसे सृष्टि नहीं होती, एकाधिक वर्णके संयोगसे होती है। इसीसे एकाधिक शुद्ध वर्णोंके संयोगकी आशा काकतालीय न्यायसे भी नहीं की जा सकती। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें वैदिक लोगोंकी तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञानका तत्त्व अच्छी तरह जानते थे। इसे जानकर ही तो वे 'मन्त्रज्ञ', 'मन्त्रेश्वर' और 'मन्त्रमहेश्वर'के पदपर आरोहण करनेमें समर्थ होते थे। क्योंकि पठ्ठवशुद्धिका रहस्य जो जानते हैं, वे समझ सकते हैं कि वर्ण और कला नियसंयुक्त हैं। वर्णसे मन्त्र एवं मन्त्रसे पदका विकास जिस तरह वाचक भूमिपर होता है, उसी तरह वाच्य भूमिपर कलासे तत्त्व और तत्त्वसे भुवन तथा कार्यपदार्थकी उत्पत्ति होती है। वाक् और अर्थके नियसंयुक्त होनेके कारण जिन्होंने वर्णको अधिकृत किया है, उन्होंने कलाको भी अधिकृत कर लिया है। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत्‌में उनकी गति अवाधित होती है।*

* द्वैवाधीन जगत् सर्वे मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनात्साद् ब्राह्मणदेवता ॥

समस्त जगत् देवताओहारा संचालित है। जो कुछ जहाँ होता है, उसके मूलमें देवशक्ति है। देवता मन्त्रका ही अभिव्यक्त रूप है। वाचक मन्त्र ही साधकके प्रयत्नविशेषसे अभिव्यक्त होकर देवतास्तप्तमें आविभूत होता है। जिस तरह बिना बीजके वृक्ष नहीं, उसी तरह मन्त्रके बिना देवता नहीं। जो वर्णतत्त्ववित् पुरुष वर्णसंयोजनके द्वारा मन्त्रका गठन कर सकते हैं, सुतगा जो मन्त्रेश्वर हैं, वे देवताके भी नियामक हैं, इसमें कोई सदेह नहीं। समग्र जगत् इस प्रकार मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर ब्राह्मणके अधीन हो जायगा, इसमें संशय करनेका कोई कारण नहीं।

उपर शुक्र वर्ण या शुद्ध सत्त्वकी जो वात कही गयी है, वही आगमशास्त्रका विन्दु-तत्त्व है। यह चन्द्रविन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश हैं—यही शब्दमातृका है। इसके ग्रिदोभसे ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं। अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्वरूप चन्द्रविन्दुसे ही शुक्र वर्णसे क्षरित होती है।* जो इन सब वर्णोंके उद्भव और विस्तार-क्रम नहीं जानते, जो सब वर्णोंके अन्योन्य सम्बन्धको नहीं समझते, जो सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़नेमें समर्थ नहीं हैं, वे किस प्रकारसे मन्त्रोद्घार कर सकते हैं?

सूर्य-विज्ञानके मतसे, सृष्टिका आरम्भ किस प्रकार होता है, यह हमने बताया दिया। वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिये। इसके बाद सृष्टिका विस्तार किस प्रकार होता है, यह बताया है।

परंतु विषयको और भी स्पष्टरूपमें समझनेकी चेष्टा करें। दृष्टान्तरूपसे ले लें कि हमे कर्पूरकी सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि सौरविद्याके अनुसार क, म, त, र—इन चार रसियोंका इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होनेसे कर्पूर उत्पन्न होता है। अब उद्भुद्ध श्वेत वर्णके ऊपर क्रमशः क, म, त और र—इन चार रसियोंको डालनेसे कर्पूरकी गन्ध मिलेगी। परंतु एक ही साथ चारों रसियों नहीं डाली जा सकती—डालनेसे भी कोई लाभ नहीं। सृष्टि कालमें ही सम्भन्न होती है। क्रम कालका धर्म है। सुतरां क्रमलघ्नन असम्भव है। इसलिये सत्त्वशोधन करके उसके ऊपर पहले 'क' वर्ण डालनेसे ही सच्छ सत्त्व 'क'के आकारमें

आकारित और वर्णमें राजित हो जायगा। शुद्ध सत्त्व ही वास्तविक आकर्षण-शक्तिका मूल है। इसीसे वह 'क' को आकर्षित करके रखता है और खयं भी उसी भावमें भावित हो जाता है। इसके बाद 'म' डालनेपर वह भी उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत आ जायगा। इसी प्रकार 'त' और 'र'के विषयमें भी समझना चाहिये। 'र' अन्तिम वर्ण है—इसीसे इसके डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्त्वकी अभिव्यक्तिका यही आदि क्षण है। यदि क, म, त और र—इन रसियोंके उस संघातको अक्षुण्ण रखता जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त अवस्था नहीं आवेगी। परंतु दीर्घ कालतक उसे रखना कठिन है। इसके लिये विशिष्ट चेत्रा चाहिये; क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँपर एक गर्भार रहस्यमय बात है। अव्यक्त कर्पूर ज्यो ही व्यक्त हुआ त्यो ही उसको पुष्ट करनेके लिये—धारण करनेके लिये यन्त्र चाहिये। इसीका दूसरा नाम योनि है। वह व्यक्त सत्ता लिङ्गमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृतिकी अन्तर्निहित लालिमा है। उसका आविर्भाव भी शिक्षा-सापेक्ष है। यद्यपि सारे वर्णोंकी तरह यह लालिमा भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति है। अन्तिम वर्णके संघर्षसे जिस समय कर्पूर सत्ता केवल लिङ्गरूपमें अलिङ्ग अव्यक्त सत्तासे आविर्भूत होती है, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसको स्थूल कर्पूररूपमें प्रसव करती है। विश्वसृष्टिमें यवनिकाकी आड़में यह गर्भाधान और प्रसव-क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्यविज्ञानवेत्ता प्रकृतिके

* अ, आ प्रभृति वास्तवमें अक्षर नहीं—क्योंकि ये सब वर्ण या रसियों सहस्रारस्य सादे चन्द्रविम्बके पियलनेसे क्षरित होती हैं। मूलधारकी प्रसुत अग्नि क्रिया-कौशलसे उद्भुद्ध होकर ऊपरकी ओर प्रवाहित होती है और अन्तमें चन्द्रविन्दुको स्पर्शकर गला देती है। इसीसे रसियाँ विकीर्ण होती हैं। परंतु मूलके साथ योगसूत्र अक्षुण्ण रहता है, इसीसे उनको अक्षर कहते हैं। सब वर्णोंके मूलमें जो 'अ'कार रहता है, वही उस मूल वर्णका प्रतीक है।

इस कार्यको देखकर उसपर अधिकार करनेकी चेष्टा करता है। संयोगकी तीव्रताके अनुसार सृष्टिविस्तारका तारतम्य होता है। कर्पूरका सत्तारूपसे आविर्भाव (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्राकी वृद्धि (पूर्वसृष्ट पदार्थकी मात्राविषयक) सृष्टि है। मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक बैँद कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षणभरमें लाख मनमें परिणत कर सकते हैं; क्योंकि प्रकृतिका भाण्डार अनन्त और अपार है—उसके साथ संयोजन करके दोहन कर सकनेपर चाहे जिस वस्तुको चाहे जिस परिमाणमें आकर्षित किया जा सकता है*। परंतु वस्तुकी विशिष्ट सत्ताका आविर्भाव कठिन कार्य है। वही स्थूल जगतकी बीज-सृष्टि है।

परंतु यह बीजसृष्टि भी प्रवृत्त बीजकी सृष्टि नहीं है, मूल बीजकी सृष्टि नहीं है। ऊपर जो अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी बात कही गयी है, वही मूल बीज है। और जो लिङ्गरूपसे बीजकी बात कही गयी, वही गौण या स्थूल बीज है। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियोके क्रमानु-क्रूल संयोगविशेषसे अभिव्यक्त होता है। परंतु मूल बीज अलिङ्ग अव्यक्त, प्रकृतिका आत्मभूत और नित्य है। इस प्रकारके अनन्त बीज हैं। प्रत्येक बीजमें

एक आवरण है—उससे वह विकारेन्मुख नहीं हो सकता, मूल बीज स्थूल बीजके रूपमें परिणत नहीं हो सकता। सूर्यविज्ञान रश्मिविन्यासके द्वारा उस मूल बीजको व्यक्त करके सृष्टिका आरम्भ दिखा देता है।

परंतु उस बीजको व्यक्त करनेके और भी कौशल हैं। वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान इत्यादि विज्ञान-वल्से चेष्टापूर्वक रश्मिविन्यास किये बिना भी अन्य उपायोंसे वह अभिव्यक्तिका कार्य संघटित किया जाता है। पूज्य-पाद परमहंसदेवने, उन सब विज्ञानोके द्वारा भी सृष्टि-प्रभृति प्रक्रिया किस प्रकार सांवित हो सकती है, यह योग्य अधिकारियोंको प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इन पंक्तियोंके लेखने भी सौभाग्यवश उसे कई बार देखा है; परंतु उन सब गुह्य विषयोंकी अधिक आलोचना करना अनुचित समझकर यहाँपर हम छोड़ रहे हैं। जो ऋषि-मुनियोंके हृदयकी वस्तु है, उसे सर्वसाधारणके सामने रखना अच्छा नहीं। (संकेत मात्र पर्याप्त है।)

सृष्टिकी आलोचना करते हुए साधारणतः तीन प्रकारकी सृष्टिकी बात कही जाती है। उनमें पहली परा सृष्टि, दूसरी ऐत्यरिक सृष्टि और तीसरी त्रितीयी सृष्टि या वैज्ञानिक सृष्टि है। सूर्यविज्ञानके बलसे जिस सृष्टि-की बात कही गयी है, उसे तीसरे प्रकारकी सृष्टि समझनी चाहिये।

* शून्यको किसी भी वड़ी-से-वड़ी सरल्याके द्वारा गुणा करनेपर भी एक विन्दुमात्र सत्ताका उद्भव नहीं होता। परंतु अति क्षुद्र सत्ताको भी संख्याद्वारा गुणा करनेपर मात्रावृद्धि होती है। किसीके भी हृदयमें सरसो वरावर भी पवित्रता होनेपर कृपावल्से महापुरुषगण उसका उद्धार कर सकते हैं; क्योंकि कुछ रहनेपर उसे बढ़ाया जा सकता है। परंतु जहाँपर कुछ नहीं है—अर्थात् अभिव्यक्तरूपमें नहीं है—वहाँ बाहरकी सहायता वैकार है। उस समय साधकको अपनी चेष्टाके द्वारा उसे भीतरसे जाश्रुत करना पड़ता है। यही पौरुषका क्षेत्र है। फिर विन्दुमात्र भी उद्बुद्ध होते ही बाह्य शक्ति कृपारूपसे उसको बढ़ा देती है। इस पौरुषके बिना केवल कृपाद्वारा कोई फल नहीं होता। श्रीकृष्णने द्रौपदीके पात्रसे विन्दुवरावर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियोंको तृप्त कर दिया था। देश और विदेशमें महापुरुषोंके चरित्रोंसे ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायेंगे।

वेदोमें भगवान् सूर्य

(लेखक—श्रीमनोहर वि० अ०)

सूर्यको भगवान् कहते हैं । वास्तवमें ही वे इस सौरमण्डलमें भगवत्सरूप हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें जो कार्य भगवान् करते हैं, इस सौरमण्डलमें सूर्यकी भी वही स्थिति है और तत्सम कृति है । इसलिये वेदने स्वयं भगवान्की सूर्यसे उपमा दी है—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः । (यजु० २३ । ४८)

भवानो अर्चाङ्गस्वर्णं ज्योतिः । (ऋक्० ४ । १० । ३)

वेदमें आये हुए सारे देवताची नाम अन्तमें परमेश्वरकी स्तुति करते हैं; क्योंकि प्रत्येक देवके गुणकी अन्तिम पराकाष्ठा उसीमें सार्थक होती है । इसलिये किसी भी नामसे स्तुति की जाय, वास्तवमें वह परमेश्वरकी ही स्तुति होती है—

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विभ्रतीः ॥

(ऋक्० ९ । ९९ । ४)

इसी प्रकार भगवान्के बाद सबसे अधिक नाम सूर्यके हैं । विव्वान्, पूपा, त्वष्टा, धाता, विधाता, सविता, मित्र, वरुण, आदित्य, शक्र, उरुक्रम, विष्णु, भग इत्यादि नाम अलग-अलग देवोंके होते हुए सूर्यके वाचक भी हैं । इसलिये इन नामोंसे इन देवताओंके वर्णनके साथ सूर्यकी स्तुति भी होती है । जब भग या सविताको भगवा प्रसविता कहते हैं, तो उसका अर्थ यही है कि सूर्य ही स्वयं भगवान् है—

भग एव भगवाँ अस्तु देवः

सनो भग पुर एताभमेव ।

(अर्थव० ३ । १६ । ५)

सुवाति सविता भगः । (ऋक्० ७ । ६६ । ४)

क्योंकि जवतक अपने पास कोई वस्तु न हो, वह दूसरेको कैसे दी जा सकती है ।

सूर्यके उदयके साथ ही जगत्के कार्य प्रारम्भ होते हैं । सूर्य ही दिन-रात और ऋतु-चक्रके नियामक हैं । सूर्यकी उष्माके बिना वनस्पतियाँ पक नहीं सकतीं, अन्न उत्पन्न नहीं हो सकता और परिणामतः प्राणधारी प्राणको धारण नहीं कर सकते ।

सूर्यकी किरणोंमें मनुष्यके लिये उपयोगी सब तत्त्व विद्यमान है । सब रोगों और दुरितोंको दूर करनेकी शक्ति है । तभी तो ‘विश्वानि देवसवितदुरितानि परासुब’ कहा जाता है । सूर्यका सुचारूरूपसे सेवन करने-वालेको किसी विद्यामिनिके खानेकी आवश्यकता नहीं रहती । सूर्यका सही प्रयोग सब वरणीय तत्त्व प्रदान करता है—

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।

श्रेष्ठं सर्वधात्मं तुरं भगव्य धीमहि ॥

(ऋक्० ५ । ८२ । १)

देवस्य सवितुःस्वे । विश्वा वामानि धीमहि ।

(ऋक्० ५ । ८२ । ६)

स देवान् विश्वान् विभर्ति ।

(ऋक्० ३ । ५९ । ८)

—रोगों, रोगकृमियोंको नष्ट करता है । उदित होते हुए सूर्यका नियमित सेवन तो हृदय और मस्तिष्कके सब विकारोंको भी नष्ट करनेकी सामर्थ्य रखता है—

आ देवो याति सविता परावतो

पञ्चिश्वा दुरिता वाधमानः ।

(ऋक्० १ । ३५ । ३)

अपसेधन् रक्षसो यातुधानान्-

स्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ।

(ऋक्० १ । ३५ । १०)

संते शीर्षः कपालानि हृदयस्य च योविधिः ॥

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्जो

रोगमनीनशांग भेदमशीशामः ।

(अर्थव० ९ । ८ । २२)

हृदोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।
(ऋक् १ । ५० । ११)

सूर्यः कृणोतु भेषजम् । (अथर्वा० ६ । ८३ । १)
अजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ।
(ऋक् ४ । ५३ । २)

इस प्रकार मानसिक शान्ति प्रदान करके वे सब प्रकारके सुख प्राप्त करते हैं और व्रतोंको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य देते हैं—

व्रतानि देवः सविताभिरक्षते ।
(ऋक् ४ । ५३ । ४)

सबकी आत्मा सूर्य

सूर्यमे उत्पादन और प्रेरणा-शक्तिका उत्स है । मूर्योदय होते ही प्राणियोंको अपने दैनिक कार्योंमें प्रवृत्त होनेकी स्थितः प्रेरणा होती है । इसलिये सूर्यको चल और अचल अथवा चेतन और जड़—दोनों प्रकारकी सृष्टिकी आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ।
चक्षुर्मित्रस्य चरुणस्याग्नेः ॥
(ऋक् १ । ११५ । १)

दोनोंमें इसीके द्वारा रोचना दिखायी देती है । दिनमें द्युलोकको ये ही प्रकाशित करते हैं—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् । (ऋक् १० । १८९ । २)
वे ही सबके सामने मार्गदर्शक बनकर खड़े हुए हैं और उनके अच्छे-बुरे कर्मों तथा पुण्य-पापको देखते हुए—

नकीमिन्द्रो निकर्तव्ये न शकः परिशक्तव्ये ।
विश्वं शृणोति पश्यति । (ऋक् ८ । ७८ । ५)

—मित्रवत् पुण्यकर्मका फल देते हैं । वरुण पुलिस-विभागकी तरह उन प्राणियोंके द्वुष्ट कर्मोंका लेखा-जोखा रखकर, न्यायकारी (अर्यमा) भगवान्‌के सामने उपस्थित करते हैं । अतः जो सबके वशी तथा नियन्त्रणकर्ता हैं,

वे अपने सेवककी अंहसा (पापसे) रक्षा करते हैं ।

यो मित्राय चरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अहंसो दाश्वासं मर्तमंहसः । तमर्यमाभिरक्षति प्रज्ञयन्तमनुवत्तम् । उक्त्यैर्य एनोः परिभूपति व्रतं स्तोमैराभूपति व्रतम् ॥ (ऋक् १ । १३६ । ५)

सूर्य स्वयम्भू हैं, इस सौर जगतमें श्रेष्ठ हैं, सारे जगत्को प्रकाशित कर रहे हैं । सबको वर्चस् और ज्योति देते हैं । जो भी सूर्यके नियमोंका अनुसरण करेगा, वह उनके समान वर्चसी बनेगा । यहाँ सूर्य और भगवान्‌में तादात्म्य दर्शाया है ।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रद्धिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्याद्वृतमन्वावर्ते । (यजु० २ । २६)

विश्वमाभासि रोचनम् । (ऋक् १ । ५० । ४)
इदं श्रेष्ठं ज्योतिपां ज्योतिरुत्तमं
विश्वजिद्धनजिदुच्यते वृहत् ।
विश्वभ्राद् भ्राजो महि सूर्यो दश उरु
प्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥
(ऋक् १० । १७० । ३)

परमात्मा ही हमे जाने या अनजाने किये हुए पापोंसे मुक्त करनेकी सामर्थ्य रखते हैं । उनकी कृपा होनेपर ही पुरुष देवयानके पथपर चलता हुआ कल्पाण प्राप्त करता है—

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चक्रमा वयम् ।
सूर्यो मातस्मादेनसो विश्वान्मुच्यत्वंहसः ॥
(यजु० २० । १६)

अध्वनामध्वपते प्रमातिर स्वस्ति
मेऽस्मिन्पथिदेवयाने भूयात् ॥
(यजु० २ । ३३)

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
आरे...अस्मद्द्यातन । (ऋक् ८ । ४७ । १३)

यहाँ परमात्माको सर्वोत्पादक तथा सर्वप्रेरक होनेसे सूर्य-नामसे सम्बोधित किया गया है । सौर जगतमें सूर्यकी भी यही स्थिति है ।

सूर्य-(भगवद्)- दर्शन

सर्वव्यापक विष्णु (सूर्य भगवान्) का परम पद द्युलोकमें सूर्यसदृश विस्तृत है । सूरिलोग सूर्यके समान ही उन्हें सदा देखते हैं—

**तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवोव चक्षुराततम् । (ऋक् ० १ । २२ । २०)**

यहाँ भी सर्वव्यापक ब्रह्म तथा सूर्यमें समानता दर्शायी गयी है ।

सूर्य जड़, चेतन, विद्वान्, मूर्ख तथा पुण्यात्मा और पापी—सबको समानरूपसे प्रकाश एवं प्रेरणा देते हैं—

**साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् । (ऋक् ० ७ । ६३ । १)
प्रत्यङ्गदेवानां विशः प्रत्यङ्ग उदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ्गविश्वं स्वर्द्धशो । (ऋक् ० १ । ५० । ५)**

वे सब प्रकारके अन्न तथा वनस्पतिको पकाते हैं—
**स ओपधीः पचति विश्वरूपाः ।
(ऋक् ० १० । ८८ । १०)**

जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं—

**अरासत ध्ययं जीवातुं च प्रचेतसः ।
(ऋक् ० ८ । ४७ । ४)**

आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् । (ऋक् ० ६ । ७१ । ४)

फिर भी संसारका प्रत्येक प्राणी और पदार्थ अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही शक्ति ग्रहण करता है । सूर्यकी प्रेरणामें मनुष्य जिस मात्रामें कर्म करते हैं, उसी मात्रामें पदार्थ अथवा अर्थ-लाभ करते हैं ।—

**नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवज्जपांसि ।
(ऋक् ० ७ । ६३ । ४)**

सूर्यद्वारा भगवत्प्राप्ति

सविताके रूपमें सूर्य नाना सुखके वर्षक हैं, जड़-जंगम दोनोंके नियन्त्रक हैं । इसलिये हमें भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रोग, दोष तथा पापके नाशके

लिये तीनों प्रकारकी रक्षा करनेयोग्यके सुख एवं शान्ति प्रदान करें—

**चृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः
स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म
यच्छत्वस्मे क्षयाय विवरुथमंहसः ॥
(ऋक् ० ४ । ५३ । ६)**

वे सविता देव नाना प्रकारके अमृत-तत्त्व प्रदान करते हैं—

**स धानो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
(अथर्व ० ६ । १ । ३)**

हम उन सविता देवके पार्षों और दृःखोंको भस्म करनेवाले वरणीय तेजका ध्यान करते हैं और फिर उसे धारण करनेका प्रयत्न करते हैं । वह सर्वप्रेरक हमारे संकल्प, बुद्धि और कर्मोंको सन्मार्गिर प्रेरित करे—

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः
प्रचोदयात् । (ऋक् ० ३ । ६२ । १०)**

जिससे हम उन देवोंके देव, परमज्योतिर्मयको प्राप्त कर सकें—

**उद्द्रयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमग्नम् ज्योतिरुत्तमम् ॥
(यजु ० २० । २१)**

यहाँ सूर्य और भगवान्-मेद ही नहीं दीखता । भगवदर्शन या प्राप्ति सूर्यद्वारा ही सम्भव मानी गयी है ।

आदित्यवर्ण पुरुष

ब्रह्मके विना ब्रह्माण्डकी कल्पना (सृष्टि) सम्भव नहीं । इसी प्रकार सूर्यके विना इस सौर जगत्की कल्पना (सृष्टि) सम्भव नहीं है । यद्यपि सूर्यकी सृष्टि भगवान्द्वारा हुई है, फिर भी उन सूर्यमें उन भगवान्-की शक्ति कार्य कर रही है । शक्ति और शक्ति-मानमें अमेद मानकर स्वयं वेदने आदित्यस्थित पुरुष और ब्रह्माण्डस्थित पुरुषसे अमेद दर्शाया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्यपुरुषः स्तोऽसावहम्, ओम् खं ब्रह्म ॥
(यजु० ४० । १७)

भगवान्‌के बाद सौर-जगत्‌के सृष्टि पदार्थोंमें सूर्य ही सबसे महिमामय तत्त्व हैं । इसलिये भगवान्‌की जलक दिखानेके लिये वेदमें भगवान्‌को आदित्यवर्ण कहा है । जैसे सूर्य सर्वरोगमोचक हैं, वैसे ही भगवान् मृत्युसे मोक्षा हैं—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात् ।
तमेव विदित्वातिगृह्यमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(यजु० ३१ । १९)

जैसे सूर्य जगत्‌के अन्धकारके आवरणको झटककर हटा देते हैं, वैसे ही भगवान् भक्तके अज्ञानावरणको झटक देते हैं—

आर्द्धं केचित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या
अभ्यनूपत । धारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥
(ऋू० ९ । ११० । ६)

वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महत्ता और स्तुतियाँ

(लेखक—श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री 'रसिकेश')

पृथ्वीसे भी अत्यधिक उपकारका भगवान् सूर्य हैं । अतः हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने श्रद्धा-विभोर होकर सूर्यदेवकी स्तुति-प्रार्थना और उपासनाके सैकड़ो सुन्दर मन्त्रोंकी उद्घावना की है । उनके प्रशंसनीय प्रयासका दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

१-सूर्य-स्तुति—

वैदिक ऋषियोंका ध्यान भगवान् सूर्यके निम्नलिखित गुणोंकी ओर विशेषरूपसे गया है—(क) अन्धकारका नाश, (ख) राक्षसोंका नाश, (ग) दुःखों और रोगोंका नाश, (घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि, (ङ) चराचरकी आत्मा, (च) आयुकी वृद्धि और (छ) लोकोंका धारण ।

नीचे भुवन-भास्करके इन्हीं गुणोंके सम्बन्धमें वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रकाश डाला जाता है ।

इस प्रकार वेदोंमें आदित्यपुरुष और वृश्चिपुरुषमें या भगवान् और सूर्यमें गुणों और कार्योंकी इतनी समानता दर्शायी है कि उनमें कभी-कभी अभेद प्रतीत होता है । हमारी सृष्टिमें सबसे महिमामय तत्त्व सूर्य ही हैं और इसलिये भगवान्‌को यदि किसी स्थूल दृश्यमान तत्त्वसे समझना हो तो केवल सूर्यद्वारा ही समझा जा सकता है । इसीलिये आदित्य-हृदयमें कहा गया है कि सूर्यमण्डलमें कमलासनपर आसीन 'नारायण'का सदा ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवित्रमण्डलमध्यवर्तीं

नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।

प्रेरणा, दीपि और हितकारिताकी दृष्टिसे मनुष्यका आदर्श पुरुष या लक्ष्य सूर्य हैं । वह सूर्य-सदृश बनकर ही भगवान् परमेश्वर या ब्रह्मका दर्शन वार सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है ।

(क) अन्धकारका नाश—

अमितपा सौर्य ऋषिकी प्रार्थना है—

येन सूर्य ज्योतिषा वाधसे तमो जगच्च विश्वसु-
दियर्पि भानुना । तेनासद् विश्वामनिरामनाहृतिमपा
मीवामप दुष्पवप्ल्यं सुव ॥

(ऋग्वेद १० । ३७ । ४)

हे सूर्य ! आप जिस ज्योतिसे अन्धकारका नाश करते हैं तथा प्रकाशसे समस्त ससारमें स्फुर्ति उत्पन्न कर देते हैं, उसीसे हमारा समग्र अन्तोंका अभाव, यज्ञका अभाव, रोग तथा कुस्तियोंके कुप्रभाव दूर कीजिये ।

(ख) राक्षसोंका नाश—

महर्पि अगस्त्य ऐसे ही विचारोंको निम्नाङ्कित मन्त्रमें व्यक्त करते हैं—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदप्तो अदृष्टहा ।
अद्यग्रान्त्सर्वाज्जम्यन्त्सर्वश्च यातुधान्यः ॥
(ऋग्वेद १ । १९१ । ८)

‘सबको दीखनेवाले, न दीखनेवाले (राक्षसों) को नष्ट करनेवाले, सब रजनीचरों तथा राक्षसियोंको मारते हुए वे सूर्यदेव सामने उदित हो रहे हैं ।’

(ग) रोगोंका नाश—

प्रस्तुत मन्त्रसे विदित होता है कि सूर्यका प्रकाश पीलिया रोग तथा हृदयके रोगमें विशेष लाभप्रद माना जाता था । प्रस्तुत ऋषिकी सूर्य देवतासे प्रार्थना है—

उद्यन्द्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
(ऋग्वेद १ । ५० । ११)

‘हे हितकारी तेजवाले सूर्य ! आप आज उदित होते तथा ऊचे आकाशमें जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोग (पीलिया) को नष्ट कीजिये ।’ इस मन्त्रके ‘उद्यन्द’ तथा ‘आरोहन्’ शब्दोंसे सूचित होता है कि दोपहरसे पूर्वके सूर्यका प्रकाश उक्त रोगोंका विशेषतः नाश करता है ।

(घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि—

वेदोमें विभिन्न देवताओंको पृथक्-पृथक् पदार्थोंका अधिपति एवं अधिष्ठाता कहा गया है । उदाहरणार्थ, अथर्ववेद (५ । २४) मेरे अर्थवा ऋषि हमे बताते हैं कि जैसे अग्नि वनस्पतियोंके, सोम लताओंके, वायु अन्तरिक्षके तथा वरुण जलोंके अधिपति है, वैसे ही सूर्यदेवता नेत्रोंके अधिपति है । वे मेरी रक्षा करे ।

सूर्यश्चक्षुपामधिपतिः स मावतु ॥
(अथर्व ० ५ । २४ । ९)

यहाँ नेत्र प्रागियोंके नेत्रोतक ही सीमित नहीं है; क्योंकि वेद तो भगवान्-सूर्यको मित्र, वरुण तथा अग्नि-देवके भी नेत्र बताते हैं ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
(ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्य देवताओंके अद्भुत मुखमण्डल ही हैं, जो कि उदित हुए हैं । ये मित्र, वरुण और अग्निदेवोंके चक्षु हैं । सूर्य तथा नेत्रोंके घनिष्ठ सम्बन्धको ब्रह्मा ऋषिने इन अमर शब्दोंमें व्यक्त किया है—

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्त-
रिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

(अथर्व ० ५ । ९ । ७)

‘सूर्य ही मेरे नेत्र हैं, वायु ही प्राण हैं, अन्तरिक्ष ही आत्मा है तथा पृथिवी ही शरीर है ।’

इसी प्रकार दिवंगत व्यक्तिके चक्षुके सूर्यमें लीन होनेकी कामना की गयी है । (ऋ० १० । १६ । ३) सूर्यदेवता दूसरोंको ही दृष्टिदान नहीं करते, स्वयं दूर रहते हुए भी प्रत्येक पदार्थपर पूरी दृष्टि डालते हैं । ऋजिश्वा ऋषिके विचार इस विषयमें इस प्रकार है—

वेद यस्त्रीणि विद्यथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः । ऋजु मर्तेषु द्वजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्थ एवान् ॥ (ऋ० ६ । ५१ । २)

जो विद्वान् सूर्यदेवता तथा इन अन्य देवताओंके स्थानों (पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं धौ) और इनकी संतानोंके ज्ञाता हैं, वे मनुष्योंके सरल और कुठिल कर्मोंको सम्यक् देखते रहते हैं ।

(ङ) चराचरकी आत्मा—

वैदिक ऋषियोंकी प्रगाढ़ अनुभूति थी कि सूर्यका इस विशाल विश्वमें वही स्थान है, जो शरीरमें आत्माका । इसी कारणसे वेदोमें ऐसे अनेक मन्त्र सहज सुलभ हैं, जिनमें सूर्यको सभी जड़-चेतन पदार्थोंकी आत्मा कहा गया है । यथा—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च ॥ (ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्यदेवता जंगम तथा स्थावर सभी पदार्थोंकी आत्मा हैं ।

(च) आयु-वर्धक—

यो तो रोगोसे बचाव तथा उनके उपचारसे भी आयु-वृद्धि होती है, फिर भी वेदोंमें ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनमें सूर्य एवं दीर्घायुका प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाया गया है। यथा—

तच्छुद्देवहितं पुरस्ताच्छुकमुच्चरत् । पश्येम
शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् । (यजु० ३६ । २४)

देवताओद्वारा स्थापित वे तेजस्वी सूर्य पूर्वदिशामें उद्दित हो रहे हैं। उनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक (तथा उसरो भी अधिक) देखे और जीवित रहे ।

(छ) लोक-धारण—

वैदिक ऋषि इस वातको सम्यक् अनुभव करते थे कि लोक-लोकान्तर भी सूर्य-देवताद्वारा धारण किये जाते हैं। निर्दर्शनके लिये एक ही मन्त्र पर्याप्त होगा—

विभ्राजज्ज्योतिपा स्वरगच्छो रोचनं द्विः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्यासृता विश्वकर्मणा
विश्वदेव्यावता ॥ (ऋ० १० । १७० । ४)

‘हे सूर्य ! आप ज्योतिसे चमकते हुए थौं लोकके सुन्दर सुखप्रद स्थानपर जा पहुँचे हैं। आप सर्वकर्म-साधक तथा सब देवताओंके हितकारी हैं। आपने ही सब लोक-लोकान्तरोंको धारण किया है ।’

२-सूर्य-देवसे प्रार्थनाएँ—

उपर्युक्त अनेक मन्त्रोंमें सूर्यदेवताका गुणगान ही नहीं है, प्रसंगवश प्रार्थनाएँ भी आ गयी हैं। दो-एक अर्थर्थनापूर्ण मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः

पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।

स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायु-

मारिपाम सुमतौ ते स्याम ॥

(अर्थव० १३ । २ । ३७)

‘मैं थौकी पीठपर उड़ते हुए अदितिके पुत्र, सुन्दर पक्षी (सूर्य) के पास कुछ मॉगनेके लिये डरता हुआ

जाता हूँ। हे सूर्यदेव ! आप हमारी आयु खब लंबी करें। हम कोई कष्ट न पावें। हमपर आपकी कृपा बनी रहे ।’

अपने उपास्य प्रसन्न हो जायें तो उनसे अन्य कार्य भी करा लिये जाते हैं। निम्नलिखित मन्त्रमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् सूर्यसे कुछ इसी प्रकारका कार्य करानेकी भावना व्यक्त करते हैं—

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागासो अर्यमणे अद्यये च ॥
(ऋ० ७ । ६२ । २)

‘हे सूर्य ! आप इन स्तोत्रोंके द्वारा तीव्रामी घोड़ोंके साथ हमारे सामने उद्दित हो गये हैं। आप हमारी निष्णापताकी वात मित्र, वरुण, अर्यमा, तथा अग्नि-देवसे भी कह दीजिये ।’

उपासना—

रुति, प्रार्थनाके पश्चात् उपासककी एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह अपने आपको उपास्यके पास ही नहीं, बल्कि, अपनेको उपास्यसे अभिन्न अनुभव करने लगता है। ऐसी ही दशाकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित वेद-मन्त्रमें की गयी है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं सुखम् ।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥

(यजु० ४० । १७)

‘उस अविनाशी आदित्यदेवताका शरीर सुनहले ज्योतिषिण्डसे आच्छादित है। उस आदित्यषिण्डके भीतर जो चेतन पुरुष विद्यमान है, वह मैं ही हूँ।’ उपर्युक्त विग्रहणसे सिद्ध है कि जहाँ हमारे वैदिक पूर्वज भौतिक सूर्य-पिण्डसे विविध लाभ उठाते थे, वहाँ उसमें विद्यमान चेतन सूर्य-देवतासे ख-कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थनाएँ भी करते थे। तत्पश्चात् उनसे एकरूपताका अनुभव करते हुए असीम आत्मिक आनन्दके भागी बन जाते थे। सचमुच महाभाग सूर्य महान् देवता हैं।

ऋग्वेदमें सूर्य-सन्दर्भ

ऋग्वेदमें सूर्यसे सन्दर्भित कुल चौदह सूक्त हैं, जिनमेंसे ग्यारह पूर्णतः सूर्यकी उपर्वणा, स्तुति या महत्व-प्रतिपादक हैं। संक्षेपमें उदाहरण देखें—सूर्य ‘आदित्य’ हैं; क्योंकि वे अदितिके पुत्र बतलाये गये हैं। अदितिदेवीके पुत्र आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। आदित्य छः हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश (म० २, सूक्त २७, म० १)। पृ० ९। ११४। म० में सात तरहके सूर्य बताये गये हैं। १०। ७२। ८ में कहा गया है कि अदितिके आठ पुत्र थे—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदितिदेवी चली गयीं और आठवें सूर्यको उन्होंने आकाशमें छोड़ दिया। [तैत्तिरीय ब्राह्मणमें आदित्यके स्थानपर इन्द्रका नाम है। शतपथ-ब्राह्मणमें १२ आदित्योंका उल्लेख है। महाभारत (अदिपर्व, १२१ अध्याय)में इन १२ आदित्योंके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, वृष्णि, सविता और विष्णु। अदितिका यौगिक अर्थ अखण्ड है। यास्कने अदितिको देवमाता माना है।]

कहा जाता है कि वस्तुतः सूर्य एक ही हैं। कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार उनके विविध नाम रखे गये हैं।

मण्डल १, सूक्त ३५में ११ मन्त्र हैं और सब-के-सब सूर्यवर्णनसे पूर्ण हैं। एक ही सूक्तमें सूर्यका अन्तरिक्षमें भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोंसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका प्रकाशन आदि बातें भी विदित होती हैं।

* क० यजु० व० त० वा० के दिवोक्तम मन्त्रके भाष्यमें आचार्य सायणने सूर्यको नमस्कार करते हुए उनकी गतिका भी उल्लेख किया है—

योजनानां सहस्रे दे दे शते दे च योजने। एकेन निमिशावेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ॥

[वैज्ञानिक सूर्यकी गति एक सेकण्डमें १२ मील बतलाते हैं।]

आठवें मन्त्रमें कहा गया है—‘सूर्य आठों दिशाओं—(चार दिशाओं और चार उनके कोनों) को प्रकाशित किये हुए हैं। उन्होंने प्राणियोंके तीन संसार और सप्त सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोनेकी औंखोंवाले सविता यजमानको द्रव्य देकर यहाँ आवे।’

म० १, सू० ५०, म० ८ में लिखा है—सूर्य! तुम्हें हरित नामके सात घोड़े (किरणें) रथसे ले जाने हैं। किरणें या ज्योति ही तुम्हारे केश हैं। म० २, सू० ३६-२ में कहा गया है—सूर्यके एक-चक्रवाले रथमें सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व (किरण) सात नामोंसे रथ ढोता है। इससे विदित होता है कि ऋग्विको सूर्य-रस्मिके सात भेदों और उनके एकत्वका भी ज्ञान था।

म० १, सू० १२३, म० ८ में कहा गया है—‘उपा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।’ इसपर आचार्य सायणने लिखा है—‘सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य प्रत्येक दण्डमें ७९ योजन धूमते हैं। उपा सूर्यसे ३० योजन पूर्वगमिनी है, इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा घंटा पहले उपाका उदय मानना चाहिये।’ पाथात्योंके मतसे सूर्य बीस हजार मील प्रतिदिन चलते हैं; परंतु सूर्यकी गति अपने कक्षमें ही होती है।*

इन दो मन्त्रोंमें सूर्य-सम्बन्धी अनेक विषय ज्ञातव्य हैं—‘सत्यात्मक सूर्यका वारह अरों, खँटों वा राशियोंसे युक्त चक्र खर्गके चारों ओर वार-वार भ्रमण करता है और कभी पुराना नहीं होता। अग्नि इस चक्रमें पुत्र-खरूप होकर सात सौ बीस दिन (अर्थात् ३६० दिन और

३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं। अगले मन्त्रमें दक्षिणायन (पूर्वार्द्ध) और उत्तरायण (अन्यार्ध) का भी कथन है (मं० १, सू० १६४, मं० ११-१२)। मं० १, सू० ११७, मं० ४-५ में भी दक्षिणायनका विषय है। मं० १, सू० १६, मं० ४८ में भी ३६० दिनोंकी बात है।

मं० १, सू० १५५, मं० ६ में कालके ये १४ अंश बताये गये हैं—संक्षत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिरको एक माननेपर), बारह मास, चौबीस पश्च, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह रात्रियाँ।

मं० ५, सू० ४०, मं० ५-९ में सूर्य-ग्रहणका पूर्ण विवरण है।

मं० ७, सू० ६६, मं० ११में सूर्य (मित्र वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास, दिन और रात्रिका बनाया जाना लिखा है। पृ० १२८-८में १२ मासोंकी बात तो है ही, तेरहवे महीनेका भी उल्लेख है। यह तेरहवाँ महीना मलमास अथवा मलिम्लुच है। पृ० १३५०-३में भी मलमासका उल्लेख है।

पृथिवीके चारों ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें बारह 'अमावास्याओ'की गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं। अतः सौर और चान्द्र वर्षमें सामझस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तीसरे वर्षमें एक अधिक मास, मलमास अथवा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्यमें दोनों (सौर और चान्द्र) वर्ष माने गये हैं और दोनोंका समन्वय भी किया गया है।

मं० १०, सू० १५६, मं० ४ में कहा गया है, कि 'अक्षर और ज्योतिर्दाता सूर्य सदा चलते रहते हैं।'

मं० १०, सू० १८९, के १-३ मन्त्रोंमें सूर्यकी गतिशीलता और तीस मुहूर्तोंका उल्लेख है। पृ० १९२६-३०में

इन्द्रद्वारा सूर्यके आकाशमें स्थापनके साथ ही सारे संसारके नियमनकी बात लिखी है।

मं० १०, सू० १४९, मं० १ में कहा गया है कि 'सूर्यने अपने यन्त्रोंसे पृथिवीको सुस्थिर रखा है। उन्होंने बिना अवलम्बनके द्वालोकको दृढ़ रूपसे बँध रखा है।

इन उद्धरणोंसे विदित होता है कि ऋमणशील सूर्यने अपनी आकर्षणशक्तिसे पृथिवीप्रभृति प्रहोपग्रहोंके साथ आकाश एवं स्वर्ग (द्यौ) और सारे सौर-मण्डलको बँधकर नियमित कर रखा है। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि आयोंको सूर्यकी आकर्षण-शक्ति और खगोलका निपुण ज्ञान था। अगले मन्त्रसे भी इस मतका समर्थन होता है। इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें जो अन्तर्हित तेज है, वह आदित्य-किरण ही है।

मं० १, सू० ८४के १५ वें मन्त्रपर सायणने निरुक्तांश (२-६) उद्धृत किया है—'अथाप्य-स्वैको रस्मिमन्द्रमसं प्रति दीप्यते। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।' अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमण्डलको प्रदीप करती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश आता है।'

वैज्ञानिकोंके मतसे सूर्यकी किरणे अनेक रोगोंको विनष्ट करती हैं। ऋग्वेदके तीन मन्त्रों (मं० १ सू० ५०, मं० ८, ११, १३) से वैज्ञानिकोंके इस मतका समर्थन मिलता है—'सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानस (हृदयस्थ) रोग और पीत्तवर्णरोग एवं शरीररोग विनष्ट कर देते हैं।

रोगसे मुक्त होनेकी इच्छावाले सूर्योपासकोंके लिये ये तीन मन्त्र मुख्य हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधिकारिकी शान्तिके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोंका जप किया जाता है। सायणके मतसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्म-रोग विनष्ट हुआ था।

ऋग्वेदमें खगोलवर्तीं सप्तर्षि, ग्रह, तारा तथा उल्का आदिका भी उल्लेख है। कहा गया है कि जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, आकाशमें संस्थापित हैं और रात होनेपर दिखायी देते हैं, वे दिनमें कहाँ चले जाते हैं! १। २४। १० मन्त्रके मूलमें 'ऋचा' शब्द है, जिसका अर्थ सायणने 'सप्त तारा' किया है। ऋचु धातुसे ऋक्ष शब्द बना है, जिसका अर्थ उज्ज्वल है। इसीलिये नक्षत्रोंका नाम उज्ज्वल पड़ा और सप्तर्षियोंका नाम उज्ज्वल भालू हुआ। पाश्चात्य भी इन्हे (ऐसा ही) कहते हैं। अन्यान्य मन्त्रोंमें भी सप्तर्षियोंका उल्लेख है।

मं० १, सू० ५५, मं० ६ में इन्द्रके द्वारा ताराओंका निरावरण करना लिखा है। मं० १०, सू० ६५, मं० ४ में प्रहो, नक्षत्रों और पृथिवीको देवोंके द्वारा यथास्थान नियमित करनेकी बात है। १०। ६८। ४में कहा गया है कि मानो आकाशसे सूर्य उल्काओंफेंक रहे हैं। १४ भुवनोंका उल्लेख है। इस प्रकार इन मन्त्रोंसे सौर-परिवारका ज्ञान होता है। आर्य खगोल-विद्याके ज्ञाता थे। वैदिक साहित्यके अन्यान्य ग्रन्थोंमें इसका विस्तार है। ऋग्वेदमें प्रत्येक विषय सूक्ष्मतम सूत्रमें वर्णित हैं। अतः वडी सावधानीसे प्रत्येक विषयका अध्ययन और अन्वेषण करना चाहिये।*

ओौपनिषद् श्रुतियोंमें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसिंघारामजी सक्सेना 'प्रवर', एम० ए०, (द्वय), पी-एच० डी०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)

येन चितो अर्णवान्निर्बभूव
येन सूर्यं तमसो निर्मुमोच ।
येनेन्द्रो विश्वा अजहादराती-
स्तेनाहं ज्योतिपा ज्योतिरानशान आदिः ॥
(तैत्तिरीय अरण्यक २। ३। ७)

आदित्य ब्रह्म—सूर्यदेव समस्त जगत्‌में प्राणोंका संचार करते हैं। सूर्योदय होते ही अन्धकारकी जड़ता दूर हो जाती है, प्रकाशकी उत्साहमयी कार्य-तत्परता सब और दृष्टिगोचर होने लगती है तथा रोगी भी अपनेको नीरोग-जैसे अनुभव करते हैं। इन सबके हेतु सूर्य भला क्यों न अभिनन्द्य होगे? प्रत्येक हिंदू अपने दैनंदिन जीवनका आरम्भ रवि-वन्दनसे करता है। वैदिकों

तथा आगमिकोंकी गायत्री उपासना और योगियोंके त्राटक सूर्योपासनाके ही अङ्ग हैं।

सूर्योपनिषद्‌में सूर्यब्रह्मकी उपासनाका निर्देश है। उसमें ऋषि-कथन है—'नारायणाकार सूर्य एवं चिन्मूर्ति-वैभवको नमस्कार करता हूँ। सूर्य चराचरकी आत्मा तथा आगमिकोंकी गायत्री-उपासना और योगियोंके त्राटक सूर्योपासनाके अन्तर्गत उपास्त्वरूप हैं।'

'हे सूर्य! तुम प्रत्यक्ष कर्म-कर्ता हो तथा ब्रह्म-विष्णु-महेश हो। आदित्यसे देव और वेद उत्पन्न होते हैं। आदित्यमण्डल तप रहा है। यह प्रत्यक्ष चिन्मूर्ति ब्रह्मका वैभव है।' श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में भी आदित्य, अग्नि और सोमको ब्रह्म कहा है।

*—श्रीरामगोविन्द विवेदीके ऋग्वेद हिन्दी अनुवादके भूमिका-भागसे सामार।

१. सूर्यनारायणाकार नौमि चिन्मूर्तिवैभवम् ।

सूर्यं आत्मा जगतस्त्वयुपश्च । त्वमेव प्रत्यक्ष कर्मकर्तासि त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि ।

२. त्वमेव प्रत्यक्ष विष्णुरसि त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि । आदित्याद् देवा जायन्ते आदित्याद् वेदा जायन्ते ।

आदित्यो वा एप एतन्मण्डल तपति असावादित्यो ब्रह्म ॥ (—सूर्योपनिषद्)

‘आदित्य ब्रह्म हैं’—इसकी व्याख्या छान्दोग्य-उपनिपदमें हुई है। पहले असत् ही था। वह सत्—‘कार्यभिमुख’ हुआ। अङ्गुरित होकर वह एक अण्डमें परिणत हो गया। उस अण्डके दो खण्ड हुए। रजत-खण्ड पृथ्वी है और सर्व-खण्ड द्युलोक है। फिर इससे जो उत्पन्न हुए, वे आदित्य हैं। इनके उदय होते समय घोप उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण प्राणी और भोग भी इन्हाँसे उत्पन्न होते हैं। इन आदित्य ब्रह्मके उपासक-को ये घोप सुन्दर सुख देते हैं^३। अन्यत्र श्रुति कहती है कि जो उद्गीथ (गाने योग्य) है, वह प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है। ये आकाशमें विचरने-वाले सूर्य ही उद्गीथ हैं और ये ही प्रणव भी हैं।

आशय यह है कि सूर्यमें ही परमात्मा और उनके वाचक उँच्की भावना करनी चाहिये; क्योंकि ये उँच्का उच्चारण करते हुए ही गमन करते हैं^४।

ब्रह्मण्डके दो मूल भाग हैं—धौं और पृथिवी; जिनमें समस्त प्राण, देव, लोक और भूत हैं। ये दो मूल भाग ब्रह्मके दो रूप हैं; जिन्हे मूर्त्त-अमूर्त्त, मर्त्य-अमृत, स्थित-यत्, सत्-त्यत् और पुरुष-प्रकृति भी कहा जाता है।^५ अमूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षका ज्योतिर्मय ‘स’ आता है, जिसका प्रतीक आदित्यमण्डलका ‘पुरुष’ है। मूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षके अतिरिक्त और जो

कुछ है, उसका रस आता है, जिसका प्रतीक स्वयं तपनेवाला आदित्यमण्डल है^६।

मूर्त्त-अमूर्त्त, वाक्—ब्रह्म अथवा माया और पुरुष—ब्रह्मके दो-दो रूप विश्वके दो मूल तत्त्व हैं। धावा-पृथिवी मूर्त्त रूपका संयुक्त नाम है। इन स्थूल रूपोंमें इनके अमूर्त्त (मूर्दम्) रूप व्याप्त रहते हैं। इसका एक मूर्त्त (स्थूल) रूप सूर्यमण्डल है, जिसमें अमूर्त्तरूप ‘ज्योतिर्मय’ पुरुष रहता है। इन दोनोंकी संयुक्त संज्ञा मित्रावरुण है। आगेकी विचारणामें मित्र और वरुण—ये दोनों आदित्यके पर्याय हैं और इनके कुछ पृथक्-पृथक् कार्य भी बताये गये हैं। वारह आदित्योंकी विचारणा भी कदाचित् इसीसे क्रमशः बढ़ी है।

आदित्यमें ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिपदमें कहा है कि यह व्यक्त जगत् पहले आप् (जल) ही था। उस आप्ने सत्यकी रचना की। अतः सत्य ब्रह्म है और यह जो सत्य है, वही आदित्य है^७। इस सूर्य-मण्डलमें जो यह पुरुष है, उसका सिर ‘भूः’ है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। दक्षिण नेत्रमें जो यह पुरुष है, उसका ‘भूः’ सिर है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। ‘भुवः’ यह भुजा है। भुजाएँ दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। ‘स्वः’ यह प्रतिष्ठा (चरण) है। प्रतिष्ठा दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। ‘अहम्’ यह उसका उपनिपद् (गूढ़नाम) है^८।

३. आदित्यो ब्रह्मेत्यादेगस्तस्योपव्याख्यानम्। असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत्। तत् समभवत्। तदाण्डं निर्वर्तता। सत् सवत्सरस्य मात्रामशयत। तन्निरभिद्यत। ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम्। तद् यत् रजतः सेयं पृथिवी। यत् मुवर्णः सा धौः……। अथ यत् तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोपा उल्लवोऽनूद-तिष्ठन्त्वर्णिणि च भूतानि सर्वे च कामाः……। स य एतमेवं विद्वानादित्य ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह श्वेतः साधवो घोपा आ च गच्छेयुरुप च निम्नेऽविम्नेऽरन्॥

४. अथ सल्ल य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एप प्रणव ओमिति ह्येप स्वरन्नेति ॥

५. वृ० उ० २ । ३ । १-५

६. डॉ० फतहसिंह ‘वैदिक दर्शन’ पृष्ठ ७९

७. वृ० उ० ५ । ५ । १-२

८. वृ० उ० ५ । ५ । ३-४

(-छा० उ० १ । ५ । १)

इसी उपनिषद्में याज्ञवल्क्य राजा जनकसे कहते हैं कि यह पुरुष 'आदित्य-ज्योति' है। आदित्यके अस्त होनेपर चन्द्र; आदित्य और चन्द्र—इन दोनोंके अस्त होनेपर अग्नि; अग्निके भी अस्त होनेपर वाक्, और वाक्के शान्त होनेपर आत्मा ही ज्योति है ।' आशय यह है कि आदित्यादिक सभीका प्रकाशक परमात्मा हैं। उन्हींकी ज्योतिसे समस्त ज्योतिषिण्ड पुष्ट होते और कर्म करते हैं। ब्रह्माण्डमें ब्रह्मकी यह ज्योति आदित्यमण्डलके हिरण्यमय पुरुषके रूपमें अवस्थित है और वह विभिन्न रूपोंमें राजती है अर्थात् नाना नाम-रूपात्मक जगत्के रूपमें अभिव्यक्त होती है ।'

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् कहता है कि आदित्योंमें जो ज्योति है, वह गोपालकी शक्ति ही है^{१३}। नारायणो-पनिपद् भी आदित्यमें परमेष्ठी ब्रह्मात्माका निवास बताता है ।^{१४} कौपीतकि-त्राहणके अनुसार भी आदित्यका प्रकाश ब्रह्मकी ही दीपि है ।^{१५} श्रुतियों और गीतामें ब्रह्मको ही ज्योतिका मूल स्रोत और प्रकाशकोंको भी प्रकाश देनेवाला कहा गया है ।^{१६}

१३. वृ० उ० ४ । ३ । १—६ । १०. वृ० उ० ४ । ३ । ३ । ३२ । ११. स होवाच तं हि वै नारायणो देव आद्या व्यक्ता द्वादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठन्तीति । १०. 'आदित्येषु ज्योतिः (—गो० उ० ता० उ० २ । १ ।)

१४. य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा ॥

१५. एतद् वै ब्रह्म दीप्त्यते यथा दित्यो दृश्यते ॥

१६. येन सूर्यस्तपति तेजसेद्दः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ (मु० उ० २ । २ । १०; श्व० उ० ६ । १५; क० उ० २ । १५); तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः ॥ (—मु० उ० २ । २ । १५); ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः ॥ (—गीता १३ । १७)

तथा—यदादित्यगत तेजो जगद्ग्रासयतेऽस्तिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चारनौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(—गीता १५ । १२)

१७. यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमव्यात्मं चाकुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं व्रह्मेद८ सर्वम् ॥ (—वृ० उ० २ । ५ । ५)

१८. (क) यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एववित् ॥ (—तै० उ० २ । ८ । ५)

. (ख)—ऐ० उ० ३ । ११ । १७. —ऐ० उ० ३ । १२—४१

१९. नवद्वारे पुरे देही हृसो लेलयते वहिः। वशी सर्वस्य लोकस्य स्यावरस्य चरस्य च ॥

(—श्व० उ० ३ । १८)

२०. (क) भीपोदेति सूर्यः ॥ (—तै० उ० २ । ८ । १)

ब्रह्मदारण्यक श्रुतिका कथन है कि इस आदित्यमें यह जो तेजःस्वरूप अमृतमय पुरुष है, यह जो अथान्म-चाकुष-तेज अमृतमय पुरुष है, वही यह आत्मा है, अमृत है एवं ब्रह्म है^{१७}। पिण्ड और ब्रह्माण्डकी पक्षता होनेसे यह भी सिद्र है कि दोनोंके पुरोंमें रहनेवाले पुरुषोंमें भी पक्षता है—मानव-पुरुषका प्राण-पुरुष वही है, जो आदित्यमण्डलरूप पुरोंमें रहनेवाला पुरुष है ।^{१८} जो अन्तर्यामी हमारे शरीरमें है, वही देव 'सहस्रशीर्वा' 'सहस्राक्ष' और 'सहस्रपाद' होकर समस्त विश्वके भीतर और ब्राह्म है ।^{१९} वही अमृतका स्वामी चराचरका वशी है; वही ब्रह्म भूत और भव्य सब खुल्ह है; वही हमारे देहकी नवद्वार-पुरीमें निवास करनेवाला देही है ।^{२०}

सूर्यदेव—सूर्यका तमना और प्रकाशित होना सर्वव्यापी परमात्माकी अन्तर्निहित शक्तिके कारण हैं। इसे इस प्रकार भी कहा गया है कि सूर्य आदि सभी परमात्माके भयसे या उनकी इच्छा अथवा प्रेरणासे और उनके संकेतपर अपने-अपने कार्यमें लगे हुए हैं ।^{२१}

गायत्री मन्त्रमें सविताको देव कहा है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यमण्डल उनका तेज है—‘देवस्य भर्गः’। आदित्यके सविता आदिक वारह स्वरूप हैं। श्रुति कहती है कि आदित्य, रुद्र और वसु आदि तैतीसो देवता नारायणसे उत्पन्न होते हैं, नारायणके द्वारा ही अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और अन्तमें नारायणमें ही लीन हो जाते हैं।^{२५} परमात्माके तीन पद तीन गुहाओंमें निहित हैं। वे ही सबके बन्धु, जनक और सविता तथा सबके रचयिता हैं।^{२६} (सविताके रथ और घोड़ोंका वर्णन वेद और पुराणोंमें विस्तारसे आया है।^{२७})

नेत्रगत सूर्य—सूर्य भगवान्के नेत्र हैं^{२८}। जब विराट् पुरुष प्रकट हुआ तो उसके नेत्रमें सूर्यने प्रवेश किया।^{२९} इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मूलशक्ति सूर्यकी ही है^{३०}। हिरण्यगर्भस्वप्न पुरुषके नेत्रोंसे आदित्य

प्रकट हुए हैं^{३१}। वृहदारण्यकमें इसे इस प्रकार कहा है कि इस आदित्य-मण्डलमें जो पुरुष है और दक्षिण नेत्रमें जो पुरुष है—वे ये दोनों पुरुष एक-दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं। आदित्य रश्मियोंके द्वारा चाक्षुप पुरुषमें प्रतिष्ठित है और चाक्षुप पुरुष प्राणोंके द्वारा उसमें प्रतिष्ठित है।^{३२}

इस विषयका पूर्ण स्थैतिकरण कृष्णयजुर्वेदीय ‘चाक्षुप उपनिषद्’में हुआ है। उसमें बताया है कि चाक्षुष्मती विद्यासे अक्षि-रोगोंका निवारण होता है और हम अन्वतासे बचते हैं। इसी सन्दर्भमें सूर्यके स्वरूप और शक्तिका निर्वचन हुआ है। सूर्य नेत्रके तेज हैं और उसको ज्योति देते हैं। वे महान् हैं, अमृत हैं एवं कल्याणकारी हैं। शुचि और अप्रतिमरूप है। वे रजोगुण (क्रियाशक्ति) और तमोगुण (अन्वकारको अपनेमें

(ख) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युधावति पञ्चमः॥

(-कठ० २ । ३ । ३)

२०. (क) द्वादशादित्या रद्रवसवः सर्वाणिच्छुन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते च। एतद् ऋग्नेदशिरोऽधीते ॥ (-नारायणार्थवृशिर उप० १)

(ख) यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥

(-कठ० २ । १ । ९)

२१. त्रीणि पदा निहिता गुहासु यस्तद्वेद स पितुः पितासत् ।

स नो बन्धुर्जनिता स विद्याता धामानि वेद भुवनानि विद्या ॥ (-नारायण उप० १ । ४)

२२. ऋक्० १ । ८ । २, विं पु० २ । १० ।

२३. (क) अथ चक्षुरत्यवहत् तद् यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत् सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमति-क्रान्तस्तपति ॥ (-वृ० उ० १ । ३ । १४)

(ख) अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ... ॥ (-मुण्डक० २ । १ । ४)

२४. आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविगत् ॥ (-ऐ० उ० १ । २ । ४)

२५. सूर्यश्चक्षुः ॥ (-वृ० उ० १ । १ । १) तद् यद् इदं चक्षुः सोऽसावादित्यः । (-वृ० उ० ३ । १ । ४)
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ (-सूर्य उ०)

पर्वतके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण सूर्यको ‘पर्वत’ कहा है। सबको धारण करनेवाला होनेसे सूर्यको ‘धाता’ कहा जाता है।

२६. ...चक्षुष आदित्यः... ॥ (-ऐ० उ० १ । १ । ४)

२७. तद् यत् तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयमसुभिन् । स यदोळमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥ (-वृ० उ० ५ । ५ । २)

लीन करनेकी शक्ति) के आश्रयभूत हैं । अतः उनसे असत्से सत्, अन्धकारसे प्रकाश और मृत्युसे अमृतकी ओर ले जानेकी प्रार्थना है^{३८} ।

बृहदारण्यकमे विश्व-व्यापी ब्रह्मके दो रूप बताये गये हैं; वे हैं सूर्त् और असूर्त् । ब्रह्मका एक सूर्त् रूप ब्रह्माण्डमे आदित्यमण्डल है और पिण्डमें चक्षु है । असूर्त् रूप वह ज्योतिर्मय रस है, जो ब्रह्माण्डमे आदित्य-मण्डलस्थ 'पुरुष'के रूपमे और पिण्डके अन्तर्गत चक्षुमे विराजमान है । इस प्रकार आदित्य और चक्षुका एकीकरण है, तादात्म्य है^{३९} ।

ब्रह्माण्ड और पिण्डकी एकता है । अतः अन्न, आप् और तेजके जिस त्रिवृत्से ब्रह्माण्डमें अग्नि, सोम और सूर्यका उद्भव हुआ है, उसीसे पिण्डमें मन, वाक् और प्राणका निर्माण हुआ है^{४०} । तात्पर्य यह कि (वाक्, मन, प्राण और चक्षु आदि) पिण्डकी शक्तियों ब्रह्माण्डकी शक्तियोंका ही रूपान्तर हैं । ऐतरेय उपनिषद्^{४१} मे इसे एक रूपकके द्वारा स्पष्ट किया गया है । उसमे एक अन्यापदेशात्मक कथा है कि देवताओंने अपने लिये आयतन माँगा, तब परमेश्वरने मनुष्यको उनका आयतन बनाया । देवता उसके अङ्गोंमें प्रवेश करके विभिन्न इन्द्रिय-शक्तियोंके रूपमें रहने लगे । आदित्य-देवताने अङ्ग-अङ्गमें प्रवेश किया और वे चक्षु-शक्ति बनकर रहने लगे^{४२} ।

२८—चक्षुप उप० २९—वृ० उ० २ । ३ । १—५

३१—ऐ० उ० १ । १ ३२—ऐ० उ० १ । २ ३३—क० उ० २ । २।९

३४—रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव ॥ क० उ० २ । २।९

रूपं रूपं मघवा वोभवीति ॥ इन्द्रो मायाभिः पुरुषं ईयते ।

३५—इन्द्रो रूपाणि कनिकदचरत् ॥ तै० सं०

३६—“स आदित्यः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः” प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये होव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्य ॥ (-वृ० उ० ३ । ९ । २०)

३७—प्राणः प्रजानामुदयत्येप सूर्यः ॥ (-प्रश्न० उ० १ । ८)

३८—इन्द्रस्त्वं प्राण तैजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥

(-प्रश्न० उ० २ । ९)

इस प्रकार सूर्य सब लोकोंके चक्षु है^{३३}—‘सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः ।’

रूप-विद्यायक सूर्य—रूप मुख्यतः दो हैं—शुक्ल और कृष्ण । आदित्यका वर्ण कृष्ण है और उनकी ज्योति हिरण्मयी है जो शुक्लकी समर्पितिनी है । इस प्रकार सूर्य सब रूपोंके निर्माणमें सक्षम है^{३४} । आदित्यमण्डलस्थ इन्द्र-प्राण समस्त प्राणोंका निर्माण करता हुआ विचरण करता है^{३५} । इसीलिये श्रुति कहती है कि आदित्य चक्षुमें प्रतिष्ठित हैं और चक्षु-रूपमें प्रतिष्ठित है । आँखोंसे ही रूपोंको देखता है तो रूप किसमें प्रतिष्ठित है ? रूप हृदयमें प्रतिष्ठित है । हृदयसे ही रूपको जानता है । अतः हृदयमें ही रूप प्रतिष्ठित है । आशय यह है कि हृदयमान रूपोंको सूर्य बनाते हैं किंतु इन रूपोंका अनुभवकर्ता हृदय है^{३६} । हृदय भगवान्‌का निवास है । उसी शक्तिसे रूपका वोध होता है । तात्पर्य यह भी है कि आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म अनुभूतिका विषय है ।

सृष्टि-कर्ता सूर्य—वेदो और उनके शीर्प उपनिषदोंका कथन है कि सूर्यदेव चराचरके आत्मा हैं—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ।’ ये सूर्य जो उद्दित होते हैं, प्रजाओंके प्राण हैं^{३७} । प्रश्नोपनिषद्‌के प्रथम प्रश्नके उत्तरमे सूर्यकी प्राणरूपता स्पष्ट की गयी है । प्राण और प्रकाशापति सूर्यमें तादात्म्य है ।^{३८}

३०—छां० उ० अध्याय ६, खण्ड २ से ६

सूर्य अग्निमय हैं और जगत् अग्नि तथा सोम-तत्त्वके योगसे बना है—‘अग्नीयोमात्मकं जगत्’। आशय यह कि सृष्टि व्यष्टि या मिथुन-प्रक्रियासे होती है। इसे स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है कि तेजोवृत्ति द्विविध है—सूर्यात्मक और अनलात्मक। इसी प्रकार रस-शक्ति भी द्विविध है—सोमात्मक और अनलात्मक। तेज विद्युदादिमय है और रस मधुरादिमय। तेज और रसके विभेदोंसे ही चराचरका प्रवर्तन हुआ है^{३१}। अग्नि ऊर्ध्वग है और सोम निम्नग। ये क्रमशः शिव और शक्तिके रूप हैं। इन दोनोंसे सब व्याप्त है। तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावलीके तृतीय अनुवाकमे कहा है—‘अग्नि पूर्वरूप है और आदित्य उत्तररूप।’ हाँ, तो इनके द्वारा होनेवाला सृष्टि-विस्तार आगे बताया गया है। सप्तम अनुवाकमे आधिभौतिक और आध्यात्मिक पदार्थोंकी रचना स्पष्ट की गयी है। मुण्डक-उपनिषद् मे सृष्टिक्रम इस प्रकार बताया है—परमेश्वरसे अग्निका उद्भव हुआ, अग्निकी समिधा आदित्य है। इनसे सोम हुआ। सोमसे पर्जन्य, पर्जन्यसे नाना प्रकारकी ओषधियों और ओपविधियोंसे शक्ति पाकर जीव—संताने हुई (—मु० उ० २। १। ५) तथा नारायण-उपनिषद् (३। ७९) आदि अन्य श्रुतियोंमे भी सूर्यतापसे पर्जन्य और उससे आगेकी उद्भूतियाँ बतायी गयी हैं।

प्रश्नोपनिषद् मे आदित्य (अग्नि) की ‘प्राण’ और सोमकी ‘रथि’ संज्ञाएँ बतायी गयी है। प्रजापतिने इन दोनोंको उत्पन्न करके इनसे सृष्टिका विस्तार किया। मूर्त्ति (पृथिवी, जल और तेज) तथा अमूर्त्ति (वायु एवं आकाश) ये सब रथि हैं (—प्र० उ० १। ४) अतः मूर्त्तमात्र अर्थात् देखने और जाननेमे आनेवाली सभी वस्तुएँ रथि हैं। सूर्य जीवनी-शक्ति और चेतना-

शक्तिके घनीभूत रूप हैं। चन्द्रमामें स्थूल तत्त्वों (मांस, मेद और अस्थि आदि) को पुष्ट करनेवाली भूत-तन्मात्राओंकी अधिकता है। समस्त प्राणियोंके शरीरमें रवि एवं शशीकी ये शक्तियाँ विवरान हैं।

सावित्री-उपनिषद् मे प्रथम प्रश्न है—‘सविता क्या है ? और सावित्री क्या है ?’ इसके उत्तरमे कहा है—‘अग्नि और पृथिवी, वरुण और जल, वायु और आकाश, यज्ञ और छन्द, मेघ एवं विद्युत, चन्द्र तथा नक्षत्र, मन एवं वाणी तथा पुरुष और स्त्री—ये सविता और सावित्रीके विविध जोडे हैं। इन जोडोंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है।’ इसीके क्रममे (सा० उ० १। ९ मे) यह भी कहा गया है कि आदित्य सविता है और द्युलोक सावित्री है। जहाँ आदित्य हैं, वहाँ द्युलोक है; जहाँ द्युलोक है, वहाँ आदित्य है। ये दोनों योनि (विश्वके उत्पादक) हैं। ये दोनों एक जोड़ा है।

बृहदारण्यक-उपनिषद् (१। २। १-३)मे शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन है। इनमे अर्क-सृष्टि शुद्ध है। अर्कका तेज वायु और प्राण-तत्त्वोंमें विभक्त हुआ है। यह शाश्वत सृष्टि है। आदित्यसे संवत्सर हुआ। संवत्सर और वाक्से व्युष्टि या मिथुन-प्रक्रियाद्वारा जो सृष्टि हुई वह नश्वर है, अतः अशुद्ध है।

वेदोंका सृष्टि-विज्ञान उपनिषदोंमे स्पष्ट किया गया है। उसका विवेचन करनेसे इस लेखका विस्तार हो जायगा, जो यहाँ अभी अभीष्ट नहीं है।

सूर्य-नक्षत्र—सावित्रीयोपनिषद् मे गायत्रीमन्त्रके ‘भर्गः’ शब्दकी व्याख्यामे कहा गया है कि सावित्रीका दूसरा पाद है—‘भुवः। भर्गो देवस्य धीमहि।’ अन्तरिक्षलोकमे सविता

३९—द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका ॥

वैद्युदादिमय तेजो मधुरादिमयो रसः ॥ तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम् ॥

(—बृहजावालोपनिषद् २। २-३)

देवताके तेजका हम ध्यान करते हैं। अग्नि भर्ग है, चन्द्रमा भर्ग है। सूर्योपनिषद् में भगवान् सूर्यनारायणके तेजकी वर्णना है। सूर्य-गायत्री यों है—‘आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तज्जः सूर्यः प्रचोदयात्।’ यहाँ ‘सहस्रकिरण’ शब्द सूर्यकी परम तेजस्विताका वोधक है। फिर स्पष्ट कहा है कि सूर्यसे ज्योति उत्पन्न होती है—‘आदित्याज्ज्योतिर्ज्ययते।’ वृहदारण्यकमें भी है कि आदित्य-ज्योति ही वह पुरुष है और आदित्य ही सबको ज्योति देते तथा कर्ममें प्रवृत्त करते हैं। सुण्डकोपनिषद् (३।१।४-१०) के अनुसार भी ये सूर्य ही ज्योतिके मूल और निधान हैं।

इस ज्योतिःपिण्डसूर्यको प्रकाशित करनेवाले परमात्मा है। सूर्य उन्हें प्रकाशित नहीं करते; यहाँतक कि परमात्माके लोकतक सूर्य और उनके प्रकाशकी गति ही नहीं है। उन परमेश्वरके प्रकाशसे ही सब प्रकाशित हैं।^{१३} ब्रह्म ज्योतिषोकी भी ज्योति है,^{१४} जो सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-रहित लोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं।^{१५}

सूर्यका नाम हिरण्यगर्भ है। सूर्यके चारों ओर परिविस्तृत प्रकाश-पुञ्ज हिरण्यमय होनेसे ‘हिरण्य’

कहलाता है। उस हिरण्यके गर्भमें अर्थात् मध्यमें सूर्य स्थित हैं। अतः सूर्य हिरण्यगर्भ हैं। हिरण्यगर्भको सूर्य-प्राण, इन्द्र और विष्णु भी कहते हैं। ईश्वरके हृदयमें ब्रह्म, विष्णु और इन्द्र—ये तीन ब्रह्म-तत्त्व नित्य विद्यमान रहते हैं। तीनों अक्षरोंमें अविनाभाव-सम्बन्ध^{*} है अर्थात् एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। अतः तीनों एक ही हैं और इन तीनोंसे प्रत्येकका और तीनोंके समष्टि-स्वरूप ईश्वरका वोध हो जाता है।

ये सूर्य कल्प, युग, संवत्सर, मास, पक्ष, दिवस, रात्रि, घटी, पल और क्षण—सबके निर्माता हैं।^{१६} दो पक्षोंके तीस दिन-रात्रि सूर्यके तीस अङ्ग या धाम^{१७} कहलाते हैं। संवत्सरके बारह मासोंके बारह आदित्य-देवता हैं, जो सब कुछ ग्रहण करते-कराते चलते हैं। अतः वे आदित्य कहलाते हैं।^{१८} तेरहवें अविमासको भी सूर्य ही बनाते हैं।^{१९} प्रतिवर्ष पृथ्वी जो सूर्यकी परिक्रमा करती है, उस अवधिको द्वादश मासोंमें विभाजित करनेपर भी कुछ दिन और घंटे बच रहते हैं। तीन वर्षोंके बाद वह एक पृथक् मास बन जाता है। उसे अविमास कहते हैं।

४०. यज्ञवत्क्य किं ज्योतिर्य पुरुष इति। आदित्यज्योतिः सम्भादिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विष्वयेतीत्येवमेवैतद् यज्ञवत्क्य ॥

(—वृ० उ० ४।३।२)

४१. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतास्कं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिद् विभाति ॥

(कठ० २।२।१५; सुण्डक० २।२।१०; श्वेता० ६।१४)

यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति^{२०} तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः ॥

(वृहज्ञावाल उ० ८।६)

४२. हिरण्यमे परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कल्म्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तत्त्वादात्मविदो विदुः ॥

[^{*}—व्याप्तिनिष्ठ-व्यापकनिस्तपित्तर्थमस्मवन्धः ।] (मुण्डक उ० २।२।९)

सर्वव्यापि निरालम्बो ह्यग्राहोऽथ जयो ध्रुवः। एष ब्रह्मयो ज्योतिर्ब्रह्मग्रन्थेन शब्दितः ॥

(हरिविंशत्युराण ३।१६।१४)

४३. श्वेत० उ० ६।१४ ४४. कालचकप्रगेतारं श्रीसूर्यनारायणम् ॥ (सू० उ०) ४५. शृग्वेद १०।१८९।३

४६. कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदृ० सर्वमाददाना यन्ति ते वदिदृ० सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ (वृ० उ० ३।९।५) संवत्सरोऽसावादित्यः ॥ (नारायण उ० ३।७९)

४७. अहोग्नैर्निर्मितं विश्वदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ॥ (अर्थव० १३।३।८)

सूर्योपासना—सूर्य सर्गद्वार और मुक्ति-पथ हैं^{१२}। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है कि 'खः' व्याघ्रतिकी प्रतिष्ठा आदित्यमें है और 'महः' की ब्रह्ममें है। इनके द्वारा स्वाराज्यकी प्राप्ति होती है^{१३}। सूर्यको 'गुरु' भी कहा गया है। सूर्यदेवसे श्रीमारुतिने शिक्षा ग्रहण की थी। आगम-ग्रन्थोंमें भी सूर्यका गुरुरूप प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य अध्यात्मविद्यायोंके प्रदाता और प्रचारक हैं। गायत्री मन्त्रमें सूर्यदेवसे बुद्धि माँगी गयी है^{१४}। सूर्यके 'पूपा' स्वप्नसे भक्तगण अपने कल्याणकी प्रार्थना करते हैं^{१५}। इतेताथ्वतर उपनिषद् में भी सविताको बुद्धिकी योजना करनेवाला कहा गया है^{१६}।

उपनिषदोंमें सूर्यकी उपासना विविध रूपोंमें बतायी गयी है। सूर्योपासना-विषयक कुछ विद्याओंका भी निरूपण उपनिषदोंमें हुआ है। ये विद्याएँ हैं—ब्रह्म-विज्ञान^{१७} दहर विद्या, "मधु विद्या"^{१८}, उपकोसल विद्या^{१९}, मन्थ-विद्याएँ^{२०} और पञ्चाग्निविद्या^{२१}। सूर्यरूप ओकारकी

उपासना^{२२}, आदित्य-दृष्टिसे मासोपासना^{२३}, त्रिकाल-सन्ध्योपासना^{२४}, सूर्योपस्थान^{२५} और महावाक्य-विविसे सूर्य अद्वैत ब्रह्मकी भावना और उपासना^{२६}—इन उपासनाओंसे समस्त इष्ट-प्राप्ति होती है और अन्तमें मुक्ति मिल जाती है।

सात्त्विक विद्याओंमें प्रवेशके लिये बुद्धिको शिक्षित करना और स्मरणशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है। बुद्धि सूर्यका ही एक अंश है। अतः उसका विकास सूर्यके उपस्थान (आराधन) से ही हो सकता है। पलाशके वृक्षमें स्मरण-शक्तिवर्धनका गुण है; क्योंकि वह ब्रह्म-स्वरूप^{२७} है। अतः ब्रह्मचारीके लिये पलाशका दण्डधारण करने और पलाशकी समिधाओंसे यज्ञ करनेका विधान किया गया है।

सूर्य सत्य-रूप है। आदित्यमण्डलस्थ पुरुष और दक्षिणेक्षन् पुरुष परस्पर रश्मियों और प्राणोंसे प्रनिष्ठित हैं—यह कहा जा चुका है। जब वह उक्तमणकी इच्छा करता है, तो उसमें ये रश्मियाँ प्रत्यागमन नहीं

४८. भूरित्यग्नौ प्रतिष्ठिति । भुव इति वायौ ॥ १ ॥ सुवरित्यादित्ये ॥ २ ॥ (तै० उ० १ । ६ । १-२)
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्यवात्मा ॥ (मुण्डक उ० १ । २ । ११)

४९. मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् ॥ (तै० उ० १ । ६ । २) ५०. वियो यो नः प्रचोदयात् ।

५१. स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूपा विश्ववेदाः ॥ (श्रुतियोक्ता शान्ति-पाठ) ५२. श्वे० उ० २ । १-४ ।

५३. छा० उ०, प्रपाठक ३, खण्ड ११से २१, विशेषतः २१ वृ० उ० अध्याय ५, ब्राह्मण ४-५ ।

५४. छा० उ०, प्र० ८ खं० १ । ५५. छा० उ०, प्र० ३, खं० १४१२; वृ० उ० अध्याय २, ब्राह्मण ५ ।

५६. वृ० उ०, अ० ६, ब्रा० ३ । ५७. छा० उ०, प्र० ४, खं० १० । १५ । ५८. वृ० उ०, अ० ६, ब्रा० २ ।

५९. छा० उ०, प्र० १, खं० ५ । ६०. छा० उ०, प्र० २, ख० ९ । ६१. कौपीतकि ब्राह्मण उप० २ । ५;

वृ० उ०, अ० ५, ब्रा० १४ । ६२. छा० उ० ३, ख० ८ ।

एत्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमान वहन्ति । प्रिया वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ (मुण्डक उ० १ । २ । ६)

६३. सोऽहमर्कः परं ज्योतिर्कर्ज्योतिरह दिवः ॥ (महावाण्य उ०)

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (ईशावास्य० १६)

तन्तुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तदात्मविदो विदुः ॥ (मुण्डक उ० २ । २ । ९)

६४. ब्रह्म वै पलाशः ॥ (शा० ब्रा० ५ । ३ । ५ । १५)

करतीं। आशय यह कि सूर्य-पथसे उल्कमण करनेवाले व्यक्तिका संसारमें पुनरगमन नहीं होता ॥६५॥ पूरा (सूर्य) ही जगत्में सत्यपर पड़े आवरणको हटाकर सत्य-धर्मकी दृष्टि प्रदान करते हैं। सूर्यका यह तेज कल्याणतम है ॥६६॥ यह ब्रह्म है, आत्मा है, आदित्य है। अन्य देवता इसके अङ्ग हैं। आदित्यसे सारे लोक महिमान्वित हैं, ब्रह्मसे सारे वेद ॥६७॥

नारायण श्रुतिका वचन है कि आदित्यमण्डलका जो ताप है, वह ऋचाओंका है। अतः वह ऋचाओंका लोक है। आदित्यमण्डलकी अर्चि सामोंकी है, अतः वह सामोंका लोक है, इन अर्चियोंमें जो पुरुष है, वह यजुष् है

और वह यजुर्गंगका लोक है। इस प्रकार आदित्य-मण्डलमें जो हिरण्यमय पुरुष है, वह यह त्रयी विद्या ही तप रही है। आदित्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, मन, मन्त्र, मनु, मृत्यु, सत्य, मित्र, वायु, आकाश, प्राण और लोकपाल आदि हैं। आदित्यके अन्तर्गत भूताधिपति सत्यम् ब्रह्मकी उपासनासे सायुज्य और सार्थि मुक्ति मिलती है ॥६८॥

उपर्युक्त विद्याओं और उपासनाओंका वर्णन पृथक् लेखकी अपेक्षा रखता है। अतः अब हम यहीं लेखनीको विश्राम देते हैं। उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित हमारे सूर्यदेव विद्यका मङ्गल करें।

सूर्यमण्डलसे ऊपर जानेवाले

द्वाविमौ	पुरुषव्याघ्र	सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राङ्	योगयुक्तश्च	रणे चाभिसुखो हतः ॥

‘हे पुरुषव्याघ्र ! सूर्यमण्डलको पारकर ब्रह्मलोकको जानेवाले केवल दो ही पुरुष हैं—एक तो योगयुक्त संन्यासी और दूसरा युद्धमें छड़कर समुख मर जानेवाला वीर ।’

(—उद्गोग० ३२ । ६५)

६९—यद्यत्त सत्यमसौ स आदित्यो य एप एतसिन् मण्डले पुरुषो यथायं दक्षिणेऽश्वन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यसिन् प्रतिष्ठितौ रथमिभिरेपोऽसिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुम्पिन् । स यदोक्तमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रथमयः प्रत्यायन्ति ॥ (—वृ० उ० ५ । ५ । २)

७०—हिरण्यमये न पावेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तर्वं पूर्पव्रपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । पूरपन्तेकर्ये यम सूर्य प्राजापत्यं व्यूह रथमीन् समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ॥(—ईश्वावास्य० १५—१६)

७१—मह इति । तद् ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्वन्या देवताः ॥००॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥००॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ॥ (—तै० उ० १ । ५ । १—३)

७२—आदित्यो वा एप एतमण्डलं तपति तव ता ऋचस्तद्वां मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एप एतसिन् मण्डलेऽर्चिर्देव्यते तानि सामानि स सामानो लोकोऽथ य एप एतसिन् मण्डलेऽर्चिर्विपुरुषस्तानि वज्रूपि स वज्रुपां मण्डलं स वज्रुपां लोकः । सैपा अव्येव विद्या तपति य एयोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः ॥

आदित्यो वै तेज ओजो वर्णं वशशक्षुः श्रोत्रे आत्मा मनो मन्त्रमनुमूर्त्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः प्राणो लोकपालः कः किं कं तत्सत्यमन्नमस्तुतो जीवो विश्वः कतमः सत्यंमु व्रह्मैतद् मृत एष पुरुष एप भूतानामधिपतिर्व्रहणः सायुज्यऽसलोकतामानोल्येतासामेव देवतानां सायुज्यऽसार्थिताऽसमानलोकतामानोति य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

(—नारायण-उप० ३ । १४-१५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें असंख्य सूर्योंके अस्तित्वका वर्णन

(लेखक—श्रीसुव्रायगणेशजी भट्ट)

आकाशमें हमें एक ही सूर्य दीख पड़ते हैं; किंतु वास्तवमें सूर्य असंख्य—अनन्त हैं। वे एक-दूसरेके समीप नहीं हैं। दूर—बहुत दूर है। इस कारण हम केवल ऊँचोसे उनको देख नहीं पाते। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक लोगोने दूरदर्शक यन्त्रोकी सहायतासे उन असंख्य सूर्योंको देख लिया है और अब भी देख रहे हैं। परंतु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोने वेददर्शन-कालमें दूरदर्शक यन्त्रोके बिना केवल अपने तपः-तेजके प्रभावसे अनेकानेक असंख्य सूर्योंके दर्शन प्राप्त कर लिये थे। इसका विवरण कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक- (१ । २ । ७) में विवरितरूपसे विद्यमान है—

अपश्यमहमेतान् सप्तसूर्यनिनि । पञ्चकर्णो
वात्सायनः । सप्तकर्णश्च शुश्चिः । आनुथाविकरावनौ
कश्यप इति । उभौ वेदयिते । नहि शेकुमिव
महामेषं गन्तुम् ॥

वस्तु ऋषिका पुत्र पञ्चकर्ण और प्लक्ष ऋषिका पुत्र सप्तकर्ण—उन दोनों ऋषियोंकी उक्ति है कि हमने सप्त सूर्योंको प्रथम देख लिया है; किंतु आठवें जो कश्यप नामक सूर्य है, उन्हे हम देख नहीं सके हैं। इससे जान पड़ता है कि कश्यप शूर्य मेरुमण्डलमें ही परिभ्रमण करते रहते हैं। हम वहाँतक जा न सके। अपश्यमहमेतन्सूर्यमण्डलं परिचर्तमानम् । गार्घ्यः
प्राणत्रानः । गच्छन्तमहामेषम् । एवं चाजहतम् ।

गर्गके पुत्र प्राणत्रात नामक महर्षिका कथन है—
‘हे पञ्चकर्ण और सप्तकर्ण ! कश्यप नामक अष्टम सूर्योंको
मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। ये सूर्य मेरुमण्डलमें ही
भ्रमण करते हैं। वहाँ जाकर उन्हे कोई भी देख सकता
है। तुम वहाँ योग-मार्गसे जाकर देख लो।’

ये आठवें सूर्य कश्यप भूत, भविष्य और वर्तमान घटनाओंको अतिसूक्ष्मरूपसे जानते हैं। यह इनका

वैशिष्ट्य है। इसलिये कश्यप सूर्यको ‘पश्यक’ नामसे भी पुकारते हैं। ‘कश्यपः पश्यको भवति । तत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।’ यह श्रुति ही इसका प्रमाण है।

पञ्चकर्णादि ऋषियोंसे देखे हुए सूर्यङ्क नामक आरण्यकमें इस प्रकार वर्णित है—

आरोगो भाजः पटरः पतङ्गः । स्वर्णरे ज्योतिषी-
मान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवमापतन्ति । ऊर्जे
दुहाना अनपस्कुरन्त इति । कश्यपोऽप्युमः ॥

आरोग, भाज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान्, विभास और कश्यप—ये आठ सूर्योंके नाम हैं। हम नियप्रति ऊँचोसे जिन सूर्योंको देखते हैं, उनका नाम ‘आरोग’ है और शेष सभी सूर्य अतिशय दूर हैं। अथवा आङ्गमें हैं, अतएव हम इन ऊँचोसे उन्हे नहीं देख सकते।

इस सूर्याष्टकमें कश्यप प्रवान है। आरोगप्रभृति अन्य सूर्य कश्यपसे अपनी प्रकाशक-शक्ति भी प्राप्त करते हैं। आरोग सूर्यके परिभ्रमणको हम जानते हैं। अन्य भाज, पटर और पतङ्ग—ये तीन सूर्य ऊर्ध्वमुख होकर मेरुमार्गके नीचे परिभ्रमण करते हैं और वहाँके प्राणि-समूहोंको प्रकाश वितरण करते हैं। स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभास—ये तीन सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर मेरुमार्गके ऊपर परिभ्रमण करते और वहाँके चराचर वस्तुओंको प्रकाश देते हैं।

आठ दिशाओंमें, हमारी दृष्टिसे पूर्व दिक् सूर्य हैं। इसी प्रकार आगेय आदि दिशाएँ भी एक-एक सूर्यसे युक्त हैं। सूर्यसे ही वसन्त आदि ऋतुओंका निर्माण होता है। बिना सूर्यके ऋतुओंका निर्माण और परिवर्तन असम्भव है। आगेय आदि सभी दिशाओंमें वसन्त आदि समस्त

ऋतुओंका क्रमशः आविर्भाव और परिवर्तन होता रहता है। अतएव सभी दिशाओंमें भिन्न-भिन्न सूर्यका अस्तित्व निश्चित है।

‘एतयैवाऽऽवृताऽऽसहस्रसूर्यतायाइति वैशम्पायनः।’

वैशम्पायनाचार्यजी कहते हैं कि ‘जहाँ-जहाँ व्रसन्तादि ऋतुओंका और तत्त्वमोंका आविर्भाव है, वहाँ-वहाँ तत्सम्पादक सूर्यका अस्तित्व रहता ही है। इस न्यायके अनुसार सहस्र—असंख्य अनन्त सूर्योंका अस्तित्व आवश्यक है। पञ्चकर्ण, सप्तकर्ण और प्राणत्रात ऋषियोंको सात एवं आठ सूर्योंको देखकर तद्विषयक ज्ञान प्राप्त हो गया—इसमें आश्र्वयकी कोई वात नहीं है।’

‘नानालिङ्गत्वाद्वृत्तानां नानासूर्यत्वम्।’

यदि एक ही सूर्य रहते तो व्रसन्तादि ऋतुओंसे होनेवाले औषध्य, शैत्य एव साम्यादि विभिन्न सद्या, असद्य सुख-दुःखोंका अनुभव न होता। तब पूरे वर्षभर एक ही ऋतु और उसके प्रभावका अनुभव प्राप्त होता रहता। कारण-भेदके बिना कार्य-भेदका अनुभव सम्भव नहीं है। ऋतु-धर्म-वैलक्षण्यसे ही उसके कारणरूप असंख्य सूर्योंका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह हमारा ही अमिमत नहीं, अपितु भगवती श्रुतिका भी मत है—

यद्याव इन्द्र ते शतशानं भूमीः। उत स्युः।
न त्वा वज्रिन्सहस्रसूर्याः। अनु न जातमप्त
रोदसी-इति। (१।७।६)

‘हे इन्द्र ! यद्यपि तुमसे शत-शत सर्गलोकोंका निर्माण सम्भव है, और सैकड़ों भूलोकोंका सुजन सम्भव है, तथापि आकाशमें स्थित सहस्रों सूर्योंके

प्रकाशको पूर्णतया तुम और तुमसे निर्मित सर्गादि लोक सब मिलकर भी नहीं ले सकते।’ इस मन्त्रमें सहस्र सूर्योंका स्पष्ट उल्लेख है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च ॥
(यजु० वे० ७ । ४२)

भगवान् सूर्य अत्यन्त दयामय हैं। निःस्वार्थ बृद्धिसे प्रजारक्षण करना ही उनका ध्येय है। रश्मि ही उनकी सेना है, जो सर्वदा अन्धकाररूप वृत्रासुरका नाश करती रहती है। सूर्य केवल हमारे ही नहीं, प्राणिमात्रके—यहाँतक कि वृक्ष, लता, गुल्म और वनस्पति आदिके भी मित्र हैं। सूर्य जब उदय होते हैं, तब चराचर प्राणियोंका मन प्रफुल्लित हो उठता है। उनके प्रकाशसे आरोग्यकी वृद्धि होती है। समुदित सूर्य अपनी रश्मिरूपी सेनाको विभक्त करके त्रैलोक्यमें प्रत्येक स्थानपर भेजते हैं। इस रश्मि-सेनाके सचरणमात्रसे चराचर समस्त प्राणियोंका सरक्षण होता है। इन रश्मियोंके सान्निध्यसे सत्यप्रियता, निर्भयता, नीरोगता, आरोग्य, उत्साह, क्षीरादिकी वृद्धि और धन-धन्यवानी समृद्धि प्राप्त होती है। भगवान् सूर्य स्थावर और जङ्गम जगत्के आत्मा है। समस्त मानवकोटिके प्राणधारियोंके प्रेरक और कल्याणके प्रदाना हैं। हमें उन महान् ज्योतिःखरूप भगवान् सूर्यनारायणका सदा ध्यान करना चाहिये।

स जयति

स जयत्युद्येनैषां चतस्रूप्यपि दिक्षु निवसतां वृणाम्।

मेरोः प्रतिदिन मन्यामाशां विद्धाति यः प्राचीम्॥

(— कात्या० सुल्व सू० भा० मङ्गला० मे तृ० कर्कचार्य)

जो मेरु पर्वतके चारों दिशाओंमें रहनेवाले मनुष्योंके लिये अन्यान्य दिशाओंमें प्राची (पूर्व) दिशा निर्देशन करते हैं, वे सूर्यदेव विजय प्राप्त करे—सर्वोक्तुष्ठ रूपमें रहे।

तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार आदित्यका जन्म

(लेखक—श्रीसुव्रह्णाण्यजी शर्मा, गोकर्ण)

सृष्टिके पहले सर्वत्र जल-ही-जल भरा था । देव-मानव, पशु-पक्षी तथा तरु-लता कहीं कुछ भी न था । इस पानीके साम्राज्यमे सर्वप्रथम केवल जगदीश्वर, प्रजापति ब्रह्माका आविर्भाव हुआ । तभी उन्हे एक कमलपत्र दिखलायी पड़ा । तब वे उस कमलपत्रपर जा बैठे । कुछ काल व्यतीत होनेके बाद उनके मनमे जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई । अतः सृष्टि करनेके लिये प्रजापति तपस्या करने लगे । तपस्याके पश्चात् अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे किस प्रकार 'प्रजा'का सृजन करे ? प्रश्न उठते ही तुरत प्रजापतिका शरीर कौपने लगा । उसके कम्पनसे अरुण, केतु एव वातरशन—इन तीन प्रकारके ऋषियोंका आविर्भाव हुआ । नखके कम्पनसे वैखानस, ऋषियोंका जन्म हुआ । केशके कम्पनसे वालखिल्योंका निर्माण हुआ । उसी समय प्रजापतिके शरीरके सार-सर्वस्वसे एक कूर्मका आकार ख्यय बन गया । वह कूर्म पानीमे संचरण करने लगा । आगे-गीछे सचरण करनेवाले उस कूर्मको देख-कर प्रजापति ब्रह्मदेवको आश्र्य हुआ । वे सोचने लगे कि यह कहाँसे आया ? उन्होने उस कूर्मसे पूछा—‘तुम मेरे लक् (त्वचा) और मांससे पैदा हुए हो ?’ तब

कूर्मने उत्तर दिया—‘तुम्हारे मांस आदिसे मेरा जन्म नहीं हुआ है । मेरा जन्म तो तुमसे भी पहलेका है । मैं तो सर्वगत, नित्य चैतन्य, सनातन—शाश्वतस्वरूप हूँ और पहलेसे ही मैं यहाँ सर्वत्र और तुम्हारे हृदयमे भी विद्यमान हूँ । कुछ विचारकर देखो ।’ इस प्रकार कहकर कूर्मशरीरधारी नित्य चैतन्यरूप परमात्माने सहस्रशीर्ष, सहस्रबाहु और सहस्रों पादोसे युक्त अपने विश्वरूपको प्रकट करके प्रजापतिको दर्शन दिया । तब प्रजापतिने साधाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना की—‘हे भगवन् ! आप मुझसे पहले ही विद्यमान हैं । इसमे कोई सन्देह नहीं है । हे पुराणपुरुष ! आप ही इस जगत्का सृजन कीजिये । यह कार्य मुझसे पूर्ण न हो सकेगा ।’ तब, ‘तथास्तु’ कहकर कूर्मरूपी भगवान्ने अपनी अङ्गलिमे जल लेकर और ‘ओवाहयेच’ इस मन्त्रसे पूर्वदिशामे जलका उपधान किया । उसी उपधान-क्रमसे—भगवान् ‘आदित्य’का जन्म हुआ । (तै० आ० ? । २३ । २-५) । उसी समय विश्व प्रकाशमय हो गया । हे प्रवाशपूर्ण आदित्य ! हमारे अन्धकारपूर्ण हृदयोमे भी पूर्ण प्रकाशके उदय होनेका अनुग्रह प्रदान करे ।

प्रकाशमान् सूर्यको नमस्कार

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय व्राह्मणे ॥

(यजु० ३१ । २०)

जो सूर्य पृथिव्यादि लोकोंके लिये तपते हैं, जो सब देवोंमे पुरोहित है—उनके प्रवर्तकके समान प्रकाशक हैं, जो उन सभी देवोंसे पहले उत्पन्न हुए, ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरके समान प्रकाशमान् उन सूर्यनारायणको नमस्कार है ।



ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्य-तत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीधरचार्यजी महाराज)

अथवेदके कौशिक गृह्यसूत्रके 'मन्त्रव्राह्मणयोर्वेद-नामधेयम्' सूत्रके आधारसे वेद मन्त्र और ब्राह्मण-भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें मन्त्र मूलवेद है और ब्राह्मण तत्त्ववेद। ब्राह्मण-भागके विधि, आरण्यक और उपनिषद्-भेदसे तीन पर्व हैं और एक पर्व मन्त्र-भाग है। कुल मिलकर वेदके मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—ये चार पर्व हो जाते हैं। वेदके इन चारों पर्वोंमें सूर्य-तत्त्वका विश्लेषण किया गया है; परतु ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें उसका विश्लेषण विशेषरूपसे हुआ है। मन्त्रभागमें वीजरूपसे जिस तत्त्वका उल्लेख है, उसका ही तरलरूपसे ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें विश्लेषण हुआ है। यह मन्त्र-ब्राह्मण वेदवाडमय पुरातन-कालमें विस्तृत था; किंतु आज वह अत्यल्प संख्यामें ही उपलब्ध होता है।

विश्वका मूल—ब्राह्मण-ग्रन्थोंके आधारपर विश्वके मूलमें सम्मिलित दो तत्त्व हैं—अग्नि और सोम। इनसे उत्पन्न विश्वके पदार्थ भी दो रूपोंमें उपलब्ध होते हैं—शुष्क और आर्द्ध। जो शुष्क है, वह आग्नेय और जो आर्द्ध है वह सौम्य। सूर्य शुष्क हैं तो चन्द्रमा सौम्य हैं। जैमिनीय ब्राह्मणके अनुसार अग्नि सोमके सम्पर्कसे अबों-खबों प्रकारोंमें परिणत हो जाती है। इसी प्रकार सोम भी अग्निके सम्पर्कसे अबों-खबों प्रकारोंमें परिणत हो जाता है। अग्नि और सोमके अनन्तानन्त प्रकारोंमें सम्पर्कः ये तीन प्रकार मुख्य हैं—पार्थिव-अग्नि, अन्तरिक्ष-अग्नि और दिव्याग्नि। सोमके भी तीन प्रकार मुख्य है—आप, वायु और सोम। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें तीन अग्नियोंके ये विशेष नाम है—पत्रक, पत्रमान और शुचि।

प्राचीन कवियोंने इन तीन अग्नियोंके तीन विशेष धर्म माने हैं—ताप, ज्वाला और प्रकाश। इनमें ताप

पार्थिव-अग्निका, ज्वाला आन्तरिक्ष अग्निका तथा प्रकाश दिव्याग्निका विशेष धर्म है। मूलरूपमें ये तीनों अग्नियाँ अव्यक्त हैं, अर्थात् स्व-रूपसे उपलब्ध नहीं होतीं। इनका जो रूप हमें उपलब्ध होता है, वह इन तीन अग्नियोंकी समष्टि है। जिसको वैश्वानर कहते हैं, वह तापधर्मा है। ताप पार्थिव-अग्निका धर्म है। उसमें उपलब्ध ज्वाला और प्रकाश क्रमशः आन्तरिक्ष और सूर्य-अग्निका गुण है। ज्वाला आन्तरिक्ष अग्निका असाधारण धर्म है। ताप और प्रकाश आग्नेयक धर्म हैं, जो पार्थिव-अग्नि और दिव्याग्निसे आते हैं। प्रकाश दिव्याग्निका असाधारण धर्म है। ताप और ज्वाला—ये दोनों पार्थिव और आन्तरिक्ष अग्निके धर्म हैं।

सोमके भी अनन्तानन्त रूपोंमेंसे आप, वायु और सोम—ये तीन रूप मुख्य हैं। इनमेंसे आप (जल) सोमका घनरूप है। वायु तरलरूप है। सोम विलरूप है। वेदोंमें अग्नि और सोमके सत्य तथा ऋत—दो-दो रूप माने गये हैं। सहदयरूप सत्य और हृदय-हीनरूप 'ऋत' माना गया है। अग्निका सत्य-रूप सूर्यमण्डल और ऋत-रूप दिक्-अग्नि है, जो सर्वत्र व्याप्त है। सोमका सत्य-रूप चन्द्रमण्डल और ऋत-रूप दिक्-सोम है, जो सर्वत्र व्याप्त है। ऋत-अग्नि और ऋत-सोम—ये दोनों रूप ऋतुओंके प्रत्यक्त हैं।

सूर्यका विश्लेषण—ब्राह्मण-ग्रन्थोंने सूर्यतत्त्वका विश्लेषण श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान—इन चार प्रमाणोंके आधारसे किया है—'एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते।' इन प्रमाणोंके आधारसे उन्होंने (ब्राह्मणग्रन्थोंने) सूर्यकी उत्पत्ति, उनका ताप-प्रकाश,

उसकी सात प्रकारकी सात किरणें, भूमण्डलपर उनका प्रभाव तथा व्यापक प्रभा (प्रकाश) आदि अनेक गिरिधियोका विश्लेषण किया है ।

सूर्यकी उत्पत्ति—सूर्य एक अग्निपिण्ड है अर्थात् पार्थिव, आन्तरिक्ष एव दिव्य (सूर्य)—इन तीनों अग्नियोका समष्टि रूप पिण्ड है । पिण्डकी उत्पत्ति और स्थिति—ये दोनों ही विना सोमके नहीं हो सकतीं । अग्नि स्वभावसे ही विश्वकल्नधर्म है । वह सोमसे सम्बन्धित हुए विना पकड़मे नहीं आती । संसारके पदार्थोंमें घनता उत्पन्न करना सोमका काम है । अतः सूर्यपिण्डकी उत्पत्ति भी इसी सोमहृतिसे होती है और हुई है । ध्रुव, धर्म, धरण एव धर्म-मैदसे सोम चार प्रकारके हैं । इस सोममात्राकी न्यूनता अथवा आधिक्यके कारण अग्नि भी ध्रुव, धर्म, धरण एवं धर्मरूपोंमें परिणत हो जाती है । ये ही अवस्थाएँ निविड़, तरल, विरल एव गुण कहलाती हैं । सूर्य पिण्ड है । पिण्डका निर्माण सोमके विना नहीं हो सकता । ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विज्ञानके आधारसे सोमकी आहुतिसे ही सूर्यका उदय हुआ है, जैसा कि शतपथशृतिका विज्ञान है—‘आहुतेः (सोमाहुतेः) उदैत् (सूर्यः)’ अर्थात् सूर्यपिण्ड अग्नि और सोम—दोनोंकी समष्टि है ।

सूर्यकी स्थिति—सूर्य एक पिण्ड है, जो सदा प्रज्वलित रहता है । अग्निमें जबतक सोमाहुति होती है, तभीतक वह प्रज्वलित रहती है । आहुतिके बद्द होते ही अग्नि उच्छिन्न हो जाती है अर्थात् बुझ जाती है । अतः सदा प्रज्वलित दिखायी पड़नेवाले सूर्य-पिण्डमें भी अवश्य किसीकी आहुति माननी पड़ेगी, अन्यथा किसी भी स्थितिमें पिण्ड स्थिर एव प्रज्वलित नहीं रह सकता । इस प्रकार ब्राह्मणोक्त विज्ञानके आधारसे सूर्यमें निरन्तर ब्रह्मणस्ति सोमकी आहुति होती रहती है, जिससे सूर्यका खरूप बना हुआ है । इस आहुतिके प्रभावसे

ही वह अंरबों वर्षोंसे एक-सा स्थिर बना हुआ है और आगे भी एक-सा स्थिर बना रहेगा ।

सूर्यका प्रकाश—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यप्रकाशके विषयमें गहन चर्चा है । उनका कहना है कि सूर्य एक अग्नि-पिण्ड हैं । अग्निका खरूप काला है । वेद स्वयं सूर्यपिण्डके लिये ‘आकृष्णेन रजसा वर्तमनः’ (यजु०) कह रहा है । उस काले पिण्डसे जो ऋक्, यजुः सोमात्मक प्राण निकलते हैं, वे सर्वथा रूप-रस आदिसे रहित हैं । पृथ्वीके ४८ कोसके ऊपरतक एक भूवायुका स्तर है, जो वेदोंमें ‘एमूषवराह’ नामसे प्रसिद्ध है । वह वायुस्तर सोमात्मक है । यह सोम वाह्य पदार्थ है । जब धाता (सूर्य) सौर-प्राण इस सोममें मिलता है, उस समय प्राणसंयोगसे वह सोम जलने लगता है । उसके जलते ही पृथ्वी-मण्डलमें प्रकाश (प्रभा) हो जाता है, जो हमको दिखायी पड़ता है । ४८ कोसके ऊपर ऐसा भास्वर प्रकाश नहीं है—यह सिद्धान्त समझना चाहिये । उस प्रकाशके पर्देमें ही हम उस काले पिण्डको सफेद देखने लगते हैं ।

विज्ञानान्तर—सूर्य एक अग्निपिण्ड है । अग्निपिण्ड काल होता है—यह भी निश्चित है । इस कृष्ण अग्निमय सूर्य-पिण्डमें ज्योति-प्रकाश सोमकी आहुतिसे उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम—इन दोनोंके परस्पर सम्मिश्रणका फल है । इससे सिद्ध होता है कि केवल अग्निमें भी प्रकाश नहीं है और न केवल सोममें ही प्रकाश है । प्रकाश दोनोंके यज्ञात्मक सम्मिश्रणमें है । सूर्य-किरणोंमें उपलब्ध ताप भी पार्थिव अग्निके सम्मिश्रणका ही फल है । भगवान् सूर्यकी अनन्त रश्मियोंमें सात रश्मियाँ मुख्य हैं । सात रस, सात रूप, सात धातु आदि सभी सात रश्मियोंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं ।

त्रयीमय सूर्य—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यमण्डलको त्रयीमय (वेदत्रयीमय) माना गया है, अर्थात्—ऋक्, यजु एवं साममय माना है । इसका निरूपण शतपथ-श्रुतिनि इस प्रकार कर रही है—‘थदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् । ता-

ऋचः स ऋचां लोकः । अथ यदर्चिर्दीप्यते तन्म-
हावतम् । तानि सामानि स साम्नां लोकः । अथ
य एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निः । तानि यजूंपि,
स यजुपां लोकः । सैपा त्रयेव विद्या तपति—

अर्थात् सूर्यमण्डल त्रयीविद्यामय है; अर्थात्
सूर्यमण्डलमें तीन पर्व हैं—भूतपर्व, प्रकाशपर्व और
प्राणपर्व । इनमेंसे भूतभाग ऋग्वेद है, प्रकाशभाग
सामवेद है एवं प्राणभाग यजुर्वेद है । इस प्रकार त्रयी-
विद्या हीं सूर्यरूपसे तप रही है । ब्राह्मण-ग्रन्थोंके मतमें
न केवल सूर्य ही, अपितु पदार्थमात्र त्रयीमय—वेदमय
है । पदार्थमें उपलब्ध नियमन-भाग ऋग्वेद है, प्रकाश-
भाग सामवेद है और पुरुषभाग यजुर्वेद है; कि वहना,
ऋक्, यजुः, साम—इन तीनोंकी समाप्ति ही पदार्थ है ।

विश्वका जीवन सूर्य—विश्वका जीवन सूर्य है ।
प्राणन, अपानन-क्रिया (श्वास-प्रश्वास) जीवन है ।
इसका मूल सूर्य है; जैसा कि श्रुतिका उद्घोषन है—
‘अर्य गौः पृश्निरक्रमीत्, असद्व्यातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः । … व्यस्पन्महिषो दिवम्
‘प्रातःकाल माता (पृथिवी) की ओर खड़े हुए
तथा पिता (बुधोक) की ओर जाते हुए नाना रूपवाले
इन सूर्यने सारे विश्वपर आकमण किया है ।’

सूर्यकी किरणें समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें
प्राणन, अपानन-क्रियाएँ करती रहती हैं । ऐसे ये
सूर्य उदित होते ही सारे भूमण्डलमें व्याप्त हो जाते हैं ।
प्राणन-अपाननकी क्रिया हीं जीवन है ।

निद्रा और उद्धोध—रात्रिमें प्राणिगण निद्रासे
अभिभूत हो जाते और प्रातःकाल उद्बुद्ध हो जाते हैं,
यह प्रत्यक्ष है । इन दोनोंके कारण भगवान् सूर्य ही हैं ।
इसका कारण शतपथ-ब्राह्मण इस प्रकार वत्तलाता है—
‘अथ यद् अस्तमेनि, तद्गन्नाचेव योनौ गर्भोऽभूत्वा
प्रविशति, तं गर्भं भवन्तमिमाः सर्वाः प्रजा अनुगर्भा
भवन्ति ।’ अर्थात् रात्रिके समय सूर्य पार्थिव अग्निमें

गर्भस्वरूपसे प्रविष्ट हो जाता है । इसमें प्रवल प्रमाण
यही है कि रात्रि होते ही पार्थिव प्राणरूपी पुरीनत्
नाडीमें हमारा आत्मा गर्भरत रूपमें परिणत हो जाता
है । रात्रिके समय पार्थिव अग्निकी योनिमें प्रविष्ट होते
हुए सूर्यके साथ ही उनकी रश्मियोंसे बद्र हमारी आत्मा
इनका धक्का खाकर स्थिरं भी पृथ्वीकी ओर गर्भित हो
जाती है । ब्राह्मण-विज्ञानके अनुसार रात्रिमें भी सूर्यका
अभाव नहीं होता । केवल प्रकाशके प्रवर्तक विवस्वान्
सूर्यका ही अभाव रहता है । दूसरे ग्यारह सूर्य रहते हैं ।
दिनभर सूर्य प्राणोंका हरण किया करते हैं एवं सायंकाल
होते ही सारे प्राणोंको उन पदार्थमें ढोड़ जाते हैं ।
जबतक हमारे प्रातिस्थिक (निजी) आत्मीय प्राणोंपर
किसी अन्य वलिष्ठ प्राणका आक्रमण नहीं होता, तबतक
हम आनन्दसे विचरण करते रहते हैं । परंतु जहाँ किसी
वलिष्ठ प्राणने हमपर आक्रमण किया कि हम अचेत
हो जाते हैं । सायंकाल होते ही विश्वदेव हमपर आक्रमण
करते हैं, अतः हमारी आत्मा अभिभूत हो जाती है और
हम अचेत होकर सो जाते हैं; फिर प्रातःकाल होते ही
सूर्य अपने प्राणोंको, जो रात्रिमें आये थे, खींचने लगते
हैं । अतः हमारा आत्मीय प्राण उद्बुद्ध हो जाता है ।

एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्राह्मणोंके आधारसे वह
सूर्यमण्डल ब्रह्मा, विष्णु और महेश है । उन्नादक
होनेसे वह ब्रह्मा, सवका आश्रय (अविष्टाता) होनेसे
इन्द्र और यज्ञमय होनेसे विष्णु कहलाता है । इसलिये
‘एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः’
कहा जाता है । आज-कल जो महेश्वर नामसे प्रसिद्ध
हैं, वेदभाषामें वे इन्द्र हैं, अर्थात् इन्द्रका पर्याय
महेश्वर है । एक हीं सूर्यनारायण गुण-मेंद्रसे ब्रह्मा, विष्णु
और महेश्वर हैं । अतः एकका उपासक तीनोंका
उपासक है । इस रहस्यसे आजकलके वैद्यव और शैव
दोनों विद्वान् अपरिचित हैं । इसका पुनर्मूल्याङ्कन किया
जाय, यह असुरोध है । ‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ।’
—सूर्यदेव सचराचर जगत्के आत्मरूप हैं ।

वैष्णवागममें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर')

(१)

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरचान् मकरकुण्डलचान् किरीटी
हरी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥
(तन्त्रसार)

निरुक्तमें आदित्यका एक नाम 'भरत' है । अतः भारतका अर्थ हुआ—आदित्यकी ज्योति, इस ज्योतिकी उपासना करनेवाला । देशके सम्बन्धमें अर्थ यह हुआ कि सूर्यकी उपासना करनेवाला देश अर्थात्—भारत । भारतीयोंमें गायत्रीकी उपासना आरम्भसे ही प्रचलित है । गायत्री वेद-माता है । फलितार्थ यह हुआ कि सूर्योपासना प्रामुख वैदिक-विधि है और अन्य देवोंकी उपासनासे पूर्ववर्ती तथा उनकी आधारभूता है । 'तन्त्रसारमें विष्णु, नारायण, नरसिंह, हयग्रीव, गोपाल, श्रीराम, शिव, गणेश, दक्षिणामूर्ति, सूर्य, काम, शक्ति, वरिता, वाला, छिन्नमस्ता, कालिका, तारा और गरुड़की गायत्रियों दी हुई है । 'वृहद्ब्रह्म-संहिता' आदि अन्य तन्त्रों उपनिषदों तथा पुराणोंमें गणेश आदि अन्यान्य अनेक देवताओंकी गायत्रियों मिलती हैं । इससे स्पष्ट है कि भारतमें प्रचलित सभी मत सूर्यको सर्वदेवाधार मानते हैं । 'तन्त्रसार' का निर्देश है कि 'अपने इष्टदेवताको सूर्यमण्डलमें स्थित समझकर सूर्यको अर्ध्य दे और फिर उस देवताकी गायत्री जपे' । ^३ 'नन्दिकेश्वरसंहिता'में तो यहाँतक कह दिया है कि सूर्यको अर्ध्य दियें

विना विष्णु, शङ्कर या देवीकी पूजा करनी ही नहीं चाहिये । आशय यह है कि देवताओंकी शक्तियोंका अवस्थान सूर्यमण्डलमें है ।

सब देवोंके परमदेव नारायण है । नारायणमें सब देवता है और नारायण सूर्यमण्डलके अविवासी है । 'वृहद्ब्रह्मसंहिता'में अनेक बार यह बात कही गयी है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं श्रीमन्नारायणं हरिम् ।
अर्द्धं दत्त्वा तु गायत्र्या ॥
संध्यां कृत्वा हरिं ध्यात्वा सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥
सूर्यमण्डलमध्यस्थं ॥ अच्युतम् ॥
आदित्ये पुरुषो योऽसौ ॥
संध्यां कृत्वा विधानेन सुन्तयो विष्णुदेवताम् ।
सूर्यमण्डलमध्यस्थामध्यं दद्यात् समाहितः ॥

'तन्त्रसार'में भी यही बात कही गयी है । सूर्यका ध्यान भी सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणका ही ध्यान है । वैष्णव-तन्त्रोंकी इस विचारणाके आधार उपनिषदोंमें है^३ । शृन-वचन है कि आदित्यकी 'शुक्लाभा:' को ही 'नीलं परं कृष्णम्' जानना चाहिये ।

सूर्यमण्डलवर्ती देवके त्रयीरूपकी व्याख्या 'लक्ष्मीतन्त्र'के उन्तीसवे अध्यायमें हुई है । व्यापक परब्रह्मकी नारायणी शक्ति परिणामद्वारा प्रणवाकृति हो जाती है । प्रणवके अग्नि और सोम अथवा क्रिया और भूति—ये दो विमाग हैं । विष्णुका पाण्डुष्ण-चिन्मय-आच-ग्रह उन्मेष ही शक्ति है, जो जगत्की रक्षाके लिये दो प्रकारों प्रत्यर्नित होती है—

१. निरुक्त २ । २ । ८ । २. तन्त्रसार, पृष्ठ ६८से ७० । ३. (क) ततः ७० सूर्यमण्डलश्याय अमुकदेवतायै नमः
इत्यनेन तत्तद्ग्रामयत्रा त्रिवार जल निक्षिप्त तत्तद्ग्रामयत्री जपेत् । पृष्ठ ६५ ।

(ख) सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम् । अर्धमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिस्तिवेत् ॥ पृष्ठ ६८

४. नं० स०, तन्त्रसार पृष्ठ ६६में उद्धृत । ५. वृ० ब्र० स० १ । १२ । ५४ । ६. वृ० ब्र० स० ३ । ७ । १८२;

७. वृ० ब्र० स० ३ । ७ । १८३ । ८. वृ० ब्र० स०-३ । ७ । १९१ । ९. वृ० ब्र० स० ३ । १० । १ । १०. यथा—य

एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते । 'वृ० उप० ४ । ११ । १

ऐश्वर्य-समुख होकर और तेजोमुख होकर । ऐश्वर्य-समुखरूप पाढ़गुण्य है । इसे 'भूति-लक्ष्मी' भी कहा जाता है । ऐश्वर्य-भूयिष्ठ इस भूत-शक्तिका तनु सोममय है । 'भूति' जगत्का आप्यायन करती है, इससे उसे 'सोम' कहा जाता है ।

षाढ़गुण्य-विप्रहा परमेश्वरी व्यूहिनी हैं । उनके तीन व्यूह हैं—इच्छामय, ज्ञानमय और क्रियामय । इनमें क्रियामय व्यूह ही शक्तिका तेजोमय रूप है । यह उज्ज्वल तेज और पाढ़गुण्यमयी है । इसके भी तीन व्यूह हैं—सूर्यशक्ति, सोमशक्ति और अग्निशक्ति । इनमें सूर्यशक्ति उज्ज्वल, परा और दिव्या है, जो निरन्तर जगत्का निर्वहण कर रही है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीन रूप हैं । अध्यात्मस्था सूर्यशक्ति पिङ्गला नाड़ीके मार्ग-पर चलती है^३ । अधिभूतस्था सूर्यशक्ति विश्वमें आलोक-का प्रवर्तन करती है । आधिदैविकी सूर्यशक्ति सूर्यमण्डलमें ससित है । सूर्यमण्डलमें जो तपनाम्बिका तस अर्चियों हैं, वे ऋचाएँ हैं^४ । जो उसकी अन्तःस्थ दीसियों हैं, वे साम हैं और जो पाराशक्ति पुरुषरूपमें सूर्यमण्डलके अन्तःस्थ है, वह रमणीय दिव्य पुरुष यजुर्मय है । 'क्रिया-व्यूह'की सोममयी और अग्निमयी शक्तियोंका वर्णन इस लेखकी सीमासे बाहरका विषय है । अतः हम केवल सूर्यशक्तिका वर्णन कर रहे हैं ।

सूर्यमण्डलका अन्तर्वर्ती यह पुरुष शत्रुघ्निधारी, श्रीश, पीनोदर, चतुर्गुज, प्रसन्नवर्ण, कमायासन और कमलनंबर है । इस अन्तःस्थ पुरुषकी मूर्त्ति 'दशहोता' है, स्तनादिक 'पठहोता' है, शार्पिष्य सप्तप्राण 'सम-होता' है, शोभा 'दक्षिणा' है, सन्धिया 'संभा' है, नाड़ियों देवपनियाँ हैं, मन होताओंका दृष्ट्य है, चेतन 'पुरुषमूर्त्ति' है, गति 'श्रीमूर्त्ति' है, गुणनाम 'उम्फार-प्रणवनाम' है और स्थूल नाम 'सुद्रिय' तथा 'शुक्रिय' है^५ । इस दिव्य यजुर्मय तनुका अन्याय करनेसे मनुष्य अग्निचार और पार्षदेसे मुक्त हो जाता है । यह लक्ष्मीतन्त्रका निर्देश है ।

वैदिक विचारणामें प्रत्येक देवताका परम स्वप्न 'त्रिव' ही है । वेद सूर्यको जगत्का कारण, चराचरकी आत्मा और ब्रह्म बताते हैं^६ । उपनिषदोंमें भी यही कहा गया है । वैष्णवागमों और तन्त्रोंमें सूर्यमण्डलमध्यस्थ नारायणकी मान्यता वेदोंकी इसी प्रतिपत्तिके अनुसार है । 'विष्णुसहस्रनाममें सूर्य और उसके पर्यायोंको विष्णुके नामोंमें गिनाया गया है^७ । 'नारदपञ्चरात्रमें भी विष्णु-नामोंमें सूर्यके नामोंकी गणना करायी गयी है^८ । आदित्य वारह है और विष्णु भी द्वादश रूपभूक् है^९ । ज्योतिर्मयतामें भी सूर्य और विष्णुका अभेद है—सूर्य तेजोमय है, 'विष्णु भी ज्योतिःस्वरूप है'^{१०} । 'भगवती

१. इसीलिये पिंगला नाड़ीको सूर्यनाड़ी कहा जाता है। यह पुरुषा है। २. मिलाइये—(क) आदित्यो वा एप एतमण्डल तपति । तत्र ता ऋचस्तदन्नां मण्डलम् ॥ (—नारायणोपनिषद् ३ । १४) (ख) विष्णुपुराण । ३. होताओंनी विस्तृत जानकारीके लिये द्रष्टव्य है—तैत्तिरीय आरण्यकका तृतीय प्रपाठक । द्रष्टव्य, शुक्रिय नामोंके लिये द्रष्टव्य है—अहिर्बुद्ध्य-संहिता, ३०-५८ और ५९ । ४. यथा—ऋ० १ । ११५ । १ । ५. यथा—(१) आदित्यो त्रहोत्यादेशस्तस्योपव्याख्यातम् । ऋ० उ० ३ । ९ । १ (२) तैत्ति० उ० ३ । १ । १ । ६. यथा० न० ना० । ना० प० रा० इलोक० १ । १७० । ७. ना० प० श० ४ । ८ । ४८ । ८. वही ४ । ८ । ४८ । ९. यथा—तेजस्विनां सूर्यः । ना० प० ग० १ । १७० । १०. व्योत्त्योतिः स्वरूपस्य (पुराणसहिता ८ । २९) तपत्यर्कः पु० स० १५ । ३२ । १०. व्योत्त्योतिः ना० प० रा० १ । १ । ६२; १ । ६ । १०; १ । ७ । ४४ । परंज्योतिः ना० प० रा० ४ । ३ । १० । ज्योतिर्स्तपम् ना० प० रा० १ । १२ । २७ । व्रश तेजोमयं व्रह० ना० प० श० ४ । ३ । ७८ । एकं ज्योतिः स्वरूपं च रचिदानन्दसंकम्—सनत्कुमारसहिता ३४ । २ । १ ।

विष्णुमाया सनातनी^३, ही भास्करसे प्रभारूपा परिलक्षित होती है।^४

किंतु वास्तवमें सूर्यकी अधिभौतिकी प्रभा ही 'ज्योतिः-खरूप ब्रह्म' नहीं है। ब्रह्मज्योति तो निर्गुण, निर्लिप्त, परम शुद्ध, प्रकृतिसे परे, कृष्ण-रूप, सनातन और परम है।^५ वह नित्य और सत्य है तथा भक्तानुग्रहकातर है।^६ वह आदित्यकी ज्योतिके भी भीतर रहनेवाली आधारभूता परमा, शाश्वती 'ज्योति' है। इसीसे उसे ब्रह्मज्योति कहा गया है। यह ब्रह्मज्योति ही वैष्णवोंके अतुल रूपधारी 'श्यामसुन्दर' है।^७

यतः ब्रह्मज्योति सूर्य-ज्योतिका आधार है और हेतु है। अतः ब्रह्मज्योति अधिभूत सूर्यकी ज्योतिसे करोड़ों गुनी अधिक है।^८

'नरसिंह' रूपकी व्याख्यामें आगमका कथन है कि जो हंसरूप जनार्दन आकाशमें सूर्यके साथ जाते हैं, उन विहगम भगवान्‌का वर्णन सूर्यके वर्णसे किया जाता है।^९ तात्पर्य यह कि अनन्त आकाश-व्यापी विष्णुकी आभाके एक रूप सूर्य है। वृसिंहमन्त्रके 'भद्र' पदकी व्याख्यामें कहा गया है कि सूर्यमें प्रकाश भरने, सज्जनोंमें भद्रभाव जागरित करने और धोर ससार-तापरूप भवको भग देनेके कारण वृसिंह 'भद्र' कहे गये हैं।^{१०} परमात्मा परात्पर श्रीकृष्णकी सतत उपासना सूर्यादिक सभी देव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य, इन्द्र, रुद्र आदि सभीके द्वारा वन्दित हैं।^{११} सूर्य उन्होंके प्रसादसे तपते हैं।^{१२}

१.—ना० प० रा० २। ६। १८ २. प्रभारूपे भास्करे सा (—ना० प० रा० २। ६। २४)

३. जपन्त परम शुद्ध ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्त निर्गुण कृष्ण परम प्रकृतेः परम्॥

(—ना० प० रा० १। १२। ४८)

४. नित्यं सत्यं निर्गुणं च ज्योतिरूपं सनातनम्। प्रकृतेः परमीशान भक्तानुग्रहकातरम्॥

(—ना० प० रा० १। १२। २७)

५. ध्यायन्ते सतत सन्तो योगिनो वैष्णवाः सदा। ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुल श्यामसुन्दरम्॥

(—ना० प० रा० १। १। ३)

६. गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः। (—ना० प० रा० ४। १। २४) सूर्यकोटिप्रतीकाशः॥

(—ना० प० रा० ४। ३। ३०)

सूर्यकोटिप्रतीकाशः पूर्णेन्दुयुतसनिभः। यस्मिन् परे विगजन्ते मुक्ताः ससाध्यन्धनैः॥

(—लक्ष्मीतन्त्र १७। १५)

तत्रेश्वर कोटिदिवाकरच्युतिम्॥ (—पुराणसहिता ११। २३। ११)

७. सूर्येण यः सहायाति हसरूपी जनार्दनः। विहगमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्णयते॥

(—अहिर्बुद्ध्यसहिता ५६। २६)

८. भा ददाति रबौ भद्रा भाव द्रावयते सततम्। भव द्रावयते धोर ससारतापसततम्॥

(—अहिर्द सं० ५४। ३३-३४)

९. गणेशोपव्रह्मेशदिनेशप्रमुखाः सुराः। कुमाराद्यश्च मुनयः सिद्धाश्च कपिलादयः॥

(—ना० प० रा०, प्रा० वन्दना)

लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकापरा:

भक्त्या नमन्ति य शश्वत् त नमामि परात्परम्॥

.....स्तुवन्ति वेदाः सावित्री वेदमातृकाः॥

(—ना० प० रा० १। ३। ४९)

ब्रह्मसूर्येन्द्रस्त्रदादिवन्याः॥

(—ना० प० रा० ४। ३। १११)

१०. यत्प्रसादेन तपत्यर्कः।

(—पुराणसंहिता १५। ३२)

वैष्णवागमोका लक्ष्य भगवान् विष्णुकी परब्रह्मता दिखाना है। अतः वे सूर्यको एक देवताके रूपमें ही प्रदर्शित करते हैं। फिर भी सूर्यको विष्णुसे सर्वथा पृथक् नहीं दिखाया गया है। उनके स्वरूपको समझनेके लिये सूर्य-सारूप्यका सकेत हुआ है।

सूर्य विष्णुके निवास है, यह हम देख चुके हैं। इसीको यो भी कहा गया है कि सूर्यमण्डल क्षेत्र है और विष्णु क्षेत्र है^३। क्षेत्रका अर्थ 'पीठ या मदपीठ' भी है। 'वृहद्ब्रह्मसहिता'का कथन है कि श्रुतिने सूर्यमें जिस पुरुषका रहना कहा है, आदित्य उसका शरीर है। तात्पर्य यह कि सविता नामके विष्णुकी सवितामें स्थित होनेकी धारणा करे।^४ अतः वृधजनोने सविताको गायत्रीका देवता कहा है। सविता देवता गायत्रीसे स्वतन्त्र या पृथक् नहीं है; क्योंकि जैसा कि श्रुतिने कहा है—सब कुल नारायणसे ही उत्पन्न हुआ है। इसलिये जो कुल दृश्यमान जगत् है, उसके सामी नारायण है और ज्ञान-कर्म-तप-श्रुति सब नारायण-परायण है—

आदित्ये पुरुषो योऽसावहमेवेति निश्चितम् ।
आदित्यस्य शरीरत्वादमदं श्रुतिरुज्जगौ ॥
सवितृनामको विष्णुः सवितृस्थो विचार्यनाम् ।
सविता देवता तेन गायत्र्याः स्थायते वुधैः ॥
न स्वतन्त्रतया देवो गायत्र्याः सविता मतः ।
नारायणादेव सर्वमुत्पन्नं श्रुतिरुज्जगौ ॥^५

इस प्रकार विचारणाके प्रस्ताररूपमें कहा जाता है कि सूर्य वासुदेवकी अष्ट विभूतियोमेसे एक हैं, जो आठो हासिंही मदपीठरूपमें स्थित है। अतः मुमुक्षुओंको इनकी अमेडरूपमें उपासना करनी चाहिये—

सूर्येन्द्राग्नीन् विधिं सोमं रुद्रं वायुं द्वितिं जलम् ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रं एव च ॥
विभूतयो हरेदचैता भद्रपीठतया स्थिताः ।
तदभेदतयोपास्या मुमुक्षुभिरहर्निशम ॥^६

किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् वासुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनसे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, गणेश और सूर्य—ये सभी वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्माधारी ततुभूत विभूतियों हैं। अतः मुक्तिकी इन्द्रा रखनेवाले हरिके भक्त किसी भी देवताकी उपासना उसे विष्णुका 'शरीर', 'पीठ', 'दास' या 'जेप' (अश) माननेके अतिरिक्त अन्य किसी भावमें कैसे कर सकते हैं?

व्याप्तो भगवानेष्य व्याप्यं सर्वं चराचरम् ॥
न तदस्ति विना यत् स्याद् वासुदेवेन किंचन ।
ब्रह्मा शक्तश्च रुद्रश्च गणेशो भास्करस्तथा ॥
विनिन्त्या वासुदेवस्य ततुभूता विभूतयः ।
चतुर्मुजाः शङ्खचक्रगदाजलजधारिणः ॥
नान्यं देवं नमस्कुर्यात् तच्छरेत्तया विना ।
पृथग्क्वेनार्चयन्तो वा मामकास्ते प्रकीर्तिनाः ॥
हरे: पीठा हरेदासा हरिदेवा द्विजातयः ।
पृथग्भूताः कथंभूता उपास्या मुक्तिमिच्छता ॥^६

सूर्य और चन्द्रमा विराट् पुरुषके नेत्र हैं। नारद-पञ्चरात्रान्तर्गत विष्णुसहस्रनाममें विष्णुका नाम 'सूर्य-सोमेक्षण'^७ है और अन्यत्र इन्हे 'रविलोकन'^८ कहा गया है। 'माहेश्वर-तन्त्र'का कथन है कि सूर्य भगवान्के नेत्रगत हैं।^९

वैष्णवागममें सूर्यकी उपासना देवरूपमें ही प्रशस्त है। नवप्रह-पूजा, सूर्यधृ, सूर्यपूजा, पञ्चदेवोपासना और पञ्चायतन-पूजामें सूर्यकी धारणा एक देव-त्रिशेषकी

१. वृ० व्र० स० ३। ७। १९१। २. (क) वृ० व्र० स० ३। ७। १९९। (—वृ० व्र० स० ३। ७। १९९)। ३. मिलाइये—तैत्ति० उ० ३। १। १। ४. वृ० व्र० स० ३। ७। १९२—१९३। ५. वृ० व्र० स० ३। ७। १९५—१९६। ६. वृ० व्र० स० ३। ७। २०६—२१०। ७. ना० प० १०४। ३। ३९। ८. ना० प० १०४। ८। ४८। वृ० व्र० स० ३। १०। १०७। ९. सूर्योऽस्य चश्चाग्नि गतः: (—माहे० तं० १। ५२)।

है। भगवान् विष्णु इनके अन्तर्वर्ती परम प्रभु हैं, परात्पर हैं। वे रवि हैं, रवितनु हैं, रविरूप हैं और रविके अंश हैं^१। नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं—महाहंस हैं^२। 'नारदपञ्चरात्र'में परमात्मा श्रीकृष्णके एक सौ आठ नामोंमें एक नाम 'सर्वग्रहरूपी'^३ भी है। सर्वग्रहरूप होना प्रत्येक ग्रहसे परम—श्रेष्ठ होना है। अतः आगमका वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी ग्रहोंका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है^४।

सूर्यदेव हेमवर्णके हैं^५। भगवान् सूर्य अपने एक चक्र (सक्तसर) वाले वहुयोजन-विस्तृत रथमें आसीन होकर अपने तिगम अंगुओंसे जगत्को प्रकाशित करते हैं। उस महान् रथके बाहक सात अश्व हैं, जिनका परिचालक सारथि अरुण खड़ खड़ है—

रथमास्थाय भगवान् वहुयोजनविस्तृतम् ।
वामपाश्वर्घं स्थितं त्वेकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम् ॥
वहन्ति सतयः सप्तच्छद्वासि स्यन्दनं महत् ।
सारथिश्चारुणः सर्वानश्वान् वाहयति स्वयम् ॥^६

सूर्यके बारह रूप हैं। ये बारह आदित्य बारह महीनोंसे सम्बद्ध हैं। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूर्णा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंगु, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता और विष्णु^७। वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व

चतुर्व्यूहात्मक है। अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र सकर्पणकी, द्वादश आदित्य अनिस्त्रद्धकी और द्वित्य पितर प्रद्युम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं^८। सभी प्रागियोंमें विष्णुका अन्तर्यामित्व है।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं। इनके नाम हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा, वोधिनी, धारिणी और क्षमा^९। (कहीं-कहीं^{१०} सुधूम्राके स्थानपर सुषुम्ना नाम मिलता है।)

(२)

सूर्योगसनाके प्रमुख रूप हैं—गायत्री-उपासना, संध्या, सूर्यमन्त्र, जाग, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा। किसी भी प्रकारकी पूजार्थे पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्ध दिया जाता है। पोडशोपचार हो तो उत्तम है। जपसे पूर्व मालाका संस्कार किया जाता है। अब इनपर सक्षेपमें विचार किया जायगा।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाना है। सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाता है; क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके स्वामी,^{११} सप्ताश्व, द्विभुज, दिनेश और सिन्दूरवर्ण हैं तथा उनके भजनसे कुलकी

१. रवेरगभागी (—ना० प० रा० ४ । ८ । ४८)

२. (क) हसी हंसी हंसवपुर्हसरूपी कृपामयः। (—ना० प० रा० ४ । ८ । ८८)

(ख) नारायणाय पुरुपोत्तमाय च महात्मने। विशुद्धसद्गाधिष्ठाय महाहसाय धीमहि ॥

(ना० प० रा० ४ । ३ । ७)

३. सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० प० रा० ४ । १ । ३६)

४. इम मन्त्र महादेवि जपन्नेव दिवानिशम्। सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥

(ना० प० रा० ४ । १ । ४४)

५. (तन्त्रसार, पृ० स० ६२) । ६. (वृ० ब्र० स० २ । ७ । १३-१४)

७. इन्द्रो धाता भगः पूर्णा मित्रोऽथ वस्त्रोऽर्थमा। अग्निर्विवस्वास्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥

(वृ० ब्र० स० ३ । १० । २२)

८. वृ० ब्र० स० ३ । १० । २३ । ९. वृ० ब्र० स० ३ । १० । ४८ । १०. महानिर्वाणतन्त्र—६ । २९

११. देलिये, पुराणसहिता १० । ६० की पादटिप्पणी। १२. अवाहयेत् त ग्रमणि महेशं सताव्वाह द्विभुज दिनेशम्।

वैष्णवागमोक्ता लक्ष्य भगवान् विष्णुकी परत्रिवता दिग्बाना है। अतः वे सूर्यको एक देवताके रूपमें ही प्रदर्शित करते हैं। फिर भी सूर्यको विष्णुसे सर्वथा पृथक् नहीं दिखाया गया है। उनके खखलपको समझनेके लिये सूर्य-सारूप्यका सकेत हुआ है।

सूर्य विष्णुके निवास हैं, यह हम देख चुके हैं। इसीको यो भी कहा गया है कि सूर्यमण्डल क्षेत्र है और विष्णु क्षेत्रज्ञ है^३। क्षेत्रका अर्थ 'पीठ या भड़पीठ' भी है^४। 'वृहद्ब्रह्मसहिता'का कथन है कि श्रुतिने सूर्यमें जिस पुरुषका रहना कहा है, आदित्य उसका शरीर है। तात्पर्य यह कि सविता नामके विष्णुकी सवितामें स्थित होनेकी धारणा करे।^५ अतः बुधजनोंने सविताको गायत्रीका देवता कहा है। सविता देवता गायत्रीसे खनन्त्र या पृथक् नहीं है; क्योंकि जैसा कि श्रुतिने कहा है—सब कुछ नारायणसे ही उन्नत हुआ है। इसलिये जो कुछ दृश्यमान जगत् है, उसके स्वामी नारायण है और ज्ञान-कर्म-तप-श्रुति मत्र नारायण-परम्परण हैं—

आदित्ये पुरुषो योऽसायहमेवंति निश्चिनम् ।
आदित्यस्य शरीरत्वादमदं श्रुतिरुज्जगौ ॥
सवितृनामको विष्णुः सवितृस्थो विचार्यनाम् ।
सविता देवता तेन गायत्र्याः ख्यायते बुधैः ॥
न स्वतन्त्रत्वा देवो गायत्र्याः सविता मतः ।
नारायणादेव सर्वमुन्पन्तं श्रुतिरुज्जगौ ॥^६

इस प्रकार विचारणाके प्रस्ताररूपमें कहा जाता है कि सूर्य वासुदेवकी अष्ट विभूतियोमेमें एक हैं, जो आठों हारिकीं भड़पीठरूपमें स्थित है। अतः सुमुक्षुओंको इनकी अभेदरूपमें उपासना करनी चाहिये—

सूर्येन्द्रागनीन् विधिं सोमं रुद्रं वायुं धितिं जलम् ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रव एव च ॥
विभूतयोः हरेऽन्तेता भद्रपीठतया स्थिताः ।
तदभेदतयोपास्या मुमुक्षुभिरहर्निश्चम ॥^७

किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् वासुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनसे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, गणेश और सूर्य—ये सभी वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पदावारी तत्त्वभूत विभूतियों हैं। अतः मुक्तिकी इन्द्रा रखनेवाले हरिके भक्त किसी भी देवताकी उपासना उसे विष्णुका 'अरीरा', 'पीठ', 'दास' या 'गेव' (अश) माननेके अनिवार्य अन्य किसी भावसे कर्त्त्वे कर सकते हैं?

व्याप्त्यो भगवानेष्य व्याप्त्यं सर्वं चराचरम् ॥
न तदस्ति विना यत् स्याद् वासुदेवेन किञ्चन ।
ब्रह्मा शक्तश्च रुद्रश्च गणेशो भास्करस्तथा ॥
विचिन्त्या वासुदेवस्य तत्त्वभूता विभूतयः ।
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाजलजधारिणः ॥
नान्यं देवं नमस्कुयोत् तच्छरोरतया विना ।
पृथक्व्येनार्चयन्त्वो वा मामकास्ते प्रवर्तिनाः ॥
हरे: पीठा हरेर्देसा हरिदेवा द्विजातयः ।
पृथग्भूताः कथंभूता उपास्या सुक्तिमिच्छता ॥^८

सूर्य और चन्द्रमा विरट् पुम्पके नेत्र हैं। नारद-पञ्चाश्रान्तर्गत विष्णुसहस्रनाममें विष्णुका नाम 'सूर्य-सोमेक्षण'^९ है और अन्यत्र इन्हे 'रविलोकन'^{१०} कहा गया है। 'माहेश्वर-नन्द्र'का कथन है कि सूर्य भगवान्के नेत्रगत हैं।^{११}

वैष्णवागममें सूर्यकी उपासना देवरूपमें ही प्रशस्त है। नवप्रह-पूजा, सूर्यार्ध, सूर्यपूजा, पञ्चदेवोपासना और पञ्चायतन-पूजामें सूर्यकी धारणा एक देव-विशेषकी

३. वृ० ब्र० स० ३ । ७। १९०। २. (क) वृ० ब्र० स० ३ । ७। १९१। २. (क) वृ० ब्र० स० ३ । ७। १९१—१९३। ५. वृ० ब्र० स० ३ । ७। १९५—१९६। ६. वृ० ब्र० स० ३ । ७। २०६—२१०। ७. ना० प० १०४। ३। ३९। ८. ना० प० १०८। १। ४८। वृ० ब्र० स० ३ । १०। १०७। ९. सूर्योऽस्य चक्षुपि गतः (—माहे० तं० १। ५२)।

है। भगवान् विष्णु इनके अन्तर्वर्ती परम प्रभु है, परात्पर है। वे रवि हैं, रविततु हैं, रविरूप हैं और रविके अंश हैं^३। नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं—महाहंस हैं^४। ‘नारदपञ्चरात्र’में परमात्मा श्रीकृष्णके एक सौ आठ नामोंमें एक नाम ‘सर्वग्रहरूपी’^५ भी है। सर्वग्रहरूप होना प्रत्येक प्रहसे परम—श्रेष्ठ होना है। अतः आगमका वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी ग्रहोंका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है^६।

सूर्यदेव हेमवर्णके हैं^७। भगवान् सूर्य अपने एक चक्र (सत्सर) वाले वहुयोजन-विस्तृत रथमें आसीन होकर अपने तिम अंशुओंसे जगत्को प्रकाशित करते हैं। उस महान् रथके वाहक सात अश्व हैं, जिनका परिचालक सारथि अरुण स्वयं है—

रथमास्थाय भगवान् वहुयोजनविस्तृतम् ।
वामपदार्थे स्थितं त्वेकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम् ॥
वहन्ति सतयः सप्तच्छादांसि स्यन्दनं महत् ।
सारथिश्चास्तुः सर्वानश्वान् चाहयति स्वयम् ॥^८

सूर्यके वारह रूप हैं। ये वारह आदित्य वारह महीनोंसे सम्बद्ध हैं। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूरा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अशु, विश्वान्, ल्पा, सविता और विष्णु^९। वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व

चतुर्व्यूहात्मक है। अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र संकर्पणकी, द्वादश आदित्य अनिस्त्रद्वकी और दिव्य पितर प्रवुम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं^{१०}। सभी प्राणियोंमें विष्णुका अन्तर्यामित्व है।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं। इनके नाम हैं—तपिनी, तापिनी, धूमा, मरीचि, ज्वालिनी, सचि, सुधूमा, भोगदा, विश्वा, वोधिनी, धारिणी और क्षमा^{११}। (कहीं-कहीं^{१२} सुधूमाके स्थानपर सुपुम्गा नाम मिलता है।)

(२)

सूर्योगसनाके प्रमुख रूप हैं—गायत्री-उपासना, संध्या, सूर्यमन्त्र, जप, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा। किसी भी प्रकारकी पूजारो पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्ध दिया जाता है। पोडशोपचार हो तो उत्तम है। जपसे पूर्व मालाका संस्कार किया जाता है। अब इनपर संक्षेपमें विचार किया जायगा।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाता है। सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाना है; क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके ज्ञामी,^{१३} सप्तश्च, द्विमुज, दिनेश और सिन्दूरवर्णी हैं तथा उनके भजनसे कुलकी

१. रवेरगभागी (—ना० प० रा० ४ । ८ । ४८)

२. (क) हसो हसी हसवुर्हसरूपी कृपामयः । (—ना० प० रा० ४ । ८ । ८८)

(ख) नारायणाय पुरुपोत्तमाय च महात्मने । विशुद्धसद्वाधिष्ठाय महाहसाय धीमहि ॥

(ना० प० रा० ४ । ३ । ७)

३. सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० प० रा० ४ । १ । ३६)

४. इम मन्त्र महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् । सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥

(ना० प० ग० ४ । १ । ४४)

५. (तन्त्रसार, पृ० स० ६२) । ६. (वृ० व० स० २ । ७ । ९३-९४)

७. इन्द्रो धाता भगः पूरा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । अंगुर्विवस्वास्त्वप्ता च सविता विष्णुरेव च ॥

(वृ० व० स० ३ । १० । २२)

८. वृ० व० स० ३ । १० । २३ । ९. वृ० व० स० ३ । १० । ४८ । १०. महानिर्वाणितन्त्र—६ । २९

११. देखिये, पुराणसहिता १० । ६० की पादटिप्पणी । १२. अवाहयेत् त वृमणि मटेग सप्तश्चवाह द्विमुजं दिनेशम् ।

बृद्धि होती है। ‘ॐ धूणिः सूर्य आदित्योम्’ इस मन्त्रसे सूर्यको अर्थ दिया जाता है^१। ‘समोहन-तन्त्र’में ‘ह्मं हंसः’ मन्त्रसे अर्थ देनेका निर्देश है^२। इस प्रकार तन्त्रोमें सूर्यका आवाहन-मन्त्र यह हो जाता है—‘ह्मं हंस ॐ धूणिः सूर्य आदित्यः’। इसके पश्चात् इष्ट देवताकी समयानुसार गायत्रीसे अथवा ‘ॐ सूर्य-मण्डलस्थायै नित्यचैतन्योदितायै अमुकदेवतायै नमः’ इस मन्त्रसे तीन बार जलाञ्जलि दी जाती है। ‘अमुक’के स्थानपर अपने इष्टदेवताका नाम जोड़ा जाता है। अर्थ देनेके अनन्तर गायत्रीका जप करना चाहिये^३। सूर्यको अर्थ देनेके पश्चात् ही हर, हरि या देवीकी पूजा की जाती है^४।

किसी भी जपसे पहले मालाका संस्कार किया जाता है। ‘आगमकल्पद्रुम’के अनुसार माला-संस्कार-विधि यह है कि आसन-गुद्धि और भूत-शुद्धिके पश्चात् पञ्चदेवोका आवाहन किया जाय। पञ्चदेवोमें सूर्यदेव भी हैं। साधक मालाको थोड़ी ढेर पञ्चगव्यमें रखकर फिर सर्णाग्राममें रखे हुए पञ्चामृतमें स्थापित करे। फिर शीतल जलसे धोकर धूप दे और चन्दन, कस्तरी, कुकुम आदिका लेप करे। फिर १०८ बार ऊँका जप करे और नवग्रह, दिक्षाल तथा गुरुकी पूजा करे। तत्पश्चात् मालाको ग्रहण करे^५।

सूर्यके द्वादशनाम, अष्टोत्तरशतनाम, सहस्रनाम तथा मन्त्रोक्ता जप होता है। इनके बहुत अच्छे फल

शास्त्रोमें वराये गये हैं। मयूर कविकृत सूर्यशतक तथा अन्य अनेक स्तोत्र हैं, जिनका भक्तगण वड़ी श्रद्धासे गान करते हैं।

मन्त्र सोम, सूर्य और अग्निरूप होते हैं^६। मन्त्र-जिज्ञासु इनका ज्ञान ‘तन्त्रसार’ आदि मन्त्रोंसे प्राप्त कर सकते हैं। मन्त्रका फल प्राप्त करनेके लिये पहले मन्त्रको सिद्ध करना पड़ता है। सभी प्रकारके तन्त्रोमें इसकी विधियाँ वरायी गयी हैं। मन्त्र-सिद्ध करनेके लिये मन्त्रको चैतन्य किया जाता है। इसकी एक विधि सूर्यमण्डलके माध्यमसे वरायी गयी है। वाहिःस्थित अथवा अन्तःस्थित द्वादश कलात्मक सूर्यमें साधक अपने सनातन गुरु शिवका और ब्रह्मरूपा उनकी शक्ति तथा अपने मन्त्रका ध्यान करके उस मन्त्रका १०८ बार जप करे। इससे उसका मन्त्र चैतन्य हो जाता है। गायत्री-मन्त्र सूर्य-सम्बद्ध है। ‘ॐ धूणिः सूर्य आदित्योम्’ यह सूर्यका अष्टाभ्र मन्त्र है।

परमेश्वर-सहिताके अनुसार ‘सूर्य’ भगवान्के विमानके वाद्यावरण भूतलके देवताओंमें से एक है^७। सूर्य और चन्द्र सौर्योदय महामन्त्रके दाहिने और बायें गवाक्षमें पूज्य हैं^८।

गायत्री वेद-माता है और इसका जप करना प्रत्येक द्विजका अनिवार्य कर्तव्य है। जो यह त्रयी पराशक्ति

सिन्दूरवर्णं प्रतिमावभास भजामि सूर्यं कुलवृद्धिहेतोः ॥ (कल्याण साधनाङ्क पृष्ठ ४५८मे उद्धृत)

ॐ आकृष्णोन रजसा वर्तमानो निवेश्यव्रत्मृतं मर्त्यं च । हिरण्यग्रेन सविता स्थेना देवं ग्राति भुवनानि पश्यन् ॥

(यजुर्वेद २३ । ४३)

१. तन्त्रगार, पृ० ६०-६५ । २. वही । ३. ज्ञानार्णवतन्त्र

४. वावन्न दीयने चार्यं भास्कराय महात्मने । तावन्न पूजयेद् विष्णुं गङ्गर वा महेश्वरीम् ॥

(नन्दिकेश्वरसहिता)

५. आ० क० तन्त्रसार पृ० २५, पर उद्धृत । ६. तन्त्रसार पृ० ६२ । ७. पार० स० ११ । २०६ । ८. पार० स० २५ । २७,

आकाशमे सूर्यनामसे तप रही है, वह (ऋक्-यजुः-सामस्यी) तीन प्रकारकी है। वह वेद-जननी सावित्री है। त्रिवर्ण प्रणव उसका आधार है। वह प्रकाशानन्द-विग्रहा है, वर्णोंकी परामाता है और ब्रह्मसे उदित होकर उसीमे प्रतिष्ठित होती है। वह दिव्य सूर्य-वपु सावित्री अनुलोम-विलोमसे सौष्य और आग्नेयीं है। गानेवालेका त्राण करती है, अतः वह गायत्री है। अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वी एव सरिताओ आदिसे जीवन (जल) लेकर वह पुनः पौधोंमे छोड़ देती है। उसे सूर्यस्यी शक्ति कहते हैं^१।

परदेवता महादेवी गायत्री गुणमेदसे त्रिरूपा है।
वह प्रातःकालमे ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नमे वैष्णवी शक्ति और
सायकालमे वरदा शैवी शक्ति है। ‘आद्यायै विद्धाहे
परमेश्वर्यै धीमहि, तन्नः काली प्रचोदयात्’—
यह तान्त्रिक गायत्री-मन्त्र है। ब्रह्मके उपासकोंको गायत्री-
जप करते समय ब्रह्मको गायत्रीका प्रनिषाद्य समझना
चाहिये। किंतु अन्य सब आराधक वैदिकी संध्या करते
समय सूर्योपास्थान-पूर्वक सूर्यको अर्ध दे ।^३ ब्रह्म-सावित्री
(गायत्री) वैदिक भी है और तान्त्रिक भी। दोनों
प्रकारसे यह प्रशस्त है। प्रवल कलिकालमे गायत्रीमे
द्विजोंका ही अविकार है, अन्य मन्त्रोंमे नहीं। गायत्रीके
आरम्भमे ब्राह्मणोंको ‘ॐ’, क्षत्रियोंको ‘श्री’ और वैश्योंको
‘ऐ, मिलाना चाहिये ।

सथामे मुख्यतः दस क्रियाएँ होती हैं—आसन-
शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्रागायाम, अधर्मर्षण (भूतशुद्धि),
अर्थदान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप ।
अर्थदान और सूर्योपस्थान दोनों सूर्यदेवकी उपासना हैं ।

गायत्रीका जप करते समय सूर्यमण्डलमें अपने इष्टदेवका ध्यान करना चाहिये । स्नान-विविमें कथित नियमसे तर्पण भी करना आवश्यक है । योगियोंके लिये संध्या, तर्पण और ध्यान आम्बन्तर भी होते हैं । कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करके उसे पट्चक्रक्रमसे सहस्रारमें ले जाकर परमशिव (परात्मर श्रीकृष्ण)के साथ एक कर देना आम्बन्तर संध्या है । चन्द्र-सूर्यग्रीष्मियरूपिणी कुण्डलिनीको परम विन्दुमें समिविष्ट करके आज्ञाचक्रमें निहित चन्द्र-मण्डलमय पात्रको अमृतसारसे परिपूर्ण कर उससे इष्टदेवता-का तर्पण करना आम्बन्तर तर्पण है । रवि-शशि-वहिकी ज्योतिको एकत्र केन्द्रित कर महाशून्यमें विलीन करके निरालम्ब पूर्णतामें स्थित हो जाना ही योगियोंका ध्यान है । वैष्णवागममें भी ऐसा ध्यान प्रशस्त है ।

भगवान् सूर्यकी पृथक्-पृथक् षोडशोपचार-विधिसे
पूजा करनेके भी विधान है। 'महानिर्बाण-तन्त्र'मे यह विधान
है कि 'क भ' आदि 'ठ ठ' 'बृण-बीज'द्वारा सूर्यकी
द्वादश कलाओंको पूजकर् फिर मन्त्रशोधित अर्ध-पात्रमें
'ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः'
मन्त्रसे सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । रामाराधक
वैष्णवोंमें सूर्यका महत्व इसलिये भी है कि भगवान्
रामने सूर्यवंशमे अवतार लिया था । सूर्य-पूजा वश-वृद्धिके
लिये है । सूर्यशक्ति गायत्रीकी उपासना बुद्धि-वर्धन और
सुमति-प्राप्तिके लिये है । सूर्य तेजोदेव हैं और उपासकोंको
तेजस्सी बनाते हैं । श्रीमद्भागवतकी मान्यता है कि
अदितिपुत्रों अर्थात् आदित्यों या देवोंकी उपासनाका
फल स्वर्ग-प्राप्ति है ।

१. लक्ष्मीतन्त्र २९ | २६—३२ | २. महानिर्वाणितन्त्र ५ | ५५—६५ | ३. म० निं० त० ८ | ७७-७८ | ४. म० निं० त० ८ | ८५-८६ | ५. हृत्पद्मे पद्मानाभं च परमात्मानमीश्वरम् । प्रदीपकलिकाकार ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥
 (—ना० प० रा० १ | ६ | १०) ६. सूर्यकलाओकी पूजाके मन्त्र ये हैं—कं भ तपिन्द्र्यै नमः । खं चं तापिन्द्र्यै नमः । गं फ धूम्रायै नमः । धं प मरीच्यै नमः । ड० न० द्वालिन्द्र्यै नमः । च धं रुचये नमः । छं द सुधूम्रायै नमः । जं थं भोगदायै नमः । झं त विश्वायै नमः । अ ण वोधिन्द्र्यै नमः । ट ढ धारिण्यै नमः । ठ डं असायै नमः । ७. म० निं० त० ६ | २७-३० |
 ८. सूर्यवशाव्वजो रामः ॥ (—ना० प० रा० ४ | ३ | ७) ९. (क)—सूर्खकामोडितेः सुतान् ॥ (-भा० २ | ३ | ४),

पञ्चदेवोपासनामे भी सूर्य-पूजा होती है। सूर्य, गणेश, देवी, रुद्र और विष्णु—ये पाँच देव हैं, जिनकी पूजा वैष्णवजन सब कायेकि आरम्भमे करते हैं। इनकी पूजा करनेवाले कभी भी संकट या कष्टमे नहीं पड़ते।^१ इन पञ्चदेवोकी उपासनाके लिये शैव, गणपत्य, शाक्त, सौर और वैष्णव-सत्त्वदाय पृथक्-पृथक् भी हैं; किंतु सामान्य वैष्णव-पूजामे पञ्चदेवोपासनाको महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ‘कपिलतन्त्र’के अनुसार। कारण यह है कि पञ्चदेव पञ्चभूतके अविष्टाता हैं। आकाशके विष्णु, वायुके सूर्य, अग्निकी शक्ति, जलके गणेश और पृथ्वीके शिव अविष्टि हैं^२। पञ्चभूत ब्रह्मके स्वरूप हैं। अतः पञ्चदेवोपासना ब्रह्मकी ही उपासना है। पञ्चदेवोके व्युत्पतिप्रक अर्थ भी उनकी ब्रह्मरूपता प्रदर्शित करते हैं। जैसे विष्णुका ‘सर्वव्याप्त’, सूर्यका ‘सर्वगत’, शक्तिका ‘सामर्थ्य’, गणेशका ‘विश्वके सब गणोंका खामी’ और शिवका अर्थ ‘कल्याणकारी’ है। ब्रह्म तो चिन्मय, अप्रमेय, निष्कल और अशरीरी है। उसकी कोई भी रूप-कल्पना केवल साधकोंके हितके हेतु है। (पञ्चदेवोपासना-विवि कल्याणके साधनाङ्कसे जानी जा सकती है^३।)

पञ्चदेवोपासनामे पाँच देव पूज्य हैं। अपने इष्टदेव-को मध्यमे स्थापित करके साधक इनकी पूजा करते

हैं। अन्य चार देव चार दिशाओंमें स्थापित किये जाते हैं। इसे पञ्चायतनविवि कहते हैं। तन्त्रसामग्रे ‘यामलतन्त्र’का उद्घरण देकर इसको स्थापित करते हुए कहा गया है कि यदि देवोंको अपने स्थानपर न रखकर अन्यत्र स्थापित कर दिया जाना है, तो वह साधकके दुःख, शोक और भयका कांण बन जाता है। गणेशविमर्शिर्गी, रामार्चन-चन्द्रिका, गौतमीयनन्त्र आदिमें भी पञ्चायतन-विवि निर्दिष्ट की गयी है। यदि भूर्यको टक्केवाले मध्यमे स्थापित किया जाय, तो इशान दिशामें अद्वा. अग्नि कोणमें गणेश, नैऋत्यमें कठव और वायव्यमें अविकारी स्थापना होनी चाहिये। अन्य इष्टदेवोंको मध्यमे स्थापित करनेपर सूर्य आदि देवोंकी स्थिति इस प्रकार रहेगी। जब भवानी मध्यमे हों तो इशानमें अद्युत, आग्नेयमें शिव, नैऋत्यमें गणेश और वायव्यमें सूर्य रहेगे। जब मध्यमे विष्णु हों तो इशानमें शिव, आग्नेयमें गणेश, नैऋत्यमें सूर्य और वायव्यमें शक्तिकी स्थापना होगी। जब मध्यमे शङ्कर हों तो इशानमें अद्युत, आग्नेयमें सूर्य, नैऋत्यमें गणेश और वायव्यमें पार्वतीका स्थान होगा। जब मध्यमे गणेशकी स्थापना होगी तो इशानमें कठव, आग्नेयमें शिव, नैऋत्यमें सूर्य तथा वायव्यमें पार्वतीकी पूजा होगी।

(न) महाभारतमें भी सूर्यको संतानदाता तथा स्वर्गद्वार और स्वर्गरूप कहा गया है। (—३। ३। २६)

१. आदित्य च गणेशं च देवी रुद्र च केशवम्। पञ्चदेवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥

एव यो भजने विष्णु रुद्र दुर्गा गणाधिपम्। भास्कर च विश्वा नित्यं स कदाचित्त्र सोदनि ॥

(—उपा० तत्त्वा० परिच्छेद ३)

२. शैवानि गणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च । साधनानि च सौराणि चान्यानि वानि कानि च ॥ (—तन्त्रसार)

३. आकाशस्याधिपो विष्णुगणेशचैव महेश्वरी। वायोः सूर्यः शितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥ (—कपिलतन्त्र)

४. द्रष्टव्य—साधनाङ्क पृ० ४५४-४६२, ७. वस्थानवर्जिता देवा दुःखयोकभयप्रदाः ॥ (—तन्त्रसार पृ० ५८)

८. आदित्य च यदा मन्त्रे ऐशान्यां गङ्गार यजेत् ॥

आग्नेयां गणनाथं च नैऋत्या केशव यजेत्। वायव्यामधिका देवी स्वर्गमाधनभूमिकाम् ॥ (—तन्त्रसार पृ० ५७)

९. तन्त्रसार पृ० ५७-५८ ।

नवग्रह-पूजनमें सूर्य-पूजा भी सम्मिलित है। सूर्य नवग्रहके अधिष्ठित हैं। नवग्रहोंमें शनि सूर्यके पुत्र हैं। 'वृहद्ब्रह्मसंहिता'में नवग्रहकी स्थितिका विस्तृत वर्णन है। 'पारमेश्वरसंहिता'में नवग्रह भगवान्‌के मन्दिरके चिमान-देवताओंमें है। सर्वग्रह पीड़ा-शान्तिके लिये नवग्रह-पूजन किया जाता है। हिंदुओंमें प्रायः सभी कार्योंमें और यागादिकके आरम्भमें नवग्रहपूजन भी होता है। इनके आगे-अपने मन्त्र और दान हैं। ग्रहपीड़ा-निवारणके लिये रत्न-धारण करनेका विधान है।

श्रुति, गीता, इतिहास, पुराण और आगममें सूर्य और चन्द्रको स्वर्ग-पथ कहा गया है। 'वृहद्ब्रह्मसंहिता'में कहा है कि सूर्य-पथ योगियोंका परम पथ है, जो पञ्चकलेशोंका शमन करता है, और मोक्ष चाहनेवाले उस पथपर चलकर विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं। 'सनकुमारसंहिता' कहती है कि जीव रुद्र, सूर्य, अग्नि आदिमें भ्रमण करते हैं। तात्पर्य यह कि कर्म-रत जीव, जो रुद्रादिक देव-भावनामें ही सीमित रह जाते हैं, वे वारम्बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते हैं। मुक्त होनेके लिये तो ज्योतिःखरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी ही शरण लेनी चाहिये। उसके लिये सूर्य एक मार्ग हैं। 'तत्त्वत्रैय'में कहा है कि सूर्यमेंसे होकर जानेवाले जीव अपने सूक्ष्मशरीरसे मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मुक्त जीव

चिन्मय और अणुमात्र हो जाते हैं। अणुमात्र होनेका अर्थ है—कार्मज शरीरसे मुक्ति। 'नारदपञ्चरात्र'में जीवका सूर्यमें लीन होना वताया गया है। 'लक्ष्मीतन्त्र' का कथन है कि 'श्री' श्रीहरिकी प्रकाशानन्दरूपा पूर्णाहन्ता है। वह मन्त्रमाता है। सारे मन्त्र उसीसे उद्दित होते हैं और उसीमें अस्त होते हैं। सूर्य इस मन्त्रमय मार्गका जाग्रत् पद है, अग्नि खण्डपद है और उसीमें अस्त होते हैं। सोम सुषुप्ति पद है।

श्रीसूक्तमें 'सूर्यसोमाग्निखण्डोत्थनादवत्'—मन्त्र-वीज है। उनमें जो लक्ष्मीनारायण-सम्बन्धी परमवीज है, वह सर्वकामफलप्रद है। वह पुत्रद, राज्यद, भूनिद और मोक्षद है। वह शत्रु-विघ्नसक है और वाञ्छित-की आकर्षक 'चिन्तामणि' है। वीजोंसे जो मन्त्र बनते हैं, वे सब श्रीकी शक्तिसे अधिष्ठित होते हैं और वे श्रीविको प्राप्त होकर शीव फलदायी होते हैं। यही मन्त्र-मार्ग है। इसका जाग्रत् पद सूर्य है—इसका आशय यह है कि सूर्य मन्त्रोंकी फलवत्ताके प्रमुख आधार है और मन्त्रका चरम फल है—श्री (शक्ति) की और इस प्रकार नारायण-(शक्तिमान्) की प्राप्ति। इस दृष्टिसे भी सूर्य स्वर्गद्वार है।

आगम-ग्राधान्यवाले सम्प्रदायोंमें सौर-सम्प्रदाय भी हैं। | आनन्दगिरिने 'शङ्करविजय' नामक काव्यके तेहवे

१. वृ० ब्र० स० २। ७। १०६। २. वृ० ब्र० स० २। ७। १०२ से ११५।

३. योगिना परमः पन्थाः स्मृतः क्लेशपरिक्षये। मोक्षमाणाः पथा येन यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

(—वृ० ब्र० स० २। ७। ९६)

मिलाइये—‘स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्’ (—महाभागत ३। ३। २६ सूर्यके नामोंसे ।)

४. केचिद् रुद्रे रघौ वहौ रौद्रे शक्तौ तथापरे। अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः॥

(—स० स० ३१। ७८)

५. तत्त्वत्रय, पृष्ठ १२। ६. स्वरूपगुणमात्रं स्याज्ञानानन्दैकलक्षणम्॥ (—विष्वक्सेनसंहिता)

ऋसरेणुप्रमाणास्ते रद्दिम कोटिविभूषिताः॥ (—अहिं स० ६। २७)

७. पुनः प्रलीयते सूर्यं गतेषु च प्रदेषु च॥ (—ना० प० रा० २। १। ३३)। ८. ल० तं० । ५२। १२

९. लक्ष्मीतन्त्र ५२। २०-२३

१०. त्राहा शैव वैष्णव च सौरं ज्ञात तथार्हतम्॥ (—पुराणसंहिता १। १६)

प्रकरणमें वताया है कि सूर्योपासनाके उस समय छः सम्रदाय प्रचलित थे । 'पुराणसंहिता'में वताया गया है कि सौरदर्शन चौबीस तत्त्वोंको मान्यता देता है । ये चौबीस तत्त्व हैं—पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, ज्ञान और प्रकृति^१ । सौर-सम्रदायका वर्णन इस लेखसे बाह्य विषय है । यहाँ हम इतना ही कहेगे कि सौर-मत एक वैदिक उद्भव है । भारतसे इसका प्रसार ईरान आदि विदेशोंमें हुआ और कालान्तरमें वहाँ विकसित

हुई पूजा-विधियों और सूर्तिनिर्मितियोंका प्रभाव कुछ समयके लिये भारतस्य सौरमतपर भी पड़ा । अद्यतन सौरमत पूर्णतया भारतीय है । उसमें विदेशी तत्त्व तनिक भी नहीं हैं । हमारी इस विचारणाकी पुष्टि श्रीरामकृष्ण-गोपाल भण्डारकरके कथनसे भी होती है, जिन्होंने कहा है कि 'मन्दिरोमें प्राप्त अभिलेखोंमें जिस दंगसे सूर्यके प्रति भक्ति प्रदर्शित की गयी है, उसमें लेशामात्र भी विदेशीपन नहीं है^२ ।

उच्छीर्षक-दर्शनोंमें सूर्य

[तात्त्विक चर्चा]

(लेखक—विद्यावाचस्पति प० श्रीकण्ठजी शर्मा, चक्रपाणि, शास्त्री)

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ॥ (—यजु० ७ । ४२; ऋ० १ । ८ । ७ । १)

जिस साधनसे कुछ भी देखा जा सके, वह दर्शन है । विधि या निपेधके रूपमें शासन अथवा वस्तु-तत्त्वको वोधन करनेकी शक्तिवाला साधन दर्शनशास्त्र कहालता है एवं जिसके द्वारा इस दृश्य जगत्का सत्यस्वरूप तथा जीवनकी सत्यसुखमयता विधि-निपंथ वोधक-रूपमें अवगत हो, वह दर्शनशास्त्र है । उक्त सभी प्रमेय ज्ञेय किसी देश और कालके अन्तर्गत ही ज्ञान-विपरीभूत हो सकते हैं । देश और कालकी व्यवस्था एकमात्र भगवान् भास्कर सूर्यदेवके ही अधीन है । वेद कहता है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’ । वे दृश्यमान स्थान जड़मात्रमें अपनी सहस्र रश्मियोद्वारा परिपाकरूपमें अमृत भर देते हैं । इसी परतत्त्वको वैदिककोप आदि-कारण ईश्वरके अनेक रूपोंमें परिगणित करता है—

इन्द्रं मित्रं चृष्णमग्निमाहुरथो द्रिव्यः स चुपर्णो गस्त्मान् । एकं सद्ग्रापा चहुधा चदन्ति । (ऋ० १ । १६४ । ४६) वैदिक रहस्योका स्पष्टीकरण उपनिषद्-

भाग करता है तथा उनके तत्त्व-विवेचनकी कला दर्शन-शास्त्रमें झलकती है । छहों दर्शन एक ही उस परमानन्द तत्त्वके विवेचनके लिये विद्यलेपणात्मक मार्ग अपनाते हैं । एक ही तत्त्वको लक्ष्य रखनेसे उनका संदर्भेयग्रात्मक स्वरूप है । पद्मदर्शनोंमें पूर्वोत्तर दृष्टिद्वारा सांख्ययोगदर्शनमें न्याय-वैशेषिकके विवेचनात्मक सिद्धान्तोंका सकेत मिलनेके आधारपर न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, पूर्वमीमांसा, उत्तर-मीमांसाकी व्यवस्थाका क्रम आता है । तदनुसार प्रस्तुत लेखमें सूर्यका जीवनतत्त्वसे ऐहिक एवम् आमुभिक सम्बन्ध है—इसके निर्देशका प्रयत्न किया जाना है ।

पारमार्थिक सत्ताकी सत्य सत्ताके समान ही व्यवहार-दर्शामें व्यावहारिक सत्ताको मिथ्या होते हुए भी सत्य मानना ही पड़ता है । ज्ञानेन्द्रियनिधान देहमें आकर देहीको किसी भी भौतिक प्रत्यक्षके लिये इन्द्रिय और विषयका सञ्जिकर्त्ता सापेक्ष है । अन्यकारमें निर्दोषचक्षु भी भौतिक पदार्थको तत्त्वतक प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, जबतक वाह्य प्रकाश सहायक न हो, (न्या० द० स० ३ । १ । ४?) “वाह्यप्रकाशानुग्रहाद् विषयोपलब्धे-

१. पुराणसंहिता १० । ६०, पाद-टिप्पणी भी । २. ‘वैष्णव, जैव और अन्य धार्मिक मतपर’ पृष्ठ १७८ ।

रनभिव्यक्तिऽनुपलव्यिधः” उक्त सूत्रमे बाह्य प्रकाशकी व्याख्या आदित्य-नामसे की गयी है तथा मूलसूत्रमें तो और भी स्पष्ट है कि “आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि द्वायेऽविघातात्” (न्या० सू० ३।१।४७) । वही प्रधान तत्त्व अध्यात्म है, चक्षुः आदि करणाभिमानी जीवरूपसे अधिदैव भी है तथा रसिकके आश्रय नेत्रगोलकरूपेण एवं बाह्य प्रकाश सहयोगमें रसिमसंयोगानुगृहीत विषयके रूपमें अधिभूत भी वही है— योऽन्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः । यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ (श्रीमद्भा० २।१०।८)

इसी प्रकार—

“दृश्यपमार्कं पुरञ्च इन्द्रे परस्परं सिद्धति यः स्तः खे” कहा है—

इसी आदित्य-तत्त्वका पुरुष नामसे ब्राह्मणभाग स्वतन करता है—

“यदेतन्मण्डलं तपति”“एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः”“यदेतद्विर्विषयते”“पुरुषो”“यद्वैष्णविषयः” उक्त ब्राह्मण-भागमें स्पष्टतया अध्यात्म, अधिदैव एव अधिभूत (अधियज्ञ) खरूपसे भगवान् सूर्यका निर्देश प्राप्त होता है ।

इसके अनन्तर वैशेषिकदर्शनका स्थान है । इसमे उक्त सूर्य-विभूतिका महत्त्व ‘तेजोरूपस्पर्शवत्’ (वै० द० २।१।३)से जीवात्माकी स्थितिको तेजके चतुर्विध रूपका विभाग दिखाकर समानधर्मितया प्रस्तुत किया गया है । रूप और स्पर्शमें उद्भूत और अनुद्भूतकी विशिष्टतासे जीवात्माका देखा जाना और न देखा जा सकना झलका दिया है । शाङ्कर उपस्कारमें इन शब्दोंको सरल किया है—“उद्भृतरूपस्पर्शं यथा सौरादि” (२।१।३) । गीतामें स्पष्ट कहा है— उक्तामन्तं स्थितं वापि भुजानं वा गुणान्वितम् । विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति श्वानचक्षुषः ॥ (१५।१०)

जिस प्रकार जीवात्मा नहीं दीखता, परंतु देहके जड़ होनेसे किसी भी क्रियाकी सम्भवता चैतन्यके सम्पर्क विना समाधेय नहीं है तो ‘हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति’ (गीता १८।६।) के अनुसार हृदय-द्वहरमें स्थित उस चैतन्यकी शक्ति ही जड़ देहको क्रियाश्रय बनाकर उसकी सत्ताको सिद्ध कर देती है, उसी प्रकार सूर्यका तेज कहीं रूपके द्वारा और कहीं स्पर्शद्वारा उद्भूत (प्रत्यक्ष) एवं अनुद्भूत (अप्रत्यक्ष) रूपमें जीवात्मवादका चित्रपट प्रस्तुत करता है ।

इससे आगे चलकर दर्शनने जीवकी आयुके अविक पूर्व न्यूनके लिये सूर्यके द्वारा बननेवाले वर्ष, मास, दिन होरात्मक, कालके आश्रयसे तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व आदि अनेक शकात्मके व्यवहारकी सिद्धि-हेतु सूर्यके द्वारा अनुप्राप्ति दिशास्त्रीये द्वयके व्याजसे दिखाकर इस जगत्की वस्तुस्थितिको सुन्दररूपमें चित्रित किया है ।

‘इत इदमिति यतस्तद्विश्यं लिङ्गम्’ (वै० सू० २।२।१०) ‘उपस्कारकालात् संयोगापनायिका’ दिक् सविधानन्तु सूर्यसंयुक्ते संयोगाल्पीयस्त्वं ते च सूर्यसंयोगा अल्पीयांसो भूयांसो वा ।’

वैशेषिक सिद्धान्तवादी प्रशस्तवाद उक्त जगद्व्यवहारकी साधनामे सूर्यको ही भगवान्के रूपमें आधार मानते हैं । दिक्प्रकरणमें—“लोकसंव्यवहारार्थं मेहं प्रदक्षिणमावर्तमानस्य भगवतः सवितुर्यं संयोगविशेषाः लोकपालपरिगृहीतदिक्प्रदेशानामन्वर्थाः प्राच्यादिभेदेन दशविधाः संशाः कृताः ।”

इसके अनन्तर सांख्ययोगकी कोटि है । महर्षि कपिलने अपने सिद्धान्त सांख्यदर्शनमें बड़े हों रहस्यमय रूपसे दृष्ट एव श्रृत जगत्में सूर्यकी अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत-रूपताका एकांश उद्भरण किया है, “नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा” (५।१०४) । विज्ञानभिक्षुने विवरण करते हुए सूर्यसत्ताको स्पष्ट स्वीकार किया है—“अतो दूरस्थसूर्यादिसम्बन्धार्थः ।”

(सूत्र १०५) न तेजोऽपसर्पणासैजसं चधुर्वृत्तित-
स्तत्सिद्धेः” (वि० भि० भा०) इटित्येव दूरस्थं
सूर्यादिकं प्रत्यपसरेदिति ।

तदनन्तर उक्त दर्शनद्वयीका परिपूरक योगदर्शन तो
सूर्यकी सत्ताको पिण्ड और ब्रह्माण्डमे व्यापक विमूलिके
रूपमे प्रस्तुत करता है—

‘भुवनश्नानं सूर्ये संयमात्’ (यो० ३ । २६)

भृः भुवः स्वः आदि सात लोक ऊपरके तथा अन्तल,
वितल एवं सुतल आदि सात नीचेके सभी चौदह भुवनवर्ती
पदार्थोंका ज्ञान भगवान् सूर्यदेवमे मनोवृत्तिके संयमसे
सुखसाथ है । इसके लिये कहीं भी जानेकी आवश्यकता
नहीं होती । श्रीमद्भागवतकी परमसंहितामें भगवान्
श्रीकृष्णने चौरासी लाख योनियोंमें पुरुषशरीरको अपना
तनु बताया है । यही उदाहरण उक्त सत्यमें पर्याप्त है ।
हम जीव साधारण पुरुष-नामसे प्रस्तुत किये गये और
हमारे जगन्नियन्ता महापुरुष नामसे पुकारे गये । श्रीमद्भा०
७ । ८ । ५३) मेंकहा है—‘वर्यं किम्पुरुषास्त्वं तु
महापुरुष ईश्वरः’ । इसी तथ्यको महर्षि पतञ्जलि योग-
दर्शनमें विश्लेषण करते हुए कहते हैं—‘क्लेशकर्मविषय-
काद्यैरपरामृग्नः पुरुषविशेष ईश्वरः’ । आदि महापुरुषके
शरीरमें अङ्गविभागके आधारपर ‘नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्णो द्यौः’ (यजुर्वेद ३१ । १३)को कृष्णद्वैपायन व्यासजी
श्रीगद्भा० २ । ५ । ३६ से ४२तकमें विशेषतासे और
भी सरल कर देते हैं—‘कद्यादिभिर्धः सप्त सप्तोद्धर्वं
जघनादिभिः’—इसी सामान्यतासे अखिल ब्रह्माण्डकी
स्थिति व्यक्तिरूपसे हमारे शरीरमें भी वैसे ही कल्पित
है । अतः ‘यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे’ यह जनोकि है ।

साधना-मार्गमें सूलाधारसे कुण्डलिनीका उत्थान साधित
कर इडा, पिङ्गला एवं सुषुम्णा—(गंगा, यमुना, सरस्वती-)
द्वारा प्राणायामके सहयोगसे पट्टचक्रमेदेन करके सहस्रारमें
इष्टवन्दना या परानन्दा आदि उत्कृष्ट सम्पत्ति दर्शनीय
है । हृदयान्तवर्ती-अष्टदल कमलसे होकर आती हृदै सुषुम्णा

ही अनिर्वचनीय शोकादिरहित प्रकाशकी भूमि है ।
प्रकाश या सत्त्व प्रसादभूमि है । अन्धकार या तम
शोकस्थान हैं । सुषुम्णाको ज्योतिष्मान् सूर्यका स्थान कहा
है । अतः इसकी साधना सूर्यकी उपासना है । यह योगीकी
अन्तःकारणस्थितिको निस्तरङ्ग महोदयिके समान स्थिति-
निवन्धन बना देती है । (यो० द० १ । ३६) । ‘विशोका
वा ज्योतिष्मती’ ही ज्योतिष्मान् सूर्य-स्थिति है । अतः हृष्णद्व-
रीकमें भी विशोका और ज्योतिष्मतीकी स्थिति खाभाविक
है । यजु० ३३ । ३६ मैत्रमूलके—‘तरणिर्विद्वदर्शनो
ज्योतिष्ठदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम्’ । आदि-
को योगदर्शनप्रदीपिकाकी टिष्ठणीमें और भी सप्त
विद्या गया है—‘नया खलु वाह्यान्यपि सूर्यदीनि
मण्डलानि प्रोत्तानि सा हि चित्तस्थानम्’ । ब्रह्माण्ड
और पिण्ड—ये दोनों समान जातिके हैं । जो
ब्रह्माण्डमें देखा जाता, वह सभी पिण्डमें भी पाया जाता
है । इसकी भावाभिव्यक्ति इस श्लोकसे परिपुष्ट है—

एवं हृदयपश्चं तलुम्यते हृदयस्यके ।
सोमाग्निरिच नक्षत्रं विद्युत्सेजसो युतम् ॥

सरस्तीस्वरूप सुषुम्णा नाडी हृदयपुण्डरीकसे
होकर जाती है । उसमें उक्त श्लोक-निर्दिष्ट सभी
सूर्यादिज्योति परिवद्ध हैं । जहाँ वाह्य मण्डलमें सूर्य-
आमा है, काँ भीतर भी सूर्यमण्डलका अस्तित्व है । इस
प्रकार दार्शनिक दृष्टिमें सूर्य व्यापक सत्ताका साक्षी है—
(पूर्व कथित है—) ‘भुवनश्नानं सूर्ये संयमात्’ ।

इसके अनन्तर पू० मी० (कर्मकाण्ड), उ० मी०
(ज्ञानकाण्ड) दर्शनद्वयी चरम विश्वामभूमि हैं । उत्तर-
मीमांसा ब्रह्मसूत्र नामसे सर्वविदित है । ब्रह्मशब्द षड्ङ्ग
वेदका वाचक है । वेद ईश्वरज्ञान है । पूर्वभाग कर्मकाण्डके
द्वारा ईश्वर-अर्चना कहता है; किंतु कामनाओंपर आवारित
होनेसे शाश्वत सुखरूप नहीं है । किंतु उत्तर मीमांसा
(ज्ञानकाण्ड) कर्मफलकी अनिच्छापूर्वक परमतत्त्वमें
समर्पण कर सभी उत्तरदायित्वों (जिमेदारियों) से मुक्त
होनेके कारण शाश्वत सुखस्थान है—

यथि सर्वाणि कर्मणि संन्यस्याव्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा मुख्यस्व विगतज्वरः ॥
(गीता ३ । ३०)

इस सिद्धान्तका निष्कार्य है—‘सर्वं कर्माखिलं पार्थ
ज्ञाने परिसमाप्यते’ (गी० ४ । ३३) ।

इसी कारण ब्रह्मसूत्र उत्तर मीमांसा नामसे कहा गया है ।
इसमें कर्म या कर्मफलका समर्पण परमब्रह्ममें सिद्धान्ततया
कहा गया है । पहले पूर्वमीमांसामें दर्शनका क्षेत्र देखें—
जहाँ वेद-मन्त्रोदारा सूर्यका वैभव अध्यात्म-अधिदेव-
अधिभूत (द्वुलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक) रूपसे
अपरिच्छिन्न सत्तामें स्पष्ट किया है । इतना ही नहीं, बल्कि
साक्षात् विष्णुरूपसे सूर्यकी विभूति गायी गई है ।
निरुक्त दैवतकाण्डमें विष्णुपदकी अन्वर्यता स्थावर-जड़में
सूर्यरश्मि-जालकी व्यापकताके आधारपर है; क्योंकि
सूर्य ही रश्मियोदारा सर्वत्र व्याप्त है । इसलिये यही विष्णु
है—‘यदिपितो भवति तद्विष्णुर्भवति’ तथा ‘इदं
विष्णुर्विचक्षमे ब्रेधा’ (ऋ० वे० १ । २ । ७ । २) गीतामें
इसी तथ्यको और भी स्पष्ट कर दिया है—‘आदित्याना-
महं विष्णुज्योतिषां रविरञ्जुमान्’ (१० । २१) ।
मीमांसाका पूर्व भाग यज्ञकल्प है । इसमें सूर्य (आदित्य) से
इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा
जुहोमि’ (यजु० ३४ । ५४)—इस मन्त्रमें चिरजीवनकी
कामनाएँ आभिकाह्वित हैं । इसी प्रकार कर्म-प्रधान शाखा
(पू० मी०) में सूर्यकी रश्मियोदारा भौतिक वस्तुओंकी
प्राप्तिका स्रोत दिखाते हुए पाण्डुरोग (पीलिया) की पूर्ण
चिकित्साव्यवस्था पूर्वमीमांसादर्शनकी अपनायी सरणीमें वेद-
मन्त्रोंसे ही करता है—‘शुकेषु मे हरिमाणं रोपणा-
कासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि-
दध्मसि’ (ऋ० १ । ५० । १२) । इस प्रकार यह पञ्चम
कोटिका पूर्वमीमांसा-दर्शन भी ब्रह्माण्डपिण्डमें सूर्यके तात्त्विक
स्वरूपको दर्शनसिद्धान्तकी दृष्टिसे व्यवस्थापित करता है ।

परिशेषमें स्थान आता है ‘ब्रह्मसूत्रका (उ० मी० द० ऋ०) ।
इसमें ‘ज्योतिश्चरणाभिधानात्’ (अ० १, पा० १,
सू० २४) एवं ‘ज्योतिर्दर्शनात्’ (१ । ३ । ४०) इनदोनों
सूत्रोंके द्वारा सूर्यकी ज्योतिश्चरणा सत्ताको स्थृतासे
निर्देशित किया है । ४०वें सू०के भाष्यमें भगवान् शंकर
लिखते हैं—‘अथ यज्ञैतदसाञ्छरीरादुक्तामत्यथैतै-
रेव रश्मिभिरुर्ध्वमाकमते’ । छां० उ०के अनुसार यही
एकमात्र सूर्यतेज जो भौतिक-दैविक विधिसे नेत्रगोलक एवं
तेजोवृत्तिरूपसे पिण्डमें विद्यमान है, द्वुलोकमें प्रकाश-
मान ब्रह्माण्डव्यापी भास्वरतेज ब्रह्मरूपसे उपासित मुक्तिका
आश्रय है । भाष्यकार और भी स्पष्ट कर देते हैं—
‘एवं प्राप्ते ज्ञूमः परमेव ब्रह्मज्योतिः शब्दम्’ ‘ब्रह्म-
ज्ञानाद्वि अमृतस्वप्राप्तिः’, (—यजु० नारायणसूक्त) । इस
तथ्यको स्पष्ट करता है—‘तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।’ योगदर्शनने इसीके बलपर
कहा है—‘विशेषका वा ज्योतिष्मती’ (सू० १ । ३६)
उपनिषद्भाग इस दार्शनिक दृष्टिको प्रकाश देता है—
‘तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः’
(ई० उ० ७) ।

ब्रह्मसूत्र (१ । ३ । ३१)में ‘मध्यादिष्वसम्भवादन-
धिकारं जैमिनिः’ पर भाष्यकार छां० उ० का उद्धरण
देकर सूर्यको मधु (अमृत) रूप स्वीकार करते हैं—
‘असौ वा आदित्यो मधुः’ । वेदा० द० १ । २ । २६
सूत्रके भाष्यमें ऋग्वेदका उद्धरण भाष्यकारने यह दिया है—
‘यो भानुना पृथिवीं धामुतेमामाततान रोदसी
अन्तरिक्षम्’—जो एक परमतत्त्व सूर्यकी ब्रह्माण्ड-पिण्ड
मध्यवर्ती सत्ताका विशुद्ध उदाहरण है ।

इस प्रकार उक्त विचार परम्परासे भगवान् सूर्यका
दार्शनिक अस्तित्व या सूर्यतत्त्वकी विवेचनात्मक-सत्यता
निश्चित रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि यही विशुद्धतत्त्व
छाँ० दर्शनोदारा विभिन्न विचारधाराओंमें प्रतिपादित
स्थावर-जड़मात्मक दृष्ट-श्रुत विश्वमें अनुस्यृत विभूति है ।

श्रीवैखानस भगवच्छाख्य तथा आदित्य (सूर्य)

(लेखक—चल्लपल्लि भास्कर श्रीरामकृष्णमाचार्युलजी एम्० ए०, वी० ए३)

श्रौतसार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूचितम् ।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः ॥
येन वेदार्थविशेषे लोकानुग्रहकाम्यया ।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः ॥

‘श्रौत तथा सार्तार्थ य समस्त क्रिया-कलाप जिनके द्वारा सूचित है, उन समस्त वेदार्थोंके ज्ञाता विखानसजी-को नमस्कार है । वेदार्थके ज्ञाता जिन विखना मुनिने लोकानुग्रहकी इच्छासे औखेय नामक कल्पसूत्रकी रचना की, उन्हे नमस्कार है ।’

वैखानस सम्प्रदाय विष्णवाराधक-सम्प्रदायोंमें अत्यन्त प्राचीन तथा वैदिक कहलाता है । वैष्णवार्चन सम्प्रदायमें वैखानस, सात्वत और पाञ्चरात्र नामसे प्रसिद्ध तीन विभाग हैं । पक्षान्तरमें पहले और दूसरे सम्प्रदायोंको एक ही विभागके अन्तर्गत माना जाय तो दो विभाग सिद्ध होते हैं । इनमें पहला वैखानस-सम्प्रदाय श्रीविष्णुके अवतारस्तररूप भगवान् विखनामुनिके द्वारा प्रवर्तित है तथा दूसरा उनके अनेक शिष्योंमें भृगु, अत्रि, कश्यप एव मरीचि नामक ऋषिचतुष्यद्वारा अनुवर्तित है । ये विखना मुनिवर अष्टादश कल्पसूत्र-कर्ताओंमें एक हैं । इनकी विजेपता तो यह है कि इन्होंने श्रौत-सार्त-धर्मसूत्रयुक्त वर्तीस प्रश्नात्मक परिपूर्ण कल्प-सूत्रोंकी रचना की है और इनके अतिरिक्त सूत्रोंमें मानव-कल्पाण-प्रातिके लिये भगवदाराधना करनेके सम्पूर्ण विवि-विवानोंका निर्देश करते हुए भगवदाराधना केवल स्वार्थके लिये ही नहीं, परार्थके लिये भी करनेका विधान निरूपित किया है—

गृहे देवायतने वा भवस्त्वा भगवन्तं नारायणमर्चयेत् ।
(—वैखानस-सार्तसूत्र प्र० ४ । १२ । १०)

इस सूत्रमें संक्षेपसे उक्त ‘देवायतने वा’ वाक्यका तथा उन (विखनसजी)के द्वारा उपदिष्ट सार्वकोटि-प्रमाण

देविक (कर्पणा या भू-संस्कारसे लेकर आल्य-निर्माणके उपरान्त वैर-प्रतिष्ठापर्यन्त) शारपको उपर्युक्त भृगु आदि शिष्योंने संक्षिप्त करके चातुर्लक्ष-प्रमाण शाखका निर्माण किया है । उक्त भगवान् विखनसजी तथा शिष्योंद्वारा उनके ग्रन्थोंमें भगवान् आदित्य (सूर्य)के सम्बन्धमें पाये जानेवाले कुछ विशेष अंश यहाँ संक्षेपमें स्थिते हैं ।

१—सार्तसूत्र (विखनमन्त्रित)—

इसमें भगवान् सूर्यका ‘आदित्य’ शब्दसे ही उल्लेख प्रधानतया पा सकते हैं । वेदस्तररूप श्रीमद्रामायणके अन्तर्गत ‘आदित्यहृष्टस्तोत्र’में भी इनको ‘आदित्य, सविता, सूर्य, भग, पूषा और गमस्तिमान्’ पुकारनेके संदर्भमें आदित्य शब्द प्रधानतया योजित है । इसमें (कल्पसूत्रमें) आदित्यकी आराधना ‘प्रहमख’ अथवा प्रह-यज्ञ-निरूपणके समय कही गयी है । प्रह-मख करनेकी आवश्यकताका निरूपण करते हुए कहा है कि—

प्रहयत्ता लोकयात्रा ॥

(प्र० ल्ल० वा० ३ । १३ । २)

तस्मादात्मविरुद्धे प्राप्ते प्रहान् सम्यक् पूजयति ।
(४ । १३ । ३)

लौकिक जीवन ग्रहोंके अधीन होता है । इसलिये उनके विरुद्ध होनेपर ग्रहोंका सम्यक्-रूपसे पूजन करनेका विधान है । आदित्यके चतुरस्त-मण्डल-रूप-पीठका निर्माण करके वहाँ रक्तवर्ण तथा अग्नि अधिदेवताको रखकर मध्य स्थानमें उनकी आराधना करनी चाहिये । इनके प्रत्यधिदेवता ईश्वरका निरूपण व्याघ्यायोंमें श्रेष्ठ श्रीनिवासदीक्षितकृत तात्पर्य-चिन्तामणि नामक व्याघ्यायोंमें पाया जाता है । इनकी करबीर

आदि रक्तवर्णवाले पुण्योसे अर्चना करके' शुद्धौदन निवेदन 'किया जाता है। ४ । १४ । ८-९ वाले मन्त्र-वाक्योंसे इनको त्रिमधुयुक्त अर्ककी समिधाओंसे 'आसत्येन' मन्त्र पठकर १०८ आहुति या २७ आहुति दी जाती है। इनका हवन वैदिकीतिसे अग्नि-प्रतिष्ठापन करके 'सम्य' नामक अग्नि-कुण्डमें किया जाता है। इनके अधिदेवताके लिये 'अग्निदूतम्' मन्त्रसे आहुति दी जाती है। आहुति भी ग्रह-देवताओंके उक्त संह्याके अनुसार १०८ या २७ दे। सामर्थ्य न हो तो एक ही बार करे; यथा—गृह्य—

ग्रहदेवाधिदेवानां होमं पूर्वोक्तसंख्यया ॥
अशक्तमेकवारं चा होतव्यं ग्रहदैवकम् ।
(श्रीनिवास दीक्षितीय पृ० ६६६)

आदित्यके लिये 'रक्तँधेनुमादित्याय' के अनुसार लाल रंगवाली गायका दान दिया जाता है। इस प्रकार नवग्रह-पूजा करनेसे ग्रहदोषसे उत्पन्न सभी दुःख तथा व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं—

'एतेन नवग्रहज्ञा दुःखाभ्याधयः शान्तिं यान्ति ।'
(४ । १४ । ७)

इसमें ध्यान देनेकी बात यह है कि अन्य सभी

१. तण्डुलैः केवलैः पक्वं शुद्धान्नम्...यह विमानार्चन-कल्पमरीचि-कृत विच्त्वारिंशत् पटलमें है, वाचस्पत्यमें तो 'शुद्धौदन रवेद्यात्' कहा गया है।

२. सम्य नामक अग्निकुण्डका स्वरूप चतुरस्त कहा गया है। यथा—ब्रह्माग्नि पञ्चधा सप्त्वा पञ्चलोकेष्वकल्पयत्।

चतुरस्तो जनोलोकः कुण्डः सम्यस्य तादृशः । (—श्रीनिवासदीक्षित सकलित—भृगु-वचन)

व्रह्माजीने अग्निका पौच्च प्रकारसे सूजन करके पौच्च लोकोंमें स्थापना की है। जनोलोकके आकारके समान 'सम्य' कुण्ड चतुरस्त होता है। यही अंग अन्य भगवच्छास्त्रसंहिताओंमें भी कहा गया है।

३. दानके बारेमें वाचस्पत्यमें 'सूर्याय कपिल धेनुम्' कहा गया है।

४. सूर्यपुराण, विष्णुपुराण आदि पुराणोंमें भी पहले सूर्यका चतुरस्त स्वल्प कहा गया है। वादमें वृत्त वत्तावा गया है।

(यह कथन उक्त श्रीनिवासदीक्षितरचित सूत्र-व्याख्याके उपोद्घात याग 'दत्तविवेदेतुनिरूपण' के 'सर्वेषां सूत्राणामादिमत्वात्' देतु निरूपणके अवसरमें है ।)

सूत्रकार सूर्यका वृत्ताकार मण्डल सिद्ध करते हैं, पर केवल विखनसजीने ही सूर्यका चतुरस्त मण्डल कहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय—विखना मुनिका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सूर्यका चतुरस्त मण्डल स्वरूप हो। बाँदमें सावर्णिके मन्वन्तरके कालसे लेकर सूर्यका मण्डल वृत्ताकार हुआ हो।

अब उनके शिष्य भृगु आदि मुनियोद्वारा निर्मित 'भगवदाधना-शास्त्रमें विष्णवाराधनाके अङ्गरूप आराध्य श्रीआदित्य (सूर्य) के सम्बन्धमें उक्त कुछ विशेष अंश यहाँ द्रष्टव्य हैं। ये अंश अविकतया उपलब्ध पुराण-हितिहासप्रसिद्ध अशोसे मेल नहीं खाते। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध भगवदवतारोंके सम्बन्धमें उक्त अंश भी नहीं मेल खाते। इसका कारण मन्वन्तर-में ही हो सकता है। अस्तु,

१—विमानार्चनकल्प (मरीचिकृत)में है—द्वितीया-वरणे प्राणद्वारादुत्तरे पश्चिमाभिमुखो (कृष्णश्वेताभो) रक्तवर्णः शुक्राम्बरधरो द्विपुजः पञ्चहस्तः सप्ताश्व-वाहनो हयध्वजो रेणुकासुवर्चलापतिः 'ख' कार-धीजोविधिकोषरवः सहस्रकिरणो मण्डलवृत्तमौलि श्रावणे मासि हस्तज आदित्य 'आदित्यं भास्करं मार्त्यं द्विवस्त्रन्तमिति ।' (पृ० १०२, विंशः पटले)

(आलयके) द्वितीयावरणमें प्रागद्वार (पूर्व दिशाके द्वार) के उत्तर भागमें पश्चिमाभिमुख हुए, रक्त (लाल) वर्णमाला, शुक्र (श्वेत) वस्त्र धारण किये, दो मुजावाले, पद्मसंहित हस्तवाले सप्ताश्वाहन तथा हय (अश्व) घजवाले रेणुका तथा सुवर्चला देवियोंके पति 'ख'कार बीज तथा अविष्वेष-तुल्य रववाले, सहस्र किरणोवाले, जिनके सिरके स्थानमें गण्डल (वृत्ताकार) होता है, तथा श्रावण मासमें हस्त नक्षत्रमें जन्म लिये हुए 'आदित्य'का आवाहन 'आदित्य, भास्कर, सूर्य, मार्त्तण्ड, विवस्वन्त' नामोंसे करना चाहिये।

२-क्रियाधिकार (भृगुप्रोक्त)

मार्तण्डः पश्चहस्तश्च पृष्ठे मण्डलसंयुतः ।
चतुष्पादौ द्विपादौ वा पलाशः कुसुमप्रभः ।
श्रावणे हस्तजो देवयो रेणुका च सुवर्चला ॥
सप्तसप्तसिसमायुक्तो रथो वाहनमुच्यते ।
अनूरुसारथिः सप्तो ध्वजस्तुरग पव वा ॥
(पृष्ठ ४९)

इनमें उक्त अंश अधिकतया उपर्युक्त विमानार्चन कल्पोक्त लक्षणसे ही मेल खाते हैं। अधिकांश तो ये हैं कि द्विपाद या चतुष्पाद होनेका तथा सारणि, अनूरु और ध्वजको सर्प या तुरग कहा गया है।

१. रेणुका तथा सुवर्चलाके नामोंका उल्लेख 'क्रियाधिकार' में—

सुवर्चलामुपा चातिश्यामलां सुप्रियामिति । अर्चयैदक्षिणे देवीं रेणुकां रक्तवर्णिनीम् ॥

प्रत्यूषां श्वेतवस्त्रां तामिति वामे समर्चयेत् । × × ×
सुवर्चला, उषा, अतिश्यामला, सुप्रभा और रेणुका रक्तवर्णिनी, प्रत्यूषा, श्वेतवस्त्रा नामोंसे अर्चना करें।

२. वैखानस—अर्थात् विवरणस् मुनिके सूत्रानुयायी अथवा वानप्रस्थाश्रमी । ३. वालविल्य—सप्तलीक वानप्रस्थका एक भेद है। वालविल्यका निरूपण इस प्रकार पाया जाता है—वानप्रस्था सप्तलीका अपलीकाश्चेति ॥ १ ॥

सप्तलीकाश्चतुर्विद्या: औदुम्बरो वैरिञ्चो वालविल्यो केनपश्चेति ॥ २ ॥

वालविल्यो जटाधरः चीरवल्कलवसनः अर्काङ्गिः कार्तिक्या पौर्णमास्यां पुष्कलं भक्तमुत्सृज्य अन्यथाशोषान् मासानुपजीव्य तपः कुर्यात् ॥ ६ ॥ (वैखानस-स्मार्त-सूत्र, प्रश्न २—७)

वालविल्य जटाधारण करके चीर तथा वल्कलको बब्लरूपमें धारण करते हुए सर्वको ही अग्निके रूपमें धारण करके, कार्तिक-पूर्णिमाके दिन अर्जित समस्तको भक्तोंको दान देकर वाकी महीनोंको किसी तरह (उञ्छवृत्ति न्यादि) से जीवन चलाते हुए तपस्था करे।

३-खिलाधिकार (भृगुप्रोक्त अध्याय १७।३९-४४)
के अनुसार लक्षण देखें—'त्रिणेत्र मुकुटी तथा ।'

विम्बं मार्तण्डस्य कुर्यात्पृष्ठे मण्डलसंयुतम् ॥
चतुष्पादं कारयेच द्विपादमथवा रविम् ।
दोर्भिंद्वादशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्मावरं तथा ॥
शुक्रामवरधरं चापि देवेण रुक्मलोचनम् ॥
पत्नीं सुवर्चला नाम रेणुकेति च यां निदुः ।
मुनिः कनकमाली स्याद्विलिजिते च विचक्षणः ।
वैखानसो मुनिर्धीयान् स्वर्णमाली प्रकीर्तिंतः ॥
वलिजित् वालविल्यश्च ताद्युभौ च सितासितौ ।
अस्त्रं वाहनस्थाने कपिलं रुक्मकेशकम् ॥

उपर्युक्त क्रियाधिकार-ग्रन्थोक्त लक्षणोंके अतिरिक्त उक्त अधिक लक्षणोंका सम्बन्ध इस प्रकार लिख सकते हैं—आदित्यकी बाहु-संख्या द्वादश हैं। व्याघ्रचर्माम्बर धारणके अनिरिक्त इनके समीपमें दो मुनियोंकी उपस्थिति कही गयी है। वे हैं स्वर्णमाली तथा वलिजित्। इनमें स्वर्णमाली वैखानस मुनि तथा वलिजित् वालविल्य कहलाते हैं। उनका शरीर कमशः सित (सफेद) और असित (काले) वर्णसे युक्त होता है। म्रहण सौलभ्यके लिये उपर्युक्त लक्षणोंको अप्रेलिखित कोष्टकमें अड़ाते करके दिखलाते हैं।

मरीचि-प्रोक्त विमानार्चन-	वर्ण	वस्त्र	भुज	हस्त	सिर	जन्म- काल	नक्षत्र	बीज	रथ	पाद- सख्या	पल्नी	वाहन	भवज	सारथि	मुनि
कल्पके अनुसार	रक्त (लाल)	शुक्र (श्वेत)	दो	पद्म- हस्त	मण्ड- लावृत मौलि	आवण मास	हस्त	ख	अविष्व कार	वोप रथ	रेणुका तथा मुवर्चला	सप्तश्व वाहन (घोड़ा)	इय		
कियाधिकारके अनुसार	पलाश- कुसुम- का (लाल)	पद्म- हस्त	पृष्ठ- भागमे	आवण मास	हस्त	दो या चार	रेणुका तथा मुवर्चला	सप्तसप्ति युक्तरथ (चोदा)	तुरग कनक- माली	अनूर कनक- माली	
भृगु-प्रोक्त खिलाकारके अनुसार	शुक्रा- म्बर तथा व्या- ग्नाम्बर	वारह	पृष्ठ- भागमे	दो या चार	रेणुका तथा मुवर्चला	अरुण कनक- माली	वलि- जित्	

अवतक वैखानस-शास्त्रमें आदित्यके स्वरूपका निरूपण किया गया है। आदित्यके प्रतिष्ठा-विधान तथा आराधना-विधानका सविवरण वर्णन भृगुप्रोक्त 'कियाधिकार' तथा 'खिलाधिकार' आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उनका परिचय स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जाता है। जिज्ञासु पाठक उक्त ग्रन्थोंमें उनका अनुशीलन करनेके लिये प्रार्थित हैं।

इस लेखका उद्देश्य केवल यही है कि वैखानस-सम्प्रदायमें उक्त आदित्यसम्बन्धी विशेषांशोंका परिचय दें दिया जाय। ये विशेषांश अन्य किसी शास्त्र तथा पुराणोंमें भी पाये जाते हैं कि नहीं, हम निर्धारण नहीं कर सकते। कोई भी अध्ययनशील जिज्ञासु पाठक इन विशेषताओं (अर्थात् पल्नी, हस्त-संख्या, वस्त्र, मुनि, जन्म-काल आदि) को किसी अन्य ग्रन्थोंमें भी पाये हों तो कृपया इस रचयिताको सूचना दें।

सूर्यकी उदीच्य प्रतिमा

रथस्थं कारयेद्वेवं पद्महस्तं सुलोचनम् । सप्तश्वं चैकचकं च रथं तस्य प्रकल्पयेत् ॥
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसप्तश्वम् । नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् ॥

स्फन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ।
चौलकच्छुन्नवपुषं वचचित्तिरेषु दर्शयेत् । वस्त्रयुग्मसमोपेन चरणौ तेजसा धृतौ ॥

उन सूर्यदेवको सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित, हाथमें कमल धारण किये हुए, रथपर विराजमान वनाना चाहिये। उस रथमें सात अश्व हो, एक चक्का हो। सूर्यदेव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमलके मध्यवर्ती भागके समान हो, विविध प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित दोनों भुजाओंमें वे कमल धारण किये हुए हों, वे कमल उनके स्फन्ध देशपर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये वनाने चाहिये। उनका गरीर पैरतक फैले हुए वस्त्रमें छिपा हुआ हो। कहींपर चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा प्रदर्शित की जानी चाहिये। उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रोंमें हैंकी हूई हो। दोनों चरण तेजोमय हों। (प्रायः ऐसा ही वर्णन वृ० स० ५७ । ४६-४८ में है ।)

वेदाङ्ग—शिक्षा-अन्योंमें सूर्य देवता

(लेखक—प्रा० पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र)

वेदके द्वारा अद्भुतोंमें शिक्षा-नामक प्रथम अङ्ग है। इसके साहित्यमें सूर्यनारायणकी जो चर्चा आयी है, उसको वहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

१—वेदके तीन प्रमुख पाठ—हैं संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ। संहितापाठ ही अपौरुषेय एवं ऋग्विद्यारा निर्दिष्ट है। इस पाठका अस्यास रखने और करनेवाला व्यक्ति 'भूर्योदेक'की प्राप्ति करता है।

'संहिता नयते सूर्यम्'

(वाचवल्क्य-शिक्षा, पृ० १, श्लोक २५)

२—सर्वत्र वार्णीका वैभव स्वरात्मक तथा व्यञ्जनात्मक वर्णोंपर आधारित है। संस्कृत वाद्यमें व्यवहृत समस्त वर्ण किसी देवतासे अविषित हैं। सस्कृतका प्रत्येक वर्ण देवाधिष्ठित है। इसलिये भी संस्कृत देवभाषा कहलाती है। वर्णसमुदायमें सूर्य देवतासे अविषित अरुणवर्ण निम्नलिखित हैं—

(क) चार उप्सा (श, प, स, ह)—

'चत्वार ऊप्साणः' (श प स ह) अरुणवर्णा आदित्यदैवत्यः। (पृ० ३१, श्लोक ७९)

(ख) वृथवि विभिन्न वर्ण हैं और उनके देवता मित्र-मित्र हैं, फिर भी भगवान् सूर्य समष्टि रूपसे समस्त वर्णोंके देवता हैं—

आदित्यो मुनिभिः प्रोक्तः सर्वाक्षरगणस्य च ।

(या० शिक्षा, पृ० १५, श्लोक ९१)

इस शिक्षाकी उक्तिका वैज्ञानिक अध्ययन यह है कि विश्वके समस्त प्राणियोंमें वर्णोंका उच्चारण सूर्यनारायणके तापमान और शीतमानके प्रभावसे होता है। आज विश्वके विभिन्न देशोंकी उच्चारणशैलीमें जो विचित्रता एवं स्पष्टता है तथा कई देशोंमें उनकी भाषामें अनेक वर्णोंका बटाव-बढ़ाव और रूपान्तर है,

वह सूर्यके तेजकी न्यून अथवा अधिक उपलब्धिसे सम्बद्ध है। हमारा यह भारतवर्ष अनेक राज्योंमें विभिन्न एक वडा देश है। प्रत्येक गज्यमें तापमान और शीतमान एक रूपमें नहीं है। इस शीत-तापकी विपर्मताके कारण प्रत्येक राज्य एवं उसके खण्डोंमें वसनेवाले व्यक्तियोंकी वर्णाचारणशैली तथा स्वरमें अन्तर पाया जाना है; किंतु वेदाध्ययनके विषयमें गुरुसुवर्षसे नुने हुए शब्दोंके अनुकूल उच्चारणके अन्यासकी परम्परा सार्वदेशिक रूपसे एक हो जाती है। खेदके साथ यिन्हना पड़ता है कि आजकल वेदके अध्येता रटने और रटनेकी प्रक्रियासे भागते हैं और अपनेको समझदार कहनेवाले सभ्य भारतीय भी रटने-रटनेकी प्रक्रियाको अनुपयोगी समझते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वेदमन्त्रोंके उच्चारणमें एकरूपता कुछ गिने हुए विद्वानोंको छोड़कर अन्योंमें नष्टप्राप्त हो रही है। यह भारतवर्षी शिक्षा-मर्यादा एवं गौरवपर कुठाराधात है। वेदोच्चारणकी प्रक्रिया एकरूप है; फिर भी विभिन्न स्थानोंमें शीत-तापसे प्रभावित स्वक्षेत्रीय भाषासे ऊपर उठकर राष्ट्रिय एक भाषा एवं उच्चारणकी अन्तर्जागर्ति की जा सकती है। भारतमें भाषा-विवाद पुरातन इतिहासमें लंशमान भी नहीं मिलता है। आज भी यह भाषा-विवाद वेद एवं सस्कृत-शिक्षाके माध्यमसे दूर किया जा सकता है।

३—पराशरी-शिक्षामें भगवान् सूर्यको देवताओंमें विश्वात्मा बनाया है—

'यथा देवेषु विश्वात्मा' (पृ० ५२, श्लोक १)

दैनन्दिन सूर्योपस्थानके मन्त्रमें भी 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' कहकर हम सूर्यको समस्त जगत्की आत्मा मानते हैं। अतः भगवान् सूर्य विश्वात्मा है।

४—नारदीय शिक्षामें सामवेद तथा लौकिक संगीतके निषाद स्वरके देवता सूर्य बताये गये हैं।

समस्त स्वरोकी अन्तिमता निपाद स्वरमें होती है; क्योंकि समस्त जगत्‌का अन्तिम और व्यापी तत्त्व सूर्य इस स्वरके देवता है—

निषीदन्ति खरा यस्सान्निपादस्तेन हेतुना ।
सर्वाश्राभिभवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम् ॥
(पृ० ४१३, श्लोक १९)

५—सूर्यकी किरणोंमें अगल-बगल धूपमें आड़ लगाकर ब्रीचके रखे गये छिद्रसे जो 'धूलिकण' दिखायी पड़ते हैं, उनकी चब्रल गतिसे 'अणुमात्रा'का समय एवं उनके गुरुत्वसे 'त्ररारेणु'का तौल बताया गया है। चार अणुमात्रा कालका सामान्य एकमात्रा काल होता है। एक मात्रिक वर्णको हस्त कहते हैं। मनमें यदि व्यक्ति गतिसे शब्दोच्चारणकी भावना रहती है तो उस उच्चारणका प्रत्येक स्वर-वर्ण एक अणुमात्रा कालका माना जाता है—

सूर्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते ।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा च चतुराणवा ॥
(या० शि० ११)

मानसे चाणवं विद्यात् । (या० शि० १२)
जालान्तर्गते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
त्रसरेणुः सविहेयः ।

६—सूर्यकी गतिसे प्राप्त शरद् ऋतुका विष्वान् मथ्यदिन जब वीत जाय, तब उपःकालमें उठकर वेदाध्ययन करना चाहिये। इस उपःकालका वेदाध्ययन वसन्त ऋतुकी रात्रि मथ्यमानकी हो तबतक चाल्द रखना चाहिये—

शरद्ग्रिपुवतोऽतीतादुपस्थुत्यानमियते ।
यावद्वासन्तिकी रात्रिमध्यमा पर्युपहिता ॥
(नारदीय-गि०, पृ० ४४२, श्लोक २)

७—वेदका स्वाध्याय आरम्भ करते समय पाँच देवताओंका नमस्कार विहित है। उनमें भगवान् सूर्यका नमस्कार समस्त वेदोंके स्वाध्यायारम्भमें आवश्यक है—
गणनाथसरस्वतीरविशुकवृहस्पतीन् ।
पञ्चैतान् संसरजित्यं वेदयाणीं प्रवर्नयेत् ॥
(सम्प्रदाय-प्रवोधिनी-शिक्षा, श्लोक २३)

अतएव वेदाध्यायी एवं वेदप्रेमी तथा उच्चारणकी स्थिता चाहनेवालोंको भगवान् श्रीसूर्यनारायणकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। सूर्याराधनासे मति निर्मल होती है और वेदोंके स्वाध्यायमें प्रगति होती है। वेदाङ्गोंमें सूर्यकी महिमा इसी ओर इक्षित करती है।

वेदाध्ययनमें सूर्य-सावित्री

प्रणवं प्राक् प्रयुज्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् । सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समरभेत् ॥
याज्ञवल्क्य-शिक्षा (२।२२) के अनुसार वेद-पाठके प्रारम्भमें 'हरिः ॐ' उच्चारणके अनन्तर तीन व्याहृतियों—भूः, भुवः, स्वः—के सहित सावित्री अर्थात् सविता देवतावाली गायत्री—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि खियो यो नः प्रचोदयात्'—का उच्चारण कर लेना चाहिये। अङ्कारका उच्चारण मनु० २। ७४ में प्रतिपादित है; यतः वेदाध्ययनके आदि और अन्तमें उच्चारण न करनेसे वह व्यर्थ हो जाता है—

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्ववत्यनोङ्कुतं पूर्वं परत्ताच्च विशीर्यति ॥
'वेद, रामायण, पुराण और महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र 'हरिः'का उच्चारण किया जाता है—
वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते । आदिमध्यावसनेषु हरिः सर्वत्र गीयते ॥'

१. वाजसनेयो-संहिताके ३३ वे अध्यायकी त्रितीय कण्डिकामें तीन ही व्याहृतियोंका व्यवहार है। पाँच या सात व्याहृतियोंका गो० स्मृ० १ का विधान भी शास्त्रान्तरीय मान्य विधि है। २. म० भा० स्वर्गा० ६ । ९३

योगशास्त्रीय सूर्यसंयमनके मूल सूत्रकी व्याख्या

‘भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्’ (वि० पाद २६)

शब्दार्थ—भुवन-ज्ञानम्=भुवनका ज्ञान; सूर्ये-संयमात्=सूर्यमें संयम करनेसे होता है ।

अन्वयार्थ—सूर्यमें संयम करनेसे भुवनका ज्ञान होता है ।

व्याख्या—प्रकाशमय सूर्यमें साक्षात् पर्यन्त संयम करनेसे भूः, भुवः, स्वः आदि सातो लोकोंमें जो भुवन हैं अर्थात् जो विशेष हृदयाले स्थान हैं, उन सबका यथावत् ज्ञान होता है । पिछले पचीसवें सूत्रमें सात्विक प्रकाशके आलम्बनसे संयम कहा गया है । इस सूत्रमें भौतिक सूर्यके प्रकाशद्वारा संयम बताया गया है, किंतु सूर्यका अर्थ सूर्यद्वारसे लेना चाहिये और यहाँ सूर्यद्वारसे अभिप्राय सुपुण्णा है । उसीमें संयम करनेसे उपर्युक्त फल प्राप्त हो सकता है । श्रीव्यासजीने भी सूर्यके अर्थ सूर्यद्वारसे किये हैं तथा मुण्डकमें भी सूर्यद्वारका वर्णन है । ‘सूर्यद्वारेण ते विरजा ।’

[टिप्पणी—कर्द्द टीकाकारोंने सूर्यका अर्थ पिंगला नाड़ीसे लगाया है, पर यह अर्थ न भाष्यकारको अभिमत है, न वृत्तिकारको और न इसका प्रसङ्गसे कोई सम्बन्ध है ।]

भाष्यकारने इस सूत्रकी व्याख्यामें अनेक लोकोका बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया है, उसको इस विषयके लिये उपयोगी न समझकर हमने व्याख्यामें छोड़ दिया है और सूत्रका अर्थ भोजवृत्तिके अनुसार किया है ।

इस भाष्यके सम्बन्धमें बहुतोंका मत है कि यह व्यासकृत नहीं है, इसीलिये भोजवृत्तिमें इसका कोई अंश भी नहीं मिलता ।

इसमें अलंकाररूपसे वर्णन की हुई तथा सद्वेजनक बहुत-सी बातें स्पष्टीकरणीय भी हैं । इन सब बातोंके

स्पष्टीकरणके साथ व्यासभाष्यका भाषार्थ पाठकोंकी जानकारीके लिये कर देना उचित समझते हैं—

व्यासभाष्यका भाषानुवाद सूत्र २६

भूमि आदि सात लोक, अर्वाचि आदि सात महानरक, (सात अधोलोक जो स्थूलभूतोंकी स्थूलता और तमसके तारतम्यसे क्रमानुसार पृथ्वीकी तर्दीमें माने गये हैं) तथा महातल आदि सात पाताल (सात जलके बड़े भाग, जो पृथ्वीकी तर्दीमें सात महानरकसंजडक प्रत्येक स्थूल भागके साथ माने गये हैं); यह भुवन पदका अर्थ है । इनका विन्यास (ऊर्ध्व-अधोरूपसे फैलाव) इस प्रकार है कि अर्वाचि (पृथ्वीसे नीचे सबसे पहला नरक अर्थात् तामसी स्थूल भाग । अर्वाचिके पश्चात् क्रमानुसार स्थूलता और तामस आवरणकी न्यूनताओं लेते हुए छः और स्थूल भाग हैं उन) से सुमेरु (हिमालय पर्वत) की पृष्ठपर्यन्त जो लोक है वह भूलोक है और सुमेरु पृष्ठसे ध्रुव-तारे (पोलस्टार Polestar) पर्यन्त जो ग्रह, नक्षत्र, तारोंसे चिनित लोक है, वह अन्तरिक्ष-लोक है—(यह अन्तरिक्ष-लोक ही भुवःलोक कहलाता है) । इससे परे पाँच प्रकारके सर्वलोक हैं । उनमें भूलोक और अन्तरिक्ष-लोकसे परे जो तीसरा सर्वलोक है, वह महेन्द्रलोक (सःलोक) कहलाता है । चौथा जो महःलोक है, वह प्राजापत्य-खर्ग कहलाता है । इससे आगे जो जनःलोक, तपःलोक और सत्यलोक नामके तीन सर्व हैं, वे तीनों ब्रह्मलोक कहे जाते हैं । (इन पाँचों—स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकको ही धौः-लोक कहते हैं ।) इन सब लोकोंका संग्रह निम्न श्लोकमें है—

ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान् ।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजा ॥

(जनः, तपः, सत्यम्) तीन ब्राह्मलोक हैं । उनसे नीचे महः नामका प्राजापत्य लोक है । उनसे नीचे सः-

नामका महेन्द्रलोक है। उनसे नीचे अन्तरिक्षमे भुवः नामक तारालोक है और उनसे नीचे प्रजा—मनुष्योका लोक—भूलोक है।

जिस प्रकार पृथ्वीके ऊपर छः और लोक हैं, उसी प्रकार पृथ्वीसे नीचे चौदह और लोक हैं। उनमे सबसे नीचा अधीचिन्नरक है। उसके ऊपर महाकालनरक है जो मिट्ठी, ककड़, पाषाणादिसे युक्त है। उसके ऊपर अम्बरीपनरक है, जो जलपूरित है। उसके ऊपर रौरवनरक है, जो अनिसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महारौरवनरक है, जो वायुसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महासूत्रनरक है, जो अंदरसे खाली है। उसके ऊपर अन्धतामित्तनरक है, जो अन्धकारसे व्याप्त है। इन नरकोमे वे ही पुरुष दुःख देनेवाली दीर्घ आयु-को प्राप्त होते हैं, जिनको अपने किये हुए पाप-कर्मोंका दुःख भोगना होता है। इन नरकोके साथ महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल, पाताल—ये सात पाताल हैं। आठवीं इनके ऊपर वह भूमि है, जिसको वसुमती कहते हैं, जो सात द्वीपोंसे युक्त है, जिसके मध्य भागमे सुवर्णमय पर्वतराज सुमेरु विराजमान है। उस सुमेरु पर्वतराजके चारो दिशाओंमे चार शृङ्ग (पहाड़की चोटियाँ) हैं। उनमें जो पूर्व दिशामे शृङ्ग है, वह रजतमय है (सम्भवतः यह शान स्टेटका पर्वतशृङ्ग हो, वर्माकी शान स्टेटके नमूर पर्वतमे आजकल रजत निकलती भी है); दक्षिण दिशामें जो शृङ्ग है, वह वैदूर्यमणिमय (नीलमणिके सदृश) है। जो पश्चिम दिशामे शृङ्ग है, वह सफटिकमणिमय है (जो कि प्रतिक्रिय प्रहण कर सकती है) और जो उत्तर दिशा-में शृङ्ग है, वह सुवर्णमय (या सुवर्णके रगवाले पुष्पविशेषके वर्णवाला) है। वहाँ वैदूर्य-मणिकी प्रभाके सम्बन्धसे सुमेरुके दक्षिण भागमे स्थित आकाशका वर्ण नीलकमलके पत्रके सदृश श्याम (दिखलायी देता) है। पूर्व भागमें स्थित आकाश श्वेतवर्ण (दिखलायी देता)

है। पश्चिम भागमें स्थित आकाश खच्छ वर्ण (दिखलायी देता) है और उत्तर भागमे स्थित आकाश पीतवर्ण (दिखलायी देता) है; अर्थात् जैसे वर्णवाला जिस दिशाका शृङ्ग है, वैसे ही वर्णवाला उस दिशामें स्थित आकाशका भाग (दिखलायी देता) है। इस सुमेरु पर्वतके ऊपर उसके दक्षिण भागमे जम्बू-वृक्ष है, जिसके नामसे इस द्वीपका नाम जम्बू-द्वीप पड़ा है। (प्रायः विशेष देशोमे विशेष वृक्ष हुआ करते हैं। सम्भव है यह प्रदेश किसी कालमे जम्बू-वृक्ष-प्रधान देश रहा हो। वर्तमान समयमें जम्बू रियासत सम्भवतः जम्बू-द्वीपका अवशेष है)।

इस सुमेरुके चारों ओर सूर्य भ्रमण करते हैं, जिससे यह सर्वदा दिन और रातसे संयुक्त रहता है। (जब कोई बड़े मोटे बेलनके साथ पतला छोटा बेलन वूमती है, तब वह भी अपना पूरा चक्र करता है। इस दृष्टिसे उस पतले बेलनके चारों ओर बड़े बेलनका चक्र हो जाता है। इसी प्रकार जब पृथ्वी सूर्यके चारों ओर वूमती है तो चौबीस घंटेमें सूर्यका भी पृथ्वीके चारों ओर वूमना हो जाता है। इस भौति सुमेरु पर्वतके एक ओर उजाला और एक ओर अँधेरा है। उजाला दिन है और अँधेरा रात्रि है। इसी प्रकार दिन और रात सुमेरु पर्वतसे मिले-जैसे माल्हम होते हैं)। सुमेरुकी उत्तर दिशामें नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामवाले तीन पर्वत विद्यमान हैं, जिनका विस्तार दो-दो हजार वर्ग-योजन है। इन पर्वतोंके बीचमें जो अवकाश (बीचके भाग बाटी Valley) है, उसमे रमणक, हिरण्यमय तथा (शृङ्गवान्के उत्तरमे समुद्रपर्यन्त उत्तरकुरु है। [टालेमीने लिखा है कि चीनके एक प्रदेशका नाम 'उत्तरकोर्ह' Ottarakorrh है, जो कि उत्तरकुरु शब्दका अपन्ना प्रतीत होता है। इससे आस-गासका समुद्रपर्यन्त प्रदेश उत्तरकुरु प्रतीत होता है।] वर्णित ये तीन वर्ष

(खण्ड) हैं, जो नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (नीलगिरि) मेरुके साथ लगा है । नीलगिरिके उत्तरमें रमणक है । पश्चिमुराणमें इसे रम्यक कहा गया है । श्वेतगिरिके उत्तरमें हिरण्यम है ।) और दक्षिण भागमें तीन पर्वत—निपध, हेमकूट, हिमशैल हैं । ये दो-दो हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं । (लंकाके उत्तरमें पूर्वसागरतक विस्तृत हिमगिरि है । हिमगिरिके उत्तरमें हेमकूट है । यह भी समुद्रतक फैला हुआ है । हेमकूटके उत्तरमें निपध पर्वत है । यह जनपद सम्भवतः विन्ध्याचल-पर अवस्थित था । दमयन्ती-पति नल निपधके राजा थे ।) इनके बीचके अवकाशमें नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले तीन वर्ष—(खण्ड) हरिवर्ष, किंपुरुष और भारत विद्यमान हैं । [सम्भवतः हिमाल्यके इलावृत्त प्रदेश और निपध पर्वतके बीचके प्रदेशको 'भारत' कहा गया हो । हरिवर्ष सम्भवतः वह प्रदेश हो जो कि हरि अर्थात् वानर-जातिके राजा सुप्रीवद्वारा कभी शासित होता था ।] सुमेरुकी पूर्वदिशामें सुमेरुसे संयुक्त माल्यवान् पर्वत है । [माल्यवान् पर्वतसे समुद्रपर्यन्त प्रदेश भद्राश्व नामक है । आजकल वर्माके नीचे एक मल्य-प्रदेश है । सम्भवतः यह प्रदेश और इसके ऊपरका वर्मा प्रदेश माल्यवान् हो ।] माल्यवान्-से लेकर पूर्वकी ओर समुद्रपर्यन्त भद्राश्व नामक प्रदेश है । [वर्मा और मल्यसे पूर्वकी ओर श्याम और अनाम (इण्डो चाइनाके प्रदेश सम्भवतः) भद्राश्व नामक हैं ।] सुमेरुके पश्चिम केतुमाल और गन्धमादन देश हैं । केतुगाल तथा भद्राश्वके बीचके वर्षका नाम इलावृत है । [सुमेरुके दक्षिणमें जो उपर्यक्ता (पर्वतप्रादकी ऊँची भूमि) है, उसे वहाँ इलावृत कहा गया है ।]

पचास हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले देशमें सुमेरु विराजमान है और सुमेरुके चारों ओर पचास हजार वर्ग-योजन विस्तारवाला देश है । इस प्रकार सम्पूर्ण जम्बूदीपका परिमाण सौ हजार वर्ग-योजन है । इस

परिमाणवाला जम्बूदीप अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार (कक्षगके सदृश गोल आकारवाले) श्वार-समुद्रसे वेष्टित (घिरा हुआ) है । जम्बूदीपसे आगे दुगुने परिमाणवाला शाक-दीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार इक्षुरस (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । [भारतमें शक-जानिने आक्रमण किया था । कास्पीयन सागरके पूर्वकी ओर शाकी नामकी एक जातिका निवास है । यूरोपीय पुराणिनें स्थिर किया है कि वर्तमान तातार, पश्चियाटिक रूस, साईनेरिया, किमिया, पोलैंड, हङ्गरीका कुछ भाग, लिथुयनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्लीडन, नारवे आदिको शाकदीप कहा गया है ।] इससे आगे इससे दुगुने परिमाणवाला कुशदीप है जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार भद्रा (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला कौशदीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार धृत (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । फिर आगे इससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मलिदीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार दधि (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने परिमाणवाला मगध-दीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वल्याकार क्षीर (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला पुष्करदीप है, जो अपनेसे दुगुने विस्तारवाले वल्याकार मिठ जलके समुद्रसे वेष्टित है । इन सातों दीपोंसे आगे लोकालोक पर्वत है । इस लोकालोक पर्वतसे परिवृत जो सात समुद्रसहित सात दीप हैं, वे सब मिलकर पचास कोटि वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (वर्तमान समयमें पृथिवीका क्षेत्रफल १९,६५,००,००० वर्ग मील तथा घनफल २,५९,८८,००,००,००० घनमील माना जाता है । साथ ही वर्तमान समयमें योजन चार कोसोंका तथा कोस दो मीलके लगभग माना जाता है) । यह

जो लोकालोक पर्वतसे परिवृत विश्वमरा (पृथिवी)-मण्डल है, वह सब्र ब्रह्मण्डके अन्तर्गत सक्षिप्तरूपसे वर्तमान है और यह ब्रह्मण्डप्रधानका एक सूक्ष्म अवयव है; क्योंकि जैसे आकाशके एक अति अल्प देशमें खदोत विराजमान होता है, वैसे ही प्रधानके अति अल्प देशमें यह सारा ब्रह्मण्ड विराजमान है।

इन सब पाताल, समुद्र और पर्वतोंमें असुर, गन्धर्व, किंत्रु, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सराएँ, ब्रह्मराक्षस, कूप्याण्ड, विनायक नामवाले देवयोनि-विशेष (मनुष्योक्ती अपेक्षा निष्ठ अर्थात् राजसी-तामसी प्रकृतिवाले प्राणधारी) निवास करते हैं। और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देव-मनुष्य निवास करते हैं। सुमेरु पर्वत देवताओंकी उद्यान-भूमि है। वहाँपर मिश्रवन, बन्दन-वन, चैत्ररथ-वन, सुमानस-वन—ये चार वन हैं। सुमेरुके ऊपर सुधर्मा नामक देव-समा है। सुदर्शन नामक पुर है और वैजयन्त नामक प्रसाद (देवमहल) है। यह सब पूर्वोक्त भूलोक कहा जाता है। इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जिसमें प्रह (बुध, शुक्र आदि जो कि सूर्यके चारों ओर धूमते हैं), नक्षत्र (अश्विनी आदि जिसमें कि चन्द्रमा गति करते हैं), तारक (प्रहो और नक्षत्रोंसे भिन्न अन्य तारे तथा तारा-मण्डल) भ्रमण करते हैं।

यह सब ग्रह, नक्षत्र आदि, ध्रुव नामक ज्योति (Pole Star पोल स्टार) के साथ, वायुरूप रूजुसे बैधे हुए (वायु-मण्डलमें स्थित) वायुके नियत संचारसे लब्ध संचारवाले होकर, ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

ध्रुवसंज्ञक-ज्योति-मेदिकाष्ठ (एक काढ़का स्तम्भ जो कि खलिहानके मध्यमें खड़ा होता है, जिसके चारों ओर बैल धूमते हैं) के सदृश निश्चल है। इसके ऊपर स्वर्गलोक है, जिसको माहेन्द्रलोक कहते हैं। माहेन्द्र-लोकमें त्रिदश, अग्निष्वाच, याम्य, त्रुष्णि,

अपरिनिर्मित-वशवर्ती, परिनिर्मित-वशवर्ती—ये छः देवयोनि-विशेष निवास करते हैं। ये सब देवता संकल्पसिद्ध, अग्निमादि ऐश्वर्य-सम्पन्न और कल्याणुष्वाले तथा वृन्दारक (पूजनेयोग्य), कामभोगी और औपपादिक देहवाले (विना माता-पिताके दिव्य शरीरवाले) हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं।

इस स्वर्गलोकसे आगे महान् नामक स्वर्ग-विशेष है, जिसको महालोक तथा प्राजापत्यलोक कहते हैं। इसमें कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाम, प्रचिताम—ये पाँच प्रकारके देवयोनि-विशेष काम करते हैं। ये सब देवविशेष महाभूतवशी (जिनकी इच्छामात्रसे महाभूत कार्यरूपमें परिणत होते हैं) और ध्यानाहार (विना अन्नादिके सेवन किये ध्यानमात्रसे तृप्त और पुष्ट होनेवाले) तथा सहस्र कल्प आशुवाले हैं। महर्लोकसे आगे जनःलोक है, जिसको प्रथम ब्रह्मलोक कहते हैं। जनःलोकमें ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर—ये चार प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं। ये भूत तथा इन्द्रियोंको स्वाधीनकरणशील हैं। जनःलोकसे आगे तपोलोक है, जिसको द्वितीय ब्रह्मलोक कहते हैं। तपोलोकमें अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर—ये तीन प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं, जो भूत, इन्द्रिय, प्रकृति (अन्तःकरण)—इन तीनोंको स्वाधीनकरणशील हैं और पूर्वसे उत्तर-उत्तर दुगुनी-दुगुनी आशुवाले हैं। ये सभी ध्यानाहार ऊर्ध्वरेतस् (जिनका वीर्यपात कभी नहीं होता) हैं। ये ऊर्ध्व—सत्यादि लोकमें अप्रतिहित ज्ञानवाले और अधर, अवीचि आदि लोकमें अनावृत ज्ञानवाले अर्थात् सब लोकोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले हैं। तपोलोकसे आगे सत्यलोक है, जिसको तृतीय ब्रह्मलोक कहते हैं। इस मुख्य ब्रह्मलोकमें अच्युत, शुद्ध निवास, सत्याम, संज्ञासंज्ञी—ये चार प्रकारके देवता-विशेष निवास

करते हैं। ये अकृत-भवनन्यास (किसी एक नियत प्रहके अभाव होनेसे अपने शरीररूप प्रहमें ही स्थित) होनेसे स्वप्रतिष्ठित हैं और यथाक्रमसे ऊँची-ऊँची स्थितिवाले हैं। ये प्रधान (अन्तःकरण) को स्वाधीन करणशील और पूरी सर्ग आयुवाले हैं। अच्युत नामक देव-विशेष सवितक्ष्यानजन्य सुख भोगनेवाले हैं, शुद्ध निवास सविचार ध्यानसे वृप्त हैं। इस प्रकार ये सभी सम्प्रज्ञात निष्ठ हैं। (समाधिपाद सूत्र १७) ये सब मुक्त नहीं हैं, किंतु त्रिलोकीके मध्यमे ही प्रतिष्ठित हैं। इन पूर्वोक्त सातो लोकोको ही परमार्थसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये। (क्योंकि हिरण्यगर्भके लिङ्गदेहसे ये सब लोक व्याप्त हैं।)

विदेह और प्रकृतिल्य नामक योगी (समाधिपाद सूत्र १९) मोक्षपद (कैवल्यपद) के तुल्य स्थितिमें हैं, इसलिये वे किसी लोकमें निवास करनेवालोंके साथ नहीं उपन्यस्त किये गये।

सूर्यद्वार (सुषुम्णा नाड़ी) में संयम करके योगी इस भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करे। किंतु यह नियम नहीं है कि सूर्यद्वारमें संयम करनेसे ही भुवन-ज्ञान होता हो, अन्य स्थानमें संयम करनेसे भी भुवन-ज्ञान हो सकता है; परंतु जवतक भुवनका साक्षात्कार न हो जाय, तवतक दृढचित्तसे संयमका अभ्यास करता रहे और वीच-वीचमें उद्वेगसे उपराम न हो जाय।

[उपर्युक्त व्यासभाष्यमें बहुत-सी बातोंका हमने स्पष्टीकरण कर दिया है। कुछ एक बाते जो पौराणिक विचारोंसे सम्बन्ध रखती हैं, उनको हमने वैसा ही छोड़ दिया है।]

भूलोक अर्थात् पृथिवीलोकका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उसके ऊपरी भागको जो सात द्वीपों और सात महासागरोंमें विभक्त किया गया है, उनका इस समय ठीक-ठीक पता चलना कठिन है; क्योंकि उस प्राचीन समयसे अबतक भूलोकसम्बन्धी बहुत कुछ

परिवर्तन हो गया होगा। योजन चार कोसको कहते हैं। यहाँ कोसका क्या पैमाना है? यह भाष्यकारने नहीं बतलाया है। यह वही हो सकता है जिसके अनुसार भाष्यकारका परिमाण पूरा हो सके। वर्तमान समयके अनुसार सात द्वीप और सात सागर निम्न प्रकार हो सकते हैं। सात द्वीप—१—एशियाका दक्षिण भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके दक्षिणमें जो अफगानिस्तान, भारतवर्ष, वर्मा और स्याम आदि देश हैं। २—एशियाका उत्तरी भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके उत्तरमें तिब्बत, चीन तथा तुर्किस्तान इत्यादि। ३—यूरोप, ४—अमेरिका, ५—उत्तरी अमेरिका, ६—दक्षिणी अमेरिका, ७—भारत-वर्षके दक्षिण-पूर्वमें जो जावा, सुमात्रा और आस्ट्रेलिया आदिका द्वीपसमूह है।

सात महासागर

१—हिंद महासागर, २—प्रशान्त महासागर, ३—अन्ध महासागर, ४—उत्तर हिममहासागर, ५—दक्षिण हिममहासागर, ६—अखसागर और ७—भूमध्यसागर।

सुमेरु अर्थात् हिमालय-पर्वत उस समय भी ऊँची कोटिके योगियोके तपका स्थान था। स्थूल भूतोंकी स्थूलता और तमस्के तारतम्यके क्रमानुसार पृथिवीके नीचेके भागको सात अधोलोकोंमें नरक-लोकोंके नामसे विभक्त किया गया है। इनके साथ जो जलके भाग हैं, उनको सात पातालोंके नामसे दर्शाया गया है तथा इन तामसी स्थानोंमें रहनेवाले मनुष्यसे नीची राजसी और तामसी योनियोंका असुर-राक्षस आदि नामोंसे वर्णन किया गया है।

भूलोक अन्तरिक्ष-लोक है, जिसके अन्तर्गत पृथिवीके अतिरिक्त इस सूर्य-मण्डलके ध्रुवपर्यन्त सारे प्रह, नक्षत्र और तारका आदि तारागण हैं। यह सब भूलोक अर्थात् हमारी पृथिवीके सदृश स्थूल भूतोंवाले हैं। इनमें किसीमें पृथिवी, किसीमें जल, किसीमें अग्नि और किसीमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है।

अन्य पाँच सूक्ष्म और दिव्य लोक हैं, जिनकी सम्प्रिति संज्ञा घौलोक है। यह सारे भूः-भुवः अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षलोकके अंदर हैं। इनकी सूक्ष्मता और साधिकताका क्रमानुसार तारतम्य चला गया है अर्थात् भूः और भुवःके अंदर स्वः, स्वःके अंदर महः, महःके अंदर जनः, जनःके अंदर तपः और तपःके अंदर सत्यलोक हैं।

इनके सूक्ष्मता और साधिकताके तारतम्यसे और बहुत-से अवान्तर भेद भी हो सकते हैं। इनमेंसे स्वः, महः स्वर्गलोक और जनः, तपः और सत्यलोक ब्रह्मलोक कहलाते हैं। इनमें वे योगी स्थूल शरीरको छोड़नेके पश्चात् निवास करते हैं, जो वितर्कानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्था, विचारानुगत भूमि तथा आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी आरम्भिक अवस्थामें संतुष्ट हो गये हैं और जिन्होने विवेक-स्थानिद्वारा सारे क्लेशोंको दग्धधीज करके असम्प्रज्ञातसमाधिद्वारा स्वरूपा-वस्तिके लिये यत्न नहीं किया है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्थावाले उच्चतर और उच्चतम कोटिके विदेह और प्रकृतिल्य योगी सूक्ष्म शरीरों, सूक्ष्म इन्द्रियों और सूक्ष्म विश्वोंको अतिक्रमण कर गये हैं। इसलिये वे इन सब सूक्ष्म लोकोंसे परे कैवल्यपद-जैसी स्थितिको प्राप्त किये हुए हैं।

सूर्यके भौतिक स्वरूपमें संयमद्वारा योगीको भूलोक अर्थात् पृथिवी-लोक और भुवःलोक अर्थात् अन्तरिक्षलोकके अन्तर्गत सारे स्थूल लोकोंका सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और इसी संयममें पृथिवीका आलम्बन करके अथवा केवल पृथिवीके आलम्बनसहित संयमद्वारा पृथिवीके ऊपरके द्वीपों, सागरों, पर्वतों आदि तथा उसके अधोलोकोंका विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

ध्यानकी अधिक सूक्ष्म अवस्थामें इसी उपर्युक्त संयमके सूक्ष्म हो जानेपर अथवा सूर्यके अध्यात्म सूक्ष्म स्वरूपमें संयमद्वारा सूक्ष्म लोकों अर्थात् स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकका ज्ञान प्राप्त होता है।

वाचस्पति मिश्रने सूर्यद्वारको सुषुम्णा नाड़ी मानकर सुषुम्णा नाड़ीमें संयम करके भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करना बतलाया है। वास्तवमें कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर सुषुम्णा नाड़ीमें जब सारे स्थूल प्राणादि प्रवेश कर जाते हैं, तभी इस प्रकारके अनुभव होते हैं।

उस समय संयमकी भी आवश्यकता नहीं रहती, किंतु जिधर वृत्ति जाती है अथवा जिसका पहलेसे ही संकल्प कर लिया है, उसीका साक्षात्कार होने लगता है।

सूर्य संयमन योगिक सिद्धि है, अतः इसकी प्रक्रिया योगि-सद्गुरुसे ही समझनी चाहिये।

'दिशि दिशतु शिवम्'

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुर्माशो
 विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिर्यः प्रदेशस्थितोऽपि ॥
 दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटस्तिग्मभानोन्नवाख्यां
 यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिपामुद्गमो नः ॥
 (सूर्यशतकम् १८)

जिस प्रकार एकदेशमें स्थित दीपक गृहको अन्धकार-शून्य करता हुआ उसे प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार एकदेशमें स्थित होते हुए भी विश्वको अन्धकाररहित एवं आलोकमय करनेमें समर्थ विनाश-व्यसनरहित तथा अपने तेजसे निशाको नष्ट करनेवाली और दिक् तथा कालकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षासे इन्द्र-दिशा (पूर्व) में (प्रतिदिन) उदित होनेके कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकोंमें पर्यटन करनेवाले सूर्यकी किरणें हम सब लोगोंका कल्याण करें। [सूर्यमें संयम करनेवाले योगियोंको भुवनोंका ज्ञान इन्हीं कल्याण-कारणी किरणोंके माध्यमसे होता है।]

नाडीचक्र और मर्य

(लेखक—श्रीगमनागयणजी विजाटी)

‘नाडीचक्र और सर्या’ इस निवन्धमें सर्वप्रथम सर्वानन्दप्रदाता नाडीचक्र और मर्यका परिचय देना अन्यत अपेक्षित है। तबनन्तर इनके पाण्यमार्गिक सम्बन्ध, प्रभाव तथा फल विचारणीय हैं।

मानव-शरीरमें पत्तोंकी अनि सूक्ष्म शिंगओंकी भाँति नाडियोंकी संख्या बहुत बहुर हजार बहायी गयी है। ये नाडियाँ लिङ्गके ऊपर और नाभिके नीचे स्थित कल्पसे—जिसे सूखावार कहते हैं—निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें आस हैं। इनमें बहुत नाडियों मुझ्य हैं। सूखावारमें स्थित कुण्डलिनीचक्रके ऊपर तथा नीचे दस-दस नाडिया और निख्ती ढो-त्रो नाडियाँ हैं। ये सभी नाडियाँ चक्रके समान शरीरमें स्थित होकर शरीर तथा वायुके आधार हैं। इनमें दस नाडियाँ प्रधान हैं तथा अन्य दस नाडियाँ वायु-वहन करनेवाली हैं। प्रधान दस नाडियोंके नाम—इडा, पिङ्गला, सुपुण्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूरा, यशस्विनी, अङ्गमुणा, कुहू और शहिनी हैं। इनमें प्रथम तीन—इडा, पिङ्गला और सुपुण्णा सर्वोत्तम नाडियों हैं जो प्राणमार्गमें स्थित हैं। मेरुठण्ड या शरीरके वाम भागमें अथवा वाम नासास्त्रमें इडा और दाहिनी ओर पिङ्गला

और बीचमें सुपुण्णा रहता है। इसके अनिक्त वार्या अङ्गमें गान्धारी, दाहिनीमें हस्तिजिह्वा, दक्षिण कानमें पूरा, बायें कानमें यशस्विनी, मुखमें अङ्गमुणा, लिङ्गमें कुहू, उदामें शहिनी स्थित है। शरीरके दस द्वारोंपर ये दस नाडियाँ हैं।

इन नाडियोंमें इडा नाडीमें चन्द्र, पिङ्गलमें सूर्य और सुपुण्णामें शम्भु या अग्नि स्थित हैं अथवा व्रतसे इन तीनों नाडियोंके चन्द्र, सूर्य और अग्नि गं शम्भु देवता हैं। वार्या (इडा) नाडीका परिचायक चन्द्र शक्तिसुखसे तथा दाहिनी पिङ्गला नाडीका प्रयाहुक सूर्य शङ्करस्त्रसे रहते हैं। जो लोग चन्द्र-सूर्य नाडीका सर्वदा अभ्यास करते हैं, उन्हें वैकालिक ज्ञान सामाजिक द्वेषा होता है। इन नाडियोंके खरसे शुभाशुभ, सिद्धि-असिद्धिका ज्ञान किया जाना है। जैसे यात्रामें इडा तथा प्रवेशमें पिङ्गला शुभ है। चन्द्रनाडी श्वेत, सम, शीत, नी तथा सूर्यनाडी असिन, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्ममें चन्द्रनाडी तथा रौद्रकर्ममें सूर्यनाडी प्रशस्त है। इनकी गणित्रम यों हैं—

१. द्वासततिमहनाणि नाडीद्वाराणि पञ्जरे। (दृ० ५। १८)
२. ऊर्वे मेहूदाद्यो नमेः कल्दोऽस्ति खगाण्डवत्। तत्र नाड्यः समुपत्ताः सहस्राणि द्विसप्तनिः ॥
तेऽु नाडीसहस्रेषु द्विसततिमहाद्युता । (यो० चू० ३० १४-१५)
नाभिस्थानगम्न्यन्वर्थमहुगदेव निर्गताः । द्विसततिसहनाणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥ (यि० स्व० ३२)
३. प्रधाना दग्नाद्यस्तु इडा वायुप्रवाहकाः । (यि० स्व० ३८)
४. द्रष्टव्य—यो० चू० ३० १६-२१ इत्योक ।
५. इडाया स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्त्रकः। सुपुण्णा गम्भुरुप्तं गम्भुहेनः स्वस्त्रप्तः ॥ (यि० स्व० ५०)
६. इडापिङ्गलासौपुण्णाः प्राणमार्गं च संस्किनाः । सतत प्राणवादिन्यः सोमसूर्यादिदेवताः ॥
(यो० चू० ३० २५)
प्राणिना दक्षिणा नाडी पिङ्गला नाम सूर्यदैवत्या पितृयोनि । वामा इडास्त्रा चन्द्रदैवत्या देवयोनि ।
तयोर्मध्ये सुपुण्णा व्रश्मदैवत्या । (यो० सू० ८० पा० ४९-५० नारोद्वावृत्तिः)

शुद्धपक्षमें प्रथम तीन दिवाक अन्द्र लाडी चतुर्थी हैं, इसके अनन्तर तीन दिव द्यूर्य नाडी चतुर्थी है। इस क्रमसे शुद्धपक्षमें नाडी-संचालन होता है और कर्णपक्षमें पहले तीन दिव सूर्य-खर अर्थात् दाहिनी नाडीका उदय होता है, अनन्तर चन्द्र नाडीका। इस प्रकार प्रत्येक दिनमें भी इन दोनों नाडियोंका प्रवाह होता रहता है।

वास्तवमें नाडी-चक्र तत्त्वात् बहुती समझ जा सकता है, जबतक उसको संचालित यत्नेवाली चिर-शक्तिच्छा स्वरूप न समझ लिया जाय। वह चिर-शक्ति कुण्डलिनी है, जिसे आधारशक्ति कहते हैं। उसके बोधके लिया योगके सब उपाय व्यर्य हो जाते हैं। कहा गया है कि सोयी हुई कुण्डलिनी जब गुरु-कृपासे जग जाती है, तब सारे चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि तथा हृद-ग्रन्थि—ये हीनों प्रथियों सुल जाती हैं—

कुता गुरुप्रसादेन वदा जागति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पदानि भित्यन्ते ग्रन्थयोऽग्निरूप॥
(ह० यो० प्र० १ । २)

जब गुरु-कृपासे जागृत कुण्डलिनी ऊरकी और उद्धो है तो वह शून्य पदवी अर्थात् सुषुम्ना नाडी प्राण-वायुके लिये राजपथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्गसे सुखमें निकलता है, वैसे प्राण-वायु सुषुम्ना नाडीमें सुखसे चली जाती है। उस समय चित्त निरालम्ब हो जाता है और योगीको मृत्युभय नहीं होता है। सुषुम्ना नाडीकी तन्त्रशाखामें बहुत ही महिमा मायी गयी है। शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्र, मडामध, दमशान, शास्त्री, मध्यमार्ग—ये सब सुषुम्नाके पर्याय-बच्ची शब्द हैं।

हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि दण्डसे ताड़िय करनेपर जैसे सर्प आँनी कुटिलता छोड़ देता है, वैसे 'जालन्धर-वन्ध' लगाकर वायुको सुषुम्ना नाडीमें धारण करनेपर कुण्डलिनी भी सीधी हो जाती है। उसी समय

इस और पिङ्गला धारण करनेवाली मरण-ब्रह्मता प्राप्त हो जाती है अर्थात् कुण्डलिनीके बोध हो जानेपर सुषुम्ना नाडीमें प्राणोंका प्रवेश हो जाता है और इच्छा एवं पिङ्गला नाडीसे प्राणोंका वियोग हो जाता है। इसीको योगी लोग मरण-ब्रह्मता कहते हैं। कुण्डलिनीके सम्पीडनके लिये महामुद्राका विवान है। इस महामुद्राको आदिमहासिद्धेने प्रकट किया है। इससे पाँच महाकलेश—अविद्या, अस्मिता, रग, द्वेष और अभिनिवेश आदि शोक-मोह नष्ट हो जाते हैं।

इस महाकुर्ममें इडा और पिङ्गला अर्थात् सूर्य और चन्द्र नाडीकी प्रसुत भूमिका होती है। शरीरके दग्धिण भागमें पिङ्गला और वामभागमें इडा रहती है। पिङ्गला दाहिनी फेरेसे और इडा वायेफेरेसे रहती है।

इडा धारमें च विशेषा पिङ्गला दक्षिणे स्मृता।

(शि० स्त० ५९)

शरीरमें नायों और इनेवाली इडा नाडी अमृतस्त्रय पूर्वोंके कारण संसारको पुष्ट करनेवाली होती है और पिङ्गला अर्थात् सूर्य नाडी जो दक्षिण भागमें रहती है, सदा संमारको उपर्युक्त करती है—विद्योपरूपसे उत्पत्तिका कार्य सूर्य नाडीका है।

इठयोग-प्रदीपिकामें सुषुम्ना नाडीकी तुलना मेहसे की गयी है। उसमें सोमकलारस प्रवाहित होता है। मेहके तुल्य सुषुम्ना नाडीके मध्यमें स्थित सोमकलाके रसको तालू-विवरमें रखकर रजेशुण, तमोशुणसे अनभिभूत सत्त्वशुणमें वृद्धिको रखनेवाला जो विद्वान् पुरुष आत्मतत्त्वको कहता है, वह नदियोंका अर्थात् इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना तीनों नाडीस्वरूप गङ्गा, यमुना, सरस्वतीका मुख है। उसमें चन्द्रसे शरीरका सार झड़ता है। गोरक्षनाथजीने कहा है कि 'नाभिदेशमें अग्निरूप सूर्य स्थित है और तालूके मूलमें अमृतस्त्रमें चन्द्रमा

१. महामुद्राका विवान हठयोग-प्रदीपिकाके तीसरे उपदेशके १०-१३ श्लोकतक है।

स्त० अं० १८-१९—

स्थित है। जब चन्द्रमा नीचेकी ओर मुख करके अमृत बरसाता है, तब सूर्य उसको ग्रस लेता है।' इसलिये हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि योगीको ऐसी मुश्क करनी चाहिये, जिससे अमृत व्यर्थ न जाय। विपरीत-करणी^१ मुद्रामें ऊपर नाभिवाले तथा नीचे तालुवाले योगीके ऊपर सूर्य और नीचे चन्द्रमा रहते हैं—

अर्धनामेवधस्तालोरुच्चं भासुरधः शशी ।'

(६० यो० ३। ७९)

लिङ्ग-शरीरस्य मेहदण्डके भीतर भूस्ताडीमें अनेक चक्रोंकी कल्पना की जाती है। कोई ३२ चक्रोंको तथा दूसरे ९ चक्रों 'नवचक्रमयो देहः' (भा० उ०) को अन्य छः चक्रोंको मानते हैं। इन छः चक्रोंका नाम सूक्ष्माधार, खाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा है तथा स्थान योनि, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और ऋग्मध्य है। इन्हें पट्कमल भी कहते हैं, जिनमें क्रमशः ४, ६, १०, १२, १६ और २ दल होते हैं। ये दल विविध वर्णोंके होते हैं तथा प्रत्येक दलपर मातृकाके एक-एक वर्ण विद्यमान हैं। प्रत्येक चक्रपर चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, पट्कोण, पूर्णचन्द्राकार, लिङ्गाकार यन्त्र है, जो पाँच महातत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और महत्तत्त्वके घोतक हैं। इन चक्रोंके विविध ग्रन्थोंके आधारसे मिन्न-मिन्न कई अधिष्ठान और देवाधिपति हैं। ये चक्र नाडी-पुळी ही हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं है—ऐसा विद्वानोंका मत है। इस दृष्टिसे वायुतत्त्वाधिपति होनेके कारण तथा नाडी-पुळीके कारण इन चक्रोंसे भी सूर्यका आन्तरिक और वाह्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। ऐसी शाखीय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

पुरवर्यं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम् ।

निष्ठाण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ॥

१. विपरीतकरणीमुद्राका विधान हठयोग-प्रदीपिकाके ३। ७९-८३ इलोकोंमें वर्णित है।

२. आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। द्वये सर्वभूतानां जीवभूतं स तिष्ठति ॥

यज्ञवल्क्यसंवितामें सूर्य-ज्योतिर्निको ही जीव तथा दृदयाकाशका प्रकाशक माना गया है।^१ सूर्य-ज्योति ही वाह्याभ्यन्तरकी प्रकाशयित्री है।

इसके अनिक्ति आठ प्रकारके कुम्भक प्राणायामोंमें सर्वप्रथम सूर्यमेदन प्राणायाग है। सूर्यमेदन प्राणायाममें सूर्यनाडीसे अर्थात् पिण्डासे बाहर वायुको खीचनेका विधान है। इस प्रकारसे प्रतिदिन पाँच-पाँच संघासे प्राणायामोंको बढ़ाते हुए, असी दिनतक करनेके बाद अन्य कुम्भकोंका अधिकारी होना है।

प्राणतोग्नितन्त्र और योगशिखोपनिषद् के अनुसार हठयोगको सूर्य और चन्द्रका अर्थात् प्राण और अपानका ऐक्य कहा गया है। सूर्यनाडी प्राण तथा चन्द्रनाडी अपान बताया गया है। प्राण-अपानकी पक्ता—प्राणायाम ही हठयोग है—

इक्षारेण तु सूर्यः स्यात् उक्षारेणेन्दुरुच्यते ।
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं इठ इत्यभिर्यायते ॥

कुण्डलिनी जब उद्युद्ध होती है तो क्रमसे नाद और प्रकाश होता है। प्रकाशका ही व्यक्त रूप विन्दु है। नादसे जायमान विन्दु तीन प्रकारका है—इच्छा, ज्ञान और क्रिया—जिसको योगी लोग पारिभासिक रूपमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं तथा कमी-कमी ग्रसा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। कुछ लोग शरीरके आधे भागको सूर्य और आधे भागको चन्द्र भी कहते हैं। इन दोनोंको मिलाकर सुपुम्नामें केन्द्रित करना योगीका लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त वार्तासे सूर्य और नाडीचक्रका सम्बन्ध निश्चित हो गया। अब यह विचारणीय है कि शरीरस्य नाडीचक्रसे आभ्यन्तर सोम-सूर्यका सम्बन्ध है या वाय

सोम-सूर्यका । यह विचार इसलिये उपस्थित है कि योगशास्त्रमें कहा गया है—‘यत् पिण्डे तद् ब्रह्मण्डे’—जो पिण्ड (शरीर) में है, वही ब्रह्मण्डमें है । यथार्थतः यह शरीर ही ब्रह्मण्ड है । दूसरे शब्दोंमें शरीरको ब्रह्मण्डकी प्रतिमूर्ति कह सकते हैं । ईश्वरने विश्वकी रचना करके मनुष्य-शरीरको ब्रह्मण्डकी प्रतिमूर्ति बनाकर उसमें अपने ज्ञानका समावेश किया, ताकि मनुष्य अपनेमें ही विश्वस्थित पदार्थके ज्ञानको सहजमें जान सके और भोग सके—उसको एतदर्थं अन्यत्र जाना न पड़े ।

इस शरीरमें चतुर्दश भुवन, सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्टपर्वत, सर्वतीर्थ, सब देवता, सूर्यादि प्रह और सब नदियों आदि पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विष्मान हैं । इसका विस्तृत विवरण शिवसंहिता द्वितीय पटल, शाक्तानन्दतरङ्गिणी, निर्वाणतन्त्र, तत्त्वसार, प्राणतोषिणीतन्त्र आदि प्रन्थोंमें दिया गया है । उद्वरणके रूपमें कुछ वाक्य नीचे लिखे जा रहे हैं—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।
स्वरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रणलक्षाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥
सुषिंसंहारकर्त्तौ भग्नतौ शशिभास्तकरौ ।
नभो वायुश्च बहिश्च जलं पृथिवी तथैव च ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
(शि० सं० २ । १-४)

पिण्डब्रह्मण्डयोरैक्यं शृणिवदानां प्रयत्नतः ।
पातालभूधरा लोकास्तथान्ये द्वीपसागराः ॥
आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ।
पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

इसके अतिरिक्त शरीरान्तर्गत सुपुस्ता विवरण पञ्चव्योमोंमें पाँचवॉ सूर्यव्योम भी है, जिसकी चर्चा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् आदि प्रन्थोंमें सफल और सविषि-

की गयी है । अतः यह सिद्ध है कि शरीरस्थ सूर्य है और उसका नाडी-चक्रोंसे निश्चित सम्बन्ध है ।

वाह्य सूर्य प्रत्यक्ष एव विदित हैं, उनका परिचय देना अनावश्यक है । वे अपने रक्षित्यों करोंसे पूरे ब्रह्मण्डसे सम्बन्धित हैं । उनसे असम्बद्ध चराचर जगत्का कोई भी पदार्थ नहीं है । शरीर और शरीरस्थ नाडियोंसे उनका आविदैविक सम्बन्ध है । जिस प्रकार सांसारिक सम्पूर्ण पदार्थोंके अधिष्ठान-देव भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीरावयवों तथा शारीरिक सकल पदार्थोंके भी भिन्न-भिन्न अधिष्ठान-देव हैं । इस दृष्टिसे विचार करनेपर वाह्य सूर्यसे भी शरीरका सम्बन्ध निश्चित है तथा उसके अनुसार उपास्य-उपासक-भाव भी सिद्ध है । पार्थिव वनस्पतियों, औपधों, अन्नों और जीवोंके जीवनसे सूर्य और चन्द्रका विशेष सम्बन्ध है । इन्हींके द्वारा उनकी प्राणन, विकसन, वर्धन और विपरिणाम आदि क्रियाएँ होती हैं । वास्तवमें सूर्य स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं ।

‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’ (श्र० १ । ११५ । १)
सूर्यतापिनी-उपनिषदोंमें सूर्यको सर्वदेवमय कहा गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः ॥
(१ । ६)

अधिष्ठान-सम्बन्ध तथा उपास्य-उपासक-भावके द्वारा शरीरका सूर्यके साथ सर्वात्मना सम्बन्ध होनेपर भी नाडीचक्रोंसे उनका क्या सम्बन्ध है—इस परिषेद्यमें विचारणीय यह है कि वैदिककालसे चली आ रही उपासना-पद्धतिमें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश—इन पञ्चदेवोंकी उपासना प्रधान है; क्योंकि ये पञ्च-देव पञ्चतत्वोंके अधिपति हैं । आकाशके विष्णु, तेजकी शक्ति, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शम्भु और जलके गणेश अधिपति हैं ।

व्याकाशस्थापितो विक्षुरभेद्यं प्रहोदयी ।
वायुः सूर्यः वित्तेव्यशो औद्यग्य गच्छार्थः ॥

वायु-तत्त्वके अधिपति सूर्य वायु तथा शरीरस्तर-
स्थारी प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि
वायुओंके अधिपति हैं। इन प्राण आदि वायुओंका संचरण
तथा वायु वायुका प्रहण एवं दूषित वायुका त्याग
शरीरमें नाडियोंके द्वारा ही होता है। अतः नाडियोंसे
सूर्यका सम्बन्ध निर्विवाद सिद्ध है। सूर्य वायुद्वारा
सबका ग्राणन करते हैं। अतः वे जगत्के आत्मा
माने गये हैं और पञ्चदेवोंमें एक विशिष्ट देव भी कहे
गये हैं। पूर्वोक्त विचारोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि
नाडीचक्कसे सूर्यका आध्यात्मिक, आधिद्विक और
आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारका सम्बन्ध है, इसलिये
सूर्यकी उपासना आवश्यक है। विशेषतः नेत्ररोगा,

थर्मरक्तरोगी, अतरोगा तथा शश्वपीटितके लिये परम
व्यग्रकारी हैं।

यौगिक विधायोंके लिये तो सूर्य-सम्बन्ध-चक्र
अत्यन्त द्युर्लिप्त है; क्योंकि जबतक धन्द-सूर्य और
शरभु-नाडियोंकी गति-शक्तिका नियमन नहीं होगा,
तबतक मुक्तिरूप कुण्डलिनीका प्रबोधन करना असम्भव
है। उल्ल तीनों नाडियों तथा कुण्डलिनीका देता ही
योगवित् एवं योगशास्त्राभित् है। योगशास्त्रियोंकी दृष्टिमें
इस कुण्डलिनीके प्रबोधके पूर्व मानव एवं पशुमें कोई
लात्विक भेद नहीं रहता।

‘यावन् सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यवा ।’

(वैगण्डिहिता ३ । ५०)

नाडीचक्कसे सूर्यका सम्बन्ध होनेके कारण वायो-
पासनाकी भाँति आन्तरोपासना परमावश्यक है।

योगसे शरीरस्य शारिरिक-सूर्यचक्रका महत्व

(केन्द्र—पं० मीष्यगुनन्दनजी विभ)

इस विश्वनग्नाणमें व्यापक घनता शक्तिका घोत
कहाँ है ? यजुर्वेदके एक मन्त्र ‘आ प्रा धावा पुर्विदी
अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्युषश्च’ तथा
छान्दोग्य उपनिषद्के मन्त्र ३ । १९। ३ ‘आदित्यो ब्रह्मेत्या-
देवस्तस्योपव्याख्यानम् सदेवेदमग्र आसीत्’ के अनुसार
भूलोकसे धुलोकतक तीनों लोकोंको अपनी प्रकाश-पुज्ज-
किरणोंहारा जीवन देनेवाले सूर्य ही सबके जीवनदाता
आत्मा हैं। समस्त जीवधारियों, वृक्षों एवं वनस्पतियोंके
जीवन-विकासके लिये सूर्यकी महत्ता सर्वविदित है।
सूर्य केवल प्रकाश-पुज्ज ही न होकर विश्वमें ऊर्जा तथा
शक्तिके भी स्रोत हैं। सूर्य समष्टि जगत्के प्राण सिद्ध
होकर समस्त जीवधारियोंके भीतर जीवनको धारण एवं
संचालन करनेवाले मुख्य तत्त्व ‘प्राण’ के रूपमें सदैव
कर्मशील बने रहते हैं। योगमें हमारा नाभिकेन्द्र,
मणिपूरकचक्र अथवा सूर्यचक्र ही इस प्राण-तत्त्वके
उद्गमका केन्द्र माना गया है।

मानव-शरीरमें आध्यात्मिक शक्तिके जागरण एवं

संचालनके आठ केन्द्र हैं, जिन्हें योगिनामें ‘चक्र’ नामसे
सम्बोधित किया गया है। योग-साधनमें धाठों चक्रोंके ध्यान
तथा जागरणका अलग-अलग महत्त्व वर्णित है—१—मूल-
धार, २—स्त्राधिग्रान; ३—मणिपूरक (सूर्यचक्र), ४—अनाहत-
चक्र, ५—विशुद्धिचक्र, ६—आज्ञाचक्र, ७—विन्दुचक्र एवं
८—सहस्रार। इनमेंसे मणिपूरक (सूर्यचक्र), अनाहत-चक्र,
आज्ञाचक्र तथा सहस्रार—इन चार चक्रोंका ध्यान साधकमें
आध्यात्मिक शक्तिके जागरणके लिये विशेष महत्वपूर्ण
स्थान रखते हैं। प्रस्तुत लेखमें केवल मणिपूरक अथवा
सूर्यचक्र, जो हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक
शक्तिके जागरणका प्रमुख केन्द्र है, उसकी साधनापर ही
विचार किया जायगा।

मानवीय शरीर-रचनामें श्वसन-क्रियाकी प्रणाली अत्यन्त
वैज्ञानिक ढंगसे प्रवृत्तिद्वारा संचालित होती है, जिसपर
केवल योग-साधना करनेवाले मनीषियोंने ही ध्यान दिया
है और उसका उन्होंने गहरा अध्ययन भी किया है। सर्व-

प्रथम मानवीय प्राण नाभि-केन्द्र (सूर्य-चक्र) से स्पन्दित हो हृदयमें जाकर टकराता है। हृदय तथा फेफड़ोंका रक्त-शोधन एवं सारे शरीरमें सचार करनेमें सहायता करता है। यह तो प्राणकी सामान्य स्वाभाविक क्रियामात्र है; किंतु जब उसके साथ मानसिक संकल्प एवं अन्तर्श्वेतनाको संयुक्त कर दिया जाता है, तो वह चैतन्य एवं अधिक सक्षम होकर विशेष शक्तिसंपन्न हो जाता है। नित्यप्रति शनैः-शनैः: अभ्यास-पूर्वक प्राण एवं मनको अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है। इन्द्रियोंके सभावों (विषयों) का अनुगामी मन तो बहिर्मुखी होकर प्राणशक्तिका ह्वास ही करता है और समस्त शारीरिक एवं बौद्धिक दुर्बलताएँ उत्पन्न करता है। साथ ही दुर्लभ मानव-जीवनको पतनके गर्तमें डाल देता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक साधनाद्वारा जब मनका सम्बन्ध शब्द-स्थर्शादि विषयोंसे मोड़कर उसको अन्तर्मुखी कर दिया जाता है, तब वही मन प्राण-शक्ति-सम्बन्ध बनकर बड़े-बड़े अलौकिक कार्य करनेमें समर्य हो जाता है। जिस प्रकार सामान्यस्वप्नसे प्रवहमान वायुमें अधिक शक्ति नहीं होती है; किंतु जब उसको किसी गुब्बारेमें बन्द करके छोड़ दिया जाता है, तो वह ऊर्ध्वगामी होकर अधिक शक्तिसम्बन्ध हो जाता है, उसी प्रकार मनको शुभ संकल्पयुक्त चेतनासे भरकर जब प्राणके साथ संयुक्त कर दिया जाता है, तब उसका स्वरूप आध्यात्मिक शक्तिमें परिवर्तित हो जाता है। इसका प्रभाव स्थापकके आनंदरिक तथा व्यानन्दरिक जीवनमें स्पष्ट देखनेमें आता है।

इमारा नाभिकेन्द्र (सूर्यचक्र) प्राणका उद्गम-स्थान ही है, किंतु उन्नेतर मनको लंबाईयों पर्याय लेनाकाला द्वंप्रेषण केन्द्र भी है; किंतु साधारण मनुष्योंका वह सहाय्यपूर्ण केन्द्र प्रायः सुनामस्वप्नमें पदा है। अतः इनकी शक्तिका न हो कर्त्ते कुछ लाभ ही उठा पाते हैं। प्रत्येक चक्र द्विसी तत्त्वविशेषसे सम्बन्धित एवं प्रभावित रहता है और उसको सक्रिय करनेके लिये किसी विशेष रंगका ध्यान करना द्वेषा है; जैसे मणिपूरक (सूर्य-चक्र) अग्नि-

तत्त्व-प्रधान है और उसको जाप्रत् करनेके लिये चमकीले पीतवर्ण कमलका ध्यान किया जाता है। वास्तवमें लाल, पीले, नीले, हरे, बैगनी एवं श्वेतादि रंगोंका सूर्यज्योतिकी सप्त किरणोंसे सम्बन्ध है और चक्रोंमें उनके मानसिक ध्यानमात्रसे सम्बन्धित तत्त्वमें विशेष आन्दोलन होकर हमारे ज्ञान-तन्तुओं एवं मस्तिष्कको प्रभावित करता हुआ शरीरस्थ व्यष्टि-प्राण एवं चेतनाको समष्टि-प्राण तथा चेतनासे जोड़ देता है। जिस प्रकार किसी विद्युत-वैद्रीकी शक्ति-(पावर-)के समाप्त हो जानेपर उसको जनरेटरसे चार्ज कर शक्तिसम्पन्न कर लिया जाता है; अथवा किसी छोटे स्टोरमें संगृहीत भंडार व्यय (खर्च) हो जानेपर, समीपस्थ किसी बड़े स्टोरसे उसकी पूर्ति कर ली जाती है, उसी प्रकार विश्वमें अनन्त शक्तियोंके भंडार, समष्टि प्राणसे व्यष्टि प्राणके केन्द्र मणिपूरक (सूर्य-चक्र) में वाञ्छित शक्तिको आकर्पित करके संचित किया जाना तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग भी होना संभव है।

भारतीय योग-साधनामें कुछ विशेष ध्वनियुक्त मन्त्रोंके एकाग्रतापूर्वक उच्चारण या जप करनेसे भी चक्रोंमें शक्तिको जागृत करनेका बहुत प्राचीन विधान है। किंतु आधुनिक युगके साधकोंका मन्त्रोंके उच्चारण एवं उनके अर्थकी ओर ध्यान न रहनेसे प्रायः उन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हो पाती है। योग-साधनामें सफलताके लिये विविधपूर्वक अद्वा एवं विवासके साथ नित्य-निरन्तर ध्यास करना आवश्यक माना गया है। ऊपरकी पर्णियोंमें चक्रोंमें शक्ति जागृत करनेके सामान्य लियमोक्षा अर्द्धम किया गया है। प्रत्युत लेखमें केंद्र विग्रहक (सूर्यचक्र)को द्वारा इसके स्वरूपमें ब्रह्माद्वा शक्ति का द्वय है। हृदयमें साधकदण्ड इसको न्याय-पूर्वक दोन्हार चार पदकर इसके लाभवको समझनेका प्रयास करनेका कष्ट करेंगे।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व एवं सार्यकाल सूर्यास्तसे पूर्व सूर्यचक्रको जागृत करनेकी साधना करनेका विधान

है। अस्तु, किसी पवित्र एवं एकान्त स्थानमें अथवा अपने दैनिक साधना-कक्षमें पश्चासन या सिद्धासनसे विल्कुल सीधे बैठकर १०-२० बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास करें या नाड़ी-शोधन-प्राणायाम तीन मिनटकर करें, जिससे प्राणका सुषुम्णा नाड़ीमें संचार होने लगे। तत्पश्चात् मेरुदण्ड (रीढ़की हड्डी) को विल्कुल सीधा रखते हुए प्रणव (ॐकार) अथवा 'सोऽहम्' मन्त्रका श्वासके साथ पाँच मिनटक मौन जप करे। तत्पश्चात् अपने नाभि-केन्द्रके पृष्ठभागमें मेरुदण्डस्थित सूर्यचक्रमें पीले चमकीले रंगबाले कमलका मानसिक ध्यान करें। इसके साथ 'जागृत रहो, जागृत रहो, सदैव जागृत रहो' शब्दों-द्वारा अपने सूर्यचक्रको आटोसजेशन देते हुए अपनी चेतनाको सूर्यचक्रमें केन्द्रित करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित भावनाको मनमें दुहराते हुए अपने श्वासको बहुत धीरे-धीरे हृदयमें तथा फेफड़ोंमें ले जाते हुए पेटमें भर दें—

'ॐ मैं आरोग्यता, सुख, शान्ति, प्राणशक्ति, स्वर्णि, सफलता एवं सिद्धिके परमाणुओंको समष्टि प्रकृतिके भण्डारसे अपने भीतर आकर्षित कर रहा हूँ तथा सूर्यचक्रमें उनका संचय एवं संग्रह हो रहा है।' दस-पाँच सेंकड़के लिये श्वासको सूर्यचक्रमें ही छारा दे। तत्पश्चात् 'मेरा प्राण उर्ध्वगमी होकर शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें (व्यास हो गया है और उसका) प्रकाश पहुँच रहा है।' इस धौटोसजेशन (भावना) के साथ एकास्तो विल्कुल धीरे-धीरे बाढ़र छोड़ दे और सूर्यचक्रसे प्राणका स्पन्दन मेरुदण्डमें ऊपरकी ओर गति करता हुआ अनुभव करें। एक-दो मिनटके विश्रामके पश्चात् इसी प्रकारकी क्रिया पुनः करें। इस क्रियाको पाँच बारसे दस बारतक करे। श्वास अन्दर भरने तथा छोड़नेका क्रम इतने धीरे-धीरे हो कि उसकी ध्वनि न हो। सुखपूर्वक विश्रान्तिके साथ उपर्युक्त क्रियाको बार-बार दुहरावें। साथ ही आत्मनिर्देश (आटो सजेशन) पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वासके साथ दुहराना

आवश्यक है। एक मासतक नियमित साधना करनेके पश्चात् आपके शरीर, मन एवं मस्तिष्कमें अद्भुत परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। आप अनुभव करेंगे कि आपकी भावनाओंके अनुसार आपके मन एवं बुद्धिका विकास हो रहा है। उपर्युक्त साधना ध्यान-योगके द्वारकी प्रथम सीढ़ी है। इस साधनाद्वारा सूर्यचक्रके जागरणके साथ-साथ आपकी कुण्डलिनी शक्ति भी शनैः-शनैः जागृत होने लगेगी।

किसी भी साधनमें मनकी एकाग्रता, सफलताके लिये आवश्यक है। साधनाके लिये निर्धारित समय-तक मनमें अन्य कोई विचार नहीं आना चाहिये। योग-साधनाके जिज्ञासुओंके लिये, ध्यान-योगके अन्यासियोंके लिये सूर्य-चक्र जागरणके प्रथम सोपानपर पैर धरनेके पश्चात् प्रमुक्ता एवं सद्गुरुके मार्ग-दर्शनसे आगेका मार्ग सुलभ हो जाता है। इसकी दीर्घकालीन साधनाके द्वारा आप अपने भीतर बांधित गुणों एवं शक्तियोंका विकास सहजमें ही कर सकेंगे। इदं संकल्पपूर्वक चेतनाका प्राणके साथ संयोग हो जानेपर साधकके मन एवं मस्तिष्कमें चुम्कीय विद्युत-संरग्गोंका निर्बाध प्रवाह जारी हो जाता है, जो साधकके आस-पास एवं उससे सम्बन्धित समाजमें उच्चतम आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकारके आकर्षक वातावरणका प्रभाव एवं उसकी अनुभूति हम उच्चकोटिके साधक, सन्त, महात्माओंके साक्षियमें लखजमें ही कर सकते हैं। उपर्युक्त साधनाले सूर्यचक्र (सणिपूरक) एवं अनाहत-चक्रमें एक सुनियोजित सीधा सम्बन्ध रखायित होकर साधककी सर्वतोमुखी उन्नतिमें जो स्वैच्छिक सहयोग मिलता है, वह शीघ्र ही अपने लक्ष्यतक पहुँचानेका मार्ग प्रशस्त कर देता है। अन्तमें हम कठोपनिषद्‌के उस मन्त्रका स्मरण करते हुए लेखका समापन करते हैं, जिसमें हमें जापत् होकर उच्चमना महापुरुषोंसे प्रेरणा प्राप्त करनेका निर्देश दिया गया है—

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निवोधत !!! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!

मार्कण्डेयपुराणका सूर्य-संदर्भ

[मार्कण्डेयपुराणके इस संदर्भमें सूर्यतत्त्वका विवेचन एवं वेदोंका प्रादुर्भाव और ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति तथा सृष्टि-रचना-क्रमका वर्णन तो है ही, साथ ही अदिति के गर्भसे भगवान् सूर्यदेवके अवतार धारण करनेका वर्णन तथा सूर्य-महिमाके प्रसंगमें राज्यवर्द्धनकी कथा भी पौराणिक रोचकताके साथ उपनिषद्स्थ है ।]

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकृत्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्लौष्टुकि बोले—द्विश्रेष्ठ ! आपने मन्त्रतरोंकी स्थितिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया और मैंने क्रमशः उसे भलीभौति सुना । अब राजाओंका सम्पूर्ण वंश, जिसके आदि ब्रह्माजी हैं, मैं सुनना चाहता हूँ, आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये ।

मार्कण्डेयजीने कहा—तत्स ! प्रजापति ब्रह्माजीको आदि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है, उस राजवंशका तथा उसमें प्रकट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस वंशमें मनु, इश्वारु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, उत्पन्न हुए थे; वे सभी धर्मज्ञ, यजकर्ता, शूरवीर तथा परम तत्त्वके ज्ञाता थे । ऐसे वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है । पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा लेकर दाहिने धृंगढूठेसे दक्षको उत्पन्न किया और वायें धृंगढूठेसे उनकी पलीको प्रकट किया । दक्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया ।

क्लौष्टुकिने पूछा—भगवन् ! मैं भगवान् सूर्यके यथार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ । वे किस प्रकार कश्यपजीके पुत्र हुए ? कश्यप और अदिति ने कैसे उनकी आराधना की ? उनके यहाँ अवतार हुए भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है ? ये सब बातें यथार्थरूपसे बताइये ।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन् ! पहले यह सम्पूर्ण

लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था । चारों ओर घेर अन्धकार घेरा डाले हुए था । उस समय परम कारण-स्वरूप एक अविनाशी एवं ब्रह्मत् अण्ड प्रकट हुआ । उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोक-क्षण्डा क्यत्योनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे । उन्होंने उस अण्डका मेदन किया । महामुने ! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ । उससे पहले भूः, फिर भुवः, तदनन्तर खः—ये तीन व्याह्तियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं । 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अव्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ । उससे 'महः' यह स्थूल रूप हुआ । फिर उससे 'जनः' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ । उससे 'तपः' और तपसे 'सत्यम्' प्रकट हुआ । इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं । ब्रह्मन् ! मैंने 'ॐ' यह रूप बताया है, वह सृष्टिका आदि-जन्त, शत्यन्त सूक्ष्म एवं निराकार है । वही परमब्रह्म है तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है ।

उत्ता अण्डका मेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं । उनका वर्ण जपा-कुसुमके समान था । वे सब तेजोमयी, एक दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं । तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र ध्वाधरूपसे प्रकट हुए । जैसा सुवर्णका रंग होता है, वैसा ही उनका भी था । वे भी एक दूसरेरसे पृथक् पृथक् थे । फिर पारमेष्ठी ब्रह्मके पथिम मुखसे सामवेदके

छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अर्थवेद, जिसका रंग भ्रमर और कजलराशि के समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्म के प्रयोग हैं, ब्रह्माजी के उत्तरसुख से प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुण की प्रधानता है। वह धोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुण की, यजुर्वेदमें सत्त्वगुण की, सामवेदमें तमोगुण की तथा अर्थवेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुण की प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्यथात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ' के नाममें पुकारा जाता है, अपने स्वभाव से प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेज को व्याप करके स्थित हुआ। महामुने ! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेज को भी आवृत किया। इस प्रकार उस अविष्टान-स्वरूप परम तेज ठँड़कारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्। तदनन्तर वह पुर्णीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग ! वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्नकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्नमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्नमें सामवेद तपता है। इसलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्नमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त अभिचारिक कर्म अपराह्नकालमें निश्चित किये गये हैं। अभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्न—दोनों कालोंमें किये जा सकते हैं; किंतु गिरोंके आद्य आदि कार्य अपराह्नकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने घाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहार-कालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी

धनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवना सूर्य हीं रजोगुण और सत्त्वगुण आदिका आथ्रय लंकर क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं और इन कर्मोंकी अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य एवं वेदस्वरूप हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे सबके आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींकी सरस्वत हैं। विश्वकी आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म अथवा तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्तगम्य ब्रह्म एवं परसे भी पर (परमात्मा) हैं।

तदनन्तर आदित्यका आविर्भाव हो जानेपर आदित्यरूप भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक संतप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा करनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् नूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकप्रितामह भगवान् न्द्रजाने एकान्नदित होकर भगवान् सूर्यकी सुनि आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—“इस सब कुछं जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम व्योमिःस्वरूप हैं तथा योगेजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदस्वरूप है, यजुर्वेदका अविद्याम है, सामवेदकी योगि है, जिनकी रक्षिता किन्तु नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्थमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परमहो स्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन् ! ज्ञाप

सबके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्ञेति, ज्ञाना-तीतखरूप, देवताखरूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और सहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्। आप ही अग्निखरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशखरूप हैं तथा आप ही इस पाष्ठभौतिक जगत्का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव। परमात्मतत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णु-खरूप आपका ही यज्ञोद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवखरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परमहास्यरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उधत हूँ और आपका यह तेजःपुङ्ग सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर खल्य तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्यान्तरोंके अनुसार जगत्की सृष्टि आरम्भ की। मात्रामुने। ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाति देवताओं, धर्षुरों, भरुव्यों, पट्टु-गद्धियों, हुक्क-खालों तथा नरक व्यादिकी भी सृष्टि की।

अदितिदेव शर्यतं भगवान् सूर्यका अवपात्

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने। इस जगत्की सृष्टि करनेके ब्रह्माजीने पूर्वकल्योंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र,

पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विल्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेह पत्नियाँ हुईं। वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्थामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्मने नागोंको और मुनिने गन्धवरोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तदा अरिष्ठासं अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने एरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे इयना आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येनवाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो सताने हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दोहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप है। कश्यपके पुत्रोंमे देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मदेवताओंमे श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्थामी बनाया, परंतु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हे कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक इजार दिव्य वर्षोत्तम उनदे वज्ञा भयझर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता एराजित हुए और वज्ञान् दैत्यों तथा दानवोंको निजव प्राप्त हुई। अपने पूर्वोंको दैत्यों और दानवोंके हार पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याविकारसे विद्वित तपा उनका पद्मग्रन्थ छिप गया रखा भासा आदिति जोहन्ये अस्तन्त पांडित प्ले गया। उन्होंने भगवान् सूर्यकी शराध्नाका विवे महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित लालार करतो हुए कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगा।

^८ ये भी अरुण भगवान् भीसुरोंके रथके लागिथे हैं जो दूर्घ-विहीन हैं।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूक्ष्म सुनहरी आमासे युक्त दिव्य शरीर धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप तेज़स्वरूप, तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार एवं सनातन पुरुष हैं, आपको प्रणाम है। गोपते ! आप जगत्का उपकार करनेके लिये जिस समय अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल ग्रहण करते हैं, उस समय आपका जो तीव्र रूप प्रकट होता है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ। आठ महीनोंतक सोममय रसको ग्रहण करनेके लिये आप जो अत्यन्त तीव्ररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। भास्कर ! उसी सम्पूर्ण रसको वरसानेके लिये जब आप उसे छोड़नेको उघात होते हैं, तब आपका जो तृतिकारक मेघरूप प्रकट होता है, उसको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार जलकी वर्गसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके अनीजों पकानेके लिये आप जो भास्कररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। तरणे ! जड़हन धानकी छूटिके लिये जो आप ठग गिराने आदिके लिये अत्यन्त शीतल रूप धारण करते हैं, उसको मेरा नमस्कार है। सूर्यदेव ! वसन्त ऋतुमें आपका जो सौम्य रूप प्रकट होता है, जो समशीतोष्य होता है, जिसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी, उसे मेरा बास्त्वार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण देवताओं तथा पितरोंको चूस करनेवाला और अनाजको पकानेवाला है, आपके उस रूपको नमस्कार है। जो रूप लताओं और वृक्षोंका एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय है, जिसे देवता और पितर पान करते हैं, आपके उस सोम रूपको नमस्कार है। आपका यह विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करनेवाले अग्नि और सोमके द्वारा व्याप्त है, उसको नमस्कार है। विमानसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजु और साममय तेजोंकी एकतासे इस विश्वको तपाता है तथा जो वेदव्याख्या स्वरूप है, उसको मेरा नमस्कार है; और, जो उससे भी उत्कृष्ट रूप है, जिसे 'ॐ' कहकर पुकारा जाता है,

जो अस्थूल, अनन्त और निर्मल है, उस सदात्माको नमस्कार है।

इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक रहकर दिन-रात सूर्यदेवकी स्तुति करने लगीं। उनकी आराधनाकी इच्छासे वे प्रतिदिन निराहार ही रहती थीं। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकथा अदितिको आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अदितिने देखा, आकाशसे पृथ्वीतक तेजका एक महान् पुरुषित है। उड़ीस ज्वालाओंके कारण उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। उन्हें देखकर देवी अदितिको बड़ा भय हुआ। वे बोलीं—गोपते ! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं पहले आकाशमें आपको जिस प्रकार देखती थी, वैसे आज नहीं देख पाती हूँ। इस समय यहाँ भूतलपर मुझे केवल तेजका समुदाय ही दिखाती दे रहा है। दिवाकर ! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे आपके रूपका दर्शन कर सकूँ। भजकर्त्तुलङ्घ प्रभो ! मैं आपकी भक्ता हूँ, आप मेरे पुज्ञोंकी रक्षा कीजिये। आप ही ब्रह्म होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप ही पातून करनेके लिये उघात होकर इसकी रक्षा करते हैं तथा अन्तमें यह सब कुछ आपमें ही लीन होता है। सम्पूर्ण लोकोंमें आपके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। आप ही ब्रह्म, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुद्रे, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, धर्मि, आकाश, पर्वत और समुद्र हैं। आपका तेज सबकी आत्मा है। आपकी क्या स्तुति की जाय।—यद्येश्वर ! प्रतिदिन अपने कर्ममें छोड़ हुए ब्राह्मण भाँति-भाँतिके पदोंसे आपकी स्तुति करते हुए यजन करते हैं। जिन्होंने अपने चित्तको बशमें कर लिया है, वे योगनिष्ठ पुरुष योगमार्गसे आपका ही ध्यान करते हुए परमपदको प्राप्त होते हैं। आप विश्वको ताप देते, उसे पकाते, उसकी रक्षा करते और उसे भस्म कर डालते हैं; फिर आप ही जलगर्भित शीतल किरणोंद्वारा इस विश्वको प्रकट करते और आनन्द देते हैं। कमलयोनि ब्रह्माके

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं। अन्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तरमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ी। तब भगवान् सूर्यने कहा—‘देवि ! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो।’ तब देवी अदिति छुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयी और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोली—‘देव ! आप प्रसन्न होइये। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते ! उन्हें ग्रास करनेके लिये आप मुझपर कृपा करें। आप अपने अंशसे देवताओंके वन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें। प्रभो ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोजा तथा त्रिभुवनके खासी हो जायें।’

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—‘देवि ! मैं अपने सहज अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।’ इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निषुक्त हो गयी। तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहज किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई। देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं। यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—‘तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो ?’ यह सुनकर उन्होंने कहा—‘देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्थान ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।’

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की। उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी। वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्मोऽधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—‘मुने ! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है ? उस समय तुमने ‘मार्तिं-अण्डम्’ का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र ‘मार्तण्ड’के नामसे विद्युत होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका धपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा।’

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा र्घृष्ण दृष्टि और दानव बलहीन हो गये। तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे। फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका धोर संप्राप्त हुआ। उनके धूल-शस्त्रोंकी चमकज्ज्वली लोकोंमें प्रकाश छा गया। उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उभ्र दृष्टि पद्धने स्थान उनके तेजसे दृष्टि होनेके कारण सब असुर जबकर भल्म हो गये। अब हो देवताओंके र्घृष्णकी सीमा न रही। उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्थान किया। उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग ग्रास हो गये। भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे। वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे। उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था। तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

विश्वकर्मनि विनयपूर्वक अपनी संज्ञा नामकी कन्या उनको
व्याह दी । विवखानसे संज्ञाके गर्भसे वैवस्त मनुका
जन्म हथा ।

स्वर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

कौण्डुकि योले—भगवन् ! आपने आदिदेव भगवान्
 सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन
 किया । अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता
 हूँ । आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें ।'

मार्कंपडेयजीने कहा—व्रह्मन् । मैं तुम्हें थादिदेव
दूर्यकी महिमा बताता हूँ, सुनो । पूर्वकालमें दसके
पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं । वे अपने
राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसलिये वहाँके धन-
जनकी दिनोदिन वृद्धि होने लगी । उस राजाके शासन-
कालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग
अत्यन्त खस्त एवं प्रसन्न रहते थे । वहाँ कसी कोई
उत्पात नहीं होता था तथा रोग भी नहीं सताता था ।
साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था ।
राजने वडे-वडे यज्ञ किये । याचकोंको दान दिये और
धर्मके अनुकूल रहकर विपर्योंका उपभोग किया । इस
प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भग्नीभासि पालन करते
हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो
एक ही दिन व्यतीत हुआ हो । दक्षिण देशके राजा
निरूपयों पुनर्मी मालिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी । एक
दिन पहुँचन्दरी राजाके मञ्जकर्मों पेत्र झगा रही थी ।
दस दिन वह राज्यपरिवारके छेठने-मेहने लंसू लाहवे
दी । उनके थाँझेयोंको दूर्दे जब राजाके द्वारीपह
पहाँ दो दर्जे पूछकर दर्जे आनंदी देख उन्होंने मालिनीपर
पूछा—“हेर्वे । यह क्या है? लामीके इस प्रकार पूछने-
पर उस मनसिनीने कहा—‘कुछ नहीं ।’ जब राजाने
वार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाकी केशराशिमेंसे
एक पक्षा लाल दिखाया और कहा—‘राजदू ।’ यह

देखिये, क्या यह मुझ अभागिनीके लिये खेदका विषय नहीं है ?” यह सुनकर राजा हँसने लगे। उन्होंने बहाँ एकत्र हुए समस्त राजाओंके सामने अपनी पत्नीसे हँसकर कहा—“शुमे ! शोककी क्या बात है ? तुम्हें रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार सभी जीवधारियोंके होते हैं। मैंने तो समस्त वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिया और मेरे कई पुत्र भी हुए। अन्य मनुष्योंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, ऐसे उत्तम भोग भी मैंने तुम्हारे साथ भोग लिये। पृथ्वीका भलीभाँति पालन किया और युद्धमें सम्प्रकृत प्रकारसे अपने धर्मको निभाया। भद्रे ! और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जिसे मैंने नहीं किया। किर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो ? शुमे ! मेरे बाल पक जायें, शरीरमें झुरियों पड़ जायें तथा यह देह भी शियिल हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कन्याणि ! तुमने मेरे मरुस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, अब बनकास लेकर उसकी भी दवा करना है। पहले बाल्यावस्था और कुन्नारावस्थामें तत्कालोचित कार्य किया जाता है, किन्तु युवावस्थामें पौंछनोचित कार्य होते हैं तथा बुद्धिमें बनका आश्रण लेना उचित है। मेरे पूर्वजों द्वाया उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है। जल्दः मैं तुम्हारे हाँस्य दहानेज्ञा कोई करण नहीं करूँगा। पके आदक्षा दिखायी देना तो मेरे लिये महान् परम्पराज्ञ कारण है।”

फहराउजकी गए तात्पुत्रकर वहाँ उपस्थित हुए
इच्छ सुउ, प्रायासी दाता पार्श्वर्णी मनुष्य कुले शान्ति-
द्वयके बोले—। गृ ! जातजो इन भवानजोंतो रोनेकी
आवश्यकता नहीं है। रोना को हमलोगोंको ध्यजा
समर्त प्राणियोंको चाहिये; क्योंकि आप हमें छोड़कर
बनवास लेनेको बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज !
आपने इमारा वालन-पालन किया है। आपके चले

जानेकी बात सुनकर इसारे ग्राम मिलते लाते हैं। आपने साल हजार वर्षोंतक इस पूर्खीका पालन किया है। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती।'

राजने कहा—मैंने साल हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया, अब मेरे किये यह वनवासका समय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी संतानोंको देखकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं सह सकते। नागरिकों ! मेरे मस्तकपर जो यह सफेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक कार्य करनेवाली मृत्युका दूत समझो, अतः मैं राज्यपर अपने पुत्रका अभिपेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, सभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।'

उदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे मध्याराजने खोलियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके किये शुभ दिन एवं उन पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शालदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, उन और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। फिर तो अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके किये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन् ! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भौति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके बन चले जानेपर समस्त जगत् संकटमें पड़ जायगा, अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की—'अब यहाँ क्या करना चाहिये ?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था, इसलिये सलाह करने-Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shas

वह लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि इस द्वारा दो दर्शन-वित्त एवं भक्ति भौति व्यानपरायण होकर तपन्याश्रम भगवान् सूर्यकी आराधना करके द्वन्द्व महाराजकी आयुक्ते किये ग्राम्यना करें। इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ कोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्च, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋषिवेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको संतुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अनिहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर हृषि लगाकर खड़े रहते थे।

रूर्ध्वकी आराधनाके किये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो ! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामखण्ड पवित्रपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक बन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समरत द्विजगुण विशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं एकाग्रचित्त हो पुण्य, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अज्ञ और दीप आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर भगवान् सूर्य

आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सत्यिता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, सर्वानु तथा दीप-दीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीयर, अनन्त, रक्ष, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके देवताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुद्धा तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदयास्तमनख्य रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अनृत और ऋतु दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न-भिन्न पुण्यतीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्यत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्गमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभापुष्टकी अविकल्पके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनोंमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए

और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके समान कान्ति धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हुए भी उन सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन लोगोंने अजन्मा सूर्यदेवके स्पष्ट स्पर्शका दर्शन करके उन्हें भक्तिसे दिनीत होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीरमें रोमाश्र और कम्प हो रहा था। वे बोले—‘सहस्र किरणोंवाले सूर्यदेव ! आपको बारंबार नमस्कार है। आप सबके हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्के विजयकेतु हैं, आप ही सबके रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार तथा योग-वेत्ताओंके ध्येय हैं, आप हमपर प्रसन्न हों।’

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर सब लोगोंसे कहा—‘द्विगण ! आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगों।’ वह सुनकर ब्राह्मण आदि वर्णोंकि लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—‘अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्धन नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा स्थिर यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।’

‘तथास्तु’ कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे वर पाने आदिकी सद वाते यथावत् कह सुनायी। यह सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परंतु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ न. बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। वह बोली—‘महाराज ! वडे भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन् ! इतने वडे अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती ? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी, फिर भी आपको सुश्री क्यों नहीं होती ?’

राजा बोले—कल्याणि ! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ ? तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो ? जब हजार-हजार

दुःख प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको वधाई देना क्या उचित माना जाता है? मैं उकेला ही तो दस हजार वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं रहेगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट, वन्द्य-वान्धव, भक्त, सेवक तथा मित्रवर्ग—ये सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय मुझे अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने अत्यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाड़ियाँ सुखा-सुखाकर मेरे लिये तपस्या की, वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मैं धिक्कार देनेयोग्य नहीं हूँ? सुन्दरि! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। मेरा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो?

मानिनी बोली—महाराज! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें; क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा, भूत्यर्वगं, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र मैं जीवित रह सकें तो मैं राज्यसिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकेर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।

राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—ऐसा ही हो। फिर तो वे भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयीं। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ

सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भातुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने धोर तपस्या की। सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते-करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए वडी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और उन्होंने दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे यौवनको स्थिर रखते हुए अपने पुत्र, पौत्र और भूत्य आदिके साथ दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाया गयी—‘अहो! भगवान् सूर्यकी भक्तिकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्य-वर्धन अपने तथा खजनोंके लिये आयुर्वर्धन वन गये।’

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रसङ्गमें सूर्यदेवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों संघ्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाल होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमें इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य विराजमान रहते हैं। अतः ब्रह्मन्! यदि तुम्हे महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ! जो सोनेके सींगसे युक्त सुन्दर काली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयमसे रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति समान ही होती है।

ब्रह्मपुराणमें सूर्यभस्त्रम्

[ब्रह्मपुराणके प्रस्तुत संदर्भमें कोणादित्य एवं भगवान् सूर्यकी महिमा, सूर्य-महत्वके साथ अदितिके गर्भमें उनके सम्बन्ध वर्णन और श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तर शतनामोंके वर्णनवाले वस्तु-विषय संकलित हैं ।]

कोणादित्यली महिमा

सूर्यादी महिमा है—भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके किनारे ओण्डूदेशके नामसे विद्युत एक प्रदेश है, जो लगभग पूर्व मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मङ्गलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोद्घारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जिंदिय ब्राह्मण उपस्था एवं खाद्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही बन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस देशके ब्राह्मण श्राद्ध, दान, निवाह, यज्ञ आद्यवा आचार्यकर्म—सभी कार्योंकी छिपे उत्तम हैं। वे पट्कर्मपरायण, वेदोंके पारस्पर विद्वान्, इतिहासकेत्ता, पुराणार्थविशारद, सर्वशास्त्रार्थकुरुता, यज्ञशील और राग-द्वेषरहित होते हैं। कोई वैदिक प्राणिहोम्यमें लगे रहते और कोई स्मर्त-अनिकी उपासना करते हैं। वे धी, पुन्र और धनसे सम्पन्न, दानी और सत्यवादी होते हैं तथा यज्ञोत्सवसे विभूषित पवित्र उत्कलदेशमें निवास करते हैं। वहाँ क्षत्रिय आदि अन्य तीन धर्मोंके लोग भी परम संयमी, स्वर्कर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणादित्यके नामसे विद्युत होकर रहते हैं। उनका दर्शन वर्तके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सुनिदिंदोंने कहा—सुरश्रेष्ठ ! पूर्वोक्त ओण्डूदेशमें जो सूर्यका क्षेत्र है तथा जहाँ भगवान् भास्कर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। अब हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्मार्जा पोले—मुनिवरो ! उव्याससमुद्रका उत्तरी तट अत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब और वालुवाराशिसे आच्छादित है। उस सर्वगुणसम्पन्न प्रदेशमें

* कोणादित्यकी समसामयिक स्थितिके सम्बन्धमें आगे निवन्ध दिये गये हैं।

चम्पा, अशोक, मौलसिरी, करवीर (कन्नेर), गुरुद्व, बागबेसर, ताङ, चुपारी, नारियल, कैथ और अन्य नाना व्रागके सर, ताङ, चुपारी, नारियल, कैथ और अन्य नाना व्रागके घृक्ष चारों ओर शोभा पाते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में विद्युत है। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अधिक है। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवान् सूर्यका निवास है। वे 'कोणादित्य' के नामसे विद्युत एवं भोग और मोक्ष प्रदान दरनेवाले हैं। वहाँ माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करना चाहिये। फिर ग्रातः शौच आदिसे निवृत्त एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए विद्युत-पूर्वक समुद्रमें स्थान करे। स्नानोपरान्त देवता, वृषभ और मनुष्योंका तप्पण करनेकी विधि है। तप्पणार्थ जलसे बाहर आकर दो स्तंभ बब्ल धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक दूर्योदयके समय समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर वैठ जाय। लाल चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमलकी ऐसी आकृति बनाये जो केसरयुक्त और गोलाकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल छळ और कुशा उस पात्रमें रख दे। ताँबेका वर्तन न मिले तो मदरख्बे पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रखें। उस पात्रको एक दूसरे पात्रसे ढक देना चाहिये। इसके बाद हृदय आदि अङ्गोंके त्रासे अझन्यास और करन्यास करके पूर्ण श्रद्धाके साथ अपने आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यका ध्यान करे।

इसके बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें तथा अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके दलोंमें

एवं पुनः मध्यभागमे क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परम और सुखरूप सूर्यदेवका पूजन करे । तदनन्तर वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका आवाहन करके कर्णिकाके ऊपर उनकी थापना करे । तत्यथात् हाथोसे सुमुख और सम्पुट आदि मुद्राएँ दिखाये । फिर देवताको स्नान आदि कराकर एकाग्रचित्त हो इस प्रकार ध्यान करे—‘भगवान् सूर्य श्वेत कमलके आसनपर तेजोमण्डलमे विराजमान हैं । उनकी आँखे पीली और शरीरका रंग लाल है । उनके दो भुजाएँ हैं । उनका वक्ष रक्त कमलके समान लाल है । वे सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त और सभी तरहके आभूषणोंसे विभूषित हैं । उनका रूप सुन्दर है । वे वर देनेवाले तथा शान्त एवं प्रभापुञ्जसे देदीप्यमान हैं ।’ तदनन्तर उदयकालमें स्नान सिन्दूरके समान अरुण वर्णवाले भगवान् सूर्यका दर्शन करके अर्धपात्र ले । उसे सिरके पास लगावे और पृथ्वीपर धुटने टेककर मौन हो एकाग्रचित्तसे अक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे । जिस पुरुषको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह भावयुक्त श्रद्धाके साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे; क्योंकि भगवान् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमे होते हैं ।

अग्नि, नैऋत्य, वायव्य एवं ईशानकोण, मध्यभाग तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अख्यकी पूजा करे ।* फिर अर्घ्य देना चाहिये । गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदनकर, जप, स्तुति, नमस्कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे । जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, कैश्य, खी और शूद्र अपनी इन्द्रियोंको वशमे रखते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिभाव और विशुद्ध

चित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम गतिको प्राप्त होते हैं ।† जो मनुष्य तीनो लोकोंको प्रकाशित करनेवाले आकाश-विहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते हैं । जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे दिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शंकर अथवा इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये । अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रयत्न करके मनोहर फूलों और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना आवश्यक है । इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको स्नान करके शुद्ध एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है । रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है ।

इस प्रकार समुद्रमे स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हे प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमे जाय । मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, सायान्न प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे । इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है । इतना ही नहीं, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है और अपने बागे-बीछेकी सात-सात पीड़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर

* पूजनके वाक्य इस प्रकार हैं—हा हृदयाय नमः, अग्निकोणे । हूँ शिरसे नमः, नैऋत्ये । हूँ शिखायै नमः, वायव्ये । हैं कवचाय नमः, ऐशाने । हैं नेत्रवयाय नमः, मध्यभागे । है अस्त्राय नमः, चतुर्दिक्षु इति ।

+ ये वाऽर्थ्य सम्प्रयन्त्रिति सूर्याय नियतेन्द्रियाः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः सूदाश्च सयताः ॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना । ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥

बैठकर सूर्यके लोकमे जाता है। उस समय गन्धवर्गण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ मोगोका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस सप्तरामें आता और योगियोके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों बेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमे भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभंजिकाके नामसे विल्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुवयोगमे उत्तरायण या दक्षिणायण आरम्भ होनेपर, रविवारको सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी भौति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमे जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमे) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विल्यात भगवान् महादेवजी विराजमान है, जो समस्त अभिलिप्त फलोंके देनेवाले है। जो समुद्रमे स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्योद्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेव यज्ञोक्ता फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं।

भगवान् सूर्यकी महिमा

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भास्करके उत्तम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, वह सब हमलोगोने सुना। अब यह बताइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ? इस समय यही सब सुननेकी हमारी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा इष्टदेवके प्रति जो मादना होती है, उसे ही भक्ति और श्रद्धा कहते हैं। जो इष्टदेवकी कथा सुनता, उनके भक्तोंकी पूजा करता तथा अग्निकी उपासनामें संलग्न रहता है, वह सनातन भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन करता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींकी पूजामें रत रहता तथा उन्हींके लिये काम करता है, वह निश्चय ही सनातन भक्त है। जो इष्टदेवके लिये किये जानेवाले कर्मोंका अनुमोदन करता, उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, अन्य देवताकी निन्दा नहीं करता, सूर्यके ब्रन रखना तथा चलन, फिरते, ठहरते, सोते, सूँघते और आँख खोलने-मीचते समय भगवान् भास्करका स्मरण करता है, वह मनुष्य परम भक्त माना गया है। विज पुरुषको सदा ऐसी ही भक्ति करनी चाहिये। भक्ति, समानि, स्तुति और मनसे जो नियम किया जाता है और ब्राह्मणको दान दिया जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर—सभी ग्रहण करते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल—जो कुछ भी भक्ति-पूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्रहण करते हैं; परंतु वे नास्तिकोंकी ढी हुई वस्तु नहीं सीकार करते। नियम और आचारके साथ भावशुद्धिका भी उपयोग करना चाहिये। हृदयके भावको शुद्ध रखते हुए जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होता है। भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उपहार-समर्पण, पूजन, उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पारोसे मुक्त हो जाता है। जो पृथ्वीपर मस्तक रखकर भगवान् सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पारोसे हृष्ट जाता है, इसमे तनिक भी सदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो सूर्यदेवको अपने हृदयमे धारण करके केवल आकाशकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण

देवताओंकी परिक्रमा हो जाती है। * जो पश्ची या सप्तमीको एक समय भोजन करके नियम और व्रतका पालन करते हुए सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अश्वमेघ यज्ञका फल मिलता है। जो पश्ची अथवा सप्तमीको दिन-रात उपवास करके भगवान् भास्करका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

जब शुक्रपक्षकी सप्तमीको रविवार हो, उस दिन विजयासप्तमी होती है। उसमें डिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। विजयासप्तमीको किया हुआ स्नान, दान, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य रविवारके दिन श्राद्ध करते और महातेजस्वी सूर्यका यजन करते हैं, उन्हे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिनके समस्त धार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके कुलमे कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं होता। जो सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो निराहार रहकर भौति-भौतिके सुगन्धित पुष्पोद्भारा सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जो निलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अन्धा नहीं होता। दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है। जो सदा देव-मन्दिरों, चौराहों और

सड़कोपर दीप-दान करता है, वह रथवान् तथा सौभाग्य-शाली होता है। दीपकी शिखा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती। इसी प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता है। वह कभी तिर्यग्योनिमे नहीं पड़ता। जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे। दीपहर्ता मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध एवं तमोमय नरकको प्राप्त होता है। उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्थ देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदित्यव्रत कहलाता है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। सूर्योदयके समय श्रद्धापूर्वक अर्थ देकर सब कुछ साझो-पाझ दान करे। इससे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा तथा पिण्डी (प्रतिमाकी बेढी)में यत्नपूर्वक सूर्यदेवको अर्थ देना चाहिये। ^१ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो मानव प्रत्येक वेलामें अथवा कुवेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो तीर्थोंमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रतापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

* भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता । भावशुद्धया क्रियते यत्तत्त्वं सफल भवेत् ॥
स्तुतिज्ञायोपहारेण पूजयापि विवस्तः । उपवासेन भक्त्या वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कार करोति यः । तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सग्रहः ॥
भक्तियुक्तो नरो योडसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सातदीपा वसुन्धरा ॥
सूर्य मनसि यः कृत्वा कुर्याद् व्योमप्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥

(२९ । १७—२१)

अर्थेण सहित चैव सर्वे साङ्ग प्रदापयेत् । उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(२९ । ४६)

^१ अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्या तशैव च । प्रतिमाया तथा पिण्ड्या देशमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥

(२९ । ४८)

छत्र, ध्वजा, चँदोवा, पताका और चँगर आदि वस्तुएँ सूर्यदेवको श्रद्धापूर्वक समर्पित करके मनुष्य अभीष्ट गतिको प्राप्त होता है। मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उसे वे लाखगुना करके उस पुरुषको देते हैं। भगवान् सूर्यकी कृपासे मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यदेवके एक दिनके पूजनसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह शाखोक दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिलता।

मुनियोंने कहा—जगत्ते ! भगवान् सूर्यका यह अद्भुत माहात्म्य हमने सुन लिया । अब पुनः हम जो कुछ पूछते हैं, उसे बताइये । गृहस्थ, व्रद्धचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी—जो भी मोक्ष प्राप्त करना चाहे, उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये ? कैसे उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी ? किस उपायसे वह उत्तम मोक्षका भागी होगा ? तथा वह किस साधनका अनुष्ठान करे, जिससे स्वर्गमें जानेपर उसे पुनः नीचे न गिरना पडे ?

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो ! भगवान् सूर्य उदित होते ही अपनी किरणोंसे संसारका अन्वकार दूर कर देते हैं। अतः उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। वे आदि-अन्तसे रहित, सनातन पुरुष एवं अतिनाशी हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रचण्ड रूप धारणकर तीनों लोकोंको ताप देते हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हींके खरूप हैं। ये तपनेवालोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, साक्षी तथा पालक हैं। ये ही वारंवार जीवोंकी सृष्टि और सहार करते हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते, तपते और वर्षा करते हैं। ये धाता, विधाता, सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण और सब जीवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। ये कभी क्षीण नहीं होते। इनका मण्डल सदा अक्षय वना रहता है। ये पितरोंके भी

पिता और देवताओंके भी देवता हैं। इनका स्थान ध्रुव माना गया है, जहांसे फिर नीचे नहीं गिरना पड़ता। सृष्टिके समय सम्पूर्ण जगत् सूर्यसे ही उत्पन्न होता है और प्रलयके समय अत्यन्त तेजस्वी भगवान् भास्करमें ही उसका ल्य होता है। असंख्य योगिजन अपने कलेवरका परिवाग करके वायुस्यरूप हो तेजोगणि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालशिल्य आदि ब्रह्मवार्दी महर्पि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि तथा किंतन ही संन्यासी योगका आश्रय ले सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। व्यासपुत्र श्रीमान् शुकदेवजी भी योगर्वम प्राप्त करनेके अनन्तर सूर्यकी किरणोंमें पहुँचकर ही मोक्षपदमें स्थित हुए। इसलिये आप सब लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करें; क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्के माता-पिता और गुरु हैं।

अव्यक्त परमात्मा समस्त प्रजापनियों और नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके स्वयं वारह रूपोंमें विभक्त हो आदित्यरूपसे प्रकट होते हैं। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूरा, अर्यमा, भग, विश्वान्, विष्णु, अंशुमान्, वरुण और मित्र—इन वारह सूर्तीयोद्धारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। भगवान् आदित्यकी जो प्रथम सूर्ति है, उसका नाम इन्द्र है। वह देवराजके पदपर प्रतिष्ठित है। वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली सूर्ति है। भगवान्के दूसरे विग्रहका नाम धाता है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजाकर्गकी सृष्टि करते हैं। सूर्यदेवकी तीसरी सूर्ति पर्जन्यके नामसे विद्यात है, जो बादलोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रहको त्वष्टा कहते हैं। त्वया सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओपवियोंमें स्थित रहते हैं। उनकी पाँचवीं सूर्ति पूरा के नामसे प्रसिद्ध है, जो अन्नमें स्थित हो सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करती है।

सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम अर्यमा बताया गया है। वह वायुके सहारे सम्पूर्ण देवताओंमें स्थित रहती है। भानुका सातवाँ विश्राह भगके नामसे विल्यात है। वह ऐश्वर्य तथा देहधारियोंके शरीरोंमें स्थित होता है। सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति विवसान् कहलाती है, वह अग्निमें स्थित हो जीवोंके खाये हुए अन्नको पचाती है। उनकी नवीं मूर्ति विष्णुके नामसे विल्यात है, जो सदा देवशत्रुओंका नाश करनेके लिये अवतार लेती है। सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम अंशुमान् है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। सूर्यका ग्यारहवाँ स्वरूप वरुणके नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें स्थित होकर प्रजाका पोषण करता है। भानुके बारहवें विश्राहका नाम मित्र है, जिसने सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये चन्द्र नदीके तटपर स्थित होकर तपस्या की। परमात्मा सूर्यदेवने इन बारह मूर्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप कर रखा है। इसलिये भक्त पुरुषोंको उचित है कि वे भगवान् सूर्यमें मन लगाकर पूर्वोक्त बारह मूर्तियोंमें उनका ध्यान और नमस्कार करे। इस प्रकार मनुष्य बारह आदित्योंको नमस्कार करके उनके नामोंका प्रतिदिन पाठ और श्रवण करनेसे सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मुनियोंने पूछा—यदि ये सूर्य सनातन आदिदेव हैं, तो इन्होंने वर पानेकी इच्छासे प्राकृत मनुष्योंकी भौति तपस्या क्यों की?

ब्रह्माजी बोले—यह सूर्यका परम गोपनीय रहस्य है। पूर्वकालमें मित्र देवताने महात्मा नारदको जो बात बतलायी थी, वही मैं तुम लोगोंसे कहता हूँ। एक समयकी बात है, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले महायोगी नारदजी मेहरगिरिके शिखरसे गन्धमादन नामक पर्वतपर उतरे और सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए उस स्थानपर आये, जहाँ मित्र देवता तपस्या करते थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देखकर नारदजीके

मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे, ‘जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, जिन महात्माने तीनों लोकोंको धारण कर रखा है, जो सब देवताओंके पिता एवं परसे भी परे हैं, वे किन देवताओं अथवा पितरोंका यजन करते हैं और करेंगे?’ इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी मित्र देवतासे बोले—‘भगवन्! अङ्गोपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। ग्रहस्य आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं। फिर आप किस देवता अथवा पितरकी आराधना करते हैं, यह हमारी समझमें नहीं आता।’

मित्रने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है; परंतु आप भक्त हैं, इसलिये आपके सामने मैं उसका यथावत् वर्णन करता हूँ। वह जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोंके विषयोंसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् है, वही समस्त जीवोंकी अन्तरात्मा है, उसीको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। वह तीनों गुणोंसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम भगवान् हिरण्यगर्भ है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) माना गया है। उसने इस एकात्मक त्रिलोकीको अपने आत्माके द्वारा धारण कर रखा है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। शरीरमें रहते हुए भी वह उसके कर्मोंसे लिप नहीं होता है। वह मेरा, तुम्हारा तथा अन्य जितने भी देहधारी हैं, उनकी भी आत्मा है। सबका साक्षी है, कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता। वह सगुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य

माना गया है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप करके स्थित है।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण नासिकाएँ उसकी नासिका हैं। वह स्वेच्छाचारी है और अकेला ही सम्पूर्ण क्षेत्रमें सुखपूर्वक विचरता है। यहाँ जितने शरीर हैं, वे सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको वह योगात्मा जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अव्यक्त पुरमें शयन करता है, अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वका अर्थ है वहुविविध, वह परमात्मा सर्वत्र वतलाया जाता है, इसीलिये वहुविवरूप होनेके कारण वह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र वही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है। अतः वह एकमात्र सनातन परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्थय ही अपने आपको सौ, हजार, लाख और करोड़ों रूपोंमें प्रकट कर लेता है। जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्थानका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्बर्कसे वह परात्मा अनेकरूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त शरीरमें पाँच रूपोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अनि दूसरे स्थानकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा ब्रह्मा आदिके रूपोंमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोंको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारों रूपोंको उत्पन्न करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं हैं;

परतु वह परमात्मा अश्वय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। वह ब्रह्म सदसखरूप है। लोकमें देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। उसका ज्ञान अपने आत्माके द्वारा होता है। अन. मैं उसी सर्वात्माका पूजन करता हूँ। देवर्पे ! स्वर्गमें भी जो जीव उस परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, वे उसीके द्वारा दी हुई अभीष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। देवता और अपने-अपने आश्रमोंमें स्थित मनुष्य भक्तिपूर्वक सबके आठिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वात्मा, सर्वगत और निर्गुण कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐसा मानकर अपने ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ। नारदजी ! यह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण आपको वतलाया है। आपने भी इस उत्तम रहस्यको भलीभौति समझ लिया। देवता, मुनि और पुराण—सभी उस परमात्माको वरदायक मानते हैं और इसी भावसे सब लोग भगवान् द्विवकरका पूजन करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मित्रदेवनाने पूर्वकालमें नारदजीको यह उपदेश दिया था। भानुके उपदेशको मैंने भी आपलोगोंमें कह सुनाया। जो सूर्यका भक्त न हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रनिदिन इस प्रसङ्गको सुनाता और सुनता है, वह निःसंदेह भगवान् सूर्यमें प्रवेश करता है। आरम्भसे ही इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो !

* चसन्नपि शरीरेणु न स लिप्येत कर्मभिः । ममान्तरात्मा तत्र च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्षचित् । सगुणो निर्गुणो विश्वो जानगम्यो व्यसौ स्मृतः ॥
सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिणिरोमुखः । सर्वतः श्रुतिमात्मोऽक्षिणिरोमुखः ॥

जो इसका पाठ करता है, वह जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेना है।

सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति हैं। वे ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। अग्निमे विधिपूर्वक ढाली हुई आहुति सूर्यके पास ही पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग—इनकी काल-सख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। कालका ज्ञान हुए बिना न कोई नियम चल सकता है और न अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके बिना ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके बिना वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं, खेती कैसे पक सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। उस दशामें सर्वगलोक तथा भूलोकमें जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन बारह सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही वोध होता है। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, लक्ष्मी तथा पर्जन्य—ये बारह सूर्य पृथक्-पृथक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रोमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और

फालगुनमें लक्ष्मी नामक सूर्य तपते हैं। इस प्रकार यहाँैं एक ही सूर्यके चौबीस नाम बताये गये हैं। इनके अनिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते ! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हे क्या पुण्य होता है तथा उनकी कैसी गति होती है ?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो ! मैं भगवान् सूर्यका कल्याणमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुनियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालोंको सहज नामोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो पवित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उन्हींका वर्णन करता हूँ, सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्त्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्वयाहन, गमस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है। * यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यश फैलानेवाला स्तोत्रराज है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरो ! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें दोनों संध्याओंके समय इस स्तोत्र-के द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापों-से मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे मानसिक, वाचिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणो ! आपलोग यत्नपूर्वक सम्पूर्ण अभिलिप्ति फलोंके देनेवाले भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करे।

मुनियोंने पूछा—भगवन् ! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता बनलाया है, फिर आपके ही-

* विकर्तनो विवस्वान् मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमौलोकचक्षुर्महेश्वरः ॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्त्रहा । तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्वयाहनः ॥
गमस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः । एकविंशतिरित्येष रथः सदा रवेः ॥

मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे वारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भसे कैसे प्रकट हुए, इस विप्रयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके सामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलभिमानी भयङ्कर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य खियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यप-के पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। अतः वे मिलकर उन्हे कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रों-को अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूहम, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्योंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता

हैं। आपको नमस्कार है। गोपते ! जगत्का उपकार करनेके लिये मैं आपकी रुनि—आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ। क्रमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलस्थ रसको प्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अनि और सोम-से संयुक्त होता है। आप गुणात्मको नमस्कार है। विभावसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजुः और सामकी एकतासे त्र्यीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है, उसको नमस्कार है। सनातन ! उससे भी परे जो ॐ नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं मूळमरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिनीको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यञ्च दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्के आदिकारण भगवान् सूर्य ! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते ! मैं आपको भलीमौति देख नहीं पाती। दिवाकर ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीमौति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो ! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—‘देवि ! आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लो।’

* नमस्तुभ्य पर सूक्ष्म सुपुण्यं विभ्रतेऽतुलम् । धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥

जगतासुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते । आददानस्य सद्रूप तीव्रं तस्मै नमाग्रहम् ॥

ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुद्यमयं रसम् । विभ्रतस्तव यद्रूपमतिरीवं नतोऽसि तम् ॥

समेतमन्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने । यद्रूपमृग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव ॥

विश्वमेतत् त्र्यीसंज्ञ नमस्तस्मै विभावसो ।

यत्तु तस्मात्पर रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् । अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥

अदिति बोलीं—देव ! आप प्रसन्न हो । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकी-का राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है । गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें । अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें ।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।

यो कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सत्रिताने उनके गर्भमें निवास किया । उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं । उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—‘तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यो मारे डालती है ?’ तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—‘देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा । मैंने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा ।’ यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया । वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा । उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया । स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया । उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी । उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया । इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर खरमें आकाशवाणी हुई—‘मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—“त्वया मारितमण्डम्” (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र

मार्तण्डके नामसे विद्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा ।’ यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये । तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानवोंने भी आकर उनका समाना किया । उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ । उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये । फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही । उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया । तदनन्तर देवताओंको पूर्ववर्त् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये । भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे । ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भौति शोभा पाते थे । वे आगमें तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे । उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था ।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये ।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेवर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्वकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)का आविर्भाव हुआ । उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहकार प्रकट हुआ । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए । तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ । उसमें ये सातों लोक प्रतिष्ठित थे । सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी । उसीमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे । वहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ़ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे । तदनन्तर अन्धकारको

मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे वारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी खीके गर्भसे कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिनि, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलभिमानी भयंकर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य खियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा वह सम्पूर्ण जगत् व्याप हो गया। कश्यप-के पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। वे सत्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। अतः वे मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रों-को अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टाय कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता

हैं। आपको नमस्कार है। गोपते ! जगतका उपकार करनेके लिये मैं आपकी रुति —आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ। कमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलस्थ रसको प्रदृश करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अनि और सोम-से संयुक्त होता है। आप गुणात्माको नमस्कार है। विभावसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजुः और सामकी एकत्वासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है, उसको नमस्कार है। सनातन ! उससे भी परे जो ३० नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेगर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्के आदिकारण भगवान् सूर्य ! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते ! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। द्रिवाकर ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभोति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेगले प्रभो ! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—‘देवि ! आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लो।’

* नमस्तुभ्य पर सूक्ष्म सुपुण्यं विश्रेत्तुलम् । धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते । आददानस्य सद्गृप तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुद्यमयं रसम् । विभ्रतस्तव यद्गृपमतितीवं नतोऽस्मि तम् ॥
रामेतमशीपोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने । यद्गृपमृग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव ॥
विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ।
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् । अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥
(३२ । १२—१६)

अदिति वोलीं—देव ! आप प्रसन्न हो । अधिक वल्लान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकी-का राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है । गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें । अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें ।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मैं अपने हजारें अंशसे तुम्हारे गर्भका वालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया । उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं । उनका यह कठोर नियम देखकर कल्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—‘तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है ?’ तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—‘देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा । मैंने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा ।’ यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया । वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा । उसे देखकर कल्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया । स्तुति करनेपर उस गर्भसे वालक प्रकट हो गया । उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पदापत्रके समान श्याम थी । उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया । इसी समय अन्तरिक्षसे कल्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—‘मुने ! तुमने अदिनिसे कहा था—“त्वया मारितमण्डम्” (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र

मार्तण्डके नामसे विल्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा ।’ यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये । तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानवोंने भी आकर उनका सामना किया । उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ । उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये । फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही । उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया । तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये । भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे । ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे । वे आगमे तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे । उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था ।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये ।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेवर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)का आविर्भाव हुआ । उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए । तदनन्तर एक अण्ड उत्तर दिशामें सातों लोक प्रतिष्ठित थे । सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी । उसीमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे । वहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ़ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे । तदनन्तर अन्धकारको

दूर करनेवाले एक महातेजस्वी देवता प्रकट हुए। उस समय हमलोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये भगवान् सूर्य हैं। उन परमात्माको जानकर हमने इच्छा स्तुतियोंके द्वारा उनका स्वरूप आरम्भ किया—‘भगवन्! तुम आदिदेव हो। ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो। सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो। तुम्हीं देवादिदेव दिवाकर हो। सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किंत्रियों, सिङ्गों, नागों तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही है। तुम्हीं ब्रह्म, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विश्वान् एव वहण हो। तुम्हीं काल हो, सृष्टिके कर्ता, धर्म, सहर्ता और प्रमुख भी तुम्हीं हो। नदी, समुद्र, पर्वत, विजली, इन्द्रधनुष, प्रलय, सृष्टि, व्यक्त, अव्यक्त एव सनातन पुरुष तुम्हीं हो। साक्षात् परमेश्वर तुम्हीं हो। तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं। नेत्र, मल्लक और मुख भी सब ओर हैं। तुम्हारे सहस्रों किलों, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं। तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हारा जो खस्त्र अव्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, इच्छा, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश विसरेवान्ना

और देवेशरोंके द्वाग भी कठिनतासे देखे जाने योग्य हैं, उसको हमारा नमस्कार है। देवता और सिद्धजिसका स्वरूप करते हैं, भृगु, अत्रि और पृथु आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें सल्लान रहते हैं जो अव्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है। सम्पूर्ण देवताओंमें उक्त तुम्हारा जो व्यष्ट वेदनेता पुरुषोंके द्वाग जानने योग्य, निष्ठ और सर्वज्ञानमध्यन है, उसको हमारा नमस्कार है। तुम्हारा जो व्यन्न इस विश्वकी मृष्टि करनेवाला, विश्वमय, अनिष्ट देवताओंद्वाग पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक और अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है। तुम्हारा जो न्यून वज्ज, वेद, लोक तथा द्रुमन्द्रेकने भी परे परमात्मा नामसे विद्यान है, उसको हमारा नमस्कार है। जो अपिग्रेय, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्त है, आपके उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है। प्रभो! तुम कारणके भी कारण हो, तुमको वारंवार नमस्कार है। पारंसे मुक्त करनेवाले तुम्हे प्रणाम है, प्रणाम है। तुम दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और गोंगेमें छुटकारा दिलानेवाले हो। तुम्हें अनेकानेक नमस्कार हैं। तुम सबको वर, मुख, धन और उत्तम वृद्धि प्रदान करनेवाले हो। तुम्हे वारंवार नमस्कार हैं।

* आदिदेवोऽग्नि देवानामैश्वर्यव्याघ त्वमीश्वरः। आदिकर्तासि भूताना देवदेवो दिवाकरः ॥

जीवनः सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षगम्। मुनिकिनगसिद्धानां तथैवोगारक्षिणाम् ॥

त्वं व्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। वायुरिन्द्रश्च सामध्य विव्यान् वहणनथा ॥

त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः। सरिनः सागगः शैला विशुद्धिन्द्रधनूपि च ॥

प्रलयः प्रभवद्वैव व्यक्ताव्यक्तः। मनातनः। इन्द्रगन्धर्वतो विद्या विद्यायाः परतः जिवः ॥

शिवात्परनगे देवस्त्वमेव परमेश्वरः। सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिणिरोमुदः ॥

सहस्राशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः। भूतादिर्भूत्युवः स्वश्च महः सन्य तथो जनः ॥

प्रदीप दीपन दिव्य सर्वलोकप्रकाशकम्। दुर्लिंगीक्ष मुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

मुरसिद्धगणैर्जुषे भृगविषुलद्वादिभिः। स्तुतं परममन्द्रतं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

वेद्यं वेदविदा निष्ठ र्वज्ञानममन्वितम्। सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

विश्वकूदिश्वभूतं च वैश्वानरमुरार्चितम्। विश्वस्थितमन्वित्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकात्परं दिवः। परमात्मेत्यभिरुल्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

अविज्ञेयमनालङ्घयमव्यानगतमव्ययम्। अनादिनिधनं वैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविमोचनाय। नमो नमस्ते दितिजादिनाय नमो नमो रोगिमोचनाय ॥

नमो नमः सर्वव्रप्रदाय नमो नमः गर्वमुखप्रदाय। नमो नमः सर्वधनप्रदाय नमो नमः सर्वमनिप्रदाय ॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले
भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमे कहा—
‘आपलोगोंको कौन-सा वर प्रदान किया जाय ?’

देवताओंने कहा—प्रभो ! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसके तापको कोई सह नहीं सकता । अतः जगत्‌के हितके लिये यह सबके सहने योग्य हो जाय ।

तब ‘एवमस्तु’ कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर गर्मी, सर्दी और वर्षा करने लगे । तटनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यानी तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-मन्दिरमे स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे । समस्त शुभ लक्षणोंसे हीन अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब पापोंसे तर जाता है । अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणाचाले यज्ञ, भगवान् सूर्यकी भक्ति एव नमस्कारकी सोलहवीं कलाके वरावर भी नहीं हो सकते । भगवान् सूर्य तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोंमें परम मङ्गलमय और पवित्रोंमें परम पवित्र है । अतः विद्वान् पुरुष उनकी शरण लेते हैं । जो इन्द्र आदिके द्वारा प्रशसित सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमे सूर्यलोकमे चले जाते हैं ।

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे मनमे चिरकालसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नामोंका वर्णन सुने । आप उन्हे वतानेकी कृपा करे ।

ब्रह्माजी बोले—व्राह्मणो ! भगवान् भास्करके परम गोपनीय एक सौ आठ नाम, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं, वतलाता हूँ, सुनो । ॐ सूर्य, अर्यमा, भग,

त्वष्टा, पूषा (पोपक), अर्क, सविता, रवि, गमस्तिमान् (किरणोवाले), अज (अजन्मा), काल, मृत्यु, धाता (धारण करनेवाले), प्रभाकर (प्रकाशका खजाना), पृथ्वी, आप् (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परायण (शरण देनेवाले), सोम, वृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गरक (मगल), इन्द्र, विवशान्, दीपांशु (प्रज्वलित किरणोवाले), शुचि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), शनैरुचर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुवेर), यम, वैद्युत (विजलीमे रहनेवाले), अग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धन (ईन्धनमे रहनेवाले), अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, कृत (सत्ययुग), व्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा (रात्रि), याम (प्रहर), क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन, अरिहा (शत्रुओंका नाश करनेवाले), भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्तुन, ऋषि, संवर्तक (प्रलयकालीन), अग्नि, सर्वादि, अलोलुप (निर्लोभ), अनन्त, कणिल, भानु, कामद (कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब और मुखवाले), जय, विशाल, वरद, सर्वभूतिप्रेतित, मन, सुपर्ण (गरुड), भूतादि, शीत्रग (शीत्र चलनेवाले), प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, आदितिपुत्र, द्वादशात्मा (वारह स्वरूपोवाले), रवि, दक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)*—ये

* ॐ सूर्योऽर्थमा भगस्त्वया पूर्णार्कः सविता रविः । गमस्तिमानजः काले मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् । सोमो वृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गरकः एव च ॥
इन्द्रो विवशान् दीपांशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥

अग्नि तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके विनास कीर्तन करता है, यह धौकल्पी दामन में एक सौ आठ सुन्दर नाम में बताये हैं। जो गतुय यमुक्ते मुक्ते तो जाता था, भगवान् यदित्त गोत्तमोंके प्राप्त देवथ्रेषु भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका शुद्ध पाण पक्षाप्र करता है।

भागवतीय सौर-मन्दर्भम्

[इस भागवतीय सन्दर्भमें सूर्यके रथ और उत्तरी गति, भित्त-भित्त ग्रन्तोंमें विविध और गतियाँ, शिशुमारचक तथा रातु आदिकी वित्ति एवं नीचेके लोकोंका प्रागायिक पद्धतिमें गति का और कौतूहलपूर्ण वर्णन है।]

सूर्यके रथ और उत्तरी गति

श्रीगुरदेवजी कहते हैं—गजन् ! परम्परा और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इनना ही विद्यार है, जो हमने तुम्हे मुना दिया। इसके अनुमान विद्यान-लोग दुष्टेकवा भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना, मटर आदिके दो दलोंमेंसे पक्का लड्डा जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उभी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही दुष्टेकवा भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके शीर्चों अन्तिमशब्द है। यह इन दोनोंका संविधान है। इसके प्रयोगमें विष्णु प्रभु और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने नाम और प्रकाशमें तीनों लोकोंको तपाने और प्रकाशित करने हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायण और विश्वन् (मध्यम) मार्गोंमें क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंमें चलने हुए समयानुमार मक्कगढि गश्चियोंमें उच्चे-नीचे और

मध्यान् गतियोंमें जाता है इन-मानवों व्याप्तिया यह समान कहते हैं। जब लगातार सूर्य भूमि पर यह दृश्यतामिति अन्त होते हैं, तो विनाश मणन हो जाते हैं, जब कुप गहरि पौर्व गश्चियोंमें चलते हैं, तो प्रतिकाम गश्चियोंमें दृश्यता दर्शी कम होती जाती है और उसी विस्तरमें इन वर्तने जाते हैं। जब वृक्षिक अदि पौर्व गश्चियोंमें चलते हैं तिर्तुर गश्चियोंमें दृश्यता होता है वर्गत् इन प्रतिकाम दृश्यता वर्ती रहते जाते हैं और गश्चियों दर्शनी जाती है। यह प्रयोग दक्षिणायण असम लोनियक दिन वर्तने जाते हैं और उत्तरायण कर्त्तव्यक गतियों। (उत्तरायणमें इन वर्ता, गत दर्शनी जोही है।)

इस प्रकार दक्षिणायण मानसोऽप्य एवं दृश्यता गश्चियोंका मार्ग नौ वर्तोः इस्तम्भ द्वारा देखने दर्शन है। उस पर्वतम भेदों पूर्वी ओर दक्षिणी ओर दक्षिणी नामकी पूरी है, दक्षिणी ओर यमगत्त्वी मुखमनोंपरी

वैयुतो जाटरम्भाग्निर्वन्नत्वेऽप्य गतिः । एवं तदेव नैदेवतो वैयुतो विद्यनः ॥
कृतं वेना द्वापरश्च गतिः तर्यामगश्चाः । यदा वाया भूमांश्च भग यागत्त्वाप्या शाः ॥
सवल्लरकरोऽश्वत्थः गल्क्षको गिगावनुः । गुदा, शाः त्वो त्वेवी वृहस्पतिः वृत्तामः ॥
कालाच्यक्ष, प्रजान्यको निष्ठाग्नीं त्वोऽनुदः । वृश्च, ग्नामेऽप्याप्य वृंहो लिङ्गक्षेत्रिण् ॥
भूताश्रयो भूतपतिः लवहोऽनमस्तुतः । यदा गंगनी वर्तिः गंगसादितोऽनुदः ॥
अनन्तः ऋषिण्यं भानुः रामदः गर्वनोनुदः । उषो गिगालो दूरदः गर्वन्त्वनीर्वितः ॥
मनः गुणो भूतादिः शीघ्रग, प्राग्यायण, । धन्वन्त्वग्निर्वृस्तेतुगदिदेवो वित्तिः तुतः ॥
द्वादशात्मा गविर्देवः वित्ता माता वित्तामतः । स्वर्गद्वारं प्रजातारं शोद्वारं विविष्यम् ॥
देहकर्ता प्रगतात्मा वित्तात्मा वित्तवोमुदः । नराच्चगत्या मूर्खात्मा भैरोः एव जानितः ॥

तथा पश्चिममे वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी और उत्तरमे चन्द्रमाकी विभावरीपुरी है। इन पुरियोमे मेरुके चारो ओर समय-समयपर सूर्योदय, मध्याह, सायंकाल और अर्धरात्रि होते रहते हैं। इन्हीके कारण सम्पूर्ण जीवोकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। राजन् ! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं, उन्हे तो सूर्यदेव सदा मध्याह्न-कालीन रहकर ही तपाते रहते हैं। वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं तथापि सारे ज्योतिर्मण्डलको धुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवह वायुद्वारा धुमा दिये जानिसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं। जिस पुरीमें भगवान् सूर्यका उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त माल्हम होते होगे और वे जहाँ लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होगे; उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हे निद्रावश किये होगे। जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होगे, वे ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर पहुँच जायें तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे।

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तो पंद्रह घड़ीमे वे सवा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजनसे कुछ—प्रायः पचीस हजार वर्ष—अधिक चलते हैं। फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोको पार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमे पहुँचते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमे अन्य नक्षत्रोके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमे चौतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ इन चारो पुरियोमे धूमता रहता है। इसका संतत्सर नामका एकचक (रथ) बतलाया जाता है। उसमें मासरूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियॉ (हाल) हैं, चौमासेरूप तीन नाभियॉ (आँवन) हैं।

इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरु पर्वतकी चोटीपर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर। इसमे लगा हुआ यह पहिया कोल्हूके पहियेके समान धूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरीमे—जिसका मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है, वह लंबाईमे इससे चौथाई है। उसका ऊपरी भाग तैल्यन्त्रके धुरेके समान धुवलेकसे लगा हुआ है।

इस रथमे बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है। इसका जूआ भी छत्तीस लाख योजन ही लम्बा है। उसमें अरुग नामक सारथिने गायत्री आदि छन्दोकेसे नामवाले सात घोड़े जोत रखक्षे हैं। वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको ले चलते हैं। सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं। उस रथके आगे अँगूठेके पोरुएके वरावर आकारवाले बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्त्रिवाचनके लिये नियुक्त हैं। वे उनकी स्तुति करते रहते हैं। इनके सिवा ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किंतु जोड़ेसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमे भिन्न-भिन्न नामोवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोसे प्रत्येक मासमे भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्तरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लंबे वेरेमेसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पार कर लेते हैं।

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गति

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! आपने जो कहा कि यद्यपि ‘भगवान् सूर्य राशियोकी ओर जाते समय मेरु और धुवको दायीं ओर रखकर चलते माल्हम होते हैं; किंतु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणार्द्ध नहीं होती’—इस विपर्यको हम किस प्रकार समझें ?

श्रीगुक्कदेवजी कहते हैं— राजन् ! जैसे कुम्हारके वूमते हुए चाकपर दूसरी ओर चलनेवाली चीटीकी गति भी चाककी गतिके अनुसार विपरीत दिशामें जान पड़ती है; क्योंकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोमें देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दाये रखकर वूमनेवाले सूर्य आदि प्रहोर्की गति वास्तवमें उससे विपरीत ही है; क्योंकि वे कालभेड़से भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देख पड़ते हैं। वेद और विद्वान् लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विप्रह-कालको वारह मासोमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणोंका विधान करते हैं। इस लोकमें वर्णात्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामिरूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना करके सुगमतासे ही परमपद प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंकी आत्मा है। वे पृथ्वी और दुलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर वारह मासोको भोगते हैं, जो संक्षिप्तरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण—ठोपक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका वताया जाता है। जितने कालमें सूर्यदेव इस संक्षिप्तरका छटा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव ‘ऋतु’ कहा जाता है। आकाशमें भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा बे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक ‘अयन’ कहते हैं तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित

पूरे आकाशका चक्रकर लगा जाने हैं, उसे अवान्तर-भेदसे सत्रासर, परिवत्सर, डडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं।

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंमें एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। उनकी चाल वहन तेज है, इसलिये ये सब नक्षत्रोंसे आगे रहते हैं। ये सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक ही दिनमें ताँ कर लेते हैं। ये कृष्णपक्षमें शीघ्र होती हुई कल्याणोंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई कल्याणोंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करते हैं तथा तीस-तीस मुहूर्तोंमें एक-एक नक्षत्रको पार करते हैं। अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण ये ही समस्त जीवोंके प्राण और जीवन हैं। ये जो सोलह कल्याणोंसे युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्तरुप भगवान् चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं, इसलिये इन्हें ‘सर्वमया’ कहते हैं।

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्के सहित अद्वैतस नक्षत्र हैं। भगवान् ने इन्हे कालचक्रमें नियुक्त कर रखा है। अतः ये मेरुको दायीं और रखकर वूमते रहते हैं। उनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्ल दिखायी देने हैं। ये सूर्यकी शीघ्र, मन्द और समान गतियोंके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलते हैं। ये वर्षा करनेवाले ग्रह हैं। इसलिये लोकोंके प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहते हैं। इनकी गतिसे ऐसा अनुमान होता है कि ये वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देते हैं।

शुक्रकी व्याख्याके अनुसार ही वृधकी गति भी समझ लेनी चाहिये। ये चन्द्रमाके पुत्र शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर हैं। ये प्रायः मङ्गलकारी ही हैं;

किंतु जब सूर्यकी गनिका उल्लङ्घन करके चलते हैं तब वहुत अधिक आँधी, बादल और सूखाके भयकी सूचना देते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है। वे यदि वक्रगतिसे न चले तो, एक-एक राशि-को तीन-तीन पक्षमे भोगते हुए बारहो राशियोंको पार करते हैं। ये अशुभ ग्रह है और प्रायः अमङ्गलके सूचक है। इनके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् वृहस्पति है। ये यदि वक्रगतिसे न चले, तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमे भोगते हैं। ये प्रायः ब्राह्मणकुलके लिये अनुकूल रहते हैं।

वृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैथर दिखायी देते हैं। ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमे रहते हैं। अतः इन्हे सब राशियोंको पार करनेमे तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सभीके लिये अशान्तिकारक हैं। इनके ऊपर यारह लाख योजनकी दूरीपर कल्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मङ्गल-कामना करते हुए ध्रुव-लोककी—जो भगवान् विष्णुका परमपद है—प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परमपद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्वक्त ध्रुवजी विराजमान है। इनके साथ ही अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कल्यप और धर्मको भी नक्षत्ररूपसे नियुक्त किया गया था। ये सब एक साथ अत्यन्त आदरपूर्वक ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब भी कल्पान्तर्पर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधारपर स्थित हैं। इनके इस लोकका पराक्रम हम पहले (चौथे स्कन्धमे) वर्णन कर चुके हैं। सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति भगवान् कालकी प्रेरणासे जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर धूमते रहते हैं, भगवान्ने उन सबके

आधारस्तम्भरूपसे ध्रुवलोकको ही नियुक्त किया है। अतः यह एक ही थानमे रंहकर सदा प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दायें चलानेके समय अनाजको खटने-वाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रसीमे बैधकर क्रमशः निकट, दूर और मध्यमे रहते हुए खंभेके चारोंओर मण्डल बौधकर धूमते रहते हैं, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर-भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक धूमते रहते हैं। जिस प्रकार मेघ और वाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमे उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुषके संयोगवश अपने-अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर काट रहे हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते।

कोई-कोई पुरुष भगवान्की योगमायाके आधार-स्थित इस ज्योतिश्वकका शिशुमार (जलजन्तु विशेष) के रूपमे वर्णन करते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित है। पूँछके मध्यमागमे प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म है। पूँछकी जड़में धाता और विधाता है। इसके कटिप्रदेशमे सप्तर्षि है। यह शिशुमार दाहिनी ओर सिकुडकर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थितिमे अभिजितसे लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र है, वे इसके दाहिने भागमे हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराशाढपर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र है, वे बाये भागमे हैं। लोकमे भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसकी दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामे भी समानता है। इसकी पीठमे अजवीशी (मूल, पूर्वाशाढ और उत्तराशाढ नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमे आकाशगङ्गा है। राजन् ! इसके दाहिने और बाये कटिटोमे पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र

हैं, पीछे के दाहिने और बाये चरणोंमें आद्वा और आश्लेया नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बाये नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तरापाठ हैं। इसी प्रकार दाहिने और बाये नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वापाठ एवं दाहिने और बाये कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मध्या आदि उक्षिण्यायनके आठ नक्षत्र बार्यी पसन्धियोंमें और विपरीत-क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतसिंपा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बाये कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोड़ीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुम्भमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

राजन् ! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायंकालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्की सुति करनी चाहिये—‘अँनमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमित्पां पतये महा-पुरुषायाभिधीमहि ।’ (सम्पूर्ण ज्योतिर्गोके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। प्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और बन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

**राहु आदिकी स्थिति और नीचेके अतल आदि
लोकोंका वर्णन**

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कुछ लोगोंका

कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान धूमता है। इसने भगवान्की कृपासे ही देवत्व और प्रह्ल प्राप्त किया है, ख्यं यह सिंहिका-पुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपना हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन वतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृत-पानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके वीचमें आकर वैट गया था। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इसका भेद खोल दिया था। उस वैरको याद करके यह अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान्ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने उस प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रको नियुक्त कर दिया जो निरन्तर साथ धूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह तेजसे उद्घिन और चक्रितचित होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने ठिककर फिर सहसा लैट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग ‘प्रहण’ कहते हैं।

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, वहाँतक अन्तरिक्षलोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँ-तक हंस, गीध, वाज और गरुड़ आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहाँतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो ही ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूर्गमस्थित विल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-

चौडाई भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिक्षिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही है। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषय-भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, संतान-सुख और धन-सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंसे दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी माया-

मयी क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्य-धर्मफा पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्र आदिमे भी सामर्थ्य नहीं है।

श्रीमद्भागवतके हिरण्यमय पुरुष

(लेखक—श्रीरत्नलालजी गुप्त)

शुक्रयजुर्वेदके विभ्राटसूक्तके ऋषि भगवान् आदित्यको 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च'के रूपमें स्वत्वन करते हुए भाव-विभोर हो उठते हैं। उनकी ऋषि-चेतनामें ये देवताओंके महान् अधिदेवता धौ, पृथ्वी एवं अन्तरिक्षको अपने विविध विचित्र वर्णोंके रूपमें आहत करके स्थावर-जङ्गम समस्त देव एवं जीव-जगत्का पालन-पोषण करते हुए उनमें जीवनका आधान करते हैं। भगवान् विष्णुकी इस लोक-पालनी शक्तिका लोक-लोचनके समक्ष प्रतिनिधित्व करनेके कारण ही वेदोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र सूर्यदेवको 'विष्णु' के नामसे अभिहित किया गया है। श्रीमद्भागवतमें महर्षि कृष्णद्वैपायनने भगवान् आदित्यको इसी रूपमें प्रस्तुत किया है—

'स एप भगवानादिपुरुष एव साक्षात्तारायणो
लोकानां स्वस्त्य आत्मानं त्र्यीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं
कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशाधा
विभज्य पट्टसु वसन्तादिष्ठृतुपु यथोपजोपमृतुगुणान्
विद्धाति ॥'

(५। २२। ३)

वेद और क्रान्तदर्शी ऋषिजन जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण एवं कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोंमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके अनुरूप गुणोंका विधान करते हैं।

अतएव जीव-जगत्के अन्तर्यामी नारायणरूपसे भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक उपासना अनायास ही परम पदकी प्राप्ति करनेवाली है। इसके प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किया गया है—राजर्षि भरतको, जो भगवान् नारायणकी उपासनाका व्रत लेकर उड़ीयमान सूर्यमण्डलमें सूर्य-सम्बन्धिनी ऋचाओंके द्वारा हिरण्यमय पुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते हुए कहते हैं—भगवान् सूर्यनारायणका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने स्वसङ्कल्पद्वारा इस जगत्की उत्पत्ति की है। फिर वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्-शक्तिके द्वारा विषयलोक्य जीवोंकी रक्षा करता है, हम उसी बुद्धि-प्रवर्तक तेजकी शरण लेते हैं—

परोरजः सवितुर्जीतवेदो

देवस्य भग्नो मनसेदं जजान ।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे

हृसं गृध्राणं शृष्टद्विरामिमः ॥

(५। ७। १४)

इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिकी सामर्थ्योंसे युक्त ये आदित्यदेव भगवान् नारायणके समान वेदमय भी हैं। जिस प्रकार सृष्टिके आदिकालमें श्रीभगवान् लोकपिता-मह ब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानको उदित करते हैं, ठीक उसी प्रकृतार महर्षि याज्ञवल्क्यकी आराधनासे सतुष्ट होकर आदित्यदेवने उनको यजुर्वेदका वह मन्त्र प्रदान किया, जो अबतक किसी और ऋषिकी चेतनामें उद्भूत नहीं

हुआ था। इस प्रसङ्गमें महर्षि याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यका जो उपस्थान किया है, उसमें वैदिक वाच्य एवं श्रीमद्भागवतपुराणकी सूर्य-सम्बन्धिनी मान्यताका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—‘मैं उँकारस्वरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ। भगवान्! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा और कालखरूप हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्दिज्ज—चार प्रकारके प्राणी हैं, उन सबके हृदय-देशमें और बाहर आकाशके समान व्याप रहकर भी आप उपाधिके धर्मोंसे असङ्ग रहनेवाले अद्वितीय भगवान् ही हैं। आप ही क्षण, लत्र, निमेष आदि अवयवोंसे संघटित संवत्सरोंके द्वारा जलके आकर्षण-विकर्षणके (आदान-प्रदानके) द्वारा समस्त लोकोंकी जीवनयन्त्रा चलाते हैं। प्रभो! आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। जो लोग तीनों समय वेदविधिसे आपकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखोंके बीजको आप भस्म कर देते हैं। सूर्यदेव! आप सारी सृष्टिके मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्योंके सामी हैं। इसलिये हम आपके इस तेजोमय मण्डलका पूरी एकाग्रताके साथ ध्यान करते हैं। आप सबके आत्मा और अन्तर्यामी हैं। जगत्में जितने चराचर प्राणी हैं, सब आपके ही आश्रित हैं। आप ही उनके अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं।’ (श्रीमद्भा० १२। ६। ६७-६९)

इसके अतिरिक्त भगवान् नारायणकी सूर्यदेवके रूपमें अभिव्यक्तिको प्रतिपादित करनेवाले अन्य साक्ष्य भी श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। गजेन्द्रमोक्षके समय भगवान् श्रीहरि ‘छन्दोमयेन गरुडेन’ अर्थात् वेदमय वाहनसे जैसे वहाँ पहुँचते हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्यके रथका भी वहन गायत्री आदि नामवाले वेदमय अङ्ग करते हैं—

यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तरूणयोजिता
वहन्ति देवमादित्य ।
(श्रीमद्भा० ५। २१। १५)

सत्राजितके द्वारा भगवान् सूर्यकी उपासना करनेके फलस्वरूप उसकी पुत्री सत्यभामाको अपनी राजमहिलाके रूपमें अङ्गीकृत करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आदित्य-देवसे अपना अमेद प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें भगवान् नारायणसे आदित्यदेवका अद्वैत सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार महर्षि वेदव्यासने ‘योऽसावादित्ये पुरुषः’ तथा ‘यमेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः; प्रजापतिस्तद्व्रह्म’ इत्यादि श्रुतिं-वाक्योंकी परम्पराको अपनी विशिष्ट शैलीमें प्रस्तुत करके श्रीमद्भागवतकी वेदात्मकताको अक्षुण्ण रखा है।

भागवतकारने भगवान् आदित्यको निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी सगुण-साकार-अभिव्यक्ति बतलाया है। इनके दृश्यमान प्राकृत सौरमण्डलको भगवान् विष्णु-की अनादि अविद्यासे निर्मित बतलाया है। यही समस्त लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करता है। वास्तवमें तो समस्त लोकोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि ही अन्तर्यामीरूपसे सूर्य बने हुए हैं। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल हैं। वे यद्यपि एक ही हैं तथापि ऋषियोंने उनका अनेक रूपोंमें वर्णन किया है।

भगवान् सूर्यकी द्वादश मासकी विभूतियोंके वर्णनके प्रसङ्गमें व्यासदेव इस बातका हमें पुनः स्मरण करा देते हैं कि ये आदित्यरूप भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

पता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ।

स्मरतां संध्ययोनृणां हरन्त्यन्हो दिने दिने ॥

(श्रीमद्भा० १२। ११। ४५)

श्रीविष्णुपुराणमें सूर्य-संदर्भ

(द्वितीय अंश, आठवें अध्यायसे बारहवें अध्यायतक)

[श्रीविष्णुपुराणके मूलबक्ता मुनिसत्तम श्रीपराशरजी हैं। इसमें सूर्य-सम्बन्धी खगोलीय विवरण विशेष द्रष्टव्य हैं। श्रीपराशरजीके ब्रह्माण्डकी स्थितिका वर्णन कर चुकनेपर श्रीसूतजीने सूर्यादिके संस्थान और प्रमाण—‘सूर्यादीनां च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम’—के सम्बन्धमें प्रश्न किया है। उस प्रश्नके उत्तरमें प्रकृत-पुराणमें सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था, कालचक्र, लोकपाल, ज्योतिश्चक्र, शिशुमार-चक्र, द्वादश सूर्यों एवं अधिकारियोंके नाम, सूर्यशक्ति, वैष्णवी-शक्ति तथा नवग्रहोंका वर्णन और लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसंहार किया गया है। यह वर्णन रोचक एवं वैज्ञानिक जिज्ञासाका शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करता है।]

आठवाँ अध्याय

सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र और लोकपाल आदिका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण भुनो। ‘मुनिश्रेष्ठ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दूना उसका ईशा-दण्ड (ज्वा और रथके बीचका भाग) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लंबा है, जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है। (पूर्वाङ्क, मध्याह और पराह्नरूप) तीन नामि, (परिवत्सरादि) पौच अरे और (पञ्चतुरुप) छः नेमिवाले उस अक्षयसरूप संवत्सरात्मक चक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र स्थित है। सात छन्द ही उसके घोड़े हैं। उनके नाम भुनो; गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं। महामते! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैतालीस हजार योजन लंबा है। दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगाद्वौ (जूओं) का परिमाण है। इनमेंसे छोटा धुरा उस रथके पक्ष युगाद्व (जूप) के सहित धुवके

आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तरर्पत्तपर स्थित है।

इस मानसोत्तर पर्वतके पूर्वमें इन्द्रकी, दक्षिणमें यमकी, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें चन्द्रमाकी पुरी है। उन पुरियोंके नाम सुनो। इन्द्रकी पुरी वर्खौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है। मैत्रेय! ज्योतिश्चक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिणदिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए बाणके समान तीव्र वेगसे चलते हैं।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोंके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिमार्गी योगीजनोंके देवयान नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं। मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्य-आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग (रात्रिका अन्त होनेपर) सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहाँ

* अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमें सूर्यदेव मध्याहके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

उसका अस्त कहा जाता है। सर्वदा एक स्थपसे स्थित सूर्यदेवका वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त। केवल उनका दीखना और न दीखना ही उनके उदय और अस्त हैं। मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी (पुरियोंके सहित) तीन पुरियों और दो कोणों (विदिशाओं) को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेंसे किसी एक कोणमें प्रकाशित होते हुए वे (पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित) तीन कोण और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपर्ना बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं। फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं*।

सूर्यके उदय और अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है। वास्तवमें तो वे जिस प्रकार पूर्वसे प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तीनी (उत्तर और दक्षिण) दिशाओंमें भी करते हैं। सूर्यदेव देवर्वत सुमेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी समासे अतिरिक्त और सभी स्थानोंको प्रकाशित करते हैं। उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी समामें जाती हैं, वे उसके तेजसे निरस्त होकर उल्टी लौट आती हैं। सुमेरु पर्वत समस्त द्वीप और वर्षेके उत्तरमें है, इसलिये उत्तर दिशामें (मेरुपर्वतपर) सदा (एक ओर) दिन और दूसरी ओर रात रहती है। रात्रिके समय सूर्यके अस्त हो जानेपर उनका तेज अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये उस समय अग्नि दूरसे ही प्रकाशित होने लगती है। इसी प्रकार हे द्विज ! दिनके समय अग्निका तेज सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है, अतः अग्निके संयोगसे ही सूर्य अत्यन्त प्रखरतासे प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार सूर्य और अग्निके प्रकाश तथा उष्णतामय तेज परस्पर मिलकर दिन-रातमें वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं।

* किरणोंकी वृद्धि, हात एवं तीव्रता, मन्दता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुभवके अनुसार कही गयी है। (वस्तुतः वे स्वरूपतः सदा समान हैं।)

मेरुके दक्षिणी और उत्तरी भूम्बद्वारमें सूर्यके प्रकाशित होते समय अन्यकारमया रात्रि और प्रकाशमय दिन क्रमशः जल्में प्रवेश कर जाते हैं। दिनके समय रात्रिके प्रवेश करनेसे ही जल कुछ तापवर्ण दिग्गायी देता है; किंतु सूर्यके अस्त हो जानेपर उसमें दिनका प्रवेश हो जाता है। इसलिये दिनके प्रवेशके कारण ही रात्रिके समय वह शुक्लवर्ण हो जाता है।

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवॉ भाग पार कर लेते हैं तो उनकी वह गति एक मुहूर्तकी होती है। (अर्थात् उनने भागके अतिक्रमण करनेमें उन्हें जितना समय लगता है, वही मुहूर्त कहलाता है।) द्विजवर ! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चक्र) के सिरेपर धूमते हुए जीवके समान भ्रमण करते हुए वे सूर्य पृथ्वीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि करते हैं। द्विज ! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकर-राशिमें जाते हैं। उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीनराशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं। इन तीनों राशियोंको भोग चुकनेपर सूर्य रात्रि और दिनको समान करते हुए वैपुत्रनी गतिका अवलम्बन करते हैं। (अर्थात् वे भूमध्य-रेखाके बीचमें ही चलते हैं।) उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर (मेष तथा वृष्णराशिका अतिक्रमण कर) मिथुनराशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्क-राशिमें पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं। जिस प्रकार कुलालचक्रके सिरेपर स्थित जीव अग्नि शीघ्रतासे धूमता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें अतिशीघ्रतासे चलते हैं। अतः वह अतिशीघ्रतापूर्वक ब्रायुवेगसे चलते

हुए अपने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर लेते हैं। हे द्विज ! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रता-पूर्वक चलनेसे उस समयके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको सूर्य बारह मुहूर्तोंमें पार कर लेते हैं। किंतु रात्रिके समय (मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं। कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार धीरे-धीरे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं, इसलिये उस समय वह योड़ी-सी भूमि भी अतिदीर्घकालमें पार करते हैं। अतः उत्तरायणका अन्तिम दिन अठारह मुहूर्तका होता है, उस दिन भी सूर्य अति मन्द गतिसे चलते हैं। और ज्योतिश्क्रांतिके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको एक दिनमें पार करते हैं, किंतु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े तेरह) नक्षत्रोंको बारह मुहूर्तोंमें ही पार कर लेते हैं। अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द धूमनेसे वहाँका मृतपिण्ड भी मन्दगतिसे धूमता है, उसी प्रकार ज्योतिश्क्रांतिके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे धूमता है। मैत्रेय ! जिस प्रकार कुलाल-चक्रकी नाभि अपने स्थानपर ही धूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थानपर ही धूमता रहता है।

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें मण्डलाकार धूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है। जिस अयनमें सूर्यकी गति दिनके समय मन्द होती है, उसमें रात्रिके समय शीघ्र होती है तथा जिस समय रात्रिकालमें शीघ्र होती है, उस समय दिनमें मन्द हो जाती है। हे द्विज ! सूर्यको सदा एक बराबर मार्ग ही पार करना पड़ता है। एक दिन-रात्रिमें ये समस्त राशियोंका भोग कर लेते हैं। सूर्य छः राशियोंको रात्रिके समय भोगते हैं और छःको दिनके समय। दिनका बढ़ना-बटना राशियोंके परिमाणानुसार ही होता है तथा रात्रिकी लघुता-दीर्घता भी राशियोंके परिमाणसे ही होती है।

राशियोंके भोगानुसार ही दिन अथवा रात्रिकी लघुता एवं दीर्घता होती है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ्र होती है तथा दिनमें मन्द। दक्षिणायनमें उनकी गति इसके विपरीत होती है।

रात्रि उषा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है। इन उषा तथा व्युष्टिके बीचके समयको संध्या कहते हैं। इस अति दारुण और भयानक संध्याकालके उपस्थित होनेपर मंदेह नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं। मैत्रेय ! उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो। अतः सध्याकालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है। महामुने ! उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप उँचार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं, उन ब्रह्मस्वरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं। अग्निहोत्रमें जो 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आहुति दी जाती है, उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं। उँचार जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन धारोंसे युक्त भगवान् विष्णु हैं तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों)के अधिपति हैं। उसके उच्चारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं। सूर्य भगवान् विष्णुका अतिश्रेष्ठ अश एवं विकारहित अन्तर्ज्योतिःस्वरूप हैं। उँचार उनका वाचक है और वे उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाले हैं। उस उँचारकी प्रेरणासे अतिप्रदीप होकर वह ज्योति मंदेह नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोंको दग्ध कर देती है। इसलिये संघोपासनकर्मका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये। जो पुरुष संघोपासन नहीं करता, वह भगवान् सूर्यका धात करता है। तदनन्तर (उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्) भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो वालवित्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं।

पंद्रह निमेप मिलकर एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तोंके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं। दिनोंका हास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके हास-वृद्धिके कारण होते हैं; किंतु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी संथा सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्तकी ही होती है। उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं। यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है। इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्तका समय 'सङ्ग्रव' कहलाता है तथा सङ्ग्रवकालके पश्चात् तीन मुहूर्तका 'मध्याह्न' होता है। मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'आपराह्न' कहलाता है। इस काल भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही बताते हैं। अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। इस प्रकार (सम्पूर्ण दिनमें) पंद्रह मुहूर्त और (प्रत्येक दिवसांशमें) तीन मुहूर्त होते हैं।

वैपुवत् दिवस पंद्रह मुहूर्तका होता है; किंतु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमशः उसके वृद्धि और हास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका ग्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका ग्रास करती रहती है। शरद् और वसन्त-ऋतुके मध्यमें सूर्यके तुला अथवा मेष राशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं। सूर्यके कर्कराशिमें उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहलाता है।

ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं, ऐसे पंद्रह रात्रि-दिवसका एक पक्ष कहा जाता है। दो पक्षका एक मास होता है, दो सौर मासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा

दो अयन ही (मिलकर) एक वर्ष कहे जाते हैं। सौर, सावन, चान्द्र तथा नाश्वन—इन चार प्रकारके मासोंके अनुसार विविध न्यूपसे संवत्सरादि पाँच प्रकारके वर्ष कलिपत किये गये हैं। यह युग ही (मल्लमासादि) सब प्रकारके कालनिर्णयका कारण कहा जाता है। उनमें पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इडवत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ चत्सर हैं। यह काल 'युग' नामसे विद्यात है।

इतेवर्वदके उत्तरमें जो शृङ्खवान् नामसे विद्यात पर्वत है, उसके तीन शृङ्ख हैं, जिनके कारण यह शृङ्खवान् कहा जाता है। उनमेंसे एक शृङ्ख उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्यमें है। मध्यशृङ्ख ही वैपुवत् है। शरद्-वसन्त ऋतुके मध्यमें सूर्य इस वैपुवत् शृङ्खपर आते हैं। अतः मैंत्रेय! मैष अथवा तुलाराशिके आरम्भमें निमिरापहारी सूर्यदेव विषुवत्-पर स्थित होकर दिन और रात्रिको समान-परिमाण कर देते हैं। उस समय ये दोनों पंद्रह-पंद्रह मुहूर्तके होते हैं। मुने! जिस समय सूर्य कृतिका नक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थीश (अर्थात् वृश्चिकके आरम्भ) में हों अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका भोग करते हों और चन्द्रमा कृतिका प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़े तभी यह विषुव नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और मित्रगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दान-ग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुखके समान है। अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये।

राका और अनुमति—दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू—ये दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और आवण-भाद्रपद, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छः मास दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विजवर ! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद, हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतके चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

जो अगस्त्यके उत्तर तथा अवीथिके दक्षिणमें वैश्वानरमार्गसे भिन्न (मृगवीथि नामक) मार्ग है, वही पितृयानपथ है। उस पितृयानमार्गमें महात्मा मुनिजन रहते हैं। जो लोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी उत्पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद)की स्तुति करते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं, उनका वह (पितृयान) दक्षिणमार्ग है। वे युग-युगान्तरमें विच्छिन्न हुए वैदिक धर्मकी संतान, तपस्या, वर्णाश्रमकी मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुनः स्थापना करते हैं। पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन संतानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्मप्रचारकगण अपने यहाँ संतानरूपसे उत्पन्न हुए पितृगणके कुलोंमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें बार-बार आते-जाते रहते हैं।

* जिस पूर्णमासे पृथ्वीचन्द्र विशेषज्ञान होते हैं, वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कही जाती है।

† दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और नष्टचन्द्राका नाम 'कुहू' है।

नागवीथिके उत्तर और सप्तर्षियोंके दक्षिणमें जो सूर्यका उत्तरायण मार्ग है, उसे देवयानमार्ग कहते हैं। उसमें जो प्रसिद्ध निर्मलखभाव और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिण निवास करते हैं, वे संतानकी इच्छा नहीं करते। अतः उन्होंने मृत्युको जीत लिया है। सूर्यके उत्तर-मार्गमें अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनिगण प्रलयकालपर्यन्त निवास करते हैं। उन्होंने लोभके असंयोग, मैथुनके त्याग, इच्छाद्वेषकी अप्रवृत्ति, कर्मनुष्ठानके त्याग, कामवासनाके असंयोग और शब्दादि विषयोंके दोषदर्शन इत्यादि कारणोंसे शुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है। भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिररहनेको ही अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थितितकके इस कालको वे अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है। द्विज ! ब्रह्मत्या और अश्वमेध-यज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं, उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है।

मैत्रेय ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर-दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य धाम है। विप्रवर ! पुण्यपापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कजशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय ! जिसमें यह भूत,

भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। जो तछीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशक रूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। द्विजवर ! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने ! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुर्घट और धृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुण अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णुका यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

नवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र

श्रीपराशरजी बोले—आकाशमे भगवान् विष्णुका जो शिशुमार (गिरगिट अथवा गोधा)के समान आकार-बाला तारामय खरूप देखा जाता है, उसके पुच्छभागमें ध्रुव अवस्थित है। यह ध्रुव खयं यूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको ध्रुमाता है। उस भ्रमणशील ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान धूमते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रहगण वायुमण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बैठे हुए हैं।

मैंने तुमसे आकाशमे ग्रहगणके जिस शिशुमार-खरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय खयं भगवान् नारायण ही उसके द्वदयस्थित आधार हैं। उच्चानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमे स्थिति प्राप्त की है। शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार

ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें सूर्यदेव स्थित हैं तथा है विष्र ! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रित हैं, वह तुम एकाप्रचित्त होकर सुनो ।

सूर्य आठ मासतक आपनी किरणोंसे रसस्वरूप जल-को प्रहण करके उसे चार महीनोंमें वरसा देता है। उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है और अन्नहीसे सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है। सूर्य अपनी तीर्ण रश्मियोंसे संसारका जल खींचकर उसरे चन्द्रमाका पोषण करते हैं और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाडियोंके मार्गसे उसे धूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देते हैं। यह चन्द्रमाद्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरंत ही भ्रष्ट नहीं होता, इसलिये वे 'अन्न' कहलाते हैं। हे मैत्रेय ! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अन्नस्थल जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथ्वीपर वरसने लगता है।

हे मुने ! भगवान् सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियोंसे उत्पन्न—इन चार प्रकारके जलोंका आकर्षण करते हैं। वे अंशुमाली आकाशगङ्गाके जलको प्रहण करके उसे विना मेघादिके अपनी किरणोंसे ही तुरंत पृथ्वीपर वरसा देते हैं। हे द्विजोत्तम ! उसके स्पर्शमात्रसे पापङ्कके धुल जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। अतः वह दिव्य स्नान कहलाता है। सूर्यके दिखलायी देते हुए विना मेघोंके ही जो जल वरसता है, वह सूर्यकी किरणोंद्वारा वरसाया हुआ आकाशगङ्गाका ही जल होता है। कृतिका आदि विषम (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके प्रकाशित होते हुए वरसता है, उसे दिग्गजोंद्वारा वरसाया हुआ आकाशगङ्गाका जल समझना चाहिये। (रोहिणी और आर्द्धा आदि) सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य वरसाते हैं, वह सूर्यरश्मियों-द्वारा (आकाशगङ्गा) से ग्रहण करके ही वरसाया जाता है। हे महामुने ! आकाशगङ्गाके ये (सम

तथा विषम नक्षत्रोंमें बरसनेवाले) दोनों प्रकारके जलमय दिव्य स्त्रान् अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पापभयको दूर करनेवाले हैं ।

हे द्विज ! जो जल मेघोद्वारा बरसाया जाता है, वह प्राणियोंके जीवनके लिये अमृतरूप होता है और ओषधियोंका पोषण करता है । हे विष ! उस वृष्टिके जलसे परम वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषधियाँ और फल पकनेपर सूख जानेवाले (गोधूम एवं यव आदि अन्न) प्रजात्र्वर्गके (शरीरकी उत्पत्ति एवं पोषण आदिके) साधक होते हैं । उनके द्वारा शास्त्रविद् मनीषिण नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके देवताओंको सतुष्ट करते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, समस्त देवसमूह और प्राणिण वृष्टिके ही आश्रित हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है ।

हे मुनिवरोत्तम ! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका शिशुमार है तथा शिशुमारके आश्रय भगवान् श्रीनारायण हैं । उस शिशुमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, जिन्हे समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष कहा जाता है ।

दसवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन

श्रीपराशारजी घोले—आरोह और अवरोहके द्वारा सूर्यकी एक वर्षमें जितनी गति है, उस सम्पूर्ण मार्गकी दोनों काप्राओंका अन्तर एक सौ अस्ती मण्डल है । सूर्यका रथ (प्रतिमास) भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षससंज्ञक गणोंसे अधिष्ठित होता है । हे मैत्रेय ! मधुमास अर्धात् चैत्रमे सूर्यके रथमें सर्वदा धाता नामक आदित्य, कतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथभूत यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु

गन्धर्व—ये सात मासाधिकारी रहते हैं । ऐसे ही अर्यमा नामक आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुष्टिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छवीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं । हे मैत्रेय ! अब ज्येष्ठ मासमें निवास करनेवालोंके नाम सुनो । उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथखन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं । आषाढ़ मासमें वर्षण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हृष्ण गन्धर्व, रथ राक्षस और रथचित्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं । श्रावण मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें बसते हैं । भाद्रपदमें विश्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भूगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ नामक राक्षसका उसमें निवास होता है । आश्विन मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुवेण गन्धर्व और धृताची नामक अप्सराका उसमें वास होता है । कर्तिक मासमें पर्जन्य आदित्य, विश्वावसु नामक गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं ।

मार्गशीर्षमासके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं । हे विप्रवर ! कतु ऋषि, भग आदित्य, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा—ये अधिकारिण पौपमासमें जगत्को प्रकाशित करनेके लिये सूर्यमण्डलमें रहते हैं ।

हे मैत्रेय ! वृष्टि नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धूतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात मात्र मासमें भास्करमण्डलमें रहते हैं। अब जो फाल्गुन मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो। हे महामुने ! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं।

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डलमें रहते हैं। मुनि लोग सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसज्जित करते हैं, यक्षगण रथकी वागडोर सँभालते हैं तथा (नित्यसेवक) वालखिल्यादि इसे सब ओरसे धेरे रहते हैं। हे मुनिसत्तम ! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी घोले—भगवन् ! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-ग्रीष्म आदिके कारण होते हैं, यह मैं सुन चुका। हे गुरो ! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, वालखिल्यादि, अप्सरा तथा यक्षोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार बतलाये; किंतु यह नहीं

बतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है ?। यदि सातों गण ही शीत, ग्रीष्म और वर्षके कारणेवाले हैं तो फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है ? और यह कैसे कहा जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है ? यदि सातों गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही है तो 'सूर्य उदय हुआ, अब मध्यमें है, अब अस्त होता है'। ऐसा लोग क्यों कहते हैं ?

ओपराशारजी घोले—हे मैत्रेय ! तुमने जो कुछ पूछा है, उसका उत्तर मूलो। सूर्य सात गणोंमेंसे ही एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी विशेषता है। भगवान् विष्णुकी सर्वशक्तिमयी ऋक्, यजुः और साम नामकी पराशक्ति है। वह वेदत्रयी ही सूर्यको ताप प्रदान करती है और (उपासना किये जानेपर) संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है। हे द्विज ! जगत्की स्थिति और पालनके लिये वे ऋक्, यजुः और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास करते हैं। प्रत्येक मासमें जो सूर्य होते हैं, उन्हींमें वह वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्नमें ऋक्, मध्याह्नमें यजुः तथा सायंकालमें वृहद्यन्तरादि सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं*। यह ऋक्-यजुः-सामस्तरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णुका ही अङ्ग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है।

यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यकी ही अधिष्ठात्री हो, यही नहीं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ही हैं। सर्गके आदिमें ब्रह्मा ऋद्धमय हैं, उसकी स्थितिके समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्र साममय हैं।

* इस विषयमें यह श्रुति भी है—

ऋचः पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते, यजुवेंदे तिष्ठति मत्ये अहः सामवेदेनास्तमये महीयते ।

इसी भावका प्रकृत श्लोक भी द्रष्टव्य है—

ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्ने मध्याह्नेऽथ यजूर्षि वै ।

वृहद्यन्तरादीनि सामान्यहः क्षये रघिम् ॥ (विं पु० २। ११। १०)

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्त्विकी वैष्णवी शक्ति अपने सप्तगणोंमें स्थित आदित्यमें ही (अतिशयरूपसे) अवस्थित होती है । उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर रस्मियोंसे अत्यन्त प्रज्ञलित होकर संसारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं ।

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं । असराएँ नृत्य करती हुई चलती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं, सर्पगण रथका साज सजाते हैं, यक्ष बोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं । त्रयीशक्तिरूप भगवान् (सूर्यस्वरूप) विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त (अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं ।) ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं । स्तम्भमें लोग हुए दर्पणके समान जो कोई उनके निकट जाता है, उसीको अपनी छाया दिखायी देने लगती है । हे द्विज ! इसी प्रकार वह वैष्णवीशक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके (परिवर्तित होकर) उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है ।

हे द्विज ! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य मित्रगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते हुए धूमते रहते हैं । सूर्यकी जो सुषुप्त्ना नामकी किरण है, उससे शुक्रपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं । हे द्विज ! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर (चतुर्दशीके अनन्तर) दो कलायुक्त चन्द्रमाका मित्रगण पान करते हैं । इस प्रकार सूर्यद्वारा मित्रगणका तर्पण होता है ।

सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उतनेको प्राणियोंकी पुष्टि और अनकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं । उससे भगवान् सूर्य समस्त

प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार तैव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं । हे मैत्रेय ! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाश्चिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति वृत्ति करते रहते हैं ।

बाह्यवाँ अस्याय

नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्या

पश्चात्यर्जी बोले—चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है । उसके बाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसुमके समान श्वेतवर्ण दस बोड़े जुते हुए हैं । ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीथिपर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं । सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी बटनेबढ़नेका नियमित क्रम है । हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यके समान समुद्रगम्भसे उत्पन्न हुए उनके बोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पर्पर्यन्त रथ खींचते रहते हैं । हे मैत्रेय ! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुनः पोषण करते हैं । जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हे शुक्र प्रतिपत्त्से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं । हे मैत्रेय ! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्र हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत है । तैतीस हजार तीन सौ तैतीस (३३३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं । जिस समय दो कलामात्रसे अवस्थित चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी ‘अमा’ नामक किरणमें रहते हैं, वह तिथि ‘अमावस्या’ कहलाती है । उस दिन रात्रिमें वे पहले तो जलमें प्रवेश करते हैं, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करते हैं और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमें चले जाते हैं । वृक्ष और लता आदिमें

चन्द्रमाकी स्थितिके समय (अमावस्याको) जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है । केवल पंद्रहवीं कलाखण्य यत्क्षिवित् भागके शेष रहनेवर उस क्षीण चन्द्रमाको पितृगण मध्याहोत्तर कालमें चारों ओरसे धेर लेते हैं । हे मुने ! उस समय उस द्विकलाधर चन्द्रमाकी बची हुई अमृतमयी एक कलाका वे पितृगण पान करते हैं । अमावस्याके दिन चन्द्ररश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बहिर्बद्ध और अग्निष्वात्—तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं । इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्रपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितृगणकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे छता-बृक्ष, ओषधि आदिको उत्पन्न कर अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्वादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-गतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं ।

चन्द्रमाके पुत्र द्युधका रथ वायु और अग्निभय द्रव्यका बना हुआ है और उसमें वायुके समान वेगशाली आठ पिण्ड वर्णवाले घोड़े जुते हैं । वर्त्य^१, अनुर्क्ष^२, उपासंग^३ और पताका तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घोड़ोंके सहित शुक्रका रथ भी अति महान् है । मंगलका अति शोभायमान सुवर्णनिर्मित महान् रथ भी अग्निसे उत्पन्न हुए, पवरागमणिके समान, अरुणवर्ण आठ घोड़ोंसे युक्त है । जो आठ पाण्डुवर्णवाले घोड़ोंसे युक्त स्वर्णका रथ है, उसमें वर्षके अन्तमें प्रत्येक राशिमें बृहस्पतिजी विराजमान होते हैं । आकाशसे उत्पन्न हुए विचित्रवर्णके घोड़ोंसे युक्त रथमें आखड़ होकर मन्दमागी शनैश्चर धीरे-धीरे चलते हैं ।

राहुका रथ धूसर (मटियाले) वर्णका है । उसमें भ्रमरके समान कृष्णवर्णके आठ घोड़े जुते हुए हैं । हे मैत्रेय ! एक बार जोत दिये जानेवर वे घोड़े निरन्तर चलते रहते हैं । चन्द्रपर्वो (प्रूर्णिमा) पर यह राहु सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाके पास जाता है तथा सौरपर्वोमि (अमावस्या) पर यह चन्द्रमासे निकलकर सूर्यके निकट जाता है । इसी प्रकार केतुके रथके वायुवेगशाली आठ घोड़े भी पुआलके धुएँकी-सी आभावाले तथा लाखके समान लाल रंगके हैं ।

हे महाभाग ! मैंने तुमसे नवप्रहोंके रथोंका यह वर्णन किया । ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं । हे मैत्रेय ! समस्त प्रह, नक्षत्र और तारा-मण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे धूमते रहते हैं । जितने तारागण हैं, उतनी वायुमयी डोरियाँ हैं । उनसे बँधकर वे स्वयं धूमते तथा ध्रुवको धुमाते रहते हैं । जिस प्रकार तेली लोग स्वयं धूमते हुए कोल्हूको भी धुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त प्रहगण वायुसे बँधकर धूमते रहते हैं । क्योंकि इस वायु-चक्रसे प्रेरित होकर समस्त प्रहगण अलातचक्र (बनैती)के समान धूमा करते हैं, इसलिये यह 'प्रवह' कहलाता है ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुका हूँ, तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन करुनो । रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमे जो कुछ पापकर्म करता है, उससे मुक्त हो जाता है तथा आकाशमण्डलमें जितने तारे इसके आश्रित हैं, उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है । उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठेड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर

१. रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहेका आवरण । २. रथके नीचेका भाग ।

३. शब्द रखनेका स्थान ।

अधिकार कर रखा है, उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार हैं तथा जंघाओंमें वरुण और अर्यमा है। संतत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रखा है, अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके

पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त हीं होते। इस प्रकार मैने तुमसे पृथ्वी, प्रहगण, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके

अग्निपुराणमें सूर्य-प्रकरण

[अग्निपुराणसे संकलित इस परिच्छेदमें १९वें, ५१वें, ७३वें, ९९वें और १४८वें अध्यायोंसे सूर्यसम्बन्धी सामग्रियोंका यथावत् संचयन-संकलन किया गया है; जिसमें ये विषय हैं—कश्यप आदिके वंश, सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण, सूर्यदेवकी पूजा-स्थापनाकी विधियाँ, संग्राम-विजय-दायक सूर्यपूजा-विधान।]

उन्नीसवाँ अध्याय

कश्यप आदिकं वंशका वर्णन

अग्निदेव घोले—हे मुने ! अब मैं अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ—चाक्षुप मन्वन्तरमें जो तुम्हित नामक वारह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तरमें कश्यपके अंशसे अदितिके गर्भसे आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशुनामक वारह आदित्य* हुए।

* यहाँ दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवशपर्वगत तीसरे अध्यायमें श्लोक-सं० ६०-६१में कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है।

+ प्रत्यज्ञिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः ।

इस वाक्यमें पूरे एक श्लोकका भाव संनिविष्ट है। अतः उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रखी जाय तो अर्थको समझनेमें भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३ । ६५) श्लोकसे उपर्युक्त पद्क्रियोंका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है—

प्रत्यज्ञिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो न्रहर्पिसत्कृताः । कृशाश्वस्य तु राजर्वेदेवप्रहरणानि च ॥

सम्पूर्ण दिव्याश्व कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल० सर्ग २१के श्लोक १३-१४ तथा मत्स्यपुराण ६ । ६ द्रष्टव्य हैं।

‡ इसको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—

पते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि । सर्वदेवगणास्तात् त्रयस्त्रियन् कामजाः ॥

(३ । ६६)

—यही भाव मत्स्यपुराण ६ । ७ में भी आया है।



अरिष्टेनेमिकी चार पनियोंसे सोलह संताने उत्पन्न हुई । विद्वान् बहुपुत्रके (उनकी दो पनियोंसे कपिल, लोहिता आदिके भेदसे) चार प्रकारकी विद्युत्सरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुई । अङ्गिरामुनिसे (उनकी दो पनियोद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुई तथा कृशाश्वके भी (उनकी दो पनियोंसे) देवताओंके द्विव्य आयुध+ उत्पन्न हुए ।

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारंबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग-युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न (एवं विनष्ट) होते रहते हैं ।

कस्यपजीसे उनकी पली ढितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षनामक पुत्र उत्पन्न हुए । फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिनामक दानवकी पली हुई । उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैहिकेय'नामसे विख्यात हुए । हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-प्राक्तमके कारण विख्यात थे । इनमें पहला हाद, दूसरा अनुहाद और तीसरे प्रहाद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संहाद था । हादका पुत्र हृद हुआ । संहादके पुत्र आयुष्मान्, शिवि और वाष्पक थे । प्रहादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे वलिका जन्म हुआ । हे महामुने ! वलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें वाणासुर ज्येष्ठ था । पूर्वकल्पमें इस वाणासुरने भगवान् उमापतिको (भक्ति-भावसे) प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मै आपके पास ही विचरता रहूँगा ।' हिरण्याक्षके पांच पुत्र थे—शम्वर, शकुनि, द्विष्ठा, शङ्ख और आर्य । कस्यपजीकी दूसरी पली द्वजुके गर्भसे सौ दानव पुत्र उत्पन्न हुए ।

इनमें सर्वानुकी कन्या सुग्रीवा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शनी । उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषभर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा । पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं । ये दोनों कस्यपजीकी पली हुईं । इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे । प्रहादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच'नामक दैत्य हुए । कस्यपजीकी ताम्रा नामवाली पलीसे ३० पुत्र हुए । इनके अनिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कस्यपजीकी भार्याएँ थीं । उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए । ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे । विनताके अरुण और गरुडनामक दो पुत्र हुए । खुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रुके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए । क्रोधवशाके गर्भसे दशनशील दाँतवाले सर्प उत्पन्न हुए । धरासे जल-पक्षी

उत्पन्न हुए । खुरमिसे गाय-मैस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई । इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए । खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं । इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए । इस तरह कस्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति हुई ।

इन सबके असंख्य पुत्र हुए । देवताओंने देवत्योंको युद्धमें जीत लिया । अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कस्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया । वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी । उसने कस्यपजीसे अपना यह अभिमत वर प्राप्त कर लिया । जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद विना पैर धोये ही सो गयी । तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढँडकर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, (किंतु वनके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई ।) वे सभी अन्यत तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत-नामक देवता हुए । मुने ! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया । श्रीहरिस्तरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राजपदपर अभियक्ष करके कमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया । अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) साक्षात् श्रीहरि ही हैं ।

ब्राह्मणों और ओप्रवियोंके राजा चन्द्रमा हुए । जलके स्वामी वरुण हुए । राजाओंके राजा कुवेर हुए । द्वादश सूर्यों (आदित्यों) के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे । वसुओंके राजा पावक और मरुदण्डोंके स्वामी इन्द्र हुए । प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रहाद हुए । पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शौलों (पर्वती) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ । गन्धवोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गङ्गा राजा हुए । अष्ट हायियोंका स्वामी

ऐरावत हुआ और गौओंका अधिष्ठिति सँड । बनचर जीवोंका स्थानी शेर हुआ और बनस्पतियोंका पूर्ख (पकड़ी) । घोड़ोंका स्थानी उच्चैःश्रवा हुआ । सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ । दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए । इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक नामका राजा हुआ ।

इक्यावनवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् श्रीहयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये । भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण किये हुए हों । उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हों और वामभागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वारपर विद्यमान हों । ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं । भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्षदमें बाल-व्यजन (चैवर) लिये 'राजी' तथा 'निष्प्रभा'* खड़ी हों अथवा घोड़ेपर चढ़े हुए एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये । समस्त दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शश लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये ।

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे । उसमें सूर्य, अर्यमा + आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह दलोंमें स्थापन करे । यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य-

कोणसे आरम्भ करके नैऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये । उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्रा, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों । अग्निकोणसे लेकर नैऋत्यतक, नैऋत्यसे वायव्यतक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये ।

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गमस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु । ये मेष आदि बारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्को ताप एवं प्रकाश देते हैं । ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिकराशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलराशि) तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं । इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, लोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है । इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—इडा, सुष्मना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था (वनान्तस्था) और अमृताल्या । वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है । केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे । सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है । उनके दो भुजाएँ हैं । वे अपने हाथोंमें कमल और खड़ धारण करते हैं ।

* 'राजी' और 'निष्प्रभा'—ये चैवर हुलानेवाली छियोंके नाम हैं, अथवा इन नामोद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पत्नियोंकी ओर संकेत किया गया है । 'राजी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती है और 'निष्प्रभा' शब्दसे 'छाया'—ये दोनों देवियाँ चैवर हुलाकर पतिकी सेवा करती रहती हैं ।

+ सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम अन्यत्र गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १९वें अध्यायमें देखने चाहिये । ये नाम वैवस्त मन्वन्तरके आदित्योंके हैं । चाक्षुष मन्वन्तरमें वे ही 'त्रुपित' नामसे विख्यात थे । अन्य पुराणोंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उसके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है । इसकी संगति कल्पभेदके अनुसार भाननी चाहिये ।

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाती हैं। वृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किञ्चिणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमें खड़ और दीयक शोभा पाते हैं।

समस्त लोकपाल द्विमुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान्-जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रखा है। किंत्र-मूर्तियों हाथमें बीणा लिये हैं और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। मिशाचोंके शरीर दुर्बल कङ्कालपात्र हों। वेतालोंके मुख निकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों।

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका घण्टन

महादेवजी कहते हैं—‘स्कन्द ! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विवि बताऊँगा। ‘मैं तेजोमय सूर्य हूँ’—ऐसा चिन्तन करके अर्ध्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्ध्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षावगुणठन करे। तत्पथात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। ‘ॐ आं हृदयाय नमः’ इस प्रकार आदिसे सरवीज ल्याकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर ‘दण्डी’का और वासमागमें ‘पिङ्गल’का पूजन करे। ईशानकोणमें हूँ ‘नं गणपतये नमः’—इस मन्त्रसे गणेशकी और

अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यमागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम मुखकी और मध्यमागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति सिंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

पीठस्थ कमलके भीतर ‘रं दीप्तायै नमः’—इस मन्त्रद्वारा दीपाकी, ‘रं सूक्ष्मायै नमः’—इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, ‘रं जयायै नमः’—इससे जयाकी, ‘रं भद्रायै नमः’—इससे भद्राकी, ‘रं विभूतये नमः’—इससे विभूतिकी, ‘रं विमलायै नमः’—इससे विमलाकी, ‘रं अमोघायै नमः’—इससे अमोघाकी तथा ‘रं विद्युतायै नमः’—इससे विद्युताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्यमागमें ‘रः सर्वतोमुख्यै नमः’—इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति सर्वतोमुखीकी आराधना करे। तत्पथात् ‘ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः’—इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ) का पूजन करे। तदनन्तर ‘खखोल्काय नमः’ इस पदक्षर मन्त्रके आरम्भमें ‘ॐ हं खं’ जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त ‘ॐ हं खं खखोल्काय नमः’—इस मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये।

अङ्गलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णताले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हे भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे। फिर ‘हां हाँ सः सूर्याय नमः’—ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्प्य दे। इसके बाद ‘विम्बमुद्दा’ दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर

१. पद्माकारौ करौ कृत्वा प्रतिश्लिष्टे तु मध्यमे। अङ्गुल्यौ धारयेचसिन् विम्बमुद्देति सोच्यते ॥

सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि समर्पित करे। तत्पश्चात् 'पद्ममुद्रा' और 'विष्वमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोमें हृदय आदि अङ्गोकी पूजा करे। अग्निकोणमें 'ॐ आं हृदयाय नमः'—इस मन्त्रसे हृदयकी, नैऋत्यकोणमें 'ॐ भूः अर्काय शिरसे स्वाहा'—इससे सिरकी, वायव्यकोणमें 'ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै वषट्'—इससे शिखाकी, ईशानकोणमें 'ॐ स्वः कवचाय हुम्'—इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमे 'ॐ हां नेत्रब्रह्माय वौपट्'—से नेत्रकी तथा देवताके पश्चिमभागमें 'वः अख्याय फट्'—इस मन्त्रसे अख्यायकी पूजा करें। इसके बाद पूर्वादि दिशाओमें मुद्राओका प्रदर्शन करे।

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। नेत्रोंके लिये गोशृङ्खकी मुद्रा दिखाये। अख्यायके लिये त्रासनी-मुद्राकी योजना करे। तत्पश्चात् ग्रहोंको नमस्कार और उनका पूजन करे। 'ॐ सौं सोमाय नमः'—इस मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, 'ॐ वुं वृधाय नमः'—इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, 'ॐ वृं वृहस्पतये नमः'—इस मन्त्रसे पश्चिममें बृहस्पतिकी और 'ॐ भं भागवाय नमः'—इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे। इस तरह पूर्वादि दिशाओमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी

पूजा करके, अग्नि आदि कोणोमें शेष ग्रहोंका पूजन करे। यथा—'ॐ भौमाय नमः'—इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, 'ॐ शं शनैश्चराय नमः'—इस मन्त्रसे नैऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, 'ॐ रां राहवे नमः'—इस मन्त्रसे वायव्यकोणमें राहुकी तथा 'ॐ कं केतवे नमः'—इस मन्त्रसे ईशानको गमे केनुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे। खबोलकी (भगवान् सूर्य)के साथ इन सब ग्रहोंका पूजन करना चाहिये।

मूलमन्त्रका जप करके अर्थपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे। इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खडे होकर सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो ! आप मेरे अपराधों और त्रुटियोंको क्षमा करे।' इसके बाद 'अख्याय फट्'—इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव ! सूर्य ! (कल्याणमय सूर्यदेव !)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्मात्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित करे। इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनके ध्यान, जप और होम करनेसे साधकत्वा सारा मनोरथ सिद्ध होता है।

१. हस्तौ तु समुखौ कृत्वा सनतप्रोन्नताङ्गुली । तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषापटमसंज्ञिता ॥

२. मन्त्रमहार्णवमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोण—३० सर्वतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा हृदयाय नमः, हृदयश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। निर्ऋतिकोण—३० ब्रह्मतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरः श्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। वायव्य—३० विष्णुतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐशान्य—३० रुद्रतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा कवचाय हु कवचश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। पूज्यपूजकयोर्मध्ये—३० अग्नितेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा नेत्रब्रह्माय वौपट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। देवतापश्चिमे—३० सर्वतेजोज्वालामणे हु फट् स्वाहा अख्याय फट् अख्यायश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः।

३. 'शारदातिलक'के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हीं वृणिः सूर्य आदित्य श्रीं।' किंतु यहौं 'ॐ ह ख' इन नीजोंके साथ 'खखोलकाय नमः।' इस पड़क्षर मन्त्रका उल्लेख है। अतः इसीको यहौं मूल मन्त्र समझना चाहिये।

निन्यानवेवाँ अध्याय
सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द ! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । पूर्ववत्, मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्तविधिसे विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शब्दामें न्यास करके त्रित्यका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे ।

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे । फिर 'सदेशपद'-पर्यन्त तत्त्वपञ्चकका न्यास करे । तदनन्तर सर्वतोमुखी शक्तिके साथ विविवत् स्थापना करके, गुरु एवं सूर्य-सम्बन्धी मन्त्र बोलते हुए शक्त्यन्त सूर्यका विविवत् स्थापन करे ।

श्रीसूर्यदेवका स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रखें । (यथा विक्रमादित्य-स्वामी अथवा रामादित्यपाद इत्यादि) सूर्यके मन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हींका स्थापन-कालमें भी साक्षात्कार (प्रयोग) करना चाहिये ।

एक सौ अड्डतालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजाका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ । ॐ डे ख ख्यां सूर्याय संग्रामविजयाय नमः—हाँ हीं हूँ हैं हौं हः यह मन्त्र है । ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं—हाँ हीं हूँ हैं हौं हः अर्थात् इनके द्वारा पठङ्गन्यास करना

चाहिये । यथा—'हाँ हृदयाय नमः । हीं शिरसे स्वाहा । हूँ शिखायै वषट् । हैं कवचाय हुम् । हौं नेत्रवत्याय वौषट् । हः अस्त्राय फट् ।

'अँ हं खं स्वखोल्काय स्वाहा'—यह पूजाके लिये मन्त्र है । 'स्फूं हं हुं क्रूं अँ हौं क्रेम्'—ये छः अङ्ग-न्यासके बीज-मन्त्र हैं । पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे । पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अर्धम, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे ।

तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे । इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे । फिर दीपा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे ।

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे । ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमे 'नमः'के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं; यथा—'सं सत्त्वाय नमः', 'अं अन्तरात्मने नमः' इत्यादि । इसी तरह उषा, प्रभा, संध्या, साया, माया, बला, विन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे । इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे । इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है ।*

* संग्राममें विजय देनेवाले अनेकशः वहुतोद्वाग अनुभूत 'आदित्यहृदय' नामक (आगे प्रकाश) दो सोत्र भी उपलब्ध हैं—(१) वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरामको श्रीअगस्त्यजी द्वारा उपदिष्ट और भविष्य किंवा भविष्योत्तरमें शतानीकके प्रश्नोत्तरमें सुमत ऋषिद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रश्नोत्तरके हवालेसे कथित । पहलेकी सफलता प्रत्यान्ताक्रमणमें दृष्ट है और दूसरेके सम्बन्धमें यह माहात्म्य (भी) द्रष्टव्य है—

अमित्रदहनं पार्थ सग्रामे जयवर्द्धनम् । वर्ढन धनपुत्राणामादित्यहृदय शृणु ॥

(भगवान् कहते हैं—) 'पार्थ ! शत्रुओंको समाप्त करनेवाला, समरमें जयप्रद एवं धन और पुत्र देनेवाला 'आदित्यहृदय' (कहता हूँ,) सुनो ।'

लिङ्गपुराणमें सूर्योपासनाकी विधि

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

लिङ्गपुराणके उत्तरभागके २२वें अध्यायमें सूर्योपासनाका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इसलिये हम उस अध्यायको अर्थके सहित ज्यो-कान्त्यों उद्भूत कर रहे हैं। सूर्यमें और ब्रह्म परमात्मामें कोई भेद नहीं है। ब्रह्मके भर्ग-तेजका रूप ही रूर्यनारायण हैं। जो तीनों काल भगवती गायत्रीका जप करते हैं, वे सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं। लिङ्गपुराण-द्वारा बतायी विधिसे जो गूर्योपासना यत्तेजे, उनकी मनः-कामना तत्काल पूर्ण होगी—ऐसा पुराणका मत है।

स्नानयगादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च ।
शिवस्नानं ततः कुर्याद् भस्मस्नानं शिवार्चनम् ॥

‘भगवान् गूर्यका स्नान-पूजन आदि कर्म करके शिवस्नान, भस्मस्नान तथा शिवार्चन करे।’

पष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम् ।
छित्रीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत् ॥

‘छठे महाव्याहनि अर्थात् ॐ तपः इस मन्त्रसे मिट्ठी लेकर भक्तिपूर्वक उसे पृथ्वीपर स्थापित करे। दूसरे (ॐ भुवः) से सींचवार, तीसरे (ॐ स्वः) से अभिमन्त्रित करे।’

चतुर्थैनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत् ।
स्नान्त्वा पष्ठेन तच्छेषां सृदं हस्तगतां पुनः ॥

‘चतुर्थ (ॐ महः) से मिट्ठीका विभाग करे। प्रथम (ॐ भूः) से मल्को शुद्ध करे अर्थात् स्नान करे। फिर छठे (ॐ तपः) से शेष मिट्ठीको सात बार अभिमन्त्रित करे।’

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः ।
पष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालयेत् ॥
दशवारं च पष्ठेन दिशोवन्धः प्रकीर्तिः ॥

‘मिट्ठीका तीन विभाग करके ‘ॐ महः’ से अभिमन्त्रित करे। फिर छठे (ॐ तपः) से बायें हाथको मूल मन्त्रसे स्पर्श करे। सात बार अभिमन्त्रित करके फिर इसी मन्त्रसे दस बार दिग्बन्धन करे।’

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च ।
स्नान्त्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत् ॥

‘बायें हाथपर तीर्थकी (पवित्र) मिट्ठी रखकर दायें हाथसे शरीरमें लेप वरे। फिर सम्पूर्ण मन्त्रोंसे सूर्यका स्मरण करता हुआ तीर्थ-जलसे अभिषेक करे।’

श्रुद्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा ।
सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः ॥

‘श्रुद्गसे, पत्तेके दोनेसे अथवा पलाशपत्रसे सर्व-सिद्धिकारी सूर्यमन्त्रोंको पढ़े।’

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्पकलाद्यानि सुव्रत ।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः ॥

‘अब सूर्यके वाष्पकल आदि मन्त्रोंको, जो सब देवोंमें सारभूत हैं, कहता हूँ—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्
ॐ शृतम् ॐ ब्रह्म ।

नवाक्षरमयं मन्त्रं वाष्पकलं परिकीर्तितम् ॥

न शरतीति लोकानि ऋत्वमक्षरमुच्यते ।

सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम् ॥

‘‘ॐ भूः’ आदि नवाक्षर वाष्पकल-मन्त्र कहे जाते हैं। ‘ॐ भूः’ आदि सात लोक नष्ट नहीं होते हैं। ऋत्वको अक्षर कहते हैं। प्रणव (ॐ) आदिमें और ‘नमः’ अन्तमें हो ऐसे ॐ नमः को सत्याक्षर कहा गया है।’

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्ववितुर्वरेण्यं भग्नो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ नमः सूर्याय खलोत्काय नमः ॥

यह भगवान् गूर्यका मूलमन्त्र है।

मूलं मन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीपास्य मूलमन्त्रेण भास्करम् ॥

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम् ।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम् ॥

‘नवाक्षरसे प्रकाशित सूर्य भगवान्‌की मूल मन्त्रसे
पूजा करे । प्रत्येक अङ्गोंके पूजनके मन्त्र क्रमसे कहता
हूँ, जो वेदोंसे उत्पन्न हैं’—

‘ॐ भूः ब्रह्महृदयाय नमः ।’ ‘ॐ भुवः ब्रह्मशिरसे ।’
‘ॐ स्वः रुद्र शिखायै ।’ ‘ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनी
शिखायै ॥’ ‘ॐ महः महेश्वराय कवचाय ।’ ‘ॐ जनः
शिवाय नेत्रेभ्यः ।’ ‘ॐ तपः तापकाय अद्याय फट् ।’

मन्त्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च ।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभियेचयेत् ॥
ताप्रकुम्भेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ।
सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः संप्राहितः ॥

‘इस प्रकार सूर्यके विविध मन्त्र कहे गये हैं । इन
मन्त्रोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शृङ्गादि पात्रोंके द्वारा
अथवा ताप्रकुम्भके जलसे कुरासे अपने ऊपर सौंचे’—

रक्तवस्त्रापरीधानः स्वाचमेद् विधिपूर्वकम् ।
सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः ॥
आपः पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनसुच्यते ।
पथेन शुर्द्धि कृत्वैव जपेदाद्यमनुच्चयम् ॥
बौपडन्तं तथा मूलं नवाक्षररात्रुत्तमम् ।

‘लाल वस पहनकर विधिवत् आचमन करे । (प्रातः-
काल) ‘सूर्यश्च’ आदि मन्त्रसे, मध्याह्ने ‘आपः पुनन्तु’
आदिसे तथा सायंकालमें ‘अग्निश्च’ आदि मन्त्रसे
आचमन करे । ‘ॐ तपः’ से इस प्रकार शुद्धि करके
‘वौपट्पर्यन्त’ मूल मन्त्र तथा सर्वश्रेष्ठ नवाक्षर मन्त्र जपे ।

करशाखां तथाङ्गुष्टमध्यमानामिकां न्यसेत् ॥
तले च तर्जन्यङ्गुष्टं सुषिभागानि विन्यसेत् ।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाङ्गैरपि पावितम् ॥

‘तत्पश्चात् अङ्गुलियो—अङ्गुष्ठादिका न्यास करे ।
फिर देहको नवाभ्रमय बनाकर पवित्र करे ।’

सूर्योऽहमिति संचिन्त्य मन्त्रैरत्यर्थक्रमम् ।
वामहस्तगतेरङ्गिः गन्धसिद्धार्थकान्वितैः ॥

कुशापुञ्जेन चाभ्युक्त्य मूलायैरपृथ्वास्थितैः ।
आपोहिष्टादिभिद्यैव शोपमात्राय वै जलम् ॥
वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेत् शिवम् ।

‘मैं सूर्य हूँ’ ऐसा विचार करके इन मन्त्रोंसे क्रम-
से वायें हाथमें जल, चन्दन, सरसो खबकर कुशासमूह-
से अपने देहका प्रोश्नण करे । शोप जलको वार्षी
नासिकासे सूँघकर अपने देहमें भगवान् शंकरका
चिन्तन करे ।

अर्ध्यसादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ॥
कृष्णवर्णेन वायरथं भावयेच शिलागतम् ।
तर्पयेत् सर्वेदेवेभ्य ऋषिभ्यदत्त विशेषतः ॥

अर्थ अर्थात् नासिकामे लगाये हुए जलको लेकर
अपने देहमें स्थित अज्ञानको पापपुरुषके साथ दाहिने
नासिकासे निकालकर शिलापर खनेकी भावना करे ।
पश्चात् सब देवताओं—विशेषतः ऋषियोंका तर्पण करे ।

भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्थ्यं च दापयेत् ।
व्यापिनीश्च परां ज्योतस्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत् ॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्ध्यं चैव निवेदयेत् ।
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमाचेण मण्डलम् ॥

‘फिर प्राणियो एवं पितरोंको अर्ध दे । प्रातः,
मध्याह्न एवं सायंव्यापिनी अत्यन्त प्रकाशित सन्ध्याकी
अच्छी तरह उपासना करे । तब एक हाथका मण्डल
बनाकर उसे रक्त चन्दनयुक्त करे । फिर रक्त चन्दनयुक्त
जलसे मण्डल बनाये ।’

सुवृत्तं कल्पयेद् भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमः ।
प्राड्मुखस्तात्रपात्रश्च सगत्यं प्रस्थपूरितम् ॥
पूरयेद् गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च ।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः ॥
दूर्वापामार्गव्ययेन केवलेन घृतेन च ।
आपूर्य सूलमन्त्रेण नवाक्षरमयेन च ॥
जानुश्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च ॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्थ्यं सूलेन दापयेत् ।
अद्वयमेधायुतं कृत्वा यत्कलं परिकीर्तितम् ॥
तत्कलं लभते दत्त्वा सौरार्थ्यं सर्वसमतम् ।

‘सुन्दर ताप्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य अथवा गोदृतसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र) से दोनों जानुके बल पूर्वमुख वैठकर देवदेव भगवान् सूर्यको नमस्कारपूर्वक अर्थ दे । इससे दस हजार अश्वमेघ यज्ञोका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है ।’

दत्त्वैवार्थ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं वियन्वकम् ॥
अथवा भास्करं चेष्टा आग्नेयं स्नानमाचरेत् ।
पूर्ववद् वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम् ॥

‘इस प्रकार सूर्यको अर्थ देकर भगवान् शंकरका पूजन करे । अथवा सूर्यका पूजन करके शिवके लिये भस्मस्नान करे । तत्पश्चात् ‘सद्योजात’ आदि मन्त्रोंसे भगवान् शंकरको स्नान कराये ।’

दन्तव्यावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाह्नरम् ।
विज्ञेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थं समर्पयेत् ॥

दन्तव्यावन करके सौर-स्नान, शांकर-स्नान करनेके पश्चात् गणेश, वरुण तथा गुरुतीर्थका पूजन करे ।

वद्ध्वा पद्मासनं तीर्थं तथा तीर्थं सपत्रयेत् ।
तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च ॥
मार्गेणार्थ्यपवित्रेण तदाकम्य च पादुकम् ।
पूर्ववत् करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत् ॥

‘पद्मासन बौधकर तीर्थका पूजन करे । विधिवत् पूजन करके पूजास्थानमें जाय और पादुका उतार करके पूर्ववत् करविन्यास और देहविन्यास करे ।’

अर्थस्य सादानञ्चैव सप्तासात् परिकीर्तिम् ।
वद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समर्थ्यसेत् ॥
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत् ।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः ॥
ताप्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये ।
अर्थ्यपात्रं सप्तादाय प्रक्षालय च यथाविधि ॥
पूर्वोक्तेनास्तु ना सार्वं जलभाण्डे तथैव च ।
अस्त्रोदकेन चैवार्थ्यपर्याप्त्यद्रव्यसमन्वितम् ॥
संहितामन्तिं कृत्वा सम्मूल्यं प्रथमेव च ।
तुरीयेणाद्यगुणद्वयैव स्थापयेदात्मनोपरि ॥

पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम् ।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक् ॥
संहितामन्त्रैव विन्यस्य कवचेनावगुणठय च ॥
अर्धम्बुना समस्तुक्ष्य द्रव्याणि च त्रिशेषतः ।
आदित्यञ्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्तुतम् ॥

‘ताप्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले होते हैं । अर्थ्यपात्र लेन्तर उमे यथाविनि शुद्ध करके पूर्वोक्त जल जलपात्रमें रखकर अर्थद्रव्यसे युक्त करे । तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके, चतुर्थसे मिलाकर अपने पास रखे । पाद्य, आचमनीय, गन्ध-पुष्पसे युक्त करके जलसे शुद्ध किये पात्रमें पहलेकी तरह रखे । मन्त्रोंसे तथा वाववसे अभिमन्त्रित करे । अर्थके जलसे द्रव्योंका प्रोक्षण कर फिर सर्व-देवोंसे नमस्कृत भगवान् सूर्यकी उपासना करे ।’

आदित्यो वै तेज ऊर्जां वलं यशो विवर्धति ।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः ॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं खुखम् ।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत् ॥

‘आदित्यो वै तेजः’ आदि यजुर्वेदकी श्रुनियोद्वारा सूर्य भगवान्को नमस्कार करके सूर्यके आसनकी कल्पना करे । परमैश्वर्ययुक्त, परमसुख भगवान् सूर्यकी आराधना करे । अग्निकोण आदि उपदिशाओंमें ऽँ भूः, ऽँ भुवः, ऽँ स्वः, ऽँ महः आदि मध्यम व्याहृतियोंका न्यास करे ।

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव दीजमङ्गुरमेव च ।
नालं सुपिरसंयुक्तं सूत्रकंटकसंयुतम् ॥
दलं दलात्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च ।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीपाद्यैः शक्तिभिर्वृतम् ॥
दीपा सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमलाक्रमात् ।
अघोरा विकृता चैव दीपाद्याश्चाप्त शक्तयः ॥
भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताङ्गलिषुटाः शुभाः ।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः ॥
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत् सर्वतोमुखीम् ।
आवाहयेत् ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम् ॥

‘इस प्रकार अङ्गन्यास करके धर्मस्तरूप छिद्रयुक्त नालसे युक्त सुन्दर सफेद, सुवर्णके समान और लाल

दीप आदि शक्तियोंसे युक्त, कर्णिकाके केसरसे पूर्ण कमलकी भावना करे । और दीपा, मूळमा, जया, भद्रा, विभूति, विमला आदि अष्टशक्तियोंको सूर्यकं सामने हाथ जोड़े हुए अथवा हाथमे कमल लिये हुए, सब आभरणोंसे विभूषित करके मध्यमे वरदा देवीकी स्थापना करे । उसके बाद वरदा देवी तथा भगवान् सूर्यका आवाहन करे ।

नवाश्वरेण मन्त्रेण वाष्कलोक्तेन भास्करम् ।
आवाहने च साक्षिध्यमनेहैव विधीयते ॥
मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः ।
मूलेनार्थ्यं ततो दद्यात् पाद्यमाचमनं पृथक् ॥
पुनरर्धप्रदानेन वाष्कलेन यथाविधि ।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च ॥
दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च ।
ताम्बूलवर्तिदीपाद्यं वाष्कलेन विधीयते ॥
आनेत्यां च तथैशान्यां नैऋत्यां वायुगोचरे ।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव पट्टप्रकारं विधीयते ॥

‘नवाभर वाष्कलोक्त मन्त्रसे भगवान् सूर्यका आवाहन करे । पद्ममुद्रासे मूलमन्त्रद्वारा अर्थ्य देकर आचमन करे । पुनः वाष्कलमन्त्रसे यथाविधि अर्थ्य देकर लाल कमल, लाल चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि भी वाष्कलमन्त्रसे अर्पित करे । अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायुव्य, पूर्व और पश्चिम आदिमें ग्रकार करे ।’

नेत्रान्तं विधिनाभ्यर्थं प्रणवादिनमोऽन्तकम् ।
कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकव्यानमाचरेत् ॥

‘प्रणवसे लेकर नमःतक कहकर यथाविधि उन-उन अवयवोंसे नेत्रतक पूजन करके अपने हृदय-कमलमें प्रतिविम्बका ध्यान करे ।’

सर्वे चिद्युत्प्रभाः शान्ता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम् ।	दंपाकरालवदनं हायमूर्ति भयर्हरम् ॥
घरदं दक्षिणं हस्तं चामं पद्मविभूषितम् ।	सर्वाभरणसम्पन्ना रक्तस्त्रगनुलेपनाः ॥
रक्ताभरधराः सर्वा मूर्त्यस्तस्य संस्थिताः ।	समण्डलो महादेवः सिन्दूरारुणविग्रहः ॥
पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः ग्रभुः ।	रक्तस्त्रगनुलेपनः ॥
रक्ताभरणसंयुक्तो	

इत्यं रूपधरं ध्यायेद् भास्करं भुवनेश्वरम् ।
पद्मवाहे शुभं चत्र मण्डलेषु समन्ततः ॥

‘सभीकी आमा विशुल्कात्मिके समान एव हृदय आदि शान्त हैं । अस रौद्र कहा गया है । भयवह दाँतोंसे अप्सूर्ति भयकर है । दाहिना हाथ वरदाता और बायाँ हाथ कमलयुक्त है । सब आभरणोंसे सुशोभित, लाल माला एवं लाल चन्दनसे चर्चित, लाल वस्त्रोंको धारण किये हुए, भगवान् सूर्यकी सब मूर्तियोंको स्थित करे । मण्डलके सहित लाल रूप (विग्रह) वाले भगवान् सूर्य, हाथमे कमल लिये हुए, अमृतमय मुग्नवाले, दोनों हाथों तथा नेत्रोंवाले, लाल आभरण, लाल माला, लाल चन्दनसे युक्त हैं ऐसे रूपवाले भुवनेश्वर भगवान् भास्करका ध्यान करे ।’

सोममङ्गारकज्ञैव बुधं बुद्धिमतां वरम् ।
वृहस्पतिं महावृद्धि रुद्रपुत्रञ्च भार्गवम् ॥
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम् ।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुद्वचोर्धशरीरधृक् ॥
विवृत्तास्याङ्गिलि कृत्वा भृकुटीकुटिलेश्वणः ।
शनैश्चरश्च दंपास्यो वरदाभ्यवहस्तधृक् ॥
स्वैः स्वैः भावैः स्वनाम्ना प्रणवादिनमोऽन्तकम् ।
पूजनीया प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये ॥
सप्त सप्त गणांशैव वहिंवस्य पूजयेत् ।
ऋपयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः ॥
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः ।
सप्ताश्वान् पूजयेद्ये सप्तच्छन्दोमयान् विभोः ॥

‘धर्म, अर्थ और काम आदिकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक दो नेत्र तथा दो भुजावाले—इन चन्द्रमा, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, धूम्र, ऊर्वशरीरी एवं अवोमुखी राहुकी और अङ्गलि वौंधे वकदृष्टि, वरद हस्त धारण करनेवाले शनैश्चरकी पूजा करे तथा वायु सात गणो—ऋपियो, देवों, गन्धर्वों, पत्नियों, अप्सराओं, ग्रामदेवियों, मुख्यरूपसे यातुधानोंकी अर्चना कर सात छन्दरूपमे सूर्यके सात अश्वोंका भी पूजन करे ।’

वालखिलयं गणज्ञैव निर्माल्यग्रहणं विभोः ।
पूजयेदासनं मूर्त्तदेवतामपि पूजयेत् ॥
अर्थ्यञ्च दापयेत् तेषां पृथगेव विधानतः ।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा ॥
सहस्रं च तदर्ज्जं च शतमण्डोत्तरं तु चा ।
वाष्कलञ्च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत् ॥

‘वालखिल्य आदि ऋषियोका पूजन करे ।
निर्माल्य ग्रहण करे । पृथक्-पृथक् विधानसे अर्थ दे ।
आवाहन आदि पूजाके अन्तमें उनके उद्वासनमें एक हजार अथवा पाँच सौ या एक सौ आठ वाष्कल मन्त्र जपे । फिर दशांश हवन आदिकी विधि करे ।’

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद् वर्तुलञ्जैव मेखलम् ।
चतुरहुलमनेन चोत्सेधाद् विस्तरादपि ॥
‘मण्डलके पश्चिम भागमें मेखलासहित गोला कुण्ड बनाये ।

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा ।
कृत्वा श्वत्थदलाकारं नामि कुण्डे दशाहुलम् ॥

‘नित्य-नैमित्तिक कार्यमें एक हाथका कुण्ड बनावे । पीपलके पत्तेके समान बनाकर कुण्डमें दस अङ्गुलकी नामि बनाये ।’

तदर्धेन पुरस्तातु गजोषुसदृशं स्मृतम् ।
गलमेकाङ्गुलञ्जैव शेषं द्विगुणविस्तरम् ॥
तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्यात् मेखलाम् ।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्दोमञ्च कारयेत् ॥

‘उसी प्रमाणसे मेखला बनाकर यन्त्रपूर्वक सिद्ध करके हवन करे ।’

पष्ठेनोल्लेखनं कुयात् प्रोक्षयेद् वारिणा पुनः ।
आसनं कल्पयेद्यमध्ये प्रथमेन समाहितः ॥
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्यैव तु विन्यसेत् ।
वाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रपात् ॥
वाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रतियजेत् पृथक् ।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात् पूर्णाहुर्तिर्भवेत् ॥
क्रमदेवं विधानेन सूर्यगिर्जनितो भवेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुकं कमलं न्यसेत् ॥

‘पष्ठ अर्थात् ‘ओं तपः’से उल्लेखन करके जलसे प्रोक्षण करे । तदनन्तर आसन रखे । इसके बाद ‘ॐ भूः’ से समाहित हो प्रभावती आदि शक्तिका न्यास करे । तदनन्तर वाष्कल-मन्त्रसे गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करे । फिर वाष्कल-मन्त्रसे हवन करके मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति करे । क्रमशः इस विधानसे सूर्याग्नि प्रकट करे । पूर्वोक्त विधिसे कथित कमलको स्थापित करे ।’

मुखोपरि समभ्यच्छ्य पूर्वबद् भास्करं प्रसुम् ।
दशैवाहुतयो देया वाष्कलेन महामुने ॥

‘कमलके मुखके ऊपर पूजन करके पूर्वकी भाँति भगवान् सूर्यको वाष्कल-मन्त्रसे दस आहुति दे ।’

अङ्गानाञ्च तथैकैं संहिताभिः पृथक् पुनः ।
जयादिविष्टपर्यन्तमिधमप्रक्षेपमेव च ।
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च ।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने ॥
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वाद्यन्तं प्रदक्षिणम् ।
अङ्गैः सम्पूज्य संक्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च ॥

‘तथा संहितामन्त्रोसे एक-एक अङ्गकी पूजा करके क्रमसे अमित तेजसी भगवान् सूर्यको सब कुछ निवेदित करे । पूजा-हवन आदि देकर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे ।’

शिवपूजां ततः कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यज्ञं भास्करस्य च ॥

‘उसके बाद भगवान् शिवका पूजन करे । इस प्रकार सक्षेपमे भगवान् सूर्यकी पूजाका विधान कहा गया है ।’

यः सकृद् वा यजेद् देवं देवदेवं जगहुरुम् ।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम् ॥
सर्वपापविनिरुक्तः सर्वपापविवर्जितः ।
सर्वैश्वर्यसमोपेतः तेजसा प्रतिमश्च सः ॥
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च वान्धवैश्च समन्ततः ।
भुक्त्वैव सकलान् भोगान् इहैव धनधान्यवान् ॥
यानवाहनसम्पन्नो भूपणीविवधैरपि ।
कालं गतोऽपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम् ॥

पुनस्तस्माद्द्विहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।
वेदवेदाङ्गस्पन्दो ब्राह्मणो वात्र जायते ॥
पुनः प्राग्वासनायोगाद् धार्मिको वेदपारगः ।
सूर्यमेव समर्थर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात् ॥

जो एक बार भी देवदेव भगवान् सूर्यका पूजन कर लेता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। सब पापोंसे छूट जाता है। समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त हो जाता है। तेजमें अप्रतिम हो जाता है। पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता

है। यहींपर सब प्रकारके धन-धान्य प्राप्त कर लेना है। वाहन आदिसे युक्त हो जाता है। फिर देह न्यागनेके बाद सूर्यके साथ अक्षयकालतक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर इस लोकमें आकर धार्मिक राजा अथवा वेदवेदाङ्ग-सम्पन्न ब्राह्मण होता है और पहली वासनाओंके योगसे धार्मिक वेदपारगामी होकर सूर्यका ही पूजन करके सूर्यके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

मत्स्यपुराणमें सूर्य-संदर्भ

[इस संदर्भमें सूर्यकी गति, अवस्थिति और ज्योतिष्पुर्जोंके साथ सम्बन्धादिके सारांशका वर्णन है—]

सूतने कहा—ऋग्विवृन्द ! अब इसके बाद मैं चन्द्रमा और सूर्यकी गतियों बतला रहा हूँ । ये चन्द्रमा तथा सूर्य सातों समुद्रों तथा सातों द्वीपोंसमेत समग्र पृथ्वीतलके अर्धभाग तथा पृथ्वीके वहिभूत अन्य अनेक लोकोंको प्रकाशित करते हैं । सूर्य और चन्द्रमा विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश करते हैं; पण्डितलोग इस अन्तिमतक ही आकाशलोककी तुल्यता स्मरण करते हैं । सूर्य अपनी अविलम्बित गतिद्वारा साधारणतया तीनों लोकोंमें पहुँचते हैं । अतिशीत्र प्रकाशदानद्वारा सभी लोकोंकी रक्षा करनेके कारण उनका 'रवि' नामसे स्मरण किया जाना है । इस भारतवर्षके विष्कम्भ (विस्तार)के समान ही परिमाणमें सूर्यका मण्डल माना गया है । वह विष्कम्भ किनने योजनोंमें है, इसे बता रहा हूँ, सुनिये । सूर्यके विम्बका व्यास नौ सहस्र योजन है । इस विष्कम्भ-परिविका विस्तार इसकी अपेक्षा तिगुना है । इस विष्कम्भ एवं मण्डलसे चन्द्रमा सूर्यसे द्विगुणित वड़ै है ।

आकाशमें तारागणोंकी अवस्थिति जितने मण्डलमें है, उतना ही समूर्ज पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया

है । फलस्वरूप भूमिके समान ही स्वर्गका मण्डल माना गया है । मेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतकी चोटीपर महेन्द्रकी वस्त्रेकसारा नामक सुवर्णमें सजायी गयी एक पुण्य नगरी है और उसी मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशाकी ओर मानसकी पीठपर अवस्थित संयमनीपुरीमें सूर्यका पुत्र यम निवास करता है । मेरुपर्वतकी पश्चिम दिशाकी ओर मानस नामक पर्वतकी चोटीपर अवस्थित बुद्धिमान् वरुणकी सुषा नामक परम रमणीय नगरी है । मेरुकी उत्तर दिशामें मानसगिरिकी चोटीपर महेन्द्रकी (वस्त्रेकसारा) नगरीके समान परम रमणीय चन्द्रमाकी विभावरी नामक नगरी है । उसी मानसोत्तरके शिखरपर चारों दिशाओंमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था एवं लोकके संरक्षणके लिये अवस्थित हैं । दक्षिणायनके समय सूर्य उक्त लोकपालोंके ऊपर भ्रमण करते हैं । उनकी गति सुनिये । दक्षिणायनके सूर्य धनुषसे छूटे हुए वाणकी तरह शीत्रगतिसे चलते हैं और अपने ज्योतिःचक्रोंको साथ लेकर सर्वदा गतिशील रहते हैं । जिस समय

१. सूर्यसिद्धान्तका भूगोलाध्याय, ब्रह्माण्ड-सम्पुट-- परिभ्रमण—‘समन्ताद्भ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः ।’

२. किंतु ज्योतिषमें चन्द्रमाका विस्तार सूर्यसे बहुत कम माना गया है । देखिये—सूर्यसिद्धान्तका प्रथम भाग चन्द्रश्चहणाधिकारका प्रथम लोक । (उपर्युक्त उल्लेखका तात्पर्य अन्वेष्य है ।)

अमरावती (वस्त्रेक्षसारा) पुरीमें सूर्य मध्यमे आते हैं । उस समय वैवस्वतके संयमनीपुरीमें वे उदित होते हुए दिखायी पड़ते हैं; सुषा नामक नगरीमें उस समय आधी रात होती है और विभावरीनगरीमें सायंकाल होता है । इसी प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) की संयमनी-पुरीमें सूर्य मध्याहके होते हैं, उस समय वरुणकी सुषा नगरीमें वे उदित होते दिखायी पड़ते हैं । विभावरीपुरीमें आधी रात रहती है और महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें सायंकाल होता है । जिस समय वरुणकी सुपानगरीमें सूर्य मध्याहके होते हैं, उस समय चन्द्रमाकी विभावरी-नगरीमें वे ऊँचाईपर प्रस्थान करते हैं अर्थात् उदित होते हैं । इसी प्रकार महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें जब भानु उदित होते हैं, तब संयमनीपुरीमें आधी रात रहती है और वरुणकी सुपानगरीमें वे अस्ताचलको चले जाते हैं । इस प्रकार सूर्य अलानचक्र (जलते हुए लुकको घुमानेसे बननेवाला मण्डल) की भौंनि शीघ्र गतिसे चलते हैं और ख्यं भ्रमण करते हुए नक्षत्रोंको भ्रमण करते हैं । इस प्रकार चारों पाञ्चोंमें सूर्य प्रदक्षिणा करते हुए गमन करते हैं तथा अपने उदय एव अस्तकालके स्थानोंपर वारवार उदित और अस्त होते रहते हैं । दिनके पहले तथा पिछले भागोंमें दोन्दो देवताओंके निवास-स्थानोंपर वे पहुँचते हैं । इस प्रकार वे एक पुरीमें प्रातःकाल उदित हो बढ़नेवाली किरणों और कान्तियोंसे युक्त होकर मध्याहकालमें तपते हैं और मध्याहके अनन्तर तेजोविहीन होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त होते हैं । सूर्यके इस प्रकारके उदय और अस्तसे पूर्व तथा पश्चिमकी दिशाओंकी सृष्टि स्मरण की जाती है । वे सूर्य जिस प्रकार पूर्वभागमें तपते हैं, उसी प्रकार दोनों पाञ्चों तथा पृष्ठ (पश्चिम)-भागमें भी तपते हैं । जिस स्थानपर उनका प्रथम उदय दिखायी पड़ता है, उसे

उनका उदय-स्थान और जिस स्थानपर ल्य होता है उसे इनका अस्तस्थान कहते हैं ।

सुमेरुपर्वत सभी पर्वतोंके उत्तरमे और लोकालोक पर्वतके दक्षिण ओर अवस्थित है । सूर्यके दूर हो जानेके कारण भूमिपर आती हुई उनकी किरणे अन्य पदार्थोंपर पड़ जाती है, अतः यहाँ आनेसे वे रुक जाती हैं । इसी कारण रातमें वे नहीं दिखलायी पड़ते । इस प्रकार जिस समय पुष्करके मध्यभागमें सूर्य होते हैं, उस समय ऊगर स्थित दिखलायी पड़ते हैं । एक मुहूर्त-(दो घड़ी)-में सूर्य इस पृथ्वीके तीसवें भागतक जाते हैं । इस गतिकी सख्त्या योजनोमें सुनिये । वह पूर्ण संख्या इकलीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक स्मरण की जाती है । सूर्यकी इतनी गति एक मुहूर्तकी है । इस क्रमसे वे जब दक्षिण दिशामें भ्रमण करते हैं तो एक मासमें उत्तर दिशामें चले जाते हैं । दक्षिणायनमें सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यभागमें होकर भ्रमण करते हैं । मानसोत्तर और मेरुके मध्यमें इनका तीन गुना अन्तर है—ऐसा सुना जाता है । सूर्यकी विशेष गति दक्षिण दिशामें जानिये । नौ करोड़ पैतालीस लाख योजनका यह मण्डल कहा गया है और सूर्यकी यह गति एक दिन तथा एक रात-की है । जब दक्षिणायनसे निवृत्त होकर सूर्य विषुव-स्थलपर हो जाते हैं, उस समय क्षीरसागरकी उत्तर दिशाकी ओर भ्रमण करने लगते हैं । उस विषुव-मण्डलको भी योजनोमें सुनिये ।

सम्पूर्ण विषुवमण्डल तीन करोड़ एक लाख इक्कीस योजनोमें विस्तृत है । जब श्रावण मासमें चित्रभानु उत्तर दिशामें सूर्य हो जाते हैं, तब गोमेद द्वीपके अनन्तरवाले प्रदेशमें उत्तर दिशामें वे विचरण करते हैं । उत्तर दिशाके प्रमाण, दक्षिण दिशाके प्रमाण तथा

१. वह स्थान वा रेखा जिसपर सूर्यके पहुँचनेके समय दिन और रात वर्गवर होते हैं, विषुवस्थल कहा जाता है ।

दोनों मध्यमण्डलके प्रमाणको क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये । इसके मध्यमे जरद्रव, उत्तरमें ऐरावत तथा दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं । उत्तरावीथी नागवीथी और दक्षिणावीथी अजग्रीथी मानी गयी है । दोनों आपाढ़ (पूर्वापाढ़ और उत्तरापाढ़) तथा मूल—ये तीन-तीन नक्षत्र अजग्रीथी—आदि तीन वीथियोंके कहे जाते हैं; अर्थात् मूल, पूर्वापाढ़, उत्तरापाढ़, अभिजित, पूर्वभाद्रपद, स्वाती और उत्तरभाद्रपद—ये नागवीथी कहे जाते हैं । अश्विनी, भरणी और कृतिका—ये तीन नक्षत्र नागवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं । रोहिणी, आर्द्धा और मृगशिरा—ये भी नागवीथीके ही नामसे स्मरण किये जाते हैं । पुष्य, आश्लेषा और पुनर्वसु—इन तीनोंकी ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है । ये तीन वीथियाँ हैं । इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है । पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और मघा—इनकी संज्ञा आपभीवीथी है । पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये गोवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं । श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये जरद्रव नामक वीथीमें हैं । इन तीन वीथियोंका मार्ग मध्यम कहा जाता है । हस्त, चित्रा तथा स्वाती—ये अजग्रीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं । ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराशा—ये मृगवीथी कहे जाते हैं । मूल, पूर्वापाढ़ और उत्तरापाढ़—ये वैश्वानरीवीथीके नामसे विल्यात हैं । इन तीन वीथियोंका मार्ग दक्षिण दिशामें है । अब इनमेसे दोका अन्तर योजनोद्घारा बता रहा हूँ । यह अन्तर इकतीस लाख तैतीस सौ योजनोका है । यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है । अब-विपुल-स्थलसे दक्षिणायन और उत्तरायण-पथोंका परिमाण योजनोमें बतला रहा हूँ, आनपूर्वक सुनिये । मध्यभागमें स्थित एक रेखा दूसरीसे पचीस हजार अविक योजन अन्तरपर है । बाहर और भीतरकी इन दिग्गाओं और रेखाओंके मध्यमें चलते हुए सूर्य सर्वदा

उत्तरायणमे भीतरसे मण्डलोंको पार करते हैं और दक्षिणायनमें सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है । इस प्रकार वहिर्भागसे विचरण करते हुए सूर्य उत्तरायणमें एक सौ अस्ती योजन भीतर प्रवेश करते हैं । अब मण्डलका परिमाण सुनिये । वह मण्डल अठारह हजार अड्डावन योजनका उना जाता है । उस मण्डलका यह परिमाण तिरछा जानना चाहिये । इस प्रकार एक दिन-रातमें सूर्य मेस्के मण्डलको इस प्रकार प्राप्त होते हैं, जैसे कुम्हारकी चाक नाभिके क्रमपर चलती है । सूर्यकी भोति चन्द्रमा भी नाभिके क्रमसे मण्डलको प्राप्त होते हैं । दक्षिणायनमें सूर्य चक्रके समान शीत्रतासे अपनी गति समाप्तकर निवृत्त हो जाते हैं । इसी कारण प्रमाणमें अविक भूमिको वह थोड़े ही समयमें चलकर समाप्त कर देते हैं । दक्षिणायनके सूर्य केवल बारह मुहूर्तोंमें कुल नक्षत्रोंकी कुल संल्याके आवे अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलमें भ्रमण करते हैं और रातके शेष अठारह मुहूर्तोंमें उतने ही अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलमें भ्रमण करते हैं । कुम्हारकी चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तु जिस प्रकार मन्द गतिसे भ्रमण करती है, उसी प्रकार उत्तरायणके मन्द पराक्रम-शील सूर्य मन्दगतिसे भ्रमण करते हैं । यही कारण है कि वे बहुत अविक कालमें भी अपेक्षाकृत थोड़े मण्डलका भ्रमण कर पाते हैं । उत्तरायणके सूर्य अठारह मुहूर्तोंमें केवल तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरण करते हैं और उतने ही नक्षत्रोंके मण्डलोंमें रातके बारह मुहूर्तोंमें भ्रमण करते हैं । सूर्य और चन्द्रमाकी गतिसे मन्द गतिमें चाकपर रखे हुए मिट्टीके पिंडकी भोति चक्राकार वूमता हुआ ध्रुव भी नक्षत्र-मण्डलोंमें निरन्तर भ्रमण करता रहता है । ध्रुव तीस मुहूर्तोंमें अर्थात् पूरे दिन-रातमरमें भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओंके मध्यमें स्थित उन मण्डलोंकी परिक्रमा करता है । उत्तरायणमें सूर्यकी गति दिनमें मन्द कही गयी है और रातको तीक्ष्ण

सुनी जाती है। इसी प्रकार दक्षिणायनमें सूर्यदिनमें शीघ्र गतिसे चलते हैं और रातमें उनकी मन्द गति हो जाती है। इस प्रकार अपने गमनके तारतम्यसे दिन और रातका विभाग करते हुए वे दक्षिणकी अजायीशी एवं लोकालोककी उत्तर दिशाकी ओर प्रवृत्त होते हैं। लोकसतान पर्वत और वैश्वानरके मार्गसे बाहरकी ओर वे जब आते हैं, तब पुष्कर नामक द्वीपसे उनकी कान्ति अविक प्रखर हो जाती है। पथकी पार्श्वभूमियोंसे बाहरकी ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस हजार योजन है और अवस्थिति मण्डलाकार है। उक्त पर्वतका मण्डल प्रकाश एवं अन्धकार दोनोंसे युक्त रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण सभी ज्योतिष्पुञ्ज इस लोकालोकके भीतरी भागमें प्रकाशित होते हैं। जितने स्थानपर प्रकाश होता है, उतना ही लोक माना गया है। उसके बादकी संज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। 'लोक' धातु आलोकन अर्थात् दिखायी देनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है और न दिखायी पड़नेका नाम अलोक है। भ्रमण करते हुए सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाशरहित)-की सविपर पहुँचते हैं अर्थात् दोनोंका संयोग करते हैं तो उस समयको लोग संध्याके नामसे पुकारते हैं।

उपा और व्युष्टिमें परस्पर अन्तर माना गया है; अर्थात् प्रातःकी उपा एवं संध्याका निशामुख दोनों संधिकालोंमें कुछ अन्तर है। ऋषिगण उपाको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनके भीतर स्मरण करते हैं। एक मुहूर्त तीस कलाका और भीतर स्मरण करते हैं। एक दिनके प्रमाणमें एक दिन पद्धति मुहूर्तका होता है। दिनके प्रमाणमें हास और चृद्धि होती है। उसका कारण संध्या-कालमें एक मुहूर्तकी हास-चृद्धि है, जो सदा बढ़ा-घटा करते हैं। सूर्य विषुव-प्रभृति विभिन्न पथोंसे गमन करते हुए तीन मुहूर्तोंका व्यतिक्रम करते हैं। सम्पूर्ण दिनके पॉच भाग कहे गये हैं। दिनके प्रथम तीन मुहूर्तोंको प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकालके

व्यतीत हो जानेपर तीन मुहूर्तक सगवनामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन मुहूर्तक मध्याह्नकाल रहता है। उस मध्याह्न कालके बाद अपराह्न-कालका स्मरण किया जाता है। पण्डितोंने इसको भी तीन ही मुहूर्तोंका बतलाया है। अपराह्नके बीत जानेपर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायकाल कहते हैं। इस प्रकार पद्धति मुहूर्तोंवाले एक दिनमें ये तीन-तीन मुहूर्तोंके पॉच काल होते हैं। विषुवस्थानमें सूर्यके जानेपर दिनका प्रमाण पद्धति मुहूर्तोंका स्मरण किया जाता है। दक्षिणायनमें दिनका प्रमाण घट जाता है और इसके बाद उत्तरायणमें आनेपर बढ़ जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रातको घटाता है और रात बढ़कर दिनको कम करती है। विषुव शरद और वसन्त ऋतुको माना गया है। जहाँतक सूर्यके आलोकका अन्त होता है, वहाँतकी संज्ञा लोक है और उस लोकके पश्चात् अलोककी स्थिति कही जाती है।

× × ×

ऋषिगण ! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणोंके भ्रमणकी दिव्य कथाको सुनकर ऋषियोंने लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे पुनः पूछा।

ऋषियोंने कहा—सौम्य ! ये ज्योतिर्गण ग्रह, नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्यके मण्डलमें भ्रमण करते हैं ? सभी एक समूहमें मिलकर या अलग-अलग ? कोई इन्हे भ्रमण कराता है अथवा ये स्थिरमें भ्रमण करते हैं ? इस रहस्यको जाननेकी हमें बड़ी इच्छा है, कृपया कहिये ।

सूतजी बोले—ऋषिगण ! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखायी देता हुआ भी यह व्यापार लोगोंको आश्र्य एवं अज्ञानमें डाल देता है। मैं कह रहा हूँ, सुनिये । जहाँपर चौढ़ह नक्षत्रोंमें शिशुमार नामक एक ज्योतिशक्ति व्यवस्थित है, वहाँ

आकाशमे उत्तानपादका पुत्र ध्रुव मेदू (लिङ्ग) के समान एक स्थानमें अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्रगणोंको सूर्य और चन्द्रमाके साथ भ्रमाता है और स्थायं भ्रमण करता है। चक्रके समान भ्रमण करते हुए इसीके पीछे-पीछे सब नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं। वायुमय वन्धनोंसे ध्रुवमे बैधे हुए वे ज्योतिर्निर्ण ध्रुवके मनसे ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिर्थकोंके भेद, योग, कालके निर्णय, अस्ति, उदग, उत्पात, दक्षिणायन एवं उत्तरायणमें रिथन, विपुव-रेखापर गमन आदि कार्य सभी ध्रुवकी प्रेरणापर ही निर्भर करते हैं। इस लोकके जीवोंकी जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीमूत नामक मेघ कहे जाते हैं। उन्हींकी वृष्टिसे सुष्टि होती है।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टिके कर्ता कहे जाते हैं। इस लोकमे होनेवाली वृष्टि, धूप, तुपार, रात-दिन, दोनों संथाएँ, शुभ एवं अशुभ फल—सभी ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवमे इथत जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। सभी प्रकारके जीवोंके शरीरमे जल परमाणुरूपमें आश्रित रहता है। स्थावर-जड़म जीवोंके भस्त्र होते समय वह धुएंके रूपमें परिणत होकर सभी ओरसे निकलता है। उसी धूमसे मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाशमण्डल अध्रमय स्थान कहा जाता है।

अपनी तेजोमयी किरणोंसे सूर्य सभी लोकोंसे जलको ग्रहण करते हैं। वे ही किरणें वायुके सयोगद्वारा समुद्रसे भी जलको खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ग्रीष्म आदि ऋतुके प्रभावसे समय-समयपर परिवर्तनकर जलको अपनी श्वेत किरणोद्वारा उन मेघोंको जल देते हैं। वायुद्वारा प्रचलित होनेपर उन्हीं मेघोंकी जलशाशि वादमें पृथ्वीतलपर गिरती हैं और तदनन्तर छः महीनोतक सभी प्रकारके जीवोंकी सतुष्टि एवं अभिवृद्धिके लिये

१. लौहेकी चहर वा रसीकड़ोंका बना हुआ आवरण वा उसके ऊपर डाला जाता है, 'बर्लथ' कहा जाता है।

२. कई पुस्तकोंमें 'धर्म', पाठ पाया जाता है। परंतु 'धर्म', पाठ अधिक समीचीन है।

सूर्य पृथ्वीतलपर वृष्टि करते हैं। वायुके वैगमे उन मेघोंमें शब्द होते हैं। विज्ञलियाँ अग्निसे उत्पन्न वतलार्यी जाती हैं। 'मिह सेवने' वातुसे गेव शब्द जल छोड़ने थथवा सिंचन करनेके अर्थमें निष्पत्त होता है। जिसमे जल न मिरे, उसे अप्र कहते हैं—(न भ्रश्यते आपो यस्मादसावभ्रः)। इस प्रकार वृष्टिकी उत्पन्नि करनेवाले सूर्य ध्रुवके संरक्षणमें रहते हैं। उसी ध्रुवके संरक्षणमें अवस्थित वायु उस वृष्टिका उपसंहार करती है। नक्षत्रोंका मण्डल सूर्यमण्डलमें वर्द्धित होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अवस्थित सूर्यमण्डलमें वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इनके वाद मैं सूर्यके रथका प्रमाण वतव्य रहा है।

एक चक्र, पाँच अरे, तीन नामि तथा सुवर्णकी छोटी आठ पुष्टियोद्वारा वर्नी हुई नेमि-(जिसपर हाल चढ़ाई जाती है)मे वने हुए तेजोमय र्णाव्रगमी रथ-द्वारा सूर्य गमन करते हैं। उनके रथकी लंबाई एक लाख योजन कही जाती है। जुआ-दण्ड उससे ढूना कहा गया है। वह सुन्दर रथ ब्रह्मने मुख्य प्रयोजनके लिये बनाया है। संसारभरमें वह रथ अनुपम मुन्दर है। सुवर्णद्वारा उसकी रचना हुई है। वह सचमुच परम तेजोमय है। पवनके समान वेगरील चक्रकोकी स्थितिके अनुकूल चलनेवाले अस्त्ररूपधारी छन्दोंसे वह संयुक्त है। वरुणके रथके चिह्नोंसे वह मिलता-जुलता है। उसी अनुपम रथपर चड़वार भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाशमार्गमें विचरण करते हैं।

सूर्यके अङ्ग तथा उनके रथके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग वर्षके अवयवोंके रूपमें कलिपत किये गये हैं। दिन उस एकचक्र सूर्यरथकी नामि है और अरे उनके सबत्सर हैं, छहों ऋतुएँ नेनि कही जाती हैं। रात्रि उनके रथका वर्षय तथा घर्म (धाम) ऊर्ध्वधक्षाके रूपमें कलिपत है।

शूल, जो शत्रुपक्षके आघातसे रथको सुरक्षित रखनेके लिये

चारों युग उस रथके पहियेकी छोर तथा कलाएँ जुएके अप्रभाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वोंकी नासिका तथा क्षण उनके दाँतोंकी पंक्तियाँ हैं। निमेप रथका अनुकर्ष* तथा कला जुएका दण्ड है। अर्थ तथा काम—इस (रथ) के जुएके अक्षके अवयव हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पद्त्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात छन्द अश्वरूप धारणकर वायुवेगसे उस रथको वहन करते हैं। इस रथका चक्र अक्षमे बँधा हुआ है। अक्ष ध्रुवसे संलग्न चक्रके समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजनके बश होकर उस रथका निर्माण क्रहाने किया है। उक्त साधनोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका वह रथ आकाशमण्डलमे भ्रमण करता है। इसके दक्षिण भागकी ओर जुआ और अक्षका शिरोभाग है। चक्रका और जुएमे रशिमका संयोग है। चक्रके और जुएके भ्रमण करते समय दोनों रशिमयों भी मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। वह जुआ और अक्षका शिरोभाग कुम्हारके चक्रकेकी भाँति ध्रुवके चारों ओर परिभ्रमण करता है। उत्तरायणमे इसका भ्रमण-मण्डल ध्रुव-मण्डलमे प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायनमे ध्रुव-मण्डलसे बाहर निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायणमे ध्रुवके आकर्षणसे दोनों रशिमयों संक्षिप्त हो जाती है और दक्षिणायनमे ध्रुवके रशिमयोंके परित्याग कर देनेसे बढ़ जाती हैं। ध्रुव जिस समय रशिमयोंको आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनों दिशाओंकी ओर अस्ती सौ मण्डलोंके व्यवधानपर विचरण करते हैं और जिस समय ध्रुव दोनों रशिमयोंको त्याग देता है, उस समय भी उतने ही परिमाणमे वेग-पूर्वक बाहरी ओरसे मण्डलोंको बेष्टि करते हुए भ्रमण करते हैं।

सूतजी बोले—ऋग्यवृन्द ! भगवान् भास्करका वह रथ महीने-महीनेके क्रमानुसार देवताओंद्वारा अधिरोहित होता है अर्थात् ग्रत्येक महीनेमे देवादिगण इसपर

आरूढ़ होते हैं। इस प्रकार बहुतसे ऋग्यि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथि तथा राक्षसके सूखोके समेत वह सूर्यका वहन करता है।

ये देवादिके समूह क्रमसे सूर्यमण्डलमें दो-दो मासतक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव; पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋग्यि-प्रजापति; वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प; गानविद्यामे विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व; कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ; रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथि; हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलितरूपसे चैत्र तथा वैशाखके महीनोंमे सूर्य-मण्डलमें निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ तथा आषाढ—दो महीनोंमे मित्र तथा वरुण नामक दो देव; अन्ति तथा वसिष्ठ नामक दो ऋग्यि; तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज; मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सराएँ; हाहा तथा हूहू नामक दो गन्धर्व; रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथि; पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य-मण्डलमे निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डलमें अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमे इन्द्र तथा विश्वासन्—ये दो देव; अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋग्यि, एलापत्र तथा शखपाल नामक दो नागराज; विश्वावसु तथा सुपेण नामक दो गन्धर्व; प्रात और रवि नामक दो सारथि; प्रम्लोचनी तथा निम्लोचनी नामकी दो अप्सराएँ; हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब श्रावण तथा भाद्रपदके महीनोंमे सूर्य-मण्डलमे निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतुके दो महीनोंमे अन्य देवागण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूर्णा नामक दो देव; भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि; चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा धृताची नामक दो शुभ लक्षणसम्पन्न अप्सराएँ; सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक दो नागराज, सेनजित् तथा सुपेण नामक दो सारथि तथा नायक चार और बात

* रथके नीचे रहनेवाली पहियेके ऊपर बँधी हुई लकड़ी।

नामक दो राक्षस—ये सब आश्चिन तथा कार्तिक मासमे सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। हेमन्त ऋतुके दो महीनोमें जो देवादिगण सूर्यमें निवास करते हैं, वे ये हैं—अंश और भाग—ये दो देव; कक्ष्यप और क्रतु—ये दो ऋषि; महापद्म तथा कर्कोटक नामक दो सर्पराज; चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक दो गन्धर्व; पूर्वचित्ति तथा उर्वशी—ये दो अप्सराएँ; तक्ष तथा अरिष्टनेमि नामक दो सारथि एवं नाथक विश्वृत तथा सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सब मार्गशीर्ष और पौषके महीनोमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। तदनन्तर शिशिर ऋतुके दो महीनोमें त्वया तथा विष्णु—ये दो देव; जमदग्नि तथा विश्वामित्र—ये दो ऋषि; कादवेय तथा कम्बलाश्वतर—ये दो नागराज; सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र—ये दो गन्धर्व; सुन्दरतासे मनको हर लेनेवाली निलोतमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ; ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महावल्वान् सारथि; द्रगोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं।

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रमसे दो-दो महीनेतक सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। ये वारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथि, नाग और अप्सरा)के जोड़े इन स्थानोंके अभिमानी कहे जाते हैं और ये सब वारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेजसे सूर्यको उत्तम तेजोवाला बनाते हैं। ऋषिगण अपने वज्राये हुए गेय वाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने-अपने नृत्यों तथा गीतोंसे सूर्यकी उपासना करती हैं। विद्यामे परम प्रवीण सारथि यशस्वी गृहणग सूर्यके अश्वोकी ढोरियाँ पकड़ते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डलमें द्रुतगतिसे इधर-इधर ढौड़ते तथा राक्षसगण पीछे-पीछे चलते हैं। इनके अतिरिक्त वालखिल्य ऋषि उदयकालसे सूर्यके समीप अवस्थित रह कर उन्हे अस्ताचलको प्राप्त करते हैं। इन उपर्युक्त देवताओंमें जिस प्रकारका पराक्रम, तपोवल, योगवल,

धर्म, तत्त्व तथा आर्तिक वल रहता है, उसी प्रकार उनके तेजस्सपे ईधनसे समृद्ध होकर गृह्य अविकानिक तेजस्सी रूपमें तपते हैं। ये गृह्य अपने तेजोवलसे सामन जीवोंके अकल्याणका प्रशमन करते हैं। मनुष्योंकी आपदाको इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंसे दूर करते हैं और कहीं-कहींपर शुभाचरण करनेवालोंके अकल्याणको हरते हैं। ये उपर्युक्त सप्तक गृह्यके साथ ही अपने अनुचरों-समेन आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं। ये देवाण्य दयावश प्रजावर्गसे तपस्या तथा जप करते हुए उनकी रक्षा करते हैं तथा उनके दृढ़यको प्रसन्नतासे पूर्ण कर देते हैं। अतीतकाल, भविष्यकाल तथा वर्तमान-कालके स्थानाभिमानियोंके ये स्थान विभिन्न मन्त्रन्तरोंमें भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार नियमपूर्वक चौदहवी संस्थामें जोड़े रूपमें वे सप्तक देवादिगण गृह्यमण्डलमें निवास करते हैं और चौदह मन्त्रन्तरका क्रमपूर्वक विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षा ऋतुमें अपनी किरणोंका कमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करते हुए प्रतिदिन देवता, पितृ तथा मनुष्योंको नृस करते हैं और प्रनिक्षण भगव रहते हैं। देवाण्य दिन-दिनके क्रमसे शुरु एवं कृष्णपक्षमें महीने-भर कालश्वयके अनुसार उस मीठे अमृतका पान करते हैं, जो सुवृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोद्धारा रक्षित रहता है। सभी देवता, सौम्य तथा कव्यादि पितराण गृहोंके उस अमृत-रसका पान करते हैं और कालनन्तरमें सुवृष्टि करते हुए संसारको तृत करते हैं। मानवाण्य गृह्यकी किरणोद्धारा वहायी गयी तथा जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा प्रवर्धित ओप्रधियोंसे एवं अन्नसे क्षुधाको अपने वशमे करते हैं। सूर्यकी उस सचिन अमृतराशिसे देवताओंकी तृप्ति पद्म दिनोतक तथा स्वाधाम्य पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। वृत्तिजनित अन्नराशिसे

मनुष्यगण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणोद्धारा सबका पालन करते हैं।

सूर्य अपने उस एकचक्र रथद्वारा शीघ्र गमन करते हैं और दिनके व्यतीत हो जानेपर उन्हीं विषमसंख्यक (सात) अश्वोद्धारा अपने स्थानको पुनः प्राप्त करते हैं। हरे रंगवाले अपने अश्वोंसे वे बहन किये जाते हैं और अपनी सहस्र किरणोंसे जलका हरण करते हैं एवं तृप्त होनेपर हरित वर्णवाले अपने अश्वोंसे संयुक्त रथपर चढ़कर उसी जलको पुनः छोड़ते हैं। इस प्रकार अपने एक चक्रवाले रथद्वारा दिन-रात चलते हुए सूर्य सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रोंसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलका भ्रमण करते हैं। उनका वह अनुपम रथ अश्वरूपधारी छन्दोंसे युक्त है, उसीपर वे समासीन होते हैं। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, एक बार जोते गये, इच्छानुकूल चलनेवाले तथा मनके वैगंके समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे हैं, उन्हे थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्तिशाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। ये प्रतिदिन अपने निर्धारित परिधि-मण्डलकी परिक्रमा बाहर तथा भीतरसे करते हैं। युगके आदिकालमें जोते गये वे अश्व महाप्रलयतक सूर्यका भार बहन करते हैं। वालखिल्य आदि ऋषिगण चारों ओरसे परिभ्रमणके समय सूर्यको रात-दिन धेरे रहते हैं। महर्षिगण स्वरचित स्तोत्रोद्धारा उनकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओंके समूह सर्गीत तथा नृत्योंसे उनका सत्कार करते हैं। इस प्रकार वे दिनमणि भास्कर पश्चियोंके समान वैगाशाली अश्वोद्धारा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रोंकी वीथियोंमें विचरण करते हैं। उन्हींकी मौति चन्द्रसा भी भ्रमण करते हैं।

ऋषियोंके ज्योतिष्पुज्जके सम्बन्धके प्रश्नमें सूतजीने कहा—आदिम कालमें यह समस्त जगत् रात्रिकालमें अन्धकारसे आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अव्यक्त योनि ब्रह्मजीने जगत्की किसी भी वस्तुमें प्रकाश

नहीं किया था। इस प्रकार (युगादिमें) चाँच पदार्थोंके शेष रह जानेपर वह जगत् ब्रह्मद्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयं उत्पन्न होनेवाले लोकके परमार्थसाधक भगवान् ने खद्योत्तरूप धारणकर इस जगत्को व्यक्तरूपमें प्रकट करनेकी चिन्ता की और कल्पके आदिमें अग्निको जल और पृथ्वीमें मिली हुई जानकर प्रकाश करनेके लिये तीनोंको एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकारसे अग्नि उत्पन्न हुई।

इस लोकमें जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियोंको पकानेवाली है, वह पार्थिव (पृथ्वीके अंशसे उत्पन्न) अग्नि है। जो यह सूर्यमें अधिष्ठित होकर तपती है, वह 'शुचि' नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थोंको पकानेवाली अग्नि 'विद्युत्'की अग्नि कही जाती है। उसे 'सौम्य' नामसे भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्निका उपकारक ईधन जल है। कोई अग्नि अपने तेजोंसे बढ़ती है और कोई विना किसी ईधनके ही बढ़ती है। काष्ठके ईधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निका निर्मल्य नाम है। यह अग्नि जलसे शान्त हो जाती है। भोजनादिको पकानेवाली जठराग्नि ज्वालाओंसे युक्त, देखनेमें सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि इवेत मण्डलमें ज्वालारहित एवं प्रकाशविहीन है। सूर्यकी ग्रामा सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिकालमें अपने चतुर्थ अंशसे अग्निमें प्रवेश करती है। इसी कारण रात्रिमें अग्नि प्रकाशयुक्त हो जाती है। प्रातःकाल सूर्यके उदित होनेपर अग्निकी उष्णता अपने तेजके चतुर्थ अंशसे सूर्यमें प्रवेश कर लेती है, इसी कारण दिनमें सूर्य तपता है। सूर्य और अग्निके प्रकाश, उष्णना और तेज—इन सभीके परस्पर प्रविष्ट होनेके कारण दिन और रात्रिकी शोभा-वृद्धि होती है।

पृथ्वीके उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिणभागमें सूर्यके उदित होनेपर रात्रि जलमें प्रवेश करती है, इसीलिये दिन और रात—दोनोंके प्रवेश करनेके कारण जल दिनमें लाल वर्णका दिखायी देता है। पुनः सूर्यके अस्त

हो जानेपर दिन जलमे प्रवेश करता है, इसीलिये रातके समय जल चमकविशिष्ट तथा श्वेत रंगका दिखायी पड़ता है। इस क्रमसे पृथ्वीके अर्ध दक्षिणी तथा उत्तरी भागमे सूर्यके उदय तथा अस्तके अवसरोपर दिन-रात्रि जलमे प्रवेश करती हैं।

यह सूर्य, जो नप रहा है, अपनी किरणोंसे जलका पान करता है। इस सूर्यमे निवास करनेवाली अग्नि सहस्र किरणोवाली तथा रक्त कुम्भके समान लाल वर्णकी है। यह चारों ओरसे अपनी सहस्र नाड़ियोसे नदी, समुद्र, तालाब, कुँआ आदिके जलोको ग्रहण करती है। उस सूर्यकी सहस्र किरणोसे शीत, वर्षा एवं उष्णताका निःस्ववण होता है। उसकी एक सहस्र किरणोमें चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृतिवाली तथा वृष्टि करनेवाली स्थित हैं। चन्दना, मेथ्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना—सूर्यकी ये किरणें वृष्टि करनेवाली हैं। हिमसे उत्पन्न होनेवाली सूर्यकी तीन सौ किरणे कही जाती हैं, जो चन्द्रमा, ताराओं एवं ग्रहोद्धारा पी जायी जाती हैं। ये मध्यकी नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्रादिनी नामक किरणे हैं, जो नामसे शुक्ला कही जाती हैं। उनकी संख्या भी तीन सौ हैं। वे सभी घामकी सृष्टि करनेवाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरोका पालन करती हैं। ये किरणें मनुष्योंको ओपवियोद्धारा, पितरोको स्वधाद्वारा एवं समस्त देवताओंको अमृतद्वारा संतुष्ट करती हैं।

सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओमे तीन सौ किरणोद्धारा शनैः-शनैः: तपते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद् ऋतुओमें चार सौ किरणोसे वृष्टि करते हैं तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओमे तीन सौ किरणोसे वर्षा गिराते हैं। ये ही सूर्य ओपवियोंसे तेज धारण करते हैं, स्वधामे सुधाको धारण करते हैं एवं अमृतमे अमरत्वकी वृद्धि करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी वे सहस्र किरणें तीनों लोकोंके तीन मुख्य प्रयोजनोंकी साधिका होती हैं।

ऋतुको प्रात होकर सूर्यका मण्डल सहस्रों भागोंमें पुनः प्रसृत हो जाता है। इस प्रशार वह मण्डल शुक्ल-तेजोमय एवं लोकसंज्ञक कहा जाता है।

नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा आदिकी प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति-स्थान सभी सूर्य हैं। चन्द्रमा, तारागण एवं ग्रहगणोंको सूर्यसे ही उत्पन्न जानना चाहिये। सूर्यकी सुपुम्ना नामक जो रश्मि है, वही क्षीण चन्द्रमाको बढ़ाती है। पूर्व दिशामें हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रोंको उत्पन्न करनेवाली है। दक्षिण दिशामें विश्वकर्मा नामक जो किरण है, वह वुधको संतुष्ट करती है। पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, वह शुक्रकी उत्पत्तिस्थली कही गयी है। संवर्धन नामक जो रश्मि है, वह मंगलकी उत्पत्ति-स्थली है। छठी अश्वभू नामक जो रश्मि है, वह वृहस्पतिकी उत्पत्तिस्थली है। सुराट्नामक सूर्यकी रश्मि शनैश्चरकी वृद्धि करती है। अतः ये ग्रहगण कभी नष्ट नहीं होते और नक्षत्र नामसे स्मरण किये जाते हैं। इन उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र अपनी किरणोद्धारा सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य उनका क्षेत्र ग्रहण करता है, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है। इस मर्यादोक्से उस लोकको पार करनेवाले (जानेवाले) सत्कर्मपरायण पुरुषोंके तारण करनेसे इनका नाम तारका पड़ा और श्वेत वर्णके होनेके कारण ही इनका शुक्रिका नाम है। दिव्य तथा पार्थिव सभी प्रकारके वंशोंके ताप एवं तेजके योगसे ‘आदित्य’ यह नाम कहा जाता है। ‘स्ववति’ धातु स्वव क्षरण (जरने) अर्थमें प्रयुक्त कहा गया है, तेजके ज्ञानेसे ही यह सविताके नामसे स्मरण किया जाता है। ये विवस्यान् नामक सूर्यदेव अदितिके आठवें पुत्र कहे गये हैं।

सहस्र किरणोवाले भास्करका स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्निके समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजोमय है। सूर्यका विष्वस्म-मण्डल नव सहस्र योजनोंमें विस्तृत कहा है और इस प्रकार भास्करका पूर्ण मण्डल विष्वस्म-मण्डलसे तिगुना कहा जाता है।

पश्चपुराणीय सूर्य-संदर्भ

[‘पश्चपुराण’के इस छोटे-से संकलित परिच्छेदमें भगवान् सूर्यकी महिमा एवं उनकी संक्षान्तियें दानका माहात्म्य, उपसत्ता और उसके फल-वर्णनके साथ ही भद्रेश्वरकथा भी दी जा रही है।]

भगवान् सूर्यका तथा संक्षान्तियें दानका माहात्म्य

बैश्यपायनजीने भूषा—विग्रह ! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है ? इसका क्या प्रभाव है ? तथा किरणोंके इन खामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है ? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इनकी ही सदा धाराधना किया करते हैं।

ध्यासजी बोले—बैश्यपायन ! यह क्रदके खखृपसे प्रकट हुआ क्षेत्रका ही उत्तर्ण तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। यह धर्म, धर्ष, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुल पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। इसे देखकर इसकी प्रखर रसियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समख्य बड़ी-बड़ी नदियों और नद धादि सूखने लगे। उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके म्रास बनने लगे। मानव-समुदाय भी शोकसे आतुर हों उठ। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्मजीके पास गये और उनसे यह सारा घाट कह सुनाय। तब ब्रह्मजीने देवताओंसे कहा—‘देवाण। यह तेज आदिद्वाके खखृपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस क्रहके ही समान है। इसमें और आदिद्वामें तुम अन्तर न सगझना। ब्रह्मसे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज आदि जितने भी प्राणी

हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्यदेवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका छत्यादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी धाराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर ढाये हैं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलखखृप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज खर्म और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतल्यपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके सर्वसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे छुट्ठ हो जाते हैं।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोवाती (कत्साई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे भी मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्य-को सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अन्धे, दारिद्र, दुखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके खखृपका साक्षात्कार किया जाता है, किंतु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूतता ब्रजेत्। (७५। १६)

देवता बोले—ब्रह्मन् । सूर्यदेवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना करनेकी नात तो दूर है, इनका दर्शन ही प्रक्यकालकी आगके समान प्रतीत होता है जिससे कभी भूतलके सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये । समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये । हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सद्गुर सकते हैं । इसलिये धाप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें । सब मनुष्य भृत्यपूर्वक सूर्यदेवती आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें ।

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओंके बचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके खामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी रुक्ति करने लगे ।

ब्रह्माजी योदे—देव ! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्र-खलूप और निरामय हो । तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो । तुम्हारी ओर देखना कठिन है । तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो । सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है । तुम्हारे श्रीविप्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं । तुम्हींसे अन्न आदि-का पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है । देव ! तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो । तुम्हारे विना समस्त संसार-का जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता । तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो । तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है । भगवन् ! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है । शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है । तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है । तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो । रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है । इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो । प्रभो ! तीयों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण

तुम्हीं हो । तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो । सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रथक, अन्धकार, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रिताके दुःखों-का निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो । इस लोक तथा परलोकमें सबके श्रेष्ठ बन्धु एवं सब दुष्ट जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो । तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो ।

आदित्यने कहा—महाप्राप्त पितामह ! आप विश्वके स्वामी तथा स्थान हैं, शीघ्र अपना मनोरथ बताइये । मैं उसे पूर्ण करूँगा ।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर ! तुम्हारी किरणे अन्यन्त प्रखर हैं । लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं; अतः जिस प्रकार उनमें दुष्ट मृदुता आ सके, वही उपाय करो ।

आदित्यने कहा—प्रभो ! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं, अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खराढ़कर कम कर दें ।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छोट दिया । उस छोटे हुए तेजसे ही भगवान् श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बन गया । अमोघ यमदण्ड, शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड़, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ । ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुलतीसे तैयार किया था । सूर्यदेवती एक हजार किरणें शेष रह गयीं, वाकी सब छोट दी गयीं । ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया ।

कल्यापमुनिके अंश और अदिनिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए ।

भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु-गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं । ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं । विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी वहीं विचरण करते हैं । सूर्य वारह स्वरूप धारण करके वारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं । उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं ।

मुने । संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बताते हैं । धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको पडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है । पडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है । दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है । मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये । इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है । उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है । विष्णुपदीनामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है । दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है । शीतकाल-में रुद्धिदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता । तुला-दान और शत्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय होता है । माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है । जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मढ़ाकर काँसिके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके

लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है । जो उक्त तिथियोंको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियों-सहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है । ब्राह्मण-को भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती । माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर-तिथि कहते हैं । उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है । अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकोंमें अनन्त फल देनेवाले हैं ।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे । इसी समय स्वन्दने उनके पास जाकर पृथ्वीपर मस्तक टेक उन्हे प्रणाम किया और कहा—‘नाथ ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ ।’

महादेवजीने कहा—वेदा ! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल छलोंसे अर्थ दे और रातको हविष्यान्त भोजन करे । ऐसा करनेसे वह कभी खांसे भ्रष्ट नहीं होता । रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है । वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और सर्व तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है । यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिनका किया हुआ व्रत, पूजन और जप—ये सभी अक्षय होते हैं । शुक्लपक्षके रविवारको महापति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । हाथमें छल लेकर लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और

छलोंको सूँधकर ईशान कोणकी और फैक दे। इसके बाद 'आदित्याय विद्महे भास्करय धीमहि तक्षो भानुः अचोदयात्'—इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर तुम्हें उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्ट और केले आदिके सुन्दर फल धर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पथात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम 'अञ्जलि' और दूसरीका नाम 'घेनु' है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदमें नाना स्वप्न धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मिश्र, पौषमें सलातन विष्णु, माघमें वरण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ऐष्टमें इन्द्र, थापाढमें रवि, श्रावणमें गमति, भाद्रपदमें यम, आष्टमिमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका स्वप्न अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देवीप्रमाण है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

* ॐ नमः चहस्त्रबाहवे आदित्याय नमो नमः।
नमस्तिमिरनागाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च व्रह्मा त्वं च विष्णु रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निस्त्वर्वभूतेषु बायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वमूर्तेषु न हि किञ्चित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥

अब मैं सददो प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सूर्यके छत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों)से ब्रह्मोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। अग्नकारका विनाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रामिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुओं नमस्कार है। भगवन्। तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं इन हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुस्त्रपसे विराजमान हो, तुम्हें बारंबार प्रणाम है।

तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी कस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देवधारियोंके भीतर स्थित हो। * इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलक्षित गदायों तथा स्वर्ग आदिके भोगको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूरा, स्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिरारि—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन ! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे-दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। उनके नाम हैं—तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्तश्ववाहन, पश्चहस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजु, सामग,

नमस्ते पश्चहस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वमग्निस्त्वर्वभूतेषु बायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वदेहे व्यवस्थितः॥

(—७६। ३१-३४)

कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय। तुम यत्नपूर्वक सुनो। सूर्यका नामस्मरण सब पापोंको हरनेवाला और शुभद है। महामते। आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी सदेह नहीं करना चाहिये। 'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति देनेवाले और सम्पूर्ण विज्ञोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश कर डालते हैं।

अब भगवान् भास्करके मूलमन्त्रका वर्गन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं एवं प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां हाँ सः सूर्याय नमः।’ इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो कोग अभज्ज, संतानहीन, पार्खडी और छैकिक व्यवहारोंमें जासक द्दों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। संध्या शौकृदर्शनमें मूढपृष्ठन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्लूर महोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। बत्स। दूसरे-दूसरे अनेक शास्त्रों और लहूतोंपरे विस्तृत मन्त्रोंकी कथा आवश्यकता है, इस सूर्यमन्त्रका जप ही ही हृत मंजारस्ती शान्ति तथा सम्पूर्ण क्षमार्थीकी दिव्यि घर्त्ववाला है।

द्वैवता और ग्रीष्मणीकी निर्वाचनी वर्तनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका

पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको वन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त होकर संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमे भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका वर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे सभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सङ्घवपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके वार्ये हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया; किंतु उससे कोइका चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—‘विग्राण। मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें लिन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। यतः मैं किसी महान् पुण्यकेवर्तमें जावार अपने शारीरका परित्याग करना चाहता हूँ।’

विग्राण बोले—महाराज। शाप धर्मशील और शुद्धिमान् हूँ। यदि शाप शपने राष्ट्रका परित्याग कर देंगे तो यह सारी ग्राजा धृष्ट ही जायगी। इसलिये शापको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं, वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

राजाने पूछा—विप्रवरो ! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको संतुष्ट कर सकूँगा ?

ब्राह्मण घोले—राजन् ! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये । ऐसा करनेसे आप भयझक्कर पापसे मुक्त होकर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे ।

यह सुनकर सम्राट् ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की । वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्ध्य, अक्षत, जपापुण्ड्र, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिन्दूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे । राजा गूलरके पात्रमें अर्ध्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे । अर्ध्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खडे रहते थे । उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग एवं अन्य लोग भी रहा करते थे । वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्ध्य देते थे ।

सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठान किया । क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया । इस प्रकार उस भयझक्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया । सब लोग कभी हविष्यान्त खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे । इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्गोंके द्वारा पूजित होकर इसका प्रचार हुआ है ।

भगवान् सूर्य बहुत संतुष्ट हुए और कृपापूर्वक राजाके पास आकर घोले—‘राजन् ! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो । सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ ।’

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन् । यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों ।

सूर्य घोले—राजन् । तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, खियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी शुद्ध होकर कल्पपर्यन्त मेरे दिव्य धाममें निवास करें ।

व्यासजी कहते हैं—ये कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहाँ अन्तर्दित हो गये । तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे । वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे । इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतों-का पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये । जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह सद्गती भौति इस पृथ्वीपर पूजित होता है । जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था । भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है ।

सूर्य-पूजाका फल

विसन्ध्यमर्च येत् सूर्यं सरेद् भक्त्या तु यो नरः । न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन ॥

(भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—) हे अर्जुन ! जो मनुष्य प्रातः, मध्याह और सायंकालमें सूर्यकी अर्धादिसे पूजा और स्मरण करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें कभी दरिद्र नहीं होता—सदा धन-धान्यसे समृद्ध रहता है । (—आदित्यद्वद्य)

भविष्यपुराणमें* सूर्य-संदर्भ

[भविष्यपुराणके चार पर्व हैं—(१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व और (४) उत्तर पर्व। परंतु ब्राह्मपर्वके ही ४२वें अध्यायसे सूर्य-संदर्भ प्रारम्भ होता है और १४० अध्यायतक घलता जाता है। इस प्रत्यरालमें सूर्य-सम्बन्धी विविध शातव्य विषय हैं, जिनमें सुख्यतः ये हैं—श्रीसूर्यनारायणके नित्याचर्चन, नैमित्तिकाचर्चन और व्रतोद्यापन-विधान, व्रतका फल, माघादि, ज्येष्ठादि, आश्विनादि वार-चार महीनोंमें सूर्य-पूजनका विधान और रथसप्तमीका फल, सूर्यरथका वर्णन, रथके साथके देवताओंका कथन, गमन-वर्णन, उदय-अस्तका भेद, सूर्यके गुण, सूर्यतुओंमें उनका पृथक्-पृथक् वर्णन, अग्निषेकका वर्णन, रथयात्राके प्रथम दिनका कृत्य, रथके अश्व, सारथि, छत्र, खज्जा आदिका वर्णन तथा नगरके चार द्वारोंपर रथके ले जानेका विधान, रथाङ्कके अङ्गभङ्ग होनेपर शान्त्यर्थ ग्रह-शान्ति, सर्वदेवोंके दलिद्वयका दृश्यन, रथयात्राका फल, रथसप्तमी-व्रतका विधान और उद्यापन-विधि, राजा शतानीककी सूर्य-स्तुति, तण्डीलो सूर्यका उपदेश, उपवास-विधि, पूजन-फलके कथनपूर्वक फलसप्तमीका विधान, सूर्य भगवानका परज्ञाल-रूपमें वर्णन, फल चढ़ाने, मन्दिर-भार्जन करने आदि तथा सिद्धार्थ-सप्तमीका विधान, सूर्यनारायणका स्तोत्र और उसके पाठका फल, जम्बूदीपमें सूर्यनारायणके प्रधान श्यानोंका कथन, साम्बके प्रति दुर्बासा सुनिका शाप, अपनी रानियों और अपने पुत्र साम्बको श्रीहृष्णका शोप, सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, श्रीनारदजीसे साम्बके पूछनेपर उनके द्वारा सूर्यनारायणका प्रभाव-वर्णन, सूर्यकी उत्पत्ति, किरणोंका वर्णन, उनकी व्यापकताका कथन, सूर्यनारायणकी दो आर्यों और संतानोंका वर्णन, सूर्यको गणाय और उनकी प्रदक्षिणा करनेका फल, आदित्यवारका कल्प, दारह प्रकारके आदित्यवारोंका दृश्यन, बग्जनमाला आदित्यवारका विधान और फल, आदित्याभिसुख वारका विधान, सूर्यके उपचार और वर्णणका फल, सूर्य-मन्दिरमें पुराण-बाचनेका महत्व, सूर्यके स्नानादि करनेका फल, जया सप्तमी, उपन्ती सप्तमी आदिका विधान और फल-कथन, सूर्योपासनाकी आवश्यकता, सप्तमी व्रतोद्यापनकी विधि और फल, मार्त्षसप्तमी आदिका विधान, मन्दिर वनवानेका फल, सूर्यभक्तोंका प्रभाव, वृत-दुर्घटे सूर्याभिषेकका फल, मन्दिरमें दीपदानका माहात्म्य, वैवस्त्रतके लक्षण और सूर्यनारायणकी यद्विमा, सूर्यनारायणके उच्चम रूप वनानेकी कथा और उनकी स्तुति, पुनः स्तुति और उनके परिवारका वर्णन, सूर्यगुण एवं व्योनका लक्षण, इदं और लोकोंका वर्णन, साम्बकृत सूर्यके आराधन और स्तुति, सूर्यनारायणका एकविश्वासि लागात्मक स्तोत्र, चन्द्रभागा नदीसे साम्बको सूर्यनारायणकी प्रतिमा प्राप्त होनेका चूतान्त, प्रतिमापिधान और सूर्यनारायणका सूर्यदेवमयत्व-प्रतिपादन, प्रतिष्ठा-सुखर्त्ता, मण्डप-विधान, सूर्य-शतिष्ठा वरनेका विधान एवं फल, सूर्य-नारायणको अर्चय और धूप देनेका विधान, उल्लेख मन्त्र और फल, सूर्य-मण्टलका वर्णन और १७७ श्लोकोंका प्रसिद्ध आदित्यहृदय अनुस्यूत है।]

भविष्य किंवा भविष्योत्तरपुराणमें सूर्य-सम्बन्धी लिदिष्ट विषयोंका-विशेषतः व्रतादि-भाषात्मयका प्राचुर्य है; किंतु यहाँ स्थानाभावके कारण कुछ सुख्य विषय ही संचयित किये गये हैं, यथा—सप्तमीकल्प-वर्णनके प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संचाद, आदित्यके नित्याराधनकी विधि तथा रथसप्तमी-माहात्म्यका वर्णन, सूर्य-योग माहात्म्यका वर्णन, सूर्यके विराटरूपका वर्णन, आदित्यवारका माहात्म्य, सौररथ्यमकी महिमाका वर्णन और ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुतिका संक्षिप्त संकलन है।]

*उपलब्ध भविष्यपुराण मिथित श्लोकोंसे भरा पूर्युङ्काय है जिसकी नामदीय (१ | १००) मत्स्य (५३ | ३०-३१) और अग्नि (२७२ | १२) मे दी हुई अनुक्रमणी पूर्णतः सगत नहीं होती। पिर भी आपस्तम्भमें इसके उदरणसे इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। वायुपुराण (१ | २६७) और वाराहपुराणमें भी भविष्यके अनेक उल्लेख मिलते हैं। वाराहपुराणके उल्लेखसे साम्बद्धारा इसके प्रति सक्षार और सूर्य-मूर्तिकी स्थापनाकी बात अनुमोदित होती है।

सप्तमीकल्पवर्णन-प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद

वासुदेवने कहा—साम्ब! समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते। अनुमान और आगमोंके द्वारा अन्य सहस्रों देवताओंका अस्तित्व सिद्ध होता है। साम्बने कहा—जो देवता नेत्रोंके दृष्टिगत और विशिष्ट धर्मीष्टका प्रदान करनेवाला हो, उसी देवताके विषयमें पहले मुझे बताइये। इसके बाद अन्य देवताओंके विषयमें आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं, जो इस समस्त जगत्के नेत्र और दिनकी सृष्टि करनेवाले हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता और अन्त-समयमें इन्हींमें यह विलीन हो जाता है। वृत्तादि लक्षणवाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अनल, शक्ति, प्रजापति, समस्त भूः-भुवः-स्वर्लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और अखिल भूतोंका समुदाय है, इन सभीका हेतु सर्व एक सविता ही है। इन्हींकी इच्छासे सचराचर यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींकी इच्छासे यह जगत् स्थिर रहता तथा अपने अर्थमें प्रवृत्त भी हुआ करता है। इनके प्रसादसे ही यह लोक सचेष्ट होता है। इनके उदय होनेपर सभी उदीयमान तथा अस्त होनेपर अस्त होते हैं; क्योंकि जब ये अद्यत्य होते हैं तो कुछ भी व्याख्या दिलायी नहीं देता। तापर्य यह है कि ये सम्पूर्णसे घिन्द ही हैं। इतिहास और प्राचीमोंमें इन्हें 'हरिहरना' यात्रावेक्षण गाथा है।

“है वै अस्तापद्मलौ षट्ठौ खाते हीं त्रौ अष्ट्वौ हैरी हैं। इतरं पर दिल्ल है कि इन्होंने पहै कोई देवता न है,

न हुआ है और न आगे कभी भविष्यमें होगा ही। जो कोई भी इनकी उपासना प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें करता है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है।

जो विद्वान् व्यक्ति मण्डलमें स्थित इन देवतों अपनी वृद्धिके द्वारा अपने देहमें व्यवस्थित देखता है, वस्तुतः वही देखता है। जो मनुष्य इस प्रकार सम्यक्त्यापसे सूर्यका ध्यान करके पूजा, जप और हवन करता है, वह समस्त अमीष कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और धर्मध्यजके सानिध्यको प्राप्त कर लेता है। अतः तुम यदि अपने दुःखोंका अन्त करना चाहते हो थोर इस लोकमें सुखोपभोग करनेके अभिलाप्ति हो तथा परलोकमें शाश्वती मुक्ति अर्थात् संसारके जन्म-भरणके आवागमनसे मुक्ति पाना चाहते हो तो अर्कमण्डलमें स्थित अर्क अर्यात् सूर्य भगवान्की आराधना करो। इनकी आराधनासे तुमको आश्चार्यिक, आविदेविक और आविभौतिक दुःख कदापि नहीं होगे। जो पुरुष भगवान् दिवावत्रकी शरणको प्राप्त हो गये हैं, उनको कोई भी भय नहीं होता है। उन सूर्यदेवके उपासक भक्तोंको इस लोकमें और परलोकमें—दोनों जगह निर्वाध सुख प्राप्त होता है। शरीराखारियोंके लिये इससे उत्तम अन्य कोई भी हित प्रदान करनेवाला उपाय नहीं है।

आदित्यके नित्याराधन-विधिका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यकी नित्याराधन-विधि तथा माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—‘साम्ब! अब हम तुम्हें धर्मकेतुके उत्तम अचनकी विधि बताते हैं। यह विधान सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला, प्राप्यप्रद एवं दिनों तथा पापोंका अपहरण करनेवाला है। सबसे पहले सूर्यके मन्त्रोऽवाश स्त्राम तदके फिर छाड़ी कर्त्त्वैक्षण्य सगवान् भास्तरका अजन एवं अर्थमें दूरनों चाहिये।

० भगवान् सूर्यके अनेक मन्त्र हैं, परंतु यहाँ नाम-सन्नन् ॐ सूर्याय नमः अथवा ॐ वृणिः सूर्याय नमः को प्रयुक्त चाहिये।

स्तानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे और वस्त्रोका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन करके सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके उसी मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका जप करे और अपने हृदयमें आत्मस्वरूप उनका ध्यान करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर आर्कातनुका यजन करे। फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक—इन तीनों प्राणायामोंकी क्रियाओंको करे। तत्पश्चात् ओकारद्वारा कायादि सम्पूर्त समस्त दोषोंका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, माहेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओंमें यथाक्रम वारुण जलसे अपने किलिवप (पाप)का नाश करे। वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओंके द्वारा यथाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर विशुद्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क(सूर्य)को प्रणाम करे और उसीके द्वारा पञ्चमूलमय इस परदेहका सञ्चिन्तन करे। सूक्ष्म तथा स्थूलको एवं अक्षोंको अपने स्थानोंपर प्रकलिप्त करके हृदय आदिमें समन्वयक अङ्गोंका विन्यास करे। जैसे— ‘ॐ ख्य ख्याहा हृदये,’ ‘ॐ अर्वाय शिरसि,’ उत्कायै ख्याहा शिखायायस्,’ ‘ॐ यै कवचाय हुम्,’ ‘ॐ खां अङ्गाय यद्।’ इसके अनन्तर मन्त्र-कर्मकी सिद्धिके लिये तीन बार जल-मन्त्रका जप करने और उस मन्त्रसे स्तानके हृदयोंका सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिके द्वारा भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये।

इन्द्र-सूर्य-साहात्यका धर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यजी हौमिरीका धारापधका तथा रथ-सप्तमीके माहात्यका धर्णन किया जाता है। भगवान् दासुदेवने कहा—इन्द्रे पञ्चात् मैं वैमित्तिक आराधनका विषय सक्षेपमें बतलाता हूँ।

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये खण्डवेष्टकोंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फालुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोंमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमे धाता इन्द्रका तथा उषेष्ठमें रविका, आपाढ़ और श्रावण मासमें नमका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे वनी अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ला सप्तमीमें महा-सप्तमी-त्रतके माहात्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुलनायक ! माघ मासके शुक्रपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-मुक्त रहना कहा गया है। हे सुत्रत ! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और सप्तमी तिथियोंमें उपवासका विधान कहते हैं (इस विषयमें विविध मत हैं)। षष्ठीया सप्तमीमें जिसने उपवास किया है, उसे भास्कर भगवान्की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। हे सुत्रत ! भास्करका अर्चन रक्त चन्दन तथा करबीरके पुष्पोंसे करना चाहिये। हे महान् बाहुओं-वाले ! गुग्गुल और संयावसे देवदेवेश भास्कर—रविका पूजन करे। इसी प्रकार माघ आदि चार मासोंमें रविका पूजन करना चाहिये। अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य भी प्राशन करे। आत्माकी शुद्धिके लिये गोमय-(गोवर-) से त्वान करनेका ही विधान है। त्राल्यांको धूपनी धूषिको धूषुकाद भौजन भी कराना चाहिये।

उषेष्ठ आदि भास्त्रमें रथैत चन्दने शोलाविहित है। उत्तराय गन्धवाले पुष्प भी रथैत होने चाहिये। कृष्ण दगुरुका धूप तथा नैवेद्यके लिये पांयस हो। हे महामते ! उसी

देवसमर्पित नैवेद्यकी वस्तुओंमें जो पायस है, उससे ब्राह्मणोंको पूर्ण तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिये । हे पुत्र ! पश्चगव्यका प्राशन और उसीसे स्नान भी कराना चाहिये । कार्तिक आदि मासोंमें अगस्त्यके पुष्प तथा अपराजित धूपके द्वारा पूजन करना चाहिये । नैवेद्यके स्थानमें गुड़के बनाये हुए पूरे तथा ईखका रस कहा गया है । हे तात ! उसी समर्पित नैवेद्यद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । कुशोदकका प्राशन करे और शुद्धिके लिये स्नान भी कुशोदकसे ही करे । हे महान् मतिवाले ! तृतीय पारणके अन्तमें माघ मासमें भोजन और दान दुगुना कहा गया है । विद्वान् पुरुषोंके द्वारा शक्तिके अनुसार देवदेवकी पूजा करनी चाहिये । हे पुत्र ! रथका दान और रथयात्रा भी करनी चाहिये । हे पुत्र ! रथाहा अर्थात् रथके नाम-वाली सप्तमीका यह वर्णन किया गया है । यह महासप्तमी विद्यात है । यह महान् अभ्युदय प्रदान करनेवाली है । इस दिन मनुष्य उपवास करके धन, पुत्र, कीर्ति और विद्याकी प्राप्ति कर समस्त भूमण्डलको प्राप्त कर लेता है और चन्द्रमाके समान अर्चि (कान्ति)-वाला हो जाता है ।

सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें सूर्ययोगके माहात्म्यका वर्णन किया गया है । महर्षि सुमन्तुने कहा—हे तृप ! उस एक अक्षर, सत् और असत्में भेदामेदके खस्त्यमें स्थित परम धाम रविको प्रणिपात करना चाहिये । महात्मा विरच्छिन्ने पहले ऋषियोंसे इसका वर्णन किया था । हे नराधिप ! सविताकी आराधना करनेके लिये महान् आत्मा पवासम्भव (ब्रह्मा) प्रयुने महर्षियोंको जैसा ब्रह्मपरयोग कहा था, वह समस्त वृत्तियोंके सरोधसे कैवल्यका प्रतिपादक योग है । ऋषियोंने कहा—हे स्वामिन् ! आपने जो वृत्ति-निरोधसे होनेवाला योग बताया है, वह तो अनेक जन्म बीत

जानेपर भी अत्यन्त दुर्लभ्य है; क्यों कि ये मनुष्योंकी इन्द्रियोंको हठात् आकृष्ट कर लेती हैं । वृत्तियाँ चब्बल चित्तसे भी अधिक कठिन हैं । ये राग आदि वृत्तियाँ सैकड़ों वर्षोंमें भी किस प्रकार जीती जा सकती हैं ?

इन अजेय वृत्तियोंद्वारा मन इस योगके योग्य नहीं होता है । हे प्रजान् ! इस कृतयुगमें भी ये पुरुष अल्पायु होते हैं । त्रेता, द्वापर तथा कल्युगमें तो अर्युके विषयमें कहनेकी बात ही क्या है । हे भगवन् ! आप प्रसन्न होकर उपासना करनेवालोंको ऐसा कोई योग बतानेकी कृता करें, जिससे उपासक अनायास ही इस संसाररूपी महान् सागरसे पार हो जायें । वेचारे मनुष्य सांसारिक दुःखरूपी जटमें दूबे हुए हैं, आपके द्वारा ब्रताये हुए महान् प्लव (नाव)की प्राप्ति कर लेनेपर ये पार हो सकते हैं । इस प्रकार जब ब्रह्माजीसे कहा गया तो उन्होंने मानवोंके हितकी कामनासे कहा—‘इस समस्त विश्वके सामी दिवाकरकी तन्द्रा-रहित होकर आराधना करो, क्योंकि इन भगवान् भास्करका माहात्म्य अपरिच्छेद्य है—असीम है ।

तन्निष्ठ होकर सूर्यकी आराधना करे । उन्हींमें अपनी शुद्धिको लगाकर तथा भगवान् भास्करका आश्रय ग्रहण करके उनके ही कर्मसे एकमात्र उनकी ही दृष्टिवाले और मनवाले होकर अपने समस्त कर्मोंको सबकी आत्मा उन सूर्यमें ही त्याग कर दे, अर्यात् उन्हें ही समर्पित कर दे ।

सूर्यके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुष उन जगत्पति सर्वेश सर्वभावन मातृण्डकी आराधना करते हैं । अतः हे कुरुनन्दन ! इस परम रहस्यका श्रवण करो । जो इस संसाररूपी समुद्रमें निमग्न हैं और जिनके मन सांसारिक विषयोंसे आक्रान्त हो रहे हैं, उनके लिये यह सर्वोत्तम साधन है । हंसपोत (सूर्य)के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरणदाता नहीं है । अतः खड़े होकर इन रविका चिन्तन

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है। भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो। इस प्रकार तुम एकाप्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो। रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् प्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे। जो ग्रहोंके स्थामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्के विधाता, अजन्मा एवं ईशिता रवि हैं, उनका जिन्होने समाश्रय ग्रहण किया है, उन विमुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है।

सूर्यके विराटरूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराटरूपका वर्णन किया जाता है। श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूर्यमरुपसे भगवान् विवस्वानका रूप बतलाऊँगा। उनो।

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं। जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। आदित्य आदिदेव और अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे गये हैं। देवोंमें वे सबसे बड़े देव हैं; इसीलिये 'महादेव' नामसे कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होनेसे 'स्वर्णश' और अधीश होनेके कारणसे उन्हे 'ईश्वर' कहा गया है। महत् होनेसे उनको 'ब्रह्मा' और भवत्व होनेके कारण 'भव' कहा गया है तथा वे समस्त प्रजाकी रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे 'प्रजापति' कहे गये हैं।

उत्पाद न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये हिरण्याण्डमे रहनेवाले और दिवसपति ग्रहोंके स्थामी हैं। अतः 'हिरण्यार्थ' तथा देवोंके भी देव 'दिवाकर' कहे गये हैं। तत्त्वदृष्टा महर्वियोंने

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमें आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दास्य आदित्यवारके व्रत-कल्पके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

दिण्डीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिके कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है ? आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं। जो मानव उस दिन स्थिरताका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं। जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके द्वादश वार कहे गये हैं, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महाश्वेतप्रिय। हे गणाधिप ! माघ मासमे शुक्ल पक्षकी पूर्णी तिथिमें रात्रिके समय वृत्तसे रविका द्वयन (स्नान) कराना परमपुण्य बताया गया है। जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंके भयका अपहरण करनेवाला राजा होता है। इसमे आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्ण, श्वेत चन्दन, धूपोंमें गूरालका धूप, नैवेद्यके स्थानमें पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय हैं। पूप (पूआ) एक प्रश्न प्रमाणमें उत्तम गोधूम (गेहूंके) चूर्णका होना चाहिये। यदि गोधूमका अभाव हो तो विकल्पमें जौके चूर्णसे ही गुड और वृत्तसे पूप बना लेने चाहिये। इतिहासके वेता त्रावणको सुवर्णकी दक्षिणाके सहित पूओंका दान करना चाहिये अथवा

ऐसे ही अन्य दिव्य पक्षान्न श्रीसूर्यको अर्पित करके देना चाहिये। इस विधानसे मण्डक भी ग्राह्य है। पूर्णविवेदनके समय भक्तिपूर्वक आदित्यको नमस्कार करके आदित्यके समक्ष कहे—‘प्रभो! आप मेरा कल्याण करनेके लिये इन पूरोंको प्रहण करें। मण्डक देनेके समय इस प्रकार कहे—भगवन्! आप कामनाएँ प्रदान करनेवाले, सुख देनेवाले, धर्मसे समन्वित, धनके दाता और पुत्र प्रदान करते हैं। हे भास्त्रर देव! आप इसे प्रहण करे। भगवन्! मैं आपको प्रिय मण्डक दे रहा हूँ। हे गणश्रेष्ठ! ये वस्तुएँ तथा प्रार्थनाएँ आप आदित्यदेवको अत्यन्त प्रिय हैं।’ उपासकके लिये ये कल्याणकारी हैं, इसमे कुछ भी संशय नहीं है। अतः इन्हे निवेदित करना चाहिये। इसके पश्चात् मौनव्रती होकर पूरोंसे ब्राह्मणको भोजन कराये।

जो भक्त मनुष्य इस विधानसे रविका पूजन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्ति पाकर सूर्यलोकमे प्रतिष्ठित होता है। उस महान् आत्मावाले पुरुषको न कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुलमें कभी कोई रोग ही होता है। जो इस रीतिसे भानुका पूजन करता है, उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता। यदि कभी सूर्यलोकसे भूमण्डलमें आता है तो वह फिर यहाँ राजा होता है और बहुत-से रत्नोंसे सयुक्त होकर तेजस्वी विप्रके तुल्य होता है। त्रिपुरान्तक देव इस विधानको पढ़नें पब्लुननेवालोंको दिव्य और अचल क्षमी देते हैं।

सौरधर्मकी महिमाका वर्णन

इस प्रकरणमें सौरधर्ममें वर्णित गरुड़ और लक्षणके शंखदक्षा तथा द्वौरपर्मार्दी धारात्म्यका वर्णन किया जाता है। तथा शतानीकवी दद्दा—हे विष्वेन! थाप जौ परमोत्तम सौर-धर्म है, उसे कृपया पुनः वत्ताइये।’ छुमन्तु क्षषिति कहा—हे महानाहो! बहुत अच्छा। हे भारत! इस लोकमें तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौरधर्ममें

अनुराग रखनेवाला नहीं है। आज मैं उस परमपुण्य तथा पापनाशक संवादको तुमसे कहता हूँ, सुनो। यह गरुड़ और अरुणका संवाद है। प्राचीन कालमें गरुड़ने निवेदन किया—हे निष्पाप खगश्रेष्ठ! धर्ममें सत्रसे उत्तम धर्म और समस्त पापनाशक सौरधर्मको आप मुझे पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें। अरुणने कहा—हे वत्स! बहुत अच्छा, तुम महान् आत्मावाले हो और परम धन्य तथा निष्पाप हो। हे भाई! तुम जो इस परम श्रेष्ठ सौरधर्मको सुननेकी इच्छा कर रहे हो, यह इच्छा ही तुम्हारी धन्यता और निष्पापता प्रकट कर रही है। मैं सुखके उपायस्वरूप महान् फल देनेवाले अत्युत्तम सौरधर्मको बतलाता हूँ। अब तुम श्रवण करो।

यह सौरधर्म अज्ञानके सागरमें निमग्न समस्त ग्राणियोंको दूसरे तटपर लगा देनेवाला तथा अज्ञानियोंका उद्धार कर देनेवाला है। हे खग! जो लोग भक्तिभावसे रविका स्मरण, कीर्तन और भजन किया करते हैं, वे परम पदको चले जाते हैं। हे खगाधिप! जिसने इस लोकमें जन्मप्रहण करके इन देवेशका अर्चन नहीं किया, वह संसारमें पड़ा हुआ चक्कर काटने तथा महान् द्रुःख भोगनेमें छाग है। यह मनुष्य-जीवन परम दुर्लभ है; ऐसे मनुष्य-जीवनको पाकर जिसने भगवान् दिवाजरका पूजन किया, उसीका जन्म लेना सफल है। जो लोग भगवान् सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक व्याप किया अस्ते हैं, वे कभी जिसी प्रकारके द्रुःखके भागी नहीं होते। अनेक ग्रकारके सुन्दर पदार्थोंकी, विविध धाराओंसे भूषित लिंगोंकी तथा अद्वृद्ध धनकी शति—ये सभी धारावान् सूर्यदेवकी पूजनके फल हैं।

जिन्हें महान् भौगोंकी द्वुखभातिकी क्रामना है तथा जौ राज्यासन पाला चाहते हैं वायवा लंगीय सौभाग्य-आसिकी इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुरं कान्ति, भोग, त्वां, यशी, श्री, सौन्दर्य, जगत्की द्व्याति, कीर्ति और धर्म आदिकी

अभिलाषा है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये । अतः तुम सूर्यकी भक्ति अवश्य ही करो । समस्त देवगणोंके द्वारा समर्चित सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये । भगवान् सूर्यका भक्तिपूर्वक यजन-अर्चन महान् दुर्लभ है । उनके लिये दान देना, छोम करना, उनका विज्ञान प्राप्त करना और फिर उसका अभ्यास करना—उनके उत्तम थाराधनका विधान जान लेना बहुत कठिन है, हो नहीं पाता । इसका काम उन्हीं मनुष्योंको होता है, जिन्होंने भगवान् रविदेवकी शरण प्रहण कर ली है । इस लोकमें जिसका मन शास्ता भानुदेव (सूर्य)में नित्य लीन हो गया और जिसने दो अक्षरवाले रविको नमस्कार किया, उस पुरुषका जीवन सार्थक है—सफल है ।

जो इस प्रकार परम श्रद्धा-भावसे युज छोकर भगवान् भानुदेवकी पूजा करता है, वह निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्ति पा जाता है । विधिध आकारवाली दाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसको कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकता । इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते । सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है । हे वीर ! वह नीरोग होता है और आपत्तियाँ उसका स्वर्णतक नहीं कर पातीं । सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल प्रभाव और शुभमें उपचय (वृद्धि) प्राप्त करते हैं तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुति

इस प्रकरणमें ब्रह्मके द्वारा की हुई सूर्यकी स्तुतिका वर्णन किया जाता है । अरुणने कहा—‘ब्रह्माजीने जिस ब्रह्मतच्चकी प्राप्ति की थी, वह भक्तिके साथ रविदेवकी पूजा करके ही की थी । देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है ।

भगवान् शंकर भी दिवाकरकी पूजा-अचंति ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा सूर्यदेवके प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है । एक सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रने इन्द्रत्वको प्राप्त किया है ।’ मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी द्विरोंके नायक ईशान भानुकी सदा पूजा किया करते हैं । यह समस्त जगत् भगवान् भानुदेवमें ही नित्य प्रतिष्ठित है । इसलिये यदि खर्गके अक्षय निवासकी इच्छा रखते हो तो भानुकी भलीभाँति पूजा करो । जो मनुष्य तमोहन्ता भगवान् भास्त्वर सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है । इससे आजीवन सूर्यका ध्यान करना चाहिये । हे खग ! आपत्प्रस्तु होनेपर भी भानुका अर्चन सदा करणीय है । जो मनुष्य सूर्यकी बिना पूजा किये रहता है, उसका जीवन व्यय समश्नना चाहिये । वस्तुतः प्रत्येक व्यक्तिको देवोंके खामी दिवाकर सूर्यकी पूजा करके भोजन करना चाहिये । सूर्यदेवकी अर्चनासे अधिक कोई भी पुण्य नहीं है, सूर्यार्चन धर्मसे संयत एवं सम्पन्न है । जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वोंके सहन करनेवाले, वीर, नीतिकी विधिसे युक्त चित्तवाले, परोपकारपरायण, तथा गुरुकी सेवामें अनुराग रखनेवाले होते हैं । वे अमानी, बुद्धिमान्, धर्मक, असर्धवाले, गतस्पृह, शान्त, खात्मानन्द, भद्र और नित्य खागतवादी होते हैं । सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शाश्वतमर्ज्ज, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्यसे सम्पन्न होते हैं ।

सूर्यके भक्त दम्भ, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं । वे शठ और कुत्सित नहीं होते । जिस प्रकार पद्मिनीके पत्र जलसे निर्लिप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते ।

ब्रह्मतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक ही दिवाकरकी अर्चनाका कर्म सम्पन्न कर लेना चाहिये; दयोंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाता है। भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके समान इस जगत्त्रयमें अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश दिवाकरका पूजन करो। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम अपनी परम प्रह्लष्ट अन्तरात्मासे गोपतिकी पूजा करके अञ्जलि बाँधकर पहले ब्रह्माजीने यह (आगे कहा जानेवाला) स्तोत्र कहा था।

ब्रह्माजीने कहा—भग अर्थात् षडैश्वर्यसम्पन्न, शान्त-चिन्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् रविदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु, दिवाकर और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त दुश्खोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वरके स्थान, वर प्रदान करनेवाले, वरद तथा वरेण्य भगवान् विभावसु हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु नामधारी भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार ब्रह्माके द्वारा की हुई स्तुतिका जो नित्य श्रवण किया करता है, वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकमें चला जाता है।

महाभारतमें सूर्यदेव

लेखिका—कु० सुषमा सक्सेना, एम० ए० (संस्कृत) रामायण-विश्वारद, आयुर्वेदरत्न)

महाभारतमें सूर्यतत्त्वका पृथक् विवेचन नहीं है। सूर्य-सम्बन्धी उल्लेख जहाँ कहीं भी हैं, आनुपस्थित ही हैं; तथापि उनसे हम महाभारतकारकी सूर्य-सम्बन्धी विचारणाका व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतमें सूर्यको ब्रह्म, चराचरका धाता, पाता, मंहर्ता, एवं एक देवविशेष, कालाध्यक्ष, ग्रहपति, एक ष्योतिष्कपिण्ड और मोक्षद्वारके रूपमें विहित किया गया है। सूर्यदेवके सम्बन्धमें कुछ पुराण-कथाओंका भी अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख महाभारतमें हुआ है। सूर्योपासनाके विषयमें भी कुछ निर्देश प्राप्त होते हैं।

सूर्यकी वृज्जरूपता—सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें कुछ नाम ऐसे हैं, जो उनकी परमब्रह्मरूपता प्रकट करते हैं। जे नाम—हैं अशत्य, शाश्वतपुरुष, सनातन, सर्वादि, अनन्त, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूर्स्मात्मा। कुछ नामोंसे उनकी त्रिदेवरूपता व्यक्त होती

है। ये नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शौरि, वेदकर्ता, वेदवाहन, स्त्री, आदिदेव और पितामह। एक साथ तीनों देवोंका ऐव्य भी द्रव्यत्व है। महाभारतके अष्टोत्तर शतनाम एवं शिवसहस्रनाममें कुछ नाम समान हैं, जैसे—सूर्य, अज, काल, शौरि, शनैश्चर आदि। अन्धकारका नाश करनेके कारण भी सूर्यको शौरि-अर्थात् शूर या पराक्रमी कहा जाता है।

सूर्य चराचरका धाता-पाता-संहर्ता—सूर्यसे समस्त चराचरका उद्भव हुआ है,^१ सूर्यसे ही उसका पोषण होता है और सूर्यमें ही उसका ल्य होता है। यह दिखानेवाले सूर्यके नाम ये हैं—प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, जीवन, भूताश्रय, भूतपति, सर्वधातुनियेचिता, भूतादि, प्राणधारक, प्रजाद्वार, देहकर्ता, और चराचरात्मा। ‘सूर्य आत्मा जगत्-स्तस्युपश्च’—इस श्रुति-वचनका प्रतिशब्द चराचरात्मक है। सृष्टिके आरम्भकालमें जब प्रजा भूखसे व्याकुल हो रही थी, तब सूर्यने ही अन्धकी व्यवस्था की थी।

सूर्य पक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और लदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान् ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मधज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणानित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी हैं।^१ प्रभा अर्थात् सूर्यकी व्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कल्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अशा, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं। सावित्री^२ और तपती^३ ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं।^४ सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका

निवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर ख्यं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ^५। पिताने जब संज्ञाको अपने पति के पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयी, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (छाया)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छोड़ दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया^६। पाठ्याचार्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी सूर्तिको शकलोग छंदे वद्य पहनाते थे^७। वही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है^८। गोविन्दपुर (जिला गया, विहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-२८ई०)में लिखा है कि विश्वकर्मने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है^९। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरायु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रत्यक्ष पात्रके रूपमें दृष्टिगत होते हैं। पृथ्वीपर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथ्वीको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

१. गीता ४। १; २. महाभारत ५। ११७। ८; ३. वही १। ६५। १४; ४. वही १। ६५। १५-१६; ५. वही १। १७०। ७; ६. वही १। १७०। ७, ७. वही १। ७४। ३०, ८. वही १। २९७। ४१; ९. भगवत् ६। ६। ४१—'छाया शनैश्चरं लेमे'। १०. मिलाइये—विश्वकर्मा हनुजातः शाकद्वीपे विवस्तः। भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शात्यामात् तत्य वै॥ भविष्यपुराण ब्रह्म ० ७९। ४१। ११. उदीन्य वेशं गूढं पादादुरो यावत्। (वाराहमिहिर) १२. यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३. ऋग्वेद १। ६४।

पशीकरण मन्त्र दिया^१। दुर्वासाद्ये प्राप्त सन्तती परीक्षा हेनेके लिये कुन्तीद्वारा आवाहन किये जानेपर^२ सूर्य-देवका प्रकट^३ होना और कुन्तीको पुन्न (कर्ण) रूप फल प्राप्त होना^४ सूर्यदेवकी प्रत्यक्षता ही है। सूर्य-कुन्तीके पुन्न कर्ण देवमाता धर्मितिके कुण्डल सभा सूर्यके कवचसहित उत्पन्न हुए थे^५। सूर्यदेवकी कृपासे कुन्तीका कन्यात्व कर्णको उत्पन्न करनेके बाद भी व्योंका-न्यों बना रहा। महाभारतकारने 'कन्या' शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'कन्या' धानुसे कन्या शब्दकी सिद्धि होती है। 'कन्या' धानुका अर्थ है 'बाहना'; क्योंकि वह सूर्यवरमें जाये हुए किसी व्यक्तिको अपनी कामनाका विषय बना सकती है^६। मन्त्रकी परीक्षा मात्र करनेके विचारसे ही कुन्तीने सूर्यका आवाहन किया था; किंतु उससे जब सूर्य वास्तवमें प्रत्यक्ष हो गये और उससे प्रणययाचला करने लगे तथा कुन्ती सूर्यको आत्म-समर्पण करनेमें भयका अनुभव करने लगी; तब सूर्यने बदान दिया कि 'तुम कन्या ही कनी होगी और सूर्यवरमें किसीका भी वरण करनेमें समर्थ होगी।' यह आशासन प्राप्त करके कुन्तीने पुन्न (कर्ण) को प्राप्त किया। कर्ण सूर्यके समान तेजसी थे। वे महाभारत-युद्धके प्रमुख महारथियोंमें थे। दुर्योधनने तो इन्हींके बलपर युद्ध छेड़ा था। समय-समयपर सूर्यदेव पुन्न-स्नेहके कारण कर्णपर विपत्ति आनेके पूर्व उन्हें साक्षात् कर देते थे। नारायण श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें अर्जुनकी विजय निश्चित की थी। अतः विधाताके इच्छानुसार अपने पुन्न अर्जुनकी विजयके लिये प्रयत्नशील इन्द्रने कर्णमे कवच-कुण्डल दानमें माँगनेका निश्चय किया। सूर्यके लिये सभी अनावृत हैं; अतः सूर्य इन्द्रके इस निश्चयको जान गये और पुन्न-स्नेहके कारण योग-समृद्धिसे सम्पन्न वेदवेता

प्राह्णका रूप धारणकर उन्होंने रातको खम्ममें कर्णको दर्शन दिया^७ तथा कर्णसे कहा—'इन्द्र त्रायणका छ्य-वेष धारण करके तुम्हारे पास कवच-कुण्डल माँगने आयेंगे, तुम देना मत'^८। परंतु कर्णने अपने सिद्धान्तके अनुसार याचकको प्राणतक देनेका^९ अपना अट्ठ निर्णय बता दिया। इसपर सूर्यने कर्णसे कहा कि यदि तुमने यह निश्चय कर ही लिया है, तो तुम कवच-कुण्डलके बदले इन्द्रसे अमोघ शक्ति ले लेना। यहाँ वह कह देना आवश्यक है कि सूर्यने कर्णको यह नहीं बताया है कि वे कर्णके पिता हैं। कर्ण यही समझते हैं कि मेरे आराध्यदेव हेनेके कारण ही सूर्य मेरे ग्रति स्नेह रखते^{१०} हैं। वैसे तो सूर्यसे ही यह समस्त प्रजा उत्पन्न होता है और वे सभीका पालन करते हैं^{११} तथा सूर्यके अष्टोत्तरात नामोंमें एक नाम 'पिता' भी है; परंतु अपने अंशरूप कर्णसे उन्हें अधिक प्रेम था।

कालाष्यक दर्शन—सूर्यका नाम काल है। सूर्य धनन्त-असीम कालके विभाजक हैं अर्थात् कालचक्र-प्रवर्तक हैं। अतः समयके छोटे-बड़े सभी विभागोंको महाभारतमें सूर्यरूप कहा गया है। सूर्यके नाम हैं—कृत, ब्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सरकर, दिन, रात्रि, याम, क्षण, दला, काष्ठा—मुहूर्तरूप समय। सूर्यके कारण ही हम समयके इन खण्डोंका अनुभव करते हैं, अन्यथा महाकाल तो अनन्त-अखण्ड इन्द्रियातीतकी अनुभूति है। सूर्यका नाम 'तमोनुद' यह प्रकट करता है कि आद्य तमसमें प्रकाश करके सूर्य 'समय' की भावना उत्पन्न करते हैं। व्रताजीका दिन सहस्र युगोंका बताया गया है। 'कालमान'के जाननेवाले विद्वानोंने उसका आदि और अन्त सूर्यको ही माना है^{१२}।

१. महाभारत १। ११०। ८; २. वही १। ११०। ९; ३. वही १। ११०। ११७-११८; ४. १। ११०। १६ के बाद दक्षिणात्य, ५. वही १। ११०। २०; ६. वही ३। ३०७। २५-२६; ७. वही ३। ३०७। १३; ८. वही ३। ३०७। १५; ९. वही ३। ३०९। ८९; १०. वही ३। ३००। १५ से सम्पूर्ण; ११. वही ३। ३०१। ६-१२; १२. वही ३। ३०२। १५; १३. वही ३। ३। ९; १४. वही ३। ३। ५५।

ग्रहपति सूर्य—विभिन्न ग्रहोंके नाम सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंके अन्तर्गत हैं। इसका आशय यह होता है कि महाभारतकारं सूर्यको ग्रहपति मानते हैं। सूर्यके एक सौ आठ नामोंमें—सूर्य, सोम, अङ्गारक (मङ्गल), बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर भी हैं³। सूर्यके ‘धूमकेतु’ नामसे केतु शब्द व्यञ्जित होता है और उससे राहु-नाम संकेतित हो जाता है। ‘राहु’ और ‘केतु’ नाम महाभारतमें अन्यत्र मिलते हैं। आदिपर्वमें अमृत-मन्थनकी कथामें राहुका नाम है, जो चन्द्रग्रहण करता है। उसके कवर्णन्धका भी उल्लेख है। यह कवर्ण ही ‘केतु’ है। राहु-केतु दोनों नाम साथ-साथ कर्णपर्वमें आये हैं, जहाँ अर्जुन और कर्णके ध्वजोंकी उपमा उनसे दी गयी है⁴। इस प्रकार महाभारतमें नवों ग्रहोंके नाम दिये हुए हैं। और, प्राच्य विद्याके पाश्चात्य विचारकोंका यह कथन सत्य नहीं है कि ‘महाभारतमें केवल पाँच ग्रहोंका उल्लेख है, जिनके नाम भी नहीं दिये गये हैं⁵।’

ज्योतिष्कपिण्ड सूर्य—सूर्य अपने ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें प्रतिदिन प्रातः-सायं उदित और अस्त होते हैं । उस समय सूर्यका वर्ण मधुके समान पिङ्गल तथा तेजसे समस्त दिशाओंको उद्घासित (प्रकाशित) करनेवाला होता है । कुन्तीका मन इन्हीं ज्योतिर्मय सूर्यको उदित होते हुए देखकर आसक्त हुआ था । इस प्रसङ्गमें यह वर्णन भी आया है कि सूर्य योग-शक्तिसे अपने दो खरूप बनाकर एकसे कुन्तीके पास आये और दूसरेसे आकाशमें तपते रहे । इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् सूर्यकी ही शक्ति ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमें हमें दिखायी देती है । धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत् ।
 न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेन् मनीषिणः ॥
 आधानपशुवन्धेष्टमन्त्रयहतपःक्रिया: ।
 त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः ॥
 (महाभारत ३ । ३ । ५३-५४)

अर्थात् (भगवन् !) यदि आपका उदय न हो तो यह सारा जगत् अन्धा हो जाय और मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम-सबन्धी कर्मोंमें प्रवृत्त ही न हो । गर्भाधान या अग्निकी स्थापना, पशुओंको वाँधना, इष्टि (यज्ञ-पूजा), मन्त्र, यज्ञानुष्ठान और तपश्चर्या आदि समस्त क्रियाएँ आपकी ही कृपासे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगणोंके द्वारा सम्पन्न की जाती हैं ।

महाभारतमे स्थान-स्थानपर शूरवीरो एव महर्षियोके
तेजकी तुलना सूर्यसे की गयी है, जो सूर्यके ज्योतिष्कपिण्ड-
रूपको समक्ष लाती है। एक बार महर्षि जमदग्नि
धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे^१। वे धनुष चलाते
और उनकी पत्नी रेणुका बाण लालाकर देती थीं^२।
क्रीड़ा करते-करते ज्येष्ठ मासके सूर्य दिनके मध्यभागमे
आ पहुँचे^३। इससे रेणुका बाण लानेकी क्रियामे विफल
होने लगी^४। अतः रुष्ट होकर जमदग्निने कहा—
'इस उद्दीप्त किरणोवाले सूर्यको आज मैं अपने बाणोके
द्वारा अपनी अखानिके तेजसे गिरा दूँगा'^५। जमदग्निको
युद्धोदत देख सूर्यदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर वहाँ
आये और कहा—'सूर्यदेवने आपका क्या अपराध
किया है ? सूर्यदेव तो विश्वकल्याणार्थ कार्यमे लगे
हुए हैं। अतः इनकी गनि रोकनेसे आपको क्या लाभ
होगा ?' जमदग्निने सूर्यको शरणागत समझकर कहा—
'ठीक है, इस समय तुम्हारे द्वारा जो यह अपराध
हुआ है, उसका कोई समाधान सोचो, जिससे तुम्हारी

१. महाभारत ३। ३। १७-१८, २. वही ८। ८७। ९२, ३. ऐसा श्री जै० एन० वनर्जीने अपने ग्रन्थ पौराणिक एण्ड तात्त्विक सिलीजनमें दृढ़ १३५ पर लिखा है, ४. महाभारत ३। ३। ३०४; ५. वही ३। ३०४। ९; ६. वही ३। ३०४। ५; ७. वही ३। ३०४। १०; ८. वही १३। ९५। ६; ९. वही १३। ९५। ७; १०. वही १३। ९५। ९; ११. १३। ९५। १६, १२. वही १३। ९५। १८, १३. वही १३। ९५। २०।

किरणोद्वारा तपा हुआ मार्ग सुगमतासूर्यक चलने योग्य हो सके'।' यह सुनकर सूर्यने शीघ्र ही जमदग्निको छन्न और उपानह—दोनों वस्तुएँ प्रदान कीं। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् सूर्य प्रजाके कल्याणार्थ कार्य करते हैं। वे यदि अपने कार्यसे व्युत होंगे तो समस्त संसार नष्ट हो जायगा। अतः किसी भी देवता, गन्धर्व, और महर्षि आदिको उनके कार्यमे व्यवधान पहुँचानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

मोक्षद्वार सूर्य—सूर्यके नामोमें एक नाम 'मोक्षद्वार' है। इसी अर्थका समर्थक नाम है—खर्गद्वार। त्रिविष्टप भी सूर्यका एक नाम है। भीष्मने दक्षिणायन सूर्यकी समस्त अवधिमें शार-शश्यापर जीवन धारण किया। भीष्म आठवे वसुके अंशरूप थे^३। पिताके सुखके लिये भीष्म प्रतिज्ञा करनेपर पिताद्वारा उन्हें इच्छामृत्युका वरदान मिला था^४। जीवनसे उदासीन होनेपर अर्जुनके बाणोसे विकल हो^५ भीष्मने मृत्युका चिन्तन किया। वे अर्जुनद्वारा रथसे गिरा दिये गये थे। किंतु उस समय सूर्य दक्षिणायनमे थे, अतः भीष्म प्राण-स्थाग नहीं किये^६। श्रुतिके अनुसार दक्षिणायन सूर्यके समय प्राणविसर्जन होनेसे पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है। भीष्मकी इच्छा थी कि जो मेरा पुरातन स्थान (वसुगणोके पास खर्गमें) है, वहीं जाऊँ^७। अतः उत्तरायण सूर्यकी प्रतीक्षामे भीष्मने अद्वावन दिन शरशश्यापर व्यतीत^८ किया। स्पष्ट है कि सूर्य मोक्षद्वार है^९। गीता ८। २४ मे स्पष्टः प्रतिपादित है कि—उत्तरायणमें मरनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं।

सूर्योपासना—अष्टोत्तरशत नामोमें अनुस्यूत 'सर्वलोक-नमस्कृतः' से स्पष्ट है कि सूर्यकी उपासना अत्यन्त

व्यापक है—ऐसा महाभारतकारका मत है। सूर्यके 'कामद' और 'करुणान्वित' नाम यह प्रकट करते हैं कि सूर्यकी पूजासे इच्छाओंकी पूर्ति होती है, और साधकपर भगवान् सूर्य अपनी करुणाकी वर्पा करते हैं। 'प्रजाद्वार' नाम यह बताता है कि सूर्योपासनासे संतानकी प्राप्ति होती है। 'भोक्त्रद्वार' नाम यह प्रकट करता है कि सूर्योपासनासे खर्गकी प्राप्ति होती है। महर्षि धौम्य कहते हैं कि जो व्यक्ति सूर्यके इन एक सौ आठ नामोका नित्य पाठ करता है, वह स्त्री, पुत्र, धन, रक्त, पूर्वजन्म-स्मृति, धृति, धुम्रि, विशेषता, इष्टलभ और भव-मुक्ति ग्राप्त करता है—

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
स पुत्रदारान् धनरक्षसंचयान्।
लभेत जातिस्वरतां नरः सदा
धृतिं च मंथां च स विन्दते पुमान् ॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकद्वाप्निसागरा-
ल्लभेत कामान् मनसा यथेष्पितान् ॥
(महाभारत ३। ३। ३०-३१)

युधिष्ठिर कहते हैं कि ऋषिगण, वेदके तत्त्वज्ञ ब्राह्मण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यश, गुह्यकनामवाले तैतीस देवता (वारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, इन्द्र और प्रजापति), विमानचारी सिद्धगण, उपेन्द्र, महेन्द्र, श्रेष्ठ विद्याधरगण, सात पितृगण (वैराज, अग्निव्यात्त, सोमपा, गार्हपत्य, एकशृङ्ग, चतुर्वेद, कला), द्रिव्यमानव, वसुगण, मरुद्रण, रुद्र, साध्य, वालखिल्य तथा सिद्ध-महर्षि आपकी उपासना करते हैं। पष्ठी और सतमीको सूर्यकी पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्योपासनासे और भी अनेक प्राप्ति हैं, यह बताते हुए युधिष्ठिर कहते हैं—

१. महाभारत १३। ९६। १२; २. वही १३। ९६। १३; ३. वही १। ६३। ९१, ४. वही, ५. वही ६। ११९। ३४-३५, ६. वही ६। ११९। ५६; ७. वही ६। ११९। ८६; ८. वही ६। ११९। १०४; ९. वही ६। ११९। ५; १०. वही १३। १६७। २६; ११. वही ३। ३। ३९-४४।

न तेपामापदः सन्ति नाथयो व्याधयस्तथा ।
ये तवानन्यमनसः कुर्वन्त्यर्चनवन्दनम् ॥
सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः ।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः ॥

(महाभारत ३ । ३ । ६५-६६)

इतना कहनेपर भी महाभारतकारको तृती नहीं हुई । वे पुनः कहते हैं—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन् ।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम् ॥

(३ । ३ । ७५)

अर्थात् जो कोई पुरुष मनको सयममे रखकर चित्त-वृत्तियोको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह

यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वर भी माँगे तो भगवान् सूर्य उसकी उस मनोवाञ्छित वस्तुको दे सकते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि महाभारतमें विष्णुपुराण आदिकी भाँति व्यापक क्रमबद्धतासे मुख्य संदर्भरूपमें वर्णन नहीं होनेपर भी सूर्यमाहात्म्यके लिये आनुषंज्ञिक वर्णन महत्वके हैं और उनसे महाभारत-कारकी सूर्यविप्रयक धारणाएँ विवेचित हो जाती हैं । वस्तुतः महाभारत भगवान् सूर्यकी महत्त्वाका प्रतिपादन ही नहीं, प्रसंगतः समर्थन भी करता है । सूर्यदेव है और सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ हैं । अतः सूर्यकी अर्चना—उपासना करनी चाहिये—यह महाभारतकार-को इष्ट है ।

महाभारतोक्त सूर्यस्तोत्रका चमत्कार

(लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदासजी, शास्त्रीजी महाराज)

दुर्योधनेनैव	दुरोहरेण
	निर्वासितायैव
	युधिष्ठिराय ।
पात्रं	प्रदत्तं
	भुवनोपभोज्यं
	तस्मै नमः सूर्यमहोदयाय ॥

अपने भक्तमात्रको अतिशय उन्नति देनेवाले उन भगवान् सूर्यको मेरा सादर प्रणाम है, जिन्होंने दुर्योधनके द्वारा दुर्व्यवहारमय दुरोहर (जूआ)के निमित्त वनमे निर्वासित युधिष्ठिरके लिये ऐसा चमत्कारमय पात्र प्रदान किया जो भुवनमात्रको भोजन करा देनेमें समर्थ था ।

दुर्दान्त दुर्योधनके दुर्दमनीय दुश्शासनात्मक दुर्व्यवहारमय दुर्घूतके द्वारा पराजित हुए पाँचों पाण्डव जब द्रोषदीके सहित वनको प्रस्त्रित हो गये, तब धर्मराज युधिष्ठिरकी राज्यसमामे अपने धर्म-कर्मका सानन्द निर्वह करनेवाले हजारों वैदिक ब्राह्मण निषेध करनेपर भी उनके साथ ही वनको चल दिये । उस समय कुछ दूर

वनमें जाकर युधिष्ठिरने अपने पूज्य पुरोहित श्रीधौम्य ऋषिसे प्रार्थना की—‘हे भगवन् ! ये ब्राह्मण जब मेरा साथ दे रहे हैं, तब इनके भोजनकी व्यवस्था भी मुझे ही करनी चाहिये । अतः आप कृपया इन सबके भोजनकी व्यवस्थाका कोई उपाय अवश्य बताइये ।’ तब धौम्य ऋषिने प्रसन्न होकर कहा—‘मैं श्रीब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ अयोत्तरशतनामात्मक सूर्यका स्तोत्र तुम्हें देता हूँ; तुम उसके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करो । तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा ।’ [वह स्तोत्र महाभारतके वनपर्वमें तीसरे अध्यायमें इस प्रकार है—]

धौम्य उचाच

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूपार्कः सविता रविः ।
गमस्तिमनजः कालो सृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो वृहस्पतिः शुक्रो वुधोऽङ्गारक एव च ॥

इन्द्रो विवस्यान् दीपांशुः शुचिः शौरि: शनैश्चरः ।
 ग्रहा विष्णुश्च स्त्रश्च स्कन्दो वै वरणो यमः ॥
 वैद्युतो जाटश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः ।
 धर्मच्छजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥
 कृतं व्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाथयः ।
 कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥
 संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
 पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥
 कालाव्यक्तः प्रजाव्यक्तो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
 वरुणः सागरोऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥
 भूताथयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्तुतः ।
 स्वप्ना संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोल्पुः ॥
 अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
 जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिपेचिता ॥
 मनःसुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
 धन्यन्तरिधूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः ॥
 द्वादशान्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
 सर्वद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्णुपम् ॥
 देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
 चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः ॥
 एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
 नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयंभुवा ॥

सुरगणपितृशक्षसेवितं

हसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।

वरकनकहुताशनप्रभं

प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्

स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान् ।

लभेत जातिस्सरतां नरः सदा

धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥

इमं स्तवं देववरस्य यो नरः

प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।

विमुच्यते शोकद्वाग्निसागरा-

ल्लभेत कामान् मनसा यथेन्दितान् ॥

प्रतिदिन प्रातः काल संकीर्तनीय अमित तेजस्वी भगवान्
 श्रीसूर्यदेवका एक सौ आठ नामोवाल्य यह स्तोत्र
 ब्रह्माजीके द्वाग कहा गया है । अतः मैं भी अपने हितके

लिये उन भगवान् भास्करको सायान्न प्रणाम करता हूँ—जो देवगण, पितृगण एवं यक्षोंके द्वारा सेवित हैं तथा असुर, निशाचर, सिद्ध एवं साथ्य आदिके द्वारा वन्दित हैं और जिनकी कान्ति निर्मल सुवर्ण एवं अग्निके समान है ।

जो व्यक्ति सूर्योदयके समय विशेष सावधान होकर इस सूर्यस्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह व्यक्ति पुत्र, कलन्त्र, धन, रत्नसमूह, पूर्वजन्मकी सृति, धैर्य एवं धारणाशक्तिवाली वुड्हिको अनायास प्राप्त कर लेता है ।

जो मनुष्य ह्यान आदिसे पवित्र हो विशेष सावधान होकर सच्च मनोयोगपूर्वक, देवश्रेष्ठ सूर्योदयके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शोकरूपी दावानलके सागरसे अनायास पार हो जाता है तथा स्वामिलपित मनोरथोंको भी प्राप्त कर लेता है ।

इस प्रकार धौम्य ऋग्विके द्वारा प्राप्त इस सूर्यस्तोत्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले युविष्ठिरके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर अक्षयपात्र देते हुए भगवान् सूर्य बोले—‘हे राजन् ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे समस्त संगियोंके भोजनकी सुव्यवस्थाके लिये मैं तुम्हें यह अक्षयपात्र देता हूँ; देखो, अनन्त प्राणियोंको भोजन कराकर भी जवतक द्रौपदी भोजन नहीं करेगी, तबतक यह पात्र खाली नहीं होगा और द्रौपदी इस पात्रमें जो भोजन बनायेगी, उसमें छृष्णन भोग छत्तीसों व्यंजनोंका-सा स्वाद आयेगा ।’

इस प्रकार सूर्योदयके द्वारा प्राप्त उस अक्षयपात्रके सहयोगसे धर्मराज युविष्ठिरने अपने वनवासके बाहर वर्ष सभी त्राहणों, ऋग्वियों, महात्माओंकी तथा अश्व, चाण्डालप्रभृति प्राणियोंकी सेवा करते हुए अनायास व्यतीत कर दिये ।

लेखक भी लगभग चौबीस वर्षोंसे इस स्तोत्रका अनुष्ठान कर रहा है। इस स्तोत्रके अन्तमे अपनी अमिलाषाका घोतक स्वरचित् यह श्लोक भी जोड़ देता है—

यावज्जीवं तु नीरोगं कुरु मां च शतायुपम् ।
प्रसीद धौम्यकृतया स्तुत्या मयि विकर्त्तन ॥

‘हे समस्त रोग, दुःख, दोष एव दारिद्र्य आदिका

शमन करनेवाले सूर्यदेव ! धौम्य ऋषिके द्वारा की हुई इस स्तुतिसे आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये और मुझको जीवनभरके लिये नीरोग तथा सौ वर्षकी आयुवाला बना दीजिये, जिससे कि मै समस्त शास्त्रोंका यथावत् अनुशीलन कर सकूँ ।’ इस प्रकारका अनुष्ठान कर प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है ।

वाल्मीकि-रामायणमें सूर्यकी वंशावली

(लेखक — विद्यावारिधि श्रीसुधीरनारायणजी ठाकुर (सीतारामशरण) व्या०-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न,)

भगवान् भास्कर एक प्रत्यक्ष शक्तिशाली सत्ता हैं, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त है। इस विषयमें विश्वके किसी भी क्षेत्रके विचारकोंमें मतभेद नहीं है; तथापि भारतीय परम्पराके आधारपर (पाश्चात्य मान्यताके समान) यह सत्ता कोई जड़ सत्ता नहीं है। यद्यपि चमकनेवाला तेजःपुज्ज यह मण्डल जड़ प्रतीत होता है, फिर भी आर्प ग्रन्थोंकी मान्यतापर विचार करनेसे यही कहा जा सकता है कि यह तेजोमण्डल पृथिव्यादिकी भौति भले ही जड़लोक हो, किंतु उसमें विराजमान कोई अपूर्व चेतनशक्ति अवश्य है जो समस्त सृष्टिकी मङ्गल-कामनासे अनुदिन अपनी कृपावर्गिणी किरणोद्वारा अमृत-व्रप्ति कर सभी जीवोंमें शक्ति प्रदान करती रहती है। अतः भारतीय दृष्टिये ये ‘सूर्य’ मण्डल-मात्र नहीं, अपितु साक्षात् नारायण ही है। इसलिये यहाँके विविध ग्रन्थोंमें इनके माहात्म्यानके साथ-साथ इनकी स्वस्य वशपरम्परा कल्पभेदसे वशानुकमणिकाओंमें कुछ वैपर्यके साथ प्राप्त होती है। फिर भी प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन प्रायः सभी वंशानुकमणिकाओंमें है। सम्प्रति महर्पि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें इनकी जो वंशपरम्परा दी है, उसे आगे दिखलाया जा रहा है।

मिथिलामे विवाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मपि वसिष्ठने जनकसे इश्वाकुवंशकी परम्पराका निरूपण करते हुए कहा है— ‘सर्वप्रथम सृष्टिके पूर्व ही अव्यक्तसे शाश्वत (नित्य), अव्यय हिरण्य (ब्रह्म) प्रकट हुए। ब्रह्मसे मरीचि एवं मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई। इसी महातपा कश्यपसे विवस्वान् (सूर्यदेव) प्रादुर्भूत हुए। भगवान् विवस्वान् ने कृपा करके मनुको जन्म दिया, जो इस सृष्टिके सर्वप्रथम शासक माने जाते हैं। उन्होंने अपनी शासन-व्यवस्थाके संरक्षणको दृढ़ रखनेके लिये एक नियम-(विधि) ग्रन्थका निर्माण किया जो आज भी मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसी मनुसे इश्वाकु उत्पन्न हुए। इश्वाकुके पुत्र विकुश्मि, विकुश्मिके पुत्र वाण, वाणके पुत्र अनरण्य, अनरण्यके पुत्र पृथु, पृथुके पुत्र त्रिशङ्कु हुए (जो सशरीर स्वर्ग गये; किंतु ईश्वरीय विधानके विषरीत होनेके कारण उन्हे वहाँ स्थान नहीं मिला, फिर भी विश्वामित्रकी कृपासे वे मर्यालोकमें न आकर ऊर्ध्वलोकमें ही लटके रहे)। त्रिशङ्कुके पुत्र धुन्धुमार, धुन्धुमारके पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए, जिन्होंने अपने शील-गुणके बलपर एक रात्रिमें सम्पूर्ण वसुन्धरापर आत्रिपत्य प्राप्त कर लिया था। मान्धाताके पुत्र सुसंवि हुए। सुसंविके दो पुत्र ध्वंसंधि एवं प्रसेनजित् थे। ध्वंसंधिके पुत्र भरत, भरतके पुत्र असित हुए। असितकी दो पत्नियाँ

थीं। असित शत्रुओंसे पराजित होकर तपके लिये हिमाल्य चले गये एवं कालक्रमसे उन्होंने वहाँ शरीर-त्याग किया। वहाँ उनकी पत्नियाँ भी थीं। उनमेंसे एक गर्भवती थी। दूसरी पत्नीने अपने सौतको भविष्यमें पुत्रवती होनेकी आशङ्कासे विष दे दिया। ईश्वरानुकम्पासे सगरकी माँको इसका भान हो गया। इसी बीच भाग्यवश महातपा भगुवंशी व्यवन उस आश्रमके निकट आये। सगरकी माताने सुपुत्र पानेकी छालसासे महात्मा व्यवनकी वहुत अनुनय-विनय—प्रार्थना की। उम्रकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर महापिनि उसे सुपुत्र-प्राप्तिका वर दिया। उस आशीर्वादके प्रभावसे गर्भस्थ शिशुपर विशका कोई असर नहीं पड़ा। उसे पुत्ररन्नकी प्राप्ति हुई। गरुड़के कारण ही उस कुमारका नाम 'सगर' पड़ा। सगरका पुत्र असमंजस हुआ। असमंजसके पुत्र अंगुमान्, अंगुमान्के पुत्र दिलीप, दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनकी तपस्याके कारण आज भी इस धरापर 'त्रिलोक' कही जानेवाली सर्वगदा गङ्गा प्रवाहित हैं। भगीरथके पुत्र ककुत्स्य, ककुत्स्यके पुत्र महाप्रतारीखु थे, जिन्होंने विश्वजित् नामक यज्ञमें सर्वस्व देवकर भी द्वारपर आये हुए अतिथि कौत्सको विसुख न होने दिया। खुके पुत्र कल्मापयाद हुए। कल्मापयादके पुत्र शङ्खण, शङ्खणके पुत्र सुर्दर्शन, सुर्दर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णकी संतनि शीघ्रग, शीघ्रगका पुत्र मरु, मरुका पुत्र प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकका पुत्र अम्बरीप, अम्बरीपका

पुत्र नहुप, नहुपका पुत्र ययाति, ययातिसे नाभाग, नाभागका पुत्र अज, अजके पुत्र दशरथ हुए। इन्हीं महाराज दशरथसे महातेजस्ती विश्वविल्यात अवर्णनीय छवि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। इन चारोंको भी दो-दो संततियाँ हुईं, जिसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें है। उस वर्णनमें श्रीरामसे लब और कुश; श्रीभरतसे तक्षक तथा पुष्कल; श्रीलक्ष्मणसे अङ्गद एवं चित्रकेतु, श्रीशत्रुघ्नसे सुवाहु और शत्रुघ्नाता हुए। अन्य पुराणोंमें आगेकी वंश-परम्पराका भी वर्णन प्राप्त होता है; किंतु वाल्मीकीय रामायणका प्रतिपाद्य 'सीतायाइचरितं महत्' होनेके कारण वर्णन-क्रममें उस कालतकर्त्ता वंशावलीको ही दिखलाया गया है। ऋजु-वानरोंके उत्पत्ति-क्रममें सुग्रीव भास्करपुत्र ही कहे गये हैं। इन समस्त वर्णन-क्रमोंको ढेखनेसे प्रतीत होता है कि जैसे भगवान् भास्कर अपने ज्योतिष्पुज्जसे जगत्का तिमिर हरण करते हुए सभीके लिये मङ्गल वेला उपस्थित करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अपनी वंश-परम्पराक्रममें अपना सहज तेज प्रदानकर तमःप्रवान रावण आदि—आसुरी सम्पदाको समाप्त कर संसारका सर्वविध कल्याण किया है।

आधकाव्य वाल्मीकि रामायणमें सूर्यवशका सर्वोच्चल प्रकाश श्रीरामरूपमें हुआ है। तभी तो तुलसीदासने भी लिखा है—

'उदित उद्दय गिरि भञ्च पर रघुवर वाल पतंग।

नमो महामतिमान्

(रचयिता—श्रीहनुमानप्रसादजी शुक्ल)

तरणि ! आप निज तेजसे, जगको जीवन देते।
जल फल शस्य प्रकाश औ, सृष्टि-प्रलयके हेत ॥
आदि-पुरुष है ओजनिधि, जग-जीवन-आवार।
सुखदायक त्रय लोकके, नमो किरण-करतार ॥
जग-पालक, धारक-तिमिर, जप-तप-तेजनिधान ।
पूर्वज दिनकर-चंशके, नमो महामतिमान ॥

श्रीरामाचारण



सर्वेषां धर्मात् भीमात्

वंश-परम्परा और सूर्यवंश (पृष्ठभूमि)

पुराणोंमें ऋषिवंश या राजवंशका जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका आरम्भ वैवस्तत मन्वन्तरके आरम्भसे ही होता है। इतने समयमें सत्ताईस चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है और अद्वाईसवे चतुर्युगीके भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं। इस अवधिमें चौथा कलियुग चल रहा है। इतने लम्बे कालके इतिहासकी रूपरेखा हमारे यहाँ सुरक्षित है। किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि इस वातपर हमारे ही देशके अधिकतर आधुनिक विद्वान् विश्वास नहीं करते। वे युग शब्दके भिन्न-भिन्न तथा अनर्गल अर्थ लगाकर समयके संकोचकी प्रक्रियामें लगे हुए हैं। कुछ लोग 'युग' शब्दको अप्रेजीके 'पीरियड' शब्दका समानार्थक मानते हैं, जैसे आजकल हिंदीमें 'भारतेन्दु-युग', 'द्विवेदी-युग' इत्यादि व्यवहृत होते हैं। कुछ विद्वान् पुराणोंमें वर्णित वारह हजार दैववर्षकी चातुर्युगीको ही मानुषवर्ष मानते हैं। वगीय साहित्य-परिपदके श्रीगिरीशचन्द्र वसुने अपनी कल्पनाओंके आधारपर पुराने ऋषि, राजा आदिको बहुत अर्वाचीन सिद्ध करनेका प्रयत्न अपनी 'पुराण-प्रवेश' नामक पुस्तकमें किया है। सृष्टिकी वंश-परम्पराको अर्वाचीन सिद्ध करनेके लिये जितना ही अधिक प्रयत्न किया गया तथा कल्पनाएँ की गयीं, पुराणोंमें उन कल्पनाओंके विस्तृत उतने ही अधिक प्रमाण मिलते गये हैं। इसीलिये विरोधमें जबतक कोई दृढ़ और सर्वमान्य प्रमाण प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक हम वैवस्तत मनुसे ही अपने इतिहासका आरम्भ माननेके लिये विवश हैं।

आधुनिक विद्वानोंका बहना है कि यदि वैवस्तत मनुसे राजाओंकी वंश-परम्परा मानी गयी है, तो पुराणोंमें इतने अल्प नाम क्यों आये हैं? नामोंकी संख्या तो हजारों-लाखोंतक जा सकती थी! इसके अतिरिक्त

वे यह भी कहते हैं कि पुराणोंमें प्रत्येक राजाकी हजारों वर्षोंकी आयु लिखी है, जो पुराणकर्ताओंकी कोरि कल्पना तथा अविश्वसनीय बात है।

उदाहरणस्वरूप, बालमीकीय रामायणमें वर्णित महाराज दशरथके इस वाक्यको लीजिये कि—

षष्ठिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुर्महसि ।

(१।२०। १०-११)

'हे कौशिक! मैंने साठ हजार वर्षोंकी आयु विताकर इस वृद्धावस्थामें बड़ी कठिनतासे रामको पाया है। अतः मैं इन्हे देनेमें असमर्थ हूँ।' इतना ही नहीं, 'राम'के विषयमें भी कहा गया है कि—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

'दस हजार, दस सौ वर्ष राज्य करनेके बाद राम ब्रह्मलोकको जायेंगे।' पुराणोंमें वर्णित इस तरहके सारे वाक्य अनर्गल हैं।

पर, हमारे ये विद्वान् इन ग्रन्थोंके रचनाकालका ज्ञान ठीकसे नहीं रखते हैं और न यह बात ही जानते हैं कि शब्दोंके अर्थोंमें कब और कितना परिवर्तन हुआ और हो रहा है। प्राचीन मीमांसादर्शनमें 'वर्ष' शब्दका अर्थ 'दिन' आया है। इस विषयपर मीमांसादर्शनमें अनेक विचार हैं और वहाँ यह भी कहा गया है कि 'शतायुर्वै पुरुषः' अर्थात् मनुष्यकी आयु सौ वर्ष ही श्रुतिमें मानी गयी है। उसके विरुद्ध अधिक आयु मनुष्यकी नहीं मानी जा सकती। श्रुतिमें ऐसे भी वाक्य मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि सौ वर्षसे कुछ ऊपर भी मनुष्योंका जीवन होता है। किंतु ज्योतिषशास्त्रमें अधिक-से-अधिक एक सौ बीस वर्ष

एक सौ चौवालीस वर्षकी आयु निश्चित की गयी है। जहाँ वर्ष शब्दका अर्थ दिन माननेपर आयु बहुत अधिक प्रतीत हो, वहाँ एक हजार वर्षका अर्थ एक वर्ष मानना चाहिये। इस प्रकार दशरथके साठ हजार वर्ष-वाले कथनमें साठ हजार वर्ष शब्दका अर्थ होगा—पूरे साठ वर्ष। स्मृति या पुराणोमें सत्ययुग, त्रेतायुग आदिमें जो चार सौ या तीन सौ वर्षकी मनुष्यकी आयु लिखी गयी है, उसका तात्पर्य है कि सत्ययुग, त्रेतायुग आदिका परिमाण कलियुगसे चतुर्भुण या त्रिगुण माना जाता है। इसलिये कलियुगके सौ वर्ष ही उन युगोंके चार सौ या तीन सौ कहे जाते हैं। इससे उन वाक्योंका श्रुतिसे विरोध नहीं समझना चाहिये। इसी प्रकार बहुत-बहुत कालके अन्तरपर होनेवाले राजाओंके समयमें भी किसी एक ऋषिके ही अस्तित्वका वर्णन पुराणोमें पाया जाता है। उदाहरणके लिये वसिष्ठ और विश्वामित्रके अस्तित्वको लिया जा सकता है, जो हरिधन्द और उनके पिता विशंकु आदि राजाओंके समयमें भी उगस्थित हैं तथा दशरथ और रामके समयमें भी। इसी प्रकार परशुराम, भगवान् रामके समयमें उनसे धनुर्भज्जके कारण विवाद करते देखे जाते हैं और महाभारतकालमें भी भीष्म, कर्ण आदिको उन्होंने विद्या पढ़ायी, ऐसा भी प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि नाम कुलपारम्परिक नामका वोधक है। जबतक किसी विशेष कारणसे—प्रब्र आदिकी गणनाके लिये नामका परिवर्तन नहीं होता तबतक वही नाम चलता रहता था; किंतु भगवान् रामके राज्यका समय इतना लम्बा किसी प्रकार नहीं हो सकता, अतः समयका संक्रोच करना आवश्यक होगा। इसलिये दस सहस्र वर्षका अर्थ है—सौ वर्ष और दशशत वर्षका अर्थ है—दस वर्ष; अर्थात् रामने एक सौ दस वर्षोंतक राज्य करके ब्रह्म-

सायुज्य प्राप्त किया था। जहाँतक वंश-परम्परामें अत्यल्प नामोंकी चर्चा है, उसके सम्बन्धमें कहना है कि पुराणोंकी वंश-परम्परामें क्रमवद्ध सभी राजाओंके नाम नहीं दिये गये हैं, अग्रिम जिस वंशमें जो अत्यन्त प्रधान राजा हुए, उनके ही नाम पुराणोंमें वर्णित हैं। अनेक वर्णन-प्रसंगमें पुत्रादि शब्दका अर्थ उनका वंशज है। उदाहरण—रामके लिये 'रघुनन्दन' शब्दका व्यवहार आनुवंशिक है, न कि रघुका पुत्र। इस बातकी पुष्टि निम्नलिखित वाक्यसे भी होती है—

अपत्यं पितुरेव स्यात् ततः प्राच्चामर्पीति च ।

अर्थात् 'पिताका तो अपत्य होता ही है, उसके पूर्वपुस्त्रोंका भी वह अपत्य कहा जाता है।' इसके अतिरिक्त श्रीभद्रागवतमें परीक्षितके द्वारा राजाओंके वंश पूछनेपर श्रीशुकदेवजीका उत्तर है कि—

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप ।

न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षदातैरपि ॥

(१। १। ७)

'वैवस्त मनुका मैं प्रधानरूपसे वंश सुनाता हूँ। इसका विस्तार तो सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता।' इससे सिद्ध है कि वंशके नाम बहुत अधिक हैं। 'लिंगपुराण' तथा 'वायुपुराण' (उत्त०, अ० २६, श्लोक २१२)में भी राजाओंके वंश-कीर्तनके अन्तमें लिया गया है कि—

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः ।

वंशो प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥

'इक्ष्वाकु-वंशके प्रायः प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम कहे गये हैं।' यही कारण है कि जिनका विवाह आदि सम्बन्ध पुराणोंमें लिखा है, उनकी पीढ़ियोंसे बहुत भेद पड़ता है। उदाहरणके तौरपर इक्ष्वाकुके तीन पुत्र विकुञ्जि, निमि और दण्डक कहे गये हैं। उनमें विकुञ्जिके वंशमें प्रायः ५५ पुस्त्रोंके अनन्तर रामका अवतार वर्णित है और निमिके वंशमें प्रायः इक्कीस

पीढ़ीके अनन्तर ही सीताके पिता सीरध्वज जनकका नाम आता है। इस तरह दोनोंकी पीढ़ियोंमें लगभग एक हजार वर्षोंका अन्तर असम्भव-सा लगता है। इससे स्पष्ट है कि दोनों वंशोंके प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम पुराणोंमें गिनाये गये हैं। अतः जिस राजवंशमें प्रधान और प्रतीपी राजा अधिक हुए, उस वशके अधिक नाम आ गये हैं और जिस वशमें प्रधान राजा न्यून हुए, वहाँ न्यून नामकी ही गणना हुई है। राजाओंके वंश-वर्णनमें ऐसा भी भेद देखा जाता है कि किसी एक पुराणमें एक वंशके राजाओंके जो नाम मिलते हैं, वे दूसरे पुराणोंमें नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि जिस पुराणकारकी दृष्टिमें जो राजा प्रतापवान् और उल्लेखनीय माने गये हैं, उन्हींके नाम उस पुराणकारने गिनाये। कुछ पुराणकारोंने तो संक्षिप्तिकरणके विचारसे भी ऐसा किया है। पुराणोंमें वंश आदिके वक्ता पृथक्-पृथक् ऋषि आदि हैं, जो पुराणवाचकोंको स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि पुराणोंकी पीढ़ियोंमें प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम गिनाये गये हैं और भेद भी मिल जाते हैं। राजवंशोंके नाम बहुत पुराणकारोंने लोकश्रुतिके आधारपर भी लिखा है, जिस लोकश्रुतिमें सम्पूर्ण राजवशके प्रत्येक राजाका नाम आना असम्भव था। लोकश्रुति तो प्रधान और अवतारी पुरुषोंका ही स्मरण रखती है, अन्य लोगोंको छोटकर किनारे कर देती है। किंतु वंशानुगत यदि सभी राजाओंके नाम और समय उपलब्ध हो जाते तो ठीक-ठीक काल-गणनाका आधार प्राप्त हो जाता। परतु ऐसा नहीं है, अतः पुराणोंमें काल-गणनाका जो विस्तार वैज्ञानिक रीतिसे किया गया है, उसे न मानकर अपनी प्रज्ञासे उसका सक्रोच करना उपयुक्त नहीं है।

सूर्यवंशका विवेचन

सक्षिप्त रूपसे कालके निरूपण और अनुपत्तियोंके समाधानके निमित्त कुछ अन्य बातोंके साथ राजवंशोंका विवेचन आरम्भ किया जाता है। ऋषियोंके वर्णनका क्रम पुराणोंमें प्रायः नहीं मिलता। किसी-किसी पुराणमें ऋषियोंके वंशका कुछ अंश कहा गया है, पर राजवंशोंकी तरह ऋषि-वंशानुगत क्रम नहीं मिलता। इन पुराणोंमें भारतीय राजाओंके तीन वंश माने गये हैं—सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अग्निवंश। इन तीन दीप पदार्थोंके नामपर शत्रिय-वंशकी कल्पनाका रहस्य यह है कि सृष्टिमें तेज तीन प्रकारका ही प्रसिद्ध है—सूर्यका प्रखर तेज, चन्द्रका शीतल तेज और अग्निका अल्प स्थानमें व्याप्त दाहक तेज। इनमें भी मुख्य रूपसे सूर्य ही तेजके घन हैं। चन्द्रमाका तेज केवल प्रकाश-रूप है। उसमें उष्णता नहीं है। वह प्रकाश भी सूर्यसे ही प्राप्त है। अग्निमें भी तेज सूर्यके सम्बन्धसे ही प्राप्त होता है। विष्णुपुराणका कहना है कि सूर्य जब अस्ताचलको जाते हैं, तब अपना तेज अग्निमें अर्पित कर जाते हैं। इसीलिये अग्निकी ज्वाला रात्रिमें दूरसे दिखायी देती है* और दिनमें जब सूर्य अग्निसे अपना तेज ले लेते हैं, तब अग्निका केवल धूम ही दिखायी देता है—दूरसे ज्वाला नहीं दीख पड़ती। यही कारण है कि पुराणोंमें सूर्यवंश ही मुख्य माना गया है। चन्द्रवश और अग्निवंशको उसीके शाखा-रूपमें प्रतिपादित किया गया है। इनमें भी अग्निवशका वर्णन पुराणोंमें अल्प मात्रामें ही प्राप्त होता है। महाभारत-युद्धके अनन्तर ही चौहान आदि अग्निवशियोंका प्रभाव इतिहासमें दीख पड़ता है। महाभारत-युद्धतक सूर्यवंश और चन्द्रवशका ही विस्तार मिलता है।

* प्रभा विवस्वतो रात्रावस्त गच्छति भास्करे। विश्वग्निमतो रात्रौ वहिंदूरात्प्रकाशते ॥

(विष्णुप० ३। ८। २४)

प्राण-प्रक्रियाके साथ मनुष्यचरितका साझ्य

पुराणोकी यह प्रक्रिया है कि प्राण अथवा प्राणजन्य पिण्डोंके साथ ही मनुष्यका चरित मिला दिया जाता है। पुराणोमें प्राण या प्राणजनित पिण्डोंका विवरण प्रायः ब्राह्मण-ग्रन्थोंके ही आधारपर है। सूर्यवंशके आरम्भमें भी उसी प्रक्रियाका अवलम्बन किया गया है। उनमें तेजके पिण्डरूप सूर्य और सोमधन-रूप चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है।

सूर्यकी पाँच पत्नियाँ-सूर्यकी पाँच पत्नियोंका वर्णन पुराणोमें मिलता है—प्रभा, संज्ञा, रात्रि (राज्ञी), वडवा और छाया। इनमें आनी पुत्री संज्ञाको त्वष्टाने सूर्यको प्रदान किया था। उसके वैवस्त मनु, यम और यमुना नामकी तीन सन्ताने उत्पन्न हुईं। सज्ञा अपने पति सूर्यका तेज सहन नहीं कर सकती थी। अतः अपनेको अन्तर्हित कर देनेका विचार करने लगी। उसने अपने ही रूपकी छाया नामक एक दीयोंको उत्पन्न किया और उसे अपने सानपर रखकर स्थंय वडवा बनकर सुमेरु प्रान्तमें चली गयी। जाते समय उसने छायासे कहा—‘इस रहस्यको सूर्यसे प्रकट मत करना।’ छायाने कहा—‘गूर्ध जवतक मेरा केश पकड़कर न पूछेंगे, तबतक मैं नहीं कहूँगी।’ बहुत कालतक इस रहस्यका भेद नहीं खुल सका और सूर्य छायाको ‘संज्ञा’ ही समझते रहे। रूप, गुण और व्यवहारसे छाया संज्ञाके समान ही थी, अतः ‘सवर्णा’ नामसे भी अभिहित हुई। छायाके सावर्णि मनु, शनैश्वर, ताती नदी और विष्णु नामकी चार सन्ताने उत्पन्न हुईं। कुछ समय बीतनेपर छाया अपनी सन्तानोंसे अधिक प्रेम करने लगी और अपनी सपलीकी सन्तानोंका तिरस्कार करने लगी। इस विपर्मताको वैवस्त मनु

सहन नहीं कर सके और गूर्धगे शिकायत की—‘मौं छाया, हममें और शनैश्वर आदिमें भेदका व्यवहार करती है।’ तत्पश्चात् मूर्धने अपनी पत्नी छायासे इसका वारण पूछत। छायाकी ओरसे जब योर्ध उत्तर नहीं मिल सका, तो सूर्यने कोथर्गे आकर उसके माथेका बाल पकड़ लिया और उसने इष्ट धीर्घांक वृत्त वनलानेके लिये उसको वाष्य किया। छायाने अपनी पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार रांजावाली वालका रूप्य प्रकट कर दिया और कहा—‘आपकी वाम्तविक पत्नी मंजा अपने स्थानमें मुझे रखकर वह स्थंय बटवारूप धारण करके चली गयी है।’ इस रहस्यको जानकर गूर्धने अद्यक्षा रूप धारण किया और सज्ञाको हँडने निकल पड़े। हँडनेके क्रममें मंजा सुमेरु-प्रान्तमें पिर्णा और मूर्धने अपने अधररूपसे ही उसके साथ समागम किया। इस समागमके फलस्वरूप बटवा-रूपगरी मुद्रासे ‘नासन्य’ और ‘दस्त’ नामकी दो सन्ताने उत्पन्न हुईं, जो ‘अश्विनी’में उत्पन्न होनेके कारण ‘अश्विनीकुमार’ नामसे ही देवताओंकी गणनामें प्रसिद्ध हैं। फिर त्वष्टाने सूर्यको अपने सानपर चढ़ाकर इनका वेदौल रूप हटाया और सुन्दर शुद्ध रूप बना दिया। तत्पश्चात् पुनः संज्ञा सूर्यके पास आ गयी।*

इन विपर्योका प्रतीकात्मक आशय यह है कि गूर्ध-मण्डलके चारों ओर प्रभा व्याप्त होती है और सर्वदा सूर्यके साथ रहती है। अतः उसे सूर्यकी पत्नी और सहचारिणी कहा गया है। उस प्रभासे ही प्रातःकाल होता है, इसीलिये ‘प्रभात’ को प्रभाका पुत्र बताया गया है। सूर्यके उस्ताचल चले जानेपर ही रात्रि होती है, जिसका राम्बन्ध सूर्यसे होता है। अतः रात्रिको सूर्य-पत्नियोंमें गिना गया है। सूर्यका जब प्रकाश फैलता है,

—बायुपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय २२; मत्स्यपुराण अध्याय ११ और पञ्चपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८, इलोक

तो छपर या खिड़की आदिके छोटे-छोटे छेदोमें रेणुकण उडते हुए दीखते हैं। वही 'सुरेणु' नामसे अभिहित हैं और सभी प्राणियोमें संज्ञा, अर्थात् चेष्टा सूर्यसे ही प्राप्त दीख पड़ती है। इसीलिये श्रुतिका कथन है—'प्राणः प्रजानासुदयत्येप सूर्यः' अर्थात् सूर्यपिण्ड ही सारी सृष्टिमें प्राप्त-रूपसे उदित है। इसीलिये संज्ञा सूर्यकी सहचारिणी है, जिसे पुराणोंमें सूर्यकी पत्नी कहा गया है। तथा सभी प्राणरूप देवताओंके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंके संगठनका कारण बनता है। 'विशकलित', अर्थात् प्रकीर्ण भावसे विखरे हुए सभी प्राण त्वष्टा-रूप प्राणशक्तिसे ही संगठित होकर अपना रूप ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि त्वष्टा भी प्राणियोंकी चेष्टा (संज्ञा) में कारण बनता है। अतः संज्ञाको त्वष्टाकी पुत्री भी बतलाया गया है। पृथ्वीपर सीधे अनेवाले सूर्यके प्रकाशका ही 'संज्ञा' या प्रभा नाम शास्त्रोमें कहा गया है। जो प्रकाश किसी भित्ति आदिसे रुक्कमिर तिरछे आता है, वह 'छाया' या 'सर्वर्णा' नामसे अभिहित है। स्मरण रहे कि जहाँ हम छाया देखते हैं, वहाँ भी सूर्यका प्रकाश अवश्य है। वहाँ सूर्यकी किरणे भित्ति आदिसे प्रतिहत होकर आती हैं—सीधी नहीं आर्ती। अतः इसका नाम 'छाया' या 'सर्वर्णा' रखा गया। सूर्यका तेज सहन न करनेके कारण 'संज्ञा' अपने स्थानमें 'छाया' या 'सर्वर्णा'को रखकर चली गयी। संज्ञासे पहले वैवस्त मनु उत्पन्न हुआ एवं 'सर्वर्णा' या 'छाया'से 'सार्वर्णि' मनुका जन्म हुआ—इत्यादि वानोंका यही आशय है कि सीधी किरणोंसे जो अर्द्धेन्द्र बनता है, वह 'वैवस्त मनु' और प्रतिहत किरणोंसे बननेवाला अर्द्धेन्द्र 'सार्वर्णि मनु' कहा जाता है।

मनुकी उत्पत्तिका वैज्ञानिक विवरण पुराण-परिशीलनके द्वितीय खण्डमें मण्डलोकी उत्पत्तिके प्रसगमे किया जा चुका है। 'संज्ञा' और 'सर्वर्णा'से 'यमुना' और 'तामी' नामकी दो नदियोंकी उत्पत्तिका रहस्य हमने अन्यत्र लिखा है। यमकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है—इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यमण्डलसे ही प्राप्त होनेवाली सभी प्राणियोंकी आयु जब किसी शक्तिसे विच्छिन्न होकर दूट जाती है तब प्राणियोंकी मृत्यु होती है। सूर्य और उससे उत्पन्न होनेवाली आयुको परस्पर विच्छिन्न करनेवाली शक्तिका नाम ही 'यम' है। वह यम-रूप शक्ति भी कहीं बाहरसे नहीं आती, अपितु सूर्यसे ही उत्पन्न होती है। इसका योड़ा विवरण हमने 'भृगु' और 'अग्नि'वाले प्रकरणमें दिया है। 'सर्वर्णा'से उत्पन्न शनैश्चरको भी सूर्यका पुत्र बताया गया है। इसका तात्पर्य है कि 'शनि'नामक तारा सूर्यसे इतनी दूरीपर है कि वहाँ सूर्यकी किरणे सीधी पहुँच ही नहीं पातीं—कुछ बक होकर ही वहाँ पहुँचनी हैं; इसीलिये उसे 'सर्वर्णा' या 'छाया' से उत्पन्न बतलाया गया है। शनि इतना बड़ा है कि अनेक सूर्य उसमें प्रवेश कर सकते हैं। वह भी इस ब्रह्माण्डकी परिधिपर है, इस कारण उसे सूर्यका पुत्र कहा गया है। जितने भी तत्त्व ब्रह्माण्ड-परिधिपर हैं, वे सभी इस सूर्यसे उत्पन्न माने जाते हैं। सूर्यका जो प्रकाश सुमेरुकी परिधिमें जाता है, उसे ही प्राणरूप 'अश्व' कहते हैं। 'संज्ञा' जब वडवा-रूपसे सुमेरु-प्रान्तमें चली गयी, तो सूर्य भी अश्व बनकर सुमेरु-प्रदेशमें पहुँचे और वहाँ अश्व और अश्विनी (वडवा)का संयोग हुआ, जिससे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। सुमेरु पृथ्वीकी परिधि है अर्थात् प्रान्त भाग है। वहाँ सूर्य-किरणोंकी अन्यथा ही स्थिति हो जाती है। वहाँ

अश्विनी नक्षत्रकी आभाके साथ सूर्यकी किरणोंका अद्भुत समागम होता है, जिससे वहाँका वातावरण अन्य स्थानोंसे भिन्न हो जाता है।

इद्वाकु-पूर्ववर्णित सूर्यवंशी वैवस्त मनुसे ही इद्वाकुकी उत्पत्ति पुराणमें कही गयी है। प्रत्येक मन्त्रत्तरमें ब्रह्मासे मनुके उत्पन्न होनेकी कथाका वर्णन आता है और मनुको ही सभी प्राणियोंका स्पष्ट माना जाता है। यही पुराणोंकी प्रक्रिया है। पुराणोंकी प्रक्रियामें सूर्यको ही ब्रह्मारूप माना गया है और उनसे वैवस्त मनुकी उत्पत्ति कही गयी है। एक दिशामें जानेवाले प्राणोंके प्रवाहको मनु कहते हैं। इसी कारण सभी प्राणी वृत्ताकार न बनकर लम्बे होते हैं और उनकी आकृतिके एक भागमें ही शक्ति प्रधान रूपसे रहती है, जिसकी चर्चा पहले भी की गयी है।

पुराणमें लिखा है कि मनुने अपनी छोंकसे इद्वाकुकी उत्पत्ति की। इसका भी तात्पर्य मनुकी प्राणस्तपतासे ही है। हमने पूर्व ही 'वराह' के प्रकरणमें लिखा है कि विचार करते हुए ब्रह्माकी नाकसे एक छोटा-सा जन्तु निकला और वही बढ़कर वराहके रूपमें

परिणत हो गया। वही प्रक्रिया यही भी समझनी चाहिये। प्राणका व्यापार गुद्यगुद्यमें नाकसे हुआ करता है और मनु अद्वन्द्व प्राण है, अतः उसकी भी सृष्टि नाकसे ही वतलायी गयी है। यही प्राणस्य देवताओंके चरित्रकी संगति मनुष्य-प्राणियोंमें पुराणोंमें मिला दी जाती है। इन सबका तात्पर्य यही है कि सूर्यवंशमें मनुष्य-रूप राजाओंका प्रारम्भ इद्वाकुसे ही होता है। यदि इनके बिना आदिका मनुष्य-रूपमें वर्गन अपेक्षित हो, तो यही कहना होगा कि सूर्य या आदित्य नामका कोई पुरुष-विशेष भी था और उससे मनु नामका कोई पुत्र उत्पन्न हुआ। उसीसे इद्वाकुका जन्म हुआ। इसी इद्वाकुसे उत्पन्न सूर्यवंशके प्रधान राजाओंका वर्गन विस्तारसे पुराणोंमें है और जिन राजाओंके कुछ अनुत कर्म हैं या जिनके कार्योंका विज्ञानसे भी सम्बन्ध जोड़ा गया है, उनके चरित्रोंका भी विवरण विशेषरूपसे पुराणोंमें है।

'पावनी नः पुनातु'

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुखलासयन्ती
स्वर्णोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्सखलन्ती ।
द्वोणीपृष्ठे लुठन्ति दुरितचयन्तम् निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोर्धि पूर्यन्ती सुरत्नगरसरित् पावनी नः पुनातु ॥

[लोक-कल्याणमें प्रवीण सूर्यवंशीय भगीरथकी भव्य भावनाने गर्भीर प्रयत्नके द्वारा जिस सफलता-सुरसरितकी अवतारणा की उनसे पावनताकी प्रार्थनामें कृपि वात्मीकिजी गङ्गास्तोत्रमें कहते हैं—]

ब्रह्माण्डको विखण्डितकर आती हुई, महादेवके जटाजटको सुजोभित करती हुई, सर्वगलोकसे गिरती हुई, सुमेरु पर्वतके सभीप विशाल चट्टानोंसे टकराती हुई (सूर्यवंश भगीरथके प्रयत्नसे) पृथ्वीपर आकर वहती हुई एवं पापोंकी प्रवल सेनाको नितान्त त्रास देती हुई तथा समुद्रको पग्निर्ण करती हुई पावनी दिव्य नदी (भगीरथी) हम सबको पवित्र करे।

सूर्यकी उत्पत्ति-कथा—पौराणिक दृष्टि

(लेखक —साहित्यमार्तण्ड प्रो० श्रीरंजनसूर्यदेवजी, एम० ए० (त्रय), स्वर्ण पदक प्राप्त, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालि-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थी, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

सूर्य आगम-निगम-सत्त्वत और ज्ञान-विज्ञान-सम्मत देवाधिदेव परम देवता है। उन्हे लोकजीवनके साक्षी और सांसारिक प्राणियोंकी औँखोंका प्रकाशक कहा गया है। इसीलिये उनको 'लोकसाक्षी' और 'जगच्छक्षु' कहते हैं। निरुक्तके अनुसार आकाशमें परिभ्रमण करनेके कारण उन्हे सूर्यकी सज्जा प्राप्त है। वे ही लोकको कर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा लोकरक्षक होनेसे रविके नामसे उद्घोषित हुए हैं।^१

प्राचीनतम वैदिक ऋषि-मुनिसे आधुनिकतम वैज्ञानिक-तक सूर्यके भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणोंसे भलीभौति परिचित होते रहे हैं। अतएव सूर्यसे भावपूर्ण समर्क स्थापित करनेके लिये उन्होंने सूर्योपासनाको विश्वधर्म और संस्कृतिका अनिवार्य अङ्ग बना दिया। फलतः भगवान् सूर्य सम्पूर्ण विश्वके लिये अधिष्ठाताके रूपमें अङ्गीकृत हो गये। रोग-सम्बन्धी जीवाणुओंके शमनके लिये सूर्य-किरणोंकी उपयोगिता चिकित्साशास्त्रसम्मत है और बनस्पति-शास्त्रमें बनस्पतियोंकी अभिवृद्धिके लिये सूर्यकिरणोंकी उपादेयता स्वीकार की गयी है। कृष्ण-विज्ञानके अनुसार वर्षके हेतु मेघके निर्माणके लिये सूर्यज्योति अनिवार्य है।^२

आरोग्य-कामना, निर्धनता-निवारण और संतति-प्राप्ति आदिकी दृष्टिसे तो सूर्यकी पूजा एवं उनके स्तोत्रोंके पाठका व्यापक प्रचलन है। कर्मकाण्डमें सूर्यको प्रथम पूज्य देवकी प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्यको अर्ध देनेके बाद ही देवकार्य या पितृकार्यका विधान सर्वसम्मत है। तन्त्रासार या आगमपद्धतिमें तो सूर्यविज्ञानकी अत्यन्त महिमा है।^३ योगासनोंमें भी 'सूर्यनमस्कार'को प्राथमिकता दी गयी है। निस्सन्देह सूर्य जागतिक जीवोंके प्राणपोषक, सर्वसम्मादायसम्मत लोकतान्त्रिक अजातशत्रु देवता है। शास्त्र एवं पुराणोंमें ऐसा निर्देश है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करता है, वह हजार जन्मोंमें भी दरिद्र नहीं होता।^४ मार्कण्डेयपुराणके अनुसार प्रातःकालीन सूर्य जिस घरमें शश्यापार सोये हुए पुरुषको नहीं देखते, जिस घरमें नित्य अग्नि और जल वर्तमान रहता है और जिस घरमें प्रति दिन सूर्यको दीपक दिखाया जाता है, वह घर लक्ष्मीपात्र होता है।^५ इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि आरोग्यकामी मनुष्योंको सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये।^६ जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे सम्पूर्ण संसार प्रकाशित

१. (क) सरति आकाशे—इति सूर्यः। (ख) सुवति कर्मणि लोक प्रेरयति इति सूर्यः। (ग) रूपते-इति रविः।
 (घ) अवतीमास्त्रान् लोकास्तसात् सूर्यः परिभ्रमात्। अचिरात् प्रकाशेत अवनात् स रविः स्मृतः॥

२. धूमज्योतिः सलिलमरुता सन्निपातः कव मेघः। (मेघदूत १ । ५)

३. सूर्यविज्ञानके चमत्कारीपक्षके विशद विवरणके लिये द्रव्यव्य—‘सूर्यविज्ञान’ शीर्षक प्रकरण ‘भारतीय संस्कृति और साधना’ (खण्ड २, पृष्ठ १६१), म० म० प० गोपीनाथ कविराज, प्र०विहार राष्ट्रभाषा परिपद, पट्टना-४।

४. आदित्याय नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्य नोपजायते॥

(—आदित्यहृदयस्तोत्र)

५. भास्कराद्वृशश्यानि नित्याभिसलिलानि च। सूर्यवलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम्॥

(—मा० पु० ५० । ८१)

६. आरोग्यं भास्करादिच्छेदधनमिच्छेदधुताशनात्। ज्ञानं च शङ्करादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेजनाद्नात्॥

(—भागवते व्यास-वचनम्)

हैं, उसी प्रकार सूर्यकी महिमासे समन्त विश्वाज्ञय मुखरित है।

यह सर्वज्ञत है कि जो देवता जितने महान् होते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा उननी ही अद्भुत होती है। पुराणोंमें वर्णित महामहिम देवता सूर्यकी उत्पत्तिकथा न केवल विचित्र ही है, अपितु इसमें सूर्यके वैज्ञानिक आयामोंका रूपकात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है।

प्रजापति ब्रह्माको जब सृष्टिकी कामना हुई, तो उन्होंने अपने दायें अँगूठेसे दक्षकी और वार्येसे उनकी पर्नीका सृजन किया। ब्रजपुत्र मरीचिका ही दूसरा नाम कल्यप था। दक्षकी तेरहवीं कन्याके रूपमें उत्पन्न अदितिके साथ कल्यपका विवाह हुआ। कल्यपके द्वारा स्थापित अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यने जन्म लिया। उन भागवान् सूर्यसे ही समस्त सचराचर जगत्‌का आविर्भाव हुआ। अदितिने पहले सूर्यकी आराधना की थी, इसीलिये वे अदितिके गर्भसे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।

ब्रह्मके मुखसे पहले 'ॐ' प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, भुवः और स्वः उत्पन्न हुए। यह व्याहृतित्रय ही आदिदेव सूर्यका खरूप है। साक्षात् परब्रह्म-खरूप 'ॐ' सूर्यका द्वृक्षम् रूप है। फिर यथाक्रम उनके 'महः, जनः, तपः और सत्यम्' इन चार स्थूलसे स्थूलतर रूपोंका आविर्भाव हुआ। 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्' ये सूर्यकी सप्तमूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। आदि तेज 'ॐ' के स्वभावसे जो तेज उत्पन्न हुआ, वही आदि तेजको सम्यक्‌रूपसे आद्वित करके अवस्थित हुआ। फिर वादमें ब्रह्माके मुखसे निकले हुए ऋक्‌मय, यजुर्मय और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज परस्पर मिलकर उक्त थाद्य तेज 'ॐ' पर अधिष्ठित हो गये। इस प्रकार एकत्र तेजःपुक्षसे विश्वमें व्याप्त हो गये।

गमीर अन्वकार नष्ट हो गया और सम्पूर्ण स्थावर-जड़मात्मक जगत् सुनिर्मल हो उठा। दसों दिशाएँ किरणोंकी प्रखर कान्तिसे चमकने लगीं। इस प्रकार ऋग्यजुः-सामजनित छन्दोमय तेज मण्डलीभूत होकर ऊँकारखरूप परमतेजके साथ मिल गया और यही अव्ययात्मक तेज विश्वसृष्टिका कारण बना। अदितिसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'आदित्य' कहा जाता है; किंतु पुराणोंके अनुसार, सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण ही सूर्यको 'आदित्य' नामसे सम्बोधित करते हैं।

ऋक्, यजुः और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज क्रमशः प्रातः, मध्याह और अपराह्नमे ताप देते हैं। पूर्वाहके ऋक्तेजकी संज्ञा शान्तिक, मध्याहके यजुस्तेजकी पौष्टिक और सायाहके सामतेजकी आभिचारिक है। सूर्यका तेज सृष्टिकालमे ऋक्मय ब्रह्माखरूप, स्थितिकालमे यजुर्मय विष्णु-खरूप तथा संहारकालमे साममय रुद्रस्तरूपमें प्रतिष्ठित रहता है। इसीलिये सूर्यको वेदात्मा, वेदसंस्थित, वेदविद्यामय और परमपुरुष कहा जाता है। सूर्य ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके हेतु एवं सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके आश्रय हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन त्रिदेवोंके प्रतिरूप भी सूर्य ही हैं। इसीलिये देवतागण सदा-सर्वदा इनकी स्तुति करते हैं।

उपरिवर्णित परमतेजोमय सूर्यसे जब संसारका अधः, ऊर्ध्व और मध्यमाग सन्तास होने लगे, तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भयब्रह्म हो उठे कि इस आदित्यसे सम्पूर्ण सृष्टि ही भस्म हो जायगी। अतः वे सूर्यकी स्तुति करने लगे। तब उनकी प्रार्थनापर सूर्यने अपने तेजका संवरण कर लिया। फिर तो ब्रह्माने समग्र चराचर जगत्—वन, नदी, पहाड़, मनुष्य, पशु, देवता, दानव और उरग आदिकी विराट् सृष्टि की।

अदितिसे देवता, दितिसे दैत्य तथा दनुसे दानव उत्पन्न हुए। अदिति, दिति और दनुके पुत्र सारे संसारमें फैल गये। देवों और दैत्य-दानवोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। इस देवासुर-संग्राममें देवता पराजित हो गये। हारे हुए देवोंकी दीनता और म्लानि देखकर अदिति अपनी संतानोंकी मङ्गलकामनासे सूर्यकी आराधना करने लगीं, तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर अदितिसे कहा—‘मैं तुम्हारे गर्भसे सहस्रांशु होकर जन्म लेंगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।’

भगवान् सूर्यकी किरणोंके सहस्रांशुने देवमाता अदितिके गर्भमें प्रवेश करके अवताररूपमें अवस्थित हुआ। अदिति वड़ी सावधानीके साथ पवित्र रहकर, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करती हुई दिव्य गर्भ धारण किये रही। उनकी कठोर तपश्चर्याको देख पतिदेव कश्यप कुद्ध होकर बोले—‘नित्य निराहार व्रत करके इस गर्भाण्डको क्यों नष्ट कर रही हो?’ अदितिके उत्तरमें आस्था अनुस्थारित हुई—‘यह गर्भाण्ड नष्ट नहीं होगा, वरन् शत्रुओंके विनाशका कारण बनेगा।’ यह कहकर क्रोधाविष्ट अदितिने देव-रक्षक तेजःपुज्ञस्त्ररूप अपने गर्भाण्डका परिस्ताग किया। गर्भाण्डके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब कश्यप सूर्य-सदृश तेजस्वी उस गर्भको देखकर प्राचीन ऋग्वेदोक्त मन्त्रोंसे उसकी विनम्र प्रार्थना करने लगे। उस गर्भाण्डसे रक्तकमलके समान कान्तिमान् एक बालक प्रकट हुआ, जिसके तेजसे सभी दिशाएँ समुद्घासित हो उठीं। फिर तो गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—‘कश्यप! तुमने अदितिसे कहा था कि क्यों गर्भाण्डको मार रही हो, इसीलिये इस पुत्रका

नाम ‘मार्तण्ड’ (मारिताण्ड) होगा। यह पूर्ण समर्थ होकर सूर्यके अधिकारका कार्य करेगा और यज्ञका भाग हरनेवाले असुरोंका विनाशक होंगे।’ इस आकाश वाणीको सुनकर परम हर्षित देवता आकाशसे उतरे और दैत्य तेजो-बलसे हीन हो गये। पुनः देवताओं और दानवोंमें भीषण संग्राम हुआ; किंतु मार्तण्डके तेजसे सभी असुर जलकर भस्म हो गये।

इसके बाद प्रजापति विश्वकर्मनि अपनी पुत्री सज्जाका उन परम तेजस्वी मार्तण्डके साथ विवाह कर दिया। सज्जासे भगवान् सूर्यके तीन सन्तानें—दो पुत्र (वैवस्त मनु और यम) और एक कन्या (यमुना) उत्पन्न हुई। परतु मार्तण्डके विम्बका अखिलभुवन सन्ताप-कारी तेज संज्ञाके लिये असह्य हो गया। तब उसने अपने स्थानपर अपनी छायाको रख दिया और स्थंयं पिता विश्वकर्मके घर लौट गयी।

छायासे भी सूर्यने तीन सन्तानें—दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न कीं। वैवस्त मनुके तुल्य बड़ा पुत्र सावर्णी नामसे प्रसिद्ध हुआ। दूसरा पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुआ और पुत्रीका नाम ‘तपती’ रखा गया। ‘तपती’ को महाराज संवरण विवाहके निमित्त अपने साथ ले गये। छाया अपने औरस बच्चोंसे जैसा प्यार करती थी, जैसा प्यार सौतेली सन्तानोंको नहीं दे पाती थी। छायाके इस अपराधको वैवस्त मनुने तो सहन कर लिया, किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। वह सौतेली मौंपर चरणप्रहार करनेके लिये उद्यत हो गया। फलतः उसे मौंके अभिशापका भागी होना पड़ा। हालोंकि अन्तमे वह शापमुक्त होकर, ‘धर्मराज’ नामसे सम्बोधित होने लगा।

१-सहस्राशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः ।	त्वत्सुत्रशत्रूनदिते नागयाम्याशु निर्वृतः ॥
२-मास्ति ते यतः प्रोक्तमेतदण्ड त्वया मुने । तसान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति ॥	(— मार्कण्डेयपुराण १०५ । ९)
सूर्यधिकारं च विभुज्ञगत्येप करिष्यति । हनिष्यत्यसुरश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ॥	(— मा० पु० १०५ । १९-२०)

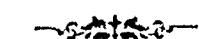
संज्ञाके विरहसे व्याकुल सूर्यने अपना तेज क्षीण करनेके लिये श्वशुर विश्वकर्मसे आग्रह किया । तब विश्वकर्मा उनके मण्डलाकार विम्बको चाक (सान) पर चढ़ाकर तेज घटाने के लिये उद्धत हुए । फिर शाकद्वीपमें सूर्य चाकपर चढ़कर धूमने लगे । चक्रारुद्ध सूर्यके परिभ्रान्त होनेसे सारे जड-चेतन जगतमें उथल-पुथल मच गयी । पहाड़ फट गये, पर्वतशिखर चूर्ण-विचूर्ण हो गये । आकाश, पाताल और मर्त्य—तीनों लोक एवं मुवन व्याकुल हो उठे । इस प्रकार विश्व-विश्वसकी स्थिति उत्पन्न हो गयी । सभी देवी-देवता भयक्रान्त होकर सूर्यकी स्तुति करने लगे ।

विश्वकर्मने सूर्यविम्बके सोलह भागोंमें पद्धत भागोंको रेत डाला । फलतः सूर्यका प्रचण्ड तापकारी शरीर मृदुल मनोरम कान्तिसे कमनीय हो गया । विश्वकर्मने सूर्यतेजके पद्धत भागोंसे विष्णुके चक्र, महाटेवके त्रिशूल, कुवेरकी शिविका, यमके दण्ड और कार्तिकेयके शक्ति-पाशकी रचना की एवं अन्यान्य देवोंके प्रभाविति

विमिन अस-दास बनाये । अब सूर्यके मञ्जुल रेतिष्ठान् शरीरको देव्यभर संज्ञा परम प्रसन्न हुई ।

इस प्रकार भारतीय कला चेतनाके प्रतीक सूर्यकी उत्पत्तिकी कथा शेष-वहन स्पष्टान्तरोंके साथ विभिन्न पुराणोंमें वर्णित है । यह कथा अधिकांशतः मार्कण्डेयपुराणपर आधृत है तथा विशेषकर भविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व), वराहपुराण (आदित्योत्तिं अध्याय), विष्णुपुराण (द्वितीय अश), शूर्पुराण (४०वें अध्याय), मत्स्यपुराण (३० १०१) और वद्यवेवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड) आदिमें वर्णित है । इसीलिये प्रायः सभी इन तेजोधाम भगवान् सूर्यकी प्रार्थनामें ननर्थीर्पि हैं ।

यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभो ।
स नः प्रसीदनां भास्वान् जगनां यश्च जीवनम् ॥
यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दशम् ।
छिंतीयमैन्द्रवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु ॥
ताभ्यां च यस्य रूपाभ्यामिदं विद्वं विनिर्मितम् ।
अग्नीपोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु ॥
(—मा० पु० १०१ । ७२-७४)



जय सूरज

(रचयिता —प० श्रीसूरजचंद्रजी शाह० 'सत्यप्रेमी' (डॉगीजी)

जय सूरज सबके उजियारे ।

आदि नाथ आदित्य प्रभाकर, नारायण प्रत्यक्ष हमारे ॥ जय०
तेज स्वरूप, बुद्धिके प्रेरक, सावित्रीके राजदुलारे ॥ जय सूरज० ॥ १ ॥
परम प्रचण्ड गुणोंके उद्गम, अग्नि-पिण्ड, व्रह्माण्ड सहारे ॥ जय सूरज० ॥ २ ॥
ज्योति अखण्ड अनन्त तुम्हारी, खण्ड-खण्ड ग्रह-उपग्रह-तारे ॥ जय सूरज० ॥ ३ ॥
दिव्य रश्मियोंके दर्शनमें, ऋषि-मुनियोंने तत्त्व विचारे ॥ जय सूरज० ॥ ४ ॥
सबके मित्र विकाल विधाता, सभी देव प्रिय प्राण तुम्हारे ॥ जय सूरज० ॥ ५ ॥
क्षण-क्षणके अणु-अणुमें व्यापक, तन-मन सबके रोग निधारे ॥ जय सूरज० ॥ ६ ॥
रस वरसाते अन्न पकाते सबने पूज्य तुम्हें स्तीकारे ॥ जय सूरज० ॥ ७ ॥
निर्गुण सर्वगुणात्मक अहुत, सर्वात्मा प्रभु इष्ट हमारे ॥ जय सूरज० ॥ ८ ॥
तुम हो निर्मल ज्ञान दान दो, 'सूर्यचंद्र' तन, मन, धन वारे ॥ जय सूरज० ॥ ९ ॥



पुराणोंमें सूर्यवंशका विस्तार

(लेखक—डॉ० श्रीभूषणसिंहजी राजपूत)

सभी धर्म एवं सभ्य जातियाँ अपने-अपने धर्मचार्यों तथा शासकोंकी वंशावलियों सुरक्षित रखती हैं। सेमेटिक धर्मोंकी वंशावलियों आदिम आदमी आदमसे शुरू होती हैं। बाइबिलके पूर्वार्ध भागमें आदमसे लेकर जलपृष्ठवन-कालीन नवी नूह तथा बाढ़के अब्राहम, इस्साक और मूसा प्रभृति महापुरुषोंकी वंशावलियों संकलित हैं। बाइबिलके उत्तरार्ध भागमे महात्मा ईसाकी वशावली भी इनमे मिला दी गयी है। मुस्लिम धर्मग्रन्थोंमें ऐसी वंशावलियों हैं, जिनके द्वारा हजरत मोहम्मदका सम्बन्ध इस्साकके सौतेले भाई इस्मायलसे जोड़ा जाता है। ईरानके पारसी तथा मुस्लिम नरेशोंकी वंशावलियोंका संकलन महमूद गजनवीने फिरदौसी नामक अपने एक मुस्लिम दरवारी कविसे शाहनामा नामक ग्रन्थमें कराया था। कहनेका अभिप्राय यह कि वंशावलियाँ सभ्य-समाजमें सर्वत्र ही समादृत हैं।

हमारे देशमें इतिहासका प्रमुख स्रोत होनेके कारण वंशावलियोंका संकलन पुराणोंमें बहुत शुद्धता एवं गवेषणात्मक ढंगसे किया गया है। प्राचीन साहित्यमें पुराणोंका सम्बन्ध इतिहाससे इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्बन्धित रूपसे इतिहास-पुराण नामसे अनेक स्थानोंपर उल्लिखित हुए हैं। महाभारत भी स्पष्टको इतिहासोत्तम कहता है (आदिपर्व २। ३-५)। इसी प्रकार वायु-पुराण पुराण होनेपर भी अपनेको पुरातन इतिहास बतलाता है (देखिये वा० पु० १०३। ४८-५१)। इसीलिये पुराणके पञ्च लक्षणोंमें वंशावलियोंके वर्णनका भी विधान है—

सर्वश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरराणि च ।

वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराणोंमें विष्णुपुराणका एक विशिष्ट स्थान है। यह पुराण वैष्णव-दर्शनका मूल आलम्बन है। इसके

सू० अ० ३०-३१—

खण्डोंका नाम अंश है, जिनकी संख्या ३६ है तथा अध्यायोंकी संख्या १२६ है। इस पुराणका चतुर्थ अंश विशेषतः ऐतिहासिक है। इस अंशमें अनेक क्षत्रिय-वंशोंकी वंशावलियाँ दी गयी हैं, जिनके वशधर वर्तमानमें राजपूत हैं।

पुराणोंमें वर्णित इतिहासकी सत्यताकी जौच अन्य प्रामाणिक शिलालेखों तथा मुद्राओंके द्वारा सिद्ध होती है। श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल तथा डॉ० मिश्री-प्रभृति विद्वानोंने बड़े परिश्रमसे ऐसे अनेक प्रमाण जुटाये हैं, जिनमें पुराणगत बहुत-से राजचरितोंकी सत्यता प्रमाणित हुई है। पश्चिमके प्रसिद्ध विद्वान् पार्जिटर महोदयने इन अनुश्रुतियोंकी प्रामाण्य-सिद्धि में अनेक प्रमाण तथा युक्तियाँ दी हैं। आपका महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ ‘ऐश्वियण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल टेडीशन’ पुराणोंके अन्तर्ज्ञ ऐतिहासिक महत्वको विद्वानोंके सामने इस प्रकारसे प्रमाणभूत तथा यथार्थ सिद्ध करता है कि आज पौराणिक अनुश्रुतियों पूर्ववत् अविश्वासपूर्ण नहीं मानी जाती हैं।

दो-एक उदाहरण यहाँ देना अप्रासङ्गिक न होगा। पुराणोंमें राजा विन्ध्यशक्तिके चार पुत्रोंका उल्लेख मिलता है, जब कि कुछ समय पहलेके इतिहासकार केवल एक ही गौतमीपुत्रका अस्तित्व मानते थे। किंतु पुनः खुदाईमें प्राप्त हुई मुद्राओंसे इस बातकी पुष्टि हुई कि उसके एकाधिक पुत्र थे।

इसी प्रकार आन्ध्रोंके विषयमें भी पौराणिक अनुश्रुतियोंकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है। शिशुनाग, नन्द, शुक्र, कण्व, मित्र, नाग, आन्ध्र तथा आनन्दभृत्य इत्यादि राजवशोंकी समग्र ऐतिहासिक सामग्रीकी उपलब्धि पुराणोंकी देन है।

पुराणोंकी अनुश्रुतियोंमें सूतोने राजाओंकी वंशावलियोंको बड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखा है। जहाँ-कहाँ इन वंशावलियोंमें एक ही नामके अनेक राजाओंका वर्णन आता है, वहाँ सूतोने इन नामोंसे होनेवाले भ्रमको दूर करनेके लिये स्पष्ट विभाजन किया है; यथा—नैषधन्तल और इद्वाकु-न्तल, करन्धमका पुत्र मरुत्त तथा अविक्षितका पुत्र मरुत्। इसी प्रकारसे ऋक्ष, परीक्षित, तथा जनमेजय दो-दो और भीमसेन तीन हुए हैं। परंतु यह उल्लेख पुराणोंमें इतनी सफाईसे किया गया है, जिससे मानना पड़ता है कि यह वर्णन पुराणकारोंके ऐतिहासिक एवं यथार्थ ज्ञानका परिचायक है। सत्य तो यह है कि यदि अवतक्के शिलालेखों, ताम्रपत्रों या मुद्राओंके आधारपर उनकी पुष्टि नहीं हुई है तो यह असम्भव नहीं है कि भविष्यकी खोजे उसकी पुष्टि कर सकें।

पौराणिक वंशावलियोंमें सूर्यवंशका बहुत ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यही वह वंश है, जिसमें धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रोंमें चमकनेवाले अनेक नक्षत्र प्रकट हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्रमें ऋषभदेवजी, श्रीरामचन्द्रजी, सिद्धार्थ गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ-कुमार वर्धमान महावीर स्वामी, दशमेश-पिता गुरु गोविन्दसिंह, गुरु जम्बेश्वरजी (विश्वोर्व गुरु), सिद्ध पीर गोगाढेवजी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा भगीरथ आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार राजनीतिक इतिहासके आकाशमें चमकनेवाले नक्षत्र-सदृश महाराणा प्रतापसिंह, राजरानी मीराबाई, महारानी पद्मिनीदेवी, इन्हींके वंशज छत्रपति शिवाजी महाराज, भारतके अन्तिम प्रतापी सम्राट् पृथ्वीराज चौहान, अग्रवाल-वंशके आदि पुरुष महाराजा अग्रसेनजी, वीर वैरागी लक्ष्मणसिंह, बन्दा बहादुर तथा असी व मसीके सिद्धहस्त कलाकार राजा भोजको कौन भुला सकता है।

*

इसी प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन विष्णुपुराणके आधारपर यह अकिञ्चन अग्रलिखित कुछ पंक्तियोंमें करनेकी कोशिश करता है। इस विषयमें महाकाव्य कालिदासका रघुवंशमें कथन है—

ऋग्यप्रभवो वंशः ऋव चाल्पविषया भविः ।
तिर्तीर्पुर्दुस्तरं मोहाद्वुपेनास्मि सागरम् ॥
(सर्ग १ । २)

आदिकवि वाल्मीकि कहते हैं—

सर्वा पूर्वमियं येपामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा ।
प्रजापतिसुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ॥
इद्वाकूणामिदं तेषां राजां वंशो महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥
(वा० २० १ । ५ । १, ३)

सर्वप्रथम भगवान् विष्णु जो अनादिदेव हैं, जिनकी नाभिसे ब्रह्माजीका आविभवि हुआ तथा जिनके यहाँ सूर्यदेव हुए, आनेवाली सन्तानि इनके ही कारण सूर्यवंशी कहलायी।

सूर्यके प्रतापी पुत्र विवस्वान् मनु हुए, जिनके पुत्र मनु हुए। इनकी ही सन्तान होनेसे सभी—नरनारी मनुष्य मानव कहलाते हैं। मनुजीके प्रतापी पुत्र जो भगवान् विष्णुके अशावताररूपमें उत्पन्न हुए, इद्वाकु-कुल-संस्थापक ऋषभदेवजीके नामसे लोकविल्यान है, उन्हें श्रमण विचारधाराके जैनमनावलम्बी लोग भी प्रथम तीर्थकर मानते हैं। विकुञ्जि इनके उद्यमु पुत्र थे, जिनका शशाद या शशांक नाम भी प्रचलित है। ये अयोध्याके शासक बने तथा इनके कनिष्ठ भ्राता निमि मिथिलाके संस्थापक हुए। जैनलोग इन निमि महाराजको भी अपना एक तीर्थकर मानते हैं। इन्हींकी वार्दीसर्वी पीढ़ीमें सीताके पिता महाराज सीरध्वज जनक हुए है।

विकुञ्जिकी पाँचवीं पीढ़ीमें पृथ्वीपति पृथु और आठवीं पीढ़ीमें श्रीवस्ती नगरीके संस्थापक शावस्त हुए तथा सतरहवीं पीढ़ीमें महाराज प्रतापी सम्राट् मान्धाता हुए हैं। इनका एक विरुद राठौर भी है, क्योंकि ये राठ फाड़कर निकले थे। मान्धाताकी बारहवीं पीढ़ीमें

महाराज त्रिशंकु हुए, जो अपने पुरोहित ऋषि विश्वामित्रके तपोबलसे सदेह स्वर्गारोहण कर गये । इन्हीं महाराज त्रिशंकुकी सत्तान सत्यवादी हरिश्चन्द्र हुए, जिनका नाम दानवीरों तथा सत्यवादियोंमें सर्वप्रथम लिया जाता है ।

राजा हरिश्चन्द्रकी बादवीं पीढ़ीमें महाराज दिलीप हुए, जिन्होंने गुरुकी गायकी रक्षाके लिये अपना शरीर सिंहको देनेका प्रस्ताव किया था । दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जो पुण्य सलिला गङ्गाजीको धराधामपर लाये । भगीरथी नदी इनका अमर स्मारक है । इन्हीं भगीरथकी पाँचवीं पीढ़ीमें प्रतापी अम्बरीष हुए और आठवीं पीढ़ीके राजा ऋतुपर्ण, दमयन्तीपति नलके समकालीन थे । सत्रहवीं पीढ़ीमें उत्पन्न राजा खट्टवाङ्ने देवासुर-संप्राप्तमें देवपक्षकी ओरसे भाग लेकर अपनी वीरता दिखायी । इन्हीं खट्टवाङ्नके पौत्र हुए महाराज रघु, जिनके कारण इनके वंशज रघुवंशी कहलाये । इसी रघुकुलके विषयमें रामचरितमानसमें लिखा गया है—‘रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुं बह वचनु न जाई ॥’ महाराज रघुके पौत्र राजा दशरथ थे, जिनके यहाँ भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें सातवाँ अवतार लिया था ।

श्रीराम सूर्यकी छाठठवीं, ऋषभदेवकी बासठवीं, हरिश्चन्द्रकी तैतीसवीं तथा भगीरथकी इक्कीसवीं पीढ़ीमें हुए थे । भगवान् रामके परमपवित्र जीवन-चरित्रिको कौन ऐसा भारतीय होगा जो न जानता हो । आपका उदात्त चरित्र देशों, धर्मों तथा जातियोंकी सीमाओंको लॉघकर भारतके बाहर भी समानरूपसे लोकप्रसिद्ध है । अनेक पाठ्कोंको यह जानकर आश्वर्य होगा कि विश्वके सबसे बड़े मुस्लिम राष्ट्र इण्डोनेशिया, विश्वके सर्वाधिक जनसंख्यावाले देश चीन, विश्वके एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल, एशियाके इकलौते ईसाई राष्ट्र फ़िलीपीन्स,

तथा विश्वके सभी बौद्धराष्ट्रोंकी अपनी-अपनी सम्पत्ति राम-कथाएँ हैं । सभीमें स्थानीय पुष्टके कुछ एक स्थलोंको छोड़कर मूल कथा वही है, जो वाल्मीकिरामायणकी है । ऐसा लगता है कि इस वातको हजारों वर्ष पूर्व भविष्य-दृष्टि वाल्मीकिजीने भौपकर ही यह लिखा था—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

भारतीय राजनीतिमें महाराज रामचन्द्रजीका रामराज्य आज भी एक आदर्श बना हुआ है ।

श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र हुए, जिनमें कनिष्ठ लघ थे जो श्रावस्तीके शासक बने । इनकी तिरासीवीं पीढ़ीमें राजा कर्ण हुए हैं, जिनके विषयमें प्रचलित धारणा है कि श्राद्धोंका प्रचलन आपके ही द्वारा किया गया और इसीलिये श्राद्ध कर्णांगत (कनागत) भी कहे जाते हैं । महाराज लघकी सत्तावनवीं पीढ़ीमें सिद्धार्थ हुए, जिनके कनिष्ठ पुत्र वर्धमान महावीरके नामसे विद्यात हुए । आपने श्रमण-विचारधाराको समुचितरूपसे अवगुणित कर वर्तमान जैनमत-का प्रवर्तन किया है । (इसी वंशसे आगे चलकर जोधपुर, वीकानेर तथा ईंडर (गुजरात) और किशनगढ़ आदि राजधानीोंका निकास हुआ था) ।

श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुश अयोध्याके राजा बने । इस वंशमें कुशकी इकतीसवीं पीढ़ीमें राजा वृहद्वल हुए । उन्होंने महाभारतके युद्धमें कौरवपक्षकी ओरसे लड़ते हुए अभिमन्युके हाथों वीरगति प्राप्त की । राजा वृहद्वलके बाद उनका पुत्र वृहत्क्षण सिंहासनारूढ हुआ और पाण्डवोंसे उसकी मैत्री हुई । राजा वृहद्वलकी बाईसवीं पीढ़ीमें राजा संजय हुए । इनके एक राजकुमार अपने परिजनोंके साथ मुनिवर कपिल गौतमके आश्रममें रहने ले गए । वहाँ शाक-वृक्षोंका बड़ा भारी बन था । अतः ये राजकुमार तथा इनका परिवार शाक्यनामसे

प्रसिद्ध हुआ। महाकवि अश्वघोष (ईसापूर्व प्रथम शती) ने 'सौन्दरामन्द'में लिखा है—

शाकबृक्षप्रनिच्छन्नं धासं यस्मात् चक्षिरे ।
तस्माद्विश्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाष्या इति स्मृताः॥

इक्ष्वाकुवंशी रघुकुलवाले क्षत्रियोंकी यह शाखा शाक्यके साथ-साथ गौतम भी कहलायी, क्योंकि—

तेपां सुनिरुपाध्यायो गौतमः कपिलोऽभवत् ।
गुरुयोगादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥

(वही)

इन्हीं राजपुत्रोंने बालान्तरमें गुरु कपिलकी सृष्टिमें एक नगर बसाकर उसका नाम कपिलवस्तु रखा और उसे अपनी राजधानी बनायी। शाक्यराजके वंशमें महाराज शुद्धोदन एवं पद्महिपी मायादेवीके यहाँ मानवजातिको जन्म, रोग, बुद्धापा और मृत्युके भयसे मुक्तिका मार्ग दिखानेके लिये राजकुमार सिद्धार्थके रूपमें भगवान् विष्णुका अवतरण हुआ। ये शाक्य-सिंह भगवान् शुद्धके

नामसे विख्यात हुए। वैष्णव लोगोंके साथ-साथ दक्षिण एवं पूर्व एशियाके करोड़ों अन्य लोग भी आपको भगवान् मानवर पूजा करते हैं। थोड़ ही समय-तक राजवंशव एवं गृहस्थाश्रमका उपयोग करके आप संन्यासी हो गये।

आपके पुत्र राजकुमार राहुल हुए। विष्णुपुराणमें यह वंशावली आगे भी चलती है। राहुलके बाद प्रसेनजित, क्षुद्रवा, कुण्डल, मुरथ और सुवित्र ऋग्मशः राजा हुए। इसके बाद इस राजवंशका वर्णन पुराणमें नहीं है। ऐसे तो इस वंशके लाखों लोग अब भी नेपाल एवं भारतमें वर्तमान हैं।

यहाँ हमने बहूत ही संक्षेपमें प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन किया है। यह वर्णन पुराणोंमें पर्याप्त विस्तारसे दिया हुआ है। जिनासु विद्वान् वहाँसे देख सकते हैं। पुराणोंसे आगेरे राजवंशोंका वृत्तान्त अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं।

सुमित्रान्त सूर्यवंश

सूर्यवंशीय राजवंशोंका वृत्तान्त 'वृहद्वल'के बाद अनेकाले सुमित्र अन्तिम राजा है। उसमें उन्तीस राजाओंकी नामाचली आती है। उस नामाचलीमें सुमित्र अन्तिम राजा का आदिपुरुष प्रथम वृहद्वलको कहा गया है और अन्य पुराणोंमें वृहद्वलको। इसी प्रकार विभिन्न पुराणोंकी उक्त नामाचलियोंकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रमरूप और नामोंमें भी थोड़ा-वहुन परिवर्तन अवश्य हुआ है। महाभारत-संग्राममें वृहद्वल भी सम्प्रिलिन हुआ था और वह अभिमन्युके हाथोंसे गारा गया—यह महाभारत-युद्धमें योग देनेवाले राजाओंकी सूचीसे स्पष्ट है। उसमें भी अनेक नाम ऐसे हैं जो किसी कारण-विशेषसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं, परंतु अधिकतर अप्रसिद्ध ही हैं। विष्णुपुराण-(४। २२। १३)में राजाओंके नाम गिनानेके बाद यह इलोक आया है—

इक्ष्वाकूणामयं	वंशसुमित्रान्तो	भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥		

अर्थात् इक्ष्वाकुओंके वंशका अन्तिम राजा 'सुमित्र' होगा, जिसके बाद इस वंश-(सूर्यवंश-) की स्थिति कलियुगमें ही समाप्त हो जायगी। इसका नात्पर्य यह है कि इस वंशका अन्तिम प्रतापी राजा सुमित्र होंगे, किंतु आज भी भारतमें सूर्यवंशीय परम्परा सर्वधा दृटी नहीं है—वल रही है।

भगवान् भुवनभास्कर और उनकी वंश-परम्पराकी ऐतिहासिकता

(लेखक—डॉ० श्रीरजनजी, एम० ए०, पी-एच० डी०)

भारतीय देवी-देवताओंके जन्म, उनके माता-पिता, जाति-वश और कर्म आदिका इतिहास हमारे प्राचीन साहित्यमें उपलब्ध होता है। यह सब कुछ आगम और अनुमानके आधारपर ही है। देवताओंके अस्तित्वकी सिद्धि कहीं आगमसे और कहीं अनुमानसे प्राप्त होती है। ये इनके अस्तित्वको सिद्ध करते हैं। कहीं-कहीं प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी इनके अस्तित्वको सिद्ध किया जाता है। यह सत्य भी है कि जो समस्त शरीरधारियोंद्वारा देखा जाता है, वह अवश्य ही प्रमाण है। इस प्रकार आगम, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर देवी-देवताओंका अस्तित्व भारतीय संस्कृतिमें स्थीकार किया जाता है। शास्त्र और भगवान् वासुदेवके वार्तालापसे यह बात सिद्ध होती है। इस परिप्रेक्ष्यमें शास्त्रकी जिज्ञासा बहुत ही महत्वपूर्ण है। अतः उन्होंने भगवान् वासुदेवसे अपनी उत्कण्ठा प्रकट करायी—

या चाक्षगोचरा काचिद्द्विशिष्टेषफलप्रदा ।
तामेवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम् ॥
(भविष्यपुराण प्रथम भाग सप्तमी कल्प अ० ४८ । २०)

अर्थात् जो देवता नेत्रोंके गोचर हों और विशिष्ट अभीष्ट प्रदान करनेवाले हों, उन्हींके विषयमें पहले मुझे बताइये। इनके अनन्तर अन्य देवताओंके विषयमें वर्णन करनेकी कृपा करेगे। फिर तो भगवान् वासुदेवने शास्त्रको बतलाया—

प्रत्यक्षं देवता स्थूर्यो जगच्छुर्दिवाकरः ।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यस्यति यत्र च ।
कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षादिवाकरः ॥
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च ।
आदित्या वस्त्रो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
लोकाः सर्वे नागा नागाः सरितः सागरास्तथा ॥

भूतत्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ।
अस्येच्छ्या जगत्सर्वमुत्पन्नं सच्चाचरम् ।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थं चानुप्रवर्तते ॥
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते ।
अस्मिन्भ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ॥
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥
इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते ।
वाद्यात्मेति सुपुरुणास्यः स्वप्रस्थो जाग्रतः स्थितः ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष देवता सूर्य हैं। ये इस समस्त जगत्के नेत्र हैं। इन्हींसे दिनका सूजन होता है। इनसे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और अन्त समयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होता है। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य-गण, वस्त्र-गण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः-स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींकी इच्छासे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमें प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ द्रिखलायी पड़ता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्तज्ञत हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह है कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। अतः समस्त वेदोंमें ‘परमात्मा’ नामसे ये पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें अन्तरात्मा इस नामसे गाया जाता है। ये वाद्य आत्मा, सुषुप्तास्य, स्वप्नस्थ और जाग्रत् स्थितिनिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य अर्थदेवता हैं। ये

अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको उत्प्रेरित करती रहती है—उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ। यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परन्तु उनका अवतार तो होता ही है। गीताकी पंक्तियाँ साक्षी हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(४।७)

तो उनका क्या अवतार हुआ? उन्होंने क्या जन्म प्रहण किया? 'हौं और नहीं' के ऊहापोहमे हमें प्राचीन साहित्यकी ओर जाना आवश्यक है। अतः आगे चलें। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम् ।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति ॥

अर्थात् मनुष्यके मानसिक, वाचिक अथवा शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशोष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् भुवन-भास्करकी जो आराधना करता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

इतिहासप्रसिद्ध देवासुरसग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया। तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठा रखनेके लिये सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माँ अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थी। उनका विवाह महर्षि कस्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुखी होकर उन्होंने सूर्यकी उपासना आरम्भ की। सोचा, भगवान् सूर्य भक्तोंको असीम फल देते हैं। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् ।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि ॥

(ब्रह्मपुराण २९।६१)

अर्थात् कस्यासिन्धु भगवान् सूर्यदेव तो एक दिनके पूजनसे वह फल देते हैं, जो शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों

यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिल सकता। यह जानकर माता अदिति भगवान् सूर्यकी निरन्तर उपासना करने लगी—'भगवन्। आप मुझपर प्रसन्न हों। गोप (किरणोंके स्वामिन्)। मैं आपको भलीमौति ढाख नहीं पाती। दिवाकर। आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोपर दिवा करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' तब भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।'

माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तल्लीन हो यम-नियमसे रहने लगी। कस्याजी इस समाचारको पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको भारतीय साहित्यमें मार्तण्डके नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमें प्राप्तकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कस्यपका जन्म हुआ। ये ही महर्षि कस्यप सूर्यके पिता हैं।

सूर्यके युवासम्बन्ध होनेपर उनका विवाह-संस्कार हुआ। उन्होंने क्रमसे तीन विवाह किये। संज्ञा, राज्ञी और प्रभा—उनकी ये तीन धर्मपत्नियाँ हैं। राज्ञी रैवतकी पुत्री हैं। इनसे रेवन नामका पुत्र हुआ। प्रभासे सूर्यको प्रभातनामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। इसमें संज्ञाकी कहानी बड़ी रोचक है। उसे हम पाठकोंके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिल्पाचार्य विश्वकर्माकी पुत्रीका नाम संज्ञा था । संज्ञाका परिणय भगवान् सूर्यसे हुआ । संज्ञाके गर्भसे वैवस्तुत मनुका जन्म हुआ । उन्होंसे सूर्यको जुड़वी संतान—यम और यमुना भी प्राप्त हुई । कहते हैं देवशिल्पी विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यके तेजको सहन करनेमें अपनेको असमर्थ पा रही थी । अतः वे एक दिन मनके समान गतिवाली घोड़ीका रूप धारण कर उत्तरकुरु (हरियाणा)में चली गयीं । जाते समय उसने सूर्यके घरमें अपनी प्रतिच्छाया प्रतिष्ठापित कर दी । सूर्यको यह रहस्य ज्ञात नहीं हो पाया । अतः प्रतिच्छायासे भी सूर्यको पुत्र सावर्णिमनु और शनि तथा कन्या तपती और विष्णु नामक संताने प्राप्त हुई । इन बालकोपर सूर्यका अगाध प्रेम था । किसीको भी यह रहस्य मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चोंकी माँ एक नहीं, दो हैं । पर विधाताके विधानको तो देखें; एक दिन छायाके विषमतापूर्ण व्यवहारका भण्डफोड़ हो गया । संज्ञाके पुत्रोंने शिकायत की । अतः भगवान् भास्कर कोधसे तमतमा उठे । उन्होंने कहा—‘भास्मिनि ! अपने पुत्रोंके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है ।’ पर इससे क्या होता । प्रतिच्छाया सज्ञा पुत्रोंके साथ अपने व्यवहारमें कोई परिवर्तन नहीं कर पायी । तब विवश होकर सज्ञापुत्र यमराजने बात स्पष्ट कर दी, कहा—‘तात ! यह हम लोगोंकी माता नहीं है । इसका व्यवहार हमलोगोंके साथ विमाताके समान है, क्योंकि यह तपती और शनिके प्रति विशेष प्यार करती है ।’ फिर तो गृहकलह छिड़ गया । पति-पत्नी दोनोंने कुद्दू होकर यमको शाप दे दिया । अपने शापवाक्योंसे जो किया, वह जगत्प्रसिद्ध यमराज और शनिके द्वारा हमें प्राप्त है । तब माता छायाने यमको शाप दे दिया—‘तुम शीघ्र ही प्रेतोंके राजा होओगे ।’ भगवान् सूर्य इस शापसे दुखित हुए । अतः उन्होंने अपने तेजोवलसे इसका सुधार किया, जिसके बलपर आज यम यमराजके रूपमें पाप-पुण्यका निर्णय करते हैं और सर्वमें उनकी प्रतिष्ठा है ।

साथ ही सूर्यका छायाके प्रति क्रोध भी शान्त नहीं हुआ । प्रतिशोधकी भावनासे छायाके पुत्र शनिको उन्होंने शाप दिया—‘पुत्र ! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें क्रूरता भरी रहेगी ।’ यही कारण है कि शनिके कोपभाजन होनेसे प्रायः हमारा अहित होता रहता है ।

अब भगवान् सूर्य ध्यानावस्थित होकर संज्ञाका पता लगानेका प्रयत्न करने लगे । ध्यानावस्थामें उन्होंने देखा—‘संज्ञा उत्तरकुरुदेश (हरियाणा)में घोड़ीका रूप बनाकर विचरण कर रही है ।’ अतः तत्काल उन्होंने अस्वका रूप धारण कर संज्ञाका साहचर्य प्राप्त किया । कहते हैं—संज्ञाके गर्भमें आत्म-विजयी प्राण और अपान पहलेसे ही विद्यमान थे । फिर तो समय पाकर वे सूर्यदेवके तेजसे मूर्तिमान हो उठे । इस प्रकार घोड़ी-रूपधारी विश्वकर्माकी पुत्री सज्ञासे दो पुरुष-रत्नकी उत्पत्ति हुई । यही दो पुरुष-रत्न अश्विनीकुमारके नामसे विद्ययात हैं । बात यहीं समाप्त नहीं होती है । सज्ञा सूर्यकी पराशक्ति है, पर सूर्यके तेजको सहन करनेमें वह अपनेको बराबर असमर्थ पाती रही । तदनन्तर पिता विश्वकर्मनि सूर्य-देवके तेजका हरण किया, तब कहीं सूर्य और संज्ञा—ये दोनों एक साथ रहने लगे । इस प्रकार सब मिलकर भगवान् सूर्यके दस पुत्र और तीन पुत्रियों हुईं ।

अब सूर्य-पुत्रोंके कुटुम्बका वृत्तान्त आगे प्रस्तुत है—
वैवस्तुत मनुके दस पुत्र हुए । उनके नाम इस प्रकार हैं—इद्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, कर्त्तुष और पृष्ठम् । ये सभी पिताके समान तेजस्वी और बलशाली थे । मनुकी इला नामकी एक कन्या थी । इलाका विवाह बुधसे हुआ । इन्होंसे पुरखाका जन्म हुआ । इसके बाद इलाने अपनेको पुरुष-रूपमें परिणत कर लिया । पुरुषरूपमें इलाका नाम सुद्युम्न हुआ । सुद्युम्नको तीन बलशाली पुत्र हुए—उत्कल, जय और विनताश्व ।

नामागसे परम वैष्णव अम्बरीप्रका जन्म हुआ। धृष्टसे धार्यक वंशका विस्तार हुआ है। शर्यातिको सुकन्या और आनंद नामकी सतानें प्राप्त हुईं।

इन दस पुत्रोंमें इक्ष्याकुकी वंशापरम्परा ही पृथ्वीपर विद्यमान है। शेष नौ पुत्रोंकी कहानी एक या दो पीढ़ियोंके बाद समाप्त हो गयी। इक्ष्याकु वंशको यहाँ संक्षिप्तमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

इक्ष्याकुके पुत्र विकुक्षि थे। ये कुछ समयतक दंवताओंके राज्यपर आधिपत्य जमाये रहे। इनके पुत्रका नाम ककुन्स्य था। ककुन्स्यसे पृथु, पृथुसे युवनाश्व और युवनाश्वसे श्रावन्तक हुए। इसीने श्रावन्तक नामकी नगरी बसायी। श्रावन्तकमें वृहदश्व और वृहदश्वरो युवलाश्व हुए। इनका दूसरा नाम धुन्धमार भी है; क्योंकि इन्होंने धुन्धमार नामके देव्यका वध किया था। इनके तीन पुत्र हुए—दद्वाश्व, दण्ड और कपिल। दद्वाश्वसे हर्यश्व और प्रमोदकका जन्म हुआ। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे सेहताश्वकी उत्पत्ति हुई। सेहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और रणाश्व। रणाश्वके पुत्रका नाम युवनाश्व था। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे। मान्धाताके दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए—पुरुकुल्स और मुचुकुन्द।

पुरुकुल्ससे त्रसदस्युका जन्म हुआ। इनका दूसरा नाम सम्भूत था। इनके पुत्रका नाम सुघन्वा था। सुघन्वासे त्रिधन्वा और त्रिधन्वासे तरुण हुए। तरुणसे सत्यवत और सत्यवतसे दानवीर महापराक्रमशाली हरिथन्दका जन्म हुआ। हरिथन्दसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे वृक, वृकसे वाहु और वाहुसे राजा सगरकी उत्पत्ति हुई। राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं। एकका नाम प्रभा और दूसरीका नाम भानुमती था। प्रभाको और्य मुनिकी कृपासे साठ हजार पुत्र हुए और भानुमतीसे राजा सगरके द्वारा असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। असमंजसके पुत्र अंगुमान और अंगुमानके राजा दिलीप हुए। राजा दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए। ये

राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये गङ्गाको धरतीपर लायं। अहंते हैं। राजा सगरके साठ हजार पुत्र महर्षिं कपिलके शापवश पृथ्वी खोदते समय भस्म हो गये थे।

भगीरथसे नामाग, नामागसे अभर्गीप और अभर्गीपमें सिंधुद्वीपका जन्म हुआ। सिंधुद्वीपके श्रुतायु, श्रुतायुके ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णके कल्मापपाद, कल्मापपादके सर्वकर्मा और सर्वकर्माक अनरण्य हुए। अनरण्यके निन्न, निन्नके दिलीप, दिलीपके रथ, रथसे अज और अजसे चक्रवर्ती सम्राट् दशरथका जन्म हुआ।

दशरथकी तीन पत्नियाँ थीं। कौसल्या, कंकेयी और सुमित्रा। इनके चार पुत्र हुए—गम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। रामने राघवका वध किया। वे अयोध्याके सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। महर्षि वाल्मीकि तथा हिंदीके प्रसिद्ध कवि तुलसीदासजीने इन्हेंकि चरितका वर्णन अपनी-अपनी रामायणमें किया है। श्रीरामका विवाह जनक-नन्दिनी जानकीसे हुआ। इनसे रामको दो पुत्र लव और कुश प्राप्त हुए। भरतको लक्ष और पुष्कल, लक्ष्मणको अंगद और चन्द्रकंतु, शत्रुघ्नको सुवाहु और शत्रुघ्नाती प्राप्त हुए।

इसके बाद की वंश-परम्परा निम्न प्रकार है—कुशसे अतिथिका जन्म हुआ। अतिथिसे निपत्र और निपत्रसे नलकी उत्पत्ति हुई (ये दमयन्तीके पति नहीं हैं)। नलसे नभ, नभसे पुण्डरीक, पुण्डरीकसे सुघन्वा, सुघन्वा-से देवनीक, देवनीकसे अहिनाश्व और अहिनाश्वसे सहस्राश्व हुए। सहस्राश्वके पुत्रका नाम चन्द्रलोक था। चन्द्रलोक-से नारीड, नारीडसे चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरिमें भानुरथ उत्पन्न हुए। भानुरथके पुत्रका नाम श्रुतायु था। इस प्रकार इस वंशका इतिहास बहुत ही बड़ा है। इसमें आज कुछ परिवार समाप्त हो गये हैं।

(प्रस्तुत वंशावली अग्निपुराण, भविष्यपुराण, व्रह्मपुराण, श्रीमद्भागवत, वाल्मीकिरामायण, कल्याणके 'इनुमान-अद्व', 'अग्निर्गंगसंहिता और नरसिंहपुराण-अद्व'के व्याधारपर हैं।)

सूर्यसे सृष्टिका वैदिक विज्ञान

(लेखक—वेदान्वेषक ऋषि श्रीरणलोडासजी 'उद्गव')

खयम्भू प्रजापति इस विश्ववृत्तिके कारण ही 'विश्वकर्मा' कहलाये; जिनकी यह पञ्चपर्वा विश्वविद्या 'निधामविद्या' कहलायी है। खयम्भू और परमेष्ठी—इन दो पर्वोंकी समष्टि १—'परमधाम' है; २—सूर्य 'मध्यम धाम' और चन्द्रमा एवं भूमिपिण्ड—इन दोनोंका समुच्चय ३—'अवधधाम' है। तीन धामोंमें एवं पाँच पर्वोंसे समन्वित यह विश्वविद्या विश्वकर्मा खयम्भू—प्रजापतिकी 'महिमा-विद्या' भी मानी गयी है। वेदमें कहा है—

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्तुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हृचिषि स्वधावः
स्वर्यं यजस्व तत्त्वं वृथानः ॥

(ऋक् ० १० । ८१ । ५)

अपने सर्वस आहुतिवाली सुप्रसिद्ध 'सर्वहृतयज्ञ' की स्वरूपसिद्धिके लिये यही अपने आकर्षणसे खयं 'यजस्व तत्त्वं वृथानः' स्वप्से सम्पूर्ण प्राणोंका आवाहन करता है।

तीनों धामोंमें मध्यम धाम 'रविधाम' मानवर्धमके बहुत अनुकूल होता है। वेदमहार्णव स० श्रीमधुसूदनजी ओङाने 'धर्मपरीक्षा-गणिका'में सिद्ध किया है कि—

'नियत्यानुगृहीतो मध्यमो भावो धर्मो न काष्टानुगतो भावः ।'

'विधियुक्त मध्यभाव धर्म है, अतिभाव नहीं ।'

'सूर्य तो स्थावर-जङ्गम जगत्के आत्मा हैं' इन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है—'सूर्य आत्मा जगतस्त्वयुपश्च'

(ऋक् ० १ । ११५ । १, यजु० ७ । ४२)

रविका सम्बन्ध वैश्वानरसे है। वैश्वानर दस कल्यावाला होनेके कारण विराट्पुरुष है। सम्पूर्ण 'पुरुपसूक्त' केवल इसी वैश्वानरवाले विराट्पुरुषका निरूपण करता है। इसी वैश्वानरकी ब्रैलोक्य-व्यापकता बतलाते हुए वेदमहर्णि पुरुपसूक्तमें कहते हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रापात् ।

स भूर्मि सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥

(यजु० २१ । १)

इस पुरुषके हजारो मस्तक हैं, हजारो ऊँगे हैं, हजारो पैरहैं। यह भूमिका सब ओरसे स्पर्श (व्याप) कर (अथ्यात्ममें) दशाङ्गुलका अनिकमण कर (दस अङ्गुलवाले प्रादेशमात्र) अर्थात् अंगुठेसे तर्जनीतककी लम्बाईके स्थानमें स्थित हो गया है।

सूर्य स्थावर-जङ्गम सृष्टिकी आत्मा है—

यदि ज्ञानप्रधान सूर्यका तेजोमय वीर्य बहुत थोड़ी मात्रामें पृथ्वीके वैश्वानर अन्नमें आटूत होता है, तो अर्थ-प्रधान 'अचेतनसृष्टि' होती है। इस सृष्टिमें दोनों ही भाग हैं, परंतु विशेषता पृथ्वीके भागकी ही है। इसकी प्रवलताके कारण अल्पमात्रामें आनेवाला सूर्यका तेज दब जाता है। इस सृष्टिमें जैसे सूर्यका ज्ञानभाग दबा हुआ है, उसी प्रकार अन्तरिक्षके वायुका भाग भी दबा हुआ ही है। इसीलिये अचेतनमें अपने स्वरूपकी वृद्धि नहीं है। पहले स्वरूपसे आगे बढ़ना 'व्यापार' है; व्यापार किया है, किया अन्तरिक्षकी वायुका धर्म है; उसका इसमें अभाव है, अतः यह जीवर्कर्ग जैसाका तैसा ही रहता है। कौंच, अध्रक (भोड़ल), मोती, हीरा, नीलम, माणिक्य (लाल), पुखराज, लोहा, तौबा, चौदी, सोना, हरताल, गन्धक और शिववीर्य

(पारा) आदि सम्पूर्ण जड पदार्थ अर्थप्रधान हैं । वैश्वानर—अग्निमय है ।

जगत् अग्नीषोमात्मक है । जैसे अङ्गिराप्रधान आग्नेयप्राण प्राण कहा जाता है, वैसे ही भृगुप्रधान सौम्यप्राण 'रथि' कहलाता है । प्राण अग्नि है और रथि सोम है । इसी अग्नीषोमात्मक प्राण-रथिसे विश्वका निर्माण हुआ है । इनमें सोमरूप रथि ही आगे-आगे होनेवाले संकोचसे मूर्च्छित होती हुई मूर्ति (पिण्ड) बनती है । मूर्च्छित सोम ही 'भूर्ति' है । मूर्ति अर्थ-प्रधाना है, द्रव्यप्रधाना है । इसका सम्बन्ध वैश्वानरको गर्भमें रखनेवाले सोमसे है । सोमका सम्बन्ध पिण्डसे है, अतएव इस अर्थमयी सृष्टिको अर्थात् 'धातुसृष्टि'को हम 'विष्णु' देवतासे सम्बद्ध मानते हैं । यही अचेतनसृष्टि, असंज्ञ, एकात्मक आदि नामोंसे प्रसिद्ध है । वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—इन तीनोंमेंसे इनमें केवल वाक्याला 'वैश्वानरात्मा' ही प्रधानरूपसे रहता है ।

दूसरी अद्वचेतनसृष्टि है । सूर्यका तेज कुछ अधिक आया और अन्तरिक्षकी वायुका भाग भी आया, दोनोंके आगमनसे सृष्टिमें कुछ अधिक विकास हुआ । इन दोनोंसे अद्वचेतनसृष्टि हुई । स्तम्भ (पुष्कर-गर्ण-प्राणीका पता शैवाल आदि) कुश, कास, वेलड़ियाँ, दूर्वादि छोटे तृण और केला, सुपारी, नारियल, छुहारा, ताड़ आदि बड़े तृणवर्ग एवं वृक्षादि सब अद्वचेतनसृष्टिके अन्तर्भूत हैं । इसमें अचेतनसृष्टिकी अपेक्षा यद्यपि सूर्यके ज्ञानकी अधिक सत्ता बतलायी है, परंतु इसमें आनेवाला सूर्यका भाग अन्तरिक्षकी वायुसे दब जाता है, इसलिये इसमें भी ज्ञानकी मात्राका पूर्ण विकास होने नहीं पाता । इनमें क्रियामय वायु है, इसलिये ये बढ़ते हैं एवं पृथ्वीका आकर्षण भी पूर्ण मात्रामें है, अतएव ये पृथ्वीसे पृथक् नहीं हो सकते । वहीं बँधे रहकर ऊपर बढ़ते हैं । इस प्रकार इनमें वैश्वानर और तैजस—

इन दो भूतात्माओंकी सत्ता सिद्ध हो जाती है । सुसावस्थामें हममें जो ज्ञान है, वही ज्ञान इनमें है । इनमें केवल चमड़ीका विकास है । इस एक इन्द्रियसे ही ये अनुभव करते हैं ।

तीसरी चेतनसृष्टि है । कृमि, कीट, पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व आदिका इसीमें अन्तर्भूत है । इसमें सूर्यके सर्वज्ञभागका विकास है । इस सृष्टिमें वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—ये तीन भाग हैं । दूसरे शब्दोंमें—इनमें ज्ञान, क्रिया और अर्थ—ये तीनों विकसित हैं । ज्ञानमय प्रज्ञाभागके आते ही चैतन्य जाग्रत् हो जाता है । इसके जाग्रत् होते ही इन्द्रियोंका विकास हो जाता है और सुसावस्था दूर हो जाती है । यही जीव-सृष्टि संसज्ज एवं तीन आत्मावाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध है । पहली सृष्टि धातुसृष्टि है, दूसरी सृष्टि मूलसृष्टि है एवं तीसरी सृष्टि जीवसृष्टि है ।

वृक्षादि मूलसृष्टिके पैर नहीं हैं, वे स्थयं 'पादरूप' हैं । पाद ही उनके पालक हैं । उन्हींके द्वारा पृथ्वीके रसका पानकर वे अपनी स्रस्यपकी सत्ता रखते हुए 'पादप' नामसे प्रसिद्ध हो रहे हैं । इस मूलसृष्टिने भूपिण्डको नहीं छोड़ा है, अतएव इसे 'अपादसृष्टि' कहते हैं । यहाँसे ऊपर (कृमिसे प्रारम्भकर मनुष्य-तक) की सृष्टि भूतलके मूलसे अलग हो जाती है । इस सृष्टिके पैरवाली होनेके कारण हम इसे 'सपाद'-सृष्टि कहते हैं । मनुष्योंके ऊपर आठ प्रकारकी देवसृष्टि है । वह भूतलसे पृथक् है, इसलिये इसे हम 'अपाद' कह सकते हैं । प्रारम्भमें अपाद है, अन्तमें अपाद है और मध्यमें सपाद है । वृक्षादि सृष्टिका मूलभूमिमें बँधा रहता है, अतएव यह सृष्टि 'मूलसृष्टि' कहलाती है । परंतु मध्यकी सृष्टि बन्धनसे अलग है, इसलिये यह अमूलसृष्टि है । इसी अभिप्रायसे ब्राह्मण-श्रुति कहती है—

'अयं पुरुषः—अमूल उभयतः परिच्छन्नोऽन्तरिक्ष-
मनुचरति । (शतपथ ग्रा० २।१।१३)

तीसरी सृष्टिकी प्रथम अवस्था कृमि है । यहाँसे उस सर्वज्ञकी चेतनाके विकासका प्रारम्भ है । सूर्यका तेज अधिक होनेके कारण अन्तःसंज्ञ जीव भूगिण्डके बन्धनसे अलग हो गये हैं । आकर्षणसे अलग होकर हिलने लगे और चलने लगे हैं । पृथ्वीका बल पहलेकी अपेक्षा कम हो गया है । यह ससंज्ञोमे पहली 'कृमिसृष्टि' है ।

सर्वज्ञ इन्द्र (सूर्य) प्रज्ञामय (ज्ञानमय) है । अव्ययपुरुषका विकास इसी भूमिमे होता है । सूर्य विज्ञानघन है । ये ही मघवा—इन्द्र हैं । इसी स्थानपर उस ज्ञानमय पुरुषका विकास है, अतएव ये सूर्यके इन्द्र 'प्रज्ञात्मक' कहलाते हैं । इसी अभिप्रायसे इनके लिये—'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा' कहा जाता है । इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर केनोपनिषद्मे कहा गया है कि 'अग्निके सामने यक्षने तृण रख्खा, परंतु अग्नि उसे न जला सकी, वायु उड़ा नहीं सकी, किंतु जब इन्द्र आये तो तृण और यक्ष दोनों अन्तर्लीन हो गये ।' इसका तात्पर्य यही है कि वह तृण ज्ञानमय था, यक्ष स्वयं ज्ञानब्रह्म था । अर्थप्रधान अग्नि और क्रियाप्रधान वायु—इन दोनोंकी अपेक्षा यज्ञ-ज्ञान विजातीय था, इसलिये इन दोनोंका उसमे लय नहीं हुआ, परंतु इन्द्र ज्ञानमय थे, अतएव सजातीयताके कारण यह ज्ञानकला उस महाज्ञानके समुद्रमे विलीन हो गयी ।

सारांश यही है कि सूर्यका प्राज्ञ इन्द्र अव्ययके ज्ञानसे युक्त है । इन इन्द्रको आधार बनाकर ही अव्यय आत्मा जीवरूपमे परिणत होता है, अतएव सूर्यको ही स्थावर-जड़मकी आत्मा बतलाया जाता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ।
(श० १।११५।१; य० ७।४२)

यह इन्द्रमय अव्यय आत्मा एक प्रकारका सूर्य है । इसका प्रतिविम्ब केवल अप् (जल), वायु और सोम (विल जल) पर ही पड़ता है ।

वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगाचः' (गोपथ प० २१९) —के अनुसार यही परमेष्ठी है । ईश्वरके शरीरका यही परमेष्ठी 'महान्' है । इसीपर उस चेतनमय सर्वज्ञका प्रतिविम्ब पड़ता है, महान् ही उसे अपने गर्भमें धारण करता है, अतएव इसके लिये—

मम योनिर्भहद्रब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
(गीता १४।३)

—इत्यादि कहा जाता है । महान् उसकी योनि है । वह योनि अप्, वायु और सोमके भेदसे तीन प्रकारकी है, अतएव तीन स्थानोंपर ही चेतनाका प्रतिविम्ब पड़ता है । यही कारण है कि चैतन्यसृष्टि सम्पूर्ण विश्वमें आया, वायव्या एवं सौम्याके भेदसे तीन ही प्रकारकी होती है । जलमें रहनेवाले मत्स्य (मछली) मगर, कैंकड़ा, तिमिङ्ग आदि सब जल-जन्तु आपजीव हैं । पानी ही इनकी आत्मा है । विना पानीके इनका चैतन्य कभी स्थित नहीं रह सकता । कृमि, कीट, पशु, पक्षी और मनुष्य—ये पौँछों जीव वायव्य हैं । वायु ही इनकी आत्मा है । चन्द्रमामे रहनेवाले आठ प्रकारके देवता सौम्य हैं । ये ही जीव हमारे इस प्रकरणके मुख्य पत्र हैं ।

हमारा मस्तक सौरतेजके आधिक्यसे सीधा खड़ा हुआ है । इस मनुष्य-सृष्टिके मध्यमें एक 'अर्ज्जमनुष्य'की सृष्टि और होती है; उसी सृष्टिसे सृष्ट 'वानर' नामसे प्रसिद्ध है । इसमे दोनोंके धर्म हैं । मनुष्य हाथोसे खाता है और श्रोणिभागसे बैठता है । पशु मुखसे खाता है और पैरोसे चलता है । वानरमे दोनों धर्म हैं । आप अपने हाथमें चने रखकर बंदरके सामने खड़े हो जाइये, बंदर मनुष्योंकी भाँति हाथसे उठाकर चने खा जायगा

एवं मनुष्यकी भौति श्रेणिभागसे बैठ जायगा; वह पशुओंकी भौति चारों हाथ-पैरोंसे चलना भी है। किंतु मनुष्योंके पूर्वज बंदर नहीं थे। 'डारविन थ्योरी'के अनुयायियोंको हम बतला देना चाहते हैं कि मनुष्यका (इस रूपमें) विकास मानना उनकी कोरी कल्पना ही है। मानव-सृष्टिमें नालच्छंद है, जब कि वानर-सृष्टि नालच्छंदसे अलग है। यह दोनोंमें महान् मौलिक भेद

है। 'वानर' (-वानर-विकल्पसे नर—) आधा मनुष्य और आधा पशु कहा जाता है। वानरके बाद मनुष्य-सृष्टिका विकास है। सूर्य और पृथ्वीके दो रसोंके तारतम्यसे होनेवाली इस भूतसृष्टिका वास्तविक रहस्य सूर्यमें सृष्टि-का विज्ञान सिद्ध करता है। वस्तुतः सूर्यसे हीं सृष्टि हुई है, इसीलिये कहा गया है कि सभी प्राणी सूर्यसे हीं उत्पन्न हैं—

'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'

भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०)

वैदिक साक्ष्य—मधुच्छन्दाके पुत्र महर्षि अघमर्णणने अपने ऋग्वेदीय एक सूक्तमें यह बताया है कि विवाताने सूर्यको पूर्वकल्पकी सृष्टिके अनुसार (इस कल्पके आरम्भमें) बनाया—

सूर्योचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

(-१० | १९० | ३)

मित्रावरुण-नन्दन महर्षि वसिष्ठने अपने श्रीविष्णु-सूक्तमें भगवान् विष्णु (और उनके सखा इन्द्र) को अग्नि, उपा और सूर्यका उत्पादक कहा है—

'उहं यज्ञाय चक्रयुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुपासमग्निम्'

(-ऋग्वेद ७ | १९ | ४)

पुरुष-सूक्तमें कहा गया है कि सूर्यका उद्गम विराट् पुरुष भगवान्के नेत्रसे हुआ था—

'चक्षोः सूर्यो अजायत्'

(-ऋग्वेद १० | ९० | १३)

गीताका मत—भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था कि अग्नि, चन्द्र और सूर्यमें जो प्रकाश है, उसे मेरा ही तेज समझो—

यदादित्यगतं तेजो जगद्वासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमस्ति यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(-गीता १५ | १२)

इसपर भाष्य करते हुए आचार्य शङ्करने लिखा है कि 'मामकं—मदीयं मम विष्णोस्तत्त्वोतिः' और आचार्य रामानुजने लिखा है कि—'पतेपामादित्यादीनां यत्तेजस्तन्मदीयं तेजः, तैस्तैराराधितेन मया तेभ्यो दत्तमिति विद्धि ।'

सूर्याधार ध्रुव—सूर्यका आधार ध्रुव है और ध्रुव तारावलीविग्रह शिशुमारके पुच्छभागमें अवस्थित है। शिशुमारके आधार स्थायं भगवान् नारायण हैं। नारायण उस (शिशुमार) के हृदयमें विराजमान हैं—

(अ) नारायणोऽयनं धास्तां तस्याधारः स्थयं ह्रदि ।

(आ) आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः ।

(इ) आधारभूतः सवितुर्द्वुचो मुनिवरोत्तम ।

ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः ॥

(-विष्णुपुराण २ | ९ | ४, ६, २३)

श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित वचन भी इस प्रसङ्गमें मननीय हैं—

भगवा ग्रहादयः ध्रुवमेवावलम्ब्य परिचड्कमन्ति ।

केचनैतत्त्वोतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति । यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः । (-५ | २३ | ३, ४, ५)

ग्रहोङ्गारा प्रदक्षिणीकृत—इस जगत्में तेजस्तत्व सर्वत्र अनुस्यूत है। कहीं उसकी उपलब्धि न्यून है तो कहीं अधिक। सूर्यमण्डल तो साक्षात् तेजोमय ही है। चन्द्र, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और हमारी यह पृथ्वी भी सूर्यकी परिक्रमामें सतत निरत है।

भास्करालोकन—उदय होते हुए और अस्त होते हुए अरुणवर्ण सूर्यमण्डलका दर्शन सुगमतासे किया जा सकता है। इन दोनों सम्धाओंसे अतिरिक्त दशामें सूर्यकी ओर देखते रहनेसे नेत्रोंमें विकारकी आशङ्का रहती है। इसीलिये भास्करालोकन वर्जित है—

भास्करालोकनाइलोलपरिचादादि वर्जयेत्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।३३)

आदित्यमण्डलके अधिष्ठाता चेतन देवता—आदित्य-मण्डलके अभिमानी देवता चेतन हैं। वे ही सूर्य हैं, जिन्हे भक्तजन अपनी प्रणामाङ्गलियाँ समर्पित किया करते हैं। भौतिक विज्ञानके विद्वान्‌की दृष्टिमें आदित्य-मण्डल केवल तेजःपुञ्ज है, किंतु वेदानुयायी सनातनधर्मकी मान्यताके अनुसार आदित्यके अभिमानी देवता सूर्य चेतन हैं—

ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शश्वदश्वेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति ।

अस्ति हौश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्म-भिक्षावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्।
(ब्रह्मसूत्र १।३।३३ पर शाङ्करभाष्य)

विग्रहवान् भगवान् सूर्य—श्रीसूर्यदेव कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। ‘अदिति’ माताके पुत्र होनेके कारण ये ‘आदित्य’ कहलाते हैं। इनके विग्रहका वर्ण वन्धुक (दुपहरिया) पुष्टके समान है। ये द्विभुज हैं और पद्म धारण किये रहते हैं। इनकी पुरीका नाम विवस्ती है—

विवस्तांस्तु सुरे सूर्ये तन्नगर्या विवस्ती ।
(अमरकोषकी व्याख्या सुधा टीकामें मेदिनीसे उद्धृत)

इनकी सज्जा-नामिका पत्नीके पुत्र हैं धर्मराज यम और पुत्री हैं यमुना देवी तथा छाया-नामिका पत्नीके पुत्र हैं शनिदेव। माठर, पिङ्गल और टण्ड इनके सेवक हैं, तथा गरुड़जीके भाई अरुण इनके सारथि है। इनके रथको सात घोडे चलाते हैं जिसमें केवल एक पहिया है।

याज्ञवल्क्यस्मृति (१।१२।२९७-३०२) के अनुसार सूर्यदेवकी प्रतिमा तौंचैकी बनानी चाहिये और इनकी आराधनाका प्रधान मन्त्र ‘आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः’—इत्यादि है। इनकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले हवनमें आकर्की समिधाका विधान है।

माणिक्य धारण करनेसे ये शुभ फल प्रदान करते हैं—‘माणिक्यं तरणः’ (—जातकाभरण, स्मृतिकौस्तुभ)।

श्रीमूर्यदेवसे ही महर्षि याज्ञवल्क्यने वृहदारण्यक उपनिषद् (ज्ञान) प्राप्त किया था—

क्षेयं चारण्यकमहं यदादित्याद्वासवान् ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३।४।११०)

तथा पवननन्दन आङ्गनेय श्रीरामदूत हनुमान्‌जीने भी इनसे शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यका उपस्थान—वैदिक मान्यता जनताके लिये विहित सध्योपासनाका एक अपरिहार्य अङ्ग है—सूर्योपस्थान, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्यने दैनिक कर्मोंमें गिनाया है—

सनातमन्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः ।

सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।२२)

यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखाका अनुसरण करनेवाले सम्धोपासक प्रतिदिन ‘उद्धर्य तमसस्परि स्वः’ (२०।२१), उद्गत्य जातवेदसमू (७।४१), चित्रं देवानामुदगादनीकम० (७।४२) तथा तच्चकुर्देवहितं पुरस्तात्० (३६।३४)—इन चार प्रतीकवाले मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान किया करते हैं। चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करते समय उपस्थाताके हृदयमें कैसी भव्य भावना भरी रहती

है; वह कहता है—‘हमलोग पूर्व दिशामे उड़ित होते हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोंतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोंतक दर्शन करते रहे।’

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओंमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है। एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्तुत्तरां दिवम् ।
द्वद्दोग्यं मम सूर्यं हरिमाणं च नाशय ॥
(ऋग्वेद १।५०।११)

शौनकने अपने वृहद्-देवता नामक प्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।
रोगञ्जश्च विपञ्चश्च सुक्तिसुक्तिफलप्रदः ॥

अर्थात् ‘उद्यन्नद्य०’—इत्यादि सूर्यदेवताका मन्त्र पापों-को नष्ट करनेवाला है। (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। सूर्योपासनाके साथ्यप्रद प्रभावके कारण भागवतमें यह वचन उपलब्ध होता है कि ‘आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।’

सत्राजितपर कृपा—प्राचीन कालमें इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुप्रहशील अवहार होता था। उपस्थापित सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके अश्वर सत्राजितको द्वारकामें सागर-तीरपर खय आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवसानग्रतः स्थितः ।
ततो विश्रवन्तं तं ददर्श चृपतिस्तदा ॥
प्रीतिमानथं तं द्वष्टा मुहूर्ते कृतवान् कथाम् ।
ततः स्यमन्तकमणि दत्तचांस्तस्य भास्करः ॥
(हरिवंश १।३८।१६।२२)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य

(मण्डल)में एक हिरण्यमय पुरुषका दर्शन होता है। उनके दोनों नेत्र कमलके समान (सुन्दर) हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते-
तस्य यथा कल्यासं पुण्डरीकमेवमस्तिष्णी (१।६।६)
इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने दो सूत्र लिखे हैं—

अन्तस्तद्वर्मोपदेशात् और ‘भेदव्यपदेशाच्चान्यः’
(व्यासद्व १।१।२०२१)

इनपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

‘य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः पुरुषः परमेश्वर एव, न संसारी ।……अस्ति चादित्यादि-शरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी । य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं च आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यास्यमृत इति शुभ्यन्तरे भेदव्यपदेशात् । तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद इति वेदितुरादित्यादित्यानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी स्पष्टं निर्दिश्यते— ।’

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाष्ठभौतिक तेजोमय आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा अर्थात् चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते वे ही ‘य एषोऽन्तरादित्य०’—आडि श्रुनिके द्वारा प्रतिपाद्य पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्यको सर्वोच्च माना है। इनका सम्प्रदाय ‘सौर-सम्प्रदाय’ कहलाता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निखण्ण पौराणिक तथा तात्त्विक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है। उदाहरणार्थ भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा दृष्टव्य है। इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-ग्रन्थनिका निर्देशक एक ‘सूर्य-तन्त्र’ नामक ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम उपास्य देवके ध्यानकी यह ज्ञाधरा है—

भासद्वलाद्यमौलिः स्फुरदधररुचा
रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः
खर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो
भाति यश्चोदयादौ
सर्वानन्दप्रदता हरिहरनमितः
पातु मां विश्वचक्षुः ॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, हरि और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें— जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो अपने अधरकी अरुणिम कानितसे सबलित हैं, जिनके केश आकर्षक हैं, जो प्रकाशरूप है, जिनका तेज दिव्य है, जो अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके कारण खर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, वृहस्पति आदि प्राणोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रातःकालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते हैं ।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदनन्तर सूर्य-मन्त्रका उद्घार किया गया है । फिर पूजा-विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मायमल्से ब्रैलोक्य-मङ्गल नामका कवच, श्रीचाल्मीकीय रामायणसे आदित्य-हृदय, शुक्रयजुर्वेदसे 'वित्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्योदीतरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये

हैं । यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है ।

गुणाधित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं । ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं । अमरसिंहने अपने नाम लिङ्गानुशासन नामक कोप—(१ । ३ । २८—३१)में ऐसे सौंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्तर, आदित्य, उण्णारस्मि, ग्रहपति, चित्रमानु, तपन, तरणि, विपांपति, दिवाकर, चुमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, व्रव्व, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्तस्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व ।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाङ्गुष्ठि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंको जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं । हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्थनपर आसीन हुए वालखिल्य मुनिगण-संस्तुत हो नम्भके मध्य विचरते हैं ॥ भक्तजनोंके संस्लव सुनकर दया-आद్र-मन होकर जो व्याधि-आधिको, रोग-शोकको संतत हरते रहते हैं । हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें नमन-कमलकी अञ्जलियोंको निन्य मर्पित करते हैं ॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुःखदुःखप्ननाशनम् ।
वन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्तनात् ॥

(भविं पु० सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों— (सूर्यसहस्रनामस्तोत्र-) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते हैं वे लोकमें यशस्वी होकर धन्य हो जाते हैं और चिरायु प्राप्त करते हैं । सूर्यदेवके नामोंका पाठ करनेसे दुःख और दुःखप्न दूर होते हैं तथा वन्धनसे मुक्ति मिलनी है ।

सूर्य-तत्त्व (सूर्योपासना)

(लेखक—पं० श्रीआद्याचरणजी ज्ञा, व्याकरण-साहित्यानार्थ)

‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’, ‘सूर्यो है ब्रह्म’, ‘सूर्योचन्द्रमसौ थाता यथापूर्वमकल्पयत्’—इत्यादि सहस्राः वैदिक तथा केवल पौराणिक एवं धर्मशास्त्रीय वचनोंके आधारपर ही नहीं, किंतु सूर्यशक्तिके स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचनके आलोकमें भी एक वाक्यमें यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि ‘भूर्य-तत्त्वम्’में ही इस समस्त चराचर जगतकी सत्ता तथा उपयोगिता है ।

कहना न होगा कि ये ही सूर्य अखण्ड प्रकाश-पुञ्जसे ब्राह्मणद्वारा आलोकित करते हैं; सूर्य-किरणें ही सभी पदार्थोंमें रस तथा शक्ति प्रदान करती हैं । अग्नि-तत्त्व, वायुतत्त्व, जलतत्त्व तथा सूर्य-तत्त्वोंकी ही अद्वेष, अमित एवं अखण्डशक्ति ऊर्जा प्रदान करनेवाली हैं । इन तत्त्वोंमें सूर्य-तत्त्व ही सर्वप्रथान है । आकाशमण्डलके सशक्त रहनेपर ही अग्नि, वायु एवं जल अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं; क्योंकि इन तत्त्वोंका आश्रय-स्थान मुख्यतः आकाशमण्डल ही है । आकाश-मण्डलमें सूर्य-किरणें ही समुद्रों तथा नदियोंसे जल प्रहणकर अग्नि-वायु-जल-तत्त्वोंके मिश्रणसे मेघोंका निर्माण करती हैं तथा वायुतत्त्वके सहयोगसे यथास्थान स्वेच्छात्मक वर्षा करती हैं ।

सौरमण्डल ही एक वह महान् केन्द्र है जो अपने उम्ब्रिकीय आकर्षणसे देवलोक, पितॄलोक आदिका समन्वित कार्य सँभाल रहा है । सभी देव-कर्म सूर्योराशनसे ही प्रारम्भ होते हैं एवं उसीमें सम्पन्न होते हैं । कोई भी आराधना दिनमें ‘सूर्यादि पञ्चदेवता-पूजनसे प्रारम्भ होती है । रात्रिमें वे ही ‘गणपत्यादि पञ्चदेवता’के नामसे पूजित होते हैं—यह मिथिलाकी परम्परा है । कहीं-कहीं दिनमें भी ‘गणपत्यादि पञ्चदेवता’ कहकर पूजन प्रारम्भ होता है ।

यद्युं जग मृगदृष्टिमे देवें तो स्पष्ट होगा कि ये ‘गणपति’ भी यथार्थतः ‘सूर्य’ ही हैं । गणानाम्—नक्षत्राणां पतिः गणपतिः—‘सूर्य’ । सूर्यका प्रकाश जिस भूमागमर रहता है वर्ता ये नक्षत्र अदृश्य रहते हैं । सूर्यके प्रकाशके दूसरे भूमागमर चले जानेमे यहाँ नक्षत्रासङ्गित मर्मी नक्षत्र दृश्य हो जाने हैं ।

सूर्यो उदय-अन्त होता उर्वाभगवत् स्फट्य ८
के अनुसार उनके दर्शन और अदर्शनगमन हैं, अन्य नहीं—
उदयास्तमनं नास्ति दर्शनादर्शनं रवेः ।

इस तरह अहर्निश शब्दका अवहार भी सूर्यके दर्शनादर्शन ही है । फलतः सूर्य अखण्ड और अविनश्वर है । वे सदा एक समान हैं ।

यही रहस्य है कि शिवके आमज होनेपर भी ‘गणपति’का पूजन प्रारम्भमें होता है । वे ‘गणपति’ यद्युं ‘सूर्य-तत्त्व’ हैं जो सभी स्थावर-जड़ममें संचालक हैं । कहा जाता है कि ‘शनि’के देवयनेसे ‘गणपति’के मस्तक पिर गये और माशदेवने उसके स्थानपर हाथीका मूँड लगा दिया, जिससे वे ‘गजानन’ हो गये । इसके रहस्यको यहाँ देखें । ‘शुण्ड’को ‘कर’ कहते हैं, (करम्—शुण्डमस्यास्तीति—करी—हम्ती, हाथी,) कर शुण्ड-का पर्यायवाची शब्द है । क्या वह कर (शुण्ड) सूर्यकी ही नेजःपुञ्ज किरणावली नहीं है, जिसे परम शिवने इस सूर्यके रक्तपिण्डसदृश आरक्ष-पृथुल-गणेशके मस्तक—शिरके स्तप्तमें संयुक्त कर दिया ? क्या इस तरह सभी आराधनाओंमें गणेशाराधनका, जो सूर्योराधन ही है गूढ रहस्य प्रकट नहीं होता ? क्या इस विवेचनसे गणपति के जन्म, शिरःपतन, शिरसंयोजनादि पौराणिक विस्तृत आल्यानकी गम्भीरताका पता नहीं चलता ?

सभी आराधनाओंके अन्तमें सूर्य-नमस्कारकी प्रक्रिया सर्वत्र प्रचलित है। ये सूर्यनमस्कार और सूर्यार्थी भी उन्हीं मूर्यतत्त्वोंकी व्यापकता प्रकट करते हैं। वस्तुतः सभी शुभाशुभ कर्मोंको सूर्यशक्तिमें समर्पित कर देना ही उपासनाका चरम लक्ष्य है।

सामान्य जलमें सभी तीर्थोंका आवाहन अंकुश-मुद्राद्वारा सूर्यशक्तिसे ही होता है। यथा—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः रपृष्टानि ते रचेः।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि द्विवाकर॥

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-क्रियों ही सभी तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं। वही उनका उत्स है जो शतराः भूमण्डलपर व्याप्त है।

सूर्यको विष्णु या विष्णुतेज भी कहा जाता है। सूर्यके प्रणाम-मन्त्रमें यह स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—

‘नमो विवस्वते ब्रह्मान् भास्वते विष्णुतेजसे’॥’
यहाँ वेचेष्टि—व्याप्तोर्तीति विष्णुः—(विष्णु-व्याप्तौ धातुसे निष्पादित है—विष्णु शब्द) व्याप्त अर्थात्—सूर्यः। अखिल ब्रह्माण्डमें जो अखण्डरूपसे व्याप्त हो वे ही ‘विष्णु’ है और वे प्रत्यक्ष विष्णु सूर्य ही हैं। वे ही विष्णुतेज हैं। पूजान्तमें ‘अस्मिन् कर्मणि यज्ञैगुण्ठं जानं तद्वोपप्रशमनाय विष्णोः सरणमहं करिष्ये’—इस वाक्यसे स्मरणार्थक सूर्यार्थ दिया जाता है। विष्णु और सूर्य एक हैं।

सर्वाधिक महिमांगरिमा-शालिनी गायत्रीकी उपासना ही भारतीय जन-जीवनकी वह अखण्ड अशेष तेजस्विनी शक्ति है जिसकी उपासनामें मानव देवत्वको प्राप्त करता है एवं असाध्य साधन करता है। अतीत और अनागत कार्य उसके लिये हस्तामलकवत् हो जाते हैं। यही आराधना नवीन मृष्टिनिर्माणक्षम बनाती है। यह गायत्री ही वसिष्ठको महर्षि तथा भगवान् बनानेका कारण है। इसीने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि बना दिया।

ऐसे महामहिमशाली गायत्री-मन्त्रका सीधा सम्बन्ध सूर्य-शक्तिसे ही है। ‘तत्सवितुर्वरेण्यं भग्नं देवस्य धीमहि’—इसमें उसी सविता (सूर्य)के अमोघ-शक्ति-संचयनकी प्रक्रिया है, जो सर्वसिद्धिदायिका है।

अब ‘पितृलोक’की बातपर थोड़ा ध्यान दे। ‘पा-रक्षणे’ धातुसे ‘पानि—रक्षति यः सः पिता, पान्तीति पितरः—तेपां पितृणां लोकः पितृलोकः’—सिद्ध होता है। यह पितृलोक उन्हीं भगवान् रूपका लोक है, जो सभीके रक्षक हैं तथा वहाँ सभी पितरोका समीकरण है। अतएव तर्पण और पिण्डदानादि सभी पितृकर्म सूर्य-शक्तिके द्वारा ही यथास्थान पहुँचते हैं। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रात्रिमें—सम्बद्ध भूमागके सूर्यादर्शनकालमें कोई पितृकर्म नहीं होते हैं। ‘कुतुप’ काल—गध्याहवकालमें ही पिण्डदान आदिका विधान है। आद्यो सणिणीकरण भी सूर्यास्तसे बहुत पहले ही करनेका नियम है। दैनिक तर्पण भी रात्रिमें या ग्रातः अरुणोदयसे पहले नहीं किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि सभी पितृ-कर्मोंका सम्बन्ध सीधे सूर्यतत्त्व—सूर्यशक्तिसे ही है।

कहा जाता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका हाइड्रोजन-आक्सिजन भी उस वैदिक ‘मित्रावरुण’का ही पर्यायिकाची शब्द है, जो मित्रावरुण सूर्यशक्ति ही है। मित्रः और सूर्यः—ये पर्यायिकाची शब्द हैं तथा वरुण जलतत्त्व-के अधिष्ठाता सूर्यतत्त्वाधीन हैं, जो ऊपरकी पंक्तियोंमें स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंमें तो आज ‘सौर-ऊर्जा’ ग्रहण करनेकी होड़-सी लगी हुई है। इसपर तो बहुत अधिक कार्य और प्रयोग भी हो चुके हैं और हो रहे हैं।

क्या शस्योत्पादन—सशक्ति अन्नोत्पादन तथा सुन्दर फल-पुष्टोंके विकासमें सर्वाधिक महत्त्व सूर्यशक्तिका नहीं है?

उपर्युक्त अति संक्षिप्त विवेचनके परिप्रेक्ष्यमे यह कहना पर्याप्त होगा कि 'आध्यात्मिक', 'आधिदैविक' तथा 'आधिभौतिक' शक्तियोकी प्राप्ति एव उनके विकासके लिये सूर्य-शक्ति हीं सर्वोपरि है। इस शक्तिके बलपर ही अन्य शक्तियाँ कार्यरत हो सकती हैं।

इस सूर्यशक्तिका संचय आस्तिक, नास्तिक, हिंदू, मुसलमान, सिन्ध और ईसाई प्रमृति समीके लिये समान उपयोगी है। संचयनका सरल मार्ग सूर्यका नैषिक उपासना और अर्चना हीं हैं।

सूर्यतत्त्व-विवेचन

(देवक—पं० श्रीकिंगोरचन्द्रजी मिश्र, एम० एस्-सी०, वी० एल० (स्वर्णपदक), वी० एट० (स्वर्णपदक)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च'

सूरक्ष-भाषामें 'तत्' एक सर्वनाम पठ है, जो किसी भी संज्ञावाचक पठके बढ़ले प्रयुक्त हो सकता है—चाहे वह सज्जा पुंलिंग हो या खीलिंग अथवा नपुंसक। व्याकरणके नियमानुसार व्यक्तिवाचक, पठार्थ-वाचक, जातिवाचक अथवा समूहवाचक सज्जामें 'त्व' जोड़कर भाववाचक सज्जा वनायी जाती है; जैसे— देवत्व, मनुष्यत्व, असुरत्व-प्रमृति। उसी प्रकार तत् और त्वके संयोगसे तत्त्व शब्द वनता है। तत्त्वका सरल अर्थ है उसका अपनापन, उसकी विशिष्टता अथवा उसका सारभूत निजत्व, जो अन्यत्र अलभ्य हो। अतएव 'सूर्य-तत्त्व'का अभिप्राय यह है कि श्रीसूर्यकी अपनी विशिष्टता, उनका निजत्व, उनका सार-से-सार तत्त्व एवं उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अस्तित्व।

किसीकी कुछ विशेषताएँ एवं महिमाएँ इन्द्रियोचर होती हैं, कुछ इन्द्रियातीत। कुछ ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जो हमारी इन्द्रियोकी पकड़मे नहीं आतीं; क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं—सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। वे न किसी सर्जनके शल्याखके द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं और न विज्ञानकी किसी विश्लेषणात्मक पद्धतिद्वारा ही किसी प्रयोगशाला या परीक्षणशालामे विश्लेषित—परीक्षित हो सकती हैं। उन्हे केवल इन्द्रियातीत अवस्थामे जाकर ज्ञात किया जा सकता है। वैसी इन्द्रियातीत अवस्थामे पहुँच-कर गहन-से-गहन तत्त्वोको स्पष्ट देखनेका श्रेय हमारे किन्हीं पूर्वजोको है, जिन्हे हम ऋषि (मन्त्रदण्ड)

कहते हैं। वे ऐसी शक्तियोसे सम्बन्ध होते थे कि उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं रहता अर्थात् उनके लिये सब कुछ हस्तामलक्षवत् हो जाते थे। वे त्रिकालदर्शी थे। विज्ञान अभीतक इन्द्रियातीत शक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिये अभीतक ऋषि 'ऋषि' हैं और वैज्ञानिक 'वैज्ञानिक'। परंतु ये दोनों हैं सन्यके पुजारी एवं सत्यके अन्वेषक। इसलिये ऋषिद्वारा उद्घाटित अनेक सत्यका समर्थन आज वैज्ञानिक मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं और अनेकके अनुसन्धानमे लगे हैं। ऋषि-संतान होनेके साथ-ही-साथ विज्ञानका एक विद्यार्थी होनेके कारण दोनों दृष्टियोसे सूर्यतत्त्वपर हम प्रकाश ढालनेका प्रयास करेगे।

ऋषियोने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है और कहा है वे सब वेदमें उपलब्ध हैं। प्राचीनतात्रश वेदकी भाषा एवं कथन-शैली विलक्षण है। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक है, परोक्षप्रिय है और कहीं संकेतात्मक है। शब्दार्थ कुछ है और कहनेका असली अभिप्राय कुछ और ही है। किसी वस्तुकी सूक्ष्मतामे जाने-जाते हम ऐसे विन्दुपर पहुँचते हैं, जिसे अनिर्वाच्य कह सकते हैं; क्योंकि वाक् भूतात्मक है, इन्द्रिय-निःसृत है और इन्द्रियप्राद्य भी। किंतु अनिर्वाच्यवस्था अतीन्द्रिय है एवं इन्द्रियके परेकी अवस्था है। अतएव किसीके वास्तविक तत्त्वको, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनिर्वाच्यवस्था या सारको व्यक्त करनेमे भाषाकी त्रुटि, भाषाकी अक्षमता हो ही जाती है। इसलिये ऋषिकी वातो एवं वेदको समझना

अतीव ज्ञानसाध्य तथा श्रमसाध्य है। वह कठोर तपस्या चाहता है। अस्तु।

वैज्ञानिक-दृष्टिसे सूर्य 'अतीव तेजसः कृटः', 'दुर्निरीक्ष्यः', 'ज्योतिपां पतिः' हैं, वे विशाल प्रकाशपुञ्ज हैं। उनका व्यास लगभग १३९२००० कीलोमीटर और वजन प्रायः 2×10^{30} कीलोग्राम है और आम्यन्तरिक तापमान 13000000° सेटीग्रेट है, जिसे कल्पनासे परे कहा जा सकता है। सूर्यके प्रकाशसे सौर-परिवारमे जहाँ जो है, सब प्रकाशित होते रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड* इनसे दीप होता रहता है। सूर्यमे प्रकाशकी मुख्यता है। इसलिये चन्द्र (अर्थात् उपग्रह) दामिनी-द्युति (अन्तरिक्षका प्रकाश) और अग्नि सूर्यकी ज्योति ही हैं। इन सबकी रोशनी, उषा या ऊर्जाका मूल स्रोत सूर्य ही हैं।

भारतीय वाद्ययमे प्रकाश विभिन्न अर्थोमे प्रयुक्त होता है। इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ है ज्ञान, चैतन्य, सज्जा और वोधलक्षणा बुद्धि। इसी प्रकार अन्धकार अज्ञानता, अविद्या, मूर्च्छा अथवा संज्ञाहीनताका पर्याय है। इस कारणसे भी देवीमाहात्म्यमे उत्तर-चरित्रके विनियोगमे महासरस्वती देवता, सूर्य तत्त्व और रुद्र ऋषि है। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीके साथ देवीप्रकाश भगवान् सूर्यका अचल सम्बन्ध है। ये दोनो उज्ज्वल हैं तथा दोनो जाङ्घ-नाशमे पूर्ण समर्थ हैं। 'प्राधानिकं रहस्यम्'मे स्पष्ट कहा गया है कि सरस्वती शिव (रुद्र) की सहोदरा है। एक 'कुन्देन्दुतुसारधवला' है तो दूसरे 'कर्पूरगौर' है।

देवीमाहात्म्यके उत्तरचरित्रके पञ्चम अध्यायमे देवताओंने देवीकी (सरस्वतीके रूपमे) सर्वव्यापकता-

रूपमे स्तुति की है। उसमे उन्होंने कहा है—'या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिर्धीयते' और 'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता' अर्थात् जो देवी सब भूतो- (प्राणियो और पदार्थो-)मे चेतना और बुद्धिरूपसे विराज रही है। मूलतः महासरस्वतीको सूर्यतत्त्व मान लेनेपर सूर्य भी चेतना और बुद्धिरूप सिद्ध हो जाते हैं।

सूर्य (सोम और वैश्वानरका रूप धारण करके) पृथ्वीमे व्यास होकर तुण-लता, जीव-जन्म—प्राणी-प्राणीमे व्यास हो इन सबकी उत्पत्ति और पालन-पोपणका कार्य करते रहते हैं।

इस अर्थमे सूर्य सविता (जन्मदाता) और पूषा (पोपण करनेवाले) भी हैं। बहिपुराण स्पष्ट शब्दोमे कहता है कि—'सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णुः सविता स तु कीर्तिंतः' अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार विष्णु ही सविता कहे जाते हैं। सविता ही विष्णु हैं। विष्णु और सविता—ये दोनो पर्यायवाचक शब्द हैं। सूर्यके कारण ही ओपवियो एव वनस्पतियोकी कृषि पृथ्वी-पर सम्बव है। इनके प्रभावसे ही पृथ्वी शस्यश्यामला बनी रहती तथा वसुन्धरा कहलाती है। धनका प्रभव सूर्यके कारण है।

वेद सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानते हैं। विज्ञानने ब्रह्मसाक्षात्कार अभीतक नहीं किया है। अतः उसके अनुसार कुछ अणुओंके किसी कारणवश एक साथ सघबद्ध हो जानेपर उनके रासायनिक विस्फोटसे अत्यधिक ऊर्जाके उत्पन्न होनेसे धीरे-धीरे एक विशाल वाष्णीय धधकता हुआ पिण्ड बन गया। पौराणिक शब्दमे सूर्य स्वयम्भू (अपने आप प्रकट) है। अतएव जन्मके लिये, अपनी ऊष्माके लिये, अपने ईधनके लिये, अपने प्रकाशके लिये और अपने

* जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है वहाँतकको एक ब्रह्माण्ड माना जाता है। विश्वमे कोंडिं ब्रह्माण्ड है—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे सूर्यकी भौति ज्वलन्त प्रकाश-पिण्ड सहस्रो ही नहीं, करोड़ो हैं।

नानाविध कार्योंके लिये वे पूर्णतः आत्मनिर्भर हैं। ऐसी धारणामें वैज्ञानिक वेदान्तियोंके साथ इस व्रतापर सहमत दीख पड़ते हैं कि अद्वैतवादियोंके ब्रह्मकी भाँति सूर्य भी अपने निर्माण, सौर-परिवारके प्रहो-उपग्रहों तथा पृथ्वीपरकी सारी सृष्टिके निर्माणमें निमित्तकारण हैं, उपादानकारण एवं साथ-साथ कर्ता भी हैं। इस प्रकार पृथ्वी ही नहीं, सम्पूर्ण सौर-परिवारके कर्ता, निमित्तकारण और उपादानकारण होनेसे अनेक ब्रह्मविद् ऋग्यियोंने अपने ब्रह्मज्ञानसु शिष्योंको ब्रह्मज्ञानके लिये इन्हीं सूर्यकी उपासनाका आदेश दिया था।

ऊर्जनामि-(मकड़ी)- द्वारा अपने शरीरसे तनु निकालकर खयं अपना जाल बना लेना सम्भवतः ब्रह्मतत्त्वको स्पष्ट करनेके लिये उतना प्रभावकारी दृष्टान्त नहीं है, जितना सूर्यका अपने-आप द्वान्यसे प्रकट हो जाना, अपने अशसे पृथ्वी तथा अन्य प्रहोंका सृष्टि-कर्ता बनना और अपनी आकर्पणशक्तिसे सब प्रहों-उपग्रहोंसे अपने चतुर्दिंक् चक्र लगवाना और पृथ्वीपर लाखों-करोड़ों प्रकारके विभिन्न भूतों, पदार्थों एवं प्राणियोंकी सृष्टिकर उनका भरण-पोषण तथा यथासमय लय करना है। ब्रह्मके सदृश (द्वान्यमात्रसे विश्व निर्माण होना) आदि गुणोंके कारण सूर्यको भारतके मेथावियोंने ब्रह्मको समझनेका सर्वश्रेष्ठ साधन माना है।

संभवतः इसीसे सूर्यको सौर-परिवारका ब्रह्म (प्रभव तथा लयस्थान) होनेके कारण ऋग्यियोंने इतनी भक्तिसे घोषणा की है—‘तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि’—मैं उस सविता देवके वरेण्य भर्गका ध्यान करता हूँ; इसलिये कि वे ‘धियो यो नः प्रचोदयात्’ हमारी ब्रह्मप्रकाशिका बुद्धिको प्रेरित करे, हमे ब्रह्मज्ञान दें—हमें ब्रह्मकी प्राप्ति हो सके। यह निःसंदेह है कि गायत्री (वेदमाता) के सम्प्रकृ अध्ययनसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है। नित्य और नाशवान्-का, निर्गुण और संगुण-

का तथा सत्य और असत्यका ज्ञान हो सकता है एवं महामायाकी कृपासे मायासे मुक्ति भी मिल सकती है।

सूर्यका अल्यन्त गहरा सम्बन्ध काल (समय)-से भी है। कल्यानकाष्ठादिग्रहमें परिणामप्रदायक है काल और पृथ्वीपर कालगणनाके मुख्य आधार हैं सूर्य। इसका विशद विवेचना सूर्यसिद्धान्त-प्रमुखि प्रन्थोंमें है। मन्त्रपियोंने कालको अत्यधिक शक्तिशाली माना है। किसी-किसी-ने इसे एकतत्त्व तथा सृष्टिका एक महत्त्वपूर्ण घटक माना है। कृपित्रिज्ञानकी उन्नी प्रगति होनेपर भी कुछ शस्य ऐसे हैं, जो पूर्ण प्रयत्न करनेपर भी समयसे पूर्व अद्वृति नहीं होते एवं समयमें पूर्व फल-फल नहीं देते—मानो वे पुष्टि करते हैं इम उक्तिकी—‘समय पाय तरुवर फलै केतिक मौन्तो नीर’। आचार्य वराहमिहिर कालको ही सभी कारणोंका कारण मानते हैं।

‘कालं कारणमेके—’ (वृहत्सहिता ? । ७)। अर्थवेद इससे भी आगे बढ़कर कहता है—‘कालो हि सर्वेऽश्वरः’। सृष्टिके प्रसङ्गमें काली, महाकाली अथवा महाकालकी कल्पना भी कालकी प्रभव-प्रलयकारीणी शक्तिकी परिचायिका है। यहो मेरे कहनेका संक्षेपमें अभिप्राय यही है कि ‘बालोंको पल्लित करनेवाला तथा जिसका जन्म हुआ है उसको शैशव, कौमार्य, यौवन, वयस्क, प्रौढ तथा वार्वक्यसे होते हुए मृत्युतक पहुँचानेवाले और पुनः गर्भाधानसे लेकर विकासके विभिन्न सोपानो एवं जन्मतक पहुँचानेवाले कालके नियन्ता तथा विभिन्न ऋतुओंके निर्माता सूर्य ही है। अथ च कालकी सम्पूर्ण शक्ति सूर्यमातिसूक्ष्मरूपसे सूर्यमें ही सनिविष्ट है।

अत्यन्त काव्यात्मक तथा विज्ञानात्मक ढगसे सृष्टिके व्यक्त होनेका वर्णन करती हुई श्रुति कहती है………चक्षोः सूर्यो अजायते । सूर्य विराट् पुरुषकी

ऑखसे प्रकट हुए । अतएव इनका सर्वप्रमुख कार्य हुआ देखना । देखना ही जानना है । सूर्य वस्तुओंको, रूपायित करते हैं, दृश्य बनाते हैं, दृष्टिपथमें लाते हैं, ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिको भी प्रेरित या सक्रिय करते हैं । इस कारण सूर्यको 'जगतः चक्षु' या 'जगच्छक्षु', 'गुरुणां गुरुः', 'जगद्गुरु' सर्वश्रेष्ठ अन्धकारनाशक, अज्ञान दूर करनेवाला और कर्मसाक्षी भी कहा जाता है । शायद इसीलिये निभृत-से-निभृत स्थानसे गुप्तातिगुप्तरूपसे किया गया कर्म भी प्रकट हो जाता है और किसी-न-किसी रूपमें सृष्टिको प्रभावित करते हुए कर्त्ताको भी प्रभावित करता है ।

जिस प्रकार निष्क्रिय ब्रह्मकी अनन्तानन्त क्रियाएँ गिनी-गिनायी नहीं जा सकती हैं वैसे ही 'शतधा वर्तमान' सूर्यकी सैकड़ों क्रियाएँ एवं उनकी सहस्रमुखी समताका विवरण नहीं दिया जा सकता । सूर्यकी ये अनगिनत किरणे प्रतिक्षण अनेकानेक स्थानोंपर—गंदी-से-गंदी जगहपर, रम्य-से-रम्य स्थानपर, पवित्र-से-पवित्र स्थलपर और भयंकर एवं दुर्गन्धपूर्ण स्थानपर भी पड़ती हैं; परंतु इसके कारण उनमें कोई विकार नहीं आता है । इतना ही नहीं, सूर्यकिरणे गदगियों दूर करती है तथा गङ्गाकी भौंति सबको पवित्र करती हैं । इसलिये संत श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

समरथ के नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥
साराशतः सूर्यका प्राकृत्य शून्य या विराट् पुरुषकी ऑखसे है । सूर्यके मुख्य-मुख्य कर्म—प्रकाश एवं उम्मादान, धीको प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि एवं उनका धारण, उनका संचालन प्रभृति, काल-नियन्त्रण, उनकी निर्लिप्तता तथा पवित्र करनेकी क्रिया आदि है । सूर्य-तत्त्वके विषयमें वैज्ञानिक तर्कके आधारपर यदि विज्ञान अभीतक ऋग्यियोंके स्वर-में-स्वर मिलाकर 'आदित्यो ब्रह्म' नहीं कह सकता है तो इतना तो अवश्य कह सकता है कि सूर्य सृष्टि-संचालिका किसी अज्ञात सर्वश्रेष्ठ शक्तिकी (जिसे वेद ब्रह्म, परमात्मा या आद्याशक्ति कहता है) अति तेजसी प्रत्यक्ष विभूति है, जो निष्काम कर्मयोगीका सर्वाधिक ज्वलन दृष्टान्त है और जो सदैव प्राणियोंका नानाविध कल्याण करनेमें ही लगे रहते हैं । सूर्य वस्तुतः विरच्चिनारायणशंकरात्मा हैं । 'त्रयीमय' हैं और एक शब्दमें यह 'त्रयीमयत्व' ही सूर्यतत्त्व है । कवि-कुलशिरोमणि संत तुलसीके शब्दोंमें 'तेज-प्रताप-रूप-रस-राशि' *सूर्यका तत्त्व है; तेज, प्रताप, रूप और रसका प्राचुर्य ही सूर्यतत्त्व है । जो 'आदित्यो ब्रह्म' यह नहीं स्वीकार कर सके, उन्हे इतना तो स्वीकार करना ही चाहिये कि सूर्य सौर-परिवारके प्रत्यक्ष अव्यक्त तथा परमात्माके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि है । अतः वे सभीके लिये परम पूज्य जगत्के श्रेष्ठ देवता है ।

हम सबका कल्याण करे

परम प्रकाशवान् लखि जिसको खतः तमादि प्रयाण करे ।
सुक्षिप्रदायक जो भक्तोंका भववन्धनसे ब्राण करे ॥
धर्मचुद्धि कर जो जन-मनमें नितनवनूतन प्राण भरे ।
परम प्रकाशक सवितामण्डल हम सबका कल्याण करे ॥

—५० श्रीवाल्लालजी द्विवेदी

* विनयपत्रिका, सूर्यस्तुति २ ।

सूर्यमे ही सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी क्षर-अक्षर नाशवान् और अव्ययका मूल सत्ता व्यवस्थित है—केवल ब्रह्म-सूर्यमे ही सर्वदा संलग्न हैं। सूर्यकी ही रश्मियोंमें लोक, परलोक, देव, पितर, मानव और ब्रह्माण्ड आदि निवेशित हैं।’ इसी प्रकार साम्बपुराण (४।१-५) में लिखा है—

अनाद्यो लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः ।
मित्रत्वेऽवस्थितो देवस्तपस्तेषे नराधिपः ।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्वाक्षर एव च ।
सूर्यो प्रजापतीन् सर्वान् सृष्टाद्वच विविधाः प्रजाः ।
ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम् ।

‘आदि-अन्तहीन लोकेश्वर ब्रह्माण्डके संरक्षक और जगत्के सामी सूर्यने अपने मित्रभावमें अवस्थित होकर तेजतापद्वारा इस चराचर जगत्की रचना की है। विश्व-सृजनके बाद ब्रह्मारूपमें प्रजाकी सृष्टि की है। ये अव्यक्त हैं एवं हजारों किरणवाले विश्व पुरुष हैं। उन्हमें सारी सृष्टि है।’

सूर्य—विष्णु

वेद, ब्राह्मण, सहिता और पुराणोंमें सूर्य ही विष्णु हैं। विष्णु द्वादशादित्योंमें छोटा अर्थात् बारहवाँ आदित्य हैं। वेदका एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्षमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥

(—ऋ० १। २२। १६)

जिस प्रकार सात किरणोंके द्वारा विष्णु पृथिवीकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार उन्हीं तत्त्वद्वारा वे हम सबकी रक्षा करें।

वैदिक कोष निष्पण्टुमे कहा गया है—

तीवरश्मिष्ठारेण सर्वत्र हि आविशारीति विष्णुः ।

(—५। ११)

अपनी तेज और तीक्ष्ण रश्मियोद्वारा सर्वत्र फैलनेके कारण सूर्य विष्णु कहे जाते हैं।

इदं विष्णुर्विचक्षमे त्रेवा निदधे पदम् ।
समूहक्षमस्यपांसुरे ॥ (ऋ० १। २२। १७)

विष्णु अपने अदृश्य पादसे पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्षमें किरणद्वारा धूल-धूसरित विश्वको प्रकाशित करते हैं।

सूर्य और शिव तथा शैव शक्तियाँ

सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षात्कुमा स्वयम् ।
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम् ॥
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रीमेव च ॥

(—लिङ्गपु० ८०, ऋ० १९)

‘सूर्यो वैचस्वतः साक्षात्’ (—वायुपु० ऋ० ५३)

सूर्य, शिव, जगन्नाथ और सोम स्वयं साक्षात् उमा है। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि तथा दिवाकर देव हैं। इनकी शक्तियाँ ये हैं—उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या तथा सावित्री।

इस प्रकार देखा जाता है कि प्राचीन भारतीय त्रैतवाद एक मूलक है। एकेश्वरवाद ही त्रैतवादमें परिणित हुआ है। एकेश्वरवादका मूल आदित्य है। भारद्वाज स्मृतिका ७९ श्लोक इस सम्बन्धमें विशेष प्रामाणिक है; यथा—

‘आदित्ये तन्महः साक्षात् परब्रह्मप्रकाशकम् ।’

इस भूमण्डलपर साक्षात् परब्रह्मरूपमें आदित्य ही प्रकाशित हैं। इसलिये भगवान् ऋग्वेद सर्वत्र केवल सविताको ही देखते हैं—

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात् ।

सविता नः सुवतु सर्वताति

सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥

(—ऋ० १०। ३६। १४)

सविता देवता मेरे आगे-भीछे, ऊपर-नीचे सर्वत्र सविता-ही-सविता है। सविता हमे सभी प्रकार सुख देते हैं। हमारी आयुको बढ़ाते हैं।

गायत्रीमन्त्र सविता-उपासनाका तत्त्व है और सर्वज्ञानी जनोंसे समादृत है। यह चारों वेद तथा समस्त ज्ञान-

विज्ञान और प्रज्ञाका सार है। ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका यथार्थ वोधक है। वेद-विहित समस्त उपासनाकर्मोंके प्रारम्भमें गायत्री-जप, सूर्यार्थ्य और उँचारका उच्चारण करनेकी मान्यता है। इसके बिना कोई अनुष्ठान सफल नहीं हो सकता है। व्यास, भारद्वाज, परशार, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, योगी याज्ञवल्क्य एवं अन्य अनेक महान् महर्षियोंने ऐसा माना है कि गायत्री-जपसे पाप-उपग्राप आदि मलोंसे जापककी शुद्धि होती है। यजुर्वेदका ईशोपनिपद् कहता है—

योऽसावादित्ये पुरुपः सोऽसावहम् ।

जो वह पुरुप आदित्यमें है, वही पुरुप मैं हूँ। उस परमात्मपुरुपकी आत्मा भी 'मैं हूँ'। इसीका शुद्ध आत्मतेज रश्मियोंके अणुओंद्वारा सूर्यमण्डलसे सम्पर्क करते हैं। जगत्मे रहकर भी शुद्ध आत्म-धारमें जानेके लिये सूर्य-रश्मि ही प्रधान योगका द्वारा है—वाहक है। यूरोपियन साधक पिथा गोरसने भी माना है कि यह एक तेजधारक पदार्थ है। इसीमेंसे होकर आत्म-ज्योति पृथ्वीपर उतरती है।

सूर्यसाधना और उपासना

सूतसहिता (य० वैखा० अ० ६) में भगवान् महेश्वर, शिवने कहा है कि—

आदित्येन परिज्ञातं वयं धीमद्युपास्महे ।
सावित्र्याः कथितो हार्थः संग्रहेण मयोदरात् ।
नीलग्रीवं विरूपाक्षं साम्वमूर्तिं च लक्षितम् ॥

'नीलग्रीव शिवजीका कहना है कि आदरपूर्वक मै सावित्री-मन्त्रकी, जिसे गायत्री या धीमहि कहते हैं, उपासना करता हूँ।'

भविष्योत्तरपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो सूर्योपासना बतलायी है, वह आदित्यहृदय है। श्रीकृष्णने कहा है—

रुद्रादिदैवतैः सर्वैः पृष्टेन कथितं मया ।
वक्ष्येऽहं सूर्यविन्यासं शृणु पाण्डव यत्नतः ॥

अर्यात् अर्जुन ! सद्गुरु देवताओंके पूछनेपर जिस सूर्य-उपासनाको हमने बताया था वही तुमको बताता हूँ, सुनो। श्रीकृष्ण सूर्य (विष्णु)के अंशावतार द्वादशादित्यके अंश थे। इसीसे वे सूर्य (विष्णु) नारायण नामसे भी सम्बोधित हुए। महाभारतके खगरोहणपर्व- (५ । २५)में कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण इहलीला समाप्त कर नारायणमें ही बिलीन हो गये।

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः ।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेशा ह ॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा आदित्य-उपासनाकी प्राचीनता देखी जाती है।

बृहदेवता (१५६ अ०)में लिखा है—‘विष्णुरादित्यात्मा’ (चायुपुराण अ० ६८ । १२)में कहा गया है कि असुरोंके देवता पहले सूर्य और चन्द्रमा थे। इन्होंने ही अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार अलग-अलग राज्य वसाया था। इनमें अधिकाश सौर थे। राम-रावण-युद्ध- (वा० रा०, यु० का०, अ० १०७)में जब भगवान् रामचन्द्रजी विशेष श्रान्त-चिन्तित थे तब ऋषि अगस्त्यने उन्हे सूर्यस्तोत्र बताया था। श्रीरामने अगस्त्य मुनिके उपदेशानुसार पूर्वमुख होकर पवित्र हो तीन बार आचमन किया और सूर्यके स्तोत्रका पाठ किया। इससे उन्हें महावल प्राप्त हुआ और उन्होंने रावणका शिरश्छेद किया। द्वितीय जीवितगुप्तके दसवीं शताब्दीका एक शिलालेख कलकत्ताके जादूघरमें है। इसका विवरण कनिंघम साहेबने (Cunningham's Archeological reports Vol xvi, 65 में) लिखा है कि भास्करके अङ्गसे प्रादुर्भूत प्रकाशमान 'मग' ब्राह्मण शाक-द्वारपसे कृष्णभगवान्की अनुमतिसे उनके पुत्र भगवान् साम्बद्वारा लाये गये। उन दिनों विश्वमें ये ही लोग सूर्य-साधनाके विशेषज्ञ थे। यह बात भविष्यपुराण और साम्ब-पुराणमें विस्तृतरूपसे वर्णित है। ग्रहयामल ग्रन्थमें भी उक्त बातोंका उल्लेख है। इस बातसे प्रमाणित

होता है कि भारतमें भी सूर्य-पूजाका प्रचलन था; किंतु विशेषज्ञोंका अभाव था। वेविलोनके प्राचीन वृत्तग्रन्थ- (Etna Myth)में लिखा है कि डगल (मस्त-जाति) पश्चिमपर बैठकर कोई राजा तृतीय स्वर्ग (Third heaven of Annu)में जाते हुए जीव-चिकित्सक ओपत्रि ले गया था। १९७३ ई० के अगस्तमें विल्यान अमेरिकन पत्रिका 'न्यू सायन्टस्ट' (New Sceintist, August 1973)में प्रलयात आणविक जीव-विज्ञानी डॉ० फान्सिस्, डॉ० फिक्स और डॉ० लेस्लीने कहा है कि इस पृथ्वीपर हजारों वर्षतक कोई जीवन नहीं था। यहाँतक कि जीवनकी सम्भावना भी नहीं थी। महाकाशके सूर्यश्रीमें स्थित जीवन-स्फुलिङ्ग इस युगकी वन्ध्या पृथ्वीपर (सूर्यके आश्रयके प्राणि-सम्भावनासे छूटकर) आया है। मि० फिक्स और मि० उरगोलके हस्ताभरयुक्त लम्बे वक्तव्यमें यह भी कहा गया है कि आया-पथ तेरह सौ करोड़ वर्षका है। इस पृथ्वीके प्राणियोंके उद्भवका काल चार सौ करोड़ वर्षका है। इस प्रकार नौ सौ करोड़ वर्षोंका अन्तर है।

अन्तर्देशीय सूर्य-अर्चन

विश्वमें सर्वत्र ही अनुमानतः ईस्त्री सबतसे उः हजार वर्ष पूर्वसे लेकर (नवीन मतसे चार करोड़ वर्षसे) १४० ईस्वीतक सूर्य-पूजाके प्रमाण मिलते हैं। विश्वका प्राचीन दर्शन- (In early philosophy throughout the world the sun worship) सौरदर्शन ही है। पर्सीयन चर्चोंके मित्र (Mithra) ग्रीकोंके हेलियस (Hlios) प्रजित (मित्र) के रा (RA) तातारियोंका भाग्यवर्धक देवता फ्लोरस (Flourished) प्राचीन ऐर (दक्षिण अमेरिका)के ऐश्वर्यदाता फुलेस (Fulllest) उत्तरी अमेरिकनके रेड इडियोंके पत्ना (Atna) और एना, अफ्रिकाके विले (श्वेत) (white) चीनका उ० ची० (Wu. chi) प्राचीन जापानियोंका इज्ञा-गी (Izna-gi), नवीन सेन्टो ईज्ञमका एमिनो, मिनाका नाची (Ameno-Minak-Nachi) आदि देवता; सूर्य, मित्र, दिवाकर आदिके रूपमें पूजित तथा उपासित थे। निष्कर्ष यह कि सूर्यकी शक्तिसे सारी सृष्टि हुई है। इनकी महिमा अनन्त है और इनकी पूजा-अर्चा अनादिकालसे विश्वभरमें प्रचलित हैं। भारतमें ये प्राचीन कालसे ही प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं।

सूर्यकी विश्व-मान्यता

आकाशके देवता 'एना' और पृथ्वीके देवता 'इया'में निष्ठा रखनेवाले वेवीनोलिया-निवासियोंने देवका आरम्भ सूर्योदयसं माना।

मिथ्रको नौलघाटी सम्भावने सूर्यपूजा मुख्य थी। वहाँ मन्दिरोंको इस ढंगसे बनाया जाता था कि उनके मध्यमें स्थापित मूर्तिपर उदय लंते सूर्यकी किरणें पड़ सकें।

फैलियन लोग भी सूर्यको महत्व देते थे और उन्होंने सात घण्टोंका पता लगाया था—जिनके नामपर दिनोंके नाम रखे। वे तारोंकी अवस्थिति और गतिसे भी अवगत थे।

सुमेरियन सम्भावने चन्द्रमाको सूर्यसे बड़ा माना गया। उन्होंने ज्योतिषके द्वारा वारह मासोंका पञ्चाङ्ग बनाया।

फिनीशियन सूर्य-चन्द्रके उपासक थे। असीरियावाले भी अपने ढंगसे सूर्यकी पूजा करते थे। सूर्यपूजा सर्वत्र थी।

ऋग्वेदमें सूर्यकी महिमाके सूचक चाँदह सूक्त हैं। सौर-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय देनन्दिन उपासनामें सूर्य-पूजा अनिवार्य है।

ब्रह्माण्डात्मा—सूर्यभगवान्

(लेखक—जाग्नीर्थमहारथी प० श्रीमाधवाचार्यजी जास्ती)

वेदभगवान् का उद्घोष है कि 'सूर्यआत्मा जगत-स्तस्थुपश्च' अर्थात् सूर्य न केवल मनुष्य, पशु, पश्ची, कीट, पतंग आदि जड़म जीवोंके ही प्राणात्मा है, अपितु वे वृक्ष, वृत्त, गुल्म, वीर्य, ओपवि आदि अचल—अन्तःसज्ज जीवधारियोंके भी प्राणात्मा हैं।

जीवनके लिये जिस उक्षिजन (आक्सीजन) तत्त्वकी अनिवार्य आवश्यकता है, वह तत्त्व सूर्यभगवान् ही निरन्तर ब्रह्माण्डको प्रदान करते रहते हैं।

श्रीमन्नारायणके दिव्य अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका ही अपर पारिभाषिक नाम देवता है। निरुक्तकार यास्कने देव शब्दके अनेकविधि निर्वचन दिखाते हुए 'दानाद्वा', 'धोतनाद्वा' कहकर मुख्यतया इसे दानार्थक ही बताया है। अतः भगवान् की अनन्त शक्तियोंके भण्डारमेंसे प्राणियोंको, उनके जीवन-धारण करनेके लिये तत्त्व-शक्ति प्रदान करनेवाले माध्यमिक दिव्य स्रोतोंको देवता कहते हैं। यद्यपि 'अनन्ता वै देवाः' इस वेद-प्रमाणके अनुसार वे देवता अनन्त हैं तथापि उनका वर्गीकरण करके उन्हे तैतीस कोटियोंमें वॉटा गया है—अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, मरुत् और इन्द्र। इनमें भी अन्तर्भाव-प्रक्रियासे केवल तीन रूपोंको अन्तमे प्रधानता दी गयी है। यास्क कहते हैं—'तिस्रो देवताः' अर्थात् तीन देवता है—पृथ्वी-स्थानीय अनि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु और द्यु-स्थानीय सूर्य।

सूर्यको केन्द्रविन्दु मानकर चारों ओर विस्तृत पचीस कोटि योजनात्मक आकाश-कक्षको एक 'ब्रह्माण्ड' कहते हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः अथवा 'भूः, भुवः, स्वः' नामक ब्रह्माण्डके तीन कल्पित भाग हैं, जिन्हे त्रिलोकी कहते हैं। इस त्रिलोकीकी आत्मा सूर्यभगवान् है।

वेदोमे सूर्यकी महिमाके धोतक अनेक सूक्त हैं। आदिसृष्टिके समय श्रीमन्नारायणद्वारा ब्रह्माजीको जो वेद-ज्ञान प्राप्त हुआ वह केवल वेदवीजभूत ओकार था। वर्णात्मक ओकार अकार, उकार और मकार—इन तीन मात्राओंके सघातसे निष्पन्न है। इसकी एक-एक मात्रासे गायत्रीके एक-एक चरणका विकास हुआ है। इसलिये त्रिपदा गायत्री ओकारात्मक वीजका ही प्रस्फुटित अङ्गुर कहा जा सकता है। गायत्रीको 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' आदि शब्दोद्वारा वेदोंकी जननी कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि त्रिपदा गायत्रीसे ही वेदत्रयीका प्रादुर्भाव हुआ है।

ओकारकी नाद और विन्दु नामक अन्यतम दो मात्राएँ तो प्राणसाधनारत योगिजनोंके ही ध्येय हैं। वे ही पञ्चमात्रात्मक ओकारके अधिकारी हैं। वर्णात्मक त्रैमात्रिक प्रणव निवृत्तिमार्गी द्विजमात्रका ध्येय है और आगमोक्त मनुष्यमात्रका उपास्य है।

आदिम महर्पिण तो 'साक्षात्कृतधर्मणः' थे। उन्हे स्वय पठनकी आवश्यकता न थी। परतु जब कालक्रमसे यह शक्ति क्षीण हो गयी, तब साक्षात्कृत-धर्मा गुरुओद्वारा असाक्षात्कृतधर्मा शिष्योंको वेदोपदेश देना आरम्भ किया गया। इस युगमे जिसको नारायणसे सर्वप्रथम यह उपदेश मिला वह विवस्वान् अपर नामक सूर्यभगवान् ही थे। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी श्रीकृष्णभगवान्-ने 'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्' (४। १) यह रहस्य धोपित किया है। शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिनी-संहिता तो महर्पि याज्ञवल्क्यने साक्षात् सूर्यभगवान्-से ही प्राप्त की थी, यह सर्वविदित है। इस प्रकार वैदिक ज्ञान-परम्पराको मानव-समाजतक पहुँचानेका श्रेय सूर्य भगवान्-को ही है।

ब्रह्म कूटस्थ हैं, प्रकृति त्रिगुणामिका है। प्रकृतिके रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंसे पञ्च-तत्त्व समुद्रत हुए हैं। प्रकृतिके सत्त्वगुणोंद्वेकसे आकाशतत्त्वका, रजोगुणसे अग्नितत्त्वका और तमोगुणसे पृथ्वीतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। ये तीनों तत्त्व विशुद्ध हैं। परन्तु सत्त्वगुण और रजोगुणके सम्मिश्रणसे वायुतत्त्वका तथा रजोगुण और तमोगुणके सम्मिश्रणसे जलतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त दोनों तत्त्व विमिश्रित तत्त्व हैं। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पञ्च महाभूतोंकी उन्पति हुई, जिनका पञ्चीकृत* संघात यह समस्त चराचर जगत् है। उक्त तत्त्वोंके न्यूनाधिक्यके तारतम्यसे ही सृष्टिके पदार्थमें विविधता पायी जाती है। इसी तात्त्विक तारतम्यके अनुसार मानव-समाज भी पञ्चविध प्रकृति-सम्बन्ध है। अतएव पञ्चविध प्रकृतियाले मानवोंके लिये एक ही श्रीमन्नारायणके पञ्चविध स्वपोकी कल्यना करके पञ्च-देवोपासनाकी वैज्ञानिक स्थापना की गयी है। शास्त्र कहता है—

‘उपासनासिद्धवर्थं हि ब्रह्मणो ऋषकल्पना’।

तदनुसार आकाशतत्त्वकी प्रधानतावाले सात्त्विक मनुष्योंकी विष्णुभगवान्‌में स्वभावतः विशिष्ट अद्वा होती है। अग्नितत्त्वकी प्रधानतावाले रजोगुणी मनुष्य

जगन्माता शक्तिमें विशेष आस्था रखते हैं। पृथ्वीतत्त्व-प्रधान तमोगुणी प्रकृतियाले मनुष्य भूतभावन शिव-भगवान्‌के भक्त होने हैं। वायुतत्त्व-प्रधान सत्त्व और रजोमिश्रित प्रकृतियाले मनुष्य सूर्य भगवान्‌में अद्वाद्वा होते हैं तथा जलतत्त्वकी प्रधानतावाले रज और तमोमिश्रित प्रकृतिके मनुष्य विवेश्वर गणेशमें निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गणपत्य—ये पाँचों सम्प्रदाय क्रमशः पाँचों तत्त्वोंके तारतम्यपर परिनिष्ठित हैं। परन्तु स्व-स्वसम्प्रदायकी उपासनापद्धनिके अनुसार स्वेष्टकी विशिष्ट पूजा करते हुए भी पूर्वोक्त पाँचों ही सम्प्रदायोंके साधकोंको अनिवार्यरूपसे नित्यकर्मभूत सन्ध्योपासनामें भगवान् सूर्यको अर्च्य प्रदान करना, सावित्री देवताके गायत्री-मन्त्रका जप करना अत्यन्त अत्यावश्यक है जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक साधक पहले सौर है, पश्चात् स्वेष्ट देवताका उपासक है। कारणवश स्वेष्ट देवताकी उपासना न हो पानेकी दशामें उतना प्रत्यवाय (पाप) नहीं है; परन्तु सन्ध्याहीन द्विज सभी द्विज-क्रमोंसे अन्त्यजके समान वृहिकार्य हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्माण्डमा सूर्यभगवान्‌का सर्वानिशायी महत्त्व है। उनकी उपासना अनुप्रेय कर्तव्य है।

~~~~~

\* पञ्चीकृत किसे कहते हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंमेंसे इनके तामसांग-स्वरूप एक-एक भूतके दो-दो भाग करके और एक-एक भागको पृथक् रखकर दूसरे भागोंको चार-चार भाग करके पृथक् रखकर हुए भागोंमें एक-एक भाग प्रत्येक भूतका सयुक्त करनेसे पंजीकरण होता है। इससे निश्चय हुआ कि प्रत्येक भूतके अपने आधेमें प्रत्येक दूसरे भूतोंके आधे भागका चतुर्थींग मिला हुआ रहता है। जैसे पंजीकृत आकाशमें अपंजीकृत आकाशका आधा भाग और दूसरे प्रत्येक अपंजीकृत भूतोंके अर्द्धभागका चतुर्थींग अर्थात् अपर प्रत्येक भूतका अपेक्षाकृत भूतमें समझ लेना चाहिये। इन पंजीकृत पञ्च महाभूतोंमें ही प्रत्येक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। उन-उन ब्रह्माण्डोंमें चौदह भुवन होते हैं तथा उद्दिज, स्वेष्ट, अण्डज और जगयुज—ये चार प्रकारके अर्पण उत्पन्न होते हैं। शरीरका अभिमान रखनेवाला जीव और अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिमान रखनेवाले ईश्वर हैं।

## सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च

( लेखक—श्रीगिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्गनालङ्कार )

देवोपासनामें भगवान् सूर्यका विशिष्ट स्थान है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन सभी जनोंको प्रतिदिन अनुभूत होता है। वे अनुमानके विषय नहीं हैं, सूर्य सम्पूर्ण विश्वको प्रतिदिन प्रकाशदानसे अनुगृहीत करते हैं। हम सबपर उनके असख्य उपकार हैं। सम्पूर्ण वैदिक-स्मार्त अनुष्ठान एव ससारके सभी कार्य भगवान् सूर्यकी कृपाके अधीन हैं। उनकी कृपा सब जीवोंपर समान है। सूर्यकी शोधक किरणे कीटाणुओंका नाशकर आरोग्य प्रदान करती है। सूर्यकी किरणे जिन घरोंमें नहीं पहुँचतीं, वहाँ विविध मच्छर आदि जीवों तथा कीटाणुओंका आवास होनेसे विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यकी किरणोंसे बढ़कर आरोग्य-प्रदानकी शक्ति अन्यत्र सुलभ अथवा सुगम नहीं है। सूर्यकिरणोंमें रोगविनाशक शक्तिके साथ परमपावनता भी है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'—सूर्यनमस्कारसे मन तथा शरीरमें अद्भुत स्फुर्तिका सञ्चार होता है। सूर्यकी विविध शक्तिसम्पन्न ये किरणे ही विविध रूप पृथिवीको सप्तविधरूप-( शुक्र-नील-पीत-रक्त-हरित-कृपिश-चित्र- ) वाली बनाती हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे प्रत्यक्ष संरक्षक देव हैं। विश्वका एक-एक जीव उनकी कृपाका कृतज्ञ है। स्थावर-जड़म सभी उनसे विकासकी शक्ति पाते हैं। इसी दृष्टिको लेकर करोड़ो जन 'आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥'—के अनुसार प्रतिदिन प्रातः-साय भगवान् सूर्यनारायणको पुण्यसमन्वित जलसे अर्थ देकर उनका शिरसा नमन करते हैं। धर्मशास्त्र हमें सूर्योदयसे पूर्व उठनेका आदेश देते हैं। 'तं चेदभ्युदियात् सूर्यः शशानं कामचारतः' आदि कहकर खस्त पुरुषको सूर्योदयके पश्चात् उठनेपर उपवासका विधान बताया

गया है। ये प्रकाशमय देव हमें प्रकाश देकर सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव हैं। गायत्री-मन्त्रमें इन्हीं सवितादेवके तेजोमय रूपके ध्यानका वर्णन है। 'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्' सूर्य लोकोंको—उनके कर्मोंको देखते हुए चलते हैं। अतः रूपका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। 'मरुच्चलो भूरच्चला ख्यभावतः'—इस उत्किंके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गनिशील हैं। भगवान् सूर्य 'दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्तरूप होनेसे कर्मोंके प्रेरक होनेसे 'सविता', 'सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोंमें 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्र्वयज्ञनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण यजोतियोकी ज्योति लेकर उदित होते हैं। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोंके चक्षुःस्तरूप हैं। सारे देव मनुष्यादिके रूपमें सूर्यके उदयमें ही अभिव्यक्त होते हैं। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप कर देते हैं। सूर्य चर-अचर सभीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी हैं। देवोंके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवोंके हितकारक विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुःस्तरूप सूर्य पूर्वदिशामें उगते हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ वर्षपर्यन्त नेत्रशक्तिसम्पन्न होकर उन्हें देखे। स्वाधीन-जीवन होकर सौ वर्षतक जीवित रहे। सौ वर्षपर्यन्त कर्णेन्द्रिय-सम्पन्न होकर सुने। श्रेष्ठ वाक्-शक्तिसम्पन्न हो और दीनतासे रहित हो। किसीसे दीनता न दिखाये। सौ वर्षोंसे भी अविक हम सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न रहे—ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावपृथिवी अन्तरिक्ष-सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च। ( शु० यजु० ७ । ४२ ) ॐ तत्त्वशुद्देवहितं पुरस्ताच्छु-

कमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं  
 शृणुयाम् शरदः शतं प्रब्रवाम् शरदः शतमदीनाः स्याम्  
 शरदः शतं भूयथश्चरदः शतात् । (श० वज० ३६ । २४)  
 सूर्योपस्थानके इन मन्त्रोंको प्रत्येक द्विज प्रतिदिन प्रातः-  
 साय दोहराता है । वेदमन्त्रोंमें सूर्यको जगत्का  
 अभिन्न आत्मा वताया गया है ( शुक्र यजुर्वेदके तैर्तीसवे  
 अथायमें और अन्यत्र भी श्रीसूर्यका विशिष्ट वर्णन है ) ।  
 वेदोंमें भगवान् सूर्यकी दिव्य महिमाका विस्तृत वर्णन  
 है । उपनिषदोंमें भी सूर्य ब्रह्मस्वरूपसे वर्णित है । क्रृष्ण  
 सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—‘हे विश्वके पोपण  
 करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, ससारके नियामक  
 प्रजापतिपुत्र सूर्यदेव ! आप अपनी किरणोंको हटा ले,  
 अपने तेजको समेट ले, जिससे मैं आपके अत्यन्त  
 कल्याणमय रूपको देख सकूँ ।’ यह आदित्यमण्डलस्थ  
 पुरुष मैं हूँ । इसके पूर्वका मन्त्र भी इसी आशयको  
 अभिव्यक्त करता है—

‘हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।  
 तत्त्वं पूषपत्रपावृणु सत्यधर्माय दृष्ट्ये ॥  
 पूषन्नेकर्ये यम सूर्य प्राजापत्य  
 व्युह रक्षीन् समूह ।  
 तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते  
 पश्यामि योऽसावसौ पुरुपः सोऽहमस्मि ॥  
 ( ईशा० उप० १५ । १६ )

प्रायः सभी पुराणोंमें सूर्यकी महिमा वर्णित है ।  
 सत्य, वेद, अमृत ( शुभ फल ), मृत्यु ( अशुभ फल ) के  
 अधिष्ठाता पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत  
 सर्वान्तर्यामी श्रीसूर्यकी हम सभी प्रार्थना करते हैं ।  
 ‘प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।  
 अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मान्मीमहीति  
 ( श्रीमद्भा० ५ । २० । ५ ) हे सवितादेवता ! आप हमारे  
 सभी दुरितों ( पापों ) को दूर करे तथा जो कल्याण हो  
 उसे लाकर दे, यह कहकर—‘विश्वानि देव सवित-  
 दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तत्र या सुव ।’ ( ऋ० ५ । ८२ । ५ ) हम भगवान् सूर्यसे सब पापोंके

विनाशक माथ आत्मकल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं ।  
 सम्पूर्ण फलों और सम्योंका परिणाम-परिणाल तथा उनकी  
 दृढता-कठोरता सूर्यकी किरणोंसे ही सम्भव होती है ।  
 रसोंके आश्रान्-( ग्रहण- ) से ही सूर्यको ‘आदित्य’  
 कहते हैं । वे आदित्यसे पुत्रवृत्त्यमें उत्पन्न भी हैं ।  
 सम्पूर्ण वृष्टिके आश्राम ये अशुमाली ही हैं—  
 ‘आदित्याज्ञायते वृष्टिः’ । भगवान् सूर्यनारायणकी  
 विभिन्न किरणे ही जलका व्रोगण कर पुनः जलवृपणसे  
 जगत्को आपायित करती हैं । ये भगवान् भास्कर  
 ही जगत्के सभी जीवोंके कर्मोंकि साक्षी हैं । प्रत्यक्ष देवके  
 रूपमें भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के परम आराध्य हैं ।  
 श्रुतियों एव उनके आश्वारके शास्त्रवचनोंके अनुसार  
 जब एक आस्तिक हिन्दू अविष्ट्रात्-देवताका भावनासे सारे  
 जगत्को चिदविलास—चेतनानुप्राणित मानता है तब  
 सम्पूर्ण तेजःशक्तिके धारक भगवान् सूर्य जो ताप-  
 प्रकाश आदिके द्वारा हमारे परम उपकारक हैं, वे  
 प्रवर्तक-अवस्थामें गतिरहित कैसे मान्य होंगे । वे  
 साक्षात् चेतन परमवृत्तरूप हैं । वे केवल तेजके  
 गोलामात्र नहीं हैं, वे चिन्मय प्रज्ञानघन परमार्थतत्त्व  
 हैं । जिस प्रकार वाहरी चक्राचौधर्से यह आत्मतत्त्व  
 आच्छादित है, उसी प्रकार इस हिरण्मय-सुवर्णवत्  
 प्रकाशमान, चमचमाहटसे सन्यरूप नारायणका मुख  
 ( शरीर ) छिपा है । साधक उस परमार्थ सत्यके  
 दर्शनार्थ सूर्यसे उस आवरणके हटानेकी प्रार्थना करता  
 है । भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण धर्म तथा कार्य जगत्के  
 परम उपकारक हैं । इसीसे हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोंने  
 उपासनामे उन्हे उच्च स्थान दिया है । जगत्के एक  
 मात्र चक्षुःस्वरूप, सबकी सृष्टि-स्थिति-प्रलयके कारण,  
 वेदमय, त्रिगुणात्मक रूप धारण करनेवाले, ब्रह्म-विष्णु-  
 शिवस्वरूप भगवान् सूर्यका हम शिरसा नमन करते  
 हैं । सूर्यमण्डलमध्यवर्ती वे नारायण हमारे ध्येय हैं ।  
 हमे उनका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये ।

## सूर्य-ब्रह्म-समन्वय

( लेखक—श्रीवजवलभारणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ )

सर्वेऽति नाम्ना भगवान् निगद्यते  
सूर्योऽपि सर्वेषु विभाति भाग्या ।  
ब्रह्मैव सूर्यः समुदेति नित्यशः  
तस्मै नमो ध्वान्तविलोपकारिणे ॥

वैदिक धर्मकी वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर—ये पॅच प्रसिद्ध शाखाएँ हैं। इनमें विष्णु, शिव, शक्ति, गगपति और सूर्य—इन पॅचों की उपासनाका विशद विधान है। यद्यपि वेद और पुराण आदि समस्त शास्त्रोंमें एकेश्वरादका प्रतिपादन एवं समर्थन मिलता है, तथापि भावनाको प्रवल बनानेके लिये उपर्युक्त सनातनधर्मकी पॅचों शाखाओंमें वैष्णव विष्णुकी, शैव शिवकी, शाक्त शक्तिकी, गाणपत्य गणपतिकी और सौर सूर्यकी प्रधानता मानकर अपनी-अपनी भावनाको ढढ करते हैं। वस्तुतः ईश्वर—परमात्मा (ब्रह्म) एक ही तत्त्व है, जो चराचरात्मक जगत्का उत्पादक, पालक, संहारक तथा जीवोंको जन्म-मरणरूपी ससृतिचक्रसे छुड़ानेवाला है। शास्त्रकी यह विशेषता है कि अनन्त गुण, शक्ति, रूप एवं नामवाले ब्रह्मके जिस नामको लेकर जहाँ विवेचन किया जाता है, वहाँ उसीमें ब्रह्मके समस्त गुण-शक्ति-नाम-रूपादिका समर्थन कर दिया जाता है। साधारण बुद्धिवाले व्यक्ति पूर्णतया मनन न कर पानेसे अपने किसी एक ही अभीष्ट उपास्यकी सर्वोच्चता मानकर परस्परमें कलह-तक कर बैठते हैं। तत्त्वतः यह ठीक नहीं है।

वस्तुतः विचार किया जाय तो हमें प्रत्येक दृष्टि एवं श्रुत वस्तुमें ब्रह्मत्वकी अनुभूति हो सकती है। सूर्यमें तो प्रत्यक्ष ही वैशिष्ट्यका अनुभव हो रहा है।

वेदोमें सैकड़ों सूक्त हैं, जिनमें उपर्युक्त पॅचों देवोंके अतिरिक्त बृहस्पति आदि ग्रहों और जड़तत्त्वमें परिगणित पर्जन्य, रात्रि, रक्षोध्न, मन्त्र, अग्नि, पृथ्वी, उपा और ओप्रधि आदिके अन्य भी ब्रह्मत्वसे सूक्त हैं। उनमें उन्हींकी महत्वाका दिग्दर्शन है, जिनके नामसे वे सूक्त सम्बद्ध हैं। श्रीसूर्यदेवके नामसे सम्बद्ध भी अनेक सूक्त हैं, उनमें—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपथ्य’ (ऋ०१। ११५। १) इत्यादि मन्त्रोद्घारा स्पष्टतया सूर्यको चराचरात्मक जगत्की आत्मा कहा गया है। सूर्यके जितने भी पर्यायवाची नाम हैं, उन सबके तात्पर्यका ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है, क्योंकि एक ही परमात्मा वैश्वानरै, प्राण, आकाश, यम, सूर्य और हस आदि अनन्त नामोंसे अभिहित है<sup>२</sup>। वेद एवं पुराण आदि उसी एक परमात्माका आमनन करते हैं<sup>३</sup>, अधिक क्या ससारमें—ऐसा कोई शब्द नहीं जो ब्रह्मका वाचक न हो—‘उल्लङ्घ’-जैसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति भी ब्रह्मपरक लगायी जा सकती है<sup>४</sup> और ‘मूढ़’-जैसे अपमानसूचक शब्दोंसे भी परमात्माकी स्तुति की गयी है<sup>५</sup>। परिवर्तन एवं विनश्वरणील प्राणियोंके शरीर तथा उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें भी प्रसङ्गवश भगवत्ताका अभिनिवेश प्रतिपादित किया गया है। ऋषि-महर्षि, मुनि-महात्मा, साधु-सत और ब्राह्मण जब किसीको आशीर्वाद देते हैं, तो अभयमुद्दावाले हाथके लिये सकेत करते हैं—यह मेरा हाथ भगवान् ( भले-नुरे कर्म करनेमें समर्थ ) ही नहीं, भगवान्से भी ब्रह्मकर है; क्योंकि इस हाथके द्वारा किये हुए कर्मोंका फल देनेके लिये भगवान्स्को भी विवश होना पड़ता है। परम्परया कर्म भी मोक्षके

१. अह वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना देहमात्रितः । ( गीता १५। १४ )

२. एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । ३. सर्वे वेदा यत्पद्मामनन्ति । . . . . .

४. सर्वे गच्छा ब्रह्मवाचकाः उत्-उद्धर्य लुनातीति उल्लङ्घः । ( श्रीभाग्य ) ५. नमः ग्रान्ताय शोगाय मूढाय गुणधर्मिणे ।

( भा० ८। ३। १२ ) ( गूडाय पाठ भी मन्तव्य है । स० )

साधक हैं। अतः कर्मोंका कर्ता यह हाथ ही संसारके दुःखोंसे छुड़ानेवाला महान् औपधि है, अतएव यही मुक्ति दिलाता है—

अथं मे हस्तो भगवान्यं मे भगवत्तरः।  
अथं भे विश्वभेपजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥  
( ऋ० १० । ६० । १२ )

सूर्यकी जड़ता और परायणता भारतीय शास्त्रमें भी वर्णित है। पाश्चात्य विचारक तो इसे एक आगका गोला मानते ही हैं; किंतु चिन्तित है कि आगमें इन्धन चाहिये। यदि सूर्यरूपी इस आगके गोलेमें इन्धन न पहुँच पायगा और यह शान्त हो जायगा तो दुनियाकी क्या दशा होगी? भारतीय शास्त्रोंके विज्ञाताओंने उपासनाको ही उपास्यका पोषक मानकर इस समस्याका समाधान किया है। अतः सूर्यका जितना अधिक आराधन किया जायगा, उतना ही अधिक सूर्यका पोषण एवं लोकका हित होगा। कोई किसीकी प्रशंसा करता है तो प्रशस्य व्यक्ति प्रफुल्ल एवं प्रमुदित होता है—ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। वेद भी कहते हैं—‘प्रभो! हमारी ये सुन्दर उक्तियाँ आपके तेज-बल आदिको बढ़ावे—व्यक्त करे—जिससे आप हमारी रक्षा एवं पालन-पोषण करे—

वर्धन्तु त्वां सुषुप्तयो गिरो मे  
गूर्यं पात् स्वस्तिभिः सदा नः।

सूर्यको वेद एव पुराण आदि शास्त्रोंमें कहीं परमात्मासे समुत्पन्न माना गया है<sup>३</sup>, कहीं चक्षुसे<sup>३</sup> उद्भूत और कहीं चक्षुस्तरूप ही माना गया है। कहींपर इत्याकुवंशमें समुत्पन्न और कई स्थलोंमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि देवोंका उपास्य) भी कहा गया है<sup>३</sup>। इन सभी विभिन्न वाक्योंका समन्वय जटिल अवश्य है; किंतु असम्भव नहीं।

अध्यात्म, अविभूत एवं अधिदैव—ये तीन स्वरूप प्रत्येक दृष्ट-श्रुत वस्तुओंके माने जाते हैं। अधिभूत शरीर, अध्यात्म—आत्मा (जीव) और अधिदैव—परमात्मा अन्तर्यामी कहलाता है। इन्हीं तीनों रूपोंसे गायमें सूर्यका विभिन्न रूपसे वर्णन किया गया है। शास्त्रीय विधान है—‘आरोग्यं भास्करादिच्छेत्’। इसके अनुसार आराधना करनेपर भगवान् सूर्य आराधकके शरीरको स्वस्य बनाते हैं। शरीर ही धर्मादि उरुपार्थचतुष्यका साधक है। केवल प्राणी ही नहीं, चराचरात्मक अविल जगत्का सूर्यद्वारा अपार हित होता है। अतएव चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, चाहे आर्यसनातनी हो या अन्य धर्मावलम्बी—सभीके लिये जीवनप्रदान करनेवाले ये सूर्य भगवान् उपास्य एवं पूज्य हैं, वे हमारी रक्षा करें।

### सर्वोपकारी सूर्य

देवः किं वान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाऽऽचार्य आहोस्विद्यर्यो  
रक्षाचक्षुर्द्वयं दीपो गुरुरुत जनको जीविनं वीजभोजः।

एवं निर्णयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽस्तौ

सर्वकारोपकारी दिशतु दशशतामीपुरभ्यर्थितं नः॥

जिन भगवान् सूर्यनारायणके निपयमें यह निर्णय हो नहीं पाता कि वे वास्तवमें देवता हैं या वान्धव; प्रिय मित्र हैं (अथवा वेदके उपज्ञ) आचार्य किंवा अर्च स्वामी; वे क्या हैं—रक्षानेत्र हैं अथवा विश्वप्रकाशक दीपक; वे धर्माचार्य गुरु हैं अथवा पालनकर्ता पिता; प्राण हैं या जगत्के प्रमुख आदिकारण; बल हैं अथवा और कुछ। किंतु इतना निश्चय है कि सभी कालों, सभी देशों और सभी दशाओंमें वे कल्याण करनेवाले हैं। वे सहस्ररिम (भगवान् सूर्य) हम सबका मङ्गल-मनोरथ पूर्ण करे। +---+ ( सूर्यशतकम् १०० )

१. सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। ( ऋ० १० । १९० । ३ ) २. चक्षोः सूर्यो अज्ञायत्। ( यजुर्वेद ३१ । १२ )
३. एप ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः। ( आदित्यहृदय, वा० ८० उ० १०७ । ८ )

## चराचरके आत्मा सूर्यदेव

( लेखक—श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार )

वेदोमें सूर्य, सविता और उनकी शक्तियो—मित्र, वरुण, अर्यमा, भग और पूषाके प्रति अनेक सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। उनके स्वाध्याय और मननसे विदित होता है कि सूर्य एवं सविता जड़-पिण्ड नहीं, अग्निका गोला ही नहीं, अपितु ताप, प्रकाश, जीवनशक्तिके प्रदाता, प्रजाओंके प्राण ‘सूर्य’ या ‘नारायण’ हैं। ‘चन्द्रमा भनसो जातश्वक्षोः सूर्यो अजायत ।’ ( ऋक् ० १० । ९० । १३ ), ‘यस्य सूर्यश्वक्षुञ्चन्द्रमाञ्च पुनर्णवः । अर्णि यश्वक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः’ ( अर्थव० १० । ७ । ३३ ) ; ‘यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति । तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ॥’ ( अर्थव० १० । ८ । १६ ) इत्यादि मन्त्रोंमें सूर्यको परम पुरुष परमेश्वरके चक्षुसे उत्पन्न, ज्येष्ठ ब्रह्मका चक्षु तथा उन्हींसे उदित और उन्हींमें अस्त होनेवाल कहा गया है। अतः सूर्यदेव मानव-देहकी भौति जड़-चेतनात्मक हैं। जैसे हमारी देह जड़ और उसमें विराजमान आत्मा चेतन है वैसे ही सूर्यका बाहरी आकार ( पिण्ड ) भौतिक वा जड़ है, पर उसके भीतर चेतन आत्मा विराजमान है। वे एक देवता हैं—बाय्य और आन्तर प्रकाशके दाता, ताप और जीवनशक्तिके अक्षय भाण्डार, सकल सृष्टिके प्राणस्वरूप। वे आत्मप्रसाद और अप्रसाद—कोप और कृपा, वर और शाप, निग्रह और अनुग्रह करनेमें सर्वथा समर्थ सूर्य-नारायण हैं।

वैज्ञानिक जगत्को जब यह विदित हुआ कि हिंदू-धर्मके अनुसार सूर्य एक देवता हैं जो प्रसन्न एवं अप्रसन्न भी होते हैं तो एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। उन्होंने इसकी सत्यता जॉचनेके लिये परीक्षण करना

प्रारम्भ कर दिया। मिस्टर जार्ज नामक एक विज्ञानके प्रोफेसरने इस परीक्षणमें सफलता प्राप्त की। ज्येष्ठमासकी कड़कती धूपमे वे केवल पाजामा पहने हुए पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरे। फिर जब कमरेमें जाकर तापमान देखा तो १०३ डिग्री ज्वर चढ़ा पाया। दूसरे दिन पूजाकी सब सामग्री—पत्र, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य आदि लेकर यथाविधि श्रद्धासे पूजा की, शास्त्रोक्त रितिसे सूर्य-नमस्कार किया। उसमे ११ मिनट लगे। जब कमरेमें जाकर थर्मामीटरसे तापमान देखा तो ज्वर पूरी तरहसे उत्तरा पाया। इस परीक्षणसे वे इस निश्चयपर पहुँचे कि सूर्य वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अग्निका गोला ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें चेतन सत्ताकी भौति कोप-प्रसादका तत्त्व भी विद्यमान है। अतः विज्ञानसे भी सूर्य-नारायणका देवत्व स्पष्ट हो जाता है। वेदोमें कहा गया है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युषश्च’ ( ऋक् ० १ । ११५ । १ ) सूर्यदेव स्थावर और जङ्गम जगत्के जड़ और चेतनके आत्मा हैं। इन्हे मार्तण्ड\* भी कहते हैं; क्योंकि ये मृत अण्ड ( ब्रह्माण्ड ) मेंसे होकर जगत्को अपनी ऊष्मा तथा प्रकाशसे जीवन-दान देते हैं। इनकी दिव्य किरणोंको प्राप्त करके ही यह विश्व चेतन-दशाको प्राप्त हुआ और होता है। इन्हींसे चराचर जगत्में प्राणका सञ्चार होता है—‘प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः’ ( प्रश्न ० १ । ८ )। अतएव वेद भगवान् सूर्यसे शक्ति और शान्तिकी प्राप्तिके लिये उनकी पूजा और प्रार्थना करनेकी आज्ञा देते हैं—

सूर्यो ज्योतिज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।  
सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।  
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।

\*० मृतेण्ड एप एतस्मिन् यद्मूल ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ।

सजुर्देवेन सवित्रा सजूरुपसेन्द्रवत्या ।  
जुपाणः सूर्यो वंतु स्वाहा ॥  
( अ० ३ । ९-१० )

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु  
शं नश्चतस्यः प्रदिशो भवन्तु ।  
शं नो देवः सविता आयमाणः  
शं नो भवन्तुपसो विभातीः ।  
( —अ० ३ । ३५ । ८, १० )

तैत्तिरीय आरण्यकमे कहा गया है कि उटय और अस्त होते हुए सूर्यका ध्यान और उपासना करनेसे ज्ञानी ब्राह्मण सब प्रकारकी सुख-सम्पदा और कल्याण प्राप्त करते हैं—उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्चनुते ।

अब यहाँ वेदके कतिपय सूक्तो, मन्त्रोंके भावोद्घारा सूर्यभगवान्के महनीय स्वरूप और कार्य-व्यापारका निखण्ण किया जाता है ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।  
द्वौ विश्वाय सूर्यम् ॥  
( —अ० १ । ५० । १ )

‘उस सर्वज्ञ सूर्यदेवको उसकी किरणे, उसके घजारूपी अश्व ( क्षितिजपरसे आकाशमे ) ऊपर ले जा रहे हैं, ताकि सम्पूर्ण विश्व, सभी प्राणी उसके दर्शन करें ।’

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्ज्ञानकी रश्मियाँ उपासकको उस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, स्वयंप्रकाश, सूर्य-प्रमात्मदेवकी ओर ले जाती हैं जिससे कि वह इस विश्वके रहस्यको साक्षात् देख-समझ सके ।

अप त्ये तायतो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।  
स्वराय विश्वचक्षसे ॥ ( —अ० १ । ५० । २ )

‘ये सब नक्षत्रगण रात्रिके अन्धकारके साथ चोरोंकी भौति चुपकेसे इस विश्वदर्ढी सूर्यके सामनेसे भागे जा रहे हैं ।’

भद्रश्चमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।  
आजन्तो अद्ययो यथा ॥ ( —अ० १ । ५० । ३ )

‘दूष्यमान अश्रियो-जैसे इनके ये अज, ये किरणे, मनुष्य आटि सभी जीव-जन्मुओंको अनुकूल दर्शन करा रही हैं ।’

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्ठदसि सूर्य ।  
विश्वमा भासि रोचनम् ॥  
( —अ० १ । ५० । ४ )

‘हे सूर्यदेव ! आप अन्धकारसे पार लगानैवाले, सर्वसुन्दर, परम दर्शनीय, ज्योतिके स्त्रष्टा हैं । आप इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को भास्त्र-क्षयमें प्रकाशित करते हैं ।’

प्रत्यङ्गदेवानां विशः प्रत्यङ्गदेविपि मानुषान् ।  
प्रत्यङ्ग विश्वं स्वर्दशो ॥ ( —अ० १ । ५० । ५ )

‘बुलोकवासी ग्रजाओं, मनुष्यों तथा सम्पूर्ण विश्वके समुख आप उडित हो रहे हैं ताकि वे सभी आपकी स्वर्गीय ज्योतिके दर्शन करें ।’

येना पावक चक्षसा मुरण्यन्तं जनाँ अनु ।  
त्वं वरुण पश्यास ॥ ( —अ० १ । ५० । ६ )

‘हे पवित्रीकारक, पापनाशक वरुणदेव ! जिस नेत्रसे तुम लोगोंसे कर्मपरायण मनुष्यके सम्य-अनुत्तका अबलोकन करते हो वह यही सूर्यरूपी नेत्र है ।’

वि धामेषि रजस्पृश्वहा मिमान्तो अकुमिः ।  
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ( —अ० १ । ५० । ७ )

‘हे सूर्यदेव ! रात्रिके योगसे दिवसोंको सीमित करते हुए या अपनी किरणोंसे दिनोंका माप करते हुए आप उत्पन्न प्राणिमात्रका निरीक्षण करते-करते बुलेक और विशाल अन्तरिक्ष-प्रदेशमे संचरण करते रहते हैं ।’

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।  
शोक्षिक्षेदां विचक्षण ॥ ( —अ० १ । ५० । ८ )

‘हे सूर्यमदर्शिन् विशालदृष्टे सूर्यदेव ! आपके रश्मरूपी सात अश्व किरणरूपी केशोंसे सुशोभित आपको रथमें ले जा रहे हैं ।’

अयुक्त सप्त शुन्धुयः सूरो रथस्य नप्यः ।  
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ( —अ० १ । ५० । ९ )

‘सर्वप्रेरक सूर्यदेवने अपने रथकी सात पवित्र और पवित्रीकारक कन्याओंको रथमें जोत रखा है। स्वयं ही रथसे जुल जानेवाले इन अश्वोंकी सहायतासे वे अपने मार्गका अनुसरण करते हैं।’

उद्द वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।  
देवं देवता सूर्यमग्नम् ज्योतिरुत्तमम् ॥

(—ऋ० १ । ५० । १०)

‘अन्धकारके उस पार श्रेष्ठ तेजका दर्शन करते-करते हम देवलोकमें सर्वश्रेष्ठ-ज्योतिःस्वरूप सूर्यदेवके पास पहुँच गये हैं।’

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्यज्ञ करनेवाले हम उपासक अज्ञानान्धकारके ऊपर उच्च और फिर उच्चतर ज्योतिका साक्षात्कार करते हुए अन्तमे उच्चतम-ज्योतिःस्वरूप, देवोमें परमदेव परमात्म-सूर्यतक जा पहुँचे हैं।

हृद्रोग, कामला आदि रोगोंके नाशक सूर्यदेव  
उद्यन्ध्र भित्रमह आरोहन्नुत्तरां द्विम् ।  
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥

‘हे मित्रकी भौति उपकारक तेजसे सम्बन्ध सूर्यदेव ! आप आज उदित होकर फिर उच्चतर वृहत् धौमें आरोहण करते हुए मेरे इस हृद्रोग तथा पीलिया (कामला रोग)-का विनाश कर दीजिये।’

शुकेषु मे हरिमाणं गोपणाकालु दधसि ।  
अथौ हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दधसि ॥

(—ऋ० १ । ५० । १२)

‘अपना पीलिया (पीलापन) हम अपने शरीरसे अलग कर उसी रगके शुक और सारिका-नामक पक्षियोंमें तथा हारिद्रव नामक वृक्षोंमें रख देते हैं।’

१. सूर्य-किरण-चिकित्साके द्वारा सूर्यके भिन्न-भिन्न रंगोंके किरणोंके यथाविधि सेवनसे देहके विरों और रोगोंका नाशकर चाह्य और आन्तर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधियाँ विकसित हो चुकी हैं।

भिन्न-भिन्न रंगोंकी दोतलाएँ जल भरकर उसे सूर्यकी धूमें रखनेसे उसमें नाना रोगोंके नाशकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

२. सूर्यदेवकी वथाविधि उपासनासे प्राप्त उनकी कृपा तथा मन्त्रवल्लभे अपना पीलापन अपने शरीरसे निकालकर उने उस रंगके पक्षियों या वृक्षोंमें फेंका जा सकता है जिनके लिये वह स्वाभाविक और शोभावर्धक होता है।

उद्गादयमादित्यो विद्वेन सहसा लह ।  
द्विषन्तं महां रन्धयन् मो थहं द्विषते रधम् ॥  
(—ऋ० १ । ५० । १३)

अदितिके पुत्र ये आदित्यदेव मेरे लिये उपद्वकारी शत्रु और रोगका नाश करते हुए अपने समूर्ण वलके साथ मेरे समक्ष उदित हुए हैं। (अपना समस्त भार उनपर सौंप चुका हूँ—मैं सूर्यभगवान्‌का उपासक हूँ) अतः अपने अनिष्टकारी मानुष या अमानुष प्राणी या रोगका स्वयं नाश न करूँ, मेरे द्वेषीके विपर्यमें जो कुछ करना है उसे सूर्य भगवान् ही मेरे लिये करें।

चिं देवानामुदगादनीकं  
चक्षुर्भित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।  
यामा ध्यावापृथिवी अन्तरिक्षं  
सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ॥  
(—ऋ० १ । ११५ । १)

‘देवोके ये सुन्दर मुख, मित्र-वरुण और अग्निके नेत्र ये सूर्यदेव उदित हुए हैं। स्यावर-ञ्जलि-विश्वके आत्मा इन सूर्यदेवने धौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने दिव्य प्रकाशसे भर दिया है।’

सूर्यो देवीमुपसं रोच्मानां  
स्यां ल योपामभ्येति पश्चात् ।  
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि  
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥  
(—ऋ० १ । ११५ । २)

‘भगवान् प्रातःकालकी जिस वेलामें सूर्य सौन्दर्यसे दीप्यमान उषादेवीका उसी प्रकार अनुगमन करते हैं जिस प्रकार पनि अपनी अनुग्रहा पनीका, उस समयमें देवतवकामी मनुष्य उच्चतर कल्याणकी ओर ले

जानेवाले कल्याणकी अभिलाषासे अपने यज्ञायोजनोंका विस्तार करते हैं।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्त्व  
चित्रा एतम्भा अनुमाद्यासः।  
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्युः  
परि धावापृथिवी यन्ति सद्यः॥  
(—ऋक् १। ११५। ३)

‘सूर्यके कल्याणकारी, कान्तिमय, नानावर्ण, शीव्रगामी, आनन्ददायी एवं स्तुत्य रश्मिरूप अश्व अपने सामी सूर्यकी पूजा करते हुए बुलोकके पृष्ठपर आरूढ़ होकर तत्क्षण ही धावापृथिवीको व्यास कर लेते हैं।’

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं  
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।  
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-  
दाद्रात्री वासस्तुतुते सिमस्मै॥  
(—ऋक् १। ११५। ४)

‘यह भगवान् सूर्यका देवत्व और महिमा है कि वे अपने कार्यके बीचमें ही अपने फैले हुए रश्मिजालको समेट लेते हैं। जिस समय वह अपने कान्तिमान्, रश्मिरूप अश्वोंको अपने रथसे समेटकर अपनेमें संयुक्त कर लेते हैं, उसी समय रात्रि समस्त जगत्के लिये अपना अन्धकाररूप वस्तु बुनती है।’

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे  
सूर्यो रूपं कृषुते द्योरुपस्थे।  
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः  
कृष्णमन्यद्वरितः सं भरन्ति॥  
(—ऋक् १। ११५। ५)

‘सबके प्रेरक भगवान् सविता अपनी प्रेम-साम-  
ज्ञस्यमयमूर्ति मित्रदेव तथा अपनी पावित्र्य-वैशाल्यमय-  
मूर्ति वरुणदेवके सम्मुख स्वर्णोक्की गोदमें अपना तेजोमय-

\* ‘उदिता सूर्यस्य’ इन पदोका साङ्केतिक अर्थ यह है कि सूर्यदेव मित्र, वरुण तथा अन्य देवोंके बे नेत्र हैं जो लोगोंके सत्य-अनुत्त एव पाप-पुण्यके साक्षी हैं। अतः ये सूर्य उदित होनेपर सभी देवोंके समस्त हमारे निष्पाप, निरपमाध होनेकी साक्षी हैं तथा ये देव भी हमे पापमें वचाते हुए हमारी प्रराति एवं विकास साधित करे।

स्वरूप प्रकट कर रहे हैं। इनके कान्तिमान् अश्व इनका एक अनन्त, दीप्यमान, दिनरूपी, श्वेतवर्ण तेज तथा दूसरा निशान्धकाररूपी कृष्णवर्ण तेज निरन्तर लाते रहते हैं।’

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य  
निरहंसः पिपृता निरवद्यात्।  
तन्मो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः  
सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥  
(—ऋक् १। ११५। ६)

‘हे देवो ! आज सूर्योदयके समय हमें पाप, निन्द्य कर्म और अपकीर्तिके गतसे निकाल्कर हमारी रक्षा करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ—ये सभी देव हमारी इस प्रार्थनाका सम्मान कर इसे पूर्ण करें, हमारी उन्नति और अभिवृद्धि साधित करें।’\*

रोग-सङ्कटादिके निवारक सूर्यदेव  
येन सूर्य ज्योतिपा वाधसे तमो  
जगच्च विश्वमुदियर्पि भानुना।  
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाद्वितिपामी-  
वामप दुर्घटप्यं सुव॥  
(—ऋक् १०। ३७। ४)

‘हे सूर्यदेव ! जिस ज्योतिसे आप तमका निवारण करते और सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे अभ्युदय प्राप्त कराते हैं, उसीसे आप हमारे समस्त विपत्-सङ्कट, अयज्ञ-भावना, आधि-व्याधि तथा दुःख-स्पन्द-जनित अनिष्टका भी निवारण कर दीजिये।’

सर्वश्रेष्ठ ज्योति  
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुच्चमं  
विश्वजिद्वनजिदुच्यते वृहत्।  
विश्वभ्राद् भ्राजो महि सूर्यो दश  
उरु पप्रये सह ओजो अच्युतम्॥  
(—ऋक् १०। १७०। ३)

‘यह सौर-ज्योति-ग्रह-नक्षत्र आदि ज्योतियोकी भी ज्योति, उनकी प्रकाशक सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च ज्योति है। यह विशाल, विश्वविजयी और ऐर्थर्यविजयी कहलाती है। सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले ये महान् देदीप्यमान सूर्यदेव अपने विस्तृत तमका अभिभव करनेवाले, अविनाशी ओज-तेजका सबके दर्शनके लिये विस्तार करते हैं।’

### देवयानके अधिष्ठाता

अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽ-  
सिन्पथि देवयाने भूयात् ॥\*(—यजु० ५। ३३)

‘हे सकल मार्गोंकि स्वामिन् सूर्यदेव ! मुझे पार लगाइये। इस देवयानमार्गपर मेरा पूर्ण मङ्गल हो !!’

### देवोंमें परम तेजस्वी

सूर्य भाजिष्ठ भाजिष्ठस्त्वं देवोच्चसि  
भाजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥(—यजु० ८। ४०)

‘हे परमतेजस्विन् सूर्यदेव ! आप देवोंमें सबसे अधिक देदीप्यमान हैं, मैं भी मनुष्योंमें सबरो अधिक देदीप्यमान परम तेजस्वी हो जाऊँ ।’

### पाप-तापमोचक

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाधाँसि चक्रमा वयम् ।  
सूर्यो मा नस्मादे नसो विश्वान्मुक्त्वाँ हसः ॥  
(—यजु० २०। १६)

‘जागते या सोते यदि हमने कोई पाप विये हों तो भगवान् सूर्यदेव हमे उन समस्त पापोंसे, कुटिल कर्मोंसे मुक्त कर दे ।’

### सबके वशीकर्ता

यद्यु कच्च वृत्रहन्तुदग्न अभि सूर्य ।  
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥  
(—यजु० ३३। ३५)

\*. कहीं बाहर कार्यके लिये जाते समय पूर्ण अद्वाभक्ति और एकाग्रताके साथ इस मन्त्रका जप करके तथा जप करते हुए जानेसे कार्य-सिद्धि होती है।

‘हे वृत्रवालक, अघुरसहारक सूर्यदेव ! जिस किसी भी पदार्थ एवं प्राणीके सामने आप आज उदित हुए हैं वह सब—वे सभी आपके वशमें हैं ।’

तच्चक्षुदेवहितं पुरस्ताच्छुकमुच्चरत् ।  
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतत् ॥  
शृणुयाम शरदः शतम् ॥  
प्रव्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं  
भूयस्त्वं शरदः शतात् ।  
(—यजु० ३६। २४)

‘देखो ! वे परमदेवद्वारा स्थापित शुद्ध, पवित्र, देदीप्यमान, सबके द्रष्टा और साक्षी, मार्गदर्शक सूर्यरूप चक्षु हमारे सामने उदित हए हैं। उनकी कृपासे हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीवित रहे, सौ वर्षोंतक श्रवणशक्तिसे सम्पन्न रहे, सौ वर्षोंतक प्रवचन करते रहे, सौ वर्षोंतक अदीन रहे, किसीके अधीन होकर न रहें, सौ वर्षोंसे भी अधिक देखते, सुनते, बोलते रहे, पराधीन न होते हुए जीवित रहे ।’

आवाहन—सूर्योपासनाका मन्त्र  
उदिद्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।  
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमर्ति कृधि  
तवेद् विष्णो वहुधा वीर्याणि ।  
त्वं नः पृष्णीहि पश्चुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि  
परमे व्योमन् ॥ (—अर्थव० १७। १। ७)

‘हे भगवान् सूर्यदेव ! आप उदित हों, उदित हों, अध्यात्म तेजके साथ मेरे समझ उदित हों। जो मेरे दृष्टिशक्ति वहोते हैं और जो नहीं होते उन सबके प्रति मुझे सुमति दें। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव ! आपके ही नानाविध वलवीर्य नाना प्रकारसे कार्य कर रहे हैं। आप हमें सब प्रकारकी दृष्टि-शक्तियोंसे पूर्ण और परितृप्त कीजिये, परम व्योममें अमृतलवमें प्रतिष्ठित कर दीजिये ।’

## हर्षके सहचारी देव—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग, पूषा

अग्नि, इन्द्र, सूर्य और सोम—ये चार प्रधान दैदिक देवता हैं। इनमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने सहचारी देव हैं जो सदा उसके सङ्ग रहते हैं और उसके कार्य-व्यापारमें सहायता करते हैं। यहाँ हम वेदके गूढार्थ-द्रष्टा महर्पि श्रीअरविन्दके अनुसार सूर्यके सहचारी देवों—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग और पूषाके खरूप और कार्यव्यापार संक्षेपमें ग्रातिपादित करते हैं।

सूर्यदेव परम सत्यकी ज्योति हैं और हमारी सत्ता, हमारे ज्ञान और कर्मके मूलमें जो सत्य कार्य कर रहा है उसके अधिष्ठात्रदेवता भी वे ही हैं। सूर्यदेवताके परम सत्यको यदि हम प्राप्त करना चाहते हैं, अपनी प्रकृतिमें दृढ़तया स्थापित करना चाहते हैं, तो उसके लिये कुछ शर्तोंकी पूर्ति करना आवश्यक है। एक विशाल पवित्रता एवं निम्न विशालता प्राप्त करना आवश्यक है जो हमारे समस्त पाप-पुण्य एवं कुटिल असत्यका उन्मूलन कर दे। उस विशालता एवं पवित्रताकी साक्षात् मूर्ति ही हैं वरुणदेव। इसी प्रकार प्रेम और समग्र वोधकी शक्ति प्राप्त करना भी अनिवार्य है जो हमारे सभी विचारो, कार्यों और आवेगोंको परिचालित करे और उनमें सामञ्जस्य स्थापित करे। ऐसी शक्तिके साक्षात् विग्रह ही हैं मित्रदेव। और फिर विशद विवेकसे पूर्ण अभीप्सा तथा पुरुषार्थकी अक्षयशक्ति भी अपरिहार्य है। उसीका नाम है अर्यमा। इनके साथ ही अपेक्षित है सब पदार्थोंके समुचित दिव्य उपभोगकी सहज सुखमय अवस्था जो पाप, प्रमाद और पीड़ाके दुःखप्नको दूर भगा दे। ऐसा कर सकनेवाली शक्ति ही है भग देवता। ये चारों दिव्यशक्तियाँ सूर्यदेवताके सत्यकी शक्तियाँ हैं।

किंतु हमारे अंदर उनका दिव्य कार्य सहसा ऐसी संपन्न नहीं हो सकता। मनुष्यके अंदर देवताकी सृष्टि एकदम ही नहीं वी जा सकती, अपितु एकके बाद एक दिव्य उपाओंके उदयसे, प्रकाशप्रद सूर्यके समय-समयपर पुनः-पुनः उदयनसे होनेवाले ज्योतिर्मय विकास एवं क्रमिक पोषणके द्वारा ही साधित हो सकती है। इसके लिये सूर्य अपने आपको एक अन्यमूलप्रमेय पोषक एवं संवर्धक पूषाके रूपमें प्रकट करते हैं। साधककी अभीष्ट आध्यात्मिक सम्पदा दिन-प्रतिदिन इस पूषा ( पोषक सूर्य ) के पुनरावर्तनके समय वृद्धिको प्राप्त होती है। पूषा सूर्यशक्तिके इस पहलवाका प्रतिनिधित्व करते हैं।

वरुण परम सत्यके सूर्य परमेश्वरकी सक्रिय सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके मूर्ति विग्रह है। सत्ता और चेतनाकी विशालता, ज्ञान और शक्तिकी वृहत्ता एवं विराट्नाके राजा हैं वरुणदेव। वे आकाशसद्वा, सिंधुसम, अनन्त विस्तारवाले राजा, स्वराट् और सम्राट् हैं। दुर्निवार पाशरूप शख्तके धारक दण्डदाता हैं और उपचारकर्ता भी।

मित्र प्रेमके देवता, दिव्य सखा, मनुष्यों और देवोंके सदय सहायक हैं। वेदोंके अनुसार, सभी देवोंमें प्रियतम देव ये ही हैं। ऐसी प्रकार अर्यमा अन्तर्यज्ञ और अभीप्साकी तथा सत्यके लिये संग्रामकी मूर्तिमती शक्ति हैं। पूर्णता, प्रकाश और दिव्यानन्दकी प्राप्तिके लिये मनुष्यजाति जो यात्रा कर रही है उसकी संचालक शक्ति अर्यमा ही है। सृष्टिके समस्त पदार्थोंके आनन्दका उपभोग करनेवाली शक्ति हैं भगदेवता। प्रचुर ऐश्वर्यों ( वाजों\* ) के प्रमुख स्वामी हमारी क्रमिक अभिवृद्धिके अधिपति, हमारे संगी-साथी हैं पूषा देवता। वे हमारे प्रचुर ऐश्वर्योंका क्रमसे संवर्धन करते हैं।

\* भगवान् सूर्यका नाम वाजसनि भी है।

## कर्त्त्याण-मूर्ति सूर्यदेव

( लेखक—श्रीमत् प्रभुपाद आचार्य श्रीग्राणकिशोरजी गोस्वामी )

आर्य ऋषियोंके मतानुसार अति प्राचीन कालमें जब कहीं कुछ और नहीं था, तब अद्वैत, परमकारण पुरुष इस जगत्के कारण पुरुष थे । वे सच्चिदानन्दमय परम तेजस्वी पुरुष प्रकृतिके अप्रकाश्य पुरुष हैं । उन परम पुरुषके प्राकृतिक हाथ, पैर और नेत्र आदि न होते हुए भी वे ग्रहण, गमन और दर्शन करनेमें सर्वथा समर्थ हैं । उन्होने जब एकसे अनेक होनेकी कामना की तो उनके नेत्रोंसे चारों ओर—सर्वत्र सूर्यकी ज्योतिराशि छिट्ठक गयी और प्रकृतिकी रचनामें परमाणु परिव्याप्त होकर विश्वसृष्टिकी आवार-शिला स्थापित हो गयी । उन परम पुरुषोत्तमके दृष्टिपातसे विश्व सहसा आलोकमय और सृष्टि चञ्चल हो गयी । उनके दृष्टि बद करनेसे योग-निद्राकी अवस्थामें सम्पूर्ण विश्वकी नामरूपरहित अन्धकार रात्रि होती है । इस निविड अन्धकारसे मुक्ति पानेके लिये ज्योतिर्मय राज्यमें प्रवेश-ग्रासिका साधन है—प्रार्थना—मुखर वेदमन्त्र । अनन्त आकाशमें, विचित्र, दिव्य, नाना वर्णोंके आलोकनिर्झरित अनन्त ज्योति-विन्दु वरुण-लोकमें प्रचुर जल, इन्द्रलोकमें विद्युत्, वज्र, अग्नि, अशनिपात, वर्पका पानी, शस्य-क्षेत्रका पोषण, प्राणिजगत्का पालन, सर्वत्र व्यापक स्थावर-जड़मकी आत्मा सूर्य हैं । वैज्ञानिकोंके विश्लेषणात्मक मणित विचारोंसे सूर्य एक नहीं, अनेक हैं । ग्रहों-उपग्रहोंके सम्बन्धमें सूर्य उनके छोटे-बड़े होनेके कारण उनके वीचकी दूरीका परिमाण, तेजविकीर्णता, शक्तिका प्रचुर तारतम्य एवं नाना प्रकारसे आकर्षणके धारक हैं । सूर्य ही सम्पूर्ण सौर-जगत्की शक्तिके सचालक, प्रेरक, गतिदायक एवं विलोप-साधक हैं । ऋषिमहर्षियोंने एक-दो करके सूर्यकी गणना की । ८५

आदित्य अपने अनन्त खरूपमें सर्वव्यापक तापशक्तिसे युक्त, परम आश्रय तथा परम अवलम्बन हैं ।

अनन्त तरगोवाला सागर सूर्यको जलका उपायन देता है । सूर्य उससे मेघोकी सृष्टि करते हैं । विद्युत्-तरंगोंसे वे क्रीड़ा करते हैं तथा मेघ-वर्षणके जलसे ज्वालाकी सृष्टि-जगत्को परितृप्त करते हैं । यज्ञकुण्डमें अग्निरूपमें अवस्थान करके सूर्यदेवता यज्ञेश्वर नारायणकी पूजा ग्रहण करते हैं । जल, पृथ्वी, वायु और आकाशमें—सर्वत्र सूर्य-नारायण और उनकी शक्ति विद्यमान है ।

ऐसे परम उपकारी भगवान् सूर्यकी श्रद्धासहित पूजा-उपासना कौन नहीं करेगा । इसीलिये जडवादी, चिद्वादी, देहवादी, वैज्ञानिक, ज्ञानी, विज्ञानी, योगी और साधक भक्तजन—सभी सूर्य तथा सूर्यविज्ञानके रहस्योंके जाननेके लिये सर्वत्र समुत्सुक होकर साधनमें रत हैं । जो शक्ति विश्वग्राणका नियन्त्रण करती है, उसे किसी भी प्रकार सम्मुखस्थ एवं अनुकूल करना सम्भव होनेपर देह, मन, प्राण, सुख, सवल, कर्मठ तथा सब प्रकारसे आत्ममणिडत करना सम्भव है । प्रतिदिन साथुजन तीन बार इन्हीं सूर्यके समुख होनेके लिये मन्त्रोद्घारा उपासना करते हैं । वे मन्त्र ही सूर्योपस्थान-मन्त्र हैं । सम्यक् ध्यानके लिये वे ही प्रधान मन्त्र हैं । सूर्यदेवताके समुख होकर गायत्रीमन्त्रसे उनकी शक्तिकी प्रेरणा और सद्बृद्धि-लाभकी प्रार्थना की जाती है । जो वाक्-शक्ति, वाढ़य-रचना तथा सूर्यांगि देवताका दान है, उसे विश्वजनके लिये विरक्ति उत्पन्न करनेमें प्रयुक्त न कर समाजको धारण-पोषण करनेमें नियुक्त करनेसे ही आत्म-तुष्टि तथा विश्वका कल्याण होता है ।

शैव, शाक्त, गाणपत्य और वैष्णव आदि भारतीय साधना-पद्धतियोंके अन्तर्गत सभी ज्योतिर्मण्डलके मध्यस्थ

सूर्य-खस्त्रपमें ही अपने आराध्य देवताका ध्यान करते हैं। सूर्यके समक्ष साधुजन शुभ प्रेरणाके निमित्त गायत्री-मन्त्रसे प्रार्थना निवेदित करते हैं। इस विराट् आलोकधाराके साथ एकात्मताकी भावना ही दिव्य भगवदीय प्रेम, परमगति तथा परमशान्ति है। जो प्रेम सूर्यके प्रकाशसे उद्भासित है, वही सच्चा प्रेम है। कवि, ज्ञानी और दार्शनिक—सभी सम्पूर्ण जगत्के साथ प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके सच्चे मानव बन सकते हैं।

हम ध्यान करते हैं—‘तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य’ परम आदरणीय ये सविता देवता ‘भर्ग’ अर्थात् दीप्तिसे समस्त विश्वको आलोकित और नियन्त्रित करते हैं। सूर्य देवताकी यह प्रार्थना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट प्रार्थना है। वैदिक ऋषियोने सत्य-दर्शनके लिये किस यन्त्र-तन्त्रके द्वारा इस तेजपुञ्जकी महामहिमाका अवधारण किया था, यह कथा आज हमे ज्ञात नहीं है। किंतु वर्तमान युगके वैज्ञानिक उन यन्त्रोंकी सहायतासे गगन-मण्डलचारी नक्षत्रमण्डलके साथ नाना प्रकारसे परिचय-सम्बन्ध और अनुसन्धानके निमित्त सतत जाग्रत् हैं। कल्याण-प्रदाता परब्रह्मस्त्रुप इन्हीं भगवान् सूर्यका हम नित्य स्मरण करते हैं।

उद्दुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।  
दशो विश्वाय सूर्यम् । (—ऋग् १०।५०।१)

स्वयंप्रकाश सूर्य समस्त प्राणिसमूहको जानते हैं। उनके अश्वगण ( किरणसमूह ) उनके दर्शनके लिये उन्हे ऊँचे किये रखते हैं। प्राचीन कालमें लोग जानते थे कि अनन्त आकाशमें बहुत-से ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डका पृथक् नियन्त्रण और अपनी-अपनी महिमा तथा विशिष्ट अवस्थिति है। यद्यपि हमारा यह सौर-जगत् ब्रह्माण्डकी तुलनामें क्षुद्र है; तथापि इस ब्रह्माण्डके

ब्रह्मा चतुर्भुज हैं, बृहत्तरमण्डलोंके ब्रह्मा कोई शतमुख तथा कोई सहस्रमुख हैं। आधुनिक वैज्ञानिकगण इस प्रकारके बृहत्तर नक्षत्रमण्डलोंमें सौर जगत्के अवस्थानके सम्बन्धमें निःसदेह हैं। उनके विज्ञानसम्मत उपायोंने दूर-दूरान्तरके विचित्र नक्षत्रोंके समूहोंका अस्तित्व प्रमाणित कर दिया है। एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानीने भर्ग या कन्याराशिके परिमण्डलके मध्यमें ‘एम० ८७’ नामसे एक अपरिमेय बृहत् उपनक्षत्रका अनुसंधान किया है। कैलिफोर्नियामें माउंट पैलीमारिमें अवस्थित हेलमान मन्दिर एवं आरिजोनामें किटपित्रके राष्ट्रिय मानमन्दिरसे पर्यवेक्षण करके उक्त वक्तव्यका समर्थन किया गया है। इस ‘एम० ८७’ मण्डलकी गुरुत्वाकर्पणशक्ति असाधारण है। परिमण्डलमें अवस्थित इसी ‘एम० ८७’ने भर्गों नक्षत्र-के १०० नक्षत्रोंको अपनी आकर्पणशक्तिसे महाकाशमें घिर बना रखा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि इस तथ्य-पर विचार करनेसे लगता है—जैसे कोई मानो अलद्य रहकर प्रह-मण्डलोंकी गतिविधिको नियन्त्रित या सुनियन्त्रित करता है। वही शक्ति विभिन्न प्रकारकी तरंगोंको ५००० प्रकाशवर्पेकी दूरीतक प्रेरण करती है। ‘सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य’—कहकर मानो भारतके वैदिक ऋषिगण इसी अदृश्य तत्त्विक शक्तिकी ओर इंगित कर नित्य अभ्यर्थना करनेकी प्रेरणा देते हैं।

प्रतत्ते अद्य शिपविष्ट नामार्थः  
शंसामि वपुनानि विद्वान् ।  
तं त्वा गृणामि तव समतव्यान्  
क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥  
(—ऋग्वेद ७।१००।५)

हे ज्योतिर्मय प्रमो ! तुम्हारे नामकी महिमा जानकर मैं उसीका कीर्तन करता हूँ। हे महामहिमामय भगवन् ! मैं क्षुद्र होते हुए भी इस ब्रह्माण्डके उस पार अवस्थित होनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ। (आप मुझे वह परम कल्याण दें; आप कल्याण सूर्ति हैं।)

## सर्वस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण

( लेखक—पं० श्रीवैद्यनाथजी अमिन्दोची )

भुवन-भास्कर भगवान् श्रीसूर्यनारायण ग्रत्यक्ष दंवता हैं—प्रकाशस्वरूप हैं। वेद, इतिहास और पुराण आदिमें इनका अतीव रोचक तथा सारगर्भित वर्णन मिलता है। ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप अपौरुषेय वेदके शीर्षस्थानीय परम गुह्य उपनिषदोमें भगवान् सूर्यके स्वरूपका मार्मिक कथन है। उपनिषदोके अनुसार सबका सारतत्त्व एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य, सत्त्व-चित्-आनन्द तथा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप ही परमतत्त्व है। उसका न कोई नाम है न रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण एवं न जाति ही है। तथापि गुण, सम्बन्ध आदिका आरोप कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं नारायण, कहीं देवी और कहीं भगवान् ‘सूर्यनारायण’।

भगवान् रूपके तीन रूप हैं—( १ ) निर्गुण निराकार, ( २ ) सगुण निराकार और ( ३ ) सगुण साकार।

प्रथम तथा द्वितीय निराकार-रूपको एक मानकर कहीं दो ही रूपोका वर्णन मिलता है। जैसे ‘मैत्रायण्युपनिषद्’में आया है—

द्वे चाच ब्रह्मणो रूपं भूतं चामूर्तं च । अथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म, यद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्योतिः स आदित्यः । ( ५ । ३ )

‘ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मूर्त—साकार और दूसरा अमूर्त—निराकार। जो मूर्त है, वह असत्य—विनाशी है और जो अमूर्त है, वह सत्य—अविनाशी है। वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वह ज्योति—प्रकाशस्वरूप है और जो ज्योति है, वह आदित्य—सूर्य है।’

यथापि भगवान् सूर्य निर्गुण निराकार हैं तथापि अपनी मायाशक्तिके सम्बन्धसे सगुण कहे जाते हैं।

वस्तुतः सामान्य सम्बन्धसे नहीं, तादात्म्याध्यास-सम्बन्धमें ही गुणोंका आरोप, क्रियाका कथन, संसारका सर्जन-पालन तथा संहारका भी आरोप होता है। अघटित-घटना-पटीयसी मायाके कारण ही वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, उपास्य तथा समस्त प्राणियोंके कर्मफलप्रदाता कहे जाते हैं। भगवान् सूर्यद्वारा ही सृष्टि होती है। वे अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। अत. चराचर समस्त ससार सूर्यका रूप ही है। सूर्योपनिषद्‌में इसीका प्रतिपादन कुछ विस्तारसे किया गया है।

कारणसे कार्य भिन्न नहीं होता। सूर्य कारण हैं और अन्य सभी कार्य। इसलिये सभी सूर्यस्वरूप हैं और वे सूर्य ही समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। यह सूर्यका एकत्व ज्ञान ही परमकल्प्याण—मोक्षका कारण है। स्वयं भगवान् सूर्यका कथन है—‘त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः’ ( —मण्डलब्राह्मणोपनिषद् ३ । २ ) ‘परम आत्माके पूर्ण होनेके कारण कोई भेद नहीं है। तुम और मै एक ही हैं।’ “व्रह्माहमसीति कृतकृत्यो भवति” ( —मण्डलब्राह्म ३ । २ ) ‘मैं ब्रह्म ही हूँ—यह जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है।’ इस प्रकार निर्गुण-सगुण निराकार भगवान् सूर्यके अभिन्न ज्ञानसे परमपद—मोक्ष प्राप्त होता है।

सगुण निराकार और सगुण साकारस्वरूपकी उपासनाका वर्णन अनेक उपनिषदोमें मिलता है। ‘य एवासौ तपति तमुद्दीश्मुपासीत’ ( छा० १ । ३ । १ )। जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्दीश्म-स्वरूपसे उपासना करनी चाहिये। ‘आदित्यो ब्रह्मोति’ ( छा० ३ । ३ । १ )। आदित्य ब्रह्म है—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये—‘आदित्य ओमित्येवं ध्यायन्त्तथात्मानं युजीनेति’

( वैशा० उ० ५। २ ) धादिल्य ती ओम् है - इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करे ।

‘अथ ए सांकृतिर्गवानादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा चाक्षुप्मतीविद्यया नमस्तुपद्’ (—अस्युपनिषद्)। भगवान् सांकृति मुनि आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कार कर चाक्षुप्मती विद्याकी प्राप्तिके लिये उनकी स्तुति की । ‘याश्वत्क्ष्यो ए वै महासुनिरादित्यलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुवृहीति’ (—मण्डल व्या० १। १) महामुनि याज्ञवल्क्य आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् आदित्यको प्रणाम कर कहा —‘भगवन् आदित्य ! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये ।’ सूर्यदेवने दोनोंको दोनो विद्याएँ दीं ।

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वेद्युष्ठ, भूतभावन शक्तरका कैलास तथा चतुर्मुख द्रग्नाका स्थान ब्रह्मदेवक है, वैसे ही आप मुननभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक—सूर्य-मण्डल है । प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं । सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं । सूर्यसे ही दिन, रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है । सूर्य संसारके नेत्र है । इनके विना सब अन्यकारमय है । सूर्य ही जीवन, तेज, ओज, बल, वश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—‘आदित्यो वै तेज ओजो वलं यशाद्वचक्षुः श्रोत्रे आत्मामनः’ (—नारायणोपनिषद् १५), ‘मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते’ (—तै० उ० ३०।

१६।३)। ‘भूः भुवः, स्वः—इन तीन दोकोंकी अपेक्षा ‘सदः’ चौथा लोक है, यह आदित्य ही है । आदित्यपै दी समस्त लोक युक्ति प्राप्त करते हैं । आदित्यलोक महान् ह । भूः आदि तीनों लोक इसके अध्ययन—व्याख्या है और यह अस्ती है । आदित्यलोक योगमें ही अंत योगादि महत्त्व प्राप्त करते हैं । आदित्यका महिमा अद्वितीय है ।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका भावार प्रिय है । वे गत्तकामयमें भिन्न, दिल्लियमय वर्ग, चतुर्भुज तथा दो भुजाओंमें पद्म धारण किये रहे हैं और दोहरन अभ्यंतर तथा वर-भूमि में युक्त हैं । वे नान अद्युक्त रूपमें भवता होते हैं । जो उपासक ऐसे उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, उन्हें मनोवास्त्रित फल प्राप्त होता है । उपासकके ममुन्म प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्वि करते हैं ।

इन प्रकार भगवान् सूर्य विभिन्न रूपमें होने हुए भी एक ही हैं । नाम, रूप, क्रिया और इसमें भिन्न जीव तथा अनेण, अनन्त, चेतन-तत्त्व भी एकमात्र भगवान् सूर्य ही है । एकन्वका प्रणियादन करनेवाली अनंका श्रुतियाँ हैं । स यद्यायं पुरुषे यद्यायादादिन्ये स पकः (—तै० उ० ३। १०।४) ‘जो वह परमतत्त्व इस पुरामें है और जो आदित्यमें है, वह एक ही है ।’ जैसे वयकाश और महाकाशमें भेद नहीं है, वैसे ही जीव और परमतत्त्वमें किंचित् भी भेद नहीं है । वह परमतत्त्व भगवान् सूर्य ही हैं । सूर्य सर्वतत्त्वस्त्रा रूप हैं ।

## उपर्युक्तरूप रवि अग-जग-स्वामी

( रचयिता—श्रीनाथुनीजी तिवारी )

अनल-अनिल तन उद्धासी, आदिसृष्टिका है वासी ।  
सहस अरुण रुचि कमलाक्षी, सकल विश्वका है साक्षी ॥  
रुपगंध अरु रस-कारी, अमित तेजमय छविधारी ।  
देव-च्रहमय है सब जगका, पूज्य रफल छुर-चर-मुनि-जनका ॥  
जल-चर, शल-चर, तथ-चर प्राती, सद्यका ही वह जीवनदाती ।  
विष्णु सनानन नित नभगामी, अनन्तिमरूप रवि अग-जग-स्वामी ॥

## भारतीय संस्कृतिमें सूर्य

( लेखक—प्रो० डॉ० श्रीगमजी उपाध्याय पम० ए०, ही० लिट० )

खं यदेतद् वहुधा चकास्ति  
यद्येन भावी भविता न जातु ।  
तच्छुरकात्मकमीश्वरस्य  
वन्दे वपुस्तैजससारथास्तः ॥

भारतीय संस्कृतिमें आरम्भसे ही सूर्यकी महिमा अतिशय रही है । वह भारतीय आध्यात्मिक जीवनका उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करती है । सामी रामतीर्थके शब्दमें सूर्य सबसे बड़े सन्यासी है; क्योंकि वे सबको प्रकाश और जीवन-प्रदान करते हैं । \* प्रकाश देनेका काम आचार्यका है । वैदिक कालमें ही सूर्यको आचार्यस्वप्नमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी । भगवान् सूर्यन् याज्ञवल्क्यको वाजसनेयिसंहिताका उपदेश दिया था । गायत्रीके 'धियो यो नः प्रचोदयात्'के द्वारा सूर्यका गुरुत्व ब्रह्मचारी और आचार्यके सम्बन्धमें प्रस्फुटित हुआ है । वैदिक युगसे ही उपनयनमें अपनी और विद्यार्थीकी अज्ञलि जलसे भरकर आचार्यके मन्त्र पठनेकी विधि रही है; यथा—

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।  
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

( —ऋग्वेद ५ । ८२ । १ )

अर्थात्—‘हम सवितादेवके भोजनको प्राप्त कर रहे हैं । यह श्रेष्ठ है, सबका पोषक और रोगनाशक है ।’ यह मन्त्र पढ़कर आचार्य अपने हाथका जल विद्यार्थीकी अज्ञलिमें डाल देते और उसका हाथ अँगूठेसे पकड़ लेते थे । इसके पश्चात् आचार्य कहते थे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुर्स्यां  
पूर्णो हस्ताभ्यां गृणाम्यसौ ।

‘सवितादेवके अनुशासनमें अश्विद्वयकी बाँहोसे, तथा पूषाके हाथोसे गौं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ ।’

५ सत्य तातान सूर्यः । ( ऋग्वेद १ । १०५ । १२ )

इस प्रकार शिष्य और आचार्यके सम्बन्धमें सूर्यकी उपस्थिति प्रमाणित होती थी और यह सिद्ध किया जाता था कि जैसे सूर्य प्रकाश देकर जगत्‌का अन्वकार निरन्तर दूर करते हैं, वैसे ही आचार्य शिष्यका अज्ञानान्वकार दूर करते रहेगे । इस अवसरपर सूर्यसे प्रार्थना की जाती थी—

मयि सूर्यो भाजो दधातु—अर्थात्—‘सूर्य मुझमे प्रकाशकी प्रतिष्ठा करे ।’

सूर्यसे आजीवन कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त होती है । सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति है—सुचति प्रेरयति कर्मणि लोकम् अर्थात् सूर्य यत् लोकको कर्ममे लगा देते हैं अतः ‘सूर्य’ हैं ।

सूर्यको निष्काम कर्मकी घेरणा परमात्म-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे मिली जैसा कि गीता ( ४ । १ )में उन्होंने स्वय कहा है ।

सूर्यके सात अश्वोद्धारा निष्काम कर्मयोगका चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है । उनके नाम ये हैं—

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।  
मनोजवो जितकोधो वाजिनः सप्त कीर्तिंताः ॥

परम्परा भी सूर्यवंशमें निष्काम कर्मयोग और आत्मज्ञानकी शेववि ( कोप ) रही है । सूर्यके पुत्र यमसे नचिकेताने कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त की थी ।

सूर्यकी उपर्युक्त विशेषताओंके आधारपर पौराणिक युगमें सौर-सम्प्रदायका प्रवर्तन हुआ । किसी देवताके नामपर सम्प्रदाय बनना तभी सम्भव होता है, जब वह सृष्टिका कर्ता हो, उससे सारी सृष्टिका उद्भव होता हो

यह आध्यात्मिक जीवनका प्रतीक वाक्य है ।

और अन्तमें उसमें सारी सूर्यिका विअर्थ भी हो जाना हो। इसकी पुष्टि सूर्योपनिपदमें प्राप्त होती है। ऋग्वेद ( १ । ११५ । १ )में भी इस धारणाका परिपाक हुआ है। उसके अनुसार—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च ।

ऋग्वेदमें सूर्यका नाम विश्वकर्मा मिलता है। इससे उनकी सृष्टि-रचनाकी योग्यता प्रमाणित होती है।

गृयोपनिपदमें सूर्यका वह स्वरूप साप्रस्वरूपसे वर्णित है, जिससे वे सबका उद्घव और विलयका आश्रय प्रतीत होते हैं। देखिये—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्यण पालितानि तु ।  
सूर्यं लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

अर्थात्—‘सूर्यसे सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य सबका पालन करते हैं और सूर्यमें सबका विलय भी होता है। जो सूर्य है, वही मैं हूँ।’

उपनिपदमें आदित्यको सत्य मानकर उन्हें ऋब्र बताया गया है। इस प्रकार चाक्षुपुरुषकी आदित्य पुरुषसे अभिन्नता है; यथा—

तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष  
एतसिन् मण्डले पुरुषो यद्यचायं द्विष्ठिणेऽश्वन् पुरुष-  
स्तायेनावन्योन्यसिन् प्रतिष्ठितौ ।

(—बृहदार्यक० ५ । ५ । २ )

‘यह सत्य आदित्य हैं। जो इस आदित्यमण्डलमें पुरुष है और जो दक्षिण नेत्रमें पुरुष है, वे दोनों पुरुष एक दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं।’

इस प्रकार अधिदैव आदित्य पुरुष और अध्यात्म चाक्षुपुरुषका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध नताकर सूर्यको प्रथम उद्घव बताया गया है। अर्थवेदके अनुसार सूर्य सबके नेत्र हैं।

१. स आदित्यः कसिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुपीति । २. सूर्यो मै चक्षुर्वातः प्राप्तेऽन्तरिक्षमात्मा पुज्वो शनीरमा ।

इसके पीछे उपनिपद दर्शन है—‘आप पंडेदमप्र आत्मः । ता आपः सत्यमसूजन्न । सत्यं ग्रह्य । तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यः’ इत्यादि। गायत्री सूर्यकी उपासनाका प्रथम सोपान है।

गायत्री आदित्यमें प्रतिष्ठित है। शकारके अनुसार गायत्रीमें जगत प्रतिष्ठित है। गायत्री जगत्की आत्मा है। आदित्य-हृदयमें इस विचारधाराका समर्थन करते हुए बहुत गया है—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे

जगन्प्रसूनितिस्थितिनिताशोहन्तवे ।

त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे

विरच्छिन्नायणशद्वरात्मने ॥

परवर्ती काण्डमें ‘सर्वदेवमयो रविः’ के प्रतिभासकेवाग सभी सम्प्रदायोंको परस्पर निकट लाया गया। महाभारतमें पुष्टिष्ठितने सूर्यकी स्तुति की है—

त्वामिन्द्रमादुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।

त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ऋब्रः शाश्वतम् ॥

अर्थात्—‘सूर्य ! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, मन, प्रभु और ऋब्र हैं।’

सूर्यतापिनी उपनिपदमें उपर्युक्त विचारधाराका समर्थन मिलता है; यथा—

एष ऋब्रा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।

त्रिमूर्त्यात्मा विवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः ॥

प्रत्यक्षं दैवतं सूर्यं परोक्षं सर्वदेवताः ।

सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेद वै सूर्यसंसदम् ॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः विदेव बनते हैं। यथा—

उदये व्रह्मणो स्वं मध्याह्ने तु महेश्वरः ।

अस्तमाने स्वर्यं विष्णुस्थिरूपित्वं दिवाकरः ॥

(—प्रथम० ५ । ७ । ९ )

केवल देव ही नहीं, अपितु त्रिपुरसुन्दरी ललिता-देवीका ध्यान करनेके लिये भी उनका सूर्यमण्डलरूप खरूप वरणीय है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।  
पाशाङ्गुराधनुर्वाणहस्तां ध्यायेत् सुसाधकः ॥

विष्णुके समान उनके आराधनकी विधियाँ रही हैं। कुछ पूजा-सम्बन्धी विशेषताएँ भी हैं; जैसे—सूर्य-नमस्कार, अर्घ्यदान आदि। सूर्योदयसे सूर्यस्तत्क सूर्योन्मुख होकर मन्त्र या स्तोत्रका जप आदित्यत्रत होता है। षष्ठी या सप्तमी तिथियोमें दिनभर उपवास करके भगवान् भास्करकी पूजा करना पूर्ण व्रत होता है। पौराणिक धारणाके अनुसार जो-जो पदार्थ सूर्यके लिये अर्पित किये जाते हैं, भगवान् सूर्य उन्हें लाख गुना करके लौटा देते हैं। उस युगमें सूर्यकी एक दिनकी पूजा सैकड़ों यज्ञोके अनुष्ठानसे बढ़कर मानी गयी है।<sup>१</sup>

सौर पुराणोमें सूर्यको सर्वश्रेष्ठ देव बतलाया गया है और सभी देवताओंको इन्हींका खरूप कहा है। इन पुराणोंके अनुसार भगवान् सूर्य बारंबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं। ये पितरोंके और देवताओंके भी देवता हैं। जनक, वालखिल्य, व्यास तथा अन्य सन्यासी योगका आश्रय लेकर इस सूर्य-मण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगतके माता, पिता और गुरु हैं।<sup>२</sup>

सूर्यके बारह रूप हैं। इनमेंसे इन्द्र देवताओंके राजा हैं, धाता प्रजापति हैं, पर्जन्य जल बरसाते हैं, त्वष्टा बनस्पति और ओषधियोंमें विराजमान हैं, पूषा अन्नमें स्थित है और प्रजाजनोंका पोषण करते हैं, अर्यमा वायुके माध्यमसे सभी देवताओंमें स्थित हैं, भग देहधारियोंके शरीरमें स्थित हैं, विवस्वान् अग्निमें स्थित हैं और जीवोंके खाये हुए भोजनको पचाते हैं, विष्णु धर्मकी स्थापनाके लिये अवतार लेते हैं। अग्नमान् वायुमें

प्रतिष्ठित होकर प्रजाको आनन्द प्रदान करते हैं, वरुण जलमें स्थित होकर प्रजाकी रक्षा करते हैं तथा मित्र सम्पूर्ण लोकके मित्र हैं। सूर्यका उपर्युक्त वैशिष्ट्य उन्हें अतिशय लोकपूज्य बना देता है।<sup>३</sup>

सूर्यके हजार नामोंकी कल्पना स्तोत्ररूपमें विकसित हुई है। इन्हीं नामोंका एक संक्षिप्त संस्करण बना, जिसमें केवल इक्कीस नाम हैं। इसको स्तोत्रराजकी उपाधि मिली। इसके पाठसे शरीरमें आरोग्यता, धनकी वृद्धि और यशकी प्राप्ति होती है।<sup>४</sup>

सौर-सम्प्रदायके अनुयायी ललाटपर लाल चन्दनसे सूर्यकी आकृति बनाते हैं और लाल फूलोंकी माला धारण करते हैं। वे ब्रह्मरूपमें उद्योन्मुख सूर्यकी, महेश्वर-रूपमें मध्याह्न सूर्यकी तथा विष्णुरूपमें अस्तोन्मुख सूर्यकी पूजा करते हैं। सूर्यके कुछ भक्त उनका दर्शन किये विना भोजन नहीं करते। कुछ लोग तपाये हुए लोहेसे ललाटपर सूर्यकी मुद्राको अङ्कित करके निरन्तर उनके ध्यानमें मग्न रहनेका विधान अपनाते हैं।

भगवान् सूर्यके कुछ उपासक तीसरी शताब्दीमें बाहरसे भारतमें आये। ऐसी जातियोंमें मगोंका नाम उल्लेखनीय है। राजपूतानेमें मग जातिके ब्राह्मण आजकल भी मिलते हैं। यह जाति मूलतः प्राचीन ईरानकी 'मग' जाति है। वर्हासे ये भारतमें आये। कुशानयुगमें सूर्यकी पूजा-विधि ईरानसे भारतमें आयी। सूर्य-पूजाका प्रसार प्राचीन कालमें एशिया माझनरसे रोम तक था। यूनानका सप्राट् सिकन्दर सूर्यका उपासक था।

भारतमें सूर्यकी पूजासे सम्बद्ध बहुत-से मन्दिर पॅचवीं शतीके आम्ब कालसे बनते रहे हैं। इनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध तेरहवीं शतीका

१. ब्रह्मपुराण, अध्याय २९से। २. वर्दा अध्याय २९-३०से। ३. वही अध्याय २९-३० से। ४. वही अध्याय ३१। ३१-३३।

कोणार्क मूर्यमन्दिर आज भी वर्तमान है। उठी शर्तासे कुछ राजा प्रमुखसे गूर्धके उपासक रहे हैं। उनमें से हर्षवर्धन और उनके पूर्वजोंके नाम प्रसिद्ध हैं।

सौर-सम्प्रदायका परिचय ब्रह्मपुराणके अनिक्त भौर-पुराणसे भी मिलता है। ब्रह्मपुराणमें मूर्योपासनार्थी प्रमुखता होनेमें इसका भी नाम सौरपुराण है। सौरपुराणमें शैव-सम्प्रदायोंका परिचय विशेषध्यपसे मिलता है। इसमें शिवका मूर्यसे तादाम्य भी दिखलाया गया है। स्वयं मूर्यने शिवका उपासनाको श्रेष्ठस्कर कहा है।

अकबर<sup>१</sup>ने आडेश निवाश्या था। शाह, मध्याह, मायं और अर्द्धमध्य—जार भग्न मूर्यकी घृजा होती चाहिये। वह स्वयं मूर्यके अभिमुख लोकों उनके बदलनामका पाठ पढ़ने पूजन बरना था। इसके पश्चात् दोनों कानोंका मूर्य करके भक्तान्नार ब्रह्मना और अपनी अंगुष्ठियोंसे वर्णपार्श्वोंपर पटाउना था। वह अन्य विधियोंमें भी मूर्यकी घृजा करता था। जटांगीर भी मूर्यका आदर बरता था। उसने अवतरणे द्वारा सम्मानित सौरसंघतको राजकीय आयन्यपर्णा गणनाके द्वित्रे प्रचलित रखा था।\*

### भगवान् भास्कर

(लेखक—दॉ० श्रीमोर्तीवल्लभी गुप्त, पम्० ए० पी-एन० दी०, जी० टिट०)

सुषिका वैचित्र्य दंखकर बुद्धि भ्रमिन हो जाती है, कल्पना कुण्ठित होती है और मनकी मनजिता भी हार मानकर बैठ जाती है। जिधर भी हृषि डाहिये— कितना विशाल, विस्तृत, वैविध्यपूर्ण। विचित्र प्रभार लक्षित होता है—कल्पकल व्यनि करने अर्ने, प्रयन्त्रिनी सरिताएँ, स्फटिकमणिसदृश पारदर्शी सरोवर, रत्नगर्भा पुष्टी, उच्च शिखरोंसे युक्त एवं हिमाच्छादिन दीर्घकाय पर्वत-मालाएँ, शीतल-मन्द-सुगन्ध गुणोंका वाहक समीर और उधर प्रकृतिका अत्यन्त भयद्वार पूर्व प्रलयकारी रूप जलझावन, भूमि-विघटन, भूचाल, विद्युत-प्रतारण आदि रूपमें देखा जाता है। पर पृथ्वीके इस विस्मयकारी दृश्यसे भी बढ़कर अति विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त तथा असीम आकाशमण्डल है, जिसके नक्षत्र अथवा ग्रह-पिण्ड हमें अपनी स्थिति एवं गतिसे ही प्रभावित नहीं करते, अपितु हम आश्र्यचकित हो विस्फारित नेत्रोंमें उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं। डेनमार्कके एकान्त उपवनमें स्थित कुटियाकी वे रातें मुझे स्मरण हैं। उस समय आकाश निर्मल था। वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोटे-मोटे

वृहदाकार तारोंमें परिष्टिनि आकाश ही बहुत समीर आ गया हो। इनी प्रकार जटांगोंका वह सच्च चन्द्रविष्व भी, जो अप्राप्ये इनका विशाल दिनार्थी देना था, मानो एक यार्जुने जलदार्या वह कमल-पत्र, जिसका व्यास लगभग १॥ सीद्रका था और उठे हुए किनारे कमल-पत्रको एक वर्जी परातका रूप प्रदान कर रहे थे। इनका विशाल चन्द्रविष्व और तारोंकी वह अनूदी जगताङ्कट केवल वहीं देखा। गगनगण्डलके इन विस्मयकारी तर्योंका परिचय प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक रूपन प्रयत्नर्गत हैं—रहस्योद्घाटन तो शब्दमात्रमें ही बोधित है। इस प्रसद्दमें चन्दलोमा, मङ्गल और शुक्र आदिके लोकोंकी यात्राओंके अभियान सकलता-असफलताके बीच झूलते चलने हैं। सकलता जो मिली है, वह भी तो किननी—अगम्य-सी ! परंतु भगवान् भास्कर तो हमारे इस आश्र्यमय अनुभव और सुषित-वैचित्र्यकी पराकाष्ठा है।

मूर्य और सौर-मण्डल-सम्बन्धी अनेक अन्येषण, परीक्षण एवं स्पष्टीकरण आडि पढ़ने-सुननेमें आते हैं; पर

\* आइन-अकबरी व्लायमैनका अंग्रेजी अनुवाट, १९६५ ई०, पृ० २०९-२१२ से।

उनका परिमाण, मेरे अनुमानसे एक अणु-सदृश ही है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। हमारी सृष्टिके महत्त्वपूर्ण आधार सूर्य यदि प्रकाश-पुञ्ज हैं तो जीवन-प्रदायिनी ऊप्माके भी वे जनक हैं। वन, उपवन, जल, कृषि, गतिके विभिन्न रूप, फल, फूल तथा वृक्ष-लता आदि—यहाँतक कि जीवन भी उन्हींके द्वारा प्रदत्त उपहार है। सम्पूर्ण विश्व उनसे लाभान्वित है। न जाने कितने लोक सौरमण्डलके अधिष्ठाताका गुणगान करते हैं। भगवान् सूर्यके विषयमे कहा गया है कि उनके प्रकाशमण्डलका व्यास ८६४००० मील है—पृथ्वीके व्याससे १०९ गुना। इनका पुञ्ज २२४ पर २५ शून्य लगाकर अङ्कित किया जाता है, जो पृथ्वी-पुञ्जसे लगभग ३ लाख गुना है। सूर्यसे हमारी पृथ्वीकी दूरी १४९८९१००० किलोमीटर है। वहाँसे प्रकाशके आनेमें ही प्रकाश-गतिसे ८॥ मिनिट लगते हैं। ये सख्याएँ—ऑकडे सूर्यकी अति महत्ता, अति विस्तार और अति प्रचण्डताके घोतक हैं। ऋतुओंका विभाजन, दिन-रातकी सीमाएँ, प्रकाश-अन्धकारकी गति, वर्षा-अतिवर्षा, अवर्षा—यहाँतक कि जीवनके विभिन्न उपक्रम सूर्यपर ही निर्भर हैं। यही कारण है कि अनादि कालसे सूर्यकी उपासना न केवल हमारे देशमें, वरन् विश्वके विभिन्न भागोंमें भक्ति एवं श्रद्धाके साथ की जाती रही है। सूर्य एक ऐसी परम शक्ति हैं, उत्कृष्ट देवता हैं जिसमे उनकी अमित शक्तिका उपयोग नियमानुकूल ही होता है—नियमोंकी अवहेलना नहीं होती। यही कारण है कि खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिषियोंका ज्ञान-विज्ञान दृढ़ताके साथ प्रतिफलित होता रहता है। यदि निश्चित नियमोंका अतिक्रमण केवल गतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमें भी हो जाय तो उसका परिणाम निश्चय ही महाप्रलय है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि पृथ्वीके प्रत्येक खण्डमें तारोसे जटित आकाश सर्वदासे ही विस्मय

थैर खोजकर विषय रहा है—सभी नरोंके लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं। जिन नौ या सात ग्रहोंकी कल्पना विश्वके विविध मनीषियोंने की, उनमें सूर्यको सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता रहा है। अनेक लोक-कथाएँ एवं जन-श्रुतियाँ भी चलती आयी हैं और सूर्यको अनेक रूपोंमें देखा गया है। एक पाश्चात्य लोककथा है—‘जब सृष्टिके आरम्भमे सामरेने नाइगको युद्धमें परास्तकर कारागारमें डाल दिया, तब पराजित करनेवाली शक्तिको गुलाकर (गोला बनाकर) शून्यमें डाल दिया। वही शक्ति गोलाकार होकर इधर-उधर लुढ़कती रही। बहुत समय पश्चात् माउर्ड नामके वीरने इस लुढ़कनेवाले गोलेका मार्ग नियमित कर दिया और तभीसे सूर्यका मार्ग निर्धारित हो गया।’

सूर्य-चन्द्रको किसी दैत्यद्वारा निगलनेकी बात भी बहुत प्राचीन कालसे चलती आ रही है। अमेरिकाके रेड इंडियन भी अनेक प्रकारकी सूर्य-कथाएँ कहते रहे हैं। ज्योतिषका आधार तो सूर्य ही रहा है। चीनके प्राचीन विद्वानोंने सूर्यको आधार मानकर अपने खगोल-शास्त्र, ज्योतिर्विद्या तथा धर्मका विस्तार किया। चीनमें सूर्यका नाम ‘यांग’ है और चन्द्रका ‘यिन’। सूर्योपासनाके प्रसङ्ग भी वहाँ मिलते हैं। ‘लीकी’ की पुस्तक ‘कि आओ तेह सेग’मे नवीं पुस्तकके अन्तर्गत सूर्यको ‘खर्ग-पुत्र’ कहा गया है और दिनका प्रदाना कहकर उनकी अर्थ्यर्थना की गयी है। बौद्ध जातकोंमें भी सूर्यके प्रसग आते हैं और उन्हे वाहनके रूपमें मान्यता मिलती है। इसकी अजवीयि, नागवीयि और गोवीयि नामके मार्गोंपर तीन गतियाँ मानी गयी हैं। इस्लाममें सूर्यको ‘इल अहकाम अन नजूम’का केन्द्र माना गया है। मुस्लिम विद्वानोंकी मान्यता रही कि सूर्य आदि चेतन हैं, इच्छाशक्तिका उपयोग करते हैं और उनके पिण्ड उनमें व्यास अन्तरात्मासे प्रेरित होते हैं। ईसाइयोंके ‘न्यू टेस्टामेंट’में सूर्यके धार्मिक महत्त्वका कई वार वर्णन आया है। सेंटपॉलने आदेश दिया है कि—सूर्यके द्वारा

पवित्र किया गया रविवार दानकी अपेक्षा करता है। इसे प्रभुका डिन माना गया है और इसीलिये यह उपासना-का प्रमुख दिन है। ग्रीक और रोमन विद्वानोंने भी इसी दिनको पूजाका दिन खोकार किया और महान् थियोडोसियसने तो रविवारके दिन नाच-गान, थियेटर, सरकस-मनोविनोद और मुकदमेवार्जीका निपंथ किया। बाल्टिक समुद्रके आसपास सूर्यके प्रसङ्गमे अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं। 'एडा'की कविताओंमें सूर्यको चन्द्रमाकी पत्नी<sup>५</sup> माना गया है और उनकी पुत्री उषाको देवपुत्र-की प्रेयसी, जिसके दहेजमें सूर्यने अपनी किरणोंके उस अंशको दे दिया, जिससे गगनमण्डलमें बादलोंके कंगूरे प्रतिभासित होते हैं तथा वृक्षोंके ऊपरकी ठहनियोंमें शोभा छा जाती है। वर्णन आता है—‘अपने रजत पदत्राणोंसे सूर्यदेवी रजतगिरिपर नृत्य करती हुई अपने प्रेमी चन्द्रदेवका आवाहन करती है। वसंत ऋतुकी प्रतीक्षा होती है और तब उनके प्रणयखरूप संतति-की सृष्टि है, जो तारोंके रूपमें आकाशको आच्छादित कर लेती है। परंतु दुर्भाग्यसे चन्द्रदेव सोते ही रहते हैं और सूर्यदेवी उठकर चली जाती है और तबसे इन दोनोंका चिर वियोग ही रहता है.....आदि।’

आर्य और अनार्य—सभीने सूर्यको उपासनीय माना है। द्रविड़ोंने सूर्यको ‘परमेश्वर’ कहकर उन्हें महान् याना और विविध प्रकारकी पूजाका विधान किया। हिन्दूओंमें सूर्यकी त्रिकाल उपासना-विधि चली और उन्हें जावनका दाता एवं पोषक माना। सूर्यके कहीं सात और कहीं दो घोड़ोंसे कर्पित स्वर्णरथकी वात अनेक स्थलोंपर आती है। ‘सौर्य’-सम्प्रदायका भी वर्णन मिलता है। सूर्य-साहित्य वास्तवमें बहुत विस्तृत तथा सर्वत्र उपलब्ध भी है।

इस स्थानपर मूर्यसम्बन्धी समय-सूचक कुछ अनुभव प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

( १ ) अपने देशमें तो मूर्य अधिक-से-अधिक ७॥ बजेतक रहते हैं और मूर्यास्तके उपरान्त शीघ्र ही रात्रिका पदार्पण हो जाता है; परंतु उन्नरमें मूर्यास्त ग्रीष्मऋतुमें बहुत देरसे होता है और उसके बाद सन्ध्याकाल घंटों बना रहता है। मेरा मर्वप्रथम लम्बे दिनका अनुभव एडिनवरामें हुआ, जब मुझे एक स्कॉट-दम्पतीने चाय-ग्रानका निमन्त्रण रात्रिके नौ बजेका दिया था। हमारे यहाँ तो यह समय ४-४॥ बजेका होता है। मैंने अपने मित्रसे कहा—‘रातको नौ बजे चाय कैसी?’ उन्होंने उत्तर दिया—‘यहाँ तो यही उपयुक्त समय है, जब आरामसे बैठकर बातें करने तथा विचार-विनिमयमें सुविधा होती है।’ वे भी मेरे साथ जानेको थे। हम रातमें नौ बजे निमन्त्रणको सार्थक करने पहुँचे और वे स्कॉट-दम्पति ही नहीं, भगवान् सूर्य भी आकाशमें अपने प्रकाशसे हमारा स्थागत कर रहे थे। तबसे मैंने भगवान् सूर्यके ये चमलकार विश्वके अनेक भागोंमें देखा।

( २ ) वायुयानकी यात्रामें घड़ीकी अदल-बदलका अवसर तो आता ही रहता है—यदि आप भारतसे यूरोप एवं अमेरिका जा रहे हैं तो निरन्तर संकेत मिलता रहेगा—‘अब इतना पीछे, अब और इतना पीछे, अब और-और।’ इस प्रकार निरन्तर आपकी घड़ी पीछे होती जायगी और जब आप वहाँसे लौटेंगे तो आगे, आगे और आगे घड़ीकी सुइयाँ खिसकानी पड़ेंगी। पर यदि आप जापान जा रहे हैं तो यह क्रिया उल्टे रूपमें होगी यानी जापान जाते समय आगे और लौटते समय पीछे। और इन सबके कारण हैं भगवान् भास्कर, जिनकी

<sup>५</sup> वेद-वैदिक एवं भारतीय अन्य विस्तृत साहित्यमें भगवान् सूर्यको स्वतन्त्र, सर्वशक्ति-सम्पन्न तथा अविल जगत्पर-पालक मानते हैं। इन्हीं भगवान् सूर्यसे सुष्टि-हुई हैं। अतः हमारी मान्यता उपर्युक्त कहानीसे मेल नहीं खाती। यह अश अन्यत्रकी जन-शुतियोंकी मात्रजानवारी हेतु ही दिया गया है।

योति समयक्रमको एक निश्चित क्रियासे परिचालित करती रहती है।

(३) पिछले वर्ष मैं स्थीडेन गया। वहाँ लिचोफिंग तथा ऊमियो-विश्वविद्यालयोंमें मुझे व्याख्यान देने थे। ऊमियोंमें भाषण देनेके पश्चात जब मैं अपने स्थानपर लौटा तब बहा गया—‘कमरेमें खिडकियोंके पर्दे खींच लें, अन्यथा नींदमें बात आयेगी।’ मैं हॉलसे निकला, आकाशमें सूर्य विद्यमान थे—कोई बिशेष बात न थी, क्योंकि मैं १०॥ वजे रात्रिमें सूर्यको देखनेमें अभ्यस्त हूँ। पर यहाँ तो १०॥ वजे रातमें भी सूर्यभगवन् आकाशमें विराज रहे थे और अब तो ११ वज्रने जा रहे हैं—अन्तु, सूर्यस्त हुआ; पर अन्धकारका नाम नहीं। मैंने खिडकीसे देखा प्रकाश-जैसा ही था। पर्दे खींचकर सोनेका उपक्रम किया, पर १२ वजे रात्रिको सूर्यदर्शनकी बात पस्तिष्ठमें घूम रही थी, १ वजे फिर देखा—वही प्रकाश, और दोवारा जब ३ वज्रके लगभग देखा तब तो सूर्यदेव अपनी सम्पूर्ण आभासहित आकाशमें विद्यमान थे।

अगले दिन मैंने अपना अनुभव भाषाविद् डॉ० सोडरवर्ग तथा संस्कृत-विद्युपी प्रोफेसर बोराथो सुनाया तो उन्होंने कहा—‘यह तो सामान्य बात है। हम आपको उस स्थानपर ले जानेकी तैयारी कर रहे हैं जहाँ आप अद्वारात्रिके समय सूर्यका प्रथम दर्शन करेगे तथा रात्रिका नितान्त अभाव देखेंगे।’ यह स्थान लगभग चार-पाँच सौ किलोमीटर दूर था, पर यूरोपकी व्यवस्थित सड़कोपर यह दूरी अधिक नहीं थी। पूरा कार्यक्रम तैयार हो गया: परतु मौसम एकदम ग्वराव हो गया और मौसमकी भविष्यवाणीने २-३ दिनोंतक बहुत ग्वराव मौसम रहनेकी घोषणा की। आप समझ सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ—मेरा अद्वारात्रिमें सूर्यको देखनेकी आशा निराशामें परिवर्तित हो गयी, बादल और तरामें यह कैसे सम्भव होगा।

४० अं० ३६-३७—

हाँ, उसी यात्रामें एक जर्मन मित्रके वरपर उनकी नार्वेपर बनायी एक फिल्म ढेखी, जिसमें उन्होंने इस अलभ्य दृश्यका सम्पूर्ण रूपसे दर्शन कराया था। उनकी घड़ीमें रातके १२ बजे थे और सूर्य अपनी पूर्ण आभाके माथ आकाशमें शान्तभावसे आसीन प्रतीन हो रहे थे। यह आभास ही नहीं होता था कि अद्वारात्रि है—जब सूर्य विद्यमान हैं तब अन्धकार कहाँ, रात्रि कैसी !

(४) मैं टोकियोमें था, हवाई ट्रीपके होने लग्न्यकी यात्राका आरक्षण हो चुका था। मेरी यात्रा मन्त्रवतः १८ अगस्तको थी। मैंने जापान एयर लाइंसमें यात्राकी पुष्टि कराते हुए होटल-आरक्षणके लिये कहा तो उन्होंने शीघ्र ही बिना कुछ पूछे, १७ अगस्तसे होटल-आरक्षण कर दिया: विचित्र बात। मैंने देखा-समझा, कुछ भूल हुई ? १८की उडान और १७से आरक्षण ! मैंने संकेत किया—आपसे कुछ भूल हो रही है, मैं दिनाङ्क १८को उडान ले रहा हूँ, १७को होटलका उपयोग किस प्रकार कर सकता हूँ ? कहा गया—भूल नहीं है, ठीक है—क्योंकि मैरिडिन रेखा पार की जायगी और उसमें एक दिनका अन्तर पड़ जाना है। मैं चुप हो गया। पर यी आश्चर्यजनक बात। मैरिडिन रेखा पार की गयी और उस बायुयानमें ही मुझे एक प्रमाण-पत्र दिया गया, जिसमें इस बातका उल्लेख था कि अमुक व्यक्तिने अमुक उडानसे यह रेखा पार की। साथ ही बड़ीका समय और दिनाङ्क बदलनेके लिये भी संकेत दिये गये। दिनाङ्क १८ को मैं उडा था और दिनाङ्क १७ को मेरे मित्र होनो लग्न्य हवाई-अड्डेपर मेरे स्नागनाथ उपस्थित थे—सभी शानोमें दिनाङ्क १७ था। कितनी विचित्र हैं भगवान् भास्करद्वाग विविध स्थानोंपर समय-रचना !

इस प्रकारके मेरे अनेक अनुभव हैं—कहीं रात, गल, गत, कहीं स्वर्ण दिन। कहीं ३-४ बड़ोंका

सथाकाल; कहीं सहसा सूर्यस्तके तत्काल बाट ही रात्रिका आगमन। एक ही मूर्यनारायण इस पृथ्वीको कितने अन्तरालोंमें विभक्त कर देने हैं !

लोग कहीं सूर्यके दर्शनके लिये तरसते हैं; कहीं मूर्यकी प्रखरतासे वचनेके लिये छायाका अन्वेषण करते हैं; कहीं मूर्यकी रसियोका शरीरमें सेवनकर इवेत वर्णमें कर्मी करना चाहते हैं; कहीं कालिमाके दोपसे वचनेकी चेष्टा करते हैं। मेरे एक मित्रने अन्धकार, सर्दी, वर्षासे त्रस्त होकर लिखा था—‘आप अपने देशसे योड़ा-सा

मूर्यका प्रकाश और उसकी किञ्चित् ऊष्मा हमें भेज दें, हम आपको कुछ बाढ़ल और वर्षा भेज देने।—यह एक हास्य-प्रसङ्ग-सा लगता है, पर है यह सूर्यकी महत्ता और उनके प्रभाव-वैविध्यका परिचायक। मैंग तो ऐसा अनुमान है कि सुषिकी विभिन्न शक्तियोंमें मूर्यका स्थान अल्पन्त महत्त्वपूर्ण है और जीवनका नियमन, प्रलयन, विवरण, विस्फारण आदि उन्हींकी अक्षिपर निर्मर है। अतः लोकोपकारी, लोक-नियन्ता, लोकोन्तर भगवान् भास्करको और उनकी प्रखर, प्रचण्ड, उद्दीप्त, जीवनदायिनी, सर्वपरिनोपिणी आभाको पुनः-पुनः नमस्कार है।

## सूर्यदेवता, तुम्हें प्रणाम !

( लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट )

उपा, उपाका मधुमय बेला ! कैसा अद्भुत सौन्दर्य !  
कैसा अद्भुत आनन्द !!!

सूर्यकी अप्रगमिनी उपाके दर्शन करके मानव अनादिकालसे मुग्ध होता आया है। ऋषि लोग उपाके गीत गाते नहीं थकते। ऋग्वेदमें, विश्वके इस प्राचीनतम प्रन्थमें उपासम्बन्धी अनेक ऋचाएँ हैं। परमेश्वरकी सुंदरश्वाहिका उपाको सम्मोहित करते हृषि ऋषि कहते हैं—‘त् हिमकिरणोसे स्नान करके आयी है। त् अमृतत्वकी पताका है। त् परमेश्वरका सदेश लायी है। तेरा दर्शन करके यदि परमेश्वरका रूप न दीखे तो फिर मुझे कौन परमेश्वरका दर्शन करायेगा ॥’

ऋषि लोग मुग्ध हैं उपाके सौन्दर्यपर, उसकी अनोखी सुप्रमाण। अनेकानेक विशेषणोंसे उन्होंने उपाको अलङ्कृत किया है; जैसे—

सूनरी ( सुन्दरी ), सुभगा ( सौभाग्यवती ), विश्ववारा ( सवक्रे द्वारा वरण की जानेवाली ), प्रचेता ( प्रकृष्ट ज्ञानवाली ), मधोनी ( दानदीला ), रेती ( वनवाली ), अश्ववती और गोमती आदि ।

ऋषि कहते हैं—

आ धा योपेव सूलर्युपा यादि प्रभुञ्जती ।  
जरयन्ती वृजनं पद्मदीयत उत्पातथति पश्चिमः ॥  
(—ऋ० १ । ४८ । ५)

‘उपा एक सुन्दरी युवनीकी भौति सबको आनन्दित करती हृदृ आती है। वह सारे प्राणिसमूहको जगाती है। पैरवालोंको अपने-अपने कामपर भेजती है और परवाले पश्चियोंको आकाशमें विचरण करनेके लिये प्रेरित करती है।’

निव्य नवीन उपा प्रकाशमय परिवान पहने दर्शकोंके समझ प्रकट होती है। उसके आगमनसे अन्धकार विद्यन होना है और सर्वत्र प्रकाश फैलता है। वह चमकनेवाले वेगवान् सौ रथोंपर आग्नेय है। रात्रिकी बड़ी वहन—नथा धौसकी बेटी वह उपा सूर्यका मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान् सूर्यके साथ उसका निकटतम सम्बन्ध है।

ऋषि उपासे कहते हैं—

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।  
सा जो रथेन वृहता विभावरि श्रुयि चित्रामधे हवम् ॥  
(—ऋ० १ । ४८ । १०)

‘हे सूनरि ! तू जब प्रकाशित होती है तो सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण तथा जीवन तुझमें विद्यमान रहता है । हे प्रकाशवति, हे विभावरि ! वडे रथपर आसीन हमारी और अनेकाली चित्रामधे अर्थात् विचित्र धनवाली उपे ! हमारी पुकार सुनो ।’

उषा है भगवान् अशुमालीका पूर्वरूप ।

यह लीजिये, आकाशके सुन्दर क्षितिजपर आविराजे है—सविताभगवान् । इन सवितादेवका सब कुछ स्वर्णिम है—केश स्वर्णिम, नेत्र स्वर्णिम, जिहा भी स्वर्णिम । हाथ स्वर्णिम, अङ्गुलियाँ स्वर्णिम और तो और, आपका रथ भी स्वर्णिम है ।

सविता है—प्रकाशक देवता ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—सर्वत्र वे ही प्रकाश बिखरते हैं । स्वर्णिम रथपर आरूढ़ सवितादेव सभी देवताओंके ही नेता नहीं है, अपितु स्थावर और जङ्गम सभीपर उनका आधिपत्य है । सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले तथा सबको कर्म-जगत्में प्रेरित करनेवाले उन सविता भगवान्की हम गायत्री-मन्त्रसे वन्दना करते हैं और उनसे सद्बुद्धिकी याचना करते हैं—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो  
यो नः प्रचोदयात् ।

क्रितना भव्य होता है वाल-रविका दर्शन ।

निरभ्र आकाशमें उनकी झाँकी केसी अद्भुत होती है ! फिर यदि गङ्गा, यमुना और गोदावरी आडिका तट हो, पर्वतराज हिमाचल अथवा विन्ध्य पर्वतमाला-जैसे किसी उत्तुङ्ग शैलका कोई कोना या सागरका शुभ्र किनारा हो—जहाँ उज्ज्वल जलधितरङ्गे क्रीड़ा करती हो—फिर तो उसके सौन्दर्यका क्या कहना । देखिये, देखते ही रह जाइये !!

वेदमें भगवान् सूर्यको स्थावर-जङ्गमका आत्मा कहा गया है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च’ । सूर्यमें

परमात्माके दर्शन करनेका सुआव देते हुए आचार्य विनोबा ‘गीता-प्रवचन’में कहते हैं—

‘सूर्यका दर्शन मानो परमात्माका ही दर्शन है । वे नाना प्रकारके रग-विरंगे चित्र आकाशमें खींचते हैं । सुबह उठकर परमेश्वरकी कला देखे तो उस दिव्य कलाके लिये भला क्या उपमा दी जा सकती है ? ऋषियोंने उन्हे ‘मित्र’ नाम दिया है—

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो

मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।

(—ऋ० ३ । ५९ । १ )

ये मित्रसङ्गक सूर्य लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये पुकारते हैं । उन्हे कामधाममें लगाते हैं । ये सर्व और पृथिवीको धारण किये हुए हैं ।

दिनभर सारे जगत्में प्रकाश और आनन्द विखेरकर सांध्य-वेळामें अस्ताचलकी ओर जानेवाले भगवान् भास्करका सौन्दर्य भी अद्भुत है !

वह कौन किसीसे कम है ? प्रसिद्ध अंग्रेज कवि लागफैले मुग्ध है उनके सौन्दर्यपर—मानो सिनाई पर्वतसे उत्तर रहे हो पैगम्बर !

‘Down Sank the great red sun

And in golden glimmering Vapours  
Veiled the light of his face,

Like the Prophet descending from sinu.’  
(- Evangeline )

प्रात् एव सायकालमें भगवान् गूर्यके इस मनोरम दृश्यको देखकर यदि हम आनन्दविभोर न हो उठें तो हमसे अभागा और कौन होगा ?

इतना ही नहीं । ‘ब्रह्म काल मेच नभ आए’ हो और उस समय भगवान् भास्कर वादलोंसे औख-मिचौनी खेलते हों—तब यदा-कदा हमें आकाशमें एक सतरगा वनुष दीवता है—इन्द्रधनुष । कैसी है उसकी वह छटा !

ओई पार हैं उनकी शोभाका — उनकी मतोगम  
छटाका ?

प्रसिद्ध दार्शनिक रिप्तोजाने तो वर्षकाल के इन्द्रवसुपर  
एक लेख ही लिख डाला है। और वह गावुक कवित्व वर्द्धसर्व !  
हूँ तो झूम-झूमकर गा उठा -

My heart leaps up when I be hold  
A rainbow in the sky,  
So was it when my life began,  
So it is now when I am a man,  
So be it when I shall grow old,  
Or let me die.

ऐसा हृदय उड़ते लगता है, आकाशमें इन्द्र-  
वसुपको देखकर। वचपनमें भी गंगा यही हाल था और  
आज जवानीमें भी। मैं बूढ़ा हो जाऊ प्रगता था हीं  
क्यों न जाऊँ, पर मैं चाहूँगा यही कि इन्द्रवसु को देखकर  
मेरा हृदय इसी प्रकार हिलेरे मारता रहे ! कंसी हैं  
तात्किरी भव्य अनुभूति !

वेदमें अनेक देवताओंके मन्त्र हैं।

पहली ही ऋचा है—‘अग्निमीले पुरोहितम्’...

(—स० २। ३। ६)

कौन है—ये अग्निरंव ?

इनके नीन मध्य बताये गये हैं—

पृथिवीपर गर्थिव अग्नि, अन्तगिरमें वैशुद्ध और  
दुलोकमें भगवान् मूर्य ।

किष्णुदेवको लीजिये ।

और वाम कहते हैं—‘मूर्योदय है विष्णुका प्रथम  
चरण ।’ ‘मव्याह है विष्णुका द्वितीय चरण ।’ ‘मूर्यस्त  
है विष्णुका तृतीय चरण ।’

बिल्सन हो या मैक्समूलर, मैकडानल हो या  
कीथ—नेदके विद्वान् इसी मतको प्रामाणिक मानते हैं।

पूर्ण !

सबको जाननेवाले, गवको देनेवाले, पशुओंका  
विनेपद्धसे रक्खा नहीं गये देव; उन्हें भी मूर्य  
माना गया है।

और इन्हे !

परम शक्तिशाश्री इन्द्रसंघ हैं। मैसम्मूला करने हैं  
फिर उन्हें दूर्योक्त प्रतिष्ठाय हैं।

मध्ये नयाने एवं, मन ।

उन्होंने ही या मविता, अग्नि ही या विष्णु,  
पूर्ण हो या इन्हे मध्ये गम्यनेता हैं।

पिता, रथि, मूर्य, भानु, अग्नि, पूर्ण—मूर्य-  
नपम्भारमें अनेकांत मध्ये नाम भगवान् दूर्योक्त हैं।  
इनके मन्त्र ये हैं—

ॐ ह्रीं मित्राय नमः । ॐ त्वं रघ्वये नमः । ॐ हं  
मूर्याय नमः । ॐ हैं भगवते नमः । ॐ ह्रीं मूर्याय  
नमः । ॐ हृः पूर्णे नमः ।

और मूर्यों किरणों !

उनका जग मिलगे दिया है ! वेदमें मूर्यकी  
किरणों Ultraviolet Rays को ‘पतश’ या  
‘वाञ्छिय’ कहा गया है। शेस्तसिया ल्लूट्र है इन  
किरणोंके जातूपर,—मिट्टीको सोना बनानेगे  
जातूपर —

The glorious sun  
Stays in his course and plies the  
alchemist,

Turning with Splendour of his preci-  
ous eye

The meagre cloddy earth to glittering  
gold.

(-King John, III, 1)

प्रानःकाशीन मूर्यकी सुनहली किरणें पृथ्वीकी देहपर  
सोना हो वरसाती जान पड़ती है। यह कोरी  
कल्पना नहीं है।

आज तो विज्ञान भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है कि रहे सूर्य पृथ्वीसे जो करोड़ मील दूर, पर यह उसीसी दृष्टि है कि सारी सृष्टि, सारा जगत् जीवित है। सूर्य न हो तो पृथिवी ही न रहे, बनस्पति न रहे और न रहे कोई जीव-जन्म वा प्राणी ही।

सूर्य-प्रकाशकी बदौलत ही धरती सोना उगलती है। सूर्य ही चन्द्रमा और तमाम नक्षत्रोंके परम प्रकाशक है। सब उन्हींके प्रकाशसे इमटिमाते हैं। वही विजलीधर है, सारा सौरमण्डल है और उनसे प्रकाशमान होनेवाला नक्षत्र-पुञ्ज है।

सूर्य-फिरोंमें क्षय, रिकैट्रैस, रक्ताल्पता-जैसे परग भयकर रोगोंवो निर्मूल करनेकी तो अचूत शक्ति है।

ही; आरोग्य, वल, जीवन, प्राण, स्वास्थ्य, सौन्दर्य—सब कुछ प्रदान करनेकी भी उनमें जात्मभरी शक्ति है। सूर्य-फिरों गानवों, सारे प्राणि-जगत्कं सर्वज्ञीण विकासके अनुपम साधन हैं। ज्ञान और विज्ञान—सभी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं।

अभागा होगा वह जो सूर्यदेवताको प्रणाम न करे। सूर्यस्नान, सूर्यनमस्कार आदि विज्ञानसम्मत साधन पुकार-पुकारकर कहते हैं—‘उठो! सूर्यदेवताको प्रणाम करो! वे तुम्हें शक्ति देंगे, वल देंगे, बुद्धि और यश देंगे। तुम उन्हे प्रणाम करके भी तो तेखो!'

## जैन-आगमोंमें सूर्य

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसी )

जैन-तत्त्व-विद्याका मूलभूत आधार है—जैन-आगम। इन आगमोंकी सरचनामें जैनतीर्थकरों और गणधरोंकी ज्ञान-चेतनाका उपयोग दृढ़ा है। तत्त्व-विद्याके मूल क्षेत्रोंका अवशोष तीर्थकरोंके पास उपलब्ध होता है और उराके विस्तृत विश्लेषणमें गणधरोंकी मेथा सक्रिय होती है। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि जैन-आगमोंकी आर्थीपरम्परा तीर्थकरोंसे अनुवर्णित है तथा उन्हें शान्तिका परिवेशमें ढालनेका काम गणधरों और साविरोका है।

जैन-तत्त्व-विद्या बहु-आयामी तत्त्वविद्या है। धर्म, दर्शन, इतिहास, सस्कृति, कला, गणित, भूगोल आदि विविध विषयोंका तलस्पर्शी विवेचन जैन-आगमोंमें प्राप्त होता है। मुख्यरूपसे इनमें चेतन और अचेतन—इन दो तत्त्वोंकी व्याख्या है। ससारके सारे तत्त्व इन दोनों तत्त्वोंमें अन्तर्सुक्त हैं। इसलिये जैन-शास्त्रोंको विश्वके प्रतिनिधि शास्त्रोंकी श्रेणीगे स्थानित किया जा सकता

है। प्रस्तुत संदर्भमें जैन-आगमोंके आधारपर सूर्य-सम्बन्धी विवरणकी संक्षिप्त सूचनामात्र दी जा रही है।

जैन-आगमोंमें चार प्रकारके जीव गाने गये हैं—नारक, तिर्यक्ष, मनुष्य और देव। देवोंके सम्बन्धमें वहाँ विस्तारसे वर्चा है। देवोंकी मुमाल्यप्रमेय चार श्रेणियों हैं—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। असुर, नाग आदि दस प्रकारके देव भवनपति देव कहलाते हैं। पिशाच, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि देव व्यन्तर देवोंकी श्रेणीमें आते हैं। सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क देव हैं। लोकके ऊर्ध्वमागममें रहनेवाले देव वैमानिक देवके नामसे पहचाने जाते हैं।

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकारके हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा। इन पाँचों देवोंमें सूर्य और चन्द्रमा-को इन्द्र माना गया है। सूर्य इनमें सबसे अधिक तेजस्सी है। ग्रकाश और तापके अतिरिक्त भी लोक-जीवनमें सूर्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जैन धर्मके

मुख्य शास्त्रोंमें एक आगम 'सूर्यप्रज्ञापि' है। उसमें सूर्य-का विभिन्न दृष्टियोंसे प्रतिपादन किया गया है। इस एक आगममें सूर्य-सम्बन्धी इतनी सूचनाएँ हैं कि उनके आधारपर ज्योतिपके क्षेत्रमें कई विद्यान् अनुसधान कर सकते हैं।

जैन-शास्त्रोंके अनुसार यह दृष्टि सूर्य सूर्यदेव नहीं, अपितु उनका विमान है। सूर्य एक पृथ्वी है। उसमें तैजस परमाणु-स्कन्ध प्रचुरमात्रामें उपलब्ध है, अतः उससे प्रकाशकी रशियाँ विकीर्ण होती रहती हैं। सूर्य आदि देवोंके विमान सहजरूपसे गतिशील रहते हैं। फिर भी उनके स्वामी देवोंकी समृद्धिके अनुरूप हजारो-हजारों देव-विमानोंकी गतिमें अपना योगदान देते हैं। सूर्यका विमान मेहर पर्वतके समतल भूमिभागसे आठ सौ योजनकी ऊँचाईपर अवस्थित है। इन योजनोंका माप जैनागमोंमें वर्णित प्रमाणाङ्कुलके आधारपर किया गया है।

सूर्यका प्रकाश कितनी दूर फैलता है? इस प्रश्न-के उत्तरमें भगवती-सूत्रमें बताया गया है कि सूर्यका प्रकाश सौ योजन ऊपर पहुँचता है। अठारह सौ योजन नीचे पहुँचता है और सैतालीस हजार दो सौ तिरसठ (४७२६३) योजनसे कुछ अधिक क्षेत्रफलमें तिरछा पहुँचता है।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाकी सख्याका पूरा विवरण है। विश्वके समग्र सूर्योंकी सख्याका आकलन किया जाय तो वे हमारे गणितके निश्चित मापकोंको अतिक्रान्त कर असंख्यतक हो जाते हैं। वैसे मनुष्य-लोकमें एक सौ वर्तीस सूर्य हैं। इनके सम्बन्धमें जम्बू-द्वीप तथा प्रज्ञापनासूत्रमें विस्तृत विवेचन है। एक सौ वर्तीस सूर्योंकी अवस्थिति इस प्रकार है—

जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं। लघुणसमुद्रमें चार सूर्य हैं। वातकीखण्डमें सूर्योंकी संख्या बारह हो जाती है।

कालोदधिमें वयालीस सूर्य हैं और पुष्करार्धद्वीपमें ये वहतरकी सख्यानक पहुँच जाते हैं। कुल मिलाकर इनकी संख्या एक सौ वर्तीस हो जाती है।

ज्योतिष्ठ देव चर और अचर दोनों प्रकारके हैं। मनुष्यलोकमें जो सूर्य, चन्द्रमा आदि हैं, वे चर हैं। उनसे बाहर जो असंख्य सूर्य और चन्द्रमा हैं, वे स्थिर हैं। कालका समग्र निर्धारण सूर्यकी गतिके आधारपर होता है। मनुष्यलोकसे वहिर्वर्ती क्षेत्रोंमें सूर्यकी गति नहीं है, इसलिये वहाँ व्यावहारिक काल-जैसी कोई व्यवस्था भी नहीं है। सामान्यतः सूर्य और पृथ्वीकी गति एक विवादास्पद पहल है। परं जैन-शास्त्रीय दृष्टिकोणसे समय-क्षेत्र (मनुष्यलोक) के सूर्य चर और उससे वहिर्वर्ती सूर्य स्थिर हैं।

जैन-भुनियोंकी चयमिं सूर्यका एक विशेष स्थान है। उनके अनेक कार्य सूर्यकी साक्षीसे ही हो सकते हैं। सूर्यकी अनुपस्थितिमें जैन मुनि भोजन भी नहीं कर सकते। इस तथ्यकी अभिव्यक्ति आगम-वाणीमें इस प्रकार हुई है—

अस्थंगयमिम आइच्छे पुरन्था य अणुग्गाए।  
आहारमड्यं सञ्चं मणसा वि न पत्थए॥

सूर्यस्तिसे लेकर जवतक सूर्य पुनः पूर्वमें निकल न आयें, तवतक मुनि सब प्रकारके आहारकी मनमें भी इच्छा न करे।

उग्रापसूरे अणत्थमियसंकापे

सूर्योदय होनेके बाद जवतक सूर्य फिर अस्त नहीं होते हैं तवतक ही मुनि भोजन, पानी, ओपधि आदि प्रहण करनेका संकल्प कर सकता है।

जैन-धर्ममें प्रत्याख्यानकी परम्परामें भी सूर्यको साक्षीरूप रखा जाता है। उसका एक निर्दर्शन इस प्रकार है—

‘उगगए सूरे णमुक्कारसहियं पच्चखामि  
चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं  
अण्णत्थणाभेगेणं सहसागारेण चोसिरामि ।’

नमस्कारसहिता, पौरिषी आदि प्रत्याख्यानके क्रममे  
कालकी सीमाका निर्धारण सूर्योदयसे किया जाता है ।

जैन-मुनि अपने जीवनमें साधनाके अनेक प्रयोग  
करते हैं । उन प्रयोगोंके साथ भी सूर्यका सम्बन्ध है ।  
जैनोंके बृहत्तम आगम ‘भगवती’में ऐसे अनेक प्रसङ्ग  
उपस्थित किये गये हैं । उनमें एक प्रसङ्ग है—गृहपति  
तामलिका । तामलि अपने भावी जीवनको उदात्त  
बनानेके लिये चिन्तन करता है—‘जबतक मुझमें  
उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम है  
तबतक मेरे लिये यही उचित है कि मैं परिवारका  
पूरा दायित्व धरने व्येष्ट पुत्रको सौंप दूँ और स्वयं  
सहजराश्मि, दिनकर, तेजसे जाग्यन्यपान सूर्यके कुछ  
ऊपर आ जानेपर प्रवज्या स्वीकार करूँ ।’

प्रवज्या स्वीकार कर वह एक विशेष संकल्प स्वीकार  
करता है—‘आजसे मैं निरन्तर दो-दो दिनका उपवास  
करूँगा । उपवासकालमें ‘आतापना’-भूमिमें जाकर दोनों  
हाथोंको ऊपर फैलाकर सूर्याभिमुख हो आतापना ढँगा ।’

तपस्याके साथ सूर्यके आतपमे आतापना लेनेकी  
वात कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है । तपस्यासे कर्म-शरीर  
क्षीण होता है और आत्माकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत्  
होती हैं । उसके साथ सूर्यकी आतापना लेनेसे तैजस-  
शरीर प्रवल होता है । इससे शरीरकी कान्ति और  
ओज ग्रदीप होता है । जैन-शास्त्रोंमें एक विशेष लघिध  
‘तैजस-लघिध’की चर्चा है । यह शक्ति जिस साधकको  
उपलब्ध हो जाती है वह तैजस-शरीरके प्रयोगसे  
अनेक चमत्कार दिखा सकता है । यह शक्ति अनुग्रह  
और निग्रह दोनों स्थितियोंमें काम आती है । इस

शक्तिको प्राप्त करनेके लिये लगातार हृ. मासतक  
सूर्याभिमुख आताप लेनेका विधान है ।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिसे जैन-साधना-पद्धतिमें सूर्यकी  
रश्मियोंके प्रभावको नकारा नहीं जा सकता । जैन-  
शास्त्रोंमें रात्रि-भोजनको परिहार्य बताया गया है । इस  
प्रतिपादनका वैज्ञानिक विश्लेषण न हो तो उक्त पद्धति-  
मात्र एक परम्परान्सी प्रतीत होती है; किंतु इस परम्पराके  
पीछे रहे हुए दृष्टिकोणको समझनेसे इसकी वैज्ञानिकता  
स्वयं प्रमाणित हो जाती है ।

यह तथ्य निर्विवाद है कि सूर्यकी रश्मियोंमें तेज  
है । इस तेजका प्रभाव प्राणि-जगत्के पाचन-संस्थानपर  
अत्यधिक पड़ता है । जो व्यक्ति सूर्यास्तके बाद भोजन  
करते हैं, वे भोजनको पचानेके लिये सूर्य-रश्मियोंकी  
उजाकी उपलब्ध नहीं कर सकते । इसीलिये उनकी  
पाचनक्षमता क्षीणप्राय हो जाती है और अजीर्णरोग-  
जैसी वीमारियाँ उन्हें लग जाती हैं । सूर्यास्तके पश्चात्  
भोजन करनेवालोंकी भाँति सूर्योदयसे पहले या तत्काल  
बाद भोजन करनेसे भी पाचन-संस्थान सूर्यकी रश्मि-तेजसे  
अप्रभावित होता है; क्योंकि सूर्यके उदय हो जानेपर  
भी उनकी रश्मियोंका ताप प्राणि-जगत्को उपलब्ध  
होनेमें पचास-साठ मिनटका समय लग ही जाता है ।  
यद्यपि बाल-सूर्यकी रश्मियोंमें भी ‘विद्यमिन्स’ होते हैं, पर  
भोजन पचानेमें सहायक तत्व कुछ समय बाद ही मिल  
सकते हैं । सम्भव है, इसी दृष्टिसे जैन-धर्ममें नमस्कार-  
सहिता-तप और रात्रि-भोजन-तप आहार-परित्याग तपकी  
प्रक्रियाको स्वीकृत किया गया है ।

जैन-शास्त्रोंमें सूर्यका जो विवेचन है, उसका  
समीचीन सकलन करनेके लिये वर्णोत्तम उनका गम्भीर  
अध्ययन आवश्यक है । ज्योतिपके क्षेत्रमें अनुसंधान  
करनेवालोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

## आदित्यकी ब्रह्मरूपमें उपासना

आदित्य नारायण ब्रह्म है—ऐसा उपदेश है, उसीकी जाग्रत्या की जाती है। पहले वह असत ही था फिर वह सत् ( कार्याभिमुख ) हुआ। जब वह अङ्गुरित हुआ तब एक अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, वर्षपर्यन्त उसी प्रकार पड़ा रहा। फिर वह फटा और उसके दो खण्ड हो गये। उन दोनों अण्डोंके खण्ड रजत और खर्णरूप हो गये। उनमें जो खण्ड रजत हुआ, वह यह पृथ्वी है और जो मुरवर्ण हुआ, वह ऊर्ध्वलोक है। उस अण्डेका जो जरायु ( स्थूल गर्भवेष्टन ) था, ( वही ) वे पर्वत हैं, जो उत्त्व ( मूरुम गर्भवेष्टन ) था, वह मेघोंके सहित कुहरा है, जो धर्मनियाँ थीं, वे नदियाँ हैं तथा जो वस्तिगत जल

था, वह भमुद्र है। फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह ये आदित्य हैं। उनके उत्पन्न होने ही वहे जोरोंका शब्द हुआ तथा उसीसे सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग हुए। इसीसे उनका उदय और अम्त होनेपर दीर्घ शब्दयुक्त धोप उत्पन्न होने हैं तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होने हैं। यह जानकर जो आदित्यको 'यद् ब्रह्म है' उनकी उपासना करता है ( वह आदित्यरूप हो जाता है, तथा ) उसके समीप शीत्र ही मुन्द्र धोप आते हैं और उसे सुख देते हैं, सुख देते हैं।

( -छा० ३० २१ । १ । ४ )

## सूर्यकी महिमा और उपासना

( लेखक—याजिकरमाट् पण्डित श्रीविणीरामजी दर्मा, गोड, वेदाचार्य )

नित्य, नैमित्तिक और काम्य अनुष्ठानोंमें नवग्रहका स्थापन और पूजन अनिवार्य है। नवग्रह-पूजनमें भी सर्वप्रथम सूर्यका नाम थाता है, जिनका ग्रहोंके मध्यमें पूजन किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक यज्ञ-यागादि—इवन-कर्ममें भी सर्वप्रथम नवग्रहका ही हवन होता है, जिसमें सर्वप्रथम सूर्यदेवको आद्विती दी जाती है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक धार्मिक कर्ममें सूर्यकी उपासना आवश्यक है। जो मनुष्य मूर्य-पूजनके निना कोई भी कर्म करते हैं, वे अपूर्ण माने जाते हैं। अतः साष्ट है कि जिस कर्ममें सूर्यका पूजन नहीं होता, वह अपूर्ण है।

सूर्यकी उपासना हिंदू-समाजमें विविध रूपमें की जाती है। कुछ लोग पूजात्मक, कुछ लोग व्रतात्मक, कुछ लोग पाठात्मक, कुछ लोग जपात्मक और कुछ लोग हवनात्मकरूपसे उपासना करते हैं। सूर्यकी सभी

प्रकारकी उपासनाओंमें उपासकाको अद्वृत सुख शान्तिकी अनुभूति प्राप्त होती है।

जगत्के और देवोंके आत्मा भगवान् सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त है। सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें होनेके कारण द्युलोकस्थ देवताओंरों और पृथ्वीलोकस्थ मनुष्योंसे उनका विजेता सम्बन्ध है।

वेदोमें कहा गया है—

चित्रं देवानामुद्गाद्वीकं चक्षुर्विवरय  
वस्तुन्माग्नेः । आपा यावापूथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं  
आन्मा जगतस्तस्युषश्च ॥  
( ध० १ । ११५ । १, शु० १० ७ । ४२, अथर्व०  
१३ । २ । ३५ )

भगवान् सूर्य तेजोमणि किरणोंके उज्ज्वल हैं। वे मित्र, वस्तु और अग्नि आदि देवताओं एव सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं नथा स्थावर-जङ्गम—सर्वके अन्तर्माणी एव सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा हैं। वे सूर्य आकाश, पृथ्वी और

अन्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण व्याप करते हुए आश्चर्यखम्पसे उदित हुए हैं। वे 'मूर्य स्थावर-जड़मात्मक संगृण विद्वकी आत्मा हैं।' यह भी कहा गया है कि—

‘सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा ।’  
 (—सूर्य-उपनिषद् )

‘मूर्य ही समस्त देवताओंके आत्मा हैं ।’

इसलिये स्पष्ट है कि भगवान् सूर्य देवताओं, मनुष्यों और स्थावर-जड़मात्रक सम्पूर्ण विश्वके आत्मा है।

सूर्यकी प्राणलूपता—मूर्यके द्वारा ही संसारके समर्त जड़ और चेतन-जगत्को जीवन-शक्ति और प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। अतः सूर्यको प्राणिमात्रका ‘प्राण’ कहा गया है।

‘उद्यन्तु खद्धु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि  
प्राणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते ।’ ( —ऐतरेय-  
आदित्यण २५ । ६ ) ‘आदित्यो ह वै प्राणः ।’ ( —प्रश्नो-  
पनिपद १ । ५ ) ।

अर्थात् उदित होते हुए सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको प्राण-न्दान देते हैं, इसलिये सूर्यको प्राण कहते हैं।

अतः निश्चित है कि सूर्य ही प्राणिमात्रको प्राणदान वरते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका रक्षण और पोषण होता है। इसलिये सूर्य ही प्राणिमात्रके जीवन है।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—‘आदित्यो ब्रह्म’ छान्दोग्योपनिषद्  
 ( -३ । १० । १ )-के और ‘असाचादित्यो ब्रह्म’  
 सूर्योपनिषद्-के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही  
 हैं । सूर्यके ‘ब्रह्म’ होनेके कारण ही उन्हें कर्ता,  
 धर्ता एव संहर्ता कहा गया है ।

‘स य एतनेवं विद्वासादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते इत्यादी  
इ वदेन रसायनो धोया आ च रच्छेष्टुरप च  
निष्ठेहरनिष्ठेहरन् ।’  
(—छन्दोग्योपनिषद् ३ । १९ । ४ )

(—छन्दोग्योपतिष्ठृ । १९ । ४ )

‘इसके अनुसार जो आदित्य (मूर्ति) का ‘यह ब्रह्म है’ इस प्रकार ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह आदित्यरूप हो जाता है तां उसके समीप शीतल ही सुन्दर घोप आते हैं और वे सुग्र उत्ते हैं।’

सूर्यका सार्वप्रसवित्त्व—भुवन-भास्करा भगवान् सूर्य  
शक्तिःत् ‘नारायण’ है। ये ही समस्त मसारके उत्पादक  
हैं। ऋग्वेद ( ७ । ६३ । ४ ) मे कहा गया है—  
‘भूतं जनाः सूर्येण प्रसूताः ।’ निश्चय ही सनुष्प  
सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं। सूर्योपनिषद्मे भी कहा गया  
है—‘सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंवति उत्पत्ति होती  
है। सूर्यसे ही पालन होता है और सूर्यमें ही ल्य  
होता है और जो सूर्य हैं, वही मे हैं ।’

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।  
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

मूर्य समस्त संसारके प्रसविता ( जन्मदाता ) हैं।  
इसीलिये इनका नाम 'सप्तिता' है — 'सप्तिता' वै  
प्रसवानामीशो सवितारमेव ।' ( — कृष्णजुर्वेद २ ।  
१ । ६ । ३ ) 'मूर्य हीं संसारके प्रसविता हैं और वे ही  
अपने ऐत्यर्थसे जगत्के प्रकाशक हैं ।' तथा 'सप्तिता  
सर्वस्य प्रसविता ।' ( - निश्चल, दैवतकाण्ड ४ । ३१ )  
'सप्तिता सबके उत्पादक हैं ।'

भगवान् मूर्य मसारके सृष्टिकर्ता हैं। अतः मूर्यसे ही सासारिक सृष्टिचक्र प्रवर्तित और प्रवलिन है। मूर्यसे ही प्राणीकी उत्पत्ति होती है। मूर्यसे ही कृपि (खेती) होती है। सूर्यसे ही वृक्ष, फल, करु,

वनस्पति, ओपधि और अन्न होता है। इसी प्रकार सूर्यसे समस्त सांसारिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यदि सूर्य न हो तो सांसारिक सृष्टि-चक्र ही नहीं चल सकता। अतः सूर्य ही समस्त सृष्टि-चक्रके मूल हैं।

**सूर्यकी सर्वदेवमयता—‘सर्वदेवमयो रविः’-के अनुसार सूर्य-नारायण सर्वदेवमय हैं—**

एप ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।  
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो हरिः॥  
(—सूर्यतापिन्युपनिषद् १ । ६ )

‘ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं तथा त्रिमूर्त्यात्मक और त्रिवेदात्मक सर्वदेवमय हरि हैं।’

भगवान् सूर्यका सर्वदेवतात्मरूप प्रसिद्ध है। अतः सूर्यमें समस्त देवताओंका निवास माना गया है। सूर्यके सम्बन्धमें कहा गया है—

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।  
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥  
(—महाभारत, युधिष्ठिरस्तोत्र )

‘भगवन् ! आपको इन्द्र कहा गया है। आप रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु और वेद हैं।’

सूर्योपनिषद् में ‘त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः’—इत्यादिद्वारा सूर्यको ‘सर्वदेवरूप’ कहा गया है।

सूर्यका प्रत्यक्ष देवत्व—‘साक्षाद् देवो दिवाकरः’ के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। ये प्रतिदिन प्रातःकालमें उठित और सायकालमें अस्त होकर संसारके समक्ष अपने देवत्वको प्रत्यक्ष प्रकट करते हैं तथा समस्त संसारका सब प्रकारसे कल्याण करते हैं। इसलिये सूर्यके प्रत्यक्ष देवत्वको आत्मिक और नास्तिक प्रायः सभी प्रकारके मनुष्य सहर्ष स्त्रीकार करते हैं। अतः भगवान् सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य है।

देवताओंमें भगवान् सूर्य सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक उपकारक हैं। ये प्रतिदिन अपनी अमृतमयी

किरणोंकी ज्योतिद्वारा समस्त मंसारमें प्रकाश और उष्णता आदि प्रदान करते हैं जिससे मनुष्य, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे—वनस्पति आदि सभी जीवन-शक्ति प्राप्तकर बलिष्ठ और सुरक्षित रहते हैं। इसलिये सूर्यकी किरणोंकी ज्योति प्राणिमात्रके लिये आवश्यक और उपयोगी है। अतः स्पष्ट है कि सूर्य ही संसारके समस्त जड और चेतन प्राणियोंके जीवन-ज्योतिके मूल स्रोत है। इसलिये सूर्यको समस्त प्राणियोंका जीवन कहा गया है—‘जीवनं सर्वभूतानाम्’ (—ब्रह्मपुराण ३३ । ९ )।

**सूर्यकी काल-विभाजकता—भगवान् सूर्य ही समय-नियन्ता और समय-विभाजक हैं।** सूर्यसे ही दिन, रात, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, मन्वन्तर, और कल्प आदिके समयका यथार्थ ज्ञान होता है। सूर्य न हो तो दिन एवं रात आदिके समयका ज्ञान ही नहीं हो सकता। समयके ज्ञान न होनेसे सांसारिक किसी भी कामका व्यवस्थित रूपमें होना असम्भव हो जाय, अतः संसारके समस्त कार्य सूर्यपर ही अवलम्बित हैं।

**सूर्यकी अनादि उपासना—भगवान् सूर्य आदिदेव है।** अतएव इनकी उपासना अनादिकालसे प्रचलित है। सूर्यवर्णी भगवान् राम और चन्द्रवर्णी भगवान् कृष्ण, भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर और राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालशिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि एवं वसिष्ठ, विश्वमित्र, गौतम, नारद, कपिल आदि तपस्वी ऋग्मि-मुनि सूर्यकी उपासना करते थे। इसलिये सूर्योपासना सभीके लिये आवश्यक और नित्यकर्म है। यद्यपि कालचक्रके दुष्प्रभावसे वर्तमान समयमें सूर्योपासनाका बहुत ही हास हो गया है, तथापि धर्मप्रधान भारतवर्षमें सनातनधर्मी जनता किसी-न-किसी रूपमें अब भी सूर्योपासना करती ही है। व्रत, अनुष्ठान और सन्ध्याके रूपमें सूर्योपासना तो चल ही रही है।

उपासकोंके कामधेनु—भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक और दयालु है । वे अपने उपासकोंसे सब कुछ प्रदान करते हैं—

किं किं न सविता सूर्ते काले समयगुपासितः ।  
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसुनि स पशुंस्तथा ॥  
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।  
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गम् ॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ९ । ४७-४८)

‘जो मनुष्य सूर्यकी यथासमय सम्यक् प्रकारसे उपासना करते हैं, उन्हे वे क्या-क्या नहीं देते—वे अपने उपासकों दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, विविध प्रकारके उन्नतिके व्यापक क्षेत्र, आठ प्रकारके भोग, स्वर्ग और अपर्वा ( सब कुछ ) प्रदान करते हैं ।’

भगवान् सूर्य परब्रह्मस्य, सर्वदेवमय, सर्वजगन्मय और परम ज्योतिर्मय देवता है । ये अपनी दिव्य सहस्र रश्मियोंसे सभीका, विशेषतः अपने उपासकोंका सभी प्रकारसे कल्याण करते हैं । अतः यह समस्त चराचर संसार भगवान् सूर्यका ऋणी है । इनसे उऋण होनेके लिये मनुष्यमात्रको सर्वदा सूर्यकी उपासना करनी चाहिये । जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे यथासमय नियमपूर्वक प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते हैं, वे उस ज्ञानमय प्रकाशयुक्त ‘सूर्यलोक’को प्राप्त करते हैं, जहाँ पुण्यात्मा मनुष्य जाते हैं । जो मनुष्य सूर्यकी उपासना नहीं करते, वे अज्ञानमय प्रकाशहीन ‘असूर्यलोक’ ( असुरोंके लोक ) को प्राप्त करते हैं, जिसको आत्मधार्ता पापी मनुष्य प्राप्त करते हैं ।

## सूर्योपासनाका महत्त्व

( लेखक—आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी ‘कफिल्बज’ एम० ए०, पी-एच० डी०, काव्यरत्न )

हिंदूधर्म समस्त सृष्टि और सृष्टिके अतिरिक्त भी जो कुछ है, सभीको एक पूर्णत्वमे समाहितकर आध्यात्मिक रूप प्रदान करनेकी प्रक्रियाको सदैव महत्त्व देता रहा है । वैदिककालके प्रारम्भसे ही ‘भूमा वै सुखम्’<sup>१</sup> की विचारधाराको प्रश्रय मिला है । आयोंकी यह ‘भूमा’वाली दृष्टि उन्हे सीमितसे असीमितकी ओर बढ़ने तथा उसके साथ तादात्प्य स्थापित करनेकी प्रेरणा देती रही है । इसी क्रममे एक ओर जहाँ उन्हे सृष्टिके नियमकरूपमे अनेक देवी-देवताओंके दर्शन हुए, वहाँ तीनों लोकोंमे अपनेको समाहित करनेकी एवं

तीनों लोकोंके नियन्ताके साथ तादात्प्य स्थापित करनेकी उत्कट अभिलापाकी जागृति भी हुई । इसलिये उन्होंने जो प्रयास किये तथा जिस विधिसे अपने उपास्यकी अनुकम्पाके लिये उनकी उपासना की, उसीको आदर्श मानकर हम अपने उपास्यकी उपासना करते हैं । हमारी उपासना-परम्परामे उनकी निर्देश-सरणी ही आदर्श है ।

हिंदूजातिमे प्रचलित इन उपासना-पद्धतियोंमें सूर्योपासनाका एक विशिष्ट स्थान है । इसका प्रमुख कारण यह है कि सौरमण्डलमे सूर्य-चन्द्रादि नवप्रह, त्रिदेव,

१. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । ताऽस्ते प्रेत्यभिमाच्छन्ति ये कै चात्यहनो जनाः ॥

(—शु० यजु० ४० । ३ )

२ ( क ) यो वै भूमा तत् सुख नाल्पे सुखमस्ति (—छान्दोग्य० ७ । २३ । १ )

( ख ) यत्र नान्यत्पश्यति नान्यन्त्योति नान्यद्विजानानि स भूमा । यो वै भूमा तद्मृतम् ।

(—छान्दोग्य० ७ । २४ । १ )

महाद्वय, साध्यदेव, मध्यविग्रह एवं तीर्त्स कोटि देवता  
निवास करते हैं। उन ममत 'क्षु' लोकीय देवोंका प्रति-  
निधित्व गृह्ण एवं चन्द्रधारा होता है। दूसरे शब्दोंमें  
तेजोनिधन भगवान् भुवन-भाव्यत श्रोमूर्यनामयण इति  
स्तुपुर्ण ब्रह्मशुद्धका अनिन्यायक्तिप्राप्त  
सचालक है।

शूद्रवेद ( शापल ) सठिता ( १।११२।१ )  
में 'सूर्य आन्मा जगतस्त्वुपश्च' कहकर अहम तथा  
स्थावर—नर्मी प्राणियोंकी आन्मा मापनान् दृष्टिकोणी  
स्त्रीकार किया गया है । श्रीमद्भगवन्में मुस्त्रा वर्गन है  
कि सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, शुद्धेत्र, भृदीक,  
स्वर्ग-मोक्षके प्रदेश, नम्र और नम्रातः तथा अन्य सम्बन्ध  
स्थानोंका विभाग होता है । सूर्यभावान् ही देवता,  
तिर्यक्, पञ्चुष्ठ, सरीसृष्ट और लता-वृक्षादि समग्र जीव-  
समूहोंके आन्मा एवं नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं ।  
नहाभारतमें भगवान् सूर्यका नववन करने हुए भद्रगत  
युधिष्ठिर कहते हैं—‘मृर्यदेव ! आप मम्पुर्ण जगत्के  
नेत्र तथा सम्बन्ध प्राणियोंके आन्मा हैं । आप ही नव  
जीवोंके उत्पत्ति-स्थान थाँर वर्षानुप्राप्तं लो पुरुषोऽनि  
सदाचार हैं । जो व्रता, कदाचन्द्र, विष्णु, प्रजापति,  
वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, ममुड, प्रद, नक्षत्र  
और चन्द्रमा आदि देवता हैं: वसन्तनि, दृश्य तथा ओपनिधि  
जिनके व्याप्ति हैं, व्राची, देष्याची और माहेश्वरा—

२. सर्वेण हि विभव्यन्ते दिगः खे वीमहीभिदा । अतोक्तर्गं नशा रमोऽपि च मत्तः ॥  
देवनिर्युक्तप्राणा मगीनप्यमवीनयाम् । सर्वं नीत्यनिवायात् एव असा इष्टी-प्र ॥

२. एवं भानो उपतश्चमुः ॥ त्वमाचारः कियाक्ताम् ॥ (—भद्रा० धन० ३। ४६। १३). । मार्गोदयाद१५१।  
६०—७१) । ४. सूर्यतापिनी-उपतिपद्मे इसालिये सूर्य हो 'सर्वेऽकमय' स्वीका. १. ११ धन० १—  
एष व्रहा च विष्णुश्च कद्र एष हि भास्त्वः । विमुख्यान्मा विवेदतस्मा सर्वेऽनमयो रहिः ॥ (—१। ६)  
५. शुद्धयशु० ( ३। ३५, २८। ९), ( शून्यवस्थादिता ३। ६२। १० ) ।  
६. गीता ( १०। २१ ), श्रीमद्भागवत ( ११। १६। ३४ ) । ७. (क) 'गणित्योद्यादा' (—साम्राज्योऽग्निः ४। १९। १),  
(ख) 'असौ यः स आदित्यः' (—शत० ब्रा० ५०। ५। १५। १५, १८। ६। ६। ६), (ग) 'ग्रामादित्यो व्रतः'  
(—तैतिनीयाग्राण्यक २। २ ) ।

विधि दालेहर्ण जिनका यह है: असु (मूर्ति) जिनका स्वरूप है; तो यह अनन्द-दर्शक (भूमि) प्रसन्न हो। ये प्रश्न अर्थात् यथा गणतः गणन रूपद्वारा उत्तिष्ठति प्रश्नित की गई है। इसके अधिकारी भूमि है प्रथम देव अंतर्दर्शक गण। इस उत्तर है।

मृत्युगत्तान् संकलन सेवा द्वे ब्रह्मणि प्रवर्त्त  
उपकृत देख दे । असदेव ( शास्त्र ) मुख्य  
( ११३२, १२ ) :—‘आ कृष्णन गवामां’ इस  
श्रियस्तु । गुणोऽपि रूपोऽपि उद्दृश्य ( ११३ )  
स्था मंशादीर्घम् भन्न शृणु ॥ ११३ ॥ उद्दृश्य ( ११३ )  
विशेषं प्रभावत्त्वं विमर्श । तदेव भानुः प्रचोदयात्  
( ११३, १३ ) एव विशेषं भानुः प्रचोदयात्  
महाप्रदर्शित द्वा गर्वते हैं । तन्मधिकुरुर्गण्यं भर्गोऽपि  
इत्याः प्रसिद्धं लादनीयं त्रयं तेजःशक्तिर्वी  
उपासनाम् भवति ॥ और इष्टिविद्यार्थी लादने की विद्या  
है । आदेव ( ११४, ११५, ११६, ११७ )  
अथर्ववेद ( ११४४, ११५३, ११६१, ११६५ ) अहि  
स्यनोपि सूर्यज्ञे गुणोऽपि सम्भवत् सर्वाद् चक्र  
कल्प रक्षा है । मिर्जन-विद्यार्थी इम्मुद्देश्ये भावान्वये क्षम्ये  
‘व्योत्तियां रसिंश्युमार्यं’ वाचम् इत्यक्षी वहन  
प्रदर्शित की है । उपनिषद्वेषी द्वीपार तिः एव है  
कि इत्यही प्रताक्षराम् । आश्रित्य है । गायत्रोऽप्तव्ये  
मूर्यके स्त्र्यमें अस्ति । गंगावत्ता ही उपासना तन्मध्ये

(—शीर्षकानुसार १३०) & ~

गयी है। गायत्रीमन्त्रमे कहे गये 'सवितुः' पदसे मूर्यका नी ब्रह्म होना है। अतः गूर्य सविताका ही पर्यायवाची अब्द है। गायत्री और मूर्यका परस्पर जो अभिन्न सम्बन्ध है, वह वाच्य-चन्द्रकरूपसे निर्दिष्ट है। अर्थात् गूर्य गायत्रीके साक्षात् वाच्य हैं और गायत्री उन सविताकी वाचिका है। नभी तो कहा गया है कि गायत्री-मन्त्रदाता जलको अभिमन्त्रित करके जिसने भगवान् मूर्यको यथागमय नीन अङ्गलियों जल अपित की, क्या उसने रीनों लोकोंको नहीं दे दिया ?

कनिपय स्तुतियों और प्रार्थनाओंके माध्यमसे भी वेदोंमे मानव-समुदायके समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए मूर्यकी महिमागमी गाथाका वर्णान किया गया है। ऋग्वेदके एक मन्त्रमे ऋषि कहते हैं कि हम वार-वार देते हुए नीरोंकी धारणा करते हुए, जानते हुए परस्पर मिलतेरहे और मूर्य-चन्द्रमाके समान कल्याण-पश्चका अनुसरण करते रहे। अर्थात् जिस प्रकार मूर्य-चन्द्रमा परस्पर आदान-प्रदानकर लाखों वरोंसे नियमित रीतिये कार्य कर रहे हैं, कभी अपने काममे प्रमाण नहीं करते, अपने आश्रित-जनोंको धोखा नहीं देते, प्रत्युत यथोचित समयार वार्य करनेम सहायता देते हैं, ठीक उसी प्रकार हम भी उनका आदर्श समाने रखकर काम करे। हम भी आगे चिलास (चन्द्रग-*Materialism, wosidly gait*)को विवेक

(*गूर्य-Spiritual Knowledge*)के अर्धान मर्यादित स्तुति। अवरार देवकर कभी उप्रतामे और कभी शान्तिसे काम करे। ऋग्वेदमें ऋषि अन्यत्र बहते हैं कि 'हे सवितादेव ! आप सब प्रकारके कष्टों (पापों) को दूर करे और जो कल्याणकामना हो वही हमारे लिये दे—उपन्न करे। अभिप्राय यह कि गूर्य नभी कल्याण करते हैं, जब हम उनके रागान नियमसे काम करनेवाले हो। यदि हम प्रातःआल उठकर मूर्य-सेवन (मुले भैदानमे सन्ध्योपासन, जीवन-निर्वाहके कार्य) करते हो तो सब प्रकारमे कल्याण हो सकता है। स्वास्थ्य वह सकता है,

मूर्यकी आराधना और प्राकृतिक नियमोंके पालनसे गेग दूर होते हैं तथा स्वास्थ्य स्थिर रहता है,—ऐसी हमारी वैदिक और पौराणिक मान्यता है। इसी परिप्रेक्ष्यमे ऋग्वेदके ऋषि भगवान् आदित्यकी स्तुति करते हुए कहते हैं—‘हे अखण्ड नियमोंके पालन-कर्ता परम देव (आदित्यासो) ! आप हमारे रोगोंको दूर करें, हमारी दुर्मतिका दमन करे और पापोंको दूर हटा दे।’ इसी सदर्भमें ब्रह्मपुराणका स्पष्ट उद्घोष है कि मनुष्यके मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् मूर्यकी कृपासे निःशोष नष्ट हो जाने हैं। इनना ही नहीं सूर्योराधकका अन्धायन,

१. ऋग्वेद (३६।३), २. (क) 'असौ वा आदित्यो देवः सविता ।' (—शतपथ० ६।३।१।२०),

(ख) 'आदित्योऽपि सवितेवाच्यो ।' (—निरुक्त, दैवतकाण्ड ४।३१)

३. 'वाच्यवान्तकसम्बन्धो गायत्र्यः सनितुद्वयोः। वाच्योऽसौ सविता साक्षात् गायत्री वाचिका परा ॥  
—स्कन्दपुराण ४।१।९।५४ )

४. गायत्रीमन्त्रतोयाज्ञा दत्त येनाऽजलित्यग्म्। काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्त जगत्यव्यम् ॥

(—स्कन्दपुराण ४।१।९।४६ )

५. स्वर्गित पञ्चाग्नु चरेम मूर्योचन्द्रमसावित्र । पुनर्दृतावन्ता ज्ञानता स गमेमहि ॥  
—ऋक् ०५।५१।१५ )

६. 'विश्वानि देव यदित्यदुर्वितानि परा मुन । यद् भद्र तन्न आ मुव ।' (—ऋक् ०५।८२।५)

७. 'अपामीवामप स्तिवमप सेवत दुर्मतिम् । आदित्यासौ युयोतना नो अहसः ।' (—ऋक् ०८।१८।१० )

८. मानस वाचिक वापि कायज यत्त दुष्कृतम् । सर्वे गूर्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति ॥  
( २९।५० )

कोड़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर सूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कष्टसे दुखी, गलित अङ्गोवाला, नेत्रहीन, बड़े-बड़े वातोसे युक्त, यक्षमासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोसे युक्त हैं, उनके भी समस्त रोग सूर्य-कृपासे नष्ट हो जाते हैं—इसमे कुछ भी सदेह नहीं है। ध्यातव्य है कि पुराणोंमें विशेषतः कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये ही सूर्यकी उपासनाका प्रारम्भ वतलाया गया है। भविष्यपुराणके ब्रह्मपर्वमें दुर्वासाके शापसे कृष्ण-पुत्र साम्बके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेकी प्रख्यान कथा है। श्रीकृष्णचन्द्रके आग्रहपर गरुडने शाकद्वयिष्यसे वैद्यविद्याके जाता ब्राह्मणोंको लाकर इस रोगकी निवृत्तिका मार्ग उन्मुक्त किया। इन ब्राह्मणोंने सूर्यमन्दिरकी स्थापना करायी तथा सूर्यकी आराधनासे साम्बको रोगमुक्त कर दिया था।\*

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८२में महाराज भद्रेश्वरकी प्रख्यात गाथा भी इसका प्रभूत प्रमाण है। महाराज भद्रेश्वरके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया था। वैद्योने बहुत उपचार किया, पर कोड़का चिह्न मिटनेके बजाय और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। फलतः ब्राह्मणोंकी सम्मतिमें महाराज भद्रेश्वरने सूर्याराधनके द्वारा ही कुष्ठ-रोगसे छुटकारा पाया। प्रसिद्ध ‘सूर्यशतक’के रचयिता मयूर कविने भी कुप्रोगके निवारणार्थ भगवान् सूर्यकी आराधना करते हुए ‘सूर्यशतक’की रचना कर अपनेको कुष्ठरोगसे निर्मुक्त किया था। स्कन्दपुराणके नागरग्वण्डमें जिन तीन सूर्य-विग्रहोंका वर्णन है, उनमें प्रथमका नाम ‘मुण्डीर’, दूसरेका ‘कालप्रिय’ तथा तीसरेका ‘मूलस्थान’ है। भगवान् सूर्य प्रातःकाल मुण्डीरमें, मध्याह्नके समय कालप्रियमें तथा सध्या-समय मूलस्थानमें जाते हैं। उस समय जो मनुष्य इन तीनों सूर्य-विग्रहोंमेंसे किसी एकका

भी भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह निःसंदेह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है। समुद्रके निकट विठ्ठलपुर नामक नगरमें रहनेवाले एक ब्राह्मणकी गाथा इसका प्रमाण है। उस ब्राह्मणने हाटकेश्वर क्षेत्रमें जाकर मुण्डीर स्थामीकी आराधना की, जिससे उसका कुष्ठरोग जाता रहा तथा शरीर परम सुन्दर हो गया।

अब हम भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध कतिग्रय पठनीय वैदिक ऋचाओंके दैनिक पाठसे प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन करते हैं। लेखका कलेवर वह न जाय इस लिये जान-बूझकर ऋचाओंका सकेतमात्र दिया जा रहा है—

(१) ‘उद्धयं तमसः०’ (—ऋग्वेद १।५०।१०) तथा ‘उदुत्यं जातवेदसम्०’ (—ऋक् १।५०।१)—जो व्यक्ति प्रतिदिन इन ऋचाओंसे उदित होते हुए सूर्यका उपस्थान करता है तथा उनके उद्देश्यसे सात बार जलाञ्जलि देता है, उसके मानसिक दुःखका विनाश हो जाता है।

(२) ‘पुरीष्यासोऽग्नयः०’ (—ऋग्वेद ३।२२।४) —इस ऋचाका जप आरोग्यकी कामना करनेवाले रोगीके लिये बहुत ही उपादेय है।

(३) ‘अप नः शोशुचदध्म०’ (—ऋग्वेद १।०७।१-८) —इत्यादि ऋचाओंके द्वारा मध्याह्नकालमें सूर्यदेवकी रुति करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(४) ‘चिरं देवानाम्०’ (—ऋग्वेद १।११५।१) —मन्त्रसे हाथमें समिवार्ण लेकर प्रतिदिन तीनों सध्याओंके समय सूर्यका उपस्थान करनेवाला व्यक्ति मनोवृच्छिन धन प्राप्त करता है।

\* नन् आपमिभूतेन मम्यगाग-न भास्करम् । साम्वेनात तथाऽरोग्य रूप च परम पुनः ॥

(—भविष्य०, ब्रह्मपर्व ७३।४९)

(५) 'हंसः शुचिपत०' (—ऋग्वेद ४।४०।५)—  
इस मन्त्रका जप करते हुए सूर्यका दर्शन पवित्रता  
प्रदान करता है ।

(६) 'तच्चशुद्धेवहितम्' (—ऋग्वेद ७।६६।१६)—  
इस ऋचासे उठयकालिक एवं मध्याहकालिक सूर्यका  
उपस्थान करनेवाला दीर्घकालतक जीवित रह सकता है ।

(७) 'वसन्ताऽस्यासीद०' (—यजुर्वेद ३।१४)—  
इस मन्त्रसे वृतकी आहुति देनेपर भगवान् सूर्यसे  
अभीष्ट वरकी प्राप्ति होती है ।

(८) 'असौ यस्ताप्तः०' (—यजुर्वेद ७६।६)—  
म त्रका प्राप्त करते हुए नित्य प्रातःकाल एव सायकाल  
आनन्द्यरहित होकर भगवान् सूर्यका उपस्थान अक्षय  
अन्न पूर्व दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला होता है ।

(९) 'अद्य नो देव सवितः०' (—सामवेद १४।१)—  
यह मन्त्र दुःखप्नोका नाश करनेवाला है ।

(१०) 'ॐ आ चक्षुणे रजसा वर्तमानो  
निवेशयन्नमृतं मर्त्य च ।

हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदंद्वा  
याति भुवनानि पश्यन् ॥'  
(—ऋग्वेद १।३५।२, यजु० ३३।८३)

—यह मन्त्र सभी प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति  
करनेवाला है । प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्रका कम-से-  
कम सात हजार जप करना चाहिये ।

१. ॐ इस चाक्षुपी विद्याके ऋषिः अहिर्बुध्य हैं, गोयत्री छन्द है, सूर्यनाशयण देवता हैं तथा नेत्र-  
गेगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है । ( भगवान्का नाम लेकर कहे ) है चक्षुके  
अभिमानी सूर्यदेव ! आप मेरे चक्षुमं चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायें । मेरी रक्षा करे, रक्षा करे । मेरी औखके रोगोंका शीघ्र  
गमन करे, शमन करें । मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दे, दिखला दे । जिससे मैं अन्धा न होऊँ ( कृपया )  
वैसा ही उपाय करे, उपाय करे । मेरा कल्याण करे, कल्याण करे । दर्शनगत्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्माज्ञित  
जितने भी पाप हैं, उन सबको जड़से उखाड़ दे, जड़से उखाड़ दे । ॐ ( सच्चिदानन्दस्वरूप ) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले  
दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है । ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है । ॐ सूर्य भगवान्को नमस्कार

भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध मन्त्रोमे अधोलिखित मन्त्र  
सभी प्रकारके नेत्ररोगोंको यथाशीघ्र समाप्त करनेवाला ।  
अनुभूत मन्त्र है । ( मैंने जीवनमे कई बार इस मन्त्रसे  
आश्र्यजनक सफलता अर्जित की है । ) यह पाठ-  
मात्रसे सिद्ध होनेवाला है । इसे 'चाक्षुपोपनिपद्'के  
नामसे भी जाना जाना है तथा इसका वर्णन कृष्ण-  
यजुर्वेदमे मिलता है ।

'अस्याश्चाक्षुपीविद्याया अहिर्बुध्यं ऋषिः,  
गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षुरोगनिवृत्तये  
जपे विनियोगः ।'

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि  
पाहि । त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय । मम  
जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहं अन्धो न स्यां  
तथा कल्पय कल्पय । कल्पाणं कुरु कुरु । यानि मम  
पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि  
सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे  
दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय ।  
ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाधि-  
तेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे  
नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । नमस्ते  
मा ज्योतिर्गमय । मूलोर्मा अमृतं गमय । उणो  
भगवान्छुचिरुपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिम्पः ।  
य इमां चाक्षुप्रमत्तीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न  
नस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो  
भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या-  
सिद्धिर्भवति ।

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट गम्भीर विवेचनके आकलनमें यह कहना मार्गीन प्रतीत होता है कि भगवान् सूर्यकी उपासना मानवमात्रके लिये नितान्त बाज़नीय है। गृहोंगामनामें दिव्य वायु, आरोग्य, एश्वर्य, चन्द, पशु, मित्र, पुत्र, श्री, अनेक इन्हीं भोग तथा स्वर्ग हाँ नहीं, मोक्षका भी अनायास युक्त हो

जाता है। अतः प्रत्येक नैतिक, धार्माज्ञक, नगा धर्मिक अभ्युत्थानके इन्हीं व्यक्तियोंको निरोपतः आगोपके इन्हीं व्यक्तियों—महाप्रदाता भगवान्, गाम्भर्या उपासना ग्रन्थके अपना अंतर सुखल बनाना चाहिये। यह प्रमिद्र मी है कि ‘आरंभ्यं भास्तुरादिच्छन्’।

## वैदिक धर्ममें सूर्योपासना

( देखक—उ०० श्रीनीवाकाशतदव चोधर्ण नियाण्व, १८० । ५०, एन्नार्ट० १००. पृ० ३८० इ० )

मनातन ( वैदिक ) धर्ममें भगवान् गृहीय उपासनामें एक सुन्दर स्थान है। हिंदूगत्र महाभाग मूर्यके उपरसक है।

वेदमें भगवान् गृहीयके अमंद्य मन्त्र है। मानाभागके कारण केवल दो-चार मन्त्रोपर ही यहाँ आलोचन किया जाता है।

### ( १ ) ब्रह्मगायत्री

‘ॐ भूर्सुदः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भग्नो देवस्य श्रीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

भगवान् गृहका एक नाम सविता है। यह मन्त्र वेदोका मूल खल्प है। प्रति द्विजको त्रिवर्ण—अर्थात् ग्राहण, शत्रिय और वैश्यवों तीनो सत्याओंमें इन महामन्त्रका लाप करना आनश्यक है।

वेदमाता जगत्प्रभविणी आद्याशक्ति सामित्री प्रसक्ति-स्वरूपिणी हैं।

१०० नेत्रोंके प्रकाशक भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है। १०० आकाशनिर्दार्शकों नमस्कार है। प्रगतेषु स्वरूपको नमस्कार है। १०० ( सबमें क्रियाशक्ति उत्पन्न करनेवाले ) रजागुणरूप सूर्यभगवानको नमस्कार है। ( अन्वकारको संबोधा अपने भट्ठर ममा लेनेवाले ) तमात्मणे आशगभृत भगवान् सूर्यसंग नमस्कार है। हे भगवन्। आप मुक्षवां असत्से गतकी ओर हे चलिये। अन्वकारसे प्रकाशकी ओर हे नलिये। मृत्युसे अमृतकी ओर हे चलिये। उर्णगवरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं—उनके तेजोमय स्वरूपकी समता करनेवाला कोई नहीं है। जो ब्राह्मण इस चाधुभूती विद्याका नित्य पाठ करता है, उसको नेत्रसम्बन्धी कोई गंग नहीं होता। उसके कुलमें कोई अभ्या नहीं होता। आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है।

### भाष्य—

तिरुणां महाव्याहृतीनां प्रजापनिक्षुभिर्मिन-  
वायुसूर्यी देवता । गायत्र्या विश्वमित्र  
क्षुभिर्मित्री द्वन्दः । सविता देवता महावीरायनायोः  
शान्तिकरणं विनियोगः ।

अस्मायः—भूः पृथिवी, सुवः आकाश, स्वः स्वर्गम्-  
एतान् वीन लोकाभिनि परिणाम्य वीमहीनि किया-  
पदं योज्यम् । तथा तत्त्ववितुर्गदिव्यम् भर्गः वीर्य  
तेजां वा धीमहि ध्यायेष चित्तस्यामेति यावन् ।  
किम्भूतं वर्णण्यं वर्णेभ्यः श्रेष्ठम् । स्त्रिमृतस्य सवितुः  
देवम्ना दानादिगुणगुक्तम् । पुनः किम्भूतस्य ?  
यः सविता नांडमार्कं धियो शुद्धीः प्रचोदयात्  
प्रसरयनि—सरलपुरार्थेषु प्रवर्तयत्तर्यार्थः ।

भाष्यका भावार्थ—तीन महायाहनियो—शूः सुवः, स्वः  
ते व्यापि । ये प्रजापनि वृगा हैं तथा अनि, वायु और  
सूर्य हैंवा हैं । द्वन्द नहीं है । इस गायत्रीके व्यापि हैं  
विश्वमित्र ( जे गायुप्रति नहीं है ), गायत्री द्वन्द है और

सविता देवता हैं। महावीररूप कर्ममें अर्थात् यज्ञमें आद्योपान्त शान्तिके लिये विनियोग है।

भूका अर्थात् पृथ्वीके चैतन्यपुरुषका हम सब मिलकर ध्यान करें। आकाशके पुरुषका हम ध्यान करें। खर्गलोकके चैतन्य पुरुषका ध्यान करें और उस सविताकी अर्थात् आदित्य या सूर्यके भर्गकी, पाप-मार्जनकारी तेजकी तथा वीर्यकी हम चिन्ता करें। वह किस प्रकारका भर्ग है? श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है। वे सविता कैसे हैं? जगत्के जन्मदाता हैं—उन्हसे जगत्की सृष्टि हुई है। ये सविता हमें सब कुछ दे रहे हैं। हमें एवं पृथ्वीके समस्त प्राणियोंको प्राण दे रहे हैं, अन्न दे रहे हैं, हमारा पालन-पोषण कर रहे हैं। यही है सविताका तेज। सविता भगवान् सूर्यके शरीराभिमानी देवता हैं। हम सबकी बुद्धिको तथा सब प्रकारके परम पुरुषार्थको, जिसमें धर्म, अर्थ एवं काम गौण हैं और मोक्ष मुद्द्य है, प्रदान करते हैं।

अतः भगवान् सूर्यके इस प्रस्तवणी शक्ति सावित्रीकी उपासना ही ब्रह्मविद्याकी साधना है। यही मनुष्यको जन्म और मृत्युसे छुड़ाकर मोक्षरूप फल प्रदान करती है।

## ( २ ) आदित्य ब्रह्मस्तररूप

‘ॐ असावादित्यो ब्रह्म ॥’ ये सूर्य ही ब्रह्मके साकारस्तररूप हैं।

( यह मन्त्र अर्थवेदीय सूर्योपनिषद् में है। सूर्योपनिषद् का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में है। )

## ( ३ ) हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण

‘षट्स्वरारूढेन वीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितं सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पश्चद्यामयवरद-हस्तं कालचक्षप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स चै ब्राह्मणः ।’ ( —सूर्योपनिषद् )

‘य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यशमश्रुहिरण्यकेश आप्णवात् सर्वं पञ्च सुधर्णः ।’ ( —छान्दोग्य उ० १ । ६ । ६ )

**भावार्थ—**सूर्यमण्डलमें हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण अवस्थित हैं। वे सप्ताश्वरथमें सवार, रक्तकमलस्थित कालचक्षप्रणेता चतुर्भुज हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और अन्य दो हाथोंमें अमय वर मुद्रा है। ये हिरण्यशमश्रु एवं हिरण्यकेश हैं। इनके नखसे लेकर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्ण वर्णके हैं। इस प्रकार इन आदित्य देवका दर्शन होता है। जो इनको जानते हैं, वे ही ब्रह्मवित् अर्थात् ब्राह्मण हैं।

## ( ४ ) सूर्य ही स्थावर-जङ्गम—सप्तपूर्ण सूर्योक्ती आत्मा है

वेदके अनेक मन्त्रोंमें सूर्यको चक्षु कहा गया है। नीचे केवल परिचय-हेतु कुछ मन्त्र दिये जाते हैं—

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याम्नेः ।

आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं

सूर्य आत्मा जगत्स्तस्युपश्च ॥

भाष्य

( असौ ) सूर्य उदगात् ( उदितोऽभवत् ) । कीदृशः ? मित्रस्य वरुणस्य अन्नेः ( देवानां त्रयाणां तदुपलक्षितानां त्रयाणां जगताभ्यु ) चक्षुः ( प्रकाशकः ) । तत्र सूर्यदेवताकः खर्लोककः, वरुणदेवताकः महर्लोकः, अग्निदेवताकः भूर्लोकश्च । पुनः कीदृशः ? देवानामनीकम् ( समष्टिस्वरूपः ) । कथमुदगात् ? ऋत्रिम् ( आश्र्वयं यथा भवति तथा ) । ( उद्याद-नन्तरं ) द्यावा पृथिवी ( दिवं पृथिवी च ) अन्तरिक्षम् ( आकाशम् ) आप्राः ( आप्रात् पूरितवाद् स्वेन रश्मिणा जालेनेति शोपः ) । पुनः किम्भूतः ? जगतः ( जङ्गमस्य ) तस्युपः ( स्थावरस्य ) च आत्मा ( स्थावरजङ्गमात्मकसंकल्पसंसारमयोऽयमेव सूर्य इत्यर्थः ) ।

**भाष्यार्थ—**मित्र, वरुण एवं अग्निके द्वारा अधिष्ठित, त्रिलोकके प्रकाशक, सभी देवताओंके समष्टिस्तररूप तथा स्थावर-जङ्गमके अन्तर्यामी प्राणस्तररूप भगवान् सूर्य आश्र्वय-

रूपसे उदित हुए हैं। सर्व, मर्त्य और आकाशको अपने रशिमजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर सत्यको आधुनिक जड़ विज्ञान तथा पाश्चात्य जातिवाले भी क्रमशः हृदयज्ञम् कर स्त्रीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस दृश्यमान पृथ्वी तथा अन्य लोक एवं समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्धिज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

‘आदित्याज्जायते चृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।  
( मनुस्मृति )

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका ‘चक्षुः’ कहा गया है।

#### ( ५ ) विष्णुगात्री

‘ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः, दिवीव चक्षुराततम्।’

**भावार्थ**—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदका, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अतः हे साधक ! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमशः साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

( ६ ) जगत्के नेत्रस्यरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्यास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुकमुच्चरत् ।  
पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम् । प्रश्नाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात् ॥

भाष्य

तत् चक्षुः जगतां नेत्रभूतम् आदित्यरूपं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि उच्चरत् उच्चरति उद्देति । कीदृशम् ? देवहितं देवानां हितं प्रियम् । पुनः कीदृशम् शुक्रं शुक्लम् अपापं सूष्टुं शोचिस्मद् च । तस्य प्रसादात् शतं शरदः वर्षाणि वर्यं पश्येम शतवर्षपर्यन्तं वयम्-व्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम । शतं शरदः जीवेम अपराधीनजीविनो भवेम । शतं शरदः शृणुयाम स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम । शतं शरदः प्रत्रवाम अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम । न कस्याप्यत्रै दैन्यं कुर्याम । शतवर्षोपर्यपि वहुकालम् इत्यादि ।’

**भाष्यार्थ**—हम जिनकी स्तुति कर रहे हैं, वे जगत्के नेत्रस्यरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे शुक्रवर्ण अर्थात् निष्पाप और दीप्तिशाली हैं। इनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख सकें। हम सौ वर्षोंतक परावीन न होकर जीवित रह सकें। हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन सकें। हम सौ वर्षोंतक वाक्-शक्तिहीन न होकर उत्तमरूपसे वोल सकें। किसीके भी समक्ष मैं दीन न बनूँ। सौ हजार वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेद-मन्त्रोंमें आदित्यदेवको परमब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एवं उनका स्तवन किया गया है। वे जगत्के साक्षी हैं।

( ७ ) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एवं पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत—क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले अपश्चीकृत सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिद्वारा परस्पर मिलित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए हैं। प्रत्येक महाभूतके पौँच-पौँच तत्त्व और हैं। कुल मिलाकर पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें ये सारे महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें कर्त्तव्य हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पौँच देवता हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य । सनातन-धर्मके उपासक-

कल्याण

पञ्चदेवोमें सूर्य



आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।

पञ्चदैवत मित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥



मात्र पाँच प्रकारके सम्प्रदायमें हैं; यथा—गणपत्य ( गणेश-उपासक ), शक्ति ( शक्ति-उपासक ), शैव ( शिव-उपासक ), वैष्णव ( विष्णु-उपासक ) और सौर ( सूर्य-उपासक ) । चाहे किसी भी सम्प्रदायके हों, चाहे किसी भी देवताकी पूजा करें, पहले पञ्चदेवताकी पूजा करनी पड़ती है । इष्टदेव चाहे कोई भी हो, सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी पड़ती है । उपास्य इष्टदेवके साथ अमेद-भावसे निष्ठापूर्वक सबकी पूजा करनी पड़ती है ।

भगवान् शंकराचार्यके उद्देशानुसार दाक्षिणात्य ब्राह्मणगण पञ्चदेवताकी पूजा एक ही साथ पञ्चलिङ्गमें करते हैं । इष्टदेवताका लिङ्ग बीचमे रखा जाता है और चारों तरफ दूसरे चार देवताओंके लिङ्ग रखते हैं । शिव—वाणलिङ्ग, विष्णुलिङ्ग—शाल्प्राम-शिला, गणेश-लिङ्ग—रक्तवर्ण चतुष्कोण पत्थर, शक्तिलिङ्ग—धातु-निर्मित यन्त्र और सूर्यलिङ्ग—स्फटिक-विम्ब ( गोल ) । वाराणसीमे ये पञ्चलिङ्ग न्योछावर ( मूल्य ) देनेपर उपलब्ध होते हैं ।

इन पञ्चदेवताओंकी जो कि पञ्चमहाभूतोंके अधिपति हैं, इनकी पूजा आदिका रहस्य बड़ा गहरा है । सनातनधर्मकी पूजा-पद्धति साम्प्रदायिक होते हुए भी असाम्प्रदायिक है । सर्वप्रथम पञ्चदेवताकी पूजा ही इसका प्रमाण है । स्थानाभावके कारण विस्तृत आयोचना यहाँ असम्भव है ।

#### ( ८ ) वैदिक तथा पौराणिक साधनामें सूर्यकी उपासनाका मुख्य स्थान है

त्रैकालिक वैदिक संध्यामें, आचमनमें, सूर्यके लिये जलाञ्जलिमें, गायत्रीके जपमें, सूर्यार्घ्यदानमें तथा सूर्यके प्रणाम आदिमें सूर्यकी उपासना ओतप्रोत है । ठीक इसी प्रकार प्रत्येक पौराणिक अथवा तान्त्रिक उपासनामें सूर्यकी पूजा एक

आवश्यक कर्तव्य है । अतः सनातनधर्मको माननेवाले सूर्यके उपासक सभी खी-पुरुष सौर हैं ।

( ९ ) रामायण और महाभारतमें सूर्यका उपाख्यान  
इतिहासों और पुराणोंमें सूर्यपर अनेक उल्लेख हैं । श्रीहनुमान्-जीने सूर्यसे व्याकरण-शास्त्र आदिकी शिक्षा प्राप्त की थी । उन्हें सूर्यदेवसे कई वर मिले थे ।

महाभारतमें मिलता है कि कौरव-पाण्डव-दोनों तापत्य थे । क्योंकि उनके पूर्वपुरुष राजा संवरणने सूर्यकन्या तपतीसे विवाह किया था । सूर्यके तेजसे कुन्तीके गर्भमें वैकर्तन महावीर कर्णने कवच-कुण्डलसहित जन्म ग्रहण किया था । वे प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते थे । वनवासकालमें सूर्यकी उपासना करनेसे शुभिष्ठिरको एक पात्र मिला था । महारानी द्वौपदी उसमें भोजन बनाती थीं । उनके भोजनके पूर्व उसमें अन्न आदि अक्षय्य होता था । हजारों अतिथि प्रत्येक दिन इस पात्रसे आहार प्राप्त करते थे । द्वौपदीके अज्ञातधासके समय सूर्यके निकट प्रार्थना करनेसे सूर्यने द्वौपदीको कीचक नामक राक्षसके अत्याचारोंसे बचाया था । परंतु वे खयं अदृश्य थे । श्रीकृष्ण एवं जाम्बवतीके पुत्र साम्ब सूर्यकी उपासना करके दुःसाध्य रोगसे मुक्त हुए थे ।

राजा अश्वपतिने सूर्यकी उपासना करके सावित्री देवीको अपनी कन्याके रूपमें प्राप्त किया था । इसी सावित्रीने यमलोकसे अपने पति सत्यवान्-को वापस लाकर सदाके लिये भारतवर्षमें सतीत्वकी मर्यादा स्थापित की है ।

ये सभी घटनाएँ सत्य हैं, काल्यनिक समझनेसे भूल होगी । सूर्यकी उपासना करनेसे आज भी इसका फल प्राप्त होता देखा जाता है ।

#### ( १० ) अब भी दर्शन होता है

इस लेखको मध्यप्रदेशके नर्मदा नदीके किनारे ब्रह्माण नामक स्थानमें सन् १९३४ में एक महापुरुषके

दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था । वे आजन्म ब्रह्मचारी थे । उन्होंने सात बार गायत्री-पुरथरण किया था । पञ्चम पुरथरणके अन्तमे आपको नर्मदाके वक्षमें एक निर्जन द्वीपमें 'साक्षसूत्रकमण्डल' बालिकाके वेशमें गायत्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन मिला । आप गङ्गद होकर गिङ्गिङ्गाने लगे । माता,—'करते जा'—ऐसा आदेश देकर अन्तर्हित हो गयी ।

उन्होंने लेखकको और भी बताया कि देवप्रयाग नामक स्थानमें एक वेदमन्त्रके सात हजार बार जप करनेसे उन्हें सप्ताश्वाहित रथपर सवार हुए सूर्यदेवका भी दर्शन हुआ था ।

### ( ११ ) सूर्यमें त्राटकयोग

लेखकको एक बार नादसिद्ध परमहंस योगीका परिचय हुआ था । 'पातञ्जलयोगदर्शन'में है कि सूर्यपर संस्म करनेसे भुवनज्ञान होता है । उस योगीने सूर्योदयसे सूर्यास्तक सूर्यपर एकटक त्राटक कर सिद्धि प्राप्त की थी । किसीको देखकर उसका प्रकृत स्तरप और सारा वृत्तान्त उनके ऑर्खोंके सामने आ जाता था ।

### ( १२ ) रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख

महाकवि कालिदास ( प्रथम ई० पू० श० ) सिद्ध तान्त्रिकाचार्य और महायोगी थे । उन्होंने रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख किया है ।

साहं तपः सूर्यनिविष्टप्तिः-  
रुद्ध्वं प्रसूतेश्चरितं यतिष्ये ।  
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि  
त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

( खु० १४ । ६६ )

महासती सीतादेवीने वनवासका आदेश प्राप्त कर्मणके पास सूर्यवंशके दीपक श्रीरामके नाम एक सन्देश

मेजा था । उसमें उन्होंने लिखा था कि 'भेरे गर्वमें स्थित सूर्यवंशधर संतानका जन्म हो जानेके बाद मैं सूर्यपर दृष्टि निवृद्ध कर अन्यदृश्यमें तपत्वा कर्मणी जिससे जगन्मातारं भी आपको ही प्रतिष्ठितमें 'पाँड़—कभी भी आपके साथ विच्छेद न हो ।'

मुस्लिम यात्री इब्रन् बहनाने अर्ना भगवान्कुलानीमें लिखा है कि उन्होंने एक हिंदू योगीको सूर्यपर त्राटक करते हुए देखा । उछल सार्वंकी ब्राट जब वे अपनी यात्रासे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने जिससे उसी योगीको सूर्यपर त्राटक लगाये हुए देखा ।

### ( १३ ) 'फ सूर्यप्रभवो वंशः'

सूर्यवंशके पर्वतक मनुको श्रीमन्मानन्दने स्त्रियं कर्मयोगका उपदेश दिया था । गीतामें श्रीकृष्णने इसका उल्लेख किया है । सूर्यवंशके अन्तिय राजागण आर्म-कालसे वर्णाश्रम-धर्मके सेनु रहे एवं वे ही जातीय स्तन्त्रताकी रक्षा करते रहे हैं ।

उद्यपुर ( चित्तौड़ )के महाराणा लवके वंशज हैं । सूर्य ही उनके ध्वजके प्रतीक हैं । कुशवाह अर्यात् कुशके वंशज राजागण भी और कई राज्यमें यवनोंके साथ युद्धकर आधुनिक कालतक शासन करते आये हैं । सूर्यवंशी क्षत्रिय इनिहासके गौत्र हैं ।

### ( १४ ) सूर्य-मन्दिर

भारतमें सूर्यकी उपासना बहुत कालपूर्वसे प्रचलित थी । खेदका विषय है कि अधिकतर सूर्य-मन्दिर मुस्लिम शासनकालमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये । जिनमेंसे उछल मन्दिरोंके विषयमें उल्लेख किया जा रहा है—

१—मुल्तान ( मूलस्थानपुर ) सूर्य-मन्दिरके लिये विद्युत था । सिन्धुदेशके पराधीन होनेके बहुत दिनों बादतक भी यह मन्दिर रहा । मुस्लिम शासक

इस मन्दिरसे कर वसूल करते रहे। अब वहाँ सभी कुछ लुट है।

२—कश्मीरमे पर्वतके ऊपर मार्तण्डमन्दिरका विशाल भग्नखण्ड ( खण्डहर ) आज भी है। इस मन्दिरको तोड़नेके लिये अत्यधिक गोले-बारूदकी आवश्यकता पड़ी थी। वे इसे साधारण औजारोसे नहीं तोड़ सके।

३—चित्तौड़गढ़मे सूर्यमन्दिर कालिकाजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है; इस समय वहाँ सूर्यदेवकी कोई सूर्ति नहीं है।

४—मोदेरा (गुजरात) में कुण्डके किनारे एक विशाल भव्य सूर्यमन्दिर था। अब उसका एक टुकड़ामात्र ही शेष बचा है। इस मन्दिरकी शिल्पकला अपूर्व एवं विस्मयकर है।

५—कोणार्क( उडीसा- ) का सूर्यमन्दिर तेरहवीं शताब्दीमे निर्मित हुआ था। मूल मन्दिर ( विमान ) कम-से-कम २२५ फुट ऊँचा था। १५७० ई०मे उडीसा-जयके बाद काला पहाड़ और दूसरे मुस्लिम शासकोंने इसे नष्ट कर दिया। अब भी नाटमन्दिर और जगमोहन, जो खण्डहरके रूपमें बचा है, वह पृथ्वीभरमें एक आश्र्वयजनक कृति है। मराठोंके शासनकालमें यहाँके अरुणस्तम्भको पुरीमें जगन्नाथमन्दिरके सामने स्थापित किया गया। सूर्यकी महिमा अक्षुण्ण है, उन्हें प्रणाम है—

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाव्युतिम् ।  
ध्वन्तारिं सर्वपापञ्चं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥

## भगवान् सूर्यका दिव्य स्वरूप और उनकी उपासना

( लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीरामजी शास्त्री, कर्मकाण्ड-विशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालकार )

**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युष्म'**  
श्रीसूर्यनारायण स्थावर-जड़मात्मक सम्पूर्ण जगत्की आत्मा हैं।

### सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति—

रङ्गमीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः । सरति आकाशे इति सूर्यः । सुवंति लोकं कर्मणा प्रेरयति इति वा स्तुते सर्वं जगत् इति सूर्यः ।

अर्थात्—रश्मियोका, प्राणोका और रसांका खीकार करनेसे, आकाशमे गमन करनेसे, उदयकालमे लोगोको कर्म करनेमें प्रेरणा करनेसे अथवा सर्वजगत्को उत्पन्न करनेवाला होनेसे भुवन-भास्करको सूर्य कहा जाता है। सूर्यनारायण परब्रह्म परमात्मा—ईश्वरके अवतार हैं। अव्याकृत परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनके हेतुरूप, प्राणस्वरूप, सबको सुख देनेवाले तथा सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्य ईश्वररूप हैं। अतः ये ईश्वरावतार

भगवान् सूर्य ही सबके उपास्यदेव हैं। जगत्के व्यवहारमें काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण, कार्य, आगम, द्रव्य और फल—ये सब भगवान् सूर्य हैं। समस्त जगत्के कल्याण और देवतों आदिकी त्रृतिके द्वारा सूर्यभगवान् हैं। अतएव श्रीसूर्यनारायण सर्वजगत्की आत्मा हैं।

सगुण-साकार पञ्चदेवोपासनामे विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणपति—ये पाँचो देवता सगुण परब्रह्मके प्रचलित रूप हैं—इनमें श्रीसूर्यनारायण अन्यतम हैं। सूर्यमण्डलमे सूर्यनारायणकी उपासना करनेके लिये वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र एवं मनु आदि सूतियोंमें तथा पुराण, आगम ( तन्त्रशास्त्र ) आदि ग्रन्थोंमें विस्तृत वर्णन किया गया है।

श्रीपरमात्मा सूर्यात्मरूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परमज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। भगवान् सूर्यनारायणकी उदयास्त-समय उपासना करनेसे

ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है और परम कल्याण होता है। शाखमें कहा है—

‘उद्यन्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कर्म कुर्वन्  
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्चुते ।’

### भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

‘भास्वद्गत्ताद्ब्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चास्केशो  
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।  
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्वौ  
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः ॥

‘उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि—उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें ।’

इस ध्यानमें सारे रूपोंके द्वारा ब्रह्मके ज्योतिर्मय प्रभावका वर्णन किया गया है। श्रीपरमात्मा सूर्यात्मा-रूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परम ज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। इसी भावको प्रकट करनेके लिये सूर्य-ध्यानमें इस प्रकार ज्योतिर्मय रूपका वर्णन किया गया है। सूर्यकिरणोंमें हरित, पीत, लाल, नील आदि समवर्णके समन्वयके कारण ही सूर्यकिरण श्वेतवर्ण हैं। इसलिये सप्तवर्णोंके रूपसे सप्ताश्वको सूर्यका वाहन कहा गया है। क्योंकि ज्योतिर्मय कारण-ब्रह्मसे जब कार्य-ब्रह्मका आविर्भाव होता है, उस समय सप्तरंग ही प्रथम परिणमित होता है। इसी कारण व्यक्तावस्थाका घोतक वाहन और अव्यक्तरूपी ज्योतिर्मय सगुण ब्रह्मका घोतक सूर्यका ध्यान है। हाथका कमल मुक्तिका प्रकाशक है, अर्थात् जीवको मुक्ति देना सूर्यके हाथमें

है। अरुणका उदय सूर्योदयसे पूर्व होता है, इसलिये सप्ताश्ववाही रथके सारथि सूर्यके समुख विराजमान अरुण हैं। इसी प्रकार सूर्यभगवान्का ध्यान भास्वान् भावोंके अनुसार वर्णित किया गया है।

परमात्मा एक, अद्वितीय, निराकार एवं सर्वव्यापक होनेपर भी पञ्चदेवतारूप सगुणरूपमें प्रकट होते हैं—

विष्णुश्चिता यस्तु सता शिवः सन्  
स्वतेजसार्कः स्वधिया गणेशः ।  
देवी स्वशक्त्वा कुशलं विधत्ते  
कस्मैचिदस्मै प्रणतिः सदास्ताम् ॥

‘जो परमात्मा चित्-भावसे विष्णुरूप होकर, सद-भावसे शिवरूप होकर, तेजरूपसे सूर्यरूप होकर, बुद्धिरूपसे गणेशरूप होकर और शक्तिरूपसे देवीरूप होकर जगत्‌का कल्याण करते हैं, ऐसे परब्रह्मको नमस्कार है।’

तात्पर्य यह है कि सन्धिदानन्दमय, मन-वाग्-बुद्धिसे अतीत, निराकार, निष्क्रिय, तत्त्वातीत, निर्गुण-पद कुछ और ही है। वह निर्गुण परब्रह्म-भाव जब सगुण-साकाररूपसे उपासकके समुख ध्याता-ध्यान-ध्येयरूपी त्रिपुटीके सम्बन्धसे आविर्भूत होता है, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलम्बन या तो चित्-भावमय होगा अन्यथा सद्भावमय होगा अथवा तेजोमय होगा, नहीं तो बुद्धिमय या शक्तिमय होगा।

चिद्-भावका अवलम्बन करके जो भावना चलेगी वह विष्णुरूपमें, जो सद्भावका अवलम्बन करके चलेगी वह शिवरूपमें, जो दिव्य तेजोमय भावका अवलम्बन करके चलेगी वह सूर्यरूपमें, जो विशुद्ध बुद्धिभावका अवलम्बन करके ध्येयसर होगी वह गणपतिरूपमें और जो अलौकिक अनन्त शक्तिका अवलम्बन करके अप्रसर होगी वह देवीके रूपमें परिणित होगी। पाँचों रूप ही सगुण ब्रह्मके परिचायक होते हुए, पाँचों भावोंके अवलम्बनसे पञ्चधा बन गये हैं।

### वेदमें सूर्योपासना—

यजुर्वेद अध्याय ३३, मन्त्र ४३में भगवान् सूर्य-नारायण हिरण्यमय रथमें आरूढ होकर समस्त भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नभृतं मर्त्यं च ।  
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

सबके प्रेरक सवितादेव सुवर्णमय रथमें आरूढ होकर कृष्णर्णकी रात्रि-लक्षणवाले अन्तरिक्षपथमें पुनरावर्तनक्रमसे भ्रमण करते, देवादिको और मनुष्यादिको अपने-अपने व्यापारमें स्थापन करते एवं सम्पूर्ण भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—अर्थात् कौन साधु और कौन असाधु कर्म करते हैं, इसका निरीक्षण करते हुए निरन्तर गमन करते रहते हैं। इसलिये भगवान् सूर्यनारायण मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं।

अभि त्यं देवऽ सवितारमोणयोः कविकतुमर्चामि  
सत्यसवऽ रत्नधामभि प्रियं मर्ति कविम् ।  
ऊर्ध्वा यस्याऽमतिर्भां अदिद्युतत्सवीमनि  
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥  
( शुक्लयजु० ४ । २५ )

‘उस द्यावा-पृथ्वीके मध्यमें वर्तमान दिव्यगुणयुक्त, सर्वतो दीतिमान्, बुद्धिप्रदाता, क्रान्तकर्मा, अप्रतिहतक्रियायुक्त, सिद्धिकी प्रेरणा करनेवाले, रमणीय रत्नोंके धारक एवं पोषक, दाता, रत्नरूप, ब्रह्मविद्याके धाम, समस्त चराचरके प्रियतम, मननयोग्य, अनुपम कल्पनाशक्ति-सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, वेदविद्याके उपदेश, भगवान् सविता—सूर्य-देवता अर्थात् सबके उत्पादक परमात्माका सब प्रकारसे मैं पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमेय दीसि गगनमण्डलमें सबके ऊपर विराजती है तथा आकाशमण्डलमें अनन्त नक्षत्रमण्डल जिनकी दीसिसे दीतिमान् हैं और जिनकी आत्मप्रकाशरूप मति सर्वत्र विराजमान है, जो सबको कर्मकी अनुज्ञा करते हैं, जो ज्योतिरूप हाथ ( किरण ) तथा प्रकाशमान

व्यवहारवाले हैं एवं सिद्ध-सङ्कल्प हैं और जिनकी कृपासे सर्व निर्मित हुआ है, उन सूर्यदेवकी मैं पूजा करता हूँ।’

### भगवान् सूर्य सबके आत्मा—

सूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमके आत्मा—अन्तर्यामी हैं—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’। इसलिये सूर्यकी आराधना करनेकी वेदमें आज्ञा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य  
वृश्णस्याग्नेः । आपा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष-सूर्य  
आत्मा जगतस्तस्युपश्च । ( शुक्लयजु० ७ । ४२ )

‘यह कैसा आश्चर्य है कि किरणोंके पुञ्च तथा मित्र, वरुण और अग्निके नेत्र, समस्त जगत्के प्रकाशक, जङ्गम और स्थावर सम्पूर्ण जगत्की आत्मा—अन्तर्यामी सूर्यभगवान् उदय होते हुए, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त अन्तरिक्ष अर्थात् लोकत्रयको अपने तेजसे पूर्ण करते हैं।’

### भगवान् सूर्यकी उपासनासे धनकी प्राप्ति—

चित्रमित्युपतिष्ठेत चित्रसंध्यं भास्करं यथा ।  
समित्याग्निर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाण्नुयात् ॥

हाथमें समिधा लेकर ‘चित्रं देवानाम्’—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी त्रिकाल प्रार्थना करनेवाला पुरुष इच्छित धनको प्राप्त करता है।

### सूर्यकी महत्ता—

बणमहाऽ असि सूर्य वडादित्य महाऽ असि ।  
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्वा देव महाऽ असि ॥  
( शुक्लयजु० ३३ । ३९ )-

‘हे जगत्को अपने-अपने कार्यमें प्रेरित करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन् ! सत्य ही आप सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। सबको ग्रहण करनेवाले हे आदित्य ! सत्य ही आप बड़े महान् हैं। बड़े महान् होनेसे आपकी महिमा लोकोंसे स्तुत की जाती है। हे दीप्यमान सूर्यदेव ! सत्य ही आप सबसे श्रेष्ठ हैं।’

सूर्यके उदयसे सब जगत् अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। सूर्यके उदयसे जाडादिका नाश होवार अङ्गुरादिकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्मका दृढ़यमें प्रकाशरूप उदय होनेसे अज्ञानका नाश—गुक्तिका प्राप्ति होती है। जैसा कि शुक्रगुरुवेद ३१। ४०में स्पष्ट है—

घटसूर्यश्च वसा महां असि सत्रा देव महां असि।  
महो देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाम्यम् ॥

‘हे सूर्य ! सत्य ही धन और यशसे तथा अन्नके प्रकट करनेसे आप श्रेष्ठ हैं। हे दीप्यमान ! प्राणियोंके हितकारी ! देवताओंके मध्यमें—आप सब कार्यमें प्रथम पूज्य हैं। इसीलिये देवताओंकी पूजामें आपको अर्घ्य प्रदान करनेके बाद ही दूसरे देवताका अविकार है। आप व्यापक, उपमारहित, किसीसे न रुकनेवाले तेजयुक्त, यज्ञद्वारा महत्वसे अधिक श्रेष्ठ हैं अर्थात् माहात्म्यके प्रभावसे एक कालमें सर्वदेशव्यापी अप्रतिद्वन्द्वी ज्योतिका विस्तार करते हुए प्राणिमात्रके हितकारीस्तरूपसे प्रथम पूजनीय हैं।’

### गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्यनारायण—

प्रातःकालसे ही भगवान् सूर्यकी उपासनाका आरम्भ होता है। प्रातःकालमें प्रातःसंध्योपासनासे आरम्भ होकर सायंकालमें सार्थं संध्योपासना-पर्यन्त त्रिकाल संध्योपासनामें भगवान् सूर्यनारायणकी उपासना की जाती है।

श्रुतिमें ‘अहरहः संध्यासुपासीत’ कहा गया है। संध्योपासनाके मन्त्रोंमें सूर्यकी उपासना है। सूर्यो-पस्थानमें भगवान् सूर्यकी आराधना है। यथा—

ॐ उद्द्युयं तप्तस्तप्तरि खः पश्यन्त उत्तरम् ।  
देवं देवजा सूर्यमग्नम् ज्योतिरुत्तरम् ॥

( शुक्रगुरु २०। २१ )

‘हम तमःप्रधान इस लोकसे पर—श्रेष्ठ स्वर्गको देखते हुए तथा भगवान् सूर्यको देवलोकमें देखते हुए श्रेष्ठ ब्रह्मरूपको प्राप्त हुए हैं।’

जहु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।  
दशो विश्वाय सूर्यम् ॥ ( शुक्रगुरु ७। ४१ )

‘किरणे उन प्रसिद्ध, सब पदार्थोंके ज्ञाता वेदज्ञान-रूपी धनवाले, प्रकाशात्मक सूर्यदेवको इस समन्वयित्वके प्रकाश करनेके निमित्त, विवरके साथ प्रतिनिधित्त ऊर्ध्ववहन करती हैं।’

तच्छुद्देवहितं पुरस्ताच्छुकसुच्चरत् । पश्येम  
शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः  
शतं प्रव्रवाम शरदः शतमदीन्ताः द्याम शरदः  
शतस्मृत्यव्य शरदः शतात् ।

( शुक्रगुरु ३६। २४ )

वे ( सूर्य ) देवताओंद्वारा स्थापित अथवा देवताओंके हितकारी जगत्के नेत्रभूत, शुक्ल—मलसे रहित, शुद्ध प्रकाशरूप पूर्वदिशामें उदित होते हैं। उन परमात्मा ( सूर्यनारायण ) के प्रसादसे हम सौ शरदपूर्यन्त देखें अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त हमारे नेत्र-इन्द्रियकी गति निर्वल न हो। सौ शरद् ऋतुओंतक अपराधीन होकर जियें। सौ शरदपूर्यन्त स्पष्ट श्रोत्र-इन्द्रियवाले हों। सौं शरदपूर्यन्त अस्वलित वाणीयुक्त रहे। सौं शरदपूर्यन्त दीनतारहित हों। सौं शरदऋतुओंसे अधिक कालपर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें। आशय यह कि शत-शत वर्षात्मिक, अनेक निष्पाप जीवन अर्थात् अतिपावन जीवन प्राप्त करें।

संध्योपासनामें सूर्योपस्थानके अनन्तर गायत्री-मन्त्रका जप करनेका विधान है। गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्य है, इसलिये त्राह्णण, क्षत्रिय एवं वैश्य गायत्री-मन्त्रद्वारा सूर्य-भगवान्की उपासना करते हैं—

गायत्री-मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितु-  
र्वरेण्यं भग्नो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥  
( शुक्रगुरु ३६। ३ )

‘भूः’ यह प्रथम व्याहृति, ‘भुवः’ दूसरी व्याहृति और ‘स्वः’ तीसरी व्याहृति है। ये ही तीनों व्याहृतियाँ पृथ्वी आदि

तीनों लोकोंके नाम हैं। इनका उच्चारण कर प्रजापतिने तीन लोकोकी रचना की है। अतः इनका उच्चारण करके त्रिलोकीका स्मरण कर गायत्री-मन्त्रका जप करे। पहले उँझारका उच्चारण करे, तत्पश्चात् तीनों व्याहृतियोका उच्चारणकर गायत्री-मन्त्रका जप करे।

**गायत्री-मन्त्रका अर्थ—( तत् ) उस ( देवस्य ) प्रकाशात्मक ( सवितुः ) प्रेरक—अन्तर्यामी विज्ञानानन्दस्भाव हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न आदित्यके अन्तः-स्थित पुरुष—‘योऽसावादित्ये पुरुषः ( यजु० ४० ) वा ब्रह्मके ( वरेण्यम् ) सबसे प्रार्थना किये हुए ( भर्गः ) सम्पूर्ण पापके तथा संसारके आवागमन दूर करनेमें समर्थ सत्य, ज्ञान तथा आनन्दादिमय तेजका हम ( धीमहि ) ध्यान करते हैं, ( यः ) जो सवितादेव ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धियोंको सत्कर्ममें ( प्रचोदयात् ) प्रेरित करे।**

अथवा ‘सवितादेवके उस वरणीय तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है’—वह सविता ही है।

भगवान् शंकराचार्यने संध्याभाष्यमे गायत्री-मन्त्रके अर्थमें भगवान् सूर्यके माहात्म्यका वर्णन किया है। यथा—

## सूर्य-दर्शनका तान्त्रिक अनुभूत प्रयोग

( लेखक—प० श्रीकैलासचन्द्रजी शर्मा )

सभी तन्त्र-रसिकजन तन्त्रप्रन्थोंमें शिरोमणि दत्तात्रेय-तन्त्रके महत्व तथा उपयोगितासे परिचित हैं। योगिराजने इस प्रन्थरत्नमे तन्त्रविद्याके अत्युत्तम एवं लाभदायक प्रयोग बताये हैं। तन्त्र-प्रयोग यद्यपि केवलमात्र अधिकारी तान्त्रिकोंको ही प्रदातव्य होते हैं, अतः उनसे सम्बद्ध ग्रन्थोंको सामान्यतः गुप्त रखनेका ही प्रयत्न किया जाता है, तथापि भगवान् सूर्यके दर्शनका यह तान्त्रिक प्रयोग पाठकोंके लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है। उक्त प्रयोग दत्तात्रेय-तन्त्रके एकादश

‘सूर्योऽआत्मा जगतस्तस्युपद्वेति श्रवणात्, ईश्वरस्यैवायमवताराकारः सूर्य इति। अर्थात्—अव्याकृतस्वरूपस्य परमात्मनः सर्वेषां जीवनप्राणस्वरूपिणः सर्वसुखदायकस्य च सचराचरजगदुत्पादकस्य प्रकाशमानस्य सूर्यस्येवरस्य तत्परिस्थितिं सर्वशेषं सर्वाभिलषणीयं पापभर्जकं तेजो वयं ध्यायेमहि, वा यः सूर्योऽसाकं बुद्धिरसन्मार्गान्विवृत्य सन्मार्गं प्रेरयति।’

‘स्थावर-जड़म सम्पूर्ण जगत्को आत्मा सूर्य हो है, इस प्रकार भगवान् सूर्य ईश्वरावतार ही है, अर्थात् अव्याकृतस्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनका हेतुरूप और प्राणस्वरूप एवं सबको सुख देनेवाले, सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्यरूप ईश्वरका सबसे श्रेष्ठ और पापका नाश करनेवाले तेजका हम ध्यान करते हैं। वे भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको असन्मार्गसे निवृत करके सन्मार्गमे प्रेरणा करते हैं।’

निष्कर्ष यह कि परमात्मस्वरूप सबका जीवनरूप और सर्वजगत्का उत्पादक ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्य देव हैं। उनकी शासविधिसे नित्य उपासना करनी चाहिये।

पठलमे निम्न प्रकारसे बताया है—

मातुलुङ्गस्य वीजेन तैलं श्राद्यं प्रयत्नतः।  
लेपयेत्ताप्रपात्रे च तन्मध्याहे दिलोक्येत्॥  
रथेन सह साकारो दृश्यते भास्करो धुचम्।  
विना मन्त्रेण सिद्धिः स्यात् सिद्धयोग उदाहृतः॥

‘विजौरा नींवूके तैलको यन्से निकाल्कर ताप्रपत्र-परलेप करके मध्याह-समय उस ताप्रपत्रको सूर्यके सम्मुख रख-कर देखे। इससे रथसहित सूर्यका पूर्ण आकार निश्चय ही दीख पड़ेगा। यह विना मन्त्रका सिद्ध प्रयोग कहा गया है।’

## काशीकी आदित्योपासना

( लेखक—प्रो० श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम० ए०, एल० टी०, व्याकरणाचार्य )

भारतीय उपासना-ग्रन्थनिमें सूर्यका स्थान अतीव प्रभावकारी है। वैदिक वाङ्ग्यसे लेकर पुराणोंतक आदित्यकी श्रेष्ठता एवं उनके स्वरूपका विवेचन विशद-रूपमें उपलब्ध होता है। सूर्यका एकमात्र प्रत्यक्षरूप उनके वैशिष्ट्यका प्रतिपादक है। उनके ही प्रकाशसे सारा भौतिक जगत् प्रकाशमान होता है। वे ही प्राणिमात्रके उद्भूत होनेमें कारण हैं। उनके उदित होते ही सभी प्राणी क्रियाशील हो जाते हैं। वे ही स्थावर और जड़म प्राणियोंको जीवन्त बनाते हैं—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च’ (—ऋ० १ । ११५ । १)। प्रत्यक्षरूपमें वह जगत् सूर्यके आश्रित है। इसका कारण यह है कि सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे छहों रसोंसे विशिष्ट जलको ग्रहणकर उसे सहस्र-गुणित करके चार महीनोंमें वर्षाके द्वारा संसारको ही अर्पित कर स्वर्यको ऋणमुक्त कर लेते हैं। वर्षाका यह जल जन-जीवनके लिये अमृततुल्य है। इसी दृष्टिसे वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें सूर्यको भी ‘जीवन’ नाम दिया गया है। ऋग्वेदमें भी सूर्यको<sup>१</sup> जगत्का आधार माना गया है। उनकी तेजस्तिता ही जगत्को आलोकित कर अहर्निश एकरूपता प्राप्त करती हुई जीव और जगत्के नेत्रोंका रूप धारण कर लेती है।<sup>२</sup>

सूर्यके अनेक पर्यायवाची नाम हैं। उनमेंसे एक नाम ‘आदित्य’ भी है। सामान्यतया ‘आदित्य’ शब्दसे दो प्रकारके अर्थोंका वोध होता है—एक अदितिकी संतान और दूसरा आदित्यकी संतति। इस प्रकार ‘आदित्य’ शब्द अपत्यवाचक है। अदिति ( कश्यप-पत्नी ) देव-माता हैं। सब देवता उन्हींकी संतति माने जाते हैं। उन्हींमेंसे एक आदित्य भी हुए<sup>३</sup>। लोक और वेदमें ‘सूर्य’ नामसे उन्हींका प्रतिपादन होता है। वेदमें सात आदित्योंका उल्लेख मिलता है। वे क्रमशः—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष, अंश तथा मार्तण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मणमें एक स्थलपर मार्तण्डको सम्मिलित कर उनकी संख्या आठ बतलायी गयी है। साथ ही दूसरी जगह वहीं द्वादशा आदित्योंका भी उल्लेख मिलता है; किंतु उनके नामोंका उल्लेख नहीं किया गया है<sup>४</sup>। आगे चलकर विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणोंमें द्वादशादित्योंको विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशु तथा भग नामोंसे अभिहित किया गया है। इन नामोंसे—मत्स्यपुराणके यम और अंशुमान्—ये दो विशिष्ट शब्दोंमें भिन्नता दिखायी देती है। सूर्यके पर्यायवाची ‘आदित्य’ शब्दका अर्थ पुराणोंमें विष्णुकी शक्तिसे संबंधित हो आदित्यगणके रूपमें परिवर्धित हो गया है। तदनुसार ये आदित्यगण सूर्यके मण्डलको तेजोयुक्त बनाते हैं<sup>५</sup>। इस

१. सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृत तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा । ( ऋ० १ । १६४ । १४ )

२. उद्गुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दशो विश्वाय सूर्यम् ॥ ( ऋ० १ । ५० । १ )

३. सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः । देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्वं ( ऋ० ९ । ११४ । ३ )

४. अष्टौ ह वै पुना अदितेः । यास्त्वेतद्वेवा आदित्या इत्याचक्षते सप्त हैव तेऽविकृतं हाष्टमं जनयांचकार मार्ताण्डं सुं देष्वो हैवास यावानेवोर्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुषसम्मित इत्यु हैकऽआहुः ॥ ( श० ब्रा० ३ । १ । ३ । ३ )

५. स मनसैव वाचं मिथुनं समभवत् । स द्वादश द्रष्ट्वान् गर्भ्यभवत् ते द्वादशादित्या असुज्यन्त तान् दिव्युपादधात् ॥ ( श० ब्रा० ६ । १ । २ । ८ )

६. सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥ ( मत्स्यपुराण १२६ । २५ )

प्रकार आदित्यगण देवपदको प्राप्तकर सूर्यके सहचर तथा सहयोगी ही नहीं रहे, अपितु आगे चलकर उनका तादात्य भी सूर्यसे स्थापित हो गया ।

सूर्यकी उपासनाके अनेक प्रकार हैं । प्रथम परम्पराप्राप्त अङ्गके रूपमें और द्वितीय साक्षात् प्रधानके रूपमें वे पूजित होते हैं । सार्त देव-उपासनामें पञ्चदेव ( पाँच देवता ) पूजित होकर शिव, विष्णु, देवी, गणेश तथा सूर्यको मान्यता प्रदान करते हैं । इनमेंसे प्रत्येक अपनेको मध्यमें ख अवशिष्ट चारोंको दिग्नतरालोमें स्थापित करवा कर अर्चनाके खरोंको उदात्त करते हैं । साधनाके क्षेत्रमें शिव, शक्ति एवं विष्णुका अधिकतर प्राधान्य है । उसमें भी विष्णु पालनकर्ताके रूपमें अधिक व्यापक हैं । आदित्य भी इस दृष्टिसे विष्णुकी कोटिमें समाविष्ट होते हैं; क्योंकि उनका क्षेत्र अखिल विश्व है । वे प्रतिदिन विश्वका भ्रमण कर अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त रहते हैं<sup>१</sup> । इस प्रकार सूर्यके दैवी तत्त्वका परिचिन्तन भारतीय पूजा-पद्धतिकी विशेष विवा रही है । सूर्यके दैवी तत्त्वके साथ ही उसके उपासना-तत्त्वका सुन्त्रपात हुआ है ।

आदित्योपासनाका वैदिक खरूप सामाविक एवं सरल था । इसका आभास अब भी प्राप्तः उठते ही उदयोन्मुख सूर्यको नमस्कार करना एवं स्नानसे निवृत्त हो अर्ध-प्रदान आदि क्रिया-कलापमें प्रवृत्त होना उसकी सामाविकताका स्मरण दिलाते हैं । भक्तिका यह प्रकार श्रीसम्पन्न एवं विष्णु—दोनोंके लिये समान है । आगे चलकर सौर-पूजामें प्रतिमा-प्रतिष्ठा तथा देवालयनिर्माणका सन्निवेश किन परिस्थितियोंमें हुआ—यह विचारणीय विषय रहा है । ऊपरकी पङ्क्खियोंमें यह संकेत किया जा चुका है कि वैष्णव, शैव तथा शाक—इन सबकी उपासनामें अन्य देवता

इनके अङ्ग थे । ऐसी परिस्थितिमें सूर्योपासकोमें सूर्यकी पूजाका माध्यम सूर्यकी दृश्यमान आकृतिसे साम्य रखनेवाला चिह्न चक्र ( मण्डल ) स्तीकार किया गया तो इसमें कोई आश्र्यकी वात नहीं है । इस चक्रके खरूपकी प्रेरणा पुराणोंमें निरूपित सत्राजितके आव्यान-से मिलती है । तदनुसार सत्राजितकी उपासनासे संतुष्ट होकर सूर्य अग्निज्वालासे परिवेष्टित वृत्तकी आकृतिमें प्रकट हुए थे । सत्राजितने सूर्यसे वास्तविक खरूपको प्रकट करनेका आग्रह किया । तत्पश्चात् सूर्यने स्यमन्तक मणि हटाकर अपना दर्शनीय कलेक्टर दिखाया । वह रूप लोहित-ताम्रवर्णात्मक था तथा नेत्र भी लाल थे । साम्बपुराणके अनुसार सूर्यके प्रचण्ड रूपको न सह सकनेके कारण उनकी पत्नी संज्ञाके तथा ब्रह्माके निवेदन करनेपर विशुकर्मनि सूर्यकी तेजोमय आकृतिमें काट-छाँट कर दिया । परं चरणोंका तेज वैसे ही रहने दिया । अतएव पुराणोमें यह निर्देश मिलता है कि सूर्यकी प्रतिमा बनाते समय उनके चरणोंका अनावृत प्रदर्शन नहीं करना चाहिये । इस प्रकारकी कल्पनाका सामज्जस्य शतपथ ब्राह्मणमें वर्णित सूर्यके ‘पराक्रम’ को स्पष्ट करते हुए चरणोंके अभावमें भी गतिशील रहनेकी विशेषताद्वारा प्रकट करना है<sup>२</sup> । इस परिप्रेक्ष्यमें सूर्यके विग्रह अधिकतर मण्डलात्मक अथवा अष्टदल-कमलके मध्यस्थित चक्रके रूपमें ही दृष्टिगोचर होते हैं । आकृति-विशेषसहित विग्रह विरले ही हैं । कहीं जो हैं, वे भी अनावृत-चरणोंके प्रदर्शनसे रहित ही हैं । रथाखड़ सूर्यकी कल्पनामें भी उनका खरूप मण्डलाकृति-प्रधान ही अङ्गित मिलता है । पूजा-पद्धतिमें सूर्यका ध्यान भी इसी रूपमें वर्णित है ।

१. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

( श० १ । ३५ । २ )

२. यदिह वा अव्यपाद्वति अलमेव प्रतिक्रमणाय भवत्यु-पापवक्ता हृदयाविघ्नश्रिदिति तदेनं सर्वसाद् हृदयादेनसः पाप्मनः प्रमुच्छति ॥ ( श० ब्रा० ४ । ४ । ५ । ५ )

काशीमें प्रधानतया शिवकी उपासना की जाती है। यह अविमुक्त क्षेत्र है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक 'विश्वेश्वर' नामक शिवका यह पूजा-स्थल है। कहा जाता है कि भगवान् शंकरके त्रिशूलपर वसी यह नगरी कभी ध्वस्त नहीं होती। शैव-धर्मके अतिरिक्त यहाँ शक्ति तथा विष्णुकी उपासना भी उसी तरह होती है। काशीकी उपासनाके विषयमें 'काशीखण्ड'से विशेषरूपमें संकेत प्राप्त होते हैं। तदनुसार काशीमें शिवपीठ, देवपीठ, विष्णुपीठ, विनायकपीठ, भैरवपीठ, पडाननपीठ और आदित्यपीठ आदि अनेक देवस्थान हैं, जहाँ भक्तगण प्रतिदिन पूजा-अचारमें संलग्न रहते हैं। काशीके आदित्य-पीठ भी अपनी ऐतिहासिकता लिये आज भी लोकमानसमें प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे कुछ तो अब अपना अस्तित्व खो बैठे हैं—केवल उनके स्थानकी पूजा होती है। कुछ अपने स्थानको परिवर्तित कर केवल महत्त्व बनाये हुए हैं। काशीखण्डमें वारह आदित्यपीठोंका उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार जगत्‌के नेत्र सूर्य ख्यं वारह रूपोंमें विभक्त होकर काशीपुरीमें व्यवस्थित हुए\*। इनका उद्देश्य अपने तेजसे नगरकी रक्षा करना है। जिस प्रकार नगरके कीलन करनेमें गणेश और भैरव प्रत्येक दिशामें स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार आदित्यकी द्वादश सूर्तियाँ काशी-क्षेत्रमें दुष्टोंके दलन बरनेमें अग्रसर रही हैं। इन द्वादशपीठोंके अतिरिक्त सुमन्तादित्य तथा कण्ठादित्यके अन्य विग्रह भी उपलब्ध होते हैं। आदित्योपासनाका प्रमुख उद्देश्य खास्थ्यकी रक्षा करना है। उसमें भी विशेषतया रक्तदोष-जनित रोगोंको शमन करना है। अतः रविवारके

\* इति काशीप्रभावशो जगच्छुतमोनुदः ।  
लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्वादित्यस्तथैव च ॥  
स्वरात्कश्चारुणादित्यो वृद्धकेशवसंज्ञकौ ॥  
द्वादशश्च यमादित्यः काशिपुर्यो घटोद्भव ॥  
† सर्वेषा कशितीर्थाणां लोलार्कः प्रथमं शिरः । ततोऽज्ञान्यन्तीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि ॥

व्रतमें नमक, उथा जल एवं दृध वर्जित हैं। शाश्वतमें सूर्योदयसे पूर्व शीतल जलसे स्नान करके पूजन करनेका विधान है। पौष मासके रविवार सूर्यनी-उपासनाके लिये विशेषरूपमें ग्राम हैं। वैसे प्रत्येक रविवारको सूर्यकी पूजा होती ही है। काशीके आदित्योपासनाके द्वादश पीठोंमें प्रमुख लोलार्कका वर्णन 'कृत्यकल्पतरु'गें प्राप्त होता है। उसमें अन्य पीठोंका उल्लेख नहीं है। ऐसा विद्वित होना है कि लोलार्ककी मान्यता काशीके आदित्यपीठोंमें सर्वाविक रही है। तदनुसार आदित्यपीठोंमें लोलार्कका स्थान सर्वप्रमुख रहा है; इस बातकी पुष्टि वाराणसीमें तीन देवता हैं—'अविमुक्तेश्वर, केशव तथा लोलार्क।' लोलार्कका स्थान वर्तमान भद्रैनी मुहल्लेमें स्थित है। यहीं तुलसीघाट भी है। लोलार्क प्रभृति आदित्यपीठोंका वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

( १ ) लोलार्क—यह आदित्यपीठ वाराणसीके आदित्यपीठोंमें सूर्वन्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इससे सम्बद्ध एक कुण्ड भी है, जिसे 'लोलार्क-कुण्ड' कहा जाता है। इस कारण लोलार्कको तीर्थकी महत्ता भी प्राप्त है। असि-संगमके समीप होनेके कारण लोलार्क-कुण्डका जल गङ्गामें मिल जानेके बाद उत्तरवाहिनी गङ्गाके तटीय अन्य तीर्थोंमें पहुँचता है।† प्राचीनकालमें लोलार्क-कुण्डका सङ्गम गङ्गासे होता था। वर्तमान समयमें यह कुण्ड ऊचे कगारपर है और इसका जल केवल वर्षा-ऋतुमें एक सुरंगके द्वारा गङ्गामें पहुँचता है। देवपूजनका माहात्म्य उसके तटवर्ती समीपस्थ जलाशयमें स्नान करनेके बाद अधिक पुण्यजनक माना गया है।

कृत्या द्वादशधात्मानं काशिपुर्यो व्यवस्थितः ॥  
चतुर्थो द्रुपदादित्यो मयूखादित्य एव च ॥  
दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च ॥  
ततोऽधिकेयो दुष्टेभ्यः क्षेत्रं रक्षन्त्यमी सदा ॥  
ततोऽज्ञान्यन्तीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि ॥

ऐसे जलाशय, कुण्ड और हृद आदि भौम-तीर्थोंकी कोटिमें आते हैं। इस कारण तत्सम्बद्ध जलाशय और उसके समीपस्थ देवस्थान एक-दूसरेके पूरक हो जाते हैं। लोलार्क्कुण्डकी प्रस्त्रातिसे प्रभावित हो महाराज गेविन्द-चन्द्रने यहाँ स्नानकर ग्राम-दान किया था।\*

‘लोलार्क’ नामकरणके सम्बन्धमें वामनपुराणमें वर्णित सुकेशिवचरितका उपाख्यान अविस्मरणीय है। तदनुसार ‘सब दानव सुकेशीके उपदेशसे आचारसम्पन्न, धनधान्य एवं संततियुक्त हो सुख प्राप्त करने लगे। उनके वर्चस्वसे सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्र भी श्रीहृष्ट हो गये। यहाँतक कि लोक निशाचरोंसे प्रभावित हो गया। वह निशाचर-नगरी दिनमें सूर्यके समान तथा रात्रिमें चन्द्रमाके सदृश प्रतीत होने लगी। इन राक्षसोंके इस कुकृत्यसे क्रोधाविष्ट हो भगवान् सूर्यने उस नगरीको देखा। सूर्यकी प्रखर क्षिरणोंके प्रभावसे वह नगरी इस प्रकार ध्वस्त हुई, जैसे आकाशसे गिरता हुआ कोई ग्रह हो। नगरको गिरता हुआ देखकर सुकेशी राक्षसने शिवका स्मरण किया। सब राक्षसोंके हा-हा-क्रन्दन (आर्त्तनाद) तथा आकाश-विहारी चारणोंके—‘हरमक्तका नाश होने जा रहा है’—इस वाक्यको

सुनकर भगवान् शंकर विचारमग्न हो गये। इस राक्षस-पुरीको सूर्यने नीचे गिरा दिया है—यह जानकर भगवान् शंकरने कुद्ध हो सूर्यको आकाशसे नीचे गिरा दिया। सूर्यके वाराणसीमे नीचे गिरते ही स्वयं ब्रह्मा और इन्द्र अन्य देवताओंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकरको प्रसन्न करके पुनः वाराणसीमे सूर्य-को ले आये। इस प्रकार शिवने प्रसन्न होकर अन्तरिक्षसे विचलित हुए सूर्यको अपने हाथसे उठाकर उनका नाम ‘लोलार्क’ रख उन्हें रथपर बैठाया।’ काशीखण्डमें यह उपाख्यान दूसरी तरह वर्णित हुआ है। उसके अनुसार राजा दिवोदासको धर्मच्युत कर वाराणसी नगर उनके हाथसे छीन लेनेके लिये भगवान् शंकरने योगिनियोंको भेजा था। वे इस कार्यमें असफल रहीं। अन्तमें शिवने सूर्यको भेजा। उन्हे भी कठिनाइयाँ हुईं। अनेक रूप धारण करने पड़े। प्रथम रूप उन्होंने लोलार्कका धारण किया। काशीकी विशालता या मतान्तर-से शिवके कोपसे उनका मन चञ्चल हो उठा; अतः वे लोलार्क कहलाये। इसीके साथ वह स्थान भी लोलार्क कहलाया एवं कुण्ड भी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

\* द्रष्टव्य—० श्रीकुवेनाथ सुकुलकृत—‘वाराणसी-वैभव’ पृ० ७३।

† ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः। तेनोदितं तु ते धर्मे चक्रुर्मुदितमानसाः॥  
ततः प्रवृद्धि सुतरामगच्छन्त निशाचराः। पुत्रपौत्रार्थसयुक्ताः सदाचारसमन्विताः॥  
ततश्चिन्नुवनं ब्रह्मन् निशाचरपुरोऽभवत्। दिवा सूर्यस्य सदृशः क्षणदाया च चन्द्रवत्॥  
तद् भानुना तदा दृष्टं क्रोधाध्मातेन चक्षुपा। निपपाताम्बराद् दृष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः॥  
पतमानं समालोक्य पुर शालकटकटः। नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरधीयत॥  
तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान् सर्वतोऽव्ययः। श्रुत्वा स चिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि॥  
शातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्। पातितं राक्षसपुरं ततः कुद्धन्निलोचनः॥  
कुद्धस्तु भगवान् दृग्भिर्भानुमन्तमपश्यत्। दृष्टमात्रिन्निनेत्रेण निपपात ततोऽभ्वरात्॥  
ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धे समभ्यात्। रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात्॥  
गत्वा दृष्टा च देवेशं शकरं शूलपाणिनम्। प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत्॥  
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः। कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः॥  
धारोपिते दिनकरे ब्रह्मास्येत्य सुकेशिनम्। सवान्धवं सनगरं रथमारोपयद्विः॥

( वामनप० अ० १५ )

मार्गशीर्ष शुक्ला पष्ठी अथवा सप्तमीको रविवारका योग होनेपर लोलार्क-दर्शनका विशेष माहात्म्य है। आजकल यहाँकी वार्षिक यात्रा भाद्रपद शुक्ला पष्ठीको सम्पन्न होती है। व्याधिप्रस्त स्त्री-पुरुष एवं निःसंतान लियाँ लोलार्क-पष्ठीके दिन लोलार्ककुण्डमें स्नान कर गीले वस्त्र वहाँ छोड देतीं और लोलार्ककी अर्चना-उन्दना कर इच्छित वरदान माँगती हैं। सूर्योदीप होनेके कारण प्रति रविवारको भी यहाँ पूजन करनेका माहात्म्य है। लोलार्क-तीर्थको काशीका नेत्र माना गया है। यह तीर्थ नगरके दक्षिणभागमें स्थित होनेके कारण दक्षिणी भागका रक्षक कहा गया है। दक्षिणसे प्रवेश करनेवाले समस्त पार्योंका यह तीर्थ अवरोध करता है। नगरके दक्षिण भागकी विशेषता गङ्गा-असि-संगमके साथ लोलार्ककी स्थितिके कारण अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

२-उत्तरार्क—वाराणसीकी उत्तरी सीमाका सूर्योदीप उत्तरार्क है। इससे सम्बद्ध जलाशय उत्तरार्क-कुण्डके नामसे विख्यात थी। वर्तमान समयमें यह वकरिया-कुण्ड कहलाता है। कदाचित् यह वालार्क-कुण्डका ही आपनें शा है। इसकी वर्तमान स्थिति पूर्वोत्तर रेलवे स्टेशन अलईपुर (वाराणसी नगर) के समीप ही है। मुसलमानोंके आधिपत्यके प्रारम्भमें ही यह सूर्योदीप नष्ट हो गया था, उसका पुनः निर्माण अवतक नहीं हुआ। उत्तरार्ककी

मूर्ति लृप्त है। केवल उसके स्थानकी पूजा होती है। अब इसपर मस्जिद-मजार बने हुए हैं। इन भवनोंमें प्रयुक्त पत्थरोपर अक्षित चित्रोंको देखकर प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यहाँ विहार तथा मन्दिर विद्यमान रहे हों।

पौप मासके रविवार यहाँकी यात्राके लिये प्रशस्त माने गये हैं। यह क्रम अब समाप्त हो गया है। इसके विपरीत अब यहाँ ज्येष्ठके रविवारोंको गात्रीमिर्याँका मेला लगता है।

काशीखण्डके अनिरिक्त 'आदित्यपुराणमें उत्तरार्कका माहात्म्य वडे विस्तारके साथ वर्णित है। इस उपाल्यानके अनुसार जाग्नवतीके पुत्र साम्बने अपने पिता कृष्णसे यह निवेदन किया कि आप सूर्योदासनाका ऐसा उपाय वतलायें कि लोग व्याधिनिरुक्त हो सुखी जीवन व्यतीत करें; क्योंकि मैंने सूर्यकी अर्चना कर महारोग (चर्मरोग) से मुक्ति पायी है। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा कि क्षेत्र-भेदसे भगवान् सूर्य विशेष फलदायक होते हैं। इसी प्रकार वाराणसीमें उत्तरार्क विगेष्मल्यमें व्याधिनाशक हैं। दैत्योद्धारा देवताओंके प्राजित किये जानेपर आदिति-के गर्भसे मार्तण्ड उत्पन्न हुए। सब देवोंके मित्र होनेके कारण उन्हे मित्र भी कहा गया। वे ही सूर्य, ज्योतिष्, रवि और जगचक्षु आदि नामोंसे सम्बोधित किये गये।

१. मार्गशीर्षस्य सप्तम्यां षष्ठ्यां वा रविवासरे। विधाय वार्षिकीं यात्रा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥

( का० खं० अ० ४६ )

२. प्रत्यक्वारं लोलार्कं यः पश्यति शुचिव्रतः। न तस्य दुःखं लोकेऽस्मिन् कदाचित् सम्भविष्यति ॥

( वही ४६ । ५६ )

३. अथोत्तरस्यामाशायां कुण्डमर्कार्घ्यमुक्तमम्। तत्र नामोत्तरार्केण रद्मिमाली व्यवस्थितः ॥

( वही ४७ । १ )

४. उत्तरार्कस्य देवस्य पुष्टे मासि खेदिन्ते। कार्या संवत्सरी यात्रा नतैः काशीफलेमुभिः ॥

( वही ४७ । ५७ )

५. यद्यप्तिप्रसिद्धो हि सर्वत्रैव दिवाकरः। तथापि क्षेत्रभेदेन फलदो हि रविः स्मृतः ॥

यथा शुक्लिषु मुक्तात्वं विषत्वं विषवत्सु च। एकमेव जलं मेघैः स्वातौ मुक्तां प्रपद्यते ॥

( आदित्यपुराण )

दुखी देवताओंने सूर्यकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर सूर्यने कहा—‘मैं दानवोंका संहार करनेके लिये दृढ़ एवं अजेय शत्रुओंको उत्पन्न करूँगा।’ ध्यानमग्न हो सूर्यने स्वकीय तेजसे पूरित शिलाको उत्पन्न कर देवताओंसे उसे वाराणसीके उत्तर भागमें ले जानेको कहा। इसके साथ ही वरुणाके दक्षिण तटपर विश्वकर्मने उस शिलासे सर्वलक्षणसम्पन्न उत्तरार्ककी दिव्य प्रतिमा बनायी। शिलाके गढ़े जानेपर पत्यरोके टुकड़ों (शत्रुओं) द्वारा देव-सेनाको सुसज्जितकर दैत्योपर विजय प्राप्त की। वहाँ शिलाके अवधृत (रगड़)से जो गड़दा बना, वह जलाशय ‘उत्तरमानस’ के नामे प्रस्त्यात हुआ। उसमे स्नानकर देवताओंने रक्त चन्दनयुक्त करवीर (कनेल) के पुष्ट तथा अद्वित आदिसे उत्तरार्ककी पूजा की। इस पूजनके फल-स्वरूप उत्तरार्कने देवोंको अजेय होनेका वर दिया तथा अपनी उत्पत्तिके विषयमे यह कहा कि पौष मासकी सप्तमी तिथि, रविवार, उत्तराफाल्युनी नक्षत्रमे मेरा जन्म हुआ है। सूर्यकी कृपाके फलस्वरूप देवोंने उत्तरार्कके पूर्वमे गणेश, दक्षिणमें क्षेत्रपाल तथा भैरव और पश्चिममे ‘उत्तरमानसरोवर’ स्थापित किये। यह ‘मानसरोवर’ जल-रूपमे सूर्यकी शक्ति ‘छाया’ मानी गयी। इसके

उत्तरमे स्थायं उत्तरार्क विराजमान हैं। उनकी वार्यी और ‘धर्मकूप’ बनवाया गया।

आदित्यपुराणमें वर्णित उत्तरार्क तथा उसके समीप-वर्ती पूजा-स्थलोंका विशद् परिचय प्राप्त होता है। इस कथानकसे यह अभिव्यक्ति होता है कि एक बार तो इस स्थलके विध्वसक पराजित हो गये हैं। यहाँके आक्रमणोंके सम्बन्धमे इतिहास इस वातका साक्षी है कि सन् १०३४-३५ ई०के आसपास सालार मसऊद गाजी (जो गाजीमियोंके नामसे प्रसिद्ध रहे) के आदेशसे उनके सेनापति मलिक अफजल अलबीकी सेना वाराणसीमे प्रथम बार पराजित हो गयी थी। ११९४ ई० के बादसे जब कुतुबुद्दीन ऐवकी सेनाने वाराणसीकी सेनापर विजय प्राप्त कर राजघाटका किला छापा दिया, तभी अनेक मठ-मन्दिरोंका भी विध्वंस हुआ। उस समयके विध्वस्त मन्दिरोंमें ‘उत्तरार्क’ (वकरियाकुण्ड) का मन्दिर भी है। इस क्षेत्रके आसपासकी विध्वस्त मूर्तियोंमें वकरियाकुण्डसे प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्णकी गुप्तकालीन विशाल मूर्ति ‘कला-भवन’मे सुरक्षित है। इस वर्णनसे आदित्यपुराणमें वर्णित यहाँपर अनेक देवस्थानोंके होनेका प्रमाण परिपूर्ण होता है। (क्रमशः)

## आदित्यके प्रातःस्मरणीय द्वादश नाम

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु द्विवाकरः। तृतीयं भास्करः। ग्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः॥  
पञ्चमं तु सहस्रांशुः पष्ठं बैलोक्यलोचनः। सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥  
नवमं दिनकरः। ग्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रयोमूर्तिः द्वादशं सूर्यं एव च॥

(—आदित्यहृदयस्तो०)

१. घटनाटङ्कधातेन या सनिः समष्टयत। सरः समभवत् तत्र नामा चोत्तरमानसम्॥

शिलाकणाणुभिः शुद्ध व्याधिनाशनहेतुभिः। पूरितं सच्छमक्षोभ्यं भास्करस्येव मानसम्॥

२. अद्य पौपस्य सप्तम्यामर्कवारे ममोऽवः। अभूद्वृत्तरकाल्युन्यां नक्षत्रे भगदैवते॥

(आदित्यपुराण )

३. ज्योत्स्ना छायेति तामाहुः सूर्यशक्ति महाप्रभाम्। अपां रूपेण सा तत्र स्थिता सरसि मानसे॥

(आदित्यपुराण )

४. द्रष्टव्य—पं० कुवेनाथ मुकुलकृत-‘वाराणसी-वैभव’ पृष्ठ २०८-२८१।

## भगवान् सूर्यदेव और उनकी पूजा-परम्पराएँ

( लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम०ए०, पी-एच० डी० ( द्वय ), डी० लिट०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, मुगाचार्य )

किसी भी राष्ट्रका अस्तित्व उसकी अपनी संख्यनिपर ही मुख्यतया आधारित रहता है। संख्यतिके ही अस्तित्व और अनस्तित्वसे राष्ट्र उत्थान-पतनकी अवस्थामे रहता है। जहाँ संख्यनिकी अपेक्षा रहती है, वहाँ राष्ट्र सार्वत्रिक रूपसे उन्नतिकी ओर निरन्तर प्रगतिशील रहता है और तटिपरीत जहाँके प्रशासनमे अपनी संख्यनिकी उपेक्षा होने लगती है, वहाँ उस राष्ट्रका पतन भी अवश्यम्भावी है—चाहे वह क्रमिक हो या आकस्मिक, पर उसका ऐसा होना निश्चित है। भारतका राष्ट्रिय उत्थान तो एकमात्र सांख्यतिक अनुशानपर ही आधारित रहता आ रहा है। आजसे ही नहीं, सनातनकालसे इनिहास ही इसका मुख्य साक्षी है। भारतीय संख्यनिकी आधारशिला है वर्णश्रिम-धर्मका पालन। ब्राह्मणादि वर्णचतुष्य एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमचतुष्यका अभिग्रह है ऐहिक अभ्युदयकी प्राप्ति तथा आमुपिक निःश्रेयसकी उपलब्धि—आत्माकी परमात्मामे एकाकारता और इन दोनों उपलब्धियोंका एकमात्र साधन है—भगवद्गुपासन। भगवद्गुपासनाके दो प्रकार हैं—सगुण-साकाररूपात्मक तथा निर्गुण-निराकाररूपात्मक; पर इस उपलब्धिद्वयके लिये नदुपासना है परम अनिवार्य—‘नान्यः पन्था विद्यते अयनाय’। अनुभवी एवं सिद्ध उपासकोंके मतसे निर्गुण-निराकारोपासनाकी अपेक्षा सगुण-साकारोपासना सरल्तर है और यह अभ्युदय तथा निःश्रेयस् दोनों उपलब्धियोंके लिये प्रथम सोपान है। प्रथम सोपानपर दृढ़सूल हो जानेपर अग्रिम पथ सुगम हो जाता है। निष्ठा एवं श्रद्धापूर्ण आचरणसे लक्ष्यकी प्राप्तिमें विलम्ब

नहीं होता। एतनिमित विश्वासपूर्वक निरन्तर सियनस्वात्मे अनुष्ठानकी परम आवश्यकता है।

साकारोपासनमें पञ्चदेवार्चन मुख्यनया कर्त्तव्य है। पञ्चदेवोंमें सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु हैं—

आदित्यं गणनाथं च देवीं सूर्यं च केशवम्।  
पञ्चदेवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

( संकृत-शब्दार्थकाल्पुत्र, पृ० ६२५ )

सूर्य इन पाँच देवताओंसे अन्य है और नवमहदेवोंमें इनका प्रथम स्थान है।

आधुनिक कोपकारोंके मनानुसार सूर्य सौरमण्डलका एक प्रधान घण्ड या जाज्वल्यमान तारा है, जिसकी पृथ्वी, सौर-मण्डलके अन्यान्य ग्रह एवं उपग्रह प्रदक्षिणा करते रहते हैं। साय ही जो पृथ्वीको प्रकाश और उपता मिलनेका साधन तथा उसके ऋतुकमका कारण है\*।

शब्दशास्त्रीय निःक्तिके अनुसार सूर्यका व्युत्पत्त्यर्थ होता है—वह एक ऐसा महान् तत्त्व, जो आकाशमण्डलमें अनवरत गतिसे परिव्रमण करता रहता है—‘सरति सातत्येन परिभ्रमत्याकाश इति सूर्यः’। यह शब्द भ्रादिगणीयस्तु गतौ धातुके आगे ‘क्यप’ के योगसे निष्पन्न हुआ है। पौराणिक विवृतिके अनुसार मर्त्यचिपुत्र कल्यप ऋषिकी पत्नी दक्षकन्या आदिनिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यका एक नाम आदित्य है और यह आदित्य ( सूर्य ) संख्यामें वारह है। यथा—१—शक्त ( इन्द्र ), २—र्थ्यमा, ३—धाता, ४—वृष्टि, ५—पूर्या, ६—विवसान्, ७—सविता, ८—मित्र, ९—वरुण,

\* वृहत् हिन्दीकोश, १२९२ तथा सं० श० कौ०, पृ० १२२४। वस्तुतः ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और उपग्रह अपने ग्रहकी परिक्रमा करते हैं, परंतु दोनोंकी परिक्रमा सूर्यकी परिक्रमा हो जाती है—यही यहाँ अभिप्राय है।

† राजसूर्यसूर्यमृषोग्रच्छकुष्ठपञ्चाव्ययाः ( पा० अ० सू० ३ । १ । ११४ )

१०—अंशु, ११—भग और १२—विष्णु<sup>१</sup>। महाभारतमें भी इन्हीं वारह सूर्योंकी मान्यता है<sup>२</sup>। तदनुसार इन्द्र सबसे बड़े हैं और विष्णु सबसे छोटे। भगवान् सूर्यकी उपासना वारह महीनोंमें इन्हीं वारह नामोंसे होती है; जैसे—मधु (चैत्र) में धाता, माधव (वैशाख) में अर्यमा, शक्र (ज्येष्ठ) में मित्र, शुचि (आषाढ़) में वरुण, नम (श्रावण) में इन्द्र, नमस्य (भाद्रपद) में विवस्वान, तप (आश्विन) में पूषा, तपत्य (कार्तिक) में क्रतुया पर्जन्य, सह (मार्गशीर्ष) में अंशु, पुष्य (पौष) में भग, इष (माघ) में लघु और ऊर्ज (फाल्गुन) में विष्णु। यही भगवान् सूर्यका उपासनाक्रम है। अमरकोषमें सूर्यके एतदतिरिक्त ३१नामोंका उल्लेख है; यथा—१—सूर, २—आदिव्य, ३—द्वादशात्मा, ४—दिवाकर, ५—भास्कर, ६—अहस्कर, ७—त्रघ्न, ८—प्रभाकर, ९—विभाकर, १०—भास्वान, ११—सप्तमी, १२—हरिदश्म, १३—उष्णरश्मि, १४—विकर्तन, १५—अर्क, १६—मार्तण्ड, १७—मिहिर, १८—अरुण, १९—चुमणि, २०—तरणि, २१—चित्रभासु, २२—विरोचन, २३—विभावसु, २४—प्रहृपति, २५—त्विषां पति, २६—अहर्पति, २७—भासु, २८—हंस, २९—सहस्रांशु, ३०—तपन और ३१—रवि। इन नामोंके अतिरिक्त १६ नाम और उल्लिखित है—

१—पद्माक्ष, २—तेजसा राशि, ३—छायानाथ, ४—तमिक्षहा, ५—कर्मसाक्षी, ६—जगन्नचक्षु, ७—लोकबन्धु, ८—त्रयीतनु, ९—प्रद्योतन, १०—दिनमणि, ११—खद्योत, १२—लोकवान्धव, १३—इन, १४—धामनिधि, १५—अंशुमाली और १६—अव्विनीपति<sup>३</sup>। ऋग्वेदमें १—मित्र, २—अर्यमा, ३—भग, ४—(बहुव्यापक) वरुण, ५—दक्ष और ६—अशा—इन छः नामोंकी चर्चा है<sup>४</sup>।

१. विष्णुपुराण १। १५। १३१—१३३; २. महाभारत १। ६६। ३६; ३. विं पु० २। १०। ३—१८।

४. अमरकोष १। ३ २८—३०२ तथा (२८—४१). ५. ऋग्वेद ४। २७। १; ६. पं० रामगोविन्द निवेदी, हिन्दी ऋग्वेदकी भूमिका, पृ० १५।

उपरिसंख्यक सूर्यनामोंका उल्लेख तो औपचारिकमात्र है, यथार्थतया तो सूर्यके नाम अनन्त—असंख्य हैं; क्योंकि सूर्य और विष्णु दोनों अभिन्न तत्व हैं। जो विष्णु हैं, वे ही सूर्य और जो सूर्य है, वे ही विष्णु; बस्तुतः सूर्य एक ही हैं; किंतु कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार सूर्यके विविध नाम रखे गये हैं—नामी एक, नाम अनेक।

### वैदिक साहित्य और सूर्योपासना

पाश्चात्य सम्यताके अनुरागी आधुनिक इतिहासके समर्थक अधिकांश भारतीय विद्वानोंके मतानुसार सूर्योपासना आधुनिक है। उनके मतमें प्राचीन कालमें सूर्य-पूजाका प्रचलन नहीं था। किंतु उन विद्वानोंकी यह धारणा ध्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि भारतीय प्राचीन परम्परामें सूर्यके आराधनापरक प्रमाण प्रचुरमात्रामें प्राप्त होते हैं। वेद विश्वके साहित्यमें प्राचीनतम हैं। इस मान्यतामें कदाचित् दो मत नहीं हो सकते हैं। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतानुसार ऋग्वेद-सहिताका निर्माण-काल ९,००० वर्षोंसे कमका नहीं है। ऋग्वेदमें सूर्योपासनाके अनेक प्रसङ्ग मिलते हैं<sup>५</sup>। कतिपय प्रसंगोंका उल्लेख करना उपयोगितापूर्ण है; यथा—मण्डल १ सूक्त ५० ऋचा १—१३ अनुष्टुप् छन्दोवद्व है। इसके ऋषि कष्ठके पुत्र प्रस्कृष्ट हैं। इसमें महिमा-गानके द्वारा रोगनिवारणके लिये प्रार्थना की गयी है। पुनः सूक्त ११५, १६४ और १९१ में, जिनके ऋषि अंगिराके पुत्र कुत्स, उक्त्यके पुत्र दीर्घतमा और अगस्त्य हैं, सूर्य-महिमाका गान है।

मण्डल ५ सूक्त ४० में ऋषि अन्नि हैं। मण्डल ७ सूक्त ६० में ऋषि वसिष्ठ हैं। इसकी एक ही ऋचाके द्वारा सूर्यके अनुष्ठानमें यजमानने पापमुक्तिके

लिये उनसे प्रार्थना की है। मण्डल ८ में सूक्त १८के ऋषि इरिचिठि और छन्द उणिक् हैं। इसमें रोगशान्ति, सुखप्राप्ति तथा शत्रुनाशकी प्रार्थना है।

मण्डल ९ में सूक्त ५ के ऋषि पृथग्ध हैं। इसमें सूर्यको स्वर्गीय शोभारूप बतलाया गया है। मण्डल १०में सूक्त ३७, ८८, १३६, १७० और १८९ के ऋषि सूर्यपुत्र अभितपा, मूर्द्धन्यान्, जूति, सूर्यपुत्र चक्षु और ऋषिका सार्पराज्ञी नामकी हैं। इनमें क्रमशः दरिद्रताके अपहर्ता, द्यावापृथिवीके धारणकर्ता, लोकोत्पादक, अन्नदाता, यज्ञादि शुभानुष्ठानोंमें पूज्य और यजमानके आयुर्दाता आदि विविध विशेषणोंके साथ सूर्यकी स्तुति की गयी है।

इसके अतिरिक्त वरुण, सविता, पूषा, आदित्य, लघा, मित्र, वरुण और धाता आदि अन्यान्य नामोंसे भी सूर्यकी पूजा एवं आराधनाके प्रसङ्ग हैं।

हिजमात्रके लिये अनिवार्य कृत्यके रूपमें दैनिक त्रिकाल सन्ध्योपासनामें गायत्री-जपके पूर्व सूर्योपस्थानका विधान है। उपासक सूर्यको तमस्—अन्धकारसे उठाकर प्रकाशमें ले जानेवाले मानते हुए स्वर्गदर्शनके साथ सर्वोत्तम ज्योतिर्मय सत्यकी प्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना करता है। सूर्य तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं तथा मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं। वे स्थावर तथा जङ्घम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष-लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आथर्वरूपसे उदित होते

१. उद्ययं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमग्नम् ज्योतिरुत्तमम्॥ (—यजुर्वेद २। २१)

२. चित्रं देवानामुद्गादनीं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्ना द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुप्रश्च॥

(—वही ७। ४२ और ऋग्वेद १। ११५। १)

३. तच्क्षुदेवहितं पुरस्ताच्छुक्मुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतत् शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (—वही ३६। २४)

४. उ॒भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (—वही ३६। ३.)

५. सूर्योपनिषद्, पृ० ५५, वलदेव उपाध्याय—पुराणविमर्श, पृ० ४९९।

हैं। देवता आदि सम्पूर्ण जगत्के हितकारी और सबके नेत्ररूप तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशमें उदित हो रहे हैं। ( उनके प्रसादसे ) हमारी दृष्टिशक्ति सौ वर्षोंतक अक्षुण्ण रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वस्यताके साथ जीते रहे। सौ वर्षोंतक हमारी श्रुति ( कान ) सशक्त रहे। सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दैन्यावस्थाको प्राप्त न हों; इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे भी चिर-अधिक कालतक हम देखें, जीवित रहें, सुनें, बोलें एवं कदापि दीन-दशापन न हों<sup>३</sup>।

वैदिक मन्त्रराज ब्रह्मगायत्रीमें भगवान् सूर्यको त्रिभुवन-के उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा माना गया है। गायत्रीकी व्याख्यामें कहा गया है—हम स्थावर-जङ्घमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजने योग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मों—आत्मचिन्तनकी ओर प्रेरित करें—वे देव भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म हैं<sup>४</sup>।

वैदिक वाच्यमें सूर्यके विवरण बहुशः उपलब्ध हैं। एक स्थानपर सूर्यको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका ही रूप माना गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।<sup>५</sup>

योगदर्शनके मतानुसार सूर्यमें संयम करनेसे सम्पूर्ण भुवनका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। भुवन शब्दसे यहाँ तात्पर्य चतुर्दश लोकोंसे है—सात ऊर्ध्वलोक ये हैं। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक,

तपोलोक और अन्तिम सत्यलोक है; सात अधोलोक ये हैं—मातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल तथा अन्तिम पाताल। यौगिक साधना करनेवाला उपासक जब सूर्यमे एकान्त ध्यानकी सिद्धि पा जाता है, तब सम्पूर्ण चतुर्दश लोकोमे क्या घटना हो रही है, इसका टेलिविजनके समान उसे प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।<sup>१</sup>

सूर्यपरक अनेक पौराणिक आत्मायिकाओंका मूल वैदिक है। सूर्यकी उपासनाका इतिहास भी वैदिक ही है। उत्तर वैदिक साहित्य तथा रामायण-महाभारतमें भी सूर्योपासनासम्बन्धी चर्चाका बहुल्य दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकालके पूर्वसे ही सूर्योपासकोका एक सम्प्रदाय बन चुका था, जो सौर नामसे प्रसिद्ध था। सौर-सम्प्रदायके उपासक अपने उपास्यदेव सूर्यके प्रति अनन्य आस्थाके कारण उन्हे आदिदेवके रूपमे मानते थे। भौगोलिक दृष्टिसे भी भारतमें सूर्योपासना व्यापक थी। मथुरा, मुल्लान, कस्मीर, कोणार्क और उज्जयिनी आदि स्थान सूर्योपासकोके प्रधान केन्द्र थे।<sup>२</sup>

सूर्योपासनाका आरम्भिक खण्डन प्रतीकात्मक था। सूर्यकी प्रतिमा चक्र एवं कमल आदिसे व्यक्त की जाती थी। मूर्तरूपमे सूर्य-प्रतिमाका प्रथम प्रमाण बोधगयाकी कलामे है। बौद्ध-सम्प्रदायमें भी सूर्योपासना होती थी। भाजाकी बौद्ध-गुफामे भी सूर्यकी प्रतिमा बोधगयाकी परम्परामे ही निर्मित हुई है। इन दोनो प्रतिमाओंका काल ईसाकी पूर्व प्रथम शती है। बौद्ध-परम्पराके ही समान जैन-गुफामे भी सूर्यकी प्रतिमा मिली है। खण्डगिरि—उड़ीसाकी अनन्त गुफामे सूर्यकी जो प्रतिमा है (ईस्योकी दूसरी शतीकी) वह भी भाजा और बोधगयाकी ही परम्परामे है। चार अश्वोंसे युक्त एकचक्र-

रथारूढ सूर्यकी प्रतिमा मिली है। गधारसे प्राप्त सूर्य-प्रतिमाकी एक विचित्रता यह है कि सूर्यके चरणोंको जूतोंसे युक्त बनाया गया है। इस परम्पराका परिपालन मथुराकी सूर्य-सूर्तियोंमें भी किया गया है।<sup>३</sup> मथुरामें निर्मित सूर्य-प्रतिमाओंको उदीच्य वेशमें बनाया गया है।

गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओंमें ईरानी प्रभाव कम था—विलकुल नहीं। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्यप्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमें भारतीय हैं। सूर्यके मुख्य आयुध कमल दोनों हाथोंमें ही विशेषतया प्रदर्शित हैं। मध्यकालीन उपलब्ध सूर्यप्रतिमाएँ दो प्रकारकी—स्थानक सूर्य-प्रतिमाएँ और पद्मस्थ प्रतिमाएँ हैं।

### सूर्यकी स्थिति

विश्वाकाश अनन्त एवं असीम है। इसकी सीमाको नापना मानव-स्तिष्ठकके लिये सर्वथा तथा सर्वदा असम्भव है। वह इसकी सीमाके परीक्षणमें शत-प्रतिशत असफल होता है। पञ्चभूतों (पृथिवी आदि) में आकाश विशालतम है और सूक्ष्मतम भी। इस विश्वाकाशमें सूर्यकी अपेक्षा असंख्य गुना विशाल तथा अगण्य प्रकाशपिण्ड सुष्टिके आठिकालसे निरन्तर गतिशील हैं। उनके प्रति सेकण्ड लाख-लाख योजनकी रफ्तार—गतिसे चलनेपर भी आजतक उनका प्रकाश इस पृथिवीपर नहीं पहुँच सका है—वेदादि शाखाय विद्वानोंके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञानाचार्योंकी भी विश्वासपूर्ण यही धोषणा है। सूर्य आकाशमण्डलके साक्षात् दृश्यमान प्रहो-प्रह्रह-नक्षत्रादि प्रकाश-पिण्डोंमें विशालतम हैं। इनके रथका विस्तार नौ सहस्र योजनोंमें है और इससे दूना रथका ईषादण्ड (जूआ और रथके मध्यका भाग) है।

१. भुवनशानं सूर्येसंयमात्। पातञ्जल-योगदर्शन, विभूतिपाद, पृष्ठ २६। २. पुराणविमर्श पृ० ४९९।  
३. वही पृ० ५००। ४. वही पृ० ५०१।

उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है, जिससे रथका पहिया लगा हुआ है। सूर्यकी उदयास्त गतिसे काल अर्थात् निमेप, काष्ठा, कला, मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और चतुर्युग (कलि, द्वापर, त्रेता, सत्ययुग) आदिका निर्णय होता है।

पुराण-वाङ्मयमें सूर्यका परिचय पार्थिव जगत्के एक आदर्श राजाके रूपमें भी मिलता है। राजा अपनी प्रजाओंसे राज्यकर (टेक्स) बहुत कम—नाममात्रका ही लेते हैं, पर उसके बदलेमें प्रजाओंको अनेक गुना अधिक दे देते हैं और उनके स्वास्थ्य आदि समग्र सुख-सुविधाओंका समुचित प्रबन्ध कर देते हैं। इस सम्बन्धमें बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वीसे जितना रस खींचते हैं, उन सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये (वर्गी ऋतुमें) वरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्य तृतीय करते रहते हैं। सूर्यके ही कारण होनेवाली वृष्टिसे पृथ्वीके वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल और जड़ी-बूटियाँ प्रभृति भैपञ्च-पदार्थ पोषित और ओषधि गुणोंसे सम्पन्न होते हैं और ओषधिरूप इन्हीं पदार्थोंके उपयोगसे प्रजा रोगमुक्त होती है। कालिदासने अपने महाकाव्यमें सूर्यके सम्बन्धमें ऐसा ही सुन्दर चित्रण उपस्थित करते हुए

कहा है—सूर्यदेव ग्रीष्मकालमें पृथ्वीके जिस रसको खींचते हैं—प्रहण करते हैं, उसे चतुर्मासमें हजार गुना अधिक करके दे देते हैं। विश्वको सूर्यकी इस विसर्गवृत्तिसे परहितके लिये त्याग करनेकी शिक्षा प्रहण करनी चाहिये। भारतने उनकी इस विसर्ग-वृत्तिसे परहितार्थ त्याग करनेकी शिक्षा ली थी। इस वृत्तिको अपनानेसे प्रजावर्गके लिये आध्यात्मिक उपलब्धि भी निश्चय ही सम्भव है। भारतमें भगवान् सूर्य ही एकमात्र आरोग्यदाता देवताके रूपमें स्वीकृत हैं। उपासना करनेपर अग्निदेव जिस प्रकार धन देते हैं, भगवान् शंकर ऐश्वर्य देते हैं और महायोगेश्वर कृष्ण ज्ञान देते हैं, उसी प्रकार उपासित भगवान् भास्कर शारीरिक, मानसिक आदि सर्वविध आरोग्य प्रदान करते हैं। अतः उन-उनकी पूर्ति हेतु उन-उन देवताओंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

आरोग्यं भास्करादिच्छेष्वनमिच्छेष्वताशनात् ।  
ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेष्वानमिच्छेष्वनार्दनात् ॥

भारतीय मान्यतामें संयम-नियमपूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे असाध्य और भयंकर गलित कुष्ठरोगसे पीड़ित व्यक्ति भी नैरोग्य लाभ करते हैं।

समस्त पुराणों और उप-पुराणोंमें सूर्योपासना आदि-के सम्बन्धमें विश्विध विवृतियाँ निहित हैं, पर संक्षिप्त रूपमें इतना ही वर्णन पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त पुराणेतर समस्त भारतीय साहित्य भगवान् सूर्यका विविध विवरण देता है। सबका सार है—भगवान् सूर्यकी उपासना, पूजा एवं अर्चना। सूर्य हमारे सदासे पूज्य और अर्च्य रहे हैं।

## सूर्योपासनाकी परम्परा

( लेखक—डॉ० प० श्रीरमाकान्तजी त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी० )

सूर्यका वर्णन वैदिक कालसे ही देवताके रूपमें मिलता है, किंतु वैदिक कालमें सूर्यका स्थान गौण समझा जा सकता है; क्योंकि वैदिक कालमें इन्द्र तथा अग्नि इनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देवता माने गये हैं। पौराणिक गाथाओंके आधारपर सूर्यको देवमाता अदिति तथा महर्षि कश्यपका पुत्र माना जाता है। अदिति-पुत्र होनेके कारण ही इन्हें आदित्यकी संज्ञा प्रदान की गयी है। वेदोंमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद ( मण्डल २, सूक्त २७, मन्त्र १ ) में छः आदित्य माने गये हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश।

किंतु ऋग्वेदमें ही आगे ( मण्डल ९, सूत्र, ११४ मन्त्र ३ में ) आदित्यकी संस्था सात बतलायी गयी है। पुनः आगे चलकर हमें अदिति<sup>१</sup>के आठ पुत्रोंका नाम मिलता है। वे निम्न हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, अशा, विवस्वान् तथा आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदिति चली गयी और आठवें आदित्य- ( सूर्य- ) को आकाशमें छोड़ दिया। वेदोंके पश्चात् शतपथ-ब्राह्मणमें द्वादश आदित्योंका उल्लेख मिलता है। महाभारत- ( आदिर्प, अध्याय १२१ ) में इन आदित्योंका नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वया, सविता तथा विष्णु बताया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलनेसे यह निश्चित करना कठिन है कि वास्तवमें कौन-से अदिति-पुत्र सूर्य हैं। आदित्य तथा सूर्य कहीं-कहीं अभिन्न माने जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका मत है कि वस्तुतः ये द्वादश आदित्य एक ही सूर्यके कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार रखे

गये भिन्न-भिन्न नाम हैं। कुछ विद्वान् तो यह भी कहते हैं कि ये द्वादश आदित्य ( सूर्य )के द्वादश मासोंमें उदित होनेके भिन्न-भिन्न नाम हैं। यही कारण है कि पूषा, सविता, मित्र, वरुण तथा सूर्यको लोग अभिन्न मानते हैं। किंतु इतना तो निश्चित है कि इन देवताओंमें कुछ-न-कुछ स्वरूपमेद अवश्य रहा होगा, जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामोंसे निर्दिष्ट किया गया है। यह भेद समयके साथ लुप्त हो गया और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अब हमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सूर्यके विषयमें यह भी प्रसिद्ध है कि वे आकाशके पुत्र हैं। यह तथ्य ऋग्वेदसे भी वहाँ प्रमाणित होता है, जहाँ आकाश-पुत्र सूर्यके लिये गीत गानेका वर्णन मिलता है।<sup>२</sup> कहीं-कहीं उपाको सूर्यकी माता बतलाया गया है, जो चमकते हुए बालकको अपने साथ लाती है तथा उसका मातृत्व सूर्यसे प्रथम उदय होनेके कारण माना गया है। ऋग्वेदमें ही सूर्य तथा उपाको दोनोंको इन्द्रसे उत्पन्न बताया गया है।<sup>३</sup> उपाको ऋग्वेदमें ही एक स्थानपर सूर्यकी पत्नी<sup>४</sup> तथा एक अन्य स्थानपर सूर्य-पुत्री माना गया है।<sup>५</sup> इस प्रकार वेदोंके आधारपर यह निश्चित करना कठिन है कि सूर्य किसके पुत्र थे; क्योंकि स्थान-स्थानपर भिन्न-भिन्न वर्णन मिलते हैं।

सूर्यके जन्मके विषयमें इन सबसे विचित्र कथानक विष्णुपुराणमें मिलता है, जहाँ सूर्यको विश्वकर्माकी शक्तिके आठवें अंशसे उत्पन्न कहा गया है। विष्णुपुराणकी कथा निम्न प्रकार है—‘विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाके

१. हिंदी ऋग्वेद—इण्डियन प्रेस ( पट्टिकेगन्स ) लिमिटेड, प्रयाग, पृ० १३३६, मन्त्र ८-९। २. ऋग्वेद १०। ३७। १. ‘दिवसुत्राय सूर्याय शसतः। ३. ऋग्वेद ( २। १२। ७ ) ष्यः सूर्यं य उपसं जजान्। ४. ऋग्वेद ( ७। ७५। ५ )। ५. ऋग्वेद ( ४। ४३। २ ) सूर्यस्य दुहिता।

साथ सूर्यका विवाह हुआ तथा तीन पुत्रोंको जन्म देनेके पश्चात् उसने अपने पतिकी शक्तिको असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छायासे अपना स्थान ग्रहण करनेको काहकर वह बनको चली गयी। छायाने अपनी भिन्नता सूर्यसे नहीं बतायी। सूर्यने कुछ वर्पोंतक इसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक दिन सज्जाके एक पुत्र यमने छायाके साथ कुछ दुर्घटव्यहार कर दिया और छायाने उसे शाप दे दिया। सूर्यने (जिन्हें यह ज्ञात था कि माताका शाप पुत्रपर कोई प्रभाव नहीं डालता) इस विषयमें खोज की। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन है। सूर्यके कुछ तेजसे छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे सज्जाकी खोजमें गये, जो उन्हे घोड़ीके रूपमें बनमें भ्रमण करती हुई दिखायी दी। सूर्यने इस बार अपनेको अश्वरूपमें परिवर्तित कर दिया और वहाँपर उन दोनोंने कुछ समयतक जीवन व्यतीत किया। कुछ समयके अनन्तर वे अपने पशु-जीवनसे उत्थकर वास्तविक रूप धारण करके घर लौट आये। विश्वकर्माने इस प्रकारकी घटनाकी पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये सूर्यको एक पापाणपर स्थित कर दिया तथा उनके आठवें अंशका अपहरण करके उससे विष्णुके चक्र, शिवके त्रिशूल तथा कार्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया।<sup>१</sup>

इस प्रकार सूर्यके जन्मके विषयमें भिन्न-भिन्न कथाएँ होनेके कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वे वास्तवमें किस देवताके पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदितिके ही पुत्र हो; क्योंकि अदितिको प्रायः सभी देवताओंकी माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूपा—ये चारों ही नाम वस्तुतः सूर्यके ही धोतक हैं, किंतु पूपाका स्वरूप

कहीं-कहीं सूर्यसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मित्र, सविता तथा सूर्य शब्द वेदोंमें सूर्यके लिये ही प्रयुक्त हुए हैं। मित्र सूर्यके सञ्चारके नियामक हैं तथा वे सवितासे अभिन्न माने जाते हैं। वैदिक 'मित्र' पारसी-धर्मके 'मित्र'से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्रका अर्थ सुदृढ़ अथवा सहायक है और निश्चय ही वह सूर्यकी रक्षण-शक्तिका धोतक है। सविता 'हिरण्यमयदेव' हैं, जिनके हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्यमय हैं। सविता विश्वको अपने हिरण्यमय नेत्रोंसे देखते हुए गमन करते हैं। सविताका अर्थ है 'प्रसव करनेवाला', 'सूर्यति प्रदान करनेवाला' देवता। निश्चय ही वे विश्वमें गतिका सञ्चार करनेवाले तथा प्रेरणा देनेवाले सूर्यके प्रतिनिधि हैं।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३५वें सूक्तके यारह मन्त्र सूर्यकी स्तुतिमें कहे गये हैं। यहाँ सूर्यके अत्तरिक्ष-भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति आदिका वर्णन मिलता है। प्रथम मण्डलके ५०वें सूक्तके आठवें मन्त्रमें लिखा है—‘सूर्य! हरित नामक सात अश्व रथसे आपको ले जाते हैं। किरणें तथा ज्योति ही आपके केश हैं।’ ऋग्वेदमें आगे कहा गया है—‘सूर्यके एकचक्र रथमें सात अश्व जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामोंसे रथ-वहन करता है।’ वे सभी प्राणियोंके, शोभन तथा अशोभन कार्योंके दृष्टा हैं तथा मनुष्योंके कर्मोंके प्रेरक देव हैं। सूर्य आकाशमें चमकते हुए अन्धकारको दूर भगाते हैं। अपने गौरव तथा महत्वके कारण उन्हे देवोंका पुरोहित कहा गया है। सूर्यको मित्र तथा वस्तुतः नेत्र बताया जाता है।<sup>२</sup>

सूर्यके विविध रूपोंका स्पष्ट वर्णन वेदोंमें उपलब्ध होता है। ऋषि लोग अन्धकारको दूर भगानेवाले सूर्यके तीन

१. Thomas—Epicsm myths and leg ends of India, P. 116—118.

२. आ कृष्णन रजसा वर्तमानो निवेगयनमृतं मर्त्यं च। हिरण्यगेन सविता रथेनाऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥

३. हिन्दी ऋग्वेद (इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स, लिमिटेड प्रयाग, पृ० ३४५, मन्त्र २ )

४. उद्द वर्यं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवता सूर्यसगन्म ज्योतिरुचम्॥ (-कृ० १ ५० । १० )

खरुपोंका वर्णन करते हैं—उत्, उत् + तर—उत्तर, उत् + तम—उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्यमें बढ़कर हैं। सूर्यकी उस ज्योतिका नाम उत् है जो इस भुवनके भौतिक अन्धकारके अपहरणमें समर्थ होती है। देवोंके मध्यमें जो देव-स्वप्नसे निवास करती है, वह 'उत्तर' है; परंतु इन दोनोंसे बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है, जिसे उत्तम कहते हैं।\* ये तीनों शब्द सूर्यके कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्यकारणसे अतीत अवस्थाके घोतक हैं। इस एक ही मन्त्रमें सूर्यके आधिमौतिक, आधिदेविक तथा आधात्मिक स्वरूपोंका संकेत किया गया है। (वेद सूर्यके इन तीनों स्वरूपोंका प्रतिपादन करते हैं।)

वेदोंमें सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा गौण नहीं है। तथ्य उनके महत्त्वको अनेकरा: सूचित करते हैं। चार धार्मिक सम्प्रदायोंमेंसे सूर्यकी आराधना करनेवाला एक सौर-सम्प्रदाय भी है। एक विशेष प्रकारका धार्मिक सम्प्रदाय सूर्यकी आराधना करता है। इसीसे स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका अधिक महत्त्व है।

वेदका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र गायत्री है, जिसे वेदोंकी माता भी कहा जाता है। यह मन्त्र सविता अथवा सूर्यके महत्त्वका ही वर्णन करता है। पौराणिक एकाक्षर 'ॐ' भी सूर्यसे ही सम्बद्ध है। यह सूर्यसम्बन्धी अग्नि तथा त्रिदेवोंका प्रतीक है। यह एक चक्रमें लिखा हुआ सूर्य-मण्डलका घोतक है। छान्दोग्य-उपनिषद्में 'ॐ'का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—‘सभी प्राणियोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल है, जलका सार वनस्पति है, वनस्पतियोंका सार मनुष्य है, मनुष्यका सार वाणी है, वाणीका सार ऋग्वेद है,

ऋग्वेदका सार सामवेद है, सामवेदका सार उद्गीथ है और उसीको ‘ॐ’ कहते हैं।

‘स्वस्तिक’ हिन्दू मात्रका एक सौर चिह्न है। इस शब्दका अर्थ है ‘भलीभाँति रहना’। यह तेज अथवा महिमाका घोतक है तथा इस बातका संकेत करता है कि जीवनका मार्ग कुटिल है तथा वह मनुष्यको व्याकुल कर सकता है; किंतु प्रकाशका मार्ग उसके साथ-ही-साथ चलता है।

### ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्य

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है, जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदोंमें। वास्तवमें यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्षपर सफलतासे पहुँच सकते हैं कि ग्रीक-धर्म वैदिक धर्मका अनुकरणमात्र है। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंके अनुसार देवी गाला (Gala) पृथ्वीकी देवी हैं। इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्रका निर्माण किया। उरानस (Uranus) इनके पति तथा पुत्र दोनों ही है। इन दोनोंके संयोगसे Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं वे देवताओंके सप्तांश माने गये हैं। Cronusकी पत्नीका नाम Rhea है तथा इन दोनोंके संयोगसे जेउस (Zeus) उत्पन्न हुए। ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यको इन्हींZeus का पुत्र माना गया है। सूर्यको ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें Phoebs Apollo (फोएव्स अपोलो ) तथा Helios नामोंसे सम्बद्ध किया गया है। पौराणिक गाथाओंमें सूर्यके प्रासाद आदिका भी वर्णन मिलता है। एक पौराणिक गाथाके अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासादमें

\*. उद् वयं तमसस्परि ज्योतिपश्यन्त उत्तरम्। देवं देवता सूर्यमग्नम् ज्योतिश्चत्तमम् ॥

पहुँचा जो कान्तियुक्त स्तम्भोंपर आश्रित था' तथा सर्ण एवं लाल मणियोंसे दीपिमान् हो रहा था। इसकी कारनिस चमकीले हाथी-दाँतोंसे बनी थी और चौड़े चॉटीके द्वारोंपर उपाख्यान एवं अङ्गुत कथाएँ लिखी थीं।

फोएबस (Phoebus) लेहित वर्णका जामा पहने हुए अनुपम मरकतमणियोंसे शोभायमान सिंहासनपर वे आखड़ थे। उनके भृत्य दार्यी तथा वायी ओर क्रमसे खडे थे। उनमें दिवस, मास, वर्ष, शताव्दियाँ तथा ऋतुएँ भी थीं। वसन्त ऋतु अपने छलोंके गुलदस्तोंके साथ, प्रीष्म ऋतु अपने पीत वर्णके अज्ञोसहित तथा शरद् ऋतु, जिसके केश ओलोंकी भाँति श्वेत थे, उनके चारों ओर नम्रमात्रसे स्थित थे। उनके मरुतकके चारों ओर जाज्वल्यमान विरणे विखर रही थीं।

सूर्यके प्रासादमें पहुँचनेके पश्चात् Phaethon ने उनसे कहा कि वे अपना रथ एक दिवसके लिये उसको डे दें। उस स्थानपर, जब सूर्य उसको रथ न माँगनेके लिये समझाते हैं, तब वे स्थयं रथका वर्णन अपने मुखसे करते हैं, जो निम्न है—

केवल मैं ही रथके प्रज्वलित धुरेपर, जिससे चिनगारियों विखरती रहती हैं एवं जो वायुके मध्य घूमता है, खडा रह सकता हूँ। रथको एक निर्दिष्ट मार्गसे जाना चाहिये। यह अश्वोंके लिये एक कठिन कार्य होता है, जब कि प्रातःकाल स्वस्य भी रहते हैं।

1. 'Born by Illuminous Pillars, the Palace of the Sun God rose Iustrous with gold and flamered rubies. The Cornice was of dazzling ivory, and carved in relief on the wide silver doors were legends and miracle tales.'

—Gods and Heroes—Gustav Sehwab—Translated in English—Olgamarx and Ernst Morwitz, (Page. 49.)

2. "I myself am often shaken with dread when, at such height. I stand upright in my chariot. My head spins when I look down to the land and sea so far beneath me."—Gods and Heroes, (P. 49, Eng. Trans.)

3. "Heaven turns incessantly and that the driving is against the sweep of its vast rotations." (Gods and Heroes, P. 49, Eng. Trans.)

मध्याह्नमें रथको आकाशके मध्यभागमें होना चाहिये। कभी-कभी मैं स्थयं भी घबड़ा जाता हूँ, जब मैं नीची भूमि और समुद्रको देखता हूँ।<sup>१</sup> लौटने समय भी अभ्यस्त हाथ ही रशियोंको सँगाल सकते हैं। Thetis (समुद्रोंकी देवी) भी, जो मुझे अपने शीतल जलमें ले लेनेकी प्रतीक्षा करती रहती है, पूर्णरूपसे सावधान रहती है, जबतक मैं आकाशसे फेंक नहीं दिया जाता। यह भी एक समस्या है कि स्वर्ण निरन्तर चलता रहता है तथा रथकी गति चक्रके समान तीव्र गतिके विपरीत होती है।<sup>२</sup>

इस प्रकार रथका जो वर्णन हमें यहाँ मिलता है, लगभग वैसा ही वर्णन भारतीय पौराणिक गाथाओंमें भी मिलता है। सूर्यके रथमें वहाँ तो अग्निका निवास ही माना गया है, किर यदि उसके धुरेसे अग्नि निकलती है तो कोई विशेष वात नहीं। वेदमें सूर्यके आकाशसे फेंके जानेका वर्णन अवश्य नहीं मिलता; यह ग्रीक-धर्मकी अपनी परिकल्पना है।

इसके पश्चात् Apollo अपने पुत्रसे कहते हैं कि यदि मैं तुम्हे अपना रथ दे भी दूँ तो तुम इन वाद्याओंका निराकरण नहीं कर सकते, किंतु phaethon के विशेष आग्रहपर सूर्य उसको रथ दिखलानेके लिये ले जाते हैं। वहाँ पुनः रथका वर्णन आया है और वह तो भारतीय धर्मका असुष्टुतिमात्र प्रतीत होता है। वर्णन

इस प्रकार है—‘रथ-धुरा तथा चक्र-हाल स्वर्णनिर्मित थे । उसकी तीलियाँ चाँदीकी थीं तथा जुआ चन्द्रकान्तामणि तथा अन्य बहुमूल्य मणियोंसे चमक रहा था ।’

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पौराणिक गाथाओं तथा ग्रीक पौराणिक गाथाओंमें पर्यास साम्य है और सूर्यका जो महत्त्व भारतीय धर्ममें है, वही महत्त्व ग्रीक-धर्ममें भी प्रतिपादित किया गया है । लगभग सभी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका स्थान महत्वपूर्ण है तथा ये ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी आराधना प्रायः सभी धर्मोंमें समान रूपसे होती है ।

### ऐतिहासिक युगमें सूर्योपासना

वैदिक कालमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका स्थान गौण था, किंतु आगे चलकर सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक हो गया । महाभारतके समयसे ही समाजमें सूर्य-पूजाका प्रचलन हो गया था । कुषाण-कालमें तो सूर्य-पूजाका प्रचलन ही नहीं था, बरन् कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे । कनिष्ठ (७८ ई०) के पूर्वज शिव तथा सूर्यके उपासक थे ।<sup>१</sup> इसके पश्चात् हमें तीसरी शताब्दी ई० के गुप्त-सम्राटोंके समयमें भी सूर्य, विष्णु तथा शिवकी उपासनाका उल्लेख मिलता है । कुमारगुप्त-(४१४-५५ ई०)के समयमें ब्राह्मण-धर्मका विशेष अभ्युत्थान हुआ तथा उस समयमें विष्णु, शिव तथा सूर्यकी उपासना विशेषरूपसे होती थी— यद्यपि स्वयं कुमारगुप्त कार्तिकेयका उपासक था । स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई०) के समयमें तो बुलन्दशहर जिलेके

इन्द्रपुर नामक स्थानपर दो क्षत्रियोंने एक सूर्यमन्दिर भी बनवाया था ।<sup>२</sup> गुप्त-सम्राटोंके कालतक सूर्य-आराधनाका विशेष प्रचलन हो गया था और उनके समयमें मालवाके मन्दिरसौर नामक स्थानमें, ग्वालियरमें, इन्दौरमें तथा बघेलखण्डके आश्रमक नामक स्थानमें निर्मित चार श्रेष्ठ सूर्यमन्दिरोंका उल्लेख प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त उनके समयकी बनी हुई सूर्यदेवकी कुछ मूर्तियाँ भी बंगालमें मिलती हैं<sup>३</sup> जिनसे यह प्रतीत होता है कि गुप्त-सम्राटोंके समयमें सूर्यभगवान्की आराधना अधिक प्रचलित थी ।

सातवीं ईसवीमें हर्षके समयमें सूर्योपासना अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी । हर्षके पिता तथा उनके कुछ और पूर्वज न केवल सूर्योपासक थे, अपितु ‘आदित्य-भक्त’ भी थे । हर्षके पिताके विषयमें तो बाणने अपने ‘हर्षचरितमें लिखा है कि वे स्वभावसे ही सूर्यके भक्त थे तथा प्रतिदिन सूर्योदयके समय स्नान करके ‘आदित्य-हृदय’ मन्त्रका नियमित जप किया करते थे ।<sup>४</sup> हर्षचरितके अतिरिक्त अन्य कई प्रमाणोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि सौर-सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अधिक उत्कर्पण था । हर्षके समयमें प्रयागमें तीन दिनका अधिवेशन हुआ था । इस अधिवेशनमें पहले दिन बुद्धकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिवकी पूजा की गयी थी ।<sup>५</sup> इससे भी ज्ञात होता है कि उस कालमें सूर्य-पूजाका पर्यास महत्त्व था । सूर्योपासनाका वह चरमोत्कर्ष हर्षके समयतक ही सीमित नहीं रहा, अपितु

१. डा० भगवत्शरण उपाध्याय—प्राचीन भारतका इतिहास (संस्कृत १९५७) पृष्ठ २१७ ।

२. वही पृष्ठ २५८ ।

३. श्रीनेत्र पाण्डेय—भारतका वृहत् इतिहास (सं १९५०) पृ० २६८ ।

४. वही पृ० २८० ।

५. हर्षचरित—चौखम्बा-प्रकाशन, पृ० २०२ ।

६. प्राचीन भारतका इतिहास—डा० भगवत्शरण उपाध्याय, पृ० ३०६, सं १९५७ ।

लगभग ग्यारहवीं शतीतक सूर्य-पूजाका प्रचलन रहा। हर्षके पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड (७२४-७६०ई०) नामक एक अन्य राजा भी सूर्यका भक्त था। उसने सूर्यके 'मार्तण्डमन्दिर'का निर्माण करवाया, जिसके खँडहरोंसे प्रतीत होता है कि वह मन्दिर अपने समयमें भी सूर्य-पूजाका विशेष प्रचलन था। ग्यारहवीं शताब्दी-के लगभग निर्मित कोणार्कका विशाल सूर्यमन्दिर भी जनताकी सूर्यभक्तिका ही प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-कालसे लेकर लगभग ग्यारहवीं शताब्दी-तक सूर्यने अन्य देवताओंकी अपेक्षा विशेष सम्मान प्राप्त किया।

### कुष्ठरोग-निवारणमें सूर्यका महत्त्व

जनश्रुतिके अनुसार मयूरको कुष्ठरोग हो गया था तथा इस भयंकर रोगसे त्राण पानेके लिये उन्होंने भगवान् सूर्यकी उपासना की एवं भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया। इस जनश्रुतिमें सत्यांश कितना है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना अवश्य है कि भारतीय परम्परामें प्रारम्भसे ही सूर्यको इस रोगसे मुक्त करनेवाल देवता माना गया है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इसका उल्लेख मिलता है। वहाँ सूर्यको सभी चर्मरोगों तथा अनेक अन्य भीषण रोगोंका विनाशक बताया गया है—सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानसरोग

( हृदय रोग ), पीतवर्ण-रोग ( पीलिया ) तथा शरीर-रोग विनष्ट करें। मैं अपने हरिमण तथा शरीर-रोगको शुक एवं सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये समस्त तेजके साथ उदित हुए हैं। इन मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि सूर्योपासनासे न केवल शारीरिक अपितु मानसिक रोग भी विनष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि-व्याविके शमनके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। साधणके विचारसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्तुत्य ऋषिका चर्मरोग विनष्ट हो गया था।

सूर्योपासनासे कुष्ठरोगका निवारण हो जाता है, यह धारणा न केवल भारतीयोंमें ही बद्धमूल थी, अपितु प्राचीनकालसे ही पारसियोंमें भी मान्य थी। हेरोडोरस-के अनुसार कुष्ठरोगका कारण सूर्यभगवान्के प्रति अपराध करना था। उसके इतिहासकी प्रथम पुस्तकमें इस प्रकारका उल्लेख मिलता है—‘कोई भी नागरिक जो कुष्ठरोग या श्वेतकुष्ठसे ग्रस्त होता था, नगरमें प्रविष्ट नहीं होता था, न वह अन्य पारसियोंसे मिलता-जुलता था तथा अन्य लोग यह कहते थे कि इसके इस रोगका कारण सूर्यके प्रति किया गया कोई अपराध है।’<sup>‡</sup> इससे यह भी ज्ञात होता है कि पारसियोंका यह विश्वास था कि जो देवता इस प्रकारके संक्रामक रोगोंकी उत्पत्तिका कारण है, केवल वही उस रोगका विनाशक हो सकता है।

आज भी भारतवर्षमें कई स्थानोंपर इस प्रकारकी धारणा प्रचलित है कि सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश

\* प्राचीन भारतका इतिहास ( पृ० ३०६ )—डा० भगवतशरण उपाध्याय।

† ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त ५०, मन्त्र ११-१३

‡ “Whatsoever one of the citizens has leprosy or the white ( leprosy ) does not come into city, nor does he mingle with the other Persians. And they say that he contracts these ( diseases ) because of having committed some sin against the Sun.” Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayura, P. 35.

आदित्योपासनासे हो जाता है। अयोध्याके निकट सूर्यकुण्ड नामक एक जलाशय है। जनश्रुति है कि उस कुण्डमें स्नान करनेसे सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश हो जाता है। मिथिलामें भी ऐसी धारणा है कि कार्तिक शुक्रपक्षकी पष्ठीके दिन सूर्योपासना करनेसे मनुष्यको किसी प्रकारका चर्मरोग नहीं हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी पौराणिक कथाओंको अन्धविश्वास कहनेवाले वैज्ञानिक भी इस तथ्यको खीकार

करते हैं कि सूर्य-किरणें सभी प्रकारके चर्मरोगोंके विनाशके लिये अत्यन्त लाभदायक हैं। आजकल तो अनेक चिकित्सालयोंमें सूर्यकी किरणोंसे ही कुष्ठरोग-प्रस्त लोगोंका उपचार किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी उपासना समस्त जाति करती है। सूर्योपासनाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और आज भी प्रायः सर्वत्र प्रचलित है।

## सूर्योराधना-रहस्य

( लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी )

भगवान् सूर्यनारायण हीं संसारके समस्त ओज, तेज, दीपि और कान्तिके निर्माता हैं। वे आत्मशक्तिके आश्रयदाता तथा प्रकाश-तत्त्वके विधाता हैं। वे आधि-व्याधिका अपहरण करते और कष्ट तथा क्लेशका शमन करते हैं और रोगोंको आमूल-चूल हनन कर हमारे जीवनको निर्मल, विमल, स्वस्थ एवं सशक्त बना देते हैं।

यदि हम असत्से सत्त्वकी ओर, मृत्युसे अमरत्वकी ओर तथा अन्धकारसे प्रकाश-पथकी ओर जाना चाहते हैं, तो जगत्-प्रकाश-प्रकाशक भगवान् सूर्यकी सत्ता-महत्त्वाको समझकर हमें उनकी आराधना और उपासना मनोयोगसे करनी चाहिये।

वेदोंमें सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा कहा गया है और इसी आत्मप्रकाशको वृहदारण्यक उपनिषद्में देखनेयोग्य, सुननेयोग्य तथा मनन करनेयोग्य बताया गया है—आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यसितव्यः। ( वृ० २० २ । ४ । ५ )।

सौर-सम्प्रदायवाले सूर्यको विश्वका स्त्रष्टा मानकर एकचित्तसे उनकी आराधना करते हैं। पहले सौर-

सम्प्रदायवालोंकी छः शाखाएँ थीं। सभी अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करते, लाल चन्दनका तिळक लगाते, माला धारण करते और सूर्यकी भिन्न-भिन्न देवोंके रूपमें आराधना करते थे। कोई सूर्यकी ब्रह्माके रूपमें, दूसरे विष्णुरूपमें, तीसरे शिवके रूपमें, चौथे त्रिसूर्तिके रूपमें आराधना करते थे। पाँचवें सम्प्रदायवाले सूर्यको ब्रह्म मानकर सूर्यविम्बके नित्य दर्शनकर पोडशा उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करते थे और सूर्यके दर्शन किये बिना जल भी नहीं पीते थे। छठे सम्प्रदायवाले सूर्यका चित्र अपने मस्तक तथा भुजाओंपर अङ्कित कराके सतत सूर्यका ध्यान करते थे। श्रुतियों, भविष्यत्, ब्रह्म आदि पुराणों, वृहत्संहिता तथा सूर्यशतक आदिमें सूर्यके महत्त्वका वर्णन किया गया है।

वेदोंमें कहा गया है कि—

‘उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।

( तै० ४० प्र० २, अ० २ )

अर्थात्—‘उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी आराधना ध्यानादि, करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है।’

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं; इसीलिये वे 'सूर्यनारायण' कहलाते हैं। सर्गके आदिमें भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमें प्रकट होते हैं; तभी तो सूर्यकी गणना पञ्चदेवोंमें है। वे स्थूलकाल-के नियामक, तेजके महान् आकर, इस ब्रह्मण्डके केन्द्र तथा भगवान्‌की प्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्योपासनमें सूर्यरूपसे ही भगवान्‌की आराधना की जाती है। उनकी आराधनासे हमारे तेज, बल, आयु और नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है।

इस जगत्में सूर्यभगवान्‌की आराधना करनेवाले अनेक राष्ट्र हैं। शास्त्रीय शोध जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे यह सिद्ध होता जा रहा है कि सूर्यमें उत्तरादिका, संरक्षिका, आकर्षिका और प्रकाशिका—सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं। भगवान् सूर्य अपनी शक्ति अपने उत्तुम्बके प्रत्येक सदस्य—चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदिको यथाधोग्य परिमाणमें नित्य प्रदान करते हैं। सूर्यसिद्धान्त ज्योतिपशास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि भगवान् सूर्यनारायणने 'यम' नामक असुरकी आराधनासे प्रसन्न होकर उसको यह ज्ञान दिया था। सूर्य ज्ञान देव भी हैं।

यैगिक क्रियाओंके सुरण और जागरणमें भी भगवान् सूर्यनारायणकी आराधनाकी महत्त्वपूर्ण भूमिका

मानी जाती है। महाकुण्डलिनी नामकी शक्ति, जो समस्त सृष्टिमें परिव्याप्त है, व्यक्तिमें कुण्डलिनीके रूपमें व्यक्त होती है। प्राणवायुको वहन करनेवाली मेरुदण्डसे सम्बद्ध इडा, पिङ्गला और सुपुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ हैं। इनमें इडा और पिङ्गलाको सूर्य-चन्द्र कहा जाता है। इनकी नियमित साधना और आराधनासे ही योगी पट्चक्र-भेदनकर कुण्डलिनी-शक्तिको उद्घवद्ध कर सकनेमें सक्षम हो पाता है।

ज्ञानयोग और भक्तियोगके साथ-साथ सूर्यनारायण निष्काम कर्मयोगके भी आचार्य माने जाते हैं। इसीलिये समस्त ज्ञान-विज्ञानके सारसर्वत्व भगवद्विता (४।१)के अनुसार योगशिक्षा सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यनारायणको ही दी।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

भगवान् श्रीकृष्णकी उस दिव्य निष्काम कर्मयोगकी शिक्षाको सूर्यनारायणने इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि तबसे वे नित्य, निरन्तर, नियमितरूपसे गतिशील रहकर सम्पूर्ण संसारको कर्म करनेका पथ-प्रदर्शन करते चले आ रहे हैं। इसीलिये भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करनेवाले लोगोंको भी निष्काम कर्मयोग करनेकी नित्य नयी शक्ति, शारीरिक स्फुर्ति तथा राष्ट्र समाज और विश्वकी सेवा करनेकी अनुपम भावभक्ति प्राप्त होती रहती है।

### कर्मयोगी सूर्यका श्रेष्ठत्व

भगवान् श्रीकृष्णने विवस्वान् (सूर्यदेव) को कर्मयोगका उपदेश दिया था। सूर्य कर्मशीलता, कर्मठता किंचा लोकसंग्रहके अद्वितीय उदाहरण हैं। वे मेरु-मण्डलके चारों ओर निरन्तर भ्रमण करते हुए अपने प्रकाश एवं चैतन्यसे-निष्कामभावसे विश्व-कल्याण करते हैं। येतरेय ब्राह्मण (३३।३।५) में इन्द्रने रोहितको कर्म-सौन्दर्य (कर्मकौशल) का उपदेश देते हुए कहा है कि—‘सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्वरैवेति।’—‘देखो, सूर्यका श्रेष्ठत्व इसीलिये है कि वे लोक-मङ्गलके लिये निरन्तर गतिशील रहते हुए तनिक भी आलस्य नहीं करते हैं; अतः सूर्यदेवकी भाँति कर्तव्य-पथपर सदैव चलते ही रहो।’

## सौरोपासना

( लेखक—स्वामीश्रीशिवानन्दजी )

वैदिकधर्मके अनुसार देवता-देवियोंकी संख्या गणनातीत है। ‘हिंदुओंके तैतीस कोटि देवता हैं’ इसकथनका तात्पर्य सख्यासे नहीं है। इसका अर्थ यह है कि अगणित प्राणमय विभिन्न आकृतिपूर्ण यह जो सृष्टि है, इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके रूपमें इसके पीछे कोई सर्वशक्तिमान् पुरुष है। देवताओं, देवियोंके असंख्य नाम उसीकी विभिन्न शक्तियोंके वाहकमात्र हैं। वैदिकधर्ममें बहुदेवत्यवादकी जो कल्पना की गयी है, वह सब उस सर्वशक्तिमान्के असंख्य रूपकी कल्पना-मात्र ही है। कारण, वेद कहते हैं कि वस्तुतः एक आत्मा ही विश्वव्याप्त है। अर्थात् सभी रूपोंमें वे एक ही हैं। ऋग्वेदकी मन्त्र-संख्या ३। ५३। ८ में यह स्पष्ट कथन है—“रूपप्रतिरूपं वभूव ।” निरुक्तभगवान् कहते हैं—महाभाग्याद् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। ( ७। १। ४ ) अतएव इसके द्वारा यह सिद्धान्त निरूपित होता है कि विभिन्न देव-देवियोंकी विभिन्नता रूपमें, गुणमें है; किंतु मूलमें नहीं है, अर्थात् मूल तत्त्व एक होनेके बावजूद भी विभिन्न गुणोंके परियोग्यमें इसीका संख्यातीत सम्बोधन होता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वह एक कौन है? किसकी द्युतिच्छ्या सभी देवी-देवताओंमें प्रतिभासित होती है? इसके उत्तरमें ऋग्वेद कहता है—सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च। परमात्मा सूर्य ही नित्य भास्त्र अनन्त ज्योतिरूपसे विभूषित हो रहे हैं।

वेद और उपनिषद्की दृष्टिमें भी—हंसः शुचिपद् और ( श्रूक् ४। ४०। ५ ) ‘आ कृष्णेन रजसा०’ तथा ( श्रू० १। ३५। २ ) तद्भास्कराय विद्महे प्रकाशाय धीमहि तत्रो भासुः प्रचोदयात्। ( मैत्रायणीय-कृष्णयजुवेद २। १। १ ) आदिसे यह मान्य है।

अतएव आत्म-स्वरूप सूर्यनारायण ही प्रधान देवता हैं। विभिन्न मन्त्रोमे यही प्रतिपादित हुआ है। वे ( सूर्य ) विराट् पुरुष नारायण हैं। इसीलिये वेद भी उनके प्रति प्रार्थना-मुखर हैं।

वे ही विराट् पुरुष सूर्यनारायण हैं। जिनके नेत्रसे अभिव्यक्ति होती है, जो लोक-लोचनोंके अधिदेवता हैं, जिनकी उपासना-द्वारा समस्त रोग, नेत्रदोष आदि तथा प्रहवाधा दूर होती है, जिनकी उपासनासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती है, अनादिकालसे वर्णश्रेष्ठ द्विजगण जिनके उद्देश्यसे प्रतिदिन अर्धाञ्जलि निवेदन करते हैं, वे ही चर एव अचर जगत्के जीवन-देवता हैं। उन्हीं ज्योतिर्घन, जीवन-स्रष्टा, ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीसूर्यनारायणको हम प्रणाम करते हैं। सुतराम्, सूर्यनारायण ही विराट् पुरुष हैं, यह निःसंदेह-रूपसे स्वीकार किया जा सकता है।

इनसे अभिन्न शक्तित्रय—त्रहा, विष्णु, रुद्र हैं। ये सभी भगवान् सूर्यके अभिन्न अङ्गस्वरूप हैं। इनमें किंचित् भी भेद नहीं है। इसका प्रमाण शास्त्रने इस प्रकार दिया है—

एप ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।  
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रघिः॥  
( सूर्यतापनी-उपनिषद् १। ६ )

इसकी पुष्टि शिवपुराणसे भी हो जाती है—  
आदित्यं च शिवं विद्याच्छ्वयमादित्यरूपिणम्।  
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्य दोनों अभिन्न हैं।

सूर्यनारायणकी उपासनाके विषयमें पौराणिक दृष्टान्त भी उपलब्ध होते हैं। सृष्टिके अनादि-कालसे मनुष्यलोक और सौरमण्डलका सम्बन्ध अच्छेद है।

सौरमण्डलमें सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रह, व्रिदेव, साध्यदेव, मरुद्रष्ट और सप्तर्षिगणोंका निवास है। इन सबका प्रतिनिधित्व सूर्य ही करते हैं। तार्पर्य यह कि विश्व-व्रह्माण्डमे इस अचिन्त्य-शक्तिके नियामक तेजोराशि भगवान् भास्कर ही हैं। देहधारी प्राणीकी सक्षेपतः तीन ही मुख्य अपेक्षाएँ हैं—तेज, मुक्ति और मुक्ति। इन तीनोंकी प्राप्तिके लिये वेद संन्ध्योपासनाको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। वर्ण-श्रेष्ठ द्विजातियोंके लिये शास्त्रके शासन—‘अहरहः सन्ध्यासुपात्सीत’के अनुसार यह संन्ध्योपासना ही सूर्यकी उपासना है। इसके द्वारा चतुर्वर्गका फल प्राप्त होता है; यथा—

मन्त्रेदेहनाशार्थसुदयास्त्वये रविः ।  
सर्माहते द्विजोत्सृष्टं मन्त्रतोयाज्ञलित्रयम् ॥  
गायत्रीमन्त्रतोयाद्यं दत्तं येनाज्ञलित्रयम् ।  
काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम् ॥  
किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः ।  
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च ॥  
मित्रपुत्रकल्प्राणि थेत्राणि विविधानि च ।  
भोगानपृथिवींश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥

( स्कन्दपु० काशीखण्ड ९ । ४५—४८ )

जगत्‌में पञ्चभूतोंके साथ प्राणिमात्रका सम्बन्ध अच्छेद्य है। इन पञ्चभूतोंके अधिनायक पौच्छ देवता हैं। अतः प्राणिमात्र इन पञ्चदेवताओंके द्वारा विवृत हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी ।  
चायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥

विष्णु आकाशके स्थानी हैं, अग्निकी महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके विष्णु एवं जलके गणेश अविदेवता हैं। अतएव इनके अस्तित्वके बिना पाञ्चभौतिक देहका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसी कारण सभी कर्मणि पूजा करनेका विधान है।

आदित्यं गणनार्थं च देवां रुद्रं च केशवम् ।  
पञ्चदेवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥

आयुर्वेदशास्त्रमें स्पष्ट उल्लेख है कि शरीरस्थ पञ्च-तत्त्वोंमेंसे किसी एकके कुपित होनेपर नाना प्रकारके रोग होते हैं। इस विषयमें चरक एवं सुश्रुत प्रमाण ग्रन्थ हैं। इन पञ्चतत्त्वोंके बीच वायु प्रबलतम है। वायु-विकृति ही अस्वस्थताकां प्रमुख कारण है। वायुके अधिदेवता भी सूर्य हैं, अतएव सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये।

पुराण-ग्रन्थोंमें कुष्ठरोगके निवारणार्थ सूर्यदेवकी उपासनाकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। भविष्य-पुराणके ब्रह्मपर्वमें पाया जाता है कि कृष्णपुत्र साम्ब दुर्वासाके शापसे कुष्ठरोगप्रस्त हो गये। इस कारण श्रीकृष्णको दुःखी देखकर गरुडने शाकद्वायपसे वैद्यविद्यापार-दर्शी पण्डित—ब्राह्मणादिको लाकर उस रोगकी निवृत्ति-के लिये प्रार्थना की। उन ब्राह्मणोंने सूर्यमन्दिरकी स्थापना करायी और साम्बने सूर्यकी उपासनाके द्वारा रोगसे मुक्ति पायी।

ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम् ।  
साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं च परमं पुनः ॥

मध्यूर कवि भी सूर्य-शतककी रचना करके इस रोगसे मुक्त हुए थे। प्राकृतिक कथा यही है कि प्राणिमात्रके लिये सूर्य-पूजा एकान्तप्रयोजनीय और अवश्य करणीय है। इस प्रकार सूर्यकी उपासना पृथक्-पृथक् मासमें पृथक्-पृथक् नामोंसे सालभर प्रतिमास करनी चाहिये, शास्त्रोंमें निर्देश है—

चैत्रमें धाता, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें मित्र, आषाढ़में वरुण, श्रावणमें इन्द्र, भाद्रपदमें विवसान्, आश्विनमें पूषा, कार्तिकमें क्रतु, मार्गशीर्षमें अंशु, पौषमें भग, माघमें लक्ष्मा, फाल्गुनमें विष्णु नामसे।

भारतमें हिंदू-जातियें आदिकालसे ही इस पूजा और उपासनाका प्रचलन है, इसके प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, मानवजातियें

आदिकालके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे इसका भूरि-भूरि प्रमाण पाया जाता है कि मानवजातिकी चिन्तन-धाराके साथ-साथ सूर्यपूजा आदिकालसे ही सम्बद्ध है। सुप्रसिद्ध संस्कृतितच्चवेत्ता प्रो० ८० वी० कीथने कहा है कि अत्यन्त प्राचीनकालसे ही ग्रीक दर्शनमें सूर्यपूजाका प्रमाण मिलता है। Ghales भी जिनका जन्म एशिया माइनरमें ६४० खीष्ट पूर्वार्द्ध (ईसापूर्व)में हुआ था। उनका भी ऐसा ही मत है।

ग्रीक दार्शनिक Empedocles ने सूर्यको अग्निके मूल स्रोतके रूपमें वर्णित किया है। और उन्होंने यह भी मत खीकार किया है कि सूर्य ही विश्वस्था हैं। हमारी उषा देवीकी सूर्य-परिक्रमाकी कथा और ग्रीक देशकी अपोलो और विष्णाकी कहानी इसी तथ्यकी

पोपक प्रतीत होती है। ग्रीक देशके भी विवाहमन्त्रमें आज भी सूर्यमन्त्र पढ़ा जाता है।

मैक्सिसकोमें आदिकालसे ही प्रचलित मत यही है कि विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टिकी जड़में सूर्य ही विद्यमान हैं।

हमारे देशमें अति प्राचीनकालसे ही सूर्यमूर्ति (बुद्धगयाके स्तप्तवी) एवं तात्कालीन शिलालेख और इलोराकी गुफाओंकी सूर्यप्रतिमा इस तथ्यका उद्घाटन करती है कि अति प्राचीनकालसे ही सूर्यपूजाका प्रचार एवं प्रसार इस देशमें चला आ रहा है; यहाँतक कि जैन-धर्ममें भी देवतागणोंके समूहमें सर्वोच्च स्थान सूर्यका ही है अर्थात् वे देवाधीश हैं।

निदान, सूर्यनारायणकी स्तुति-प्रार्थना एवं उपासना आदिकालसे ही प्रचलित है और चलती रहेगी। इस विषयमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है।

## भगवान् भुवन-भास्कर और गायत्री-मन्त्र

( लेखक—श्रीगज्जागरमंजी शास्त्री )

सूर्यका एक नाम सविता भी है। सविताकी शक्तिको ही सवित्री कहते हैं। 'तत्सवितुर्वरेण्यं भग्नो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्'—यह सविताका मन्त्र है। इसमें गायत्री-छन्दका प्रयोग होनेके कारण इसीको गायत्री-मन्त्र कहने लगे हैं। संक्षेपमें इस मन्त्रका अर्थ है—देदीप्यमान भगवान् सविता (सूर्य) के उस तेजका हम ध्यान करते हैं। वह ( तेज ) हमारी बुद्धिका प्रेरक बने। इस मन्त्रमें प्रणव और तीन व्याहृतियाँ जोड़कर 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भग्नो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'—इस मन्त्रका साधक अनुष्ठान-कर्ता जप करते हैं। इसी मन्त्रके द्वारा वेदपाठ प्रारम्भ करनेके पूर्व यज्ञोपवीत पहनाकर ब्रह्मचारीका उपनयनसंस्कार सम्पन्न कराया जाता है। किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये पुरश्चरण प्रारम्भ करनेके पूर्व दस सहस्र गायत्री-मन्त्र-जपका विधान है।

इतना ही नहीं, गायत्रीकी महत्ता तो यहाँतक है कि किसी भी कार्यसिद्धिके लिये जहाँ शास्त्रमें अनुष्ठान-विशेष कथित न हो, वहाँ गायत्री-मन्त्रका जप और तिळका हवन करना चाहिये; यथा—

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः।  
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्याश्च जपस्तथा ॥

किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये सामान्य नियम यह है कि मन्त्रमें जितने अक्षर हो, उतने ही लक्ष मन्त्रका जप करके जपसख्याका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनका दशांश ब्राह्मण-भोजन करनेसे उस मन्त्रका पुरश्चरण पूरा होता है। पुरश्चरणके द्वारा मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर कार्यविशेषके लिये उसका जप और कामनापरत्वसे विशेष द्रव्यका हवन करनेपर सिद्धि

सम्भव होती है। कभी-कभी इतना करनेपर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। उस समय आचार्य कह देते हैं कि अमुक त्रुटि रह जानेके कारण अनुष्ठान सफल नहीं हुआ। पर गायत्री-मन्त्रके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। एक बार गायत्री-मन्त्रका चौबीस लाख जप और तदनुसार हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजनके द्वारा पुरथ्रण सम्पन्न हो जानेपर स्थिय गायत्री-माता साधकका योगक्षेम-व्यवहन करती हैं। वैसे गायत्री-मन्त्रके द्वारा भी कामनापरक अनुष्ठान किये जा सकते हैं।

**त्रिकाल-सन्ध्या**—जिस प्रकार किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके पूर्व अयुत गायत्री-जप करना होता है, उसी प्रकार प्रतिदिनके कार्यमें शरीर और आत्माकी पवित्रता और शक्तिसम्बन्धके लिये त्रिकाल-सन्ध्या आवश्यक है। प्रतिदिनके कार्योंमें हमारे शरीरकी ऊर्जाका जो व्यय होता है उसकी पूर्ति सूर्योपस्थानके द्वारा भगवान् भुवन-भास्करसे होती है। इससे आध्यात्मिक शक्तिमें वृद्धि होती है। इसके साथ प्रतिदिन कम-से-कम एक माला गायत्री-जपका विधान है। त्रिकाल-सन्ध्याके लिये गायत्री-माताके तीन अलग-अलग रूपोंका ध्यान किया जाता है जो इस प्रकार है—

### प्रातःकालीन ध्यान—

हंसारुद्धां सिताब्जे त्वरुणमणिलसदभूपणां साप्तनेत्रां  
वेदाख्यामक्षमालां स्वजमयकमलं दण्डमप्यादधानाम्।

**ध्याये दोर्भिंश्चतुर्भिंश्चिभुवन-**

जननीं पूर्वसन्ध्यादिवन्याम्।

**गायत्रीमृक्सवित्रीमधिनव-**

वयसं मण्डले चण्डरश्मेः॥

**विश्वमातः सुराभ्यच्छैं पुण्ये गायत्रि वेधसि।**  
**आवाहयाम्युपास्त्यर्थमेहोनोच्चि पुनीहि माम्॥**

**‘प्रातः-सन्ध्याके समय सूर्यमण्डलमें श्वेत कमलपर स्थित, हंसपर आरुड, लालमणिके भूषणोंसे अलंकृत, आठ नेत्रों तथा चार द्वायोंवाली और उनमें क्रमशः**

वेद, रुद्राक्षमाला, कमल एवं दण्डको धारण किये, ऋग्वेदवी जननी, किशोरी, त्रिसुवनकी माता गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ।’

‘जगत्की माता देवताओद्वारा पूजित, पुण्यमयी भगवती गायत्री ! मैं उपासनाके लिये आपका आवाहन करता हूँ।’

### मध्याह्नकालीन ध्यान—

वृपेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्रिशिखधारिणी ।  
श्वेताम्बरधरा श्वेतनामाभरणभूषिता ॥  
श्वेतस्त्रगक्षमालालंकृता रक्षता च शंकरा ।  
जटाधराधराधात्री धरेन्द्राङ्गभवाम्भवा ।  
मातर्भवानि विश्वेशि आहौतैहि पुनीहि माम् ॥

मैं वृपमवाहना, प्रज्वलित त्रिशूल एवं श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेतस्त्रग, रुद्राक्षमाला एवं श्वेत सर्पसे विभूषित, लाल वर्णवाली, जटाधारिणी, पर्वतपुत्री, शिवरूपा, भवानी (संध्यादेवी) का आवाहन करता हूँ। आप आये तथा मुझे पवित्र करें।’

### सन्ध्याकालीन ध्यान—

सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती ।  
खगगा कृष्णवक्त्रा तु शङ्खचक्रधरापरा ॥  
कृष्णस्त्रगभूपर्णैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी वरा ।  
वीणाक्षमालिका चारहस्ता सितवरानना ॥  
मातर्वाङ्गदेवते स्तुत्ये आहौतैहि पुनीहि माम् ॥

‘मैं कृष्णवर्णा, कृष्णमुखी, कृष्णवर्णके माल्याभूषणोंसे युक्त, गरुडवाहना विष्णुदेवत्या, शङ्खचक्रधारिणी, वीणा-रुद्राक्ष लिये, सुन्दर मुस्कानवाली, सर्वज्ञानमयी सायंकालीन सन्ध्या रूपिणी सरस्वतीका आवाहन करता हूँ। स्तुति करनेयोग्य मौं वाग्देवी आप यहाँ आये तथा मुझे पवित्र करें।’

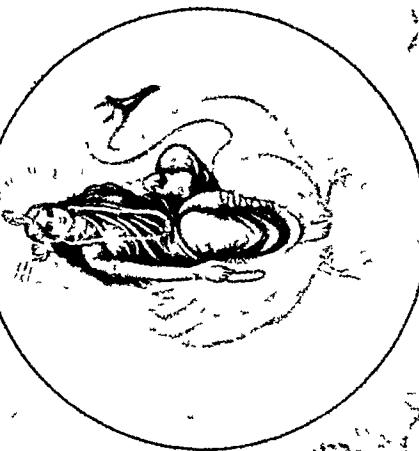
त्रिकाल-सन्ध्यामें हम अङ्गन्यास, करन्यासके द्वारा प्रतिदिन सूर्योपस्थान-मन्त्रोंसे सूर्यकी दिव्य शक्ति और दिव्य तेजका भौतिक शरीर और अन्तरात्मामें आवाहन करते हैं। इस प्रकार त्रिकाल-सन्ध्यामात्र धार्मिक

कल्याण

सावित्रीका त्रिकाल-ध्यान



त्रिविद्यात्



प्रतदर्शन



साधाहनं

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी । गायत्रद्यास्तु परं नास्ति देवे चेहन पावनम् ॥



अनुष्ठान न होकर व्यस्त जीवनमें भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करनेका सरलतम साधन है।

### आरोग्यं भास्करादिच्छेत्—

सूर्य आरोग्य प्रदान करनेवाले देवता हैं। वे जीवमात्रके प्रेरणाके स्रोत हैं। सूर्योदय होते ही मनुष्य कर्ममार्गमें प्रवृत्त होता है। इसीलिये वहां है—‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च’—सूर्य ही इस चराचर-सृष्टिके प्रेरक हैं। मनुष्यमें चेतनता अथव पेड़-पौधोंमें हरीतिमा सूर्यसे ही है। यदि उन्हे पर्याप्त प्रकाश न मिले तो पत्तियोंका रग पीला पड़ने लगता है; पेड़-पौधे मुरझाने लगते हैं। प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंसे अनेक रोग दूर होते हैं। रिकेट्स और क्षयरोग-जैसी बीमारियों प्रातःकालीन धूपके सेवनसे दूर होती हैं। सूर्यकी किरणोंके सात रंग ही सूर्यके सात अश्व हैं। इसलिये सूर्यका एक नाम सताश्व भी है। विभिन्न रंगोंकी बोतलोंमें जल गरबकर सूर्यके प्रकाशमें रखनेसे उस जलमें रोगोंको नष्ट वरनेकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार चिकित्सा करनेकी प्रणालीको सूर्य-विरण-चिकित्साका नाम दिया गया है। यह प्रणाली एलोपैथी, होम्योपैथी, एक्यूपंक्चर आदि चिकित्सा-प्रणालियोंसे काम सफल नहीं है। हिंदी भाषामें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्रातःकाल सूर्यमिमुख होकर एक विशेष प्रकारसे जो व्यायाम किया जाता है, उसे सूर्य-नमस्कार कहते हैं। इस व्यायामसे शरीर स्वस्थ रहनेके साथ ही रोगोंके आक्रमणवाली सम्मावना नहीं रहती। मध्यप्रदेश तथा अन्य कुछ राज्योंमें बाल्योंसे पी० टी० के स्थानपर सूर्य-नमस्कारका अभ्यास कराया जाता है। यह अच्छी योजना है, अन्य प्रदेशोंमें भी इसका अनुसरण होना चाहिये।

कुष्ठ-जैसे भयंकर रोगवाली सफलचिकित्सा विज्ञान अवतक नहीं खोज सका है। सूर्य भगवान्की आराधनासे

अनेक कुष्ठरोगी स्वस्थ होते देखे गये हैं। भारतमें बहुत-से स्थानोंपर सूर्योपासनाके लिये बालार्क (बाल-दिव्य)के मन्दिर बने हैं, जहाँ प्रतिवर्ष हजारों चर्मरोगी स्वास्थ्य-लाभके लिये जाते हैं। दतिया जिलेके उनाव नामक स्थानपर बालजीका भारत-प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ असाधु कुष्ठके रोगियोंको चामत्कारिकरूपसे स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

प्रातःकाल स्नानकर सूर्यभगवान्को अर्ध देनेका विधान है। यदि आप किसी जलाशयमें स्नान करते हैं तो जलमें खड़े होकर ही अर्ध देते हैं। सूर्यके सम्मुख खड़े होकर अर्ध देनेसे जलकी धाराके अन्तरालसे सूर्यकी किरणोंका जो प्रमाण शरीरपर पड़ता है, उससे शरीरमें स्थित रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं और शरीरमें अज्ञातरूपपरो उजड़का सचार होता है। प्राकृतिक चिकित्साके साथ रंगीग काचके द्वारा सूर्यकिरणोंकी प्रभासे रोगीका उपचार किया जाता है, जिसमें उक्त सिद्धान्त ही कार्य करता है। इसीलिये कहा है—

**अर्धदानमिदं पुण्यं पुंसामारोग्यवर्धनम्।**

भगवती गायत्रीके ध्यानमें भी जो पांच मुख और उनके पांच रगोंका वर्णन है, वह सूर्य-मण्डल-मध्यस्थ शक्तिके पांच दृश्य रंग ही हैं। यथा—

मुक्ताविद्वुपहेमनीलधवलच्छयैर्मुखैर्वीक्षणै-  
र्युक्तामिन्दुनिध्वरत्त्वमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम् ।  
सावित्रीं वरदाभयाङ्गुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं  
शहं चक्रमथारविन्दसुगलं हस्तैर्वहन्ती भजे ॥  
(—शारदाति० २१ । १५ )

गायत्री और सूर्यके अभिन्न होनेका एक प्रमाण इस निम्नलिखित ध्यानसे भी मिलता है—

हेमारभोजप्रवालप्रतिमिजहर्विं चारुषट्टवाङ्गपञ्चौ  
चक्रं शक्ति सपादां स्याणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम् ।  
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं  
मातरपंडं वह्न्यभावं मणिमयमुकुर्णं हारदीसं भजामः ॥

(—शारदाति० १४ । ७१ )

उक्त दोनो ध्यानोंमें स्वरूप और आयुधकी कितनी समानता है। इसीलिये सूर्यके साथ सौरपीठमें ही

सूर्यकी शक्ति—साक्षिंत्री (गायत्री) वा स्थापना और उपासनाका विधान है।

### ज्योतिपां रविरंशुभान्—

श्रीमद्गवत्स्मीताके उक्त कथनके अनुसार ज्योतिषिण्डोंमें सूर्यको परब्रह्मका खस्त्र ही माना गया है। इसीलिये त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्य, गायत्री और प्रणवस्त्र ब्रह्मकी उपासना प्रत्येक द्विजके लिये आवश्यक है। ग्रहके रूपमें भी आद्य गणनाके अनुसार सूर्यकी प्रधानता वतायी गयी है। ज्योतिपश्चात्यके अनुसार विचार करनेपर पता चलता है कि अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा सूर्यके अनिष्ट स्थानमें स्थित होने अवश्य कूर ग्रहके साथ सूर्यका किसी भी प्रकारका योग होनेसे ही अविकाश रोग होते हैं। ग्रहका परस्पर सम्बन्ध चार प्रकारसे होता है; यथा—

प्रथमः स्थानसम्बन्धो दृष्टिजस्तु द्वितीयकः।  
तृतीयस्वेकतो दृष्टिः स्थितिरेका चतुर्थतः॥

यहाँ अनिष्ट स्थानस्थ सूर्यके कारण होनेवाले कुछ रोगोंका उल्लेख किया जाता है—

कर्कराशिस्य शनिदृष्टि सूर्य अर्णोग (वारासार) कारक हैं। इसी योगसे वातव्याधि (गठिया) होती है। बुधसे दृष्टि कर्कराशिस्य सूर्य कफ और वातरोगकारक हैं। भौमदृष्टि कर्कस्थ सूर्य भग्नदरकारक हैं। सिंहस्थ सूर्य रत्नोंत्री-कारक है। कुम्भस्थ सूर्य हृदयरोगकारक हैं। शनि और भौमके साथ अष्टमस्थ सूर्य अपस्मार- (मृगी-) कारक है। शत्रुघ्नाशिस्य सूर्य कुञ्जत्व, नेत्ररोग और कृमिरोगकारक हैं। भौमदृष्टि अष्टमस्थ सूर्य विसर्प और मृत्युकारक है। राहु और भौमके साथ अष्टमस्थ रवि कुष्ठकारक हैं। एकराशिस्य शुक्र-सूर्य-शनि कुप्ररोगकारक हैं। शुक्रसे दृष्टि सिंहस्थ रवि कुष्ठकारक है। शुक्रसे दृष्टि वृथिकस्थ सूर्य कुष्ठकारक हैं। नीचराशिस्य सूर्य कुष्ठकारक है। शुक्रकी

दशामें सूर्यकी अन्तर्दशा हो तो वे उन्माद, उदरगोग, नेत्र और गुल्मोगकारक हैं। सूर्यकी दशामें शुक्रकी अन्तर्दशा हो तो वे शिरोरोग, गल्लोग, इत्तमुद, ऊर, दूष्ट आदि कारक हैं।

इस प्रकार वहुसंख्यक रोगोंके होनेमें सूर्यका कोष प्रधान कारण होता है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए शास्त्रोंमें अर्धदान और त्रिकाल-ग्रन्थ्याका दैनिक विधान किया गया है। साथ ही ग्रहजनित व्याधियोंकी शान्तिके लिये ओरनिमित्तित जलसे लान और रुतधारण मीं निर्दिष्ट क्रिया जाता है। सूर्यकिरणोंके लिये अधिक सुवेदनर्धाल होनेसे यह एव शरीरपर सूर्यकिरणका तत्काल प्रभाव द्योतना है। निम्नलिखित ओरनियोग्ये मिश्रित जलसे लान करना भी वताया गया है—

मैनसिल, छोटी डलावची, देवदार, कुदुम, खदा, मुलहटी, मधु और लाल चन्दन। दस्तादित्ययोगमें सूर्यवर्णीय, आदित्यहृदयलोक्रका पाठ और नेत्ररोगोंमें नेत्रोपनिषद्का पाठ करना बनाया गया है। रोगोपशमनके लिये ब्रन. पूजा-पाठ, सूर्यनमस्कार और ओपयोगचार विद्वित हैं।

जिस प्रकार सूर्यकिरणोंसे आङ्ग जल पृथ्वीपर जीवनदायी है, उसी प्रकार सूर्यकिरणोंसे आप्यायित होकर ह्यमारा मन और शरीर नवीन रूपानि पाना है। यदि विज्ञानकी वर्तमान प्रगति जारी रही तो वह दिन दूर नहीं, जब दैनिक ईधन, विद्युत् और क्षुब्धशान्तिके लिये सौर-ऊर्जाका प्रयोग सम्भव होगा। इस दिशामें तेजीसे काम हो रहा है। इस भौतिक उपलब्धिसे ससारका अत्यधिक कल्याण सम्भालित है। भगवान् भास्तर सर्वया उपास्य है।



## अक्षयुपनिषद्

( नेत्रोगहारी विद्या )

हरिः ॐ । अथ ह साङ्कृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम । स आदित्यं नत्वा चक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत् । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ खेच्चराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ अस्तो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽसृतं गमय । हंसो भगवाज्ञुचिरूपः अप्रतिरूपः । विश्वस्यं द्वृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजालासुदयत्येष सूर्यः । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वादेति ।

एवं चक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽव्रबीच्चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुलेऽन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाथ विद्यासिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान् भवति ।

x            x            x            x

कथा है कि एक समय भगवान् साङ्कृति आदित्यलोकमे गये । वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होने चक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की । चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है । आकाशमे विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है । महासेन ( सहस्रों किरणोकी भारी सेनावाले ) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है । तमोगुणरूपमे

भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है । रजोगुणरूपमे भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है । सत्त्वगुणरूपमे भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है । भगवन् ! आप मुझे असत्त्वसे सत्त्वकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं—उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है । जो अखिल रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिमालाओंसे मणिडत हैं, उन जातवेदा ( सर्वज्ञ, अग्नि सरूप ) सर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले ( भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं । ) ये सहस्रों किरणोवाले और शत-शत प्रकाशसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समक्ष ( उनकी भलाईके लिये ) उदित हो रहे हैं । जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है । दिनका भार वहन करनेवाले विश्वाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है ।

इस प्रकार चक्षुष्मती विद्याके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले— जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे औंखका रोग नहीं होता, उसके कुलमे कोई अधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है । जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है ।

## कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुपोपनिषद्

नेत्रोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है\* ।

### चाक्षुपीविद्या

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि । त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय । मम जात-छन्दः, मूर्यो देवता, चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

\* ॐ तस्याश्चाक्षुपीविद्या अहिर्बुद्ध्यं ऋषिः, गायत्री छन्दः, मूर्यो देवता, चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

रूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मी अमृतं गमय । उणो भगवान्द्युचिरुपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुप्मनी-विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवन्ति । न तस्य कुले अन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् आहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ ( भगवान्का नाम लेकर कहे ), हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव ! आप चक्षुमे चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायें । मेरी रक्षा करें, रक्षा करें । मेरी औखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें । मुझे अपना सुर्वर्ण-जैसा तेज दिखला दें, ढिखला दे । जिससे मैं अन्धा न होऊँ, कृपया वैसे ही उपाय करें, उपाय करें । मेरा कल्याण करें, कल्याण करें । दर्शन-शक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, सबको जडसे उखाड़ दें, जड़से उखाड़

दें । ॐ ( सच्चिदानन्दस्त्रहृष्ट ) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है । ॐ अरुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है । ॐ भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ॐ नेत्रोंके प्रकाश भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाश-विहारीको नमस्कार है । परम श्रेष्ठस्वरूपको नमस्कार है । ॐ ( सबमें क्रिया-शक्ति उत्पन्न करनेवाले ) रजोगुणरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ( अन्धकारको सर्वथा अपने भीता लीन करनेवाले ) तमोगुणके आश्रयमृत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । हे भगवन् । आप मुझको असतसे सतकी ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उण-खरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसखरूप भगवान् सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं— उनके तेजोमय खरूपकी समता करनेवाला कोई भी नहीं है । जो ब्राह्मण इस चक्षुप्मनीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे नेत्र-सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमं कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका प्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।\*

\* चाक्षुपी—( नेत्र—) उपनिषद्की शीघ्र फल देनेवाली विधि—नेत्ररोगसे पीडित ध्रुदालु साधको चाहिये कि प्रतिदिन ग्रातःकाल हृत्वीके घोलसे अनारकी आशाकी कलमसे काँसेके पात्रमें निर्गुणित वत्तीमा यन्त्रको लिये—

|    |    |    |    |
|----|----|----|----|
| ८  | १५ | २  | ७  |
| ६  | ३  | १२ | ११ |
| १४ | ९  | ८  | १  |
| ४  | ५  | १० | १३ |

(मग चक्षुरोगान् गमय शमय) वहुत शीघ्र देखनेमें आता है ।

फिर उसी यन्त्रपर ताँचिकी कटोरीमें चतुर्मुख ( चारों ओर चार वक्तियोंका ) धीका दीपक जलाकर रख दे । तदनन्तर गन्ध-पुष्पादिसे यन्त्रका पृजन करे । फिर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे और हरिद्रा ( हृत्वी ) सी मालाने ‘ॐ ह्रीं हंसः’ इस धीजमन्त्र-की छः मालाएँ जपकर चाक्षुपीपनिषद्के कम-से-कम वारह पाठ करे । पाठके पश्चात् फिर उपर्युक्त धीजमन्त्रकी पाँच मालाएँ जपे । इसके बाद भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक अर्थ देकर प्रणाम करे और मनमें यह निश्चय करे कि मेरा नेत्ररोग शीघ्र ही नष्ट हो जायगा । ऐसा करते रहनेसे इस उपनिषद्का नेत्ररोगनाशमें अद्भुत प्रभाव —पं० श्रीगुरुनन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य

## भगवान् सूर्यका सर्वनेत्ररोगहर चाक्षुषोपनिषद् ( एक अनुभूत प्रयोग )

अक्षि-उगनिपद् भगवान् सूर्यकी नेत्र-रोगोंके लिये एक रामबाण उपासना है। रविवारको किसी शुभ तिथि और नक्षत्रमें प्रातः सूर्यके सम्मुख नेत्र बंद करके खड़े हो या बैठकर—‘मेरे समस्त नेत्ररोग दूर हो रहे हैं’ इस भावनासे रविवारसे वारह पाठ नित्य किये जाते हैं। यह प्रयोग वारह रविवारतकका होता है। यदि पुष्ट नक्षत्रके साथ रविवारका योग मिल जाय तो अति

उत्तम है। हस्त नक्षत्रयुक्त रविवारसे भी यह पाठ प्रारम्भ किया जाता है। लाल कनेर, लाल चन्दन मिले जलसे ताम्र-पात्रसे सूर्यनारायणको अर्ध्य देकर नमस्कार करके पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। यह सैकड़ों वारका अनुभूत प्रयोग है। रविवारके दिन सूर्य रहते विना नमकका एक बार भोजन करना चाहिये।

—पं० श्रीमथुरानाथजी शुक्ल

## चक्षुदृष्टि एवं सूर्योपासना ( चक्षुष्मतीविद्या )

( लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० )

मनुष्यको सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति उसके द्वारा किये गये अपने कर्म, आचार एवं आहार-विहार आदिके अनुसार होती है। रोगजन्य क्लेशोंके मूल कारण भी उसके पूर्वजन्मकृत कर्म तथा मिथ्या आहार-विहारजन्य दोपके प्रक्रोप हैं। धर्मानुष्ठान, पुण्यकर्माचरण एवं सुविहित औपैत्तिक्यसेवनसे भी जो रोग शान्त नहीं होते हैं, उन्हे पूर्वजन्मकृत पापसे उत्पन्न समझना चाहिये। जबतक यह पूर्वजन्मका किया हुआ पाप-दोप निर्मूल नहीं होता, तबतक वह व्याधिरूपमें पीड़ा देता रहता है। ऐसे पाप-दोपकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, देवाराधन, देवाभिषेक, जप, होम, मार्जन, दान, दिव्य मणि एवं यन्त्रका धारण, असिमन्त्रित उत्तम ओषधिका सेवन आदिके रूपमें दैवव्यापाश्रय चिकित्साका विधान मिलता है। चरक ( मूल० अ० ११, चिकित्सा० अ० ३ ), अष्टाङ्गहृदय ( चिकित्सा० अ० १९ ) एवं वीरसिंहावलोक आदि कई ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर दैवव्यापाश्रय चिकित्सा करनेका विधान मिलता है।

भारतीय दर्शन पिण्ड एवं ब्रह्माण्डमें अभेड मानता है। छान्दोग्य एवं वृहदारण्यकोपनिषद् में अक्षिपुरुषविद्या

—( उपकोसलविद्या—) प्रकरणमें चक्षुर्मण्डल तथा सूर्य-मण्डलमें अमेददृष्टि रखकर उपासना करनेका वर्णन मिलता है। वस्तुतः सृष्टि-व्यवस्थामें अथात और अधिदैवत जगत पररपर उपकार्योपकारकरूपमें अवस्थित हैं। सर्वलोकचक्षु भगवान् सूर्य ही पिण्डमें चक्षुःशक्ति-के रूपमें प्रविष्ट हुए हैं। अतः वे ही प्राणियोंकी दृष्टिशक्तिके अधिष्ठाता देव हैं। इसलिये दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति एवं नेत्रगत रोगोंको दूर करनेके लिये भगवान् सूर्यकी आराधना की जाती है।

परशुरामकल्पसूत्रके परिशिष्ट एवं श्रीउमानन्दनाथ-कृत नित्योत्सवमें दूरदृष्टिकी सिद्धि प्रदान करनेवाली चक्षुष्मतीविद्याका वर्णन मिलता है। सोलह मन्त्रोंसे समन्वित समष्टिरूपिणी यह विद्या है। मूलाधारमें ध्यान केन्द्रित करके इसका जप किया जाता है। इस विद्याके सिद्ध होनेपर साधक अन्य देश या द्वीपमें स्थित धन एवं अन्य पदार्थोंको भी यथावतरूपमें देख एवं जान सकता है। इस विद्याका विनियोग, ध्यान एवं पाठ निम्नलिखित-रूपमें मिलता है—

## विनियोग—

चक्षुष्मतीमन्त्रस्य भार्गवं प्रसूपिः, नाना छन्दांसि,  
चक्षुष्मती देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

## ध्यान—

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पं कन्दुकं विभ्रतीं करैः ।  
रौप्यसिंहासनारुद्धां देवीं चक्षुष्मतीं भजे ॥

## चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

ॐ सूर्यायाक्षितेजसे नमः, खेचराय नमः, असतो  
मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । सूल्योर्माऽमृतं  
गमय । उणो भगवान् शुचिरूपः । हंसो भगवान्  
शुचिरप्रतिरूपः ।

वयःसुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋूपयो  
नाधमानाः । अपध्यान्तमूर्णुहि पृथि चक्षुसुगद्यसा-  
न्निधयेव बज्जान् ॥ पुष्टिरीकाक्षाय नमः ।  
पुष्करेक्षणाय नमः । अमलेक्षणाय नमः । कमलेक्षणाय  
नमः । विश्वरूपाय नमः । श्रीमहाविष्णवे नमः ॥

इति पोडशमन्त्रसमष्टिरूपिणी चक्षुष्मतीविद्या  
दूरदृष्टिसिद्धिप्रदा ।

वीरसिंहावलोकमे नेत्रके रोगीके लिये निम्नलिखित  
दैवीचिकित्साका विद्यान मिलता है ।

( १ ) अधिसम्भवरोगाणामाज्यं कनकसंयुतम् ।

अर्थात्—नेत्ररोगी विधिपूर्वक सूर्यायुक्त वृतकी दस  
हजार आहुतियों अग्निमे दे ।

( २ ) जवतक रोगसे मुक्ति न हो तबतक प्रतिदिन  
—ॐ चक्षुर्मे धेहि चक्षुये चक्षुर्विख्यै तनुभ्यः ।  
स चेदं वि च पश्येम ॥ (—काटकसं० १ । ११ । ७८ )  
इस मन्त्रका जप करे एव न्राहणको मुद्रान् ( मूँग )का  
दान दे । तथा—

( ३ ) 'वयः सुपर्णो सुपर्णोऽसि'—इस मन्त्रसे  
वृत्तसहित चरकी एक हजार आठ आहुतियों दे ।

( ४ ) मन्ददृष्टि होनेपर 'उद्यन्दद्यमित्रम्'  
इत्यादि ऋचाओंसे हजार कलशोंद्वारा भगवान् सूर्यका  
अभिषेक करे ।

( ५ ) गहडगायत्री—‘ॐ पश्चिमाय विद्धहे  
सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्मो धरुदः प्रत्योदयात् ॥’  
इस मन्त्रसे वृत्त मिले हुए तिलकी आहुति आँखके रोगको  
दूर करती है ।

( ६ ) नक्तान्ध व्यक्ति—‘विष्णो रराट०, प्रतद्विष्ण०,  
‘विष्णोर्नुकम०’—इनमेंसे किसी एक मन्त्रका जप करे  
तथा शुद्ध एवं पवित्र हो पूर्वाभिमुख वैठकर समिदाज्य-  
तिलकी ( लकड़ी, धी, तिलकी ) एक सौ आठ आहुतियाँ  
प्रतिदिन अग्निमे दे ।

नेत्ररोगोंको दूर करनेके लिये पुराणोक्त नेत्रोपनिपद्  
अथवा यजुर्वेदीय चाक्षुपोपनिपद्का जप करनेका विधान  
भी मिलता है । इन दोनोंके पाठोमे वहुत ही कम  
अन्तर है । दोनों ही उपनिपदें 'चक्षुष्मतीविद्या'के नामसे  
प्रसिद्ध हैं, परंतु इनके प्रयोगमे भिन्नता मिलती है ।  
( प्रयोग-विविसहित इनका पाठ पहले दिया गया है । )

नेत्रोपनिपद्का पाठ कर्मठगुरुमे मिलता है ।  
रविक्रतके अनुप्रानपूर्वक रोगके अनुसार इसका एक सौ,  
एक हजार या दस हजार पाठ पुरथ्ररणके रूपमें करना  
चाहिये । योगीगुरुके अनुसार मूर्योदयके एक वंश  
पश्चात्तक एव सूर्यस्तके एक वंटा पूर्वकालसे लेकर  
इसका पाठ करना आवश्यक है । नेत्ररोगसे पीड़ित  
साधक खडे रहकर अथवा एक पैरपर स्थित होकर  
भगवान् सूर्यके पूर्ण अरुणमण्डलको दोनों नेत्रोंसे देखता  
हुआ हृदयमे जप करे एवं शनैः-शनैः ( सूर्यमण्डलका  
तेज नेत्रोंको सद्य होनेकी श्रमताके साथ-साथ ) जपकी  
संख्यामें वृद्धि करे ।

पूर्णसूर्णे दिनमणौ नयनोत्पलाभ्या-  
मालोकयेद्वदि जपन् ननु निर्निमेषम् ।  
आरुद्ध उत्तपदे शनैः प्रवृद्धिं  
कुर्यादुपासनविधिं प्रतिसंध्यमेतत् ॥

सूर्योदयानन्तरहोरैकमात्रमस्ताच्च प्राक् तावदेवेति  
भावः ( योगीगुरुः ) ।

नेत्रोपनिषद् ( चाक्षुषीविद्याका पाठ पृष्ठ  
३३१ मे है । )

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद् के अन्तिम भागमें नेत्रो-  
पनिषद् की अपेक्षा कुछ मन्त्र अधिक मिलते हैं । इस  
उपनिषद् के पाठके आरम्भ एवं अन्तमे—‘सह नावचतु०’  
इस शान्तिमन्त्रका पाठ करना चाहिये । इस चाक्षुषो-  
पनिषद् की प्रयोगविधि ‘कल्याण’ के २ इवे वर्षके उपनिषद्-  
अङ्कमें प्रकाशित हुई थी ।

उपर्युक्त ढोनो उपनिषदोकी विद्यासिद्धिका उपाय  
यह बताया गया है कि ये विद्याएँ आठ ब्राह्मणोको  
ग्रहण करवा देनेपर सिद्ध हो जाती हैं । इन्हे  
लिखकर आठ शुचि सुसंस्कृत ब्राह्मणोको दे तथा उन्हे  
शुद्ध उच्चारणसहित पाठविधि स्थिता दे—ऐसा करनेपर  
इनकी सिद्धि हो जाती है । उसके बाद इन्हे अपने या  
अन्यके हितके लिये प्रयोगमें लाना चाहिये ।

वत्तीसायन्त्र\* गूर्योपासनासे सम्बद्ध है तथा  
सर्वदुःखनिवारण एवं अभीष्टकार्यकी सिद्धिके लिये इसके  
दो अन्य प्रयोग कर्मठगुरुमें मिलते हैं—

(१) रविवारके दिन इस यन्त्रको भोजपत्र या कागज-  
पर हरिद्राके रससे अनारकी लेखनीके द्वारा लिखे एवं इस  
यन्त्रके नीचे अपना मनोरथ लिख दे । पुनः इसपर  
रुई बिछाकर यन्त्रलिखित कागजको लपेटे दे और वत्ती-  
रूपमें बनाकर इससे ज्योति प्रज्वलित करे । इसके बाद  
हरिद्राकी मालासे—‘ॐ ह्री हंसः’—इस भास्करवीज-  
मन्त्रका एक हजार एक सौ बार जय करे । इस  
प्रकार लगातार सात रविवारको निर्दिष्ट विधिका  
अनुष्ठान कर मनुष्य सभी दुःखोमें मुक्त होकर अत्यन्त  
सुख पाता है ।

(२) रविवारके दिन प्रातःकाल उठकर स्नान करके  
हरिद्रारससे कास्यपात्रमें वत्तीसायन्त्र लिखे और उसके  
ऊपर चतुर्मुख दीपककी स्थापना करके सूर्योदय होनेपर  
मन्त्रका पञ्चोपचार पूजन करे । दोनों हाथोंसे इस  
यन्त्रपात्रको उठा ले और सूर्यके समुख स्थित होकर—  
‘ॐ ह्री हंसः’—इस मन्त्रका जप करे । सूर्य दिनमें जैसे-  
जैसे परिवर्तित होते जायें, वैसे-वैसे साधक भी वूमता  
जाय । सूर्यके अस्त होनेपर उन्हे अर्घ्य देकर प्रणाम  
करे, इस प्रकार अनुष्ठानको सम्पन्न करके मिटान भोजन  
कर भूमिपर शयन एवं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे ।  
इस प्रकार कार्यकी गुरुताके अनुसार प्रति रविवारको  
सवा मास, तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षतक  
इसका अनुष्ठान करनेसे भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सभी  
दुर्दृह कार्य सिद्ध होते हैं । अस्तु ।

चक्रुपतीविद्याके चमत्कारका एक अनुभवपूर्ण  
प्रयोग, पाठकोके लाभार्थ दिया जा रहा है ।  
यह प्रयोग कुछ दिन पूर्व ‘स्वास्थ्य’ पत्रिकाके  
अनुभवाङ्क ( फरवरी, १९७८ )मे छपा था । लेखकके  
विवरणके अनुसार राजपीपला-( गुजरात )के प्रसिद्ध  
डाक्टर श्रीनरहरि भाईको सन् १९४०में Detach-  
ment of Retina नामक भयंकर नेत्ररोग हुआ ।  
इस रोगमे ऑप्सिका पर्दा फट जाता है एवं ज्योति आंशिक  
रूपमें या सर्वाशमे चली जाती है । सर्जनोके प्रयत्न  
असफल रहनेपर डाक्टर साहब अत्यन्त निराश हो  
गये । उक्त डाक्टर साहबके घरपर प्रातःस्मरणीय पूज्य  
महात्मा पुरुष श्रीरङ्ग अवधूत महाराज आया करते हैं ।  
ये महात्मा ईश्वरका दर्शन किये हुए पवित्र सिद्ध अवतारी  
पुरुष माने जाते हैं । डाक्टर साहबकी प्रार्थनापर पूज्य

\* द्रष्टव्य—पृष्ठ ३३२ की टिप्पणी जहाँ वह विधि पूर्ववत् दी गयी है ।

श्रीअवधूतजी महाराजने उन्हे प्रसादखम्बूप विधिसहित 'चक्षुष्मतीविद्या' प्रदान की । इस विद्याका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेसे डाक्टर साहबको नेत्रज्योति प्राप्त हुई । उसके बाद उन्होंने कई वर्षोंतक जनसेवा की तथा उनकी दृष्टि-शक्ति अब भी बनी हुई है । डाक्टर साहब कहते हैं कि इस चक्षुष्मतीविद्याके प्रभावो आज मेरी नेत्र-ज्योति है, अन्यथा मैं बाबका अन्धा हो गया था । उन्होंने इस विद्याकी प्रतियाँ छपवाकर निःशुल्क प्रसादीके रूपमें जनसमुदायको वितरित की हैं । श्रद्धा एवं पैर्यके साथ विधिपूर्वक इस विद्याका प्रयोग करनेसे नेत्रके अनेकविध रोग सर्वांशमें दूर हो सकते हैं ।

पूज्य श्रीअवधूतजीद्वारा बनायी गयी चक्षुष्मती-विद्याका पाठ एवं इसके प्रयोगकी विधि नीचे दी जा रही है ।

**प्रयोगविधि—प्रानः** शौच आदिसे निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्या वन्दनके बाद पूजाश्चानगर वैठिये और गाचमन, प्राणायाम करनेके नाद नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये चक्षुष्मती-विद्याके जपका संकल्प कीजिये । फिर गन्ध-पुष्पादिसे सूर्यठेवका पूजन कीजिये । पूजा-द्रव्यके अभावमें मानसो-पचारसे पूजन कीजिये । इस प्रकार भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके बाद एक कांस्यधातुकी थाली या अन्य किसी चौड़े मुखवाले कांस्यपात्रमें शुद्ध जल भरकर उसे ऐसी जगहपर रखिये, जिससे उस पात्रके जलमें सूर्य देवताका प्रतिविम्ब दीखता रहे । नेत्ररोगी साधकवो उस पात्रके सामने पूर्वाभिमुख बैठकर पात्रके जलके भीतर सूर्य-ग्रतिविम्बकी ओर दृष्टि रखकर भावनायुक्त अर्थानुसन्धानके साथ दस, अट्टाइस या एक सौ आठ पाठ करना चाहिये । यदि नित्य इतने पाठके लिये समय न मिले तो प्रतिदिन भले ही दस बार पाठ किया

जाय, 'परंतु रविवारके दिन अट्टाइस या एक सौ आठ पाठ करनेका प्रयत्न अवश्य किया जाय । यदि प्रारम्भमें नेत्र सूर्य-ग्रतिविम्बकी ओर देखना सहन न कर सकें तो घृत-दीपकी ज्योतिका ओर देखने हृषि पाठ कर सकते हैं । ( नेत्रांके अशाम होनेपर जलमें प्रतिविम्बित सूर्य-विम्बकी ओर देखते हृषि ही पाठ करना चाहिये ) । पाठ पूर्ण होनेपर जप श्रांगूर्धनारायणको अर्पित करके नमस्कार कीजिये । पिर उस कांस्यपात्रश्चित शुद्ध नल्लो अधखुले नेत्रमें धूरे-धूरे छिपकाव कीजिये । जल छिपकनेके बाद दोनों आँखें पाँच मिनटक बंद रखिये । तत्पश्चात् सभी विधियाँ पूर्ण कर अपने हैंनिक कांग कीजिये ।

**पाठके उपरान्त नित्य—ॐ वर्षोदा असि वर्षो मे देहि खाहा**—इस मन्त्रको बोलते हृषि गोवृतकी दस आहुतियाँ अग्निमें ढेनी चाहियें । रविवारके दिन वास आहुतियाँ आवश्यक हैं । यदि आहुति न दे समें तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु यदि पाठके साथ नित्य यज्ञाहुति भी दी जा सके तो उत्तम है ।

### चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

अस्याश्चक्षुष्मतीविद्याया व्रत्ता ऋषिः । गायत्री-च्छन्दः । श्रीसूर्यनारायणो देवता । ॐ धीजम् । नमः शक्तिः । खाहा कीलकम् । चक्षुरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुः तेजः शिरो भव । मां पाहि पाहि । त्वरिणं चक्षुरोगान् प्रशमय प्रशमय । मम जातस्त्वं तेजो दर्शय दर्शय, यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय फलपय, कृपया कल्याणं कुरु कुरु । मम यानि यानि पूर्वजन्मो-पार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि

निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमश्शुस्तेजोदात्रे दिव्य-  
भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय ।  
ॐ नमो भगवते श्रीसूर्योयाद्वितेजसे नमः । ॐ  
खेचराय नमः । ॐ महालेनाय नमः । ॐ  
तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्याय  
( सत्याय ? ) नमः । ॐ अस्तो मा  
सद्गमय । ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय । ॐ मृत्यो-  
र्माऽमृतं गमय । उरणो भगवाज्ञुचिरिल्पः । हंसो  
भगवाज्ञुचिरिप्रतिरूपः ॥

ॐ विश्वरूपं धृणिनं जातवेदसं  
हिरण्मयं ज्योतीरुपं तपन्तम् ।  
सहस्रशिमः शतधा वर्तमानः  
पुरः प्रजानामुदयत्येप सूर्यः ॥  
ॐ नमो भगवते श्रीसूर्योयादित्याया-  
द्वितेजसेऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा ॥  
ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं  
ग्रियमेधा ऋषयो नाथमानाः ।  
अप ध्यान्तमूर्णुहि पूर्धि-  
चक्षुर्मुख्यस्माशिधयेव घञ्चान् ॥  
ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः । ॐ पुष्करेक्षणाय नमः ।  
ॐ कमलेक्षणाय नमः । ॐ विश्वरूपाय नमः ।  
ॐ श्रीमहाविष्णवे नमः । ॐ सूर्यनारायणाय नमः ॥  
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, सम्पूर्ण विश्व जिनका  
रूप है, जो किरणोंमें सुशोभित एव जातवेदा ( भूत

आदि तीनों कालोंकी वातको जाननेवाले ) है, जो ज्योतिः-  
स्वरूप, हिरण्मय ( सुवर्णके समान कान्तिमान् ) पुरुषके  
रूपमें तप रहे हैं, इस सम्पूर्ण विश्वके जो एकमात्र उत्पत्ति-  
स्थान हैं, उन प्रचण्ड प्रतापवाले भगवान् सूर्यको हम  
नमस्कार करते हैं । वे सूर्यदेव समस्त प्रजाओं ( प्राणियों )  
के समक्ष ( उनके कल्याणार्थ ) उदित हो रहे हैं ।

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी  
अहोवाहिनी स्वाहा ।

षड्विव ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् आदित्यको नमस्कार  
है । उनकी प्रभा दिनका भार वहन करनेवाली है, हम उन  
भगवान् के लिये उत्तम आहुति देते हैं ; जिन्हे मेवा अन्यन्त  
प्रिय है, वे ऋषियाण उत्तम पंखोंवाले पश्चीके रूपमें  
भगवान् सूर्यके पास गये और इस प्रकार प्रार्थना करने  
लो—‘भगवन् ! इस अन्धकारको छिपा दीजिये, हमारे  
नेत्रोंको प्रकाशसे पूर्ण कीजिये तथा तमोमय बन्धनमें  
बँधे हुए से हम सब प्राणियोंको अपना दिव्य प्रकाश  
देकर मुक्त कीजिये । पुण्डरीकाक्षको नमस्कार है ।  
पुष्करेक्षणको नमस्कार है । निर्मल नेत्रोंवाले—अमलेक्षण-  
को नमस्कार है । कमलेक्षणको नमस्कार है । विश्वरूपको  
नमस्कार है । महाविष्णुको नमस्कार है ।’

इस ( ऊपर वर्णित ) चक्षुष्पतीविद्याके द्वारा  
आराधना किये जानेपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्य-  
नारायण संसारके सभी नेत्र-पीडितोंके कष्टको दूर करके  
उन्हे पूर्ण दृष्टि प्रदान करें—यही प्रार्थना है ।

\* उपर्युक्त अशका अर्थ पृष्ठ ३३२ के मूलके साथ देखें ।

+ ‘पुण्डरीकाक्ष’, ‘पुष्करेक्षण’ और ‘कमलेक्षण’—इन तीनों नामोंका एक ही अर्थ है—कमलके समान नेत्रोंवाले  
भगवान् । कमलके इन नेत्रों तथा उपमादिकी सूक्ष्मताओंको समझनेके लिये थमरकोशकी क्षीरस्तामी, अनुदीक्षितकी टीकाएँ  
आदि देखनी चाहिये । साहित्यलहरी प्रपञ्चसारके अनुसार समानार्थक शब्दोंमें भी मन्त्रके चमत्कार सनिहित रहते हैं ।

## सूर्य और आरोग्य

(लेखक—डॉ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम.० ए०, पी-एन्स० डी०, डी० लिट०, डी० एस-सी०)

भगवान् मरीचिमालीकी महत्त्वाका प्रतिपादन मारतीय वाड्मयकी वह अमूल्य थाती है, जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर मारतीय मेघाने स्वयंको कृतकृत्य करनेका बहुशः सफल प्रयास किया है। भगवान् सूर्य आकाशमण्डलके समुज्ज्वलमणि, खेचर-समुदायके चक्रवर्ती, पूर्वदिशाके कर्णभरण, ब्रह्माण्ड-सदनके दीपक, कमलसमूहके प्रिय, चक्रवाक-समुदायका शोक हरनेवाले, भ्रमरसमूहके आश्रयभूत, सम्पूर्ण दैनिक कार्यव्यवहारके सूत्रधार तथा दिनके स्वामी हैं। ये ही दिन और रातके निर्माता, वर्षको बारह मासोमे विभक्त करनेवाले, छहो ऋतुओके कारण यथासमय दक्षिण और उत्तर दिक्का आश्रय लेकर दक्षिणायन तथा उत्तरायणके विधायक हैं। ये ही युगमें, तथा कल्पमें विधान करते हैं। ब्रह्मकी परार्द्ध-सत्या इन्हींके आश्रयसे सम्पन्न होती है। ये ही संसारके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं। इन्हीं सब विशेषताओके कारण वेद इनकी बन्दना करते हैं। गायत्री इन्हींका गान करती है और ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हींकी उपासना किया करते हैं। ये ही भगवान् श्रीरामके कुलके मूल हैं। भगवान् नारायणका नाम भी इनके साथ जुड़कर अमित तेजस्तिका ज्ञापन करके मर्त्यलोकवासियोको परमपिताके प्रति अपने दायित्वको निभानेकी प्रेरणा देता है। श्रीमूर्यनारायण हमारी दैनिक अर्चाके देव हैं।

अठारह पुराणोंमें भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि मूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, सुलोक, भूर्लोक,

स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाजन होता है—

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं घौर्मही भिदा ।  
स्वर्गापवर्गां नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥

(५।२०।४५)

इसके साथ ही वहाँ यह भी स्पष्ट रूपमें बताया गया है कि भगवान् मूर्य ही देवना, तिर्यक्, मनुष्य, मरीसृप, लतावृभादि एव समस्त जीवसमुदायके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं—

देवतिर्यङ्गमनुप्याणां सरीसुपसर्वीरुधाम् ।  
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दग्धीश्वरः ॥

(५।२०।४६)

भगवान् सूर्यकी स्थिनिगति आदिका परिचय श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें वीसवें अध्यायसे वार्द्दसवें अध्याय पर्यन्त दिया हुआ है।

श्रीविष्णुपुराणके द्वितीय अंशमें आठवें अध्यायसे दसवें अध्यायतक भगवान् सूर्यके वैशिष्ट्य, स्थिनिगति आदिका सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। दसवें अध्यायमें विभिन्न मासपरक सूर्यके वारह अन्वर्यक नाम इस प्रकार बताये गये हैं—

चैत्रके मूर्य हैं—धाता, वैशाखके अर्यमा, ज्येष्ठके मित्र, आपाहके वरण, श्रावणके इन्द्र, भाद्रपदके विवस्वान्, आश्विनके पूरा, कार्तिकके पर्जन्य, मार्गरीपके अंगु, पौषके भग, माघके त्वष्टा तथा फाल्गुनके विष्णु ।

भगवान् सूर्यके इन नामोका वैज्ञानिक महत्त्व है, केवल परम्परानिर्वहणार्थ यह नामकरण नहीं किया गया है।

चैत्रके सूर्यका नाम है—धाता; धाता कहते हैं—निर्माता ( Creator, ), संग्राहक ( Preserver, ), समर्थक ( Supporter, ) प्राण ( The soul, ) और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माको। उक्त सभी नामोंकी विशेषताएँ भगवान् सूर्यमें संनिहित हैं। वे निर्माता भी हैं और रसोंके संग्राहक भी। ऑक्सीजन ( Oxygen )के अधिष्ठान होनेके कारण प्राणभूत भी हैं और धान्यमें रसोत्पादक होनेके कारण समर्थक तथा प्राणरक्षक होनेके कारण विष्णु भी हैं।

वैशाखके सूर्यका नाम है अर्यमा। अर्यमा कहते हैं—पितृश्रेष्ठको ‘पितृणामर्यमा चासि’ ( गीता १०। २९ ) अर्क ( आक ) के पौधेको जिस प्रकार विग्रहण अपने वंशजोंके उपकारमें सञ्चर रहते हैं, उसी प्रकार सूर्य भी अर्कवृक्षकी भाँति सदा हरे-भरे रहनेकी प्रेरणा देते हैं। अतः यह नाम भी अन्वर्थक है।

ज्येष्ठके सूर्य हैं मित्र। मित्र कहने हैं—वरुणके सहयोगी आदित्यको, राजाके पडोसी तथा सुहृद ( Friend, ) को। सूर्य वर्षाकृतुके मित्र और पडोसी है अर्थात् आपादमें वर्षा होनेसे पूर्व सूर्य अपने प्रभावसे भूमण्डलको तपाकर वर्षागमनकी पृष्ठभूमि तैयार करके एक सुहृदकी भाँति भूमण्डलका हितसाधन करते हुए वरुणके सहयोगी आदित्य तथा मित्र दोनों ही नामोंको अन्वर्थक बनाते हैं।

आपादके सूर्यका नाम है वरुण। वरुणको ‘अपाम्पनि’ कहा गया है, जिसका अर्थ है—जलके स्थापी। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हे अपना खरूप बतलाते हुए भगवद्गीतामें कहा है—‘वरुणो यादसामहम्’ ( १०। २९ ) इसके अतिरिक्त समुद्र ( Ocean )को भी

वरुण कहते हैं। आपाद वर्षाकृतुका मास है। सूर्य समुद्रीय जलका आकर्षण कर वरुणरूपमें इसी मासमें उसे जलहितार्थ लौटाकर ‘आदानं हि विसर्गाय सतां वारिसुचाभिव’ की उक्तिको सार्थक बनाते हुए अपने मासाधिष्ठात्रभूत नामको अन्वर्थक बनाते हैं।

श्रावणके सूर्यका नाम है इन्द्र। इन्द्र कहते हैं—देवाधिप ( The Lord of Gods, ), वर्षाधिप ( The God of rain, ), वर्षा-शासक ( ruler ) तथा सर्वोक्तुष ( best ) को। इस मासमें सूर्य इन्द्ररूपमें मेघोंका नियन्त्रण कर आवश्यकतानुसार वर्षणद्वारा पृथ्वीको आप्लावितकर अपनी सर्वोक्तुषता तथा शासनपटुताकी अमिट छाप जन-मनपर छोड़ते हैं। अतः यह नाम कितना अन्वर्थक है—इसे सहज ही जाना जा सकता है।

भाद्रपदके सूर्यका नाम है विवसान्। विवसान् कहते हैं—वर्तमान मनु, अर्कवृक्ष तथा अरुण आदिको। भाद्रपदकी उषा कितनी उम्र होती है—इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अनेक कृपक इससे व्यथित हो संन्यासीके समान घर त्याग देते हैं। सूर्य ब्रह्माकी भाँति इस समय धरापर अपनी तेजस्विताकी छाप अङ्गित करने लगते हैं—‘त्वया विवस्वन्तमिवोल्लिलेख’ ( किरात, ५। ४८; १७। ४८ आदि )। इस प्रकार सूर्यका यह नाम भी अन्वर्थक है।

आश्विन मासके सूर्यका नाम है—पूषा। पूषाका भावार्थ है—पोषक तथा गणक; क्योंकि इस मासके सूर्य धान्यका पोषण भी करते हैं और आकाशमें उन्मुक्त-प्रकट होकर सहविचरण भी। अतः यह नाम भी अन्वर्थक और उसके मासगत वैशिष्ट्यका परिचायक है—‘सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति’ ( नीतिशतक ११४ )।

कार्तिकके सूर्यका नाम है—पर्जन्य; पर्जन्य कहते हैं—बरसने अथवा गरजनेवाले मेघको—A rain cloud, Thundering cloud—‘प्रघृष्ण इव पर्जन्यः सारंगौरभिनन्दितः’ (श्ल० १७। १५)। वर्षा (Rain) तथा इन्द्र (God of rain) को शरद् ऋतुमें पर्जन्य नाम देना कहाँतक सत्य है, इसके लिये गो० तुलसीदासजीके इस कथनको मानससे उद्धृत किया जा सकता है कि ‘कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी योरी’। इस कालमें सूर्य पर्जन्य- (मेघ) के रूपमें सृष्टिकी पिण्यासाकुल आत्माको परितोष देते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाते हैं और इन्द्र-रूपमें सूखी सरदीको आर्द्रतासे सिंचित कर नियन्त्रित करते हैं। नामकी उपयुक्ता यहाँ भी पूर्ववत् है।

मार्गशीर्षके सूर्यका नाम है—अंशुः। अंशुका अर्थ है—रश्मि (Rays), ऊष्मा (hot)। अपनी ऊष्मरश्मियोसे मार्गशीर्षके प्रखर शीतको अपसारित करनेकी क्षमतासे सम्बन्ध सूर्यका यह मासगत नाम भी सार्थक है।

पौपके सूर्यका नाम है—भग। भग कहते हैं—सूर्य (Sun), चन्द्रमा (Moon), शिव-सौभाग्य (Good-fortune) प्रसन्नता (happiness), यश (fame), सौन्दर्य (beauty), प्रेम (love) गुण-धर्म (merit-religious) प्रयत्न (Effort), मोक्ष (Fine beatitude) तथा शक्ति (strength) को। पौपके भयंकर शीतमें सूर्य चन्द्रकी भाँति शैत्य बढ़ाकर, शिवकी भाँति कल्याण कर, प्रकृतिमें स्वर्गीय सुप्रामाकी सृष्टि कर, ठिठुरते हुए व्यक्तियोंको ऊष्मप्रदानद्वारा धार्मिक कृत्योंके सम्बन्धान्वय शक्ति प्रदान कर तथा शीतसे मोक्ष प्रदान कर अपना नाम अन्वर्थक बनाते हैं।

माघके सूर्यका नाम है—‘त्वष्टा’। त्वष्टा कहते हैं—वर्ढई (carpenter), निर्माता (builder) तथा विश्वकर्मा

(The architect of the Gods)—देवशिल्पीको। ये नाम भी सार्थक हैं; क्योंकि इस मासमें सूर्य प्रकृतिके जराजर्जरित उपादानोंको कुशल शिल्पीकी भाँति तराशकर (काट-डॉटकर—खरादकर) अभिनवरूप प्रदान करते हैं और त्वष्टाकी भाँति भूमण्डलको सानपर तराशकर उज्ज्वल रूप देनेकी दिशामें अग्रसर होने लगते हैं।

फाल्गुनके सूर्यका नाम है—विष्णु, पराशरजीके वचनानुसार विष्णुका अर्थ है—रक्षक (protector), विश्वव्यापक, सर्वत्रानुविष्ट।

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।  
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेषात् तोः प्रवेशनात् ॥  
(—विष्णुपुराण ३। १। ४५)

‘यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी ही शक्तिसे व्याप्त है, अत. वे विष्णु कहलाते हैं; क्योंकि ‘विश्व’ धातुका अर्थ प्रवेश करना है।’

इस मासमें पहुँचते-पहुँचते सूर्य शक्तिसम्बन्ध हो शिशिर-विजडितसृष्टिमें शक्तिसंचार करनेमें समर्प हो जाते हैं। उनकी उत्पादन-शक्ति प्रखर हो उठती है। अग्निकी तेजस्विता उनमें प्रत्यक्षरूपसे अनुभूत होने लगती है तथा एक धर्मनिष्ठ व्यक्तिकी भाँति वे निजधर्मका तत्परतासे पालन करते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाने लगते हैं।

इस प्रकार पुराणोक्त सूर्यकी द्वादशमासीय महत्त्वापर स्वल्पमात्र दृष्टिपात कर हम अपने प्रतिपाद्य विषयकी ओर अग्रसर होते हैं।

वेदोंमें जहाँ अपने उपाङ्गभूत आयुर्वेदका वर्णन है, वहाँ आयुर्वेदान्तर्गत चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियो—सूर्यचिकित्सादिका भी उल्लेख है। प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य-चिकित्साका विशेष स्थान है। वेदोंमें सूर्यचिकित्साकी महत्त्वापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। वेद

और पुराण—दोनोंमें ही सूर्यको विश्वकी आत्मा बताया गया है। वेद जहाँ ‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’( यजु० ७ । ४२ ) कहते हैं वहीं पुराण भी—‘अथ स एष आत्मा लोकानाम् ।’( भा० ५ । २२।५ ) कहते हैं ।

संसारका सम्पूर्ण भौतिक विकास सूर्यकी सत्तापर निर्भर है। सूर्यकी शक्तिके बिना पौधे नहीं उग सकते, वायुका शोधन नहीं हो सकता और जलकी उपलब्धि भी नहीं हो सकती है। सूर्यकी शक्तिके बिना हमारा जन्म तो दूर रहा, पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असम्भव होती ।

प्रकृतिका केन्द्र सूर्य हैं। प्रकृतिकी समस्त शक्तियों सूर्यद्वारा ही प्राप्त हैं। आत्मापर शरीरकी भौति सूर्यकी सत्तापर जगत्की स्थिति है। यदि धारण करनेके कारण धराको माता माना जाय तो पोषणके कारण सूर्यको पिता कहा जा सकता है। शारीरिक रसोका परिपाक सूर्यकी ही ऊर्ध्वासे होता है। शारीरिक शक्तियोका विकास, अङ्गोंकी पुष्टि तथा मलोका शरीरसे निःसरण आदि कार्य सूर्यकी महत्-शक्तिद्वारा ही सम्भव होते हैं।

सूर्यमें ऐसी प्रवल रोगनाशक शक्ति है, जिससे कठिन-से-कठिन रोग दूर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ उन्मुक्त वातावरणमें रहनेवाले उन ग्रामीणोंको लिया जा सकता है; जो बिना पौष्टिक आहारके भी स्वस्थ रहते हैं, वैसे नगरोंमें देखनेको भी नहीं मिलते। इसके विपरीत सूर्यके दर्शन न होनेसे ही वहाँके प्राणी अनेकानेक रोगोंके शिकार बने रहते हैं। खियोंमें पाये जानेवाले रोग आस्टोमलेशियाका कारण Astromalaha भी सूर्य-तापकी कमी ही है। महिलाओंमें अधिक रोग पाये जानेका कारण सूर्यके पूजनादिसे दूर रहना ही है। कुछ व्यक्ति खियोंके व्रतादि करनेके पक्षपाती नहीं होते। वे उनके लिये सूर्यके पूजनादिको भी

हितकर नहीं मानते। उनकी इस धारणाने आधुनिक बहुत-सी खियोंमें सूर्य-व्रतादिके प्रति जो असुचि उत्पन्न की उससे उनमें रोगोंकी अधिकता होने लगी और उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया और सतत गिरता चला जा रहा है; क्योंकि सूर्यकी साधनात्मक सर्वग न रहनेसे रोगका होना स्वाभाविक है।

स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है। इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर हमारे स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है, इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर ही हमारे ऋषियों और आचार्योंने सूर्य-प्रणाम एवं सूर्योपासना आदिका विधान किया था। पाश्चात्य विद्वान् दो० सोलेने लिखा है—‘सूर्यमे जितनी रोगनाशक शक्ति विद्यमान है, उतनी संसारके अन्य किसी भी पदार्थमे नहीं है। कैन्सर, नासूर आदि दुस्साध्य रोग, जो विजली और रेडियमके प्रयोगसे अच्छे (ठीक) नहीं किये जा सकते ये, सूर्य-रश्मियोंका ठीक ढंगसे प्रयोग करनेरो वे अच्छे हो गये।’

सूर्यकी रोगनाशक शक्तिका परिचय देते ही अर्थवदमें लिखा है—

अपचिनः प्र पतत सुपर्णो वस्तेरिच ।  
सूर्यः कृष्णोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥  
(-६ । ८३ । १ )

‘जिस प्रकार गरुड़ वसतिसे ढौड़ जाता है, उसी प्रकार अपचनाटि व्याधियाँ दूर चली जायेंगी। इसके लिये सूर्य ओपथि बनाये और चन्द्रमा अपने प्रकाशसे उन व्याधियोंका नाश करे।’

इस मन्त्रमें रपष्टरूपसे कहा गया है कि सूर्य ओपथि बनाते हैं, विश्वमें प्राणरूप है तथा वे अपनी रश्मियोद्वारा स्वास्थ्य ठीक रखते हैं; किंतु मनुष्य अज्ञान-

वश अन्धेरे स्थानमें रहते हैं और सूर्यकी शक्तिसे लाभ न उठाकर सदा रोगी बने रहते हैं।

डॉ० होनगने लिखा है—‘रक्तका पीलापन, पतलापन, लोहेकी कमी और नसोकी दुर्बलता आदि रोगोंमें सूर्य-चिकित्सा लाभदायक पायी गयी है।’

सुप्रसिद्ध दार्शनिक ‘न्योची’ का मत है कि ‘जबतक ससारमें मूर्य विद्यमान हैं तबतक लोग व्यर्थ ही दयाओंकी अपेक्षामें भटकते हैं। उन्हे चाहिये कि शक्ति, सान्दर्ध और स्वास्थ्यके केन्द्र इन (सूर्यदेव) की ओर देखें और उनकी सहायतासे वास्तविक अवस्थाको प्राप्त करें।’

हमारे ऋषि मूर्य-चिकित्साके रहस्यसे अपरिचित नहीं थे। प्राचीनकालमें पाठ याद न करनेपर अथवा किसी प्रकारकी अविनय करनेपर धूपमें खडे रहनेका दण्ड दिया जाता था। योगी धूपमें तप करते थे। सूर्य-सेवनसे कुष्ठनाशकी तो अनेकों कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

**रोगका कारण—**सूर्यचिकित्साके सिद्धान्तके अनुसार रोगोत्पत्तिका कारण शरीरमें रंगोका घटना-बढ़ना है। रंग एक रासायनिक मिथ्रण है। हमारा शरीर भी रासायनिक तत्वोंसे बना हुआ है। जिसके जिस अङ्गमें जिस प्रकारके तत्वकी अविकता होती है, उसके उसी अङ्गमें उसके अनुच्छेद उस अङ्गका रंग हो जाता है।

शरीरके विभिन्न अङ्गोमें विभिन्न रंग होते हैं; जैसे चर्मका गेहूँआँ, केशोंका काला पर्व नेत्रगोलकका इतेन आदि। शरीरमें किस तत्वकी कमी है, यह अङ्ग-परीक्षा-द्वारा जाना जा सकता है; जैसे—चेहरेकी निस्तेजताका कारण रक्ताल्पता है। शरीरमें रंग एक विशेष तत्व है। इसमें घट-बढ़ होना रोगका कारण माना जाता है। सूर्यमें सातों रंग विद्यमान रहते हैं, इसीलिये विभिन्न रंगोंवाली बोतलोंमें जल भरकर उन्हे धूपमें रखकर उन रंगोंको उन रंगीन बोतलके माध्यमसे उस जलमें आकर्षित

किया जाता है और फिर वह जल ओपविके मूलपरमें रोगियोंको इस दृष्टिसे दिया जाता है कि जिससे रोगियोंके शरीरसे तत्तद् रंगोंकी कमी दूर हो और वे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करें।

**अर्थवेद—**(१।२२)में वर्णचिकित्साके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

अनु सूर्यमुदयतां हृदयोतो हरिमा च ते ।  
गो रोहितस्य वर्णं तेन त्वा परिदध्मसि ॥

अर्थात्—ते हरिमा-तुम्हारा पीलापन (पाण्डु, कामला आदि) तथा हृदयोतो—हृदयकी जलन (हृदय-रोग), सूर्यमनु-सूर्यकी अनुकूलतासे, उत्तरवत्ताम्-उड़ जायें, गोः—रशियोंके तथा प्रकाशके उस, रोहितस्य-लाल, वर्णं-रंगसे, त्वा-तुझे, परि-सब और, दध्मसि-धारण करता है।

भाव यह है कि पाण्डु-रोग और हृदयोंमें सूर्योदयके समय सूर्यकी लालरशियोंके प्रकाशमें खुले शरीर बैठना तथा लाल रंगकी गौंके दूधका सेवन करना बहुत ही लाभदायक होता है।

रोगनिवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायुर्का प्राप्तिके लिये भी प्रातःकाल सूर्योदयके समय उनके रक्तवर्णनाले प्रकाशका सेवन करना चाहिये। अर्थवेदमें रक्तवर्णसे दीर्घायु-प्राप्तिका उपाय लिखा है—

परि त्वा रोहितैर्वर्णं दीर्घायुल्वाय दध्मसि ।  
यथायमरपा असदध्यो अहरितो भुवत् ॥

(१।२२)

अर्थात्—दीर्घायु-प्राप्तिके लिये तुम्हें लाल रंगोंसे चारों ओर धारण करता हूँ, जिससे पाण्डुता दूर होकर नीरोग हो जाऊँ, भाव स्पष्ट है लाल वर्णोंके प्रयोगसे पाण्डुरोग और तज्ज्य शारीरिक फीकापन दूर हो जाता है तथा मानव आरोग्यके साथ-साथ दीर्घायु प्राप्त करता है।

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादित किया गया है—

या रोहिणीदेवत्या गावो या उत रोहिणीः ।

रूपरूपं वयो वयस्तामिद्वा परिदध्मसि ॥

(—अथर्व० १ । २२ )

अर्थात् या देवत्या:-जो चमकीली, रोहिणीः- रक्तिम् सूर्यरश्मियाँ हैं, उत-और, या रोहिणीः गावः- जो रक्तिम् गौऐं (सूर्यकी किरणे) हैं, उनसे रूप और वयः- आयु प्राप्त होती है, ताभिः-उनके साथ, त्वा-तुश्चे, परि-चारों ओर, दध्मसि-धारण करते हैं। भाव यह है रक्तिम् सूर्यरश्मियोंके सेवन तथा रक्तिम् गौओंका दूध पीनेसे रोग निवृत्त होकर आरोग्यरूप और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है।

इतना ही नहीं, सूर्यरश्मियोंसे रोगोत्पादक कृमियोंका भी नाश हो जाता है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्बोचन्  
हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥

(अथर्व० २ । ३२ । १ )

अर्थात् उद्यन्नादित्यः—उदय होता हुआ सूर्य, क्रिमीन् हन्तु—कीटाणुओंका नाश करे तथा निम्बोचन् अस्त होता हुआ सूर्य अपनी—रश्मिभिः—किरणोंसे, उन कृमियोंको नष्ट करे, जो—गवि अन्तः—पृथ्वी-पर हैं।

सूर्य पृथ्वीपर स्थित रोगाणुओं (कृमियों) को नष्ट कर निज रश्मियोंका सेवन करनेवाले व्यक्तिको दीर्घायु प्रदान करते हैं। सूर्यद्वारा विनष्ट किये जानेवाले रोगोत्पादक कृमि निम्बलिखित हैं—

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमि सारङ्गमर्जुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्ठारपि वृश्चामि यच्छ्वरः ॥

(—अथर्व० २ । ३२ । २ )

अर्थात् विश्वरूपम्—नानारूप-रगवाले, चतुरक्षम्—चार नेत्रोंवाले, सारङ्गम्—सारंग वर्णवाले, अर्जुनम्—श्वेत रंगवाले कृमिको मैं शृणामि—मारता हूँ। अस्य—इस कृमिकी पृष्ठीः—परस्लियोंको तथा शिरः—सिरको भी वृश्चामि—तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हे नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो व्यक्ति सूर्यके जितने अधिक सम्पर्कमें रहते हैं, उन्हें ही स्वस्थ पाये जाते हैं और सूर्यसे बचकर रहनेवाले सर्वथा निस्तेज और भयंकर रोगोंसे ग्रस्त मिलते हैं।

स्वास्थ्य स्थिर रखने और रोगोंसे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम धूप और सूर्यके प्रकाशसे सदा बचकर न रहें और इनके अधिक सम्पर्कमें रहे—विशेषकर प्रातःकालीन आतप अधिक हितकर होता है, वही रुण और स्वस्थ दोनोंको समान लाभ पहुँचाता है। केवल मध्याह्नकी धूपको छोड़कर शेष समय यथासम्भव उसके न्यूनाधिक सम्पर्कमें रहना चाहिये। सूर्य-स्नान करते समय यथासम्भव निर्वास रहे या विल्कुल हल्के-पतले (झीने) वस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, जिससे सूर्यकी किरणे सरलताके साथ प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गतक पहुँच सके।

आजका प्रबुद्ध मानव इस तथ्यसे भलीभांति परिचित हो चुका है कि सकामक रोगोंका विशेष प्रकोप ऐसे स्थानोपर ही प्रमुखतः होता है, जहाँ सूर्यकी रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं। इस स्थितिमें हमे मकान सदा ऐसे बनवाने चाहिये, जहाँ धूप और वायुका उचित मात्रामें अवाध ग्रवेश हो सके।

विटामिन (खाद्यांज)की उत्पत्तिका कारण भी सूर्यकी रश्मियाँ हैं। सूर्यके विना जीवनीय शक्ति सर्वथा नहींके वरावर ही रहती है।

सूर्यकी उपयोगिता परिलक्षित कर आयुर्वेदमें भी सूर्य-स्नानका प्रतिपादन किया गया है, अष्टाहृष्टयोग इसके गठन-पर विशेष बल दिया गया है, भले ही आज (Naturen Pathy) नेचुरोपैथीके लिये इसका प्रयोग किया जाता हो, पर है यह आयुर्वेदकी ही देन, और साथ ही हमारे महर्पियोगी बुद्धिमत्ताका, विशेष ज्ञानका तथा गानन-

कन्याणकी भावनाका जीता-जागना उठाहरण मी।

स्वास्थ्यकामी प्रत्येक व्यक्तिको सूर्यकी महत्वाप्ते पद्धतानकर, उसका सेवनकर अपने स्वास्थ्य और आयुर्वी वृद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अन: गाम्य पुराणका वचन है—

‘आरोग्यं भास्करादिच्छेन्’।

### श्रीसूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ

( लेखक—डॉ० श्रीमुरेन्द्रप्रसादजी भर्ग, एम०ए०, प्ल०ए०ल० वी०, एन० डी० )

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं। हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है, जैसी अन्य देवोंके लिये अपेक्षित होती है। अतः सूर्यदेवकी प्रत्यक्ष आराधना की जा सकती है।

सौरपुराणमें भगवान् सूर्यकी अलौकिक सम्पदाओं, शक्तियों आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सूर्य-मण्डलमें प्रवेश करके ही जीव ब्रह्मलोक अर्थात् भगवान्का सांनिध्य प्राप्त वर सकता है। वस्तुतः सूर्य-नारायणकी आराधना किये विना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्णने खर्य गीतामें ‘ज्योतिपां रविरंशुमान्’ कहा है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी उपासना करते थे और सूर्यदेवने उन्हें एक अक्षय पात्र दिया था। भगवान् राम भी सूर्योपासक थे। ऋग्वेदमें सूर्यकी उपासनाके कई मन्त्र हैं और भगवान् आदित्यसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की गयी है। लिखा है—‘आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छे-ज्ञानार्दनात्।’ आयुनिक चिकित्सा-शास्त्रियोंने सूर्यकी स्वास्थ्यदायिनी शक्तिको भलीभौति समझा और अनुभव किया है। सूर्यकिरण-चिकित्सापर देशी-विदेशी चिकित्सकोंने कई प्रन्थ लिखे हैं। एक अंग्रेजी कहावत है—( Light is life and darkness is death ) ‘लाइट इज लाइफ ऐण्ड डार्कनेस इज डैथ’-

अर्थात्—प्रकाश ही जीवन है और अव्यक्ता ही मृत्यु है। जहाँ सूर्यकी विरणे अथवा प्रकाश पहुँचता है, वहाँ रोगक दीदारु मृतः पर जाने हैं और रोगोंका जन्म नहीं होता। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अनेक प्रकारके आवश्यक तत्त्वोंको वर्णा करते हैं और उन तत्त्वोंको शरीरद्वारा प्रदृष्ट वरनेसे आमाय रोग भी दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने चिकित्साकी दृष्टिसे सूर्यका अनेक प्रकारसे प्रयोग किया है। आख तकते हैं कि सूर्यके प्रकाशमें सप्तरित्यां—लाल, हरी, पीली, नीली, नारंगी, आसमानी और कासी रंग—विद्यमान हैं एवं सूर्य-प्रकाशके साथ इन रंगों तथा तत्त्वोंकी भी हमारे ऊपर वर्णा होती है। उनके द्वारा प्राणी तथा वानस्पतिक वर्गको नवजीवन एवं नवर्जनतन्त्र प्राप्त होता रहता है। यह कहनेमें कि यदि सूर्य न होते तो हम जीवित नहीं रह सकते थे—कोई असुक्षि नहीं है। यही कारण है कि वेदोंमें सूर्य-पूजाका विवान तथा महत्व है और हमारे प्राचीन ऋग्विमुनियोंने सूर्यसे शक्ति प्राप्तकर ग्राहकनिका जीवन व्यतीत करनेका आदेश किया है। आदिकालके ग्रीक और यूनानी लोगोंने भी सूर्य-चिकित्सालय बनवानेके साथ-साथ सूर्यधी पूजा भी है। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञानका प्रथम उपासक हिप्रोकेट्स भी सूर्यद्वारा रोगियोंको ठीक करता था।

धीरे-धीरे अवनतिके गर्तमे पडते हुए ससारने सूर्य-के महत्वको अपने मस्तिष्कसे मुला दिया। फलस्वरूप सैंकड़ो रोगोंको, जिनका पहले नामोनिशानतक न था, जन्म दे दिया। वैज्ञानिकोंके निरन्तर प्रयत्नशील रहने तथा अनुसधान और अन्वेषण करते रहनेपर भी वे संसार-को रोगोंसे मुक्त न कर सके और अन्तमे विवश हो प्रकृतिकी ओर लौटे। कुछेकने सूर्यके महत्वको समझा और सूर्य-ऊर्जा आदिका पता लगाया। सर्वप्रथम डेनमार्कके निवासी डॉ० नार्डस फिसेनने १२९३ ई०मे सूर्य-प्रकाशके महत्वको प्रकटकर १२९५मे सूर्यद्वारा एक क्षयके रोगीको स्वस्थ किया। किंतु आपकी तैतालीस वर्षकी अवस्थामे ही असामयिक मृत्यु हो गयी। दूसरे वैज्ञानिकोंको इतनेसे संतोष न हुआ। उन्होंने नयी-नयी खोजें आरम्भ की। इसके फलस्वरूप चिकित्सा-ससारमे सूर्यचिकित्सा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने लगी है। डॉ० ए० जी० हार्वें, डॉ० एलफ्रेड व रोलियर आदिने बड़े-बड़े सैनेटोरियम स्थापित किये। सन् १९०३से डॉ० रोलियर अपनी पद्धतियों (systems) द्वारा आल्पस्पृष्ठतपर लेसीन नामक प्राकृतिक सौन्दर्यसे सुसज्जित स्थानमे रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं और नैसर्गिक सूर्य-प्रकाश-को काममे लाते हैं। (श्रीमती कमलानेहरू शायद यहीं अपनी चिकित्साके लिये गयी थीं।) डॉ० रोलियरका तरीका अपने ढाँका अकेला है और ये सहिष्णुता तथा पृथक्ता (एकलीमेटीसेशन तथा आइसोलेशन) आदि विधियोद्वारा चिकित्सा करते हैं। इसका पूर्ण उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके बाद 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) का जन्म हुआ और वैज्ञानिकोंने बतलाया कि शरीरमे किसी विशेष रंगकी कमीके कारण भी विशेष रोग उत्पन्न हो सकते हैं और उसी रंगकी बोतलमे तैयार किया जल पिलाने तथा शरीरपर प्रकाश डालनेसे वे रोग दूर हो सकते हैं। इस विषयके डॉ० आर० डॉ० स्टकर, डॉ० ए० ओ० ईव्स, डॉ० वेविट आदि

ज्ञाता हुए हैं। यह चिकित्सा-पद्धति बड़ी उपयोगी और भारत-जैसे गरीब देशके लिये अत्यावश्यक है। पर इसमे कठिनाई केवल इतनी ही है कि 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) द्वारा एक सदृश्य ही, जो रोगनिदानमें निपुण है, रोगियोंको लाभ पहुँचा सकता है। यीक निदान न होनेपर हानि हो सकती है।

जटिल एवं तथोक्त असाध्य रोग—जैसे क्षय, लकवा, पोलियो, कैन्सर आदिमे भी विधिवत् सूर्य-स्नान करनेसे अद्भुत लाभ होता है और रोगको दूर भगानेमे बड़ी सहायता मिलती है। पर इस सम्बन्धमें विशेषज्ञोंसे परामर्श कर लेना बाज़नीय है। कई बार स्थानीय रूपमे भी सूर्यकी किरणोंका प्रयोग किया जाता है, अर्थात् शरीरके किसी एक अङ्गविशेषको कुछ समयके लिये धूपमे रखा जाता है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार अलग-अलग रंगोंके अलग-अलग गुण होते हैं; उदाहरणार्थ लाल रंग उत्तेजना और नील रंग शान्ति पैदा करता है। इन रंगोंसे लाभ उठानेके लिये रंगीन बोतलोंमें छः या आठ घंटेतक धूपमे लकड़ीके पाटोपर सफेद कॉचकी बोतलोंमें आधा-आधा कुर्झे या नदीका शुद्ध जल भरकर रखा जाता है। फलस्वरूप इस जलमें रंगके गुण उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उस जलकी दो-दो तोलेकी खुराक दिनमे तीन-चार बार ली जाती है। पर बोतलको जमीनपर अथवा अन्य प्रकारके किसी प्रकाशमे नहीं रखना चाहिये। एक दिनका तैयार किया जल तीन दिनतक काम दे सकता है। जलकी भाँति तैल भी लगभग एक महीनेतक धूपमे रखकर तैयार किया जाता है। यह तैल पर्याप्त गुणकारी होता है।

सूर्य-रश्मियोंसे लाभ उठानेकी एक निरापद् एवं हानिरहित विधि यह है कि श्वेतवर्णकी बोतलमे जल तैयार करके उसका सेवन किया जाय।

**दैनिक सूर्यस्नान—स्वास्थ्य-इच्छुकोको प्रतिदिन सूर्यस्नान करना चाहिये।** इसकी विधि यह है कि सुहाती-सुहाती धूपमें अपने सम्पूर्ण शरीरको शक्ति, रुचि एवं ऋतुके अनुसार नंगा रखा जाय। शरीरके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गपर सूर्यकी किरणें पड़े। यदि असहनीय हो तो सिरको श्वेत गीले वस्त्रसे तथा शरीरके अन्य भागोंको सात्त्विक वृक्षों—जैसे केले, जामुन, आमके पत्तोंसे ढका जा सकता है। शरीरको धूपमें रखनेसे पसीना आता है। यथापि यह एक प्रकारका विप है, तथापि पसीनेमें ही ठंडे जलसे रागड़-रागड़कर स्नान करना अत्यन्त गुणदायक एवं लाभकारी होता है। इस प्रकार पसीनेमें स्नान करना कभी कोई हानि नहीं करता। जर्मनके प्रसिद्ध जल-चिकित्सक डॉ० लुई कूनेने वाप्प-स्नानके ठीक पश्चात् ठंडे जलसे स्नान करनेकी परियाठी ढाली थी। इस पद्धतिके द्वारा हजारों रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं और कर रहे हैं।

**सूर्यस्नान करनेमें ऋतुके अनुसार समय एवं अवधिका भी ध्यान रखना चाहिये।** ग्रीष्मकालमें प्रातः ८वेष्टक और सायं ४ वेष्टके पश्चात् एवं शरद-ऋतुमें किसी भी समय सूर्यस्नान किया जा सकता है। इसकी अवधि १५ से ३० मिनटतक रखी जानी चाहिये।

**सूर्यनमस्कार-व्यायाम—स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दैनिक त्रिकाल संध्याओंका अत्यन्त महत्त्व है।** प्राणायाम भी संध्योपासनाका अङ्ग है। प्राणायामसे शरीरका दूषित रक्त शुद्ध होकर अनेक रोगोंसे शरीरकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त सूर्यकी प्रार्थना एवं उनके ध्यानसे बुद्धिका परिमार्जन होकर सद्विवेक जागृत होना है और मनुष्य पाप-कर्मोंसे सहज ही बच जाता है।

**आधुनिक विद्वानोंने सूर्यनमस्कार-व्यायाम-पद्धतिका भी उद्घव किया है।** इस सम्बन्धमें 'लीडरप्रेस' इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित 'सूर्य-नमस्कार' नामक उप्लक्ष अत्यन्त प्रामाणिक, अनुभवपूर्ण, असंगतियोंसे शून्य एवं ज्ञानवर्वक होता है।

है। विद्वान् एवं अनुभवी लेखकने विषयका विश्लेषण वैज्ञानिक रीतिसे करके 'सूर्य-नमस्कार-व्यायाम'-पद्धतिका प्रचार किया है। इस पद्धतिमें शरीरके विभिन्न अङ्गोंको दस अवस्थाओं (पाजो)में रखने, साथमें आस-प्रश्वासकी प्रक्रिया करते हुए मन-ही-मन मुखको विना खोले मन्त्रोच्चारण करनेका विधान है। इनमें चौबीस मन्त्र हैं। इन्हे पढ़ते हुए प्रतिदिन प्रातःस्नान करके सूर्य-मिमुख होकर विधिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। यह नमस्कार एकसे आरम्भ करके कम-से-कम चौबीस वारतक किया जाय। इनके अन्याससे शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा दीर्घजीवी होता है। साथ-ही-साथ आहार-विहारके अन्य सामान्य नियमोंका भी पालन उचित है।

**भ्रान्तियाँ—धूप अथवा सूर्यके सम्बन्धमें कुछ भ्रान्तियाँ भी फैली हैं। वस्तुतः धूप कभी कोई हानि नहीं करता, तथापि भरपेट भोजनके पश्चात् कड़ी धूपमें जाना चर्जित है। खाली पेट धूपमें बूमनेसे कभी कोई हानि नहीं होती। हमारे ग्रामोंमें आज भी यहाँके निवासी चिलचिलाती धूप एवं गर्म छामे रहते हैं और वे नगरके कृत्रिम जीवनके आदी नागरिकोंकी भाँति धूप एवं छामे द्वारा शिकार नहीं बनते।**

**सूर्यकी किरणोद्वारा पके फलों, सद्बियों तथा खाद्यान्नोंमें एक विशेष प्रकारका रस पैदा होता है और वे अनेक प्रकारके खाद्योंसे भरपूर हो जाते हैं।** जिन पेड़-पौधोंको सूर्य-किरणें नहीं मिलतीं, वे मर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सूर्यकी किरणें प्राणका संचार करती हैं और उनकी सहायतासे भयंकर-से-भयंकर रोग सहज ही विना किसी व्ययके दूर किये जा सकते हैं। सूर्यके तापसे क्षय, कैंसर, पोलियो आदि रोगोंके जीवाणु स्तरः मर जाते हैं। जिन कमरोंमें सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं, वे कठोर शीतमें भी रात्रिको गर्म रहते हैं। उन्हींमें शयन करना स्वास्थ्यदायक एवं सुविधाजनक होता है।

## भगवान् सूर्य और उनकी आराधनासे आरोग्यलाभ

( लेखक—श्रीनकुलप्रसादजी ज्ञा 'नलिन' )

यो देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहितः ।  
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मणे ॥

( शुक्लयजु० ३१ । २० )

'जो भगवान् सूर्य देवताओंके लिये प्रकाशित रहते हैं, जो देवताओंके पुरोधा—नेता हैं तथा जो देवताओंसे पहले हुए हैं, ऐसे मङ्गलदायक भगवान् सूर्यको मेरा प्रणाम है ।'

हिंदू-धर्मग्रन्थोंकी मान्यताके अनुसार देवताओंकी संख्या ३३,००,००,००० ( तीन करोड़ ) है । कहा जाता है कि ये देवता संख्यामें पहले मात्र तीनसौथे । स्कन्दादि पुराणोंके अनुसार विभिन्न पुण्योंसे मनुष्योंको लाभान्वित होते देख देवता भी उनमें सम्मिलित हो गये । ये प्रतिदिन एक-एक करके उसमें सम्मिलित होते थे, अतः उसके पुण्य-प्रभावसे प्रत्येक एक-एक कोटि-कोटिकी संख्यामें परिणत होते चले गये और देवताओंकी संख्या तीनस करोड़ हो गयी । इन्हींमेंसे भगवान् सूर्य-नारायण एक है ।

भगवान् श्रीसूर्यदेव अत्यन्त अनादि३ एवं प्रतापशाली देवता हैं । अतः निगम-आगम-सूति-पुराण इतिहास-ग्रन्थोंके अतिरिक्त इनका वर्णन लौकिक साहित्यमें भी उपलब्ध होता है । इतना ही नहीं, भारतीय ग्रन्थोंके

अतिरिक्त रोम, यूनान, मिश्र, जर्मन आदि देशोंके ग्रन्थोंमें भी इनकी चर्चा देखी जाती है । यह मान्यता कि 'मरीचिनन्दन प्रजापति कल्यपके पुत्र होनेके कारण ये बहुत बादके—अर्वाचीन देवता हैं' भान्तिपूर्ण है । ये तो कल्यपसे भी अतिपूर्व ही थे । कल्यपके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करना चन्द्रमा या सप्तर्षि आदिके समान इनका दूसरा जन्म है ।

नवग्रहों तथा पञ्चदेवोंमें यद्यपि ये प्रथम पूज्य माने गये हैं, तथापि ब्रह्मेशानाच्युतस्वरूप होनेके कारण इन्हें कहीं ब्रह्म, कहीं सूर्य, कहीं जगदात्मा० तो कहीं जगत्-कारण कहा गया है । क्रष्णवेद ( शा० १ । ११५ । १ ) तथा यजुर्वेद ( ७ । ४३ )में इन्हे सम्पूर्ण विश्व-क्रह्माण्डकी आत्मा कहा है । साथ ही 'देवीभागवत'में इन्हे आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त जीवमात्रकी भी आत्मा कहा है—

देवतिर्यङ्गनुष्याणां सरीसुपविरुद्धसाम् ।  
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा द्वर्गाश्वरः ॥

( ८ । १४ )

श्रीमद्भागवतका—'एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकुद्धरिः'—सूर्य सम्पूर्ण लोककलापोंकी आत्मा हैं—वचन भी इसका अनुमोदन करता है ।

१. आठ वसु, ग्यारह रुद्र ( इन्द्र ), वारह आदित्य, एक राजर्षि तथा एक प्रजापति—ये तीनस देवता हैं ।
२. अत्र देवास्त्रयस्त्रियाशत् पुरा कृत्वा प्रदक्षिणाम् । प्रत्यहं मार्गमासीनः प्रत्येके कोटिता गताः ।

( स्क० पु० १ । ३ । १ । ५ । ५५ आदि )

३. दुनियामें जिस देवताकी सबसे पहले पूजा हुई, वे सूर्यनारायण थे । ( —'विज्ञानप्रगति' जुलाई, ७५ )
४. पञ्चदेवोंमें दिनकी पूजामें प्रथम सूर्य और रातकी पूजामें प्रथम गणेश पूजे जाते हैं ।

(-स्क० पु० ३, चातुर्मास्यमा० ६ । ९ )

५. ( क ) छा० उ० ३ । १९ । १, स० उ० । ( ख ) म० पु० १६५ । १, प० पु० १ । ७९ । ८ ।
६. ( ग ) त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रसुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम् ॥

(-महाभारत )

७. सूर्य आत्मास्य जगत्क्रस्युपस्तमसो रिपुः । ( स्क० पु०, का० ख० २ । १ )
८. ब्रह्मस्त्रिया० १ । १, भविष्यो० पू०, आदित्यहृदय स्तोत्र ।

बृहत्यागरसूनिके आनन्दप्रकाशणी का ही यि  
‘हृष्टयेत् मध्यमे प्रकाशमान मूर्धेणाम्बद्धा आन दृश्या  
चालिये । उस गृथमण्डलके मध्यमे दोषजा, दंषक  
मध्यमे अश्रिका, अपिके मध्यमे तिन्दृशा, तिन्दृके मध्यमे  
नादका, नादके मध्यमे अनिदृशा, अपिके मध्यमे ताराया,  
तारके मध्यमे तुर्सिका और इसी गृह्णन दिव्य प्रकाशमान  
सूर्यके मध्यमे व्रशता निष्ठम गरजा जानिये ।

निष्ठयेत्तदि मध्यस्यं शीतिमन्मूर्धेणाम्बद्धम् ।  
तस्य मध्यगतः संगो धृदिशन्दृशिरो मानन ॥

विन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो अवनिः ।  
च्छनिमध्यगतस्तारम्भारमध्यगतोऽद्युगम् ॥

( २५. ३३३. २१ )

‘प्रभ्लोपमित् । ( १. १ ) मे अर्थात् यह एक दृश्य है—‘आदित्यो न वै प्राणः । तदेव तिन्दृके अनिक्त पुरुष-विनियोगादिमें भी वै प्राणिः । वृत्ता  
गता है । मध्य ही दृश्य, तिन्दृके मध्यमे तस्य  
अमेडताका प्रतिशादन एवमेऽपि चिह्नित गता रागा है—

उक्ते व्रशणो भ्यं मल्लाङ्गे तु योग्यतः ।  
अल्ममाने न्यर्यं विष्णुग्रीष्मुर्तिश्च दिव्यादृशः ॥

( ८०. ३०. २०, ८०. ४०. २१ )

सूर्यिके वारप्रकाशमध्यगतः—‘पृथ्यवन्तेऽत्याक्षा-  
काशाः’ ( पृथ्वी, जल, तेज, वायु और अकाश ) जैसे  
व्युत्क्षके अधिकर्ता भवत्यन् सूर्य है—

आकाशम्याधिपो विष्णुरुपेद्वर्य योग्यतः ।  
वायोः सूर्यः क्षितिर्गीतो जीवनम्य गणाधिपः ॥

जिन प्रकाशवेद्यमें सूर्यिका निर्मल दृश्य है, अर्थात्  
भी उन्हींमें दृश्य है । उन तत्त्वोंकी विज्ञानमें जातिमें

भी दोन्ही है । इस प्राणमें अन्य मन्त्रोंमें भी दोन्ही व्याख्याती दृश्य यही गति है ।

अपिके उक्ते तो यही है । अतः वृश्याद  
सूर्यिकद्वयानिनी वेषी उपर्याप्त, विष्णु विष्णु विष्णु है;  
अर्थात् वृश्यादेव विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

( ८०. ३०. ११ )

अर्थात् वृश्यादेव विष्णु विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

( ८०. ३०. ११ )

महात्मा विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

( ८०. ३०. ११ )

महात्मा विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;  
विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

( ८०. ३०. ११ )

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

विष्णु विष्णु विष्णु है; विष्णु विष्णु विष्णु है;

दर्शनीय और आकाशके सभी ज्योतिषिण्डोंके प्रकाशक हैं।'

अथर्ववेदमें पाँच, जानु, श्रोणि, कधा, मस्तक, कपाल, हृदय आदिके रोगोंको उदीयमान सूर्यरस्मियोंके द्वारा दूर करनेकी बात कही गयी है। पुनः इसी वेदमें उगते हुए सूर्यकी रक्ताभक्तिरोगोंसे रोगियोंको चिरायु करनेका वर्णन प्राप्त होता है। अथर्ववेदमें ही सूर्यसे गण्डमालारोगको दूर करनेकी बात आयी है।

यथापि श्रीमद्भागवतमें सूर्यसे तेज—‘तेजस्कामो-विभावसुम्’, स्कन्दपुराणमें सूर्यसे सुख—‘दिनेशं सुखार्थी’ तथा वाल्मीकीय रामायणमें सूर्यसे अरिविजयकी कामना की गयी है तथापि अन्य पुराणोंने एक खरसे ‘सूर्यसे आरोग्य-लाभ’का छिपिण्डमधोप किया है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेदं धनमिच्छेद्युताशनात्।  
ईश्वराज्ञानमिच्छेद्यं मोक्षमिच्छेज्ञानार्दनात्॥  
( मत्स्यपु० ६७ | ७१ )

इस तरह आजसे हजारों वर्ष पूर्वसे ही भारतीय जनसमुदाय सूर्यकी कृपासे आरोग्यलाभ प्राप्त करता आ रहा है। पाँच सहस्रसे भी अधिक वर्ष बीत गये, जब दुर्वासाके शापसे कुषग्रस्त श्रीकृष्ण और जाम्बवती-नन्दन साम्बको सूर्यनारायणकी आराधनाने निरामय और सुन्दर बनाया था।

सुप्रसिद्ध भक्तकवि मयूरभट्ट, जो वाणीके साले एवं भूषणभट्टके मातुल थे, सूर्यकी आराधना करन केवल नीरोग, कञ्चनकाय हो गये, अपितु उन्होंने सूर्यकी

१. अथर्ववेद स० ( ९।८।१९, २१, २२ )

२. सूर्य-रश्मिके सात रगोंमें दूसरा रग है नीला, जिसे अल्ट्रा-बायलेट भी कहते हैं। वैज्ञानिकोंके मतानुसार यह अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक कहा गया है। ३. अथर्ववेदसहिता ( १।२२।१, २ )

४. वही ( ६।८३।१ )

( क ) जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीर्यवान्। नामा पृथिव्या विष्वातो गजञ्चतवलीति यः ॥

( युद्धका० २७।४४ )

( ख ) युद्धकाण्डका ही ‘आदित्यहृदय’स्तोत्र ।

५. वाणभट्ट और मयूरभट्ट दोनों ही महाराज हर्षवर्द्धनके दस्तावेमें रहते थे।

( —वलदेव उपाध्यायका सस्कृत-साहित्यका इतिहास )

६. सूर्य-रश्मियोंसे आरोग्य-लाभपर डॉ० जैम्सकूक, ( James Cook ) ए० वी० गार्डन, ( A. B. Gorden ) एवं जी० वेल्स प्रभृति अनेक पाश्चात्य मनीषी अनुसधान कर रहे हैं।

स्तुतिमें रचित सौ श्लोकोंके संग्रह—‘सूर्यशतकम्’-से अमरता भी प्राप्त कर ली। यह ‘सूर्यशतकम्’ आज सस्कृतसाहित्यकी एक अमूल्य निधि बना हुआ है।

इस तरह सूर्यराधनारसे स्वास्थ्यलाभकी अनेक कथाएँ पुराणान्तरोंमें देखी जाती हैं। स्यात्, इसी कारण विश्वके अनेक देश ‘सूर्यसे आरोग्यलाभ’पर प्रयोग चला रहे हैं, जिसका ज्वलन्तनिदर्शन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ( Naturopathy ) है। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री मिस्टर जॉन डोनने तो सूर्यरश्मियोंसे यहमा ( T. B. )-जैसे भयंकर रोगके कीटाणुओंके नष्ट होनेका दावा किया है।

‘मार्तण्डमरीचियोंसे निरामयता’ पर विदेशोंमें आज जो अनुसंधान और प्रयोग चल रहे हैं, आस्तिक हिंदूका उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है; क्योंकि वह जानता है कि शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है, वह ऋषि-महर्षियोंकी दीर्घकालीन गवेषणाका परिणाम है। शास्त्रोंका एक-एक वचन अकारण-करुणाकर, सर्व-मङ्गलकामी, दीनवत्सल, परमवैज्ञानिक ऋषि-मुनियोंके चिरकालीन अन्वेषण-मनन-चिन्तन एवं अनुभवके निकाशपर कसकर ही अभिहित हुआ है। इसी आस्था-सम्बलके सहारे वह आज भी निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त चलते चल रहा है। उसकी धारणा है कि—

पुराणे व्राह्मणे चैव द्रेवे च मन्त्रकर्मणि ।  
तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः ॥  
( स्क० पु० २, उल्क० ख० ६०।६२ )

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे देवन्ने भैपजे गुरौ ।  
गाढशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादशी ॥  
( वरी ५ । २ । २२७ । २० )

आधुनिक मनोविज्ञानका यह कथना कि व्यक्तिकी भावना ही बहुधा उसके सुख-नुखका कारण बनती है, भारतीय समाज इसी आस्थामूलक धारणा से मिट्ठा-छुलता है और इसी धारणा के बशीभूत कल्योन्मुखी अपेक्षा समय तथा साधनके अनुसार भगवान् सूर्यकी आराधना से लाभान्वित हो जाती है। यद्यपि आधुनिक भौतिक विज्ञानने बुद्ध लोगोंकी आस्थाको टिका दिया है, फिर भी कुछ लोग आज भी इसको परम सत्य, सरल तथा सुलभ मानकर दवाओंके चक्रमें न पउकर सीधे उपासनापर उत्तर जाते हैं। पैसेवाले 'बाबू' या 'भैक्काले मार्क-शिक्षा' ( । )की किन्हीं उपाधियोंसे विभूषित तथा-कथित भद्रमहाशय या तत्प्रभावित व्यक्ति पैसेके बलपर स्वास्थ्य खरीदनेमें जब अपने-आपको अक्षम पाते हैं और शनैः-शनैः स्वास्थ्यके साथ सम्पत्ति ( Health and Wealth ) भी खो बैठते हैं तब पैसे दिये जानाजके पंछी पुनि जहाजपर आचे—‘पूर्म-फिरकर इन्हीं भगवान् सूर्यकी शरणमें आ जाने हैं और नीरोगनाको प्राप्त

करने हैं। पूर्वमें उनको न मानकर पथात माननेमें उन्हें कोई क्षोभ या आक्रोश नहीं; क्योंकि उन्होंने उद्घोषणा ही—

अपि वंशमुद्गाचाराणे भजते मामनन्यभाक् ।  
साधुरुग्य न मन्तव्यः ॥ १३० ॥ ( ---गीता १ । ३० )

कोई पूर्वका लाय दृग्नार्ग क्यों न हो, यदि अनन्यभावसे भगवान्की भक्ति करने लगे तो उन्हें साधु ही मानना चाहिये। भगवान् भक्तिमूर्ति पूजा करनेवालेका शरीर नीरोग कर देते हैं—

मृणो नीरोगनां दद्याद् भपन्या यैः पूज्यते दि सः ।

उसके शरीरको नीरोग तो करते ही हैं, दूसरी बाना देते हैं—

शरीरो दृदगायः स्याद् भास्करम्य प्रसादतः ॥

यही नहीं, अग्निभगवान् भास्कर नीरोग बनानेके साथ-साथ जिसपर प्रसन्न होते हैं उसे निःसुन्दरं भन और यश भी प्रदान करते हैं—

शरीरो ग्युच्छच्छेव धनमृदियभस्करः ।

जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्येहिवाकरः ॥  
( वराद० १ । ८० । ५८ )

## ‘ज्योति तेरी जलती है’

( रचयिता—श्रीकन्द्रेयामिहन्ती विदेश, पृष्ठ ५०, एन्ड-एन्ड-वी० )

रोग को मिटावे दुख विपदा घटावे तू ही,  
तेरे ही प्रनाप से धरियो इको रहनी है।  
वन्ध्या को बालक और अंघन, को आँख देत,  
अष्ट सिद्धि नदो निडि संग लगी रहती है॥  
तू ही है अनादि नित्य अविवल अविकारी देव,  
तेरे ही प्रभाव से यह सुष्टु सब चलती है।  
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों बुरुणायों दा,  
स्वामी एक तू ही लगे ! ज्योति तेरी जलती है॥

## सूर्यचिकित्सा

( लेखक—५० श्रीशक्तरलालजी मौड़, साहित्य-व्याकरणगार्थी )

मनीषियोंका कथन है कि सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। जिस प्रकार वात-चिकित्साका विधान शास्त्रमें वर्णित है, उसी प्रकार अथवा इससे कहीं अधिक सूर्य-चिकित्साका विधान है। वायु-चिकित्सा सूर्य-प्रकाशसे ही सफल होती है। यदि प्रकाश न हो और इन प्रत्यक्ष देवकी किरण विश्वमें प्रसारित न हो तो जीव जीवित नहीं रह सकते। उपनिषद्‌का वचन है—‘अथादित्य उद्यन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन ग्राव्यान् प्राणान् रक्षिमषु संनिधत्ते’ ( प्रश्न० ३० १६ ) सूर्य जब उदय होते हैं तो सभी दिशाओंमें उनकी किरणोंद्वारा प्राण रखा जाता है अर्थात् सूर्यप्रकाश ही वायुमण्डलको शुद्ध करता है। सूर्यकी किरणोंके विना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। वेदमें आयु, वल और आरोग्यादि वर्णनके साथ सूर्यका विशेष सम्बन्ध है। शीतकालमें शीत-निवारणके लिये सूर्यकी ओर पीठकर उनकी रक्षियोंका सेवन करके आनन्द लेना चाहिये—जैसा कि प्राकृतिक चिकित्साकी विधि गोखामीजी अपनी विशुद्ध भावनाओंमें प्रकट करते हैं; यथा—भानु पीठि सेइश्व उर आगी ( मानस ) । प्रायः हमने देखा है कि बहुत-से लोग अन्धकारयुक्त स्थानों अर्थात् अन्धकारयुक्त ( अन्धतामिक्त ) नरकमें जीवननिर्वाह करते हैं। जहाँ भगवान् सूर्यकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ शीतकालमें शीत तो बना ही रहता है। साथ ही वहाँके प्राणी भयंकर रोगके शिकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—गठिया, गृधसी, स्नायुरोग, और पक्षाधात आदि। ऐसे लोग वैध, डाक्टर तथा हकीमोंकी शरणमें जाकर भी अपना शारीरिक कष्ट ( रोग ) निवारण नहीं कर पाते। सूर्यका प्रकाश दुर्गंधको दूर करनेवाली वायुको शुद्ध कर देता है। तभी तो गोखामीजी लिखते हैं—‘भानु कृसानु सर्व रस खाहीं’ विशेष—‘प्राणो चै वातः’

सूर्यकी विजरणे रोगरूपी राक्षसोंका विनाश करती हैं। ‘सूर्यो हि नाशाणां रक्षसामपहन्ता’। सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। यथा—उद्यु पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदग्ने अद्यष्ठहा। द्विष्टंश्च ग्रन्थद्विष्टंश्च क्रिमीन् जम्भयामसि ( अर्थ० ५ । २३ । ६ ) सूर्य पूर्व दिशामें उदय होता है तथा पश्चिम दिशामें अस्त होता है एवं वह अपनी किरणोद्वारा सभी दिखनेवाले कृमियोंका नाश करता है। इन कृमियोंका स्वरूपवर्णन वेदमें इस प्रकार आता है—श्रृणाम्यस्य पृष्ठीरपि वृश्चामि यच्छ्वरः। भिनश्चिते कुषुम्भं यस्ते विपधानः ॥ ( अर्थ० २ । ३२ । २,६ ) शरीरमें विद्यमान रहनेवाले विभिन्न प्रकारके कृमि भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं, उनका हनन भगवान् सूर्यके प्रकाशसे ही होता है। अब सूर्यके प्रकाश, धूप तथा किरणोंका सेवन ग्रत्येक ऋतुमें आवश्यक है, इसे हम वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे तथा स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बतलाते हैं। भारतीय विद्वानोंने वसन्तऋतुको ऋतुराजकी संज्ञा दी है। इसमें चैत्र-वैशाख मास आते हैं। इस ऋतुमें प्रातः और सायंकाल धूमना हितकर बतलाया है। यथा—‘वसन्ते ऋमणः पृथ्यम्’ तथापि मध्याह-समयमें धूमना श्रेष्ठ नहीं है। ग्रत्युत इससे ज्वर, माता, मोतीक्ष्णला, खसरा आदि रोगोंका प्रादुर्भाव भी सम्भव है। ग्रीष्मऋतुमें सुखनभास्कर अत्यन्त तीक्ष्ण किरण फेंकते हैं, इससे कफ क्षीण होकर वायु बढ़ती है। इसलिये इस ऋतुमें नमकीन, अम्ल, कटु पदार्थका भोजन, व्यायाम और धूपका त्याग करना हितकर होता है। मधुर अम्ल, स्निग्ध एवं शीतल द्रव्य भोजन करे। ठण्डे जलसे स्नान एवं अङ्गोंका स्विन कर शब्दरयुक्त सत्तूका प्रयोग करे। मध ( शराव ) न पीये। बैलकी माला धारण करनी चाहिये। सफेद

चन्दनको घिसकर लगाना चाहिये । इससे शिरोरक्त एवं दाह शान्त होते हैं । एक धर्मशार्खीय वचन भी है; यथा—

चन्दनस्य महत् पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठतु सर्वदा ॥

आपदाका ग्रन्थकारका भाव मत्तिष्ठदाह तथा ऐहलौकिक एव पारलौकिक विपत्तियोंके नाशसे है । वर्षाक्रृतुमें अग्निके मन्द होनेसे क्षुधाका हास होता है ‘वर्षास्वग्न्यवले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः’—वर्षाक्रृतुमें जठराग्निका दुर्बल हो जाना सम्भव है, जिससे बात आदि रोग उत्पन्न होते हैं । वास्तवमें मल तथा अग्निका दूषित होना ही रोगोपदवका प्रमुख कारण है । ‘आमाशयस्य कायाग्नेदैर्विल्यादपि पाचितः’ आमाशय-की खराबीसे मन्दाग्नि हो जाती है; इसलिये अग्नि प्रदीप करनेवाली व्रतोपवास प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिये । इस ऋतुमें धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिये । ऋतुओंमें सबसे खराब वर्षाक्रृतु होती है । इसमें धूप-सेवन थोड़ी देरतक ही करना चाहिये । शरदऋतुमें वास्तवमें सूर्य-चिकित्साका विधान भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंने किया है । इस ऋतुमें पित प्रकुपित रहता है, इसलिये भूख अच्छी लगती है । शीतल, मधुर, तिक्त, रक्तपित्तको शमन करनेवाला अन्न एवं जलका उचित मात्रामें सेवन करना चाहिये । साठी और गेहूँका सेवन करना ठीक है । विरेचन भी लेना चाहिये । दिवा-शयन और पूर्वी वायुका सेवन त्याग देना चाहिये । इस ऋतुमें दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तस

और रात्रि-किरणोद्वाग शीतल अगस्त्य नक्षत्रके उद्दित होनेसे जल निर्मल और पवित्र हो जाता है । इस जलको हंसोदक कहते हैं । यह स्नान, पान और अवगाहनमें अमृतके समान होता है । इस प्रकार ऋतुओंमें होनेवाले भयंकर रोगोंसे हम सूर्यकी क्षुधासे बच सकते हैं । तभी तो कहा है—‘आगेग्नं भास्करादिच्छेत्’ । भगवान् सूर्यकी किरणें निःमद्दह शुद्ध करनेवाली हैं—‘एते चा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रद्धमयः’ “The rays of sun are certainly purifying.” सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश करने वाले हैं अर्थात् जो राक्षसरूप भयंकर रोग हैं, उनका विनाश हो सकता है । “For the sun is the speller of the evil spirits, and the sickness.” सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं, ऐसा ही सामवेदमें निर्देश है—‘वेत्याहि निर्वृतीनां वज्र हस्त परिवजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ।’ सूर्य ! आप प्रतिदिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानते हैं अर्थात् सूर्य रोगरूपी राक्षसोंके विनाशक हैं । सूर्य दीर्घायुष्य देनेवाले परमात्मा हैं; यथा—‘तु चे तुनाय तत्सुनोद्रावीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सु महसः कृणोतन ॥’ ( सामवेद ) सूर्यके प्रकाशद्वारा कीटाणु मर जाते हैं । इस विषयमें अर्थवेदका प्रमाण प्रत्यक्ष है ‘उद्यन्नादित्यः किमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः किमयो गवि ॥’ (—अर्थं० २ । ३२ । १ ) अर्थात् सूर्यकिरणोंसे छिपे हुए रोग-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं ।

### सूर्यसे विनय

येन सूर्यं ज्योतिषा वाधसे तमो जगद्व विश्वसुदिवर्पि भानुना ।  
तेनास्मद्दिश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्प्रप्ल्यं सुव ॥

( ऋ० १० । ३७ । ४ )

अये सूर्यदेव ! आप अपनी जिस ज्योतिसे अँधेरेको दूर करते और विश्वको प्रकाशित करते हैं, उसी ज्योतिसे हमारे पापोंको दूर करें, रोगोंको और क्लेशोंको नष्ट करे तथा दारिद्र्यको भी मिटाये ।

## श्वेतकुष्ठ और सूर्योपासना

( लेखक—श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य )

श्रीपीताम्बरागीठ दत्तियाके सस्थापक परमपूज्य श्री-स्थामीजी महाराजका अनुभव है कि सूर्याष्टकका श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करनेसे श्वेतकुष्ठके रोगी लाभान्वित होते हैं। श्रङ्घवेरपुरनिवासी एक महात्माका अनुभव है कि रविवारका व्रत रखने और सूर्यनारायणको नित्य अर्ध्य देनेसे श्वेतकुष्ठ जाता रहता है। अर्ध्यके बाद कंडेकी आगपर शुद्ध धृत और गुगुलुका धूप देना चाहिये। जले हुए गुगुलुको उठाकर सफेद दागोपर मलना चाहिये।

जिन लोगोको लगातार विरुद्ध आहार करते रहना पड़ता है या जो पेचिसके रोगी है अथवा अस्लपित्तसे ग्रस्त हैं, उनमें इसकी सम्भावना अधिक होती है, यह देखनेमें

आता है। विरुद्ध आहारकी सूची लम्बी है, पर मोटे तौरसे यह समझ लेना चाहिये कि दूधके साथ खटाई और केले इत्यादिका सेवन विरुद्ध आहारोमें आता है। अतः कारणोपर ध्यान देकर थोड़ा-बहुत औपधोपचार चलाते रहनेसे लाभकी शीघ्र सम्भावना है। लौह-घटित योगको बाकुचीके हिमसे सेवन करनेसे भी लाभ देखा गया है।

इसके रोगीको खटाई, मिर्च, मांस, अडा, मदिरा, डालडा, अरवी, उड्ड, तली-भुनी वस्तुएँ, भारी चीजें नहीं खानी चाहिये। स्टेनलेस स्टील और अल्म्यूनियमके वर्तनोंका प्रयोग भी विशेषतः भोजन-पाक करनेमें अवश्य बंद कर देना चाहिये। ( सूर्याष्टक आगे प्रकाश्य है। )

## सूर्यकिरणे कल्पवृक्षतुल्य हैं

( एक विशेषज्ञसे हुई भेट-वार्तापर आधारित )

‘शरीरं व्याधिमन्दिरम्’—के अनुसार इस मानव-शरीरमें रोग होना सामान्यिक है। सम्भवतः इसे ही देखकर ऋषियेने लोककल्याणार्थं व्याधिचिकित्साके लिये उपचेदोमें आयुर्वेदको भी स्थान दिया। आयुर्वेदमें कई रोगोंके निवारणार्थं सूर्यकिरण-सेवन और सूर्योर्चनका विवान है। मानव सूर्यकिरणोद्धारा आरोग्य प्राप्त कर सकता है, यह मानकर एक प्रल्यात आयुर्वेदज्ञ और रसायनवेत्ता डॉक्टरसे सम्पर्क स्थापित कर ‘सूर्यकिरणोद्धारा स्वास्थ्यलाभ’-विषयपर प्रेपकने चर्चा की तो उन्होंने इसपर विस्तृत प्रकाश डाला, जिसका सक्षिप्तरूप यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न—डॉ० साहव ! आप इस क्षेत्रके प्रल्यात चिकित्सक हैं और सूर्यकिरणोंके माध्यमसे चिकित्सा

करते हैं; कृपया यह बताइये कि सूर्यकिरण चिकित्सा-पद्धति प्राचीन है या नवीन ? यह पूर्वकी देन है या पश्चिमकी ? वर्तमानरूपमें इसे लानेका श्रेय किसे है ?

उत्तर—देखिये ! इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेदमें जहाँ रोगनाशहेतु ओषधियोंकी बात कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोगके रोगाधिकारी देवताओंकी उपासनाका भी निर्देश है। इसके लिये उसमें यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिव-प्रणीत शावरमन्त्रोमें भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये हैं। जहाँतक सूर्य-किरण-चिकित्साकी बात है, यह निःसंदेह हमारे देशकी प्राचीन पद्धति है। वेदोंमें भी इसपर प्रकाश डाला गया है। ‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्युपश्च’—अर्थात् सूर्य ही स्थावर-

जहाँमकी आत्मा हैं। अथर्ववेदके एक मूल्कमें भी कहा है कि तेरा हृदयरोग और पाण्डु (पीलिया, पीलक) रोग सूर्य-किरणोंके साथ सम्बन्ध करनेसे चला जायगा। जहाँतक आयुर्वेदमें सूर्योपासनाकी बात है उसमें भी चर्म और कफ रोगोंके निवारणार्थ इसपर बल दिया गया है। यदि आप विचार करें तो पायेंगे कि सूर्यकिरणों इस पृथ्वीपर कामबेनुखरूपा और कल्पवृक्षतुल्य हैं। सूर्यकिरण-चिकित्सा-पद्धति प्राचीन और भारतीय है। पर इसके गुणोंको पश्चिमवालोंने भी अपनाया। वे विटामिन 'डी'के प्राप्त्यर्थ इसे ही एकमात्र साधन बताते हैं। यही नहीं, अमरीकाके बहुतने विकित्सकोंने इसके सफल प्रयोग भी किये हैं।

पर यह भारतका अभाग है कि इसने आविष्कार तो बहुत किये; परंतु इसकी वौद्धिक दासताने सभी प्रयोग दबा दिये। मौर्य-गुप्त राजाओंके समयसे यूनानी चिकित्सा आने लगी। अंग्रेजोंके साथ एलोपैथी आयी। आयुर्वेद और उसके प्रयोग दबते ही रहे। इस आधारपर चर्चित चिकित्साको वर्तमान स्वरूपमें सर पलिङ्गन होने लाये। उन्होंने अपनी 'आसमानी रंग और सूर्य-प्रकाश' नामक पुस्तकमें आसमानी रंगों और सूर्य-किरणोंसे कई रोग समाप्त करनेका वर्णन किया है। इसके बाद डॉ० येनस्कॉटने अपनी (Blue and red lights) 'नीला और लाल प्रकाश' तथा डॉ० एडविन वेविटने 'प्रकाश और रंगोंके नियम'-नामक पुस्तकमें इस पद्धतिपर प्रकाश ढाला है और डॉ० रोवर्ट वोहलेन्ड साहवद्वारा अनेक दुःसाध्य रोगोंपर इसका सफल प्रयोग हुआ है।

अपने देशमें भी स्वनामवन्य स्व० स्व० सरस्वती-नन्दने मराठीमें अपनी पुस्तक 'चर्ण-जल-चिकित्सा'में इसकी चर्चा चलायी। कुछ वर्ष पूर्व दिव्वज्ञत श्रीयुत गोविन्द वापूजी टोगूने इस दिशामें सर्वाधिक सफल प्रयोग कर सहस्राधिक जनोंको लाभान्वित किया।

प्रश्न—डॉ० साहू ! सूर्यकिरणोंके माध्यमसे क्या सभी रोग ठीक हो सकते हैं या कुछ निवेदित ?

उत्तर—इस पद्धतिके उपचारमें नीले रंगके प्रयोगसे बुखार, पुरानी पेचिश, अनिसार, संप्रहणी, खाँसी, कास-ध्वास, शिरःशूल, शिरोरोग, गर्मी, प्रमेह, मूत्ररोग, विस्कोटक, इलीपट इत्यादि; लाल रंगके प्रयोगसे समस्त बात-त्याधि, पीले रंगसे समस्त उदररोग, समस्त छोग आदि; हरे रंगसे समस्त त्वचारोग और किमाधिकम् प्रायः सभी रोग नष्ट हो सकते हैं।

इस पद्धतिका मुख्य तात्पर्य उस पद्धतिसे है जिसमें लक्षाधिक ओपथियोंका प्रयोग न कर ओपथि-सेवन और संयम सबमें भानु-रश्मिकी प्रधानता हो और जिसमें सूर्य-किरणोंसे निर्मित जल, तैल, दिव्य शर्करा और गोलियोंका प्रयोग हो, धूपस्नानका प्रयोग हो।

प्रश्न—अभी आपने तैल, शर्करा, दिव्य जल और गोलियोंकी बात कही। कृपया उन्हें निर्मित करनेकी संक्षिप्त विधि बतायें।

उत्तर—जल-चिकित्सा-इस पद्धतिके अनुसार उपचार करनेके लिये रोगानुसार विभिन्न रंगोंकी बोतलें लेनी चाहिये, जो सर्वथा सच्छ, पारदर्शी और दाग या धब्बेसे रहित हों। बोतलके राक्ता ही उसका ढक्कन या कार्क (डॉट) हो। फिर कूप, तालाब, नदी, झरना या चापाकल (हैण्डपाइप)का सर्वथा सच्छ जल चार परत मोटे बब्बसे छान लें। तब उसे किसी बोतलमें इतना भरें कि केवल चार अङ्गुल ऊपर वह खाली रह जाय। फिर बोतलको ढक्कनसे भली प्रकार बदकर उसे धूपमे खुली हवा और सच्छ स्थानमें एक लकड़ीकी पटिया अथवा तिशाई या चौकीपर रखें। उस स्थानपर पूर्वाह्न उस बजेसे अपराह्न पाँच बजेतक सूर्य-किरणों बदाधगतिसे आती हों

और छाया न पड़ सके। पाँच बजते ही तत्काल बोतल वहाँसे हटाकर बोतलके रगके ही पतंगी कागजमें लपेट कर आलमारीमें रख दे। धूपमें रखी बोतलोंमें धूपसे उष्णता पाकर जब रिक्त भागमें वाष्णविन्दु एकत्र हो जाय तो उस जलको निर्मित मान लेना चाहिये। इस जलको रोग और मात्राके अनुसार पी भी सकते हैं और इसकी पृष्ठीद्वारा या इससे धोकर वाह्य उपचार भी कर सकते हैं। किंतु उपर्युक्त निर्देशका पालन अवश्य हो। त्रुटि हानिप्रद हो सकती है। यदि भूलसे बोतल सूर्यास्तक वहाँ रह जाय अर्थात् उसपर चन्द्रमा आदिकी रोशनी पड़ जाय तो जल तत्काल फेंक देना चाहिये और बोतलको धो देना चाहिये। वैसे जल, शर्करा, गोलियाँ या तैल सभी चैत्रसे ज्येष्ठ मासतक तैयार करें; क्योंकि तब यथेष्ट किरणें मिलती हैं। जब कई रंगकी बोतलें धूपमें रखनी हों तो उन्हें सटाकर नहीं रखना चाहिये। एक बोतलमें केवल एक बार जलादि तैयारकर उसमें तीन दिन-तक नहीं रखे, वरन् दूसरी श्वेत वर्णकी बोतलमें उलट दे। यदि कई बोतलें आलमारीमें रखी हों तो उनपर उन्हीं रंगोंका कागज लपेट दे। एककी छाया दूसरे-पर न पड़ सके। एक दिनका तैयार जल केवल तीन दिनोंतक प्रयोग करे, किर दूसरा बना ले।

तैल-शिरोरोगमें कान्चकी नीली बोतलमें शुद्ध तिल, नारियल या बादामका तेल और त्वचा-रोगोमें हरे रंगकी बोतलमें केवल तिलका तेल पूर्वोक्त रीतिसे भरकर कार्क या ढक्कनमें रुई लपेटकर भलीभौति बंद कर दे। उसे भी लकड़ीपर ही ९० दिनोंतक रखे। प्रतिदिन रुई बदलता रहे। तैयार हो जानेपर इन्हे मिल सकते हैं, पर रग नहीं।

दिव्य शर्करा-अभीष्ट रंगकी बोतलोंमें धूधकी नीनों या पिसी मिश्री भरकर पूर्वोक्त विधानसे धूपमें रखे। शर्करा उसी बोतलमें रहने दे। जिस समय धूप न हो और धूपित जल उपलब्ध न हो, उस समय एक बड़ी श्वेत बोतलमें आधा सेर जलमें तीन माशा शर्करा धोल दे तो वह जल भी पूर्वोक्त धूपित जलके समान हो जायगा। सूखी शर्करा सेवन न करे।

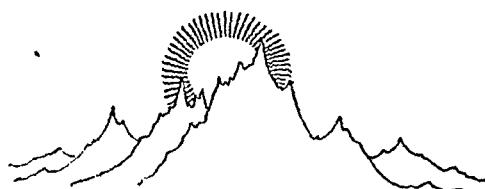
गोलियाँ-हेमियोपैथीकी धूधसे बनी सादी गोलियाँ ( Suger of Milk ) आवश्यकतानुसार कई बोतलोंमें पंद्रह दिनतक रखकर तैयार कर ले। वर्षाके समय पानी या शर्कराके स्थानपर इसकी एक या दो गोलियाँ मुखमें रखकर पानी पी ले।

धूप-स्नान-इसके विषयमें प्रायः सभी जानते हैं। पर यदि रोगीको कमरेमें स्नान कराना हो तो कमरे-की खिडकियोंमें रोगानुसार काच लगा दे तो दिनभर रोगी धूप सेवन कर सकता है।

प्रश्न—डॉ० साहब ! कृपया यह बताइये कि क्या यह पद्धति अन्य पद्धतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है ? यदि हाँ, तो इसे सर्वसाधारणमें मान्यता क्यों नहीं प्राप्त है ?

उत्तर—देखिये भाई ! आज चमत्कारका युग है। शिशुसे वृद्धपर्यन्त सभी चमत्कार चाहते हैं। उन्हे प्राकृतिक चिकित्सा स्वीकार नहीं है। वे सबः प्रभाव चाहते हैं, भले ही वह किसी अन्य आपत्तिको जन्म दे दे। इस पद्धतिमें ऐसी बात नहीं है। यह सर्वसुलभ है, अल्पव्ययी है और गुणकारी भी है। पर विज्ञानद्वारा आलसी और सुखेच्छु मानव इतनी सावधानी और प्रयत्नका कार्य क्यों करे ? नहीं तो यह पद्धति उचित प्रकारसे प्रयुक्त होनेपर अमोघ सिद्ध हो सकती है। अतएव श्रेष्ठ है।

प्रेषक—श्रीअश्विनीकुमारजी श्रीवास्तव 'अनल'



## प्राकृतिक चिकित्सा और सूर्य-किरणे

( लेखक—महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती )

सम्पूर्ण सौर-मण्डलके प्रकाशक भगवान् सूर्य भारतीय परम्परामें देवरूप माने गये हैं। वेटमें भी चिकित्सा और ज्ञानकी दृष्टिसे सूर्यका वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आता है। ईशावास्योपनिषद्‌में आत्मारूपसे इनकी वन्दना की गयी है।

पूर्पन्नेकर्षेयम् सूर्यग्राजापत्यव्यूह रक्ष्मीन् समूह ।  
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पद्यामि योऽसावसौ  
पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

‘हे जगत्के पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, संसारका नियमन करनेवाले, प्रजापतिनन्दन सूर्य ! आप अपनी किरणोंको समेट ले; क्योंकि जो आपका कल्याणतम रूप है, उसे मैं देख रहा हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ। अर्थात् आत्मज्योतिरूपसे हम एक हैं। इस प्रकार आत्मारूपसे भगवान् सूर्यकी वन्दना की गयी है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनमें श्रीसूर्य और किरणोंका क्या महत्त्व है—यह भी छिपा नहीं है।

सामान्य जन तो उदयमें प्रकाश और अस्तमें अन्व-कारकी कल्पना करके शान्त हो जाते हैं; किंतु शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रतिक्षण सूर्यका सम्बन्ध हमारे जीवनसे रहता है। सूर्यके विना क्षणभर भी रहना असम्भव है।

यदि यह कहा जाय कि सभीके जीवनका आधार सूर्य ही हैं तो अनुचित न होगा; क्योंकि हमारी सारी शक्तियोंके स्रोत सूर्य ही हैं और उन्हींके प्रभावसे सबका जीवन सुखमय बीतता है।

संसारकी सारी वनस्पतियों उन सूर्यकिरणोद्वारा ही पुष्ट होती हैं, जिनके सहारे हमलोग जीवन धारण करते हैं। पौधे तथा हमलोग सूर्यसे अपने जीवनकी शक्ति

प्राप्त करते हैं। दूध पीते समय जो प्रोटीन हमें प्राप्त होता है, वह सूर्यकी किरणोंसे ही; क्योंकि गौएँ वास और सविजयोंको कार्बोहाइड्रेटमें परिणत किये विना हमें दूध नहीं दे सकती हैं।

प्रत्यक्षरूपसे भी सूर्य-किरणे मानव-जीवनको प्रभावित करती हैं। उनके रंगोंका प्रभाव हमारे ऊपर बहुत होता है। रंगकी किरणोंका अधिक महत्त्व है, क्योंकि रंगोंका समूह, जो हमारे व्रातावरणको बनाता है, उनको वे रूप देती हैं। रंगके प्रति जो हमारी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि वे हमलोगोंके न केवल शरीरको प्रभावित करती हैं, अपितु उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हमपर पड़ता है। इस वातका प्रत्येकने अनुभव किया होगा कि जब वादल या धूल व्रातावरणमें रहते हैं और उनके दीचसे सूर्यकी किरणें आती हैं, तब कैसा अच्छा लगता है। किंतु हमारी मनोदशा तथा जीवनकी स्थितिपर रंगका गहरा प्रभाव पड़ता है। हम हरे-भरे रंगको देखकर स्वयं भी हरे-भरे हो जाते हैं।

यह प्रयोगद्वारा देखा गया है कि नीले रंगका प्रभाव ठंडा होता है। लाल रंगसे उष्णता और तेज रंगसे घरमें तथा कारखानेमें काम करनेकी स्फुर्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगका जो भावात्मक प्रभाव पड़ता है, उसीपर चिकित्सा करनेका एक सिद्धान्त बनाया गया है। मनकी स्वस्थताका प्रभाव शरीरपर प्रत्यक्षतः पड़ता है।

प्रत्यक्षरूपसे जिस कारणको हम प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिये सूल्यवान् है, किंतु अदृश्य किरणें भी हमारे लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णक्रमके अन्तमें जो लाल रंग रहता है, वहाँ तापके इफ्रा-रेड किरणे रहती हैं। ये ही किरणें हमारी पृथ्वीको गरम रखती हैं। ये वेदने-वाली किरणें हैं। जैसे-जैसे ताप बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे

वायोकेमिकल क्रिया तेज होती जाती है। इसी कारण हम शीत ऋतुकी अपेक्षा ग्रीष्म ऋतुमें योग्यतापूर्ण कार्य करनेकी विशेष क्षमता प्राप्त करते हैं।

प्रभातकालीन सूर्यके सामने नगे बदन रहना खास्थ्यके लिये अत्यधिक लाभदायक है। प्राकृतिक चिकित्सामें शरीरके आन्तरिक एवं वाह्य रोगोमें रोगीको सूर्य-स्नान करवाया जाता है। इस चिकित्सामें सूर्यकी अनेक महत्वपूर्ण क्रियाओंमें सूर्यस्नान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह सूर्यस्नान दोपहर होनेसे पहले किया जाता है। इस प्रयोगमें स्नानकर्ताको अपने सिरके ऊपर ठंडे जलसे भीगा हुआ एक तौलिया अवश्य रखना चाहिये। साथ ही नगे बदन होकर एक गिलास जल पी लेना भी आवश्यक है। फिर नगे बदन सिरपर भीगे हुए तौलिये-सहित धूपमें चला जाय। गर्मीमें १५-२० मिनटक सहित धूपमें चला जाय। गर्मीमें १५-२० मिनटक वहाँ रहना चाहिये। एवं सर्दीमें ३०-३५ मिनटक वहाँ रहना चाहिये। समयानुसार धूपमें रहकर पुनः तुरंत ठंडे जलसे स्नान करनेका विधान है। वादमें शरीरको पोछकर कुछ देर विश्राम करके लगभग एक घण्टे पश्चात् भोजन करे। इस स्नानसे शरीरके सभी चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। कुष्ठरोग तथा पाचन क्रियाके लिये एवं नेत्रज्योति और श्रवण-शक्ति किया जाता है। वहाँ आदि बड़े-बड़े रोगोंके लिये यह वरदान सिद्ध हुआ है। यहाँ सूर्यसे कुप्रोग विनष्ट होनेका एक ही प्रचलित उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारतीय सस्कृत भाषाके सुप्रसिद्ध गद्य-साहित्यकार वाणभट्टके साले मयूरभट्ट एक बार कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गये। सूर्योपासनासे उनका यह रोग समूल विनष्ट हो गया। क्या आपने कभी विचार किया कि किसानलोग अधिकतर बीमार क्यों नहीं पड़ते? मुख्यतः कारण यही है कि ऊपरसे पड़ती धूपमें काम करनेवाले किसानका सूर्य-स्नान प्रतिदिन होता है। कभी धूप तो कभी वर्षा—ऐसी स्थितिमें सूर्य-स्नान खत: हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें रोगीको सूर्यका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये उपाकालमें प्रतिदिन उठना चाहिये। उपाकालकी सुखद वायु एवं प्रभातकालीन सूर्यकी

रश्मियोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति सदैव नीरोग रहता है।

इतना ही नहीं, सूर्यकी किरणोंद्वारा विटामिन डी० की उत्पत्ति होती है। वर्णक्रमके अन्तिम छोरके गुलाबी रगपर अद्वय अल्द्रावायलेट किरणे रहती हैं। जब ये किरणे त्वचातक पहुँचती हैं, तब हम उन्हे शोषित करते हैं। वे त्वचाके नीचे एक प्रकारके तेलयुक्त पदार्थद्वारा शोषित की जाती है। उन किरणोंकी शक्तिसे त्वचाके बीच रहनेवाले पदार्थ विटामिन 'डी'में परिणत किये जाते हैं। यही एकमात्र विटामिन है, जिसको हम अपने आप तैयार करते हैं तथा जो हमारे लिये आवश्यक है। उसी विटामिनके द्वारा शरीर मुख्य खनिज तत्वोंको व्यवहारमें लाता है—विशेषकर कैलशियम और फासफोरसको। इनके द्वारा शरीरकी सरचना, हड्डियाँ और दाँत इत्यादिके निर्माण होते हैं। इन्हींके द्वारा शरीरकी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

वर्षा-ऋतुका जल छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरकर गंदा हो जाता है। वही जल एक दिन सूर्यकी किरणोंद्वारा वाष्प बनकर जब बादलोंके द्वारा पुनः बरसता है तो गङ्गाजलके सदृश निर्मल हो जाता है। इसे विज्ञानमें सावित-जल कहते हैं। यह बड़ी-बड़ी ओषधियोंके काम आता है।

ऊपरकी वातोंको ध्यानमें रखकर हम जितना अधिक समय सूर्यकी किरणमें खुले बदन व्यतीत करेंगे, उतना ही हमारे लिये लाभप्रद होगा। हम कितनी ही अधिकमात्रामें पशुसे उत्पादित 'डी' विटामिन प्राप्त करें, आगसे सूर्यके बदले उष्णता प्राप्त करें और रगके लिये विद्युतका उपयोग करें, किंतु प्रत्यक्षरूपसे सूर्यकी किरणोंमें स्नान करनेसे जो पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, वह इन साधनोंसे किसी हालतमें प्राप्त नहीं हो सकता। सूर्यकी किरणोंसे हमें न केवल रोशनी, उष्णता और साथ्यप्रद विटामिन 'डी' प्राप्त होते हैं, अपितु उससे टॉनिक भी प्राप्त होता है, जो हमारे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये क्रियाशील बनाता है।

## ज्योतिप और सूर्य

( लेखक—स्वामी श्रीसीतागमजी ज्योतिपाचार्य, एम्० ए० )

ज्योतिप शास्त्रके अनुसार सम्पूर्ण विश्व ही राशि-नक्षत्र और प्रहोंसे प्रभावित होता है। इसमें सूर्य एक महान् नक्षत्र और प्रहोंके राजा कहे गये हैं; अतः सूर्यका ज्योतिप शास्त्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह शास्त्र आकाशमें प्रहोंकी दृश्य स्थितिका निर्देशक है—उसके अनुसार सूर्य अन्य प्रहोंकी भौति किसी-न-किसी राशिमें दृष्टिगोचर होते हैं; अतएव ज्योतिपमें सूर्यको एक प्रह माना गया है। पृथ्वीसे देखनेपर विभिन्न समयोंमें सूर्य राशि-चक्रके विभिन्न भागोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसको हम सूर्यद्वारा विभिन्न राशियोंका भोग कहते हैं। एक राशिपर सूर्य एक मास रहते हैं। इस समयको सौर-मास कहा जाता है। अक्षांश और देशान्तर-भेदसे भिन्न-भिन्न स्थानोंका उदयकाल एवं दिनभान अलग-अलग होता है।

सूर्य आत्माके अधिष्ठाता है; अतः जातकका आत्मबल सूर्यसे देखा जाता है। उनके जगत्-पिता होनेके कारण जातकका पितृ-सुख भी जन्म-कुण्डलीमें सूर्यकी स्थितिसे देखते हैं। काल-पुरुषके शीर्षभागपर सूर्यका आधिपत्य माना गया है। सूर्य पित्तके अधिपति भी हैं। ये पुरुषप्रह, पूर्व दिशाके स्वामी, अग्नि-तत्त्व-वाले, क्षत्रिय वर्ण तथा तात्र रंगवाले कूर प्रह हैं। सिंहराशिके स्वामी हैं। मेषके दश अंशतक परमोच्च एवं तुलाके दश अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सिंह-राशिके बीस अंशतक सूर्यका मूल त्रिकोण तथा उसके बाद तीस अंशतक स्वराशि होती है। चन्द्र, मङ्गल और गुरु सूर्यके मित्र, बुध सम तथा शूक्र-शनि शत्रु होते हैं।

## विभिन्न भावगत सूर्यका फल

सूर्य यदि चारों केन्द्रों तथा दोनों त्रिकोणोंमेंसे किसी एक भावके स्वामी होकर त्रिकोण, केन्द्र तथा लाभ स्थानमें स्थित होते हैं, तो वे लाभ देने हैं। द्वितीय, तृतीय, षष्ठि, अष्टम तथा द्वादश भावके स्वामी सूर्य हों तो अकारक होते हैं तथा अपनी दशामें हानि करते हैं। इसके अतिरिक्त सिंह और मेष राशिके सूर्य बलवान् तथा तुला राशिके सूर्य दुर्वल माने जाते हैं।

यदि लानमें सूर्य वैष्टे हों तो जातक कठोर, सिरदर्दका रोगी, श्वी और सहोदरसे कलह करनेवाला होता है, उसके शरीरमें पित्त-जातजन्य पीड़ा और परदेशमें व्यापारसे धन-हानि होती है। सूर्य यदि मेष राशिके हैं, तो विद्या और धनदाना तथा सिंह राशिके हैं तो शरीर-सुखके साथ रत्नांशी करते हैं। तुलाके सूर्य शारीरिक कष्टके साथ जातकको राजपत्रित अधिकारी बनाते हैं।

द्वितीय भावमें सिंहके सूर्य लाभदायक तथा तुलाके सूर्य भयझर रूपसे धन हानि करते हैं। अन्य राशियों-के सूर्य भी धन हानि एवं कुटुम्ब हानि करते हैं। तृतीय भावमें सूर्य जातकको पराक्रमी बनाते हैं। कुम्भ राशिके सूर्य भाग्यशाली भी बनाते हैं। चतुर्थ भावमें सूर्य सुखमें वाधा डालते हैं। तुलाके सूर्य बार-बार स्थानान्तर करताते हैं। सिंहके सूर्य जमीन-जायदाद तथा मातृ-सुख देनेवाले होते हैं।

पञ्चम भावमें सूर्य उदररोग और संतान-कष्ट देते हैं, पर जातकमें सूजन-बूज अच्छी होती है। षष्ठि भावमें सूर्य शत्रुपर विजय दिलवाते हैं। सप्तम भावमें सूर्य होते हैं तो श्रीसे संताप, शरीरमें पीड़ा तथा दुष्टलोगोंद्वारा मनमें

चिन्ता होती है। अष्टम भावस्थ सूर्य नेत्र-विकारप्रद एवं धन तथा आत्मवलक्षा अभाव करते हैं।

नवम भावके सूर्य लाभप्रद होते हैं। सिंह तथा मेष राशिके सूर्य विशेष लाभ देनेवाले होते हैं। तुला राशिके सूर्य खी-कष्ट देते हैं। दशम भावके सूर्य सरकारसे लाभ दिलवाते हैं। यदि मेष राशिके सूर्य दशम भावमे हो तो वह व्यक्ति राजाके समान होता है। तुलाके सूर्य सरकारसे हानि तथा पिताकी हानि करते हैं। एकादश भावमे सूर्य हो तो राजाओंकी कृपासे धनकी प्राप्ति, पुत्रसे संताप तथा बाहनका सुख देते हैं। द्वादश भावमे सूर्य हो तो वार्ये नेत्रमे कष्ट तथा हानि करते हैं। इस प्रकार सूर्यदेव अन्य ग्रहोंके साथ भूमण्डलवासी व्यक्तियोंको प्रभावित करते रहते हैं।

### ज्योतिषशास्त्रमें सूर्यसम्बन्धी योग

सूर्य आत्मा, पिता, पराक्रम, तेज, क्रोध, हिंसक-कार्य तथा शासनके कारक ग्रह हैं। एकादश भावमे विशेषकारक माने जाते हैं।

किसी भी जन्मपत्रीका फलांडेश वतलाते समय सूर्यसे सम्बद्ध अग्राङ्कित योगोपर सावधानीपूर्वक अवश्य विचार कर लेना चाहिये।

१—वेशियोग—चन्द्रमाके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रह सूर्यसे द्वितीय भावमें स्थित हों तो वेशियोग बनता है। द्वितीय भावमें शुभ ग्रह हो तो शुभवेशि तथा पापग्रह हों तो पापवेशि कहलाता है। शुभवेशि योगमें प्रादुर्भूत व्यक्ति सुन्दर, अच्छा वक्ता, नेतृत्वकार्यमें चतुर तथा जनताका श्रद्धाभाजन होता है। वह आर्थिक-दृष्टिसे सम्पन्न होता है, उसके शत्रु पराजित होते हैं तथा वह जातक प्रसिद्धि प्राप्त करता है। अशुभ वेशियोगमें जन्म लेनेवाला व्यक्ति दुष्टोंकी संगति करता है, उसके मस्तिष्कमें

कुचक्क धूमते रहते हैं तथा आजीविकाके लिये वह परेशान रहता एवं कुख्यात होता है।

२—वासीयोग—चन्द्रमाके अतिरिक्त अन्य ग्रह सूर्यसे बाहरवें भावमें स्थित हो तो वासीयोग बनता है। इस योगवाला व्यक्ति अपने कायोमें दक्ष होता है। यदि शुभ-ग्रह हो तो जातक प्रसन्नचित्त, निपुण, विद्वान्, गुणी और चतुर होता है। पारिवारिक दृष्टिसे सुखी तथा शाश्वतोंका संहार करनेवाला होता है। यदि पापग्रह द्वादश भावमे हो तो जातककी निवासस्थानसे दूर रहनेकी प्रवृत्ति होती है। वह भूलनेवाला, कूर भावना रखनेवाला तथा दुःखी होता है।

३—उभयचरीयोग—यदि जन्मकुण्डलीमें सूर्यके दोनों ओर ( द्वितीय तथा द्वादश भावमें ) चन्द्रमाके अतिरिक्त अन्य ग्रह स्थित हो तो उभयचरीयोग बनता है। शुभग्रह हो तो व्यक्ति न्याय करनेवाला तथा प्रत्येक स्थितिको सहन करनेमें समर्थ होता है। यदि पापग्रह हो तो जातक कपटी, झूठा न्याय करनेवाला तथा पराधीन होता है।

४—भास्करयोग—यदि सूर्यसे द्वितीय भावमें बुध हों और बुधसे एकादश भावमें चन्द्रमा हों तथा चन्द्रमासे पौचवे या नवे भावमें गुरु हो तो भास्करयोग बनता है। इस योगका जातक अत्यन्त धनी, अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, बलशाली, कलाप्रेमी तथा सवका प्रिय होता है।

५—बुधादित्ययोग—कुण्डलीके किसी भी भावमें सूर्य और बुध एक साथ स्थित हों तो बुधादित्ययोग बनता है। इस योगमें जन्म लेनेवाला व्यक्ति बुद्धिमान्, चतुर, प्रसिद्ध तथा ऐश्वर्य भोगनेवाला होता है।

६—राजराजेश्वरयोग—जन्मकुण्डलीमें सूर्य मीन-राशिमें तथा चन्द्रमा कर्म-लग्नमें खगृही हों तो राजराजेश्वरयोग बनता है। यह एक प्रबल राजयोग

है। इस योगवाला व्यक्ति सुखी, धनी तथा ऐश्वर्यवान् होता है।

७—राजभङ्गयोग—यदि सूर्य तुला-राशिमें दस अशके अन्तर्गत हों तो राजभङ्ग योग बनता है। इस योगवाला व्यक्ति दुःखी, उद्विग्न, मानसिक चिन्ताओंसे ग्रस्त तथा दरिद्री होता है। ऐसा व्यक्ति राजसुख नहीं भोगता।

८—अन्धयोग—सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों प्रहवारहवे भावमें हो तो अन्धयोग बनता है। ऐसे योगमें उत्पन्न व्यक्ति अन्धा हो सकता है।

९—उन्मादयोग—यदि लग्नमें सूर्य तथा सप्तम भावमें मङ्गल हो तो उन्मादयोग बनता है। ऐसा व्यक्ति गप्पी तथा व्यर्थका वार्तालाप करनेवाला—वावनी होता है।

१०—यदि पञ्चम भावमें कुम्भ-राशिके सूर्य हो तो वे जातकके बड़े भाईका नाश करते हैं।

११—तृतीय भावमें स्वगृही सूर्यके साथ यदि शुक्रस्थित हो तथा उसपर शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो छोटे भाई तथा पिताकी हानि होती है।

१२—यदि सूर्य तथा चन्द्रमा नवम भावमें स्थित हो तो पिताकी मृत्यु जलमें होनेकी संभावना रहती है।

१३—जन्म वृष्टि लग्नका हो तथा सूर्य निर्बल होकर राहु एवं शनिसे दृष्टि अथवा युक्त हों तो व्यक्तिका कई बार स्थानान्तरण होता है तथा राजकीय सेवामें कई उत्थान-पतन देखने पड़ते हैं।

१४—यदि पञ्चम भावमें तुला राशिके सूर्य हों तो जातक हड्डियोंके रोगसे पीड़ित रहता है तथा उसे जीवनमें कई बार चोट लगती है।

१५—यदि मिथुन लग्नमें अकेले केतु हों तथा सूर्य चतुर्थ, सप्तम या दशम भावमें हो तो व्यक्ति पराक्रमी एवं तेजस्वी होता है।

१६—द्वितीय भावमें कर्क राशिके सूर्य और चन्द्रमा मङ्गलसे दृष्ट हों तो दृष्टिनाशक योग बनता है।

१७—मिथुन लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम या एकादश भावमें हो तो व्यक्ति उच्च महस्त्वाकाङ्क्षी तथा श्रेष्ठतम लोगोंसे सम्पर्क रखनेवाला होता है।

१८—कर्क लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम भावमें स्वगृही होकर मङ्गलके साथ स्थित हो तो जातकका राज्यपक्ष बड़ा प्रबल होता है। वह दृष्टिलुप्त होता है।

१९—दशम भावमें मेष राशिके उच्च सूर्य जातकको राजा के समान प्रभावशाली बनाते हैं।

२०—यदि लग्नमें स्वगृही सूर्य हो तो व्यक्ति स्वाभिमानी, प्रशासनमें कुशल तथा राज्यमें उच्च पदका अधिकारी होता है।

२१—यदि तुला राशिके सूर्य लग्नमें हो तो व्यक्ति राजासे सम्मान पानेवाला अधिकारी होता है।

२२—वृश्चिक लग्नका जन्म हो, सूर्य छठे या दशम भावमें हो तो जातकका पिता विद्यात कीर्तिमान् होता है।

२३—धनुलग्नका जन्म हो, सूर्य दशम भावमें वृहस्पतिके साथ हो तो व्यक्ति श्रेष्ठ प्रशासक होता है।

२४—यदि सप्तम भावमें स्वगृही सूर्य हो तो उस पुरुषकी स्त्री साहस्री, लड़ाकू तथा दृढ़ विचारोवाली होती है।

२५—यदि नीच (तुला) राशिके सूर्य नवम भावमें हों तो उस पुरुषकी पत्नी अल्पायु होती है।

२६—यदि तृतीय भावमें मेष राशिके सूर्य हों तो व्यक्ति निश्चय ही उच्च विचारोवाला तथा किसी बड़े पदका अधिकारी होता है।

२७—यदि द्वितीय भावमें उच्च राशिके सूर्य हो तो जातकके मामा यशस्वी, धनी तथा कुलमें श्रेष्ठ होते हैं।

२८—यदि मेष लग्नका जन्म हो तथा पष्टेशसे युक्त सूर्य छठे या आठवें भावमें हो तो जातक राज रोगवाला होता है।

२९—यदि मैप जन्म लग्न हो एवं सूर्य तथा शुक्र लग्न या सप्तम भावमें हो तो जातककी खी वन्ध्या होती है।

३०—लग्नसे दशम भावमें रहनेवाले सूर्य पितारो धन दिलचाते हैं।

३१—यदि मैप लग्नमें गृह्य और चन्द्रमा एक साथ वैठे हो तो राजयोग बनाते हैं।

३२—यदि मैप लग्नमें सूर्य हों तथा एकादश भावमें शनि वैठे हों तो व्यक्तिके पैरोंमें चोट लगती है।

३३—यदि मैप लग्नमें शनि तथा छठे भावमें सूर्य हो तो जातक आजन्म रोगी बना रहता है।

३४—दशम भावके मैपलग्नमें स्थित सूर्य जातकको भाषणकी कलामें निपुण बनाते हैं।

३५—यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य वृश्चिकके तथा शुक्र सिंहके हो तो उस व्यक्तिको ससुरालसे धन प्राप्त होता है।

३६—यदि चतुर्थ भावमें वृश्चिक राशि हो तथा उसमें सूर्य और शनि एक साथ वैठे हों तो जातकको वाहन-सुख प्राप्त होता है।

३७—यदि सूर्य लग्नमें स्वगृहीके हों तथा सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जातकको उन्मादरोग होता है।

३८—वृश्चिक लग्नवाली कुण्डलीके तृतीय भावमें यदि सूर्य हो, लग्नमें स्थित शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकको हृदयरोग होता है।

३९—यदि लाभस्थानमें सूर्य नीच राशिके हो और उनके दोनों ओर कोई ग्रह न हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४०—यदि पञ्चम भावमें उच्च राशिस्थ सूर्यके साथ बुध वैठे हो तो जातक धनवान् होता है।

४१—यदि धनु लग्न हो और उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा साथ वैठे हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४२—कुम्भ राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्तिको दादका रोग होता है।

४३—यदि दर्शम भावमें कुम्भ लग्नके सूर्य हों तथा चतुर्थ भावमें मङ्गल हो तो जातककी मृत्यु सवारीसे गिरनेके कारण होती है।

## ज्योतिषमें सूर्यका पारिभाषिक संक्षिप्त विवरण

सूर्य ग्रहराज हैं। सदा ‘मर्गी’ (अनुक्रम—सीधी गतिसे चलनेवाले) हैं; वे कभी ‘वक्री’ नहीं होते। ये सिंह राशिके स्वामी हैं। इनका ‘मूलत्रिकोण’ भी सिंह राशि हो है। सिंह (चक्रके ५वें स्थान) में ‘स्वगृही’ कहे जाते हैं। इनकी उच्च राशि मैप और नीच तुला है। ये एक राशिपर १३ मास रहते हैं। सूर्य अत्रिय वर्ण, सत्यगुणी, लाल-कृष्णवर्णके एवं स्थिर स्वभावके गोल (चक्राकार) पुरुषग्रह हैं। ये राजविद्याके अधिष्ठाता, जगत्के पिता, आत्माके अधिकारी माने गये हैं। इनका रत्न माणिक्य और धातु ताँचा है।

सूर्य अन्य ग्रहोंको भाँति अपने स्थानसे सातवेंमें स्थित ग्रहोंको पूर्णतः देखते हैं; किंतु तृतीय और दशममें स्थित ग्रहको एकपाद, पञ्चम एवं नवममें स्थितको द्विपाद, चतुर्थ-अष्टममें स्थित ग्रहको त्रिपाद-द्विष्टसे देखते हैं। ये उत्तरायणमें चलवत्तर होते हैं। इनके पुत्र शनि सब ग्रहोंसे निर्वल माने गये हैं; परं वे सूर्य-वलक्षोंनप्त करनेमें समर्थ होते हैं। सूर्यके चन्द्र मङ्गल वृहस्पति मित्र, बुध सम और शुक्र-शनि शत्रु कहलाते हैं। सूर्यके मारक (प्रभावको नष्ट करनेवाले) शनि और राहु हैं। परंतु सूर्य अन्य सब ग्रहोंके दोपाँका शमन करते हैं। सूर्यकी राशिगत और भावगत स्थितिसे फलका विचार होता है। भाव लग्नसे चलते हैं जो संक्षेपमें तन, धन इत्यादि नामसे वारह हैं।

## जन्माङ्गपर सूर्यका प्रभाव

( लेखक—ज्योतिपाचार्य श्रीवल्लभामणी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न )

ज्योतिप-विज्ञानके फलित-विभागमे 'जातक' ग्रन्थोका विशेष महत्व है। जातकोका विशेष महत्व इसलिये है कि उनसे मानव अपने भविष्यका चिन्तन करता है। वह अपने सुखद भविष्यकी कल्पनासे प्रसन्न हो जाता है और दुःखद भविष्यकी वातको समझकर उपायमें लग जाता है। जातकको फलित ज्योतिषका यह जातक-अंश फल बतलाकर सावधान कर देता है। शिशु जब धर्तीपर आता है, उस समय कौन लग्न किस अंशपर है, इसीको आधार मानकर जन्माङ्ग बनाया जाता है और लग्नका विचार-कर सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति स्पष्ट की जाती है। जन्माङ्ग-चक्रमें ग्रहोंको स्थापित करके फलका विचार किया जाता है। प्रस्तुत प्रकरणमें ग्रहाधिपति सूर्यदेवका जन्माङ्गके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है? इसपर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है। यह तो सर्वविदित है कि सूर्य ग्रहोंके अधिपति हैं। ग्रहोंके राजा होनेके नाते सूर्य समस्त राशियोंपर अपना विशेष प्रभाव दिखलाते हैं; किंतु सिंहराशिपर सूर्यका विशेष प्रभाव पड़ता है।

जन्माङ्गमे वारह भाव या स्थान होते हैं। तन, धन, सहज, सुख, पुत्र, शत्रु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय—ये वारह भाव हैं। इन वारह भावोंसे मानवके समस्त जीवन-प्रसङ्गोका विचार होता है। तन-धन नाम केवल सकेनमात्र हैं। इतना ध्यानमे रहे कि केवल एक ही भावके आधारपर सम्पूर्ण विचार नहीं होते। इन सब वातोका विचार करनेके लिये ग्रहोंके स्थान-बल, उनका दृष्टि-बल, आपसमे अन्य ग्रहोंकी मित्रता और शत्रुता, समता, एक दूसरेसे अन्यका सम्बन्ध देखकर ही फल-विचार होता है। सूर्य कई कारणोंसे अशुभ ग्रह माने गये हैं। सूर्य सर्वदा सभी स्थानों या भावोंमें अपना अशुभ फल ही नहीं देते,

उत्तम फल भी देते हैं। सक्षेपमे वारह मात्रोंमें सूर्यका सामान्य प्रभाव निम्न होता है।

लग्न—सूर्य यदि लग्नमें पड़े हों तो वालक आकारमें लम्बा, कर्कश-स्वभाव, गर्म प्रकृतिका होता है और प्रायः वात, पित्त, कफसे पीड़ित रहता है। ऐसे वालकको अपनी वाल्यावस्थामें अनेक पीड़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं तथा उसकी औँगोंमें भी कष्टकी आशङ्का बनी रहती है। स्वभावसे जातक धीर, क्षमाशील, कुशाग्र-बुद्धि, उदार, साहसी, आत्मसम्मानी होता है। वह क्रोध तो करता ही है, कभी-कभी क्रोधावेशमें सनकीकी भाँति आचरण करने लगता है। उसके सिरमें चोट लगानेकी भी सम्भावना रहती है। हाँ, ये अनिष्ट फल विशेषतया तब घटित होते हैं, जब सूर्यदेव किसी दुःखद ग्रहके साथ हों या शत्रु-ग्रहके साथ हो अथवा शत्रुके गृहमें हों; तब सभी अनिष्ट फल घटते हैं अन्यथा अनिष्ट फल विलीन भी हो जाते हैं। यदि सूर्यभगवान् मेप राशिगत होकर लग्नमें हों तो जातकको नेत्ररोग अवश्य होता है; किंतु धनकी कभी नहीं रहती। सूर्य यदि बलवान् ग्रहसे देखे जाते हों तो जातक विद्वान् भी होता है। यदि सूर्य तुला राशिगत हो तो वह वालक विशेष नेत्ररोगसे प्रभावित होता है।

द्वितीय भाव—द्वितीय भावमे सूर्यके रहनेसे वालक अपने जीवनमे मित्र-विरोधी बनता है, उसे वाहनका सुख नहीं मिलता है। ऐसे जातकको राजाकी ओरसे ठण्ड मिलता है। नेत्रकष्ट और शरीरमें विकार होता है। शिक्षामें रुक्कावट होती है। जातक हठी और चिड़निवेद-स्वभावका होता है। पुत्र-सुख भी मिलता है। नेत्र-रोग भी होता है।

तृतीय भाव—तृतीय भावमे रहकर सूर्य अपना उत्तम प्रभाव दिखलाते हैं। जातक पराक्रमी, कुशाग्रबुद्धि,

प्रियमापी होता है। धन-धान्य एवं नौकरोंसे युक्त होकर सम्मानित होता है। उसके सगे भाइयोंकी संख्या कम होती है। सूर्य यदि पापग्रहोंसे युक्त हो तो विष और अग्निसे भय तथा चर्मरोगकी सम्भावना होती है। सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो या पापग्रहसे दृष्ट हो तो भाईकी मृत्यु होती है, कोई एक ब्रह्मण् विधवा भी हो सकती है। कभी-कभी भाई या ब्रह्मण् की मृत्यु विष या सर्पदशसे होती है। हाँ, ऐसा जातक धनवान् होता है। ग्रहोंके अन्य प्रभावसे अग्रजकी मृत्यु अल्प समयमें हो जाती है।

**चतुर्थ भाव**—चतुर्थ भावमें सूर्यके रहनेपर जातक मानसिक चिन्तायुक्त होता है। जातकका शरीर क्षीण या विकृत अवयवका होता है। जातक आत्मीय जनोंसे द्वेष रखता है, घृणा करता है और घमण्डी तथा कपटी होता है। उसकी द्व्याति भी बढ़ती है। उसको कई खियाँ होती हैं। वह सब होते हुए भी ऐसा जातक धन-सुखसे रहित होता है। वह पिताकी सम्पत्तिसे वश्चित होता है। यदि चतुर्थ स्थानका खासी बली ग्रहोंसे युक्त हों या लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम किसी भी केन्द्रस्थानमें हो तो जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है। यदि चतुर्थका खासी केन्द्रके अतिरिक्त त्रिकोणगत भाव अर्थात् तृतीय, पञ्चम अथवा नवमगत हो तो भी जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है।

**पञ्चम भाव**—यदि सूर्य पञ्चम स्थानगत हो तो जातक अल्प संतानोवाला होता है। उसका शरीर मोटा होता है, वह शिव या शक्तिका पूजक होता है। जातक सक्रियाशील रहता है, किंतु उसका चित्त उद्ध्रान्त रहता है। ऐसा जातक सुख एवं सुतसे रहित भी होता है। वह वातरोगसे पीड़ित होता है। सूर्य यदि स्थिर राशिगत हो, अर्थात् वृष्टि, सिंह, वृश्चिक, कुम्भराशिगत हों तो पञ्चम संतानकी मृत्यु अल्पकालमें हो जाती है।

चर राशिगत सूर्य होनेसे अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशिगत सूर्यके होनेसे जातककी संतानका नाश नहीं होता। ऐसे जातककी खीका कभी-कभी गर्भपात्र भी हो जाता है। पञ्चम स्थानका खासी यदि ब्रह्मण् ग्रहोंके साथ हो तो जातकको पुत्रका सुख मिलता है, यदि सूर्य पापग्रहोंके साथ हो या उनपर पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो तो उसको कन्याएँ अधिक होती हैं। पञ्चमस्थ सूर्यपर यदि शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातकको पुत्र-सुख मिलता है।

**षष्ठ भाव**—षष्ठ भावगत सूर्य होनेसे जातकको अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है। जातक ब्रह्मण्, शत्रुपर प्रभाव दिखलानेवाला, विद्वान्, गुणवान् और तेजस्वी होता है। वह राजपरिवारसे सम्मानित होता है और सुन्दर बाहनोंसे युक्त होता है। षष्ठ स्थानगत सूर्य यदि ब्रह्मण् ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक नीरोग होता है। छठे स्थानका खासी यदि बलहीन होता है तो शत्रुका नाश होता है।

**सप्तम भाव**—सप्तम स्थानमें सूर्यके रहनेसे जातकका शरीर दुबला तथा मजोला होता है। वह मनसे चब्बल, पापकर्मलीन और भययुक्त होता है, खस्तीविरोधी और परस्तीप्रेमी होता है। दूसरोंके घर भोजन करनेमें वह दक्ष होता है। एक खीसे अधिक सम्बन्ध होते हुए दूसरोंसे भी सम्बन्ध बनाये रहता है। वह राज्य-सरकारके कोपसे कष्ट पाता है। पर सिंह राशिगत सूर्य यदि बली हो तो जातकको एक ही खी होती है।

**अष्टम भाव**—सूर्य यदि अष्टम भावगत हों तो जातक बुद्धि-विवेकहीन, शरीरका दुबला और अल्प संतानोवाला होता है। उसको नेत्रोग भी होता है। उसे धनकी कमी रहती है तथा शत्रु बहुत सताते हैं। उसके शिरोभागमें दर्दकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य बली ग्रहोंके साथ हों तो उसे कृषिकर्ममें सफलता

मिट्ठी है और यदि उच्चका हो अर्थात् नेत्र राशिगत हों तो जातक दृष्टिजीवी होता है।

**नवमभाव**—सूर्य यदि नवम भावगत हो तो जातक मित्र और पुत्रसे सुखी होता है। वह मातृकुलका विरोधी और यज्ञका भी विरोधी होता है; किंतु देवोकी पूजा करता है। जातक अच्छी सूख-नृशक्का उठार व्यक्ति होता है; किंतु पैतृक सम्पत्तिका ल्याग करता है। ऐसा जातक कल्ही तथा मित्रव्ययी होता है। उम्रकी शृणि उत्तम होती है। जातकके भाई नहीं होने हैं। यदि भाई हो तो जातकसे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेष राशिगत हो अवश्य मिह राशिगत हो तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहोंके सहयोगसे जातक देवताओं और गुरुजनोंका पूजक होता है। सूर्यके तुला राशिगत होनेपर जातक भाग्यहीन और अवार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हों या शत्रुगृही हों तो पिताके लिये अनिष्टकर होने हैं। शुभग्रहोंसे हष सूर्य पिताको आनन्द देने हैं।

**दशमभाव**—दशम भावगत सूर्यके होनेसे जातक द्विदिमान्, धन-उपर्जनमें चतुर, साहसी और संगीतप्रेमी होता है, वह साधुजनोंसे प्रेम करता है, राजसेवामें तत्पर एवं अनिमाहसी होता है। वह पुत्रवान् और वाहन-गुरुसे सम्बन्ध होता है। स्वस्य और शूरवीर भी होता है। सूर्य यदि गंगराशिके हो या सिंहराशिके हो तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक स्थानके निर्माणमें यम प्राप्त करता है। सूर्य यदि पाप ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक आचरणभ्रष्ट हो जाता है।

**एकादशभाव**—सूर्य एकादश भावगत हों तो जातक शशस्त्री, मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और सर्गीनविधामें निपुण एवं ख्यातान् तथा धन-धान्यसे सम्बन्ध होता है। वह सृष्टिजुगृहीन होता है। ऐसा जातक सेवकजनोंपर

प्रीति करनेवाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंहराशिगत हों तो जातकको राजा आदिसे धनकी प्राप्ति होती है। ऐसे जातकको सद्गुप्तायसे भी धन मिलता है।

**द्वादशभाव**—द्वादश भावगत सूर्यके होनेसे जातक पिताविरोधी, अतिव्ययी, अस्त्रियुद्धि, पापाचरणमें लीन, धनकी हानि करनेवाला, मनका मलीन, नेत्रोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातकसे लोकविरोधी कार्य हो जाते हैं। वह दरिद्रताके कारण भी कष्ट पा जाता है। यदि वारहवे स्थानके स्थामी कोई शुभ ग्रह हो तो वह जातक किसी देवताकी सिद्धि प्राप्त कर लेना है, पर सूर्यके साथ कोई दुष्ट ग्रह हो तो वह जातक सदा अनैतिक कामोंमें अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्यके साथ पष्ट स्थानके स्थामी बैठे हो तो उस जातकको कुप्रेरोगसे कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्यके भावगत फलको जानना चाहिये।

### जन्माङ्गमें विभिन्न राशिगत सूर्यका फल

तन, धन, सहज आदि विभिन्न भावोंमें सूर्यके रहनेका फल जाननेके बाद विभिन्न राशिगत सूर्यका संक्षिप्त फल निम्न प्रकारसे है—

**सेप**—मेषराशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसी, भ्रमणशील और चतुर तथा धनी परिवारका सदस्य, किंतु रक्त एवं पित्तके विकारोंमें पीड़ित होता है। सूर्य यदि अपनी उच्च राशि मेषमें परमोच्च अंशतक हो तो जातक परम धनी होता है। सूर्य मेषमें दृश्य अंशतक परमोच्च माने जाते हैं। सूर्यके प्रभावसे जातक अत्य-ग्रस्य धारण करनेवाला होता है।

**वृष**—वृषराशिगत सूर्यके होनेसे जातक उत्तम वस्तु धारण करनेवाला एवं सुगन्धित पदार्थोंको धारण करनेवाला होता है। ऐसे जातकके पास चतुष्पदोंका सुख अधिक रक्खता है। ऐसे जातकको गिर्यामें शत्रुना

होती है। वह समयानुसार योग्य कार्य सम्पादित करता है। ऐसे जातकको जलसे मध्यकी सम्भावना रहती है।

**मिथुन**—मिथुन राशिगत सूर्यके प्रभावसे जातक गणितशास्त्रका ज्ञाता होता है। विद्वान्, धनी एवं अपने वशमें प्रख्यात होता है। ऐसा जातक नीतिमान्, विनयी और शीलवान् होता है। जातक सूर्यके प्रभावसे मधुरमापी, वक्ता एवं धन तथा विद्याके उपार्जनमें अग्रणी होता है।

**कर्क**—कर्कराशिगत सूर्यके कारण जातक कूर समावाला, निर्दीयी, दरिद्र, किंतु परोपकारी भी होता है। ऐसे जातकको पितासे विरोध रहता है।

**सिंह**—सिंह राशिगत सूर्य अपने राशिमें रहनेके कारण जातकको विशेष प्रभावित करते हैं। ऐसा जातक चतुर, कलाविद्, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और पराक्रमी होता है तथा कीर्ति प्राप्त करता है। वह प्राकृतिक पदार्थोंसे प्रेम करता है।

**कन्या**—कन्याराशिगत सूर्यके होनेसे जातक चित्रकला, काव्य एवं गणित आदि विद्याओंमें रुचि रखनेवाला होता है। ऐसा जातक सर्गीतविद्यासे भी प्रेम करता है और राजासे सम्मानित होता है। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक यदि पुरुष है तो उसकी मुख्याकृति खीके समान और यदि ली है तो पुरुषाकृतिकी होती है।

**तुला**—तुला राशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसका परिचय देता है, किंतु राजपरिवारसे सताया जाता है। ऐसा जातक विरोधी स्वभावका होता है और पापकर्ममें निरत रहता है। कलहप्रिय होते हुए भी ऐसा जातक परोपकारी होता है। वह धनहीन होनेपर भी मध्यपान करनेमें प्रवृत्त होता है।

**वृथिक**—वृथिक राशिगत होनेपर सूर्यका प्रभाव निम्न प्रकारसे होता है। ऐसा जातक कलहप्रिय होते हुए भी

आठरका पात्र होता है। माता-पिताका विरोधी भी रहता है। वृप्ति स्वभावके कारण अपमानित भी होता है। अस्त्र-शस्त्रका चालक होता तथा साहसी होता है। वह क्रूरकर्मी भी होता है। ऐसे जातकको विप और शस्त्रसे भय रहता है। वह विप, शस्त्र आदिसे धनोपार्जन करनेवाला होता है।

**धन**—धन राशिगत सूर्यके कारण जातक सतोपी, दुष्टिमान्, धनवान्, तीक्ष्णस्वभाव, मित्रोंसे धन प्राप्त करनेवाला और मित्रोंका हित करनेवाला भी होता है। ऐसे जातकका सम्मान प्रायः लोग करते हैं। ऐसे जातकको शिल्पका भी ज्ञान होता है।

**मकर**—मकर राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है तथा अपमानित होता है। अपने वशवालोंसे विरोध करता है। वह अल्प धनके कारण भी दुःख पाता है। यह सब होते हुए ऐसा जातक कर्मशील होता है; भ्रमण करता है। यदा-कदा ऐसे जातकका भाग्य दूसरेके अधीन हो जाता है।

**कुम्भ**—कुम्भ राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है और मलिन वेप धारण करता है। जातकको अपने स्वभावसे सुख नहीं मिल पाता।

**मीन**—मीन राशिगत सूर्यके कारण जातक कृपि और व्यापारद्वारा धनका उपार्जन करता है। अपने स्वजनोंसे ही दुःख पाता है। धन और पुत्रका भी सुख उसे कम मिल पाता है। ऐसे जातकको जलसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंसे प्रचुर धन मिल जाता है।

**विशेष**—सूर्यदेवसे जन्माङ्ग पर विचार करते समय सूर्यकी निम्न स्थितियोंको ध्यानमें रखना पड़ेगा।

सूर्य सिंह राशिके स्वामी होते हैं। वे मेष राशिमें दश अशतक परम उच्च और तुला राशिमें दश अशतक परम नीच माने जाते हैं। सूर्य ग्रह सिंहके बीस अंशतक मूल त्रिकोणके माने जाते हैं,

वे शेष अंशमे 'स्वगृही' माने जाते हैं। वे काल-पुरुषके आत्मा माने गये हैं। यह सब होते हुए इन्हें पापग्रह ही कहा गया है। पापग्रह केवल फलादेशके लिये माना गया है। सूर्य पुरुषग्रह हैं। सूर्य पूर्व दिशाके स्थामी और पित्तकारक भी माने गये हैं। फलादेशमें आत्मा, स्वभाव और आरोग्यता आदिके

बोधक हैं। ये पितृकारक ग्रह माने गये हैं। सूर्यका प्रभाव राज्य, देवालय आदिपर विशेष पड़ता है। जातकके हृदय, स्नायु, मेरुदण्ड आदिपर भी इनका प्रभाव पड़ता है। सातवें स्थानपर सूर्यकी पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इन बातोपर ध्यान देकर ही सूर्यसे फलविचार किया जाता है।

## विभिन्न भावोंमें सूर्यस्थितिके फल

( लेखक—पं० श्रीकामेश्वरजी उपाध्याय, गाली )

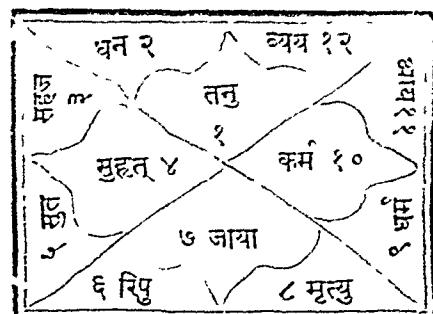
सूर्य सौर-मण्डलके प्रवान ग्रह हैं। इनकी दिव्यरथियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा-शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्योतिपमे सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्योतिपमे द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमें राशियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात वाना-वरणोत्पन्न कर्म पूर्व कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराकर्मौ सुखसुतौ शत्रुः कलञ्चं सृति-र्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लघ्नतः। भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मनं देहिनां तसादेव शुभाशुभास्यफलजः कार्यो युधैर्निर्णयः ॥

( —जातकालङ्कार १। ५ )

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—



इन द्वादश भावोंमें सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियों की जन्मदात्री है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमें सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययन कर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोत्तक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उत्तरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

( १ ) जिस जातकके तनुभावमें सूर्य स्थित हो, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे युक्त एवं सूक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्थो रघ्यस्तुङ्यर्पिं विधत्ते

मनः संतपेहारदायाद्वर्गात् ।

वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं

स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति ॥

(—चमत्कारचिन्तामणि १)

लग्नेऽकेऽल्पकच्चः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोद्वतः  
कामी लोचनसुकर्कशतनुः शूरः द्वमी निर्घृणः ।

(—जातकाभरणम्, सूर्यभावाध्याय १)

(२) धनभावमें स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते हैं। धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय हीं धनवान् होगा। उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा। पुत्र-पौत्रादिके भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेगे। कठिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्या-  
चतुष्पात्सुखं सद्वये स्वं च याति ।

कुदुम्ये कलिर्जीयया जायतेऽपि  
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतोः ॥

(—चमत्कारचिन्तामणि २ । २)

(३) सहजभावमें स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवदः स्याद्वनवाहनाद्वयः  
सुर्कर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च ।

मितानुजः स्यान्मनुजो वलीयान्  
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थे ॥

(—जातकाभरणम्)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) अतीव शौर्यशाली प्रवृत्त यशस्वी होता है।

(४) मित्रभावमें स्थित दिनकर जातकके मैत्रीको भङ्ग करनेवाले होते हैं। जातक स्थायी-रूपमें एक स्थानपर स्थित नहीं रह सकता—

तुरीये दिनेशोऽतिशोभाधिकारी  
जनः सँल्लभेद्विग्रहं वनध्युतोऽपि ।

प्रवासी विपद्धाहवे मानभङ्गं  
कदाचिन्न शान्तं भवेत्तस्य चेतः ॥

(—चमत्कारचिन्तामणि )

(५) सुतभावमें विद्यमान सूर्य मनुष्यको दुष्क्रिमान् एवं धनिक बनाते हैं। श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पञ्चम भावमें सूर्य होते हैं, वह जातक हृदय-रोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी

कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या ।

रतिर्वद्धनो संचकोऽपि प्रमादी

मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया ॥

(—चमत्कारचिन्तामणि )

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमें दिवाकर रहते हैं वह व्यक्ति रिपुध्वंसक होता है—प्रायः सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है। पष्ठ भाव (रिपुभाव)में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वितः शत्रुहन्ता

सत्त्वोपेतश्वारुयानो महौजाः ।

पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः

शत्रुक्षेत्रे मित्रसंस्था यदि स्यात् ॥

(—जातकाभरणम्)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं वह व्यक्ति व्याधियोंसे सयुक्त, चिडचडे खभावका होता है। अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य लीक्लेशकारक भी होते हैं—

द्युनाथो यदा द्यनजातो नरस्य

प्रियातापैनं पिण्डपीडा च चिन्ता ।

भवेत्तुच्छलविधिः क्रये विक्रयेऽपि

प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां कद्मचित् ॥

(—चमत्कारचिन्तामणि )

यदि किसी लीक्लेशको कुण्डलीमें सूर्य सप्तमस्थ हो तो वह कुलटा एवं परपतिगामिनी होती है।

(८) मृत्युभावमें स्थित सूर्य जातकको अनेक प्रकारके विघ्न-नाशाद्याओंसे क्लान्त रखते हैं। अष्टम भावमें स्थित सूर्य विदेशीय ली एवं शरावसे सम्बन्धकारक भी होते हैं। जो कुछ भी हो अष्टमस्थ सूर्य हानिकारक एवं तुच्छ फलदायक ही होते हैं।

(९) धर्मस्थानमें स्थित सूर्य जातकको कुशाप्रबुद्धि बनाते हैं, किन्तु व्यक्ति दुरप्रवीरी, कुनार्किक और नास्तिक भी हो सकता है। नवमस्थ सूर्य जातकके अन्तःपुरमें कलहके उद्गेककर्ता भी होते हैं।

(१०) दशमस्थानमें स्थित सूर्य जातकको उच्च आश्रय प्रदान करते हैं। पारिवारिक असुविधा भी यद्यकड़ा प्राप्त हो सकती है, लेकिन जातक लक्ष्मीमें मुक्त होता है। दशम स्थानस्थ सूर्य आभूषणादिके सम्बद्धकर्ता भी होते हैं।

(११) आय या एकादश स्थानमें विद्यमान सूर्य जातकको कलाप्रेमी एवं समीतज्ञ बनाते हैं। ये सूर्य व्यक्तिको सभी प्रवारका मौल्य एवं श्री प्रदान करते हैं। अन्य आचार्यगणके अनुसार एकादश भावस्थ सूर्य पुत्रके लिये कलेशकारक भी होते हैं।

गीतप्रीति चारुकर्मान्वान् ।  
चञ्चलकीर्ति विज्ञपूत्ति इति नम् ।  
भूपात् प्राप्ति नित्यमेव ग्रनुर्यान् ।  
प्राप्तिस्थाने भानुमान् सानन्द गम ॥

(—जाग्रत्तान्तरम्)

जिस कान्याके एकादशमास्रोंगे सूर्य रहते हैं, वह सद्गुणयुक्ता भी रही है—

भूपविद्या भवस्येऽके रवा लभमुखान्विता ।  
गुणमा रघुगालान्वा धनुव्रग्नमन्विता ॥

(—ज्ञानात्मकम्)

(१२) गर्भा देवता एकमन्त्रे उद्घोसके साथ करते हैं—छादग भावस्थ सूर्य नेपलज्जकारक होने हैं तथा जातक कामानुर भी होता है। कनिष्ठ आचार्यांक करनानुसार व्यग्रमें सूर्य बनावत होते हैं, लेकिन यात्राकालमें अमर्नावित क्षति भी हो सकती है; यदा—

रनिर्ददिङ्गं नेवदोपं वर्णनि  
विष्वधात्यं जायेत्तुन्मौ जयश्रीः ।  
विनिर्लव्यया लीप्यते देष्टुत्यं  
पितृव्यापदो लानिर्व्यप्रदेशो ॥

(—ज्ञानात्मकनितामणि) - ५

इस प्रकाशरो श्रीगुरुंदेव विभिन्न भावोंमें रहकर जातकके लिये विभिन्न स्थितियोंको समुच्चल करते हैं। निगन, ग्रहपनि नृय नवःपरिणामदायक, सभी देवदोंके श्वेत, नमन्य एवं प्रणम्य हैं। गतान्नगमें चमकते इन किंवद्य पुरुषको हमारे शत-शत नमन हैं।

## सूर्यादि इहोंगा प्रसाद

देवज्ञों और वृद्धोंका अनुभव है कि ग्रह गव्यज्ञ, पर ईठा देते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति उभयकार सत्ताच्युत भी करा देते हैं। सच तो यह है कि उन्हें प्रभावसे यह सारा चराचरान्मक ससार व्याप्त है। शास्त्रका वचन है—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं दृहन्ति च । दृहेस्तु व्यापेतं स जामेतच्चराचरम् ॥

इसी आधारपर यह शास्त्रोक्ति है कि ज्योतिश्चक्रमें सभी लोगोंके शुभायुः फल कहे गये हैं—‘ज्योतिश्चक्रेतु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभायुभम्।’

पाथात्म्य विद्वान् ऐलेन लियोने अपनी पुस्तक पर्सोल्डीजी फार आल (Astrology for all) की प्रस्तावनामें लिखा है कि ‘अवश्याकी दृष्टिको टोड़कर, परिश्रमसे यहि इस विज्ञानकी सभ्यताको खोजा जाय तो हमारे पूर्वज ऋषियोंके उच्चकोटिके विचार और अनुभव सन्य प्रमाणित होगे।’

## ग्रहणका रहस्य—विविध दृष्टि

(लेखक—प० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विज्ञानिवि )

जो वस्तु ग्रहणटमे पायी जाती है, वह वस्तु पिण्डमे भी पायी जाती है। जैसे ग्रहणटमे सूर्य और चन्द्रमा है, वैसे पिण्डमे भी है। जावालोपनिषद् के चतुर्थ खण्डमे योगीके लिये शारीरस्य चन्द्रग्रहणका स्वरूप इस प्रकार वतलाया गया है—

इडायाः कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समाप्ततः ।  
सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वरः ॥  
( ४६ )

वहीं सूर्यग्रहणके विषयमे कहा गया है—

यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलोस्थानमाप्ततः ।  
तदा तदा भवेत् सूर्यग्रहणं सुनिषुंगच ॥

साङ्कृतिके गुरु महायोगी दत्तात्रेयजी अपने शिष्य साङ्कृतिको अष्टाङ्गयोगका उपदेश करते हैं। उसी योगोपदेश-के प्रसङ्गमे इडा, कुण्डली, पिङ्गला—इन नाडियोका वर्णन है। कन्दके मध्यमे सुषुम्ना नाडी है। जिसके चारो ओर वहतर हजार नाडियाँ हैं। उनमेरो चौड़ह नाडियाँ मुख्य हैं। पीठके बीचमे स्थित जो हड्डीरूप वीणादण्डके समान मंरुदण्ड है, उससे मस्तकपर्यन्त निकली हुई नाडीको सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्नाके बाये भागमे इडा नाडी है और दक्षिणमे पिङ्गला नाडी है। इडा नामिकन्दसे दो अङ्गुलि नीचे कुण्डली नाडी है। इडा नाडीसे जब प्राण कुण्डलीके स्थानमे पहुँचता है तब चन्द्रग्रहण होता है। जब पिङ्गलासे कुण्डलीके स्थानमे प्राण जाता है तब रूर्ध्यग्रहण होता है। योगीलोग इसीको चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण कहते हैं।

पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप

श्रीमद्भागवतस्थ अष्टम स्कन्धके नवम अध्यायमे चौवीसवें श्लोकसे छव्वीसवेतक ग्रहणके विषयमे कहा गया है—

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।  
प्रविष्टः सोममपिवचन्द्रार्कभ्यां च सूचितः ॥

चक्रेण शुरथरेण जहार पिवनः शिरः ।  
हरिस्तस्य कवन्धस्तु सुपथामृतिनोऽपत्तः ॥  
शिरस्त्वपरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लात् ।  
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कविभिन्नावति देवरथीः ॥

‘मात्रान् विष्णु जब गोहिनीका रूप बनाकर देवताओंको अमृत पिलाने लगे तब राहु देवताओंका रूप बनाकर उनकी पङ्किमे ढैठ गया। उस समय रूर्ध्य और चन्द्रमाने राहुका मूचना दे दी। मूचना देनेपर भगवान्ने सुर्दर्शनवक्रसे राहुके शिरको काट दिया; परं उअमृतसे भरपूर बड़का नाम केनु और अमरता जे प्राप्त हुए शिरका नाम राहु हो गया। भगवान् उसको ग्रह बना दिया। यह वैरके कारण पौर्ण। चन्द्रमाकी ओर तथा अमावास्यामे सूर्यकी ओर दोड़ा, यही पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप है।

ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण

ग्रहणकालमे पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेनी है। यदि सूर्यग्रहण हो तो चन्द्रमा सूर्यको ढक लेने हैं, जैसा कि ‘सिद्धान्तगिरोमणि’ने पर्वतसमविकारमें श्रीभास्कराचार्यजीने कहा है—‘भूगा विधुं विधुरित्वं प्रहणे पिथन्ते’( श्लोक ९ )। यही बात रूर्ध्यमिहान्तके चन्द्रग्रहणाविकारप्रकारणमे दाही गयी है।

छादको भास्करस्थेन्दुरथःस्यो घनवद् भवेत् ।  
भूछायां प्राडुमुखथन्द्रो विशत्यस्य भवेदस्तौ ॥

अर्यात्—नीचे होनेगाला चन्द्रमा बादलकी मॉति सूर्यको ढक लेना है। पूर्ववीं और चलता हुआ चन्द्रमा पृथिवीकी छायामे प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढकनेवाली है। यह विशेषरूपसे ध्यातय है कि पृथिवीकी छायाको ‘सूर्यसद्वान्त’ चन्द्रग्रहणाविकार ( ५ ) मे ‘नम’ नामरो कहा है—‘विशेष्य लघ्वं सूचयां तमो लितात्तु पूर्ववत्’

अमरकोशमे 'तम' नाम राहुका है—'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विष्णुन्तुदः'। पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु है, यह विषय सिद्धान्तशिरोमणिके झोकरे भी पुष्ट हो जाता है। श्रीमास्कराचार्यजी स्पष्ट कहने हैं—

राहुः कुमामण्डलगः शशाङ्कः  
शशाङ्कगद्याद्यर्ताव विष्वम् ।  
तमोमयः गम्भुवरप्रदनात्  
सर्वांगमानामविस्त्रद्देमेनत् ॥

'पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु चन्द्रमाको ढक लेता है।' इसलिये 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकार-(२) में 'अगु च तदोक्तवत्' इस पदांशमे 'अगु' अर्थात् राहुको भी ग्रहणके लिये स्पर्श करना लिखा है।

कूर्मपुराणके पूर्वार्ध ४१वें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि पृथिवीकी छायासे राहुका अन्धकारमय मण्डल बनता है; जैसा कि कहा है—

उद्भूत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ।  
स्वर्भानिरोस्तु द्वहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम् ॥

सूर्यग्रहणके अमावास्या एवं चन्द्रग्रहणके पौर्णमासीको होनेके कारण

सूर्यसिद्धान्त, चन्द्रग्रहणाधिकार छठे झोकके अनुसार पृथिवीकी छाया सूर्यसे दूर राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है और पौर्णमासीको चन्द्रमाकी सूर्यसे दूर राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है—

‘भानोभार्थं महीच्छाया तच्चुल्येऽर्कसमेऽपि चा ।’

इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है; परंतु छः राशिका अन्तर होते हुए जिस पौर्णमासीको सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंके अश, कला तथा विकला पृथिवीके समान होते हैं, उसी पौर्णमासीको चन्द्रग्रहण होता है।

अमावास्याका दूसरा नाम सूर्येन्दुसंगम भी है; अर्थात् अपनी-अपनी कक्षामे होते हुए भी सूर्य और चन्द्रमा

अमावास्याको एक गतिमें होते हैं। ऐसा मंगम प्रत्यंक अमावास्यामें होता है। 'अमावास्या' शब्दकी व्युत्पन्निमें नी पता चलता है कि सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक गतिमें होते हैं। 'अमया सह घसनः चन्द्रमां अस्यामिति अमावास्या'—जिस नियिको सूर्य और चन्द्रमा एक राशिमें रहते हैं, उस नियिको अमावास्या कहते हैं। परंतु जिस अमावास्याको सूर्य तथा चन्द्रमाके अंश, कला-विकला ममान हों, उस अमावास्याको ही सूर्य-ग्रहण होता है। इसी विषयको सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकार (६)में स्पष्ट कहा है—

तुल्यौ गदयादिभिः स्यानाममावास्यान्तकान्तिको ।  
सूर्येन्दु पौर्णमास्यन्ते मार्ये भानादिको ममो ॥

ग्रहणके समय चन्द्रमाका विभिन्न रंग तथा  
सूर्यका काला ही क्यों रहता है ?

यह विषय सूर्यसिद्धान्तके छेदकाधिकार (२३)में स्पष्ट है—

अर्याद्वृने ताम्रं स्यात् कृष्णमर्याधिकं भवेत् ।  
विमुच्चतः शृणताम्रे कपिलं सकलत्रहे ॥

यहि आधेसे कम चन्द्रमाका प्रास हो तो ताम्रे-जैसा, आधेसे अधिकके प्रासमें काला, चतुर्थांशमें अधिकके प्रासमें कृष्णनाम्र और समूर्णके प्रासमें चन्द्रमाका रंग कपिल होता है। पृथिवीकी छाया काला है तथा चन्द्रमा पील रंगके हैं। इसलिये दो वर्णोंका मेल होनेसे प्रासकी कर्मी तथा अधिकताके कारण चन्द्रमाके विभिन्न रंग हो जाते हैं। चन्द्रमा तो जलगोलक है। इसलिये अमावास्यामें चन्द्रमाका दृश्य विष्व सदा ही काले रंगका होता है। ग्रहणकालमें सूर्यका आच्छादक चन्द्रमा होता है, इसलिये ग्रहणकालमें सूर्यका रंग सदा काला ही रहता है चाहे किन्तु ही भागका प्रास हो। आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण (सुन्दरकाण्ड, सर्ग २९, झोक ४८)में त्रिजटाकी राक्षसियोंके प्रति उक्ति है—

छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ।

सीताके दुःखकी उपस्थिति छायावैगुण्यमात्र अर्थात् ग्रहणकालमें चन्द्रमाके छायावैगुण्यकी भौति है। इससे ग्रहणकालमें पृथिवीकी छायाका अनुमोदन हो जाता है।

काव्यकी दृष्टिसे ग्रहण—जिस कालिदासको ऐतिहासिक दो सहस्र वर्षसे अधिक पुराना मानते हैं, उन्होने रघुवंश ( १४। ७ )में पृथिवीकी छायाका चन्द्रमापर पड़ना स्पष्ट लिखा है—

अर्वैमि चैनामनग्रेति किन्तु  
लोकापवादो वलवान् मतो मे ।  
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वा-  
दरोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥

जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम चौदह वर्षका बनवास व्यतीत कर अयोध्या लौट आये तो सीताके विषयमें लोकापवाद सुनकर कहते हैं कि मैं समझता हूँ कि सीता निष्कर्लंक है, परन्तु लोकापवाद वलवान् है; क्योंकि पड़ती तो चन्द्रमापर पृथिवीकी छाया है; परंतु प्रजा उसे चन्द्रमाका मल कहती है। यह ज्ञान कालिदासको भी था। वैज्ञानिकोने कोई नयी खोज नहीं की है।

किस स्थानमें किस ग्रहणका महत्त्व अधिक है?—पुराणमें चन्द्रग्रहणका महत्त्व वाराणसीमें वताया है और सूर्यग्रहणका महत्त्व कुरुक्षेत्रमें। यही कारण है कि श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजी सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र आये और उन्होने वहाँ जाकर यज्ञ किया। यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उत्तरार्धमें स्पष्ट लिखा है।

धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—धर्म-शास्त्र तथा पुराणोका कथन है कि ग्रहणकालमें जप नया दान एव हन्त करनेसे बहुत फल होता है। यह विषय श्रीभास्कराचार्यजीने उठाया और समर्थन किया है। ‘धर्मसिन्धु’में आता है कि ग्रहण लगनेपर स्नान, ग्रहणके मध्यकालमें हवन तथा देवपूजन और श्राद्ध,

ग्रहण जब समाप्त होनेवाला हो तब दान और समाप्त होनेपर पुनः स्नान करना चाहिये। यदि सूर्यग्रहण रविवारको हो और चन्द्रग्रहण सोमवारको हो तो उसे चूडामणि कहते हैं। उस ग्रहणमें स्नान, जप, दान, हवन करनेका और भी विशेष फल है।

तन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—शारदातिलक, द्वितीय पटलके दीक्षा-प्रकरणकी पदार्थदर्श-व्याख्यामें रुद्रयामल-प्रन्थको उद्भृत करके लिखा है—

सत्त्वीर्थेऽर्कविद्युग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।  
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासक्षर्दीन् न शोधयेत् ॥

आस्तिसहितामे भी कहा है—

सूर्यग्रहणकालेन समोऽन्यो नास्ति कथ्यन् ।  
तत्र यद् यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥  
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाऽयासेन वेगतः ।  
कर्तव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिरभीज्ञुभिः ॥

तीर्थों और सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें मन्त्र-दीक्षा लेनेके लिये कोई विचार न करे। सूर्यग्रहणके समान और कोई समय नहीं है। सूर्यग्रहणमें अनायास ही मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। इन श्लोकोंमें मन्त्र शब्द यन्त्रका भी उपलक्षक है। इसका सारांश यह है कि ग्रहणकालमें मन्त्रोको जपनेसे तथा मन्त्रोको लिखनेसे विलक्षण सिद्धि होती है। इसके अर्तात् इस कालमें रुद्राक्ष-मालाके धारणमात्रसे भी पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये जागालोपनिषद् के चौवालीसवे श्लोकमें लिखा है कि—

ग्रहणे विषुवे चैवमयने सङ्कमेऽपि च ।  
दर्शेषु पौर्णमासेषु पूर्णेषु दिवसेषु च ॥  
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

गणपत्युपनिषद् में भी लिखा है कि सूर्यग्रहणमें महानदी अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोंमें या किसी प्रतिमाके पास मन्त्र जपनेसे वह सिद्ध हो जाता है।

‘सूर्यग्रहणे महात्मां जतिसासंनिधौ वा जप्त्या  
स निष्ठापन्त्रो भवति’ (गगत्युपनिषद्, मन्त्र ८)

इसलिये सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें दान तथा  
हवन एवं मन्त्रोंका जप तथा यत्रोको लिखता चाहिये।

ग्रहणकालमें कुशाका महत्व-ग्रहणकालमें विगततः  
जल आदिमें कुण्ड डालना चाहिये। कुशा डालनेमें  
ग्रहणकालमें जो अगुह्य परमाणु होते हैं, उनका कुशा  
डाली हुई कस्तुपर कोई प्रभाव नहीं होता, यह डाक्टरोंका  
अनुमत है और धर्मशास्त्रादिममत भी है। इसलिये  
निर्णयसिद्धिमें मन्त्रवृहुकावलीके बचनको उदृत वरके  
कुशाके महत्वको दत्ताया है—‘वारितकारनालादि  
तिलक्ष्मै दुर्यति’—ग्रहणकालमें जल, छात्र (लस्ती)  
तिल आ तर आदिमें कुशा डालनेसे वैद्यपित नहीं  
होते। इसलिये कुशाके आभन्नर बैठकर योगसाधन  
तथा मन्त्रका विवान है। यह श्रीमद्भगवद्गीताके छठे  
अध्यायके १६वें इलोकसे भी स्पष्ट है। कुशाके आभन्नपर  
बैठनेमें अगुह्य परमाणुओंका समर्क सर्वेषां नहीं होता।  
अतएव मन् पूर्ण सूयत रहता है और बुद्धि इनीं स्वच्छतामा-  
से काम करता है कि ननिक्ष भी प्रमाद नहीं होने  
पाए। कुशाका महत्व महाभाष्यके तीसरे आहिकके  
‘बृहदिशादैच् (१।१।१)’—इस सूत्रके व्याख्यानमें वराया  
है—‘प्रमाणसूतां आचार्योऽर्थपविविष्यपाणिः सूत्राणि  
प्रणयति स्म’ इत्यादि अर्थात् प्रामाणिक आचार्यसे कुशाकी दिया गया है।

पविर्णि हाथमें डालकर पवित्र न्यनमें पूर्वानिमुख बैठकर  
नूत्र बनाये हैं; इसलिये किसी नूत्रका एक वर्ग भी  
अनर्यक नहीं हो सकता—‘बृहदिशादैच्’ इन्तजा वडा  
सूत्र की, अनर्यक हो सकता है? प्रनिदिन होनेवाले  
तर्मण, हवन तथा श्रावकमें कुशाका महत्वपूर्ण स्थान  
है। श्राव और कुशकाण्डकामे उमर्की प्रशानता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथिवीकी दृश्य पड़नेसे  
ग्रहण होता है, यह उनका कर्म कुछ अंगतक ठीक  
है। बस्तुतः पृथिवीकी दृश्य पड़नेपे चन्द्रग्रहण होता  
है और चन्द्रमाद्वारा नूर्यके ढंग जलनेपे नूर्यग्रहण होता  
है, जो हमने आनंदक प्रभागमें ही निद जा दिया  
है। वैज्ञानिकोंके निदान अपने दग्धों हैं। पहले  
वैज्ञानिक आवाजनों नहीं जानते थे, अब ‘इयर’ नामसे  
उसे मानने लगे हैं। मार्तीय प्रन्त्योनि तो शृणि, स्मृति,  
पुराण, दर्शन, ज्यौनित आदिमें आकाशको माना है।  
न्यायशास्त्रमें तो वर्ण दृढ़ प्रजाग उंडकर आकाशको  
सिंह किया गया है। आकाश अन्यतद पद्ममहाभूत है।

कुछ वैज्ञानिक जाप्त्यमें भी जाग मानने थे; किंतु अब  
मानना ठोड़ दिया है। विव्यवाहि महर्पियोने सब  
वाले योगवलसे प्रत्यक्ष करके दियी हैं। इसलिये  
ग्रहणका ऊरुप भी हमने मार्तीय शास्त्रोंके आवासपर  
सिंह किया गया है। आकाश अन्यतद पद्ममहाभूत है।

### ग्रहणमें रत्नालादिके नियम

चन्द्रन्यूर्य दोनों राहुसे ग्रह द्वय हुए अन है जायें तो मुनः उनका दर्शन करके स्नान और  
भोजन करना चाहिये। भोजन अपने घरका करे। ग्रन्ताममें दिन-रात—दोनोंमें भोजन निषिद्ध है। चन्द्रमा राहुग्रह उद्दित  
होते हों तो ग्रहम दिन भोजन न करे। चन्द्रमाके प्रान्तकाल ग्रन्ताम हो जानेरर प्रयम सत्रि तथा अग्नें दिन-ज्ञा भोजन  
निषिद्ध है; किंतु स्नान-हवन आदि भोक्त्र-भजयसे किया जा सकता है। ग्रहणसे एक ग्रह पहले बालक, बृद्ध और रोगी भी  
भोजन न दर्शे। वेद या ग्रहण-कालमें पञ्चवान्न भी नहीं ज्ञाना चाहिये। ग्रहणमें सभी व्रणोंको सूतक लगता है—‘मर्वेपामैव  
वर्णानां सूतकं राहुकर्त्ते।’ नरकट, दृष्ट-दृही, मट्टा, वीचा पक्का अथ और मणिये रखा जल तिल आ कुण्ड डालनेवर अविवित  
नहीं होते। गङ्गाजल अपवित्र नहीं होता। जैमिनि पुराणमें रविवार और संक्रान्तिके निवा ग्रहणमें भी उपवास वर्जित  
करते हैं। हाँ, सबके लिये जप आदिका विधान और शयन आदिका निषेध अवश्य है—

मूर्येन्दुग्रहणं वावत् तावत् कुर्याजपादिकम् । न स्वप्नेन च मुर्जीत स्नात्वा मुर्जीत मुन्त्रयोः ॥

(निं० मु०)

## सूर्यचन्द्र-ग्रहण-विमर्श

ग्रहण आकाशीय अद्भुत चमक्कानिका अजोग्व दृश्य है। उससे अश्रुपूर्व, अद्भुत ज्योतिष्क-ज्ञान और ग्रह-उपग्रहोंकी गतिविधि एव स्खल्यका परिस्फुट परिचय प्राप्त हुआ है। ग्रहोंकी दुनियाओं की यह वटना भारतीय मनीपियोंको अत्यन्त प्राचीनकालसे अभिज्ञान रही है और इसपर धार्मिक तथा वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक प्रन्थों और ज्योतिष-प्रन्थोंमें होता चला आया है। महर्पि अत्रि मुनि ग्रहण-ज्ञानके उपज्ञ (प्रथम ज्ञाना) आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाशकालसे ग्रहणके ऊपर अध्ययन, मनन और स्थापन होते चले आये हैं। गणितके बलपर ग्रहणका पूर्ण पर्यवेक्षण प्रायः पर्यवसित हो चुका है, जिसमें वैज्ञानिकोंका योगदान भी सर्वथा स्तुत्य है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह चामत्कारिक वर्णन मिलता है कि 'हे सूर्य ! असुर राहने आपपर आक्रमण कर अन्धकारसे जो आपको विद्व वार दिया—ठक दिया, उससे मनुष्य आपके (सूर्यके) रूप-(मण्डल-) को समग्रतासे देख नहीं पाये और (अतएव) अपने-अपने कार्यक्षेत्रोंमें हतप्रभ-(ठप-)से हो गये। तब महर्पि अत्रिने अपने अर्जित सामर्थ्यसे अनेक मन्त्रोद्घारा (अथवा चाँथे मन्त्र या यन्त्रसे) मायाश (द्याया) का अपनोडन (दूरीकरण) कर सूर्यका समुद्भार किया।'

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः ।  
अक्षेत्रविविधथा सुर्यो भुवनान्वदीध्युः ॥  
स्वर्भानोर्ध यदिन्द्र माया  
अग्नो द्विद्वो वर्तमाना अवाहन् ।  
ग्रलं सूर्यं तमसापवतेन  
तुरीयेण व्रह्मणाऽविन्दद्विः ॥  
(—ऋ० ५ । ४० । ५-६ )

अगले एक मन्त्रमें यह आता है कि 'इन्द्रने अत्रिकी

—द्रष्टव्य—५ । ४० । ७—९ तकके मन्त्र ।

+—पहला मत सायणप्रभृति वेद-भाष्यकारोंके सकेतानुमार परम्पराप्राप्त है और दूसरा मत वेदमहार्णव प० मध्यसूदनजी ओजाका है, जिसे उन्होंने अपने 'अत्रिव्याप्ति' नामक ग्रन्थमें प्रतिष्ठित किया है।

सहायतासे ही गहुकी मायामे सूर्यकी गता की थी।' इमी प्रकार ग्रहणके नियमनमें समर्थ गतिविधि अत्रिके तपसन्धानसे समुद्भुत अविनियोगी प्रभावोंका वर्णन नेदके अनेक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है। + किंतु महर्पि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्यसे इस द्विलक्षिक कार्ये। दक्ष माने गये, इस विषयने दो मन है—प्रथम परम-ग-ग्रान यह मन कि वे इस कार्यमें तपस्याके प्रभावों समर्थ हुए, और दूसरा यह कि वे द्वोई नया यन्त्र बनाकर उमर्जी सहायतासे ग्रहणगे उन्मुक्त हुए सूर्यको दिव्यविनियोग समर्थ हुए। + यही कारण है कि महर्पि अत्रि ही भारतीयोंमें ग्रहणके प्रथम आचार्य (उपज्ञ) नाने गये। सुनतां इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें भारतीय सूर्यग्रहणके विषयमें पूर्णतः अभिज्ञ थे।

मध्ययुगीन ज्योतिर्विज्ञानके उच्चतम आचार्य भास्तुराचार्य प्रभुतिने सूर्यग्रहणका समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है तथा उसके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रणाली भी प्रदर्शित की है। किंतु इस आकाशीय चमत्कृतिके लिये प्रयासका पर्यवसान उन्होंने भी वेद-पुराण जाननेवालोंके माध्यमसे ग्रहणकालमें जग, द्रान, हृवन, श्राद्धादिके वहुफलक होनेकी झलश्चित्तमें करते हुए भारतकी अन्तर्गतमा—धर्मको ही पुरस्कृत किया है—

'चहुफलं जपदानहुनादिके  
श्रुतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि ।'

आधुनिक पाश्चात्य खगोलगान्धियो-(वियद्विज्ञानियो)-ने भी अदृष्ट थ्रमकर विषय-वस्तुओं वहृत कुछ स्पष्ट कर दिया है। किंतु उनका व्येय ग्रहणके तीन प्रयोजनोंमें से तीसरा प्रयोजन—सूर्य-चन्द्रमाके विमोक्षा भौतिक एव रासायनिक अन्वेषण-विश्लेषण ही

है। वे धार्मिक महत्त्वको तथा लोगोमें कौन-हलजनक उसके चमत्कारको उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम सक्षेपमें सूर्यचन्द्र-ग्रहणोका सामान्य परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्ठपिण्डोके सामने जब कोई अप्रकाशित अपारदर्शक पदार्थ आ जाता है तब उस तेजस्वी ज्योतिष्ठपिण्डका प्रकाश उस अपारदर्शक पदार्थ-भागके कारण छिप जाता है और दूसरे पारवालोके लिये छाया बन जाती है। यही छाया 'उपराग' या 'ग्रहण'का रूप ग्रहण कर लेती है।

चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह और अपारदर्शक हैं जो खनः प्रकाशक न होनेके कारण अप्रकाशित पिण्ड हैं। अण्डेके आकारबाले अपने भ्रमण-पथ ( अक्ष ) पर घूमते हुए वे ( सूर्यकी परिक्रमा करती हुई ) पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं। \* वे कभी पृथ्वीके पास थैर कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम-से-कम अन्तर १,२१,००० मील और अधिक-से-अधिक २,५३,००० मील होता है। अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए चन्द्रमा अमावास्याको सूर्य और पृथ्वीके बीचमे आ जाते हैं और कभी-कभी ( जब तीनो विल्कुल सीधमें होते हैं तब ) सूर्यके प्रकाशको ढक लेते हैं—हमारे लिये उसे मेघकी भाँति रोक देते हैं, जिससे मूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है। † जब वे पृथ्वीके पास हो और राहु या केतु विन्दुपर हों, तब

उनकी परछाई पृथ्वीपर पड़ती है। पास होनेके कारण उनका विम्ब बड़ा होता है, जिसमें हमारे लिये मूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग हमारी ओर होता है और उसकी धनी और हल्की परछाई पृथ्वीपर पड़ती है। सूर्य पृथ्वीके जितने भागपर धनी छाया ( प्रच्छाया ) रहनेसे दिखलायी नहीं देते, उतने भागपर सूर्यका सर्वग्रास ( खग्रास ) सूर्यग्रहण होता है और जिस भागपर कम परछाई ( उपच्छाया ) पड़ती है, उसपर सूर्यका खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी—तीनो जब एक सीधमें नहीं होते अर्थात् चन्द्र, ठीक राहु या केतु विन्दुपर न होकर कुछ ऊचे या नीचे होते हैं तब सूर्यका खण्ड-ग्रहण होता है। और, जब चन्द्रमा दूर होते हैं तब उनकी परछाई पृथ्वीपर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलायी पड़ते हैं—उनके विम्बके छोटे होनेसे सूर्यका मध्यभाग ही ढकता है, जिससे चारों ओर कङ्कणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलायी पड़ता है। इस प्रकारके ग्रहणको कङ्कणाकार या बल्याकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहणको 'खग्रास' और अपूर्णको 'खण्डग्रास' भी कहा जाता है। निदान, सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—( १ ) सर्वग्रास या खग्रास—जो सम्पूर्ण सूर्य-विम्बको ढकनेवाला होता है, ( २ ) कङ्कणाकार या बल्याकार जो सूर्य-

\* चन्द्रमाकी अपने कक्षकी एक परिक्रमा २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनट और १२ सेकण्डमें होती रहती है।

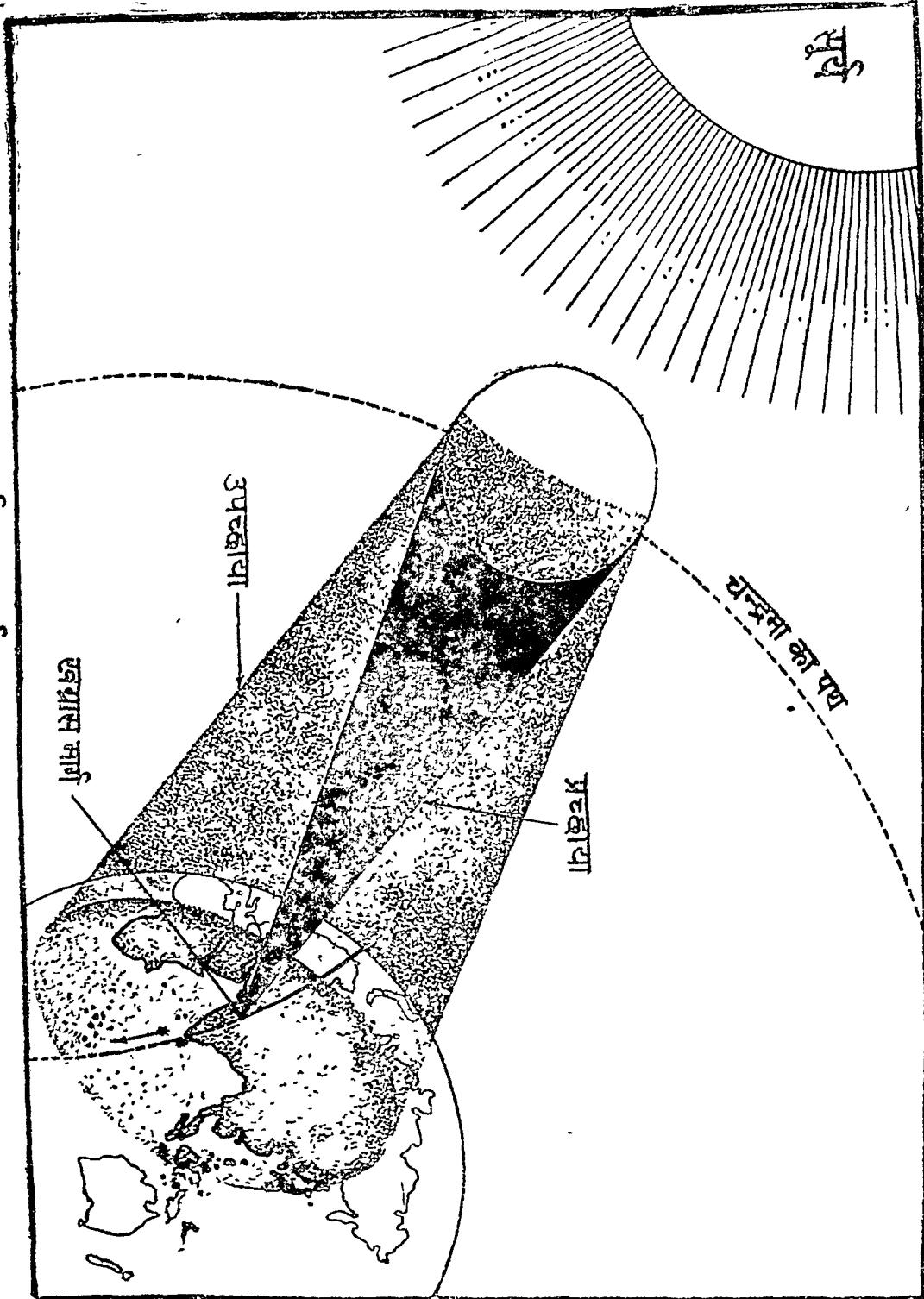
† सिद्धान्तशिरोमणि ( के गो० प्र० वा० १ )में भास्कराचार्यने इस स्थितिका निरूपण निम्नाङ्कित श्लोकमें किया है—

पश्चाद् भागाज्जलदवदधः सस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रोभानोर्विम्बं स्फुरदसित्या छादयत्यात्ममूर्यी ।

पश्चात् स्पर्शां हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात् एव क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैव कश्चान्तरत्वात् ॥

‡ ज्योतिषीको किसी असुरके शरीरमें दिलचस्पी ( स्पृहा ) नहीं है। उसके लिये तो राहु और केतुका दूसरा ही अर्थ है। जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है या यो कहिये कि सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है वह क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रमाका पृथ्वीके चारों ओरका मार्ग-वृत्त ( अक्ष )—ये दोनों जिन विन्दुओपर एक-दूसरेको काटते हैं, उनमेंसे एकका नाम 'राहु' और दूसरेका 'केतु' है, ( ग्रहनक्षत्र ) [‡ आकाशमें उत्तरकी ओर बढ़ते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यको काटती है तब उस सम्पात विन्दुको राहु और दक्षिणकी ओर नीचे उत्तरते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यकी कक्षाको पार करती है, तब उस सम्पात-विन्दुको केतु कहते हैं। ]

सर्वग्रास सूर्यग्रहणका दृश्य



टिप्पणी—सूर्यका क्रान्तिवृत्त प्रत्येक तीस अंशोकी वारह राशियोके ( $12 \times 30 =$ ) ३६० अंशोका माना गया है। मोटे तौरपर पूर्णिमाका चन्द्र-मण्डल आधे अंशोका होता है।

विम्बके बीचका भाग ढकता है तथा ( ३ ) खण्ड-ग्रहण—जो नूर्य-विम्बके अंशको ही ढकता है। इनकी निम्नाकृति परिस्थितियें होती हैं—

( १ ) खग्राम सूर्य-ग्रहण तब होता है जब ( क ) अमावास्या हो, ( ख ) चन्द्रमा, ठीक राहु या केतु विन्दुपर और ( ग ) पृथ्वी-समीप विन्दुपर हो। इस प्रकारकी स्थितिमें चन्द्रमाकी गहरी छाया जिन्हें स्थानोपर पड़ती है, उन्हें स्थानोपर खग्राम प्रहण दग्धोचर होता है और जिन्हें स्थानोपर हल्की परलाई पड़ती है, उन्हें स्थानोपर खण्डग्राम प्रहण होता है और जहाँ वे दोनों परलाईयों नहीं होतीं वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है। इसलिये ग्रहण लियते समय ग्रहणके स्थानों एवं प्रकारकों भी सूचित करना पञ्चाङ्गकी प्रक्रिया है।

( २ ) कङ्कणाकार अथवा बल्याकार सूर्य-ग्रहण तब होता है जब—( क ) अमावास्या होती है, ( ख ) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु विन्दुपर होते हैं, किंतु ( ग ) चन्द्रमा पृथ्वीसे दूरविन्दुपर होते हैं।

( ३ ) खण्डित ग्रहण तब होता है जब—( क ) अमावास्या होती है, ( ख ) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु-विन्दुपर न होकर उनमें से किसी एकके समीप होते हैं।

चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको होता है—जबकि सूर्य और चन्द्रमाके बीच पृथ्वी होती है और तीनो—सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा—विलकुल सीधमें, एक साल रेखामें होते हैं। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमाके बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें होकर गुजरते हैं तब चन्द्रग्रहण होता है—पृथ्वीकी वह छाया चन्द्रमण्डलको ढक देती है, जिससे चन्द्रमामें काला

\*—द्रष्टव्य—कमलाकरका निम्नाकृति इलोक—

अयात्र भावाववेन तुल्यो यत्कलिको मूर्यविधू स्फुटौ स्तः ।

| गानाविष्पृथुत्वादृथुत्वात्पृथिव्याः प्रभा हि सूच्यत्रा ।

मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही चन्द्रग्रहण कहा जाता है। मूर्य और चन्द्रमाके बीचसे गुजरनेवाली पृथ्वीकी वार्यी ओर आधे भागपर रहनेवाले मनुष्योंको चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है।

सूर्यविम्बके बहुत बड़े होने तथा पृथ्वीके द्वाटे होनेके कारण पृथ्वीकी परलाई हमारी परलाईकी भाँति न होकर काले ठोस शङ्कुके समान—मूच्याकार होती है और चन्द्र-कक्षाको पारकर बहुत दूरतक निकल जाती है। आकाशमें फैली हुई पृथ्वीकी यह छाया लगभग ८,७७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्यके बीचकी दूरीपर निर्मर होती है, अतः यह छाया घटनी-बढ़ती रहती है। इसीलिये यह परलाई कमी ८,७१,००० मील और कमी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शुभ-सद्शा इस प्रच्छायाके साथ ही शङ्कुके ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने खण्डग्रामपर चलते हुए जब पृथ्वीकी उपच्छायामें पहुँचते हैं तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, परं ये ही वे प्रच्छायाके समीप आ जाते हैं, ये ही उनमें ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छायाके भीतर आ जाता है तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णग्राम चन्द्रग्रहण लग जाता है। इसे हम ज्योतिषके दृष्टिकोणसे और स्पष्टतासे समझें।

‘रात्रिमें दिखलायी देनेवाला अन्धकार पृथ्वीकी छाया है। यह छाया जब चन्द्रमापर पड़ जाती है तब चन्द्रमापर ग्रहण लगा कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह है। अतः वे पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी यनः सूर्यकी

अमान्तसंज्ञोऽस्ति न एव विज्ञैर्स्कंग्रहार्थं प्रथमं प्रसाध्यः ॥

—सि० तत्त्व चि०, सूर्य-ग्रहणधिकार ५

दीर्घतया नक्षिकामतीत्य दूरं वहिर्यता ॥  
—भास्करचार्य

परिक्रमा करती हैं, अतः पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनोंके भ्रमण-क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमाको पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाके बीच हो जाती है। उसकी छाया शङ्खवत् होती है। जब वह छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है अथवा यो कहिये कि चन्द्रमा अपनी गतिके कारण पृथ्वीके छाया-शङ्खमें प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाना है और कभी उसका कुछ अश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्रके ढकनेकी अवस्थामें सर्वप्राप्त चन्द्रग्रहण और अशतः ढकनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है; परतु यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रत्येक पूर्णिमाको उपर्युक्त ग्रह-स्थितिके नियत रहनेपर प्रत्येक पूर्णिमाको ग्रहण क्यों नहीं लगता? इसका समाधान यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमाके मार्ग एक सतहमें नहीं हैं। वे एक दूसरेके साथ पाँच अशका कोण बनाते हैं, जिससे ग्रहणका अवसर प्रतिपूर्णिमाको नहीं होता है। (एक सतहमें दोनोंके भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावास्याको चन्द्र-सूर्य-ग्रहण होते।) बात यह है कि चन्द्रमाकी वक्षा पृथ्वीकी कक्षासे ५८ अशके कोणपर झुकी हुई है और यह भी है कि चन्द्रमाकी पातरेखा चल है। पातरेखाकी परिक्रमाका समय प्रायः १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधिके बाद ग्रहणोंके क्रमकी पुनरावृत्ति होती है। इस समयको 'चन्द्रकक्ष' कहा जाता है।

भारतके प्रसिद्ध ज्योतिषी स्व० श्रीवापूदेवजी शास्त्रीने भारतेन्दु वाबू हरिश्चन्द्रको लिखे अपने एक पत्रमें लिखा था कि 'सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिमें जो अन्धकार दीखता है, वही पृथ्वीकी छाया है। पृथ्वी गोलाकार है और सूर्यसे बहुत छोटी है, इसलिये उसकी छाया सूच्याकार काले ठोस शङ्खके आकारकी होती है। यह अवकाशमें चन्द्रमाके भ्रमण-मार्गको लॉप्कर बहुत दूरतक सदा सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहती है। पूर्णिमाके अन्तमें चन्द्रमा भी सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर

रहते हैं। इसलिये पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा जिस पूर्णिमाको पृथ्वीकी छायामें आ जाते हैं अर्थात् पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाके बिम्बपर पड़ती है, उसी पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है और जो छाया चन्द्रमापर दिखायी पड़ती है, वही ग्रास कहलाती है। पौराणिक श्रुति प्रसिद्ध है कि 'राहु नामक एक दैत्य चन्द्रग्रहण-कालमें पृथ्वीकी छायामें प्रवेशकर चन्द्रमाकी ओर प्रजा (जनता) को पीड़ा पहुँचाता है। इसलिये लोकमें राहुकृतग्रहण कहलाता है और उस कालमें स्नान, दान, जप, होम करनेसे राहुकृत पीड़ा दूर होती है तथा पुण्य लाभ होता है।'

'चन्द्रग्रहणका सम्भव भूच्छायाके कारण प्रति पूर्णिमाके अन्तमें होता है और उस समयमें केतु और सूर्य साथ रहते हैं; परंतु केतु और सूर्यका योग यदि नियत संख्याके अर्थात् पाँच राशि, सोलह अशसे लेकर छः राशि चौदह अंशके अथवा ग्यारह राशि सोलह अंशसे लेकर बारह राशि चौदह अशके भीतर होता है, तभी ग्रहण लगता है और यदि योग नियत संख्याके बाहर पड़ जाता है, तो ग्रहण नहीं होता।'

यह प्रकारान्तरसे कहा जा चुका है कि पृथ्वीके मध्य-बिन्दुके क्रान्तिवृत्तकी सतहमें होनेसे पृथ्वी वर्धित पूर्णिमामें सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर नहीं पड़ने देती, जिससे उसकी छायाके कारण चन्द्रमाका तेज कम हो जाता है। ऐसी स्थिति राहु और केतु-बिन्दुपर या उनके समीप—कुछ ऊपर या नीचे—चन्द्रमाके होनेपर ही आती है। यह भी कहा जा चुका है कि चन्द्रमाके राहुकेतु बिन्दुपर होनेपर ही पूर्ण चन्द्रग्रहण होता है और उनके समीप होनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमाके कुछ भागका प्रकाश कम हो जाता है, जिससे वे निस्तेज प्रतीत होने लगते हैं, पर विल्कुल काले नहीं होते। हाँ, वे जब गहरी छाया (प्रच्छाया) में आ जाते हैं, तब काले होने लगते हैं। फिर भी वे

पूर्णतः अदृश्य न होकर कुछ लालिमा लिये हुए तो वेके रंगके दृष्टिगोचर होते हैं; क्योंकि सूर्यकी रक्तिम किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलद्वारा नीलांशशोषित होनेपर परिवर्तित होकर चन्द्रमातक पहुँच जाती हैं। इसी कारण हम पूर्ण चन्द्रप्रहणके समय भी चन्द्रमण्डलको देख सकते हैं।

**प्रहण-कालकी अवधि—चन्द्रमा और पृथ्वीकी दूरीके कापर निर्भर होती है।** कभी पृथ्वीकी छाया उस स्थानपर चन्द्रमाके व्याससे तिगुनीसे भी अधिक हो जाती है, जहाँ चन्द्रमा उसे पार करते हैं। छायाकी चौड़ाई इस स्थानपर जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक अवधितक चन्द्रप्रहण रहता है। पूर्ण चन्द्रप्रहणकी अवधि प्रायः दो घंटोंतक और प्रहणका सम्पूर्ण समय चार घंटोंतकका हो सकता है। चन्द्रमण्डलकी प्रस्ताताके अनुसार खण्ड-चन्द्रप्रहण अथवा पूर्ण चन्द्रप्रहण ( खग्रास चन्द्रप्रहण ) कहा-सुना जाता है। इसी प्रकार 'चन्द्रोपराग' भी शास्त्रीय चर्चामें व्यवहृत होता है।

खगोल-शास्त्रियोने गणितसे निश्चित किया है कि १८ वर्ष १८ दिनोंकी अवधिमें ४१ सूर्यप्रहण और २९ चन्द्रप्रहण होते हैं। एक वर्षमें ५ सूर्यप्रहण तथा दो चन्द्रप्रहणतक होते हैं। किंतु एक वर्षमें दो सूर्यप्रहण तो होने ही चाहिये। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही प्रहण हुए तो दोनों ही सूर्यप्रहण होगे। यद्यपि वर्षभरमें ७ प्रहणतक सम्भाव्य है, तथापि चारसे अधिक प्रहण बहुत कम देखनेमें आते हैं। प्रत्येक प्रहण १८ वर्ष ११ दिन बीत जानेपर पुनः होता है। किंतु वह अपने पहलेके स्थानमें ही हो—यह निश्चित नहीं है; क्योंकि सम्पात-विन्दु चल है।

साधारणतया सूर्य-प्रहणकी अपेक्षा चन्द्रप्रहण अधिक देखे जाते हैं, पर सच- तो यह है कि चन्द्रप्रहणसे कहीं अधिक सूर्यप्रहण होते हैं। तीन चन्द्रप्रहणपर चार सूर्यप्रहणका अनुपात आता है। चन्द्र-

प्रहणोंके अधिक देखे जानेका कारण यह होता है कि वे पृथ्वीके आधेसे अधिक भागमें दिखलायी पड़ते हैं, जब कि सूर्यप्रहण पृथ्वीके बहुत थोड़े भागमें—प्रायः सौ मीलसे कम चौड़े और दो हजारसे तीन हजार मील लम्बे भूभागमें—दिखलायी पड़ते हैं। वस्त्राईमें खग्रास सूर्यप्रहण हो तो सूरतमें खण्ड सूर्यप्रहण दिखायी देगा और अहमदाबादमें दिखायी ही नहीं पडेगा।

खग्रास चन्द्रप्रहण चार घंटोंतक दिखायी पड़ता है, जिनमें दो घंटोंतक चन्द्रमण्डल बहुत ही काल नजर आता है। खग्रास सूर्यप्रहण दो घंटोंतक रहता है, परतु पूरा सूर्यमण्डल ८-१० मिनटोंतक ही बिरा रहता है और साधारणतः दो-ही-तीन मिनटतक गढ़ा रहता है। उस समय रात्रि-जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्यका खग्रास प्रहण दिव्य होता है। सूर्यके पूरी तरह ढकनेके पहले पृथ्वीका रंग बदल जाता है और यक्षिक्षित् भयका भी संचार होता है। चन्द्रमण्डल तेजीसे सूर्यविम्बको ढक लेता है, जिससे अंधेरा छा जाता है। पश्च-पक्षी भी विशेष परिस्थितिका अनुभवकर अपनी रक्षाका उपाय करने लगते हैं। परंतु आकाशकी भव्यता और उपरोगिता बढ़ जाती है। सूर्यके पार्श्व प्रान्तमें मनोरम दृश्य देखनेको मिलता है। उसके चारों ओर मोतीके समान खच्छ 'मुकुटावरण' दृगोचर होता है, जिसके तेजसे आँखोंमें चक्काचौध होने लगती है। उसके नीचेसे सूर्यकी लाल ज्वाला ( प्रोत्रत ज्वाला ) निकलती देख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाशसे मनुष्योंके मुँह लाल वर्णके-से जान पड़ते हैं। किंतु यह दृश्य दो-चार मिनटतक ही दिखलायी पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्यको देखनेके लिये दैवज्ञ ज्योतिषी और भौगोलिक दूर-दूरसे ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी प्रक्रियामें यन्त्रोंसे सञ्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यप्रहण ( खग्रास सूर्यप्रहण ) होता है। भारतवर्षमें सन् १८७१ ई०

और सन् १८९८ ई०में सूर्यके खग्रास ग्रहण लगे थे।

ग्रहणसे ज्ञानार्जन— बहुत होता है। भारतके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियोंने ग्रहणके लोक-पक्षीय धर्म्य विचार भी प्रस्तुत किये हैं। आचार्य आर्यगढ़ और ब्रह्मगुप्तने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रग्राहकी गतिवी अवगति ग्रहणसे ही हुई। हम गणितसे वाह सकते हैं कि खान-विशेषणों कितनी अलंधिमें कितने ग्रहण लग सकते हैं। उदाहरणार्थ— वार्षिके वर्षभरमे प्रायः चार रूप्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किंतु लगभग दो सौ वर्षोंके बालान्तरपर कुल मिलाकर सात ग्रहणोंका होना समान्य है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण अथवा पाँच सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष दो ग्रहणोंका होना अनिवार्य है। हाँ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनों ही सूर्यग्रहण ही होते हैं। गणितद्वारा आगामी हजारों वर्षोंके ग्रहणोंकी संख्या उनकी तिथि और ग्रहणयों अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है।

\* किंतु सूर्य-बुधका अन्तर्योग ग्रहण नहीं, 'अधिक्रमण' कहा जाता है। यह ग्रहण-जैसा ही होता है जिसे सूर्यका घेदयांग भी कहते हैं। बुध जब सूर्य और पृथ्वीकी सीधमें सुजरते हैं तो सूर्यविभवपर छोटे-से कलकके समान चलविन्दु दिखलायी पड़ता है। ज्योतिषी इसे ग्रहण-जैसा कोई महत्व नहीं देते हैं, पर आकाशीय यह घटना दर्शनीय होती है। सूर्य-कलकसे इसकी भिन्नता, इसकी पूर्णतः गोलाई और शीघ्रग्राहितासे समझी जाती है। बुध सूर्यसे प्राप्तः साढ़े तीन करोड़ मीलपर रहते हैं।

निकटतर गूतमें ऐसा योग ६ नवम्बर १९६० को तथा गनिवार ९ मई १९६० ई० की हुआ था और भारत, चीन, रस-एशिया, अफ्रीका, योरप, दक्षिणी अमेरिका, कुछ भागोंको छोड़कर उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, ग्रीनलैंड पीलीफाइन आदि सासारके प्रायः सभी देशोंमें देखा गया था। ऐसा ही योग निकटतम भूतकाल ९ नवम्बर १९७३ में हुआ था। पुनः १२ नवम्बर १९८६ ई० को होगा। ज्योतिषके सहिताग्रन्थोंमें ऐसे योगको अनिवारी वताया गया है और सत्तापरिवर्तनमें नेतृपरिवर्तन सम्भाव्य होता है। (बुध-सूर्यका वहियांग भी होता है—जब बुध-पृथ्वीके बीचमें सूर्य होते हैं।)

+ आदित्येऽहनि समान्तौ ग्रहेण चन्द्रमूर्योः। पारण चोपवास च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥

पुत्रवान् गृहीके लिये रविवार, संकान्तिमें भी पारण तथा उपवास वर्जित है।

[ स्नानके लिये गरम जलकी अपेक्षा शीतजल, बूसरेके जलसे अपना जल, भूगमे निकाले हुएकी अपेक्षा भूगमिं स्थित तालावका और उससे ज्ञानेका, उससे गङ्गाका और गङ्गासे समृद्धका जल अधिक पुण्यप्रद होता है। ]

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमामें ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहों, उपग्रहोंमें भी होते हैं, जिसके लिये विशेषकृत्य निर्धारित नहीं है। निदान, ग्रहों, उपग्रहोंकी गतिशीलताकी विशेष स्थितिमें एकसे अन्यके प्रकाशका आवरण हो जाना या छायासे उसका ढक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रसे सबद्ध होनेपर ही 'ग्रहण' कहा जाता है। \* पृथ्वीपर ग्रहणके प्रभाव होनेसे धार्मिक कृत्य—स्नान, दान, जपादिका विधान है।

ग्रहणके धार्मिक कृत्य—सूर्यग्रहणके बाहर घटे और चन्द्रग्रहणके नौ बंटे पहलेसे विधवा, यति, वैष्णव और विरक्तोंको भोजन नहीं करना चाहिये। बाल, वृद्ध, रोगी और पुत्रवान् गृहस्थके+ लिये नियम अनिवार्य नहीं है। ग्रहण-कालमें शयन और शौचादि क्रिया भी निषिद्ध है। देवार्थिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणमें पुष्कर और कुरुक्षेत्रके तथा चन्द्रग्रहणमें काशीके स्नान,† जप, दानादिका बहुत महत्व है। ग्रहणमें विहित शाद्र कन्चे अन्न या स्खणसे ही करनेका विधान है। शाद्र अवश्य ही करना

चाहिये, अन्यथा नास्तिकतावश कीचड़में फँसी गायकी भाँति दुर्गतिमें पड़ना पड़ता है।\*

जन्म-नक्षत्र अथवा अनिष्टफल देनेवाले नक्षत्रमें प्रहण लगनेपर उसके दोपकी शान्तिके हेतु सूर्यग्रहणमें

सोनेका और चन्द्रग्रहणमें चाँदीका विष्व तथा घोड़ा, गौ, भूमि, तिल एवं धीका यथाशक्ति दान देनेका महत्त्व शाखोमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-संकीर्तन और जप आदि तो सभीको करना ही चाहिये।

‘सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्’

## वैदिक सूर्य तथा विज्ञान

(लेखक—श्रीपरिष्ठूर्णनन्दजी वर्मा)

गायत्रीके ‘सवितुर्वरेण्यम्’ मन्त्रके ऋषिसे लेकर आजतक—जब भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद शाहा, विदेशी वैज्ञानिक एडिंगटन, जीन्स, फालर, एडवर्ड आर्थर, मिलने या रसेलने भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें वहुत छानवीन तथा खोज कर डाली है—वैदिक कालमें सूर्यकी सत्ता, गति तथा महत्त्वके विषयमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिये गये थे, उनमें न तो कोई मौलिक अन्तर पड़ा है और न कोई ऐसी वात कही गयी है जो यह सिद्ध कर सके कि भारतीय सूर्यके वैज्ञानिक रूपसे अपरिचित थे तथा उन्हें केवल एक डैविक शक्ति मानकर उनके विषयमें छानवीन करना अपराध या पाप समझते थे। भारतीय सभ्यताकी प्राचीन कालीन सबसे बड़ी विशिष्टता है—विचार-स्वातन्त्र्य तथा विचार-औदार्य। प्रत्येक महापुरुष तथा मनीषीको पूरी स्वच्छन्दता थी कि वह जगत्के गूढ़तम सत्यकी खोज अपने ढांगसे करे और उसे प्राप्त करनेका स्वतन्त्र प्रयास करे। उदाहरणके लिये कपिल तथा कणादको ले। कपिल बुद्धसे वहुत पहले तथा उपनिषदोमेसे कुछकी सम्बन्धनाके पूर्वके ऋषि हैं; इसमें सदेह नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद्के ‘ऋपिंप्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे’(५।१)से ही यह प्रकट है। पर कपिल वैदिक धारणाके विपरीत असख्य आत्मा या

पुरुष मानते थे। प्रकृति सब आत्माओंसे सम्बन्ध निवाहनेके लिये कार्यरत है। इसी प्रकार खेतोंमें गिरे अज्ञको खाकर जीवननिर्वाह करनेवाले तपसी कणादके वैशेषिक दर्शनमें ईश्वरका उल्लेख नहीं है। इसलिये कुछ लोग उन्हे नास्तिक भी कहते हैं, जो उचित नहीं है। पुनर्जन्म और कर्मफलको माननेवाला व्यक्ति नास्तिक—कैसे हो सकता है? अतः कणादकी रचनाको छः आस्तिक-दर्शनोंमें माना गया है।

तात्पर्य यह है कि हिंदू या आर्य-धर्म सदासे वैज्ञानिक खोज तथा निरन्तर अनुसन्धानमें लगा रहा। किंतु वेदमें वर्णित प्रयेक विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये वहुत समझ-वृज्ञकी आवश्यकता पड़ती है। वैदिक प्रसङ्गोंमें शब्दके अर्थका उसके सामान्यतः प्रचलित अर्थसे निश्चय नहीं करना चाहिये, न किया जा सकता है। वादारायण व्यासने वेदान्तसूत्र ( १।२। १० ) में स्पष्ट लिख दिया है कि वैदिक शब्दोंका अर्थ सदर्मके अनुसार करना समुचित है—‘प्रकरणाच्च’। सम्बद्ध प्रसङ्गका अन्वितार्थ ही स्पष्टीकरण कर सकता है; क्योंकि प्रसङ्गको जाननेपर ही वाक्योंका अन्वय ठीक-ठीक बैठता और तात्पर्य ज्ञात होता है—वाक्यान्वयात् ( ७।१। ४। १९ )। उदाहरणके लिये छान्दोग्य उपनिषद् में ‘प्राण’ शब्दको

\* सर्वस्वेनापि कर्त्तव्य श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पद्मे गौरिव सीदति ॥

ले । प्रश्न होता है—वह कौन-सा देव है ? उत्तर है—प्राण ( १ । ११ । ४ ) । प्राणका अर्थ यहाँ वह हुआ । वेदमें ‘आकाश’ केवल पञ्च महाभूत—( क्षिति, अप, तेज, वायु तथा आकाश ) वाला ही एक महाभूत नहीं है । वह वेदान्तसूत्रके अनुसार ( १ । १ । २२ ) ब्रह्मका ( भी ) वाचक है । अस्तु ।

हमारे शास्त्रमें १२ आदित्योका वर्णन है । आज विज्ञानने मान लिया है कि १२ सूर्योंका तो पता चला है, किन्तु वाकी कितने हैं, यह नहीं कहा जा सकता । यह भी सिद्ध है कि इन १२ आदित्योंमें जो हमसे सबसे निकट हैं, वे ये ही सूर्य हैं, जिन्हे हम देखते हैं । पर सभी आदित्योंमें ये सबसे छोटे हैं । जिन भगवान् सूर्यकी अनन्त महिमा है, वे स्यात् हमारी दृष्टिकी परिधिके बाहर हैं । आज विज्ञान भी कहता है कि ग्रहोंमें सूर्य सबसे बड़े और प्रकाशमान होते हुए भी वास्तवमें सबसे छोटे और धुँधले हैं । यही नहीं, ये अपने निकटतम तारेसे कम-से-कम ३,००,००० गुना अधिक दूर हैं । सत्रहवीं सदीमे जॉन केपलरने यह हिसाब लगाया था । अति प्रकाशवान् ‘एरोस’ ( सूरः ) पृथ्वीसे १ करोड़ ४० लाख मील दूर है । पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीका जो हिसाब प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंसे लगता है, वे भी अब निर्धारित हो रहे हैं । पृथ्वीसे ९,२९,००,००० मील दूरीका अनुमान तो लग चुका है । इतने विशाल सूर्य कैसे बन गये, यह विज्ञान केवल अनुमान कर सकता है । इनका व्यास लगभग ८,६४,००० मील है । अणु-परमाणुके इन महान् पुङ्को निकटसे देखनेसे वास्तवमें वे एकदम साफ प्रकाशकी तक्तरीसे नहीं, बल्कि प्रज्वलित देदीर्घमान चावलके कणोंके समूह-से दीखते हैं । इनका अध्ययन अत्यन्त रोचक है ।

इन्हीं सूर्यसे सृष्टिका पोषण होता है—यह हमारा शास्त्र कहता है । विज्ञान कहता है कि इनमें निहित

६६ तत्त्वोंका पता लग चुका है, जो पृथ्वीके लिये पोषक तथा जीवनदाता हैं; पर और कितने अनगिनत तत्त्व हैं तथा किस शक्तिने इनको एक ग्रहमें रख दिया है, इसका अनुमान भी नहीं लग पाता । यह विज्ञानका मत है कि जिन सूर्यसे हम प्रकाश पा रहे हैं, उनकी न्यूनतम केन्द्रीय उण्ठता ६,००० डिग्रीकी अवश्य है । प्रतिश्क्षण ये सूर्य संसारको ३३७९×१० मान शक्ति दे रहे हैं । इनकी यह शक्ति प्रकाश तथा उण्ठताके रूपमें प्राप्त हो रही है । यदि इस शक्तिका वजनमें कथन किया जाय तो सूर्यसे प्रतिश्क्षण प्रति सेकेण्ड चालीस लाख ४०,००,००० टन शक्ति झर रही है, जो हमारे ऊपर गिर रही है । इतनी शक्तिका क्षय होनेपर भी उनका शक्ति-कोप खाली नहीं हो रहा है और कैसे उतनी शक्ति बराबर बनती जा रही है—इसका उत्तर विज्ञानके पास नहीं है । विज्ञानके लिये यह ‘अद्भुत रहस्य’ है ।

### सूर्यका उपयोग

सूर्यका नाम द्वादशात्मा भी है; विवस्वान् तथा भगः भी है । ‘सूर्यः सरति’ अर्थात् आकाशमें सूर्य खिसक रहा है, अतः आकाशके प्रलयका कारण होगा—यह भारतीय मान्यता है । आज विज्ञान भी कहता है कि १२ सूर्य धरे-धीरे पृथ्वीके निकट आ रहे हैं और अधिक निकट आ गये तो प्रलय हो जायगी । आज विज्ञान सूर्यकी शक्तिका संकलन करके कोयचा, पानी, ईंधन और विजली —इन सबका काम उससे लेना चाहता है । बड़े-बड़े यन्त्र इसलिये बनाये गये हैं कि सूर्यकी किरणोंसे प्राप्त शक्तिका संचय कर उससे काम लें । अमेरिकाकी ‘टाइम’ पत्रिकाके अनुसार इस समय ४०,००० अमेरिकन घरोंमें सूर्य-शक्तिसे यन्त्रद्वारा प्रकाश प्राप्त करने, भोजन बनाने तथा मकानको गर्म रखनेका कार्य हो रहा है । इजरायलमें जितने मकान हैं, उनके पॉच्चवे अंशमें यानी २,२०,००० मकानोंमें सूर्य-शक्ति ही काम दे रही है । जापानके

बीस लाख ( २०,००,००० ) मकानोंमें सूर्य-शक्ति ही कार्य कर रही है। फासमे एक बड़ा द्वापावाना केवल सूर्य-शक्तिसे चलता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि यदि सूर्यकी शक्तिका ठीकतर संचय हो जाय तो आज संसारमें जितनी विजली पैदा होती है, उसकी एक लाख ( १,००,००० ) गुना अधिक विजली प्राप्त हो सकती है। आज हम भारतीय तो सूर्य-उपाराना ढोड़ने जा रहे हैं, पर पश्चिमीय जगत्‌ने ( इस संदर्भमें ) ३ मई, बुधवार १९७८ को सूर्य-दिवस मनाया था ! उस दिन अमेरिकन राष्ट्रपति कार्टरने सूर्यकी उपाराना की थी। विश्व सूर्यकी महिमाको अधिकाधिक समझने लग गया है। भारतने अत्यन्त प्राचीन समयों ही सूर्योपासना प्रारम्भ कर दी थी जो आज भी दैनन्दिन सन्ध्या-गायत्रीमें प्रचलित है।

हमने ऊपर लिया है कि भारतमें सदैव चिन्तन तथा विचारकी खतन्त्रता रही हैं तथा यदि प्रचलित धार्मिक विश्वासके प्रतिकूल गनि छूँट निकाली गयी तो लोगोंने उनको धैर्यपूर्वक सुना और आदर किया। आर्यभट्टने उठी रादीमें गणितसे सूर्यकी गति, १२

महीनेका वर्ष, प्रति तीसरे साल एक माह जो इनेकी विवि निकाली थी, प्रष्टण आदिका निरूपण किया था। उन्हीं दिनों यदि वे मध्य यूरोप आश्में उन्नत हुए होने तो इस अनुसन्धान आविष्कारकं पुरस्कारमें मार डाले जाने।

यूनानमें ईसासे ५३० से ४३० वर्ष पूर्वका काल बड़े वैज्ञानिक गोजका वर्ष समझा जाता है। यह काल कपिल, कर्णाद, वादरायण आदिके बादका है। पर यूनानमें जब अनाक्सगोरसने यह सिद्ध किया कि सूर्य तथा चन्द्रमाकी गतिका वैज्ञानिक आधार है तो यूनानी गणतन्त्रने उन्हें 'अत्यार्थिक' कहकर प्राणदण्ड सुना दिया था। यह तो कहिये कि उनकी शासक पेरी वलोजसे मित्रता थी, अतएव उन्होंने उसे राज्यसे भाग जानेमें सहायता दी, अन्यथा वह मृत्युके मुँहमें चल गया होता। ऐसी थी यूनानी धारणा !

भारतमें ऐसा कभी नहीं हुआ। अतएव आज भी सूर्य तथा चन्द्रमाके वैज्ञानिक अन्वेषणके प्रति हमको आदर तथा सहिष्णुताका भाव रखना पड़ेगा और तब हम किसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि समीक्षा अधिक स्पष्ट हो गयी है, पर वैदिक सिद्धान्त सर्वोपरि है।

### वैज्ञानिक सौरतथ्य

१-सूर्यका व्यास ८,८०,००० मील है अर्थात् वह पृथ्वीसे लगभग ११० गुना बड़ा है।

२-सूर्यका भार भी पृथ्वीके भारसे लगभग ३,३३,००० गुना अधिक है। यदि समस्त सौरमण्डलके ग्रहोंके भारको सम्मिलित कर लिया जाय तो सूर्यका भार समस्त ग्रहोंके भारसे एक हजारगुना अधिक है।

३-सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी ९ करोड़ ७० लाख मील है।

४-सूर्यके प्रतिवर्ग इंचपर २०,००,००,००,००० मतका द्वाव तथा इसका तापकम ४,००,००,००० अंश है।

५-सूर्यके केन्द्र भागका तापमान लगभग १६,००,००,००० सेंटीग्रेड है।

६-प्रकाश-किरणोंका वेग प्रतिसेकांड ३,००,००० किलोमीटर है।

७-सूर्यकी किरणोंको पृथ्वीतक पहुँचनेमें ८ मिनट १८ सेकंड समय लगता है।

८-एक वर्षमें प्रकाश २४,६३,००,००,००० किलोमीटरकी यात्रा करता है।

९-सूर्यसे आकाशगङ्गाके केन्द्रकी दूरी लगभग ३०,००० प्रकाश-वर्ष है।

१०-सूर्यको आकाशगङ्गाके केन्द्रकी एक परिक्रमा पूरी करनेमें लगनेवाला समय २५ करोड़ वर्ष है।

११-सूर्यकी आयु लगभग ६ अरब वर्ष है।

प्रेपक—श्रीजग्नाथप्रसादजी, वी० काम०

## सूर्य, सौरमण्डल, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा

( लेखक—श्रीगोरखनाथसिंहजी, एम.० ए०, अग्रेजी-दर्गन )

एक अग्रेजी कहावतके अनुसार ( Man does not live on bread alone ) ‘मनुष्य केवल रोटीसे ही जिंदा नहीं रहता है’ उसे अपनी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये कुछ और चाहिये । इसमें उसका सम्पूर्ण परिवेश—जीव, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म सभी आते हैं । पुनश्च जीव और ब्रह्माण्डकी प्रकृतिमें पर्याप्त समानताएँ हैं । इस उद्देश्यसे भी यह मीमांसा समीचीन है । इसी तथ्यको हार्वर्ड विज्ञविद्यालयके प्रसिद्ध प्रोफेसर एवं ज्योतिषी हार्लो शेपली ( Harlow Shapley ) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘तारे और मनुष्य—बढ़ते हुए ब्रह्माण्डमें मानवीय प्रतिक्रिया’ ( Stars and Human—Response to an expanding universe ) के तीसरे अध्यायमें निम्न प्रकारसे व्यक्त किया है—‘मनुष्यके शरीरमें जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब पृथ्वीकी ठोस पपड़ीमें या उसके ऊपर मौजूद हैं । यदि सबका नहीं तो उनमेंसे अधिकांश-के अस्तित्वका तारोंके उत्तम वातावरणमें भी परिचय मिला है । जन्तुओंके शरीरोंमें किसी प्रकारके भी ऐसे प्रसाणु नहीं मिले हैं, जिनकी उपस्थिति अजीव-परिवेशमें सुपरिचित न हो । स्पष्ट है कि मनुष्य भी तारोंके साधारण द्रव्यसे ही बना है और उसे इस वातका गर्व होना चाहिये ।

इस वातमें जन्तु और पौधे तारोंसे बढ़कर हैं । अणुओं तथा आणविक संगठनोंकी जटिलतामें जीवित प्राणी, अजीव-जगत्के पारमाणविक संयोजनोंसे बहुत आगे बढ़ गये हैं । कटरपिलरकी रचना कार्बनिक-रसायन-सम्बन्धी रचनाकी तुलनामें सूर्यके प्रज्वलित वातावरण तथा अन्तर्रक्षकी रासायनिक संरचना बहुत ही सरल पायी गयी है । यही कारण है कि हम कीटडिम्ब

( Insect Larvae )की अपेक्षा तारोंका रहस्य अधिक समझ सके हैं । तारोंकी प्रक्रियाएँ गुरुत्वाकर्षण, गैसों तथा विकिरणके नियमोंके अनुसार होती हैं । अतः उनपर उवाच, घनत्व एवं तापमानका प्रभाव पड़ता है; किंतु प्राणियोंके शरीर गैसों, द्रवों तथा ठोस पदार्थोंके निराशाजनक मिश्रण हैं—निराशाजनक इस अर्थमें कि उनके लिये हम कोई परिपूर्ण गणितीय तथा भौतिक-रासायनिक सूत्र प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो सके हैं । जीवरसायन विज्ञानी ( Bio-chemist ) को जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनको देखते हुए ताराभौतिकज्ञ ( Astro physicist ) का काम बहुत ही सरल है ।

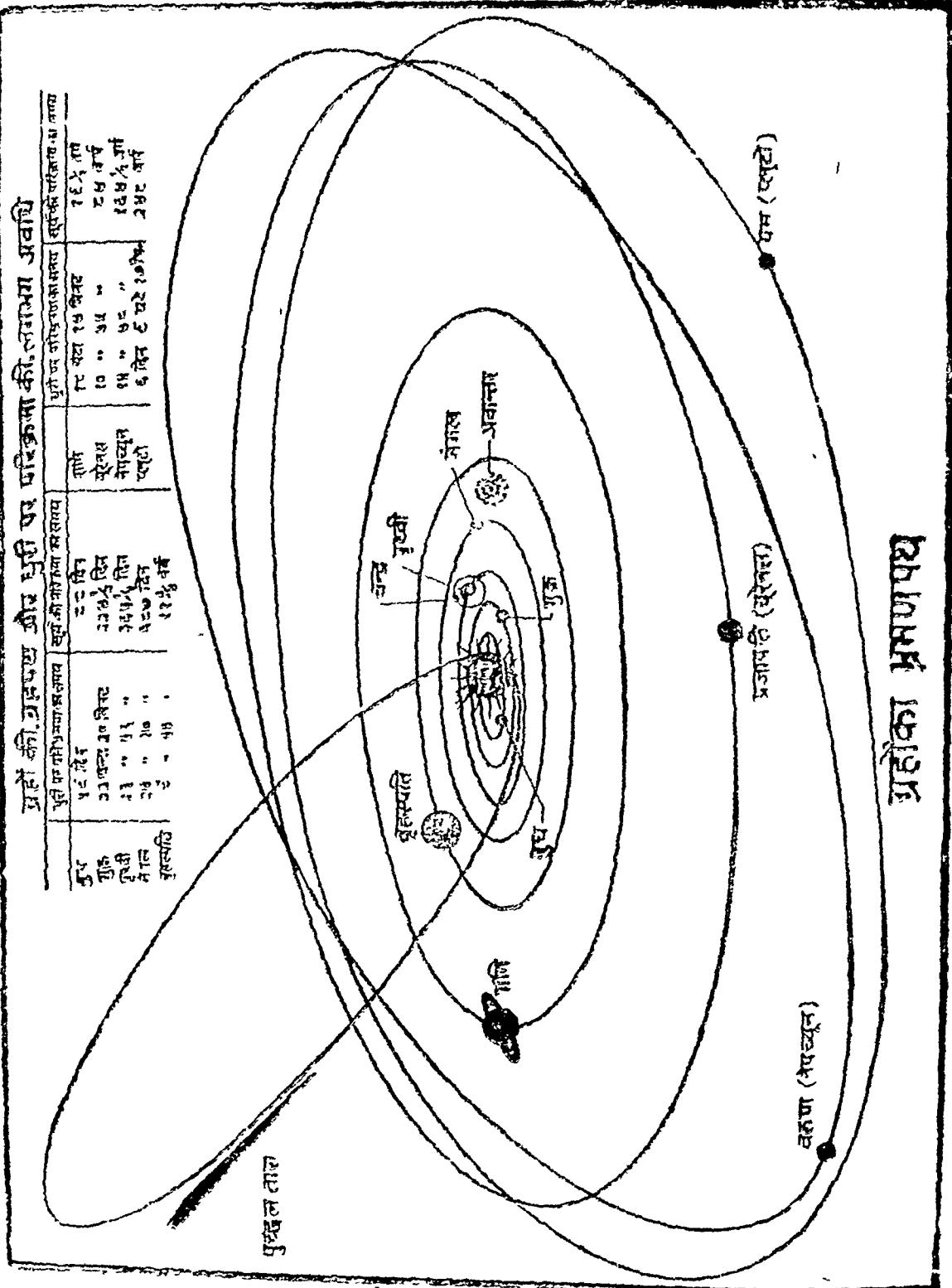
यह आकाश तारों, ग्रहों, उपग्रहों, उल्काओं तथा धूमकेतुओंसे परिपूर्ण है । तारे स्वयं प्रकाशमान होते हैं । सूर्य\* भी विभिन्न गैसोंसे युक्त एक प्रकारका तारा है । इसमें पृथ्वी-जैसे कई लाख गोले समा सकते हैं । इसकी दूरी पृथ्वीसे लगभग १५ करोड़ किलोमीटर है । यह पृथ्वीके निकटका सबसे बड़ा तारा है; इसलिये इतना विशाल दिखायी पड़ता है ।

आकाशमें उन पिण्डोंको सौरमण्डल कहा जाता है, जिनका सम्बन्ध सूर्यसे है । ये सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करते हैं । इन्हे ग्रह कहा जाता है । इनमेंसे पृथ्वी भी एक ग्रह है । इसके अतिरिक्त आठ अन्य ग्रह भी हैं । ये सब अपनी-अपनी कक्षामें सूर्यके चारों ओर चक्र लगाते हैं । सूर्यके चारों ओर चक्र लगानेके साथ ये ग्रह पृथ्वीकी भौति अपनी धुरीपर भी चक्र लगाते हैं । सूर्य भी अपनी धुरीपर धूमता है । इस सौरमण्डलमें ३० उपग्रह भी हैं । उपग्रह हमारी धरती-जैसे ग्रहोंके चारों ओर धूमते हैं । इसके अतिरिक्त १५०० सूर्यगण्ड भी सौर-

\* वैज्ञानिक गौतिक ज्योतिष पिण्डका ही विश्लेषण करते हैं । उनकी शैली-परम्परामें ग्रहोंके लिये एकवचनका प्रयोग

मान्य है । हमने उसे उनी रूपमें ग्रहने दिया है । ( आविदैविकरूपके पूज्य होनेसे आदरार्थक वहुवचन प्रयोज्य होता है । ) [—सं०]

| ग्रहों की ग्रहणता और धूमि पर परिक्रमा की, लगभग अवधि |         | पृथीवी परीप्रसारक समय |        | सूर्य-जीवनकालसमय |        | सूर्यके परीप्रसारक समय |        |
|-----------------------------------------------------|---------|-----------------------|--------|------------------|--------|------------------------|--------|
| पृथीवी                                              | ५६ दिन  | २२ दिन                | १० दिन | २७ दिन           | १० दिन | २६ दिन                 | १० दिन |
| मंगल                                                | २३५ दिन | १०५ दिन               | ५५ दिन | १०५ दिन          | ५५ दिन | १०५ दिन                | ५५ दिन |
| जूँही                                               | १३ " "  | १३ " "                | १३ " " | १३ " "           | १३ " " | १३ " "                 | १३ " " |
| मृत्यु                                              | २७ " "  | २७ " "                | २७ " " | २७ " "           | २७ " " | २७ " "                 | २७ " " |
| सूर्यस्थिति                                         | २७ " "  | २७ " "                | २७ " " | २७ " "           | २७ " " | २७ " "                 | २७ " " |



ग्रहोंकी सूर्य-परिक्रमा

परिवारमें है। उल्लेखनीय है कि मनुष्यद्वारा निर्मित उपग्रह भी अनेक है। इस प्रकारका उपग्रह सर्वप्रथम १९५७ ई०में बना। ये उपग्रह कुछ घण्टोंमें ही पृथ्वीका एक चक्र लगा लेते हैं।

चन्द्रमा पृथ्वीका उपग्रह है। यह २९ दिनोंमें पृथ्वीका एक चक्र लगाता है। यह पृथ्वीसे ४ लाख किलोमीटर दूर है। मनुष्य चन्द्रमापर १९६९ ई०में सबसे पहली बार उत्तरा। फलतः अनेक आन्तियोका निवारण हुआ। सूर्यके पासवा ग्रह बुध है। इसके बाद क्रमसे शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लॉटो हैं। ये अपनी कक्षाओंमें होकर सूर्यके चतुर्दिक् चक्र लगाते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी अपनी कीलीपर २४ घंटेमें एक बार परिक्रमा करती है और उसके फलखरूप प्रातः, दोपहर, सायं, रात और दिन होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा एक वर्ष ( ३६५ दिन )में करती है। इसीसे जाड़ा, गर्मी और बरसात होती है।

सूर्यसे हमें उष्मा और प्रकाश दोनों प्राप्त होते हैं। यही उष्मा ऊर्जा ( Energy )का स्रोत है। ऊर्जाका उपयोग गायके इंजिनोंके चलानेमें भी होता है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि सूर्यसे मिलनेवाली ऊर्जासे ही लकड़ी, कोयला और पेट्रोल आदि बनते हैं। सूर्यकी उष्मा ही समुद्रके जलको भाप बनाकर वर्षके रूपमें पहाड़ोपर पहुँचाती है। यही भाप पहाड़ोपर बर्फके रूपमें मिलती है। कालान्तरमें यही बर्फ पिघलकर नदियोंमें बहती है, जिससे हमें विशुद्ध बनानेके लिये 'ऊर्जा' मिलती है। हवा, औंधी एवं तृफान भी सूर्यकी उष्मासे ऊर्जा पाकर चलते हैं। पृथ्वीपर जिन स्रोतोंसे भी हमें ऊर्जा मिलती है, वे सब सूर्यसे ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पृथ्वीपर ऊर्जाका असली स्रोत यह सूर्य

है, जिसके अभावमें इस पृथ्वीपर किसी जीवकी कल्पना करना असम्भव है। इसी बातको डाक्टर निहालकरण सेठी भी अपनी पुस्तक 'तारामौतिकी'में इस प्रकार दुहराते हैं—‘सूर्यसे तो हमें गर्मी भी बहुत मिलती है। हमारे दिन-रात, हमारी ऋतुएँ, हमारे पेड़-पौधे तथा कृषि—वस्तुतः हमारा समस्त जीवन सूर्यकी उष्मापर ही आधारित है।’

सूर्यकी बनावट—सूर्यके सर्वग्रहणको देखकर वैज्ञानिकोंने उसके अंदरकी बनावटके बारेमें पर्याप्त पता चल गया है। अतः वे उसे छः भागोंमें विभाजित करते हैं। यथा ( १ ) प्रकाश-मण्डल, ( २ ) सूर्य-कलङ्क, ( ३ ) सूर्यकी जटाएँ, ( ४ ) पलटाऊ तह, ( ५ ) सूर्यमुकुट, ( ६ ) हाइड्रोजेन अथवा कैल्शियम गैसे।

( १ ) प्रकाश-मण्डल—सूर्यका वह भाग है, जो हमको रोज दिखायी पड़ता है तथा जिसे हम प्रकाश-मण्डल कहते हैं। यह बहुत गर्म है।

( २ ) सूर्य-कलङ्क—चन्द्रमाकी भौति सूर्यपर भी काले धब्बे हैं। ये कभी छोटे, कभी बड़े, कभी कम और कभी बहुत-से दिखायी देते हैं। इन्हे 'सूर्य-कलङ्क' कहा जाता है। गूर्ध्व-कलङ्क सदा एक ही जगहपर नहीं रहते हैं, क्योंकि धरतीके समान गूर्ध्व भी अपनी धुरीपर नाचता है। यह अपनी धुरीपर चौबीससे बत्तीस दिनोंमें एक चक्र पूरा कर लेता है।

( ३ ) सूर्यकी जटाएँ—जब सम्पूर्ण ग्रहण लगता है तो सूर्यके काले गोलेके चारों ओर जलती गैसोंकी लम्बी-लम्बी ज्वालाएँ निकलती हुई दिखायी पड़ती हैं। ये जटाएँ लाखों मील लम्बी होती हैं। ये प्रकाश-मण्डलसे भी अधिक गरम हैं तथा इसकी तह करीब १,००० मील मोटी है।

( ४ ) पलटाऊ तह—प्रकाश-मण्डलके ऊपर उससे कुछ कम गर्म गैसोंकी तहको 'पलटाऊ तह' कहते हैं।

इस तहमें वे सभी तत्त्व हैं, जो धरतीपर पाये जाते हैं। परंतु भयानक गर्भकि कारण ये पदार्थ अपनी असरी हाल्तमें वहाँ नहीं रह सकते। इसमें हालियम नामकी एक गेस भी पायी जाती है।

(५) सूर्य-मुकुट—सूर्यके गोलेके बाहर सूर्यका मुकुट है। इसका आकार सदा एक-सा नहीं रहता है। यह सूर्यके प्रकाश-मण्डलसे बीस-पचीस लाख मील ऊपरतक फैला है। यह गेसकी एक बहुत ही पतली झीनी तह है। सूर्यकी जटाएं सूर्य-मुकुटके बाहर फैली हैं।

(६) हाइड्रोजन गैस—सूर्यमें हाइड्रोजन गैस बादलके रूपमें कलड़ोंके पास चक्र काटती हुई जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त सूर्यपर केन्द्रियमके बादल भी हैं। ये बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं।

पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी—पृथ्वीमें सूर्यकी दूरी ९,२८,७०,००० मील है। यह दूरी इन्हीं हैं कि सूर्यके प्रकाशको; जो १,८६,००० मील प्रनि सेकंडके बेगसे चलता है, पृथ्वीतक पहुँचनेमें लगभग ८ मिनॉ८ सें०का समय लग जाता है।

सूर्यका व्यास—इसका व्यास ८,६४,००० मील है। यह सख्ता पृथ्वीके व्याससे १०० गुनीसे भी अधिक है।

सूर्यका भ्रमण—सूर्य पृथ्वीकी तरह अपने अवश्यक घूम रहे हैं। ये चार समाहमें एक चक्र लगाते हैं। वैज्ञानिकोंके अनुसार सूर्यकी रचना 'ठोस' नहीं है; वन्निक 'गैसीय' है। यह अनेक प्रकारकी गेसोंसे निर्मित है, जो इसकी अनन्त उष्मा और ऊर्जाके कारण है और ये ही इस पृथ्वीके समस्त ऊर्जाके स्रोत हैं।

ब्रह्माण्डकी परिभाषा तथा उसका स्वरूप—आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ज्ञान तथा अन्य अनेक अद्वात पिण्ड जिसमें स्थित हैं; उसे ब्रह्माण्ड ( Universe ) कहते हैं। यह शब्द 'विश्व' तथा जगत्‌का पर्याय है। प्रारम्भमें

गैलेक्सी ( Galaxy ) शब्द 'मिल्की-वे' ( Milky way ) का पर्याय था। इसका अर्थ था 'दूधियामार्ग'। भारतमें इसे 'आकाशगङ्गा' अथवा 'मन्दाकिनी' कहते हैं। इसमें असह्य तारे हैं। हमारे मृथ्यु भी उन्हींमें एक तारा है। जिनने तारे आग्नेयमें अथवा दूर्वातमें दिखायी पड़ते हैं, वे सब आकाशगङ्गाके ही मदम्य हैं। यही हमारा विश्व है। इसका विस्तार बहुत बड़ा किंतु परिमित है।

आकाशमें कुछ ऐसा चलुएँ भी हैं, जो तारोंके समान विन्दुसदृश नहीं हैं; किंतु बादलके टुकड़ोंके समान दिखायी देता है। इन्हें 'नीहारिका' ( Nebula ) कहते हैं। इनमेंसे कुछ आकाशगङ्गाके सदृश हैं तथा उसके अन्तर्गत आते हैं। परंतु कलोड़ों नीहारिकाएं हमारी आकाशगङ्गासे ( हमारे विश्वसे ) विन्दुल बाहर और बहुत ही अधिक दूरीपर स्थित हैं। इन्हें 'अद्वात्र नीहारिकाएं' ( Extra-Galetic Nebulae ) कहा जाता है।

ये 'अद्वात्र नीहारिकाएं' हमारी आकाशगङ्गाकी तरह असंख्य तारोंके समूह हैं। इन अद्वात्र नीहारिकाओंके समूह भी हमारे विश्वकी तरह दूसरे विश्व हैं। इस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डमें कई करोड़ विश्व हैं। अतः 'विश्व' शब्द अपने प्राचीन अर्थमें न तो हमारे 'आकाशगङ्गा'के लिये उपयुक्त है और न 'अद्वात्र नीहारिकाओं' के लिये ही। इन्हें अब 'उपविश्व' ( Sub-Universes ) अथवा द्वीपविश्व ( Islands universes ) कहने लगे हैं; तथापि 'विश्व' शब्द अब भी इनके लिये प्रचलित है और इसीके द्वारा इन करोड़ों द्वीपविश्वोंके अविल समुद्रायको भी व्यक्त किया जाता है, जो सर्वथा भ्रामक है। अतः इसके स्थानपर 'ब्रह्माण्ड' शब्दका प्रयोग करना ज्यादा समीचीन होगा। ब्रह्माण्ड अनन्त है।

ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त—ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-के सिद्धान्त उच्चतरणित—विंशेपकर अल्बर्ट आइन्स्ट्रीन ( Albert Einstein ) के सापेक्षतावादके सिद्धान्त

( Theory of Relativity ) पर आवारित हैं। इन सिद्धान्तोंमें दो प्रमुख हैं—( १ ) विकासवादी सिद्धान्त तथा ( २ ) सतुलित ब्रह्माण्डका सिद्धान्त। प्रथमके अनुसार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति शक्तिके एक विशाल गोलेके विराट् विस्फोटके फलस्वरूप हुई और उस विस्फोटसे उत्पन्न मन्दाकिनियों अब भी धूम रही हैं। गणितज्ञोंने यहाँतक हिसाब लगाया है कि यह विस्फोट ५० खरबसे ८० खरब साल पहलेके बीचमें हुआ। इस भूतके वैज्ञानिकोंका कथन है कि वर्तमान स्थिति वार-वार घटिन होनेवाली प्रक्रियाकी ही एक मंजिल है। कोई एक समय ऐसा आयेगा, जब यह प्रक्रिया उलट जायगी, इस विश्वका प्रलय हो जायगा और ब्रह्माण्ड सिकुड़कर फिर एक विशाल गोला बन जायगा। तत्पश्चात् पुनः विस्फोट होगा—सृष्टिकी शुरुआत होगी।

सतुलित ब्रह्माण्डके सिद्धान्तके अनुसार—इस ब्रह्माण्डकी न तो कोई शुरुआत है और न कोई अन्त। इसमें द्रव्यका विभाजन सदा से रहा है और आगे भी सदा रहेगा। जैसे-जैसे मन्दाकिनियों छितराती जाती हैं, वैसे-वैसे नयी मन्दाकिनियोंके निर्माणके लिये आवश्यक द्रव्य इस गतिसे पैदा होता जाता है कि वर्तमान मन्दाकिनियोंकी कमी पूरी हो सके। लेकिन वर्तमान मन्दाकिनियों कहों जायेंगी? चौंकि ये ज्यादा-से-ज्यादा तेजीके साथ एक दूसरेसे अलग हटती जा रही हैं और इससे इनकी गति और भी बढ़ती जा रही है, इसलिये अन्तमें जाकर इनकी रफ्तार प्रकाशकी गतिके वरावर हो जायगी। वर्तमान सिद्धान्तोंके अनुसार पदार्थ या द्रव्य इतनी द्रुतगति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो क्या ये मन्दाकिनियों गायब हो जायेंगी? इसका निश्चित उत्तर अभी विज्ञानके पास नहीं है।

ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा—अन्तिम प्रश्न है ब्रह्माण्ड और ब्रह्मकी मीमांसाका। इस सम्बन्धमें भी हालें शेषली महोदयने पुस्तकके प्रथम अध्यायमें निम्नवत्

विवेचन किया है। उनका प्रश्न है—‘यह ब्रह्माण्ड क्या है?’ इसके उत्तरमें उनका कहना है—‘ब्रह्माण्ड-रचनाके सम्बन्धमें विचार और अनुसंधानमें व्यस्त वैज्ञानिक और वे थोड़ेसे दार्शनिक जिनके अध्ययनमें ब्रह्माण्डविज्ञान ( Cosmology ) भी समाविष्ट है, शीघ्र ही इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यह भौतिक जगत् जिन मूलभूत सत्ताओं-( Entities )-के संयोगसे बना है या जिनके द्वारा हमें उसका ज्ञान प्राप्त होता है और जिनकी सहायतासे हम उसका पर्याप्त स्पष्टतासे वर्णन कर सकते हैं, उनकी संख्या चार है। हम इन्हे आसानीसे पहचान सकते हैं; इनका नामकरण कर सकते हैं और किसी हृदयक इन्हें एक-दूसरेसे पृथक् भी कर सकते हैं। समझ है कि निकट भविष्यमें यह संख्या चारसे अधिक हो जाय। अतः सुगमताके लिये हम भौतिक विज्ञानके जड़जगत्को और शायद समस्त जीवजगत्को भी इन्हीं चार सत्ताओंके दांचेमें निविष्ट करनेके लोभका संवरण नहीं कर सकते। ये चार सत्ताएँ निम्न हैं—( १ ) आकाश(Space), (२) काल (Time), (३) द्रव्य (Matter) और ( ४ ) ऊर्जा ( Energy )। इनके अतिरिक्त अनेक उपसत्ताओंसे भी हम परिचित हैं; यथा गति, वर्ग, पाचन-क्रिया (Metabolism), एण्ट्रॉपी (Entropy), सृष्टि आदि।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि अभीतक इन सत्ताओंका अस्तित्व सर्वमान्य नहीं हुआ है और न ये एक दूसरेसे पृथक् ही की जा सकती है, तो क्या इनसे अधिक महत्वपूर्ण सत्ताएँ हैं ही नहीं? विशेषतः क्या इन चारके अतिरिक्त भौतिक जगत्का एक ऐसा भी गुण और है जो इस ब्रह्माण्डके अस्तित्व तथा प्रवर्तनके लिये अनिवार्यतः आवश्यक हो? इस प्रश्नको दूसरे रूपमें यों पूछा जा सकता है—यदि आपको ये चारों मूल सत्ताएँ दें दी जायें, आपको पूरा अविकार और सुविधाएँ प्राप्त हो जायें एवं आपके मनमें इच्छा भी

हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जाके द्वारा इस जगत्‌के समान ही दूसरे जगत्‌का निर्माण कर सकते हैं ? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूलगुण या क्रियाकी आवश्यकता पड़ जायेगी ?

शायद ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम इस पाँचवीं सत्तापर अधिक जोर दे रहे हैं; किन्तु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ताका अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा । उसका अस्तित्व है, इसमें शङ्खा करना कठिन है । तब क्या वह कोई प्रधान सत्ता है ?—शायद आकाश और द्रव्यसे भी अधिक आधारभूत है; सम्भवतः उसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं । क्या यह उपर्युक्त चारों सत्ताओंसे सर्वथा भिन्न है ? क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता है ? क्या वह ऐसी सत्ता है, जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमोंसे नियमित इस जगत्‌का कार्य यथाक्रम चल रहा है ? क्या इसकी अनुपस्थितिमें इस संसारकी समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जायेंगी ?

सम्भवतः इस सम्बन्धमें कुछ पाठकोंका ध्यान 'ईश्वर'के नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणाकी ओर अवश्य किया जाय । सम्भवतः इस संसारमें कुछ ऐसे प्रच्छन्न लक्षण अवश्य विद्यमान हैं, जिनको प्रेरणा

देनेवाली कोई सतत्व विश्वशक्ति है, जिसे हम निर्देशन, निरूपण, संचालन, सर्वशक्तिमान्‌की इच्छा अथवा चेतना कह सकते हैं । किन्तु यदि इस संचालन अथवा चेतनाका अस्तित्व हो भी तो उसे विश्वव्यापी होना चाहिये । ( इसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वरकी संज्ञा दे सकते हैं, जिस ब्रह्मकी इच्छासे ही सृष्टिप्रक्रिया चलती है । )

इच्छाण्डके सम्बन्धमें निम्न तीन प्रश्न हो सकते हैं ।

१. इसका खरूप क्या है ? २. इसकी क्रियाएँ कैसे घटित होती हैं ? ३. इसका अस्तित्व क्यों है ?

पहले प्रश्नका प्रायमिक तथा स्थूल उत्तर हम दे सकते हैं और इस साहसिक किन्तु आशिक उत्तरमें हम जड़ द्रव्य गुरुत्वाकर्पण, काल, प्रोटोप्लाज्म आदिके सम्बन्धमें कुछ अस्फुट बातें कह सकते हैं । दूसरेके उत्तरमें हम प्राकृतिक नियमोंका, उपमाके लोप हो जानेका तथा नीहारिकाओंके निरन्तर दूरगमी पलायनका उल्लेख कर सकते हैं । किन्तु इसका अस्तित्व क्यों है ? इस प्रश्नके उत्तरमें शायद हमें यही कहना पड़े कि 'ईश्वर ही जाने' । यह ईश्वर सब-कायदोंके कारणके रूपमें निरूपित किया जा सकता है और वास्तवमें वही इसका असली कारण भी है । वस्तुतः वही ब्रह्म है ।

## विज्ञान-दर्शन—सम्बन्ध

उच्चतम वैज्ञानिक दर्शन-चिन्तनका निष्कर्ष है कि विश्व-ब्रह्माण्डकी मंचालिङ्ग कोई 'विशिष्ट शक्ति' है । प्राच्य मनीषाने अचिन्त्य सद्गुणी ब्रह्मकी भैंद्रान्तिक प्रतिष्ठा कर निश्चयात्मकरूपसे कह दिया है कि वही यह विशिष्ट शक्ति है—‘पृत्वै तन् ।’ वस्तुतः उसी व्रह्मका—उस व्रह्मकी इच्छाशक्तिका-विलास यह विश्व है, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्यक्त हुआ है । वह व्रह्म यद्यपि सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर भी गूढ़ होनेसे सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा ही और उनकी अङ्ग सूक्ष्म त्रुदिसे ही उसे नमामा जा सकता है । ( क० उ० ३ । १२ ), उसी दर्शन-दिग्गमें अग्रसर वैज्ञानिककी चिन्तना किसी विशिष्ट शक्तिका स्पर्जन कर रही है । प्राच्यदर्शन और पाश्चात्य विज्ञानकी यह सम्बन्ध-दिग्गम अद्भुत और स्पृहणीय है । ××××× सद्गुणी परब्रह्मसे सृष्टिके सब लीब और निर्जीव व्यक्त पदार्थ जिस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, उसके द्वीक विपरीत क्रमसे उनका लय अव्यक्त ( सूक्ष्म ) प्रकृतिमें और प्रकृतिका मूल ब्रह्ममें हो जाता है । सृष्टि और संहारका यह क्रम शाश्वत है । ब्रह्मके अन्याकृत आदि प्रतीक सूर्यको सूर्योपनिषद्‌ने इसी रूपमें दर्शाते हुए दिग्गा-निर्देश किया है—

सूर्यऽङ्गवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

## पुराणोंमें सूर्यसम्बन्धी कथा

( लेखक—श्रीतारिणीशंजी ज्ञा )

पुराणोंमें सूर्यकी कथाएँ अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य प्रत्यक्ष देवता और जगचक्षु है। इनके बिना सप्तारकी स्थितिकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिये हिंदुओंकी पञ्चदेवोपासनामें प्रथम स्थान इन्हींको प्राप्त है। वैदिक कर्मकलापके प्रारम्भमें पञ्चदेवताकी पूजा आवश्यक मानी गयी है, जिसमें पञ्चदेवताके आवाहनके लिये—‘सूर्यादिपञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत’—पढ़ा जाता है। इससे भगवान् भुवन-भास्कर-की प्रमुखता स्थिर सिद्ध है।

ऐसे प्रत्यक्ष देवकी कथा न केवल पुराणोंमें अपितु वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रोंमें भूरिशः वर्णित है। किंतु यहोंहमें पुराणोक्त सूर्य-कथापर ही थोड़ा प्रकाश ढालना है। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार विस्पष्टा, परमा विद्या, ज्योतिर्भा, शाभूती, स्फुटा, कैवल्या, ज्ञान, आविर्भू, प्राकाश्य, सवित्, वोध, अवाति इत्यादि सूर्यकी सूर्तियों हैं। ‘भूः भुवः स्वः’—ये तीन व्याहृतियों ही सूर्यका स्वरूप है। ॐसे सूर्यका सूक्ष्मरूप आविर्भूत हुआ। पश्चात् उससे—‘महः, जनः, तपः, सत्यम्’ आदि भेदसे यथाक्रम स्थूल और स्थूलतर सप्तमूर्तिका आविर्भाव हुआ। इन सबके आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं। ॐ ही उनका सूक्ष्म रूप है। उस परम रूपका कोई आकार-प्रकार नहीं है। वही साक्षात् परब्रह्म है। इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण सूर्यको अव्याकृत ब्रह्मका मूर्तरूप निरूपित करके आगे उनकी उत्पत्ति-विवरण भी प्रस्तुत करता है; जो यह है—

अदितिने देवताओंको, दितिने दैत्योंको और दनुने दानवोंको जन्म दिया। दिति और अदितिके पुत्र सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त हो गये। अनन्तर दिति और दनुके पुत्रोंने मिलकर देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ

कर दिया। इस युद्धमें देवता पराजित हुए। तब अदितिदेवी सतानकी मङ्गलकामनासे भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गयी। भगवान् ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहा—‘मैं आपके गर्भसे सहस्रांशमें जन्म लेकर शत्रुओंको विनष्ट करूँगा।’ अनन्तर अदितिके तपस्यासे निवृत्त होनेपर सूर्यकी ‘सीधुम्न’ नामक किरण उनके उदरमें प्रविष्ट हो गयी। देवजननी अदिति भी समाहित होकर कृच्छ्र-चान्द्रायणवत् आदिका अनुष्ठान करने लगी। किंतु उनके पति कश्यपजीको उनके द्वारा अनुष्ठान करना पसद नहीं आया। इसलिये एक दिन उन्होंने अदितिसे कहा—‘तुम प्रतिदिन उपवास आदि करके क्या इस गर्भाण्डको मार डालोगी?’ इसपर अदितिने कहा—‘मैं इसे मारूँगी नहीं। यह स्थिरं शत्रुओंवाला मृत्युका कारण बनेगा।’

अदितिने यह बात कहकर उसी समय गर्भाण्डको त्याग दिया। गर्भाण्ड तेजसे जलने लगा। कश्यपने उदीयमान भास्करके समान प्रभाविशिष्ट उस गर्भको देखकर प्रणाम किया। पश्चात् सूर्यने पदापलाशप्रतिम कलेवरमें उस गर्भाण्डसे प्रकट होकर अपने तेजसे दिशा-मुखको परिव्याप्त कर दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई—‘हे मुने! इस अण्डको ‘मारित’ अर्थात् मार डालनेकी बात तुमने कही है, इसलिये इसका नाम ‘मार्तण्ड’ होगा। यह पुत्र जगत्‌में सूर्यका कर्म और यज्ञभागहारी असुरोंका विनाश करेगा।’

अनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके पास गये और अपनी सज्जा नामकी कन्याको उनके हाथमें सौप दिया। संज्ञाके गर्भसे तीन सताने उत्पन्न हुई—यमुना नामकी एक कन्या और वैवस्त भनु तथा यम नामक दो पुत्र। किंतु सज्जाको सूर्यका तेज असह्य लगता था, इसलिये

वह अपनी जगह छायाको छोड़कर पिताके घर चली गयी। विश्वकर्मसे यह रहस्य माल्हम होनेपर सूर्यने उनसे अपना तेज घटा देनेको कहा। विश्वकर्मा सूर्यकी आङ्ग पाकर शाकढीपमे उन्हें भ्रमि अर्थात् चाकपर चढ़ाकर तेज घटानेको उद्धत हुए। जब समस्त जगतके नाभिस्तरस्य भगवान् सूर्य भ्रमिपर चढ़कर धूगने लगे तब समुद्र, पर्वत एव वनके साथ सारी पृथिवी आकाशकी ओर उठने लगी। ग्रहों और तारोंके साथ आकाश नीचेवी ओर जाने लगा। सभी समुद्रोंका जल वहने लगा। बड़े-बड़े पहाड़ फट गये और उनवीं चोटियों चूरचूर हो गयीं। इस प्रकार आकाश, पाताल और गृह्यभुवन—सभी व्याकुल हो उठे। समस्त जगतको ध्वस्त होते देख ब्रह्माके साथ सभी देवगण सूर्यकी स्तुति वरने लगे। विश्वकर्मने भी नाना प्रकारसे सूर्यका स्तवन वर उनके सोलहवें भागको मण्डलस्य किया। पंद्रह भागके तेज शाणित होनेसे सूर्यका शरीर अत्यन्त कान्तिविशिष्ट हो गया। पश्चात् विश्वकर्मने उनके पंद्रह भागके तेजसे विष्णुका चक्र, महादेवका त्रिशूल, कुवेरकी शिविका, याका दण्ड और कार्तिकेयकी शक्ति बनायी। अनन्तर उन्होंने अन्यान्य देवताओंके भी परम प्रभाविशिष्ट अस्त्र बनाये। (इस प्रकार उस तेजभागका विशिष्ट उपयोग हुआ।)

गगवान् दिवावरका तेज घट जानेसे वे परम भगवान् दिखायी देने लगे। संज्ञा सूर्यका यह कमनीय स्वप्न देखकर वही प्रसन्न हुई।

भगवान् गूर्यकी उत्पत्ति और माहात्म्य आदिका विशेष विवरण भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वतमें, व्राहपुराणके आदित्योत्पत्ति नामक अन्यायों, विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके दशम अध्यायमें, कूर्मपुराणके ४०वें अध्यायमें, मत्स्यपुराणके १०१वें अध्यायमें और ब्रह्मवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मावण्डके ५०वें अध्यायमें गिलता है। विस्तार हो जानेके मर्यसे यहाँ वह सब नहीं लिखा जा रहा है। हाँ, विग्नि पुराणमें सूर्यकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ-कुछ भिन्नता पायी जाती है; पर उनकी उपास्यता और महत्त्वके सम्बन्धमें सभी पुराण एकमत हैं। उनकी उपासनामें विशेष साधनकी आवश्यकता भी नहीं है। नमस्कार करनेगात्रसे ये देव प्रसन्न हो जाते हैं। कहा भी है—‘नमस्कारप्रियो भानुर्जलधारप्रियः शिवः’। अतः सूर्योपस्थानसे और सूर्यनमस्कारसे सूर्याराधन करना प्रत्येक कल्याणामिलायीका कर्तव्य है।

## सूर्योपस्थान और सूर्य-नमस्कार

सन्ध्योपासना करनेवाले चार वैदिक मन्त्रोंसे सूर्यनारायणका उपस्थान (उपासना) करते हैं। क्रम यह होना चाहिये—दाहिने पैरकी ऐँड़ी उठाकर सूर्याभिसुख भक्ति-भावसे आप्लायित हृदयसे मन्त्रोंका पहले विनियोग करे और तब आगे नीचं झुके हाथ पसार कर खड़े-खड़े अर्थपर व्यान रखते हुए निम्न प्रतीकात्मक चार मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करे—(१) ॐ उद्गयन्तमस्पर्ति०, (२) ॐ उदुत्यआत्वेदसम०, (३) ॐ चिन्नन्देवानाम०, (४) ॐ नच्चक्षुर्देवहितम०। सूर्योपस्थानसे वर्चस्विता प्राप्त होती है।

सूर्य-नमस्कार—अपने आपमें सूर्याराधन भी है और स्वारथ्यकर व्यायाम भी। आराधना—साधनासे सिद्धि मिलती है और व्यायामसे शारीरिक स्वास्थ्य-सौन्दर्यकी सम्पुष्टि होती है। यह एक विशिष्ट पद्धति है—सिद्धिकी और शारीरिक सौन्दर्य-सम्पत्ति प्राप्त करनेकी \*।

\* ‘सूर्य-नमस्कार’ सविधि आगे प्रकाश है।

## काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

( लेखक—श्रीगणेश्यामजी खेमका, एम.० ए०, साहित्यरत्न )

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एव कलि-कल्मपहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्प्रष्ठियोगिनियों, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी-प्रभृति सैकड़ो देव-देवियों काशी-वासीजनोंके योग-क्षेम, सरक्षण, दुर्गत एवं दूर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथाओंमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

( १ ) लोकार्की कथा—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्तश्च ! तुम शीत्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्मसूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीत्र करो; किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना खरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, मिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगी, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गंधतक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिडकीके भयसे मन्दराचल लैट जानेका विचार त्याग कर काशीमें ही रहनेका निश्चय

किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल ( सतृष्ण ) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भद्रवनी ( भद्रेनी ) में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दहु ( दाद ) फोड़े-फुसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-सङ्गम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

सर्वेषां काशीतीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः ।  
लोलार्करनिष्प्रसा असिधारविष्वप्तिः ।  
काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेष्युर्महामलाः ॥

(—स्कन्दपु० काशीखण्ड, ४६ । ५९, ६७ )

( २ ) उत्तरार्की कथा—बलिष्ठ दैत्योद्वारा देवता वार-बार युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतंकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुतिसे सम्मुख उपस्थित प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की कि बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई वहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधायक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करे।

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वर्कमा-द्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय छन्नीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तर-

खण्ड निकलेगे वे तुम्हारे दृढ़ अस्त्र-शस्त्र होंगे । उनसे तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे ।

देवताओंने वाराणसी जाकर विश्वकर्मा-द्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया । मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकड़े निकले, उनसे देवताओंके तेज और प्रगती अध बने । उनसे देवताओंने दैत्योंपर विजय पायी । मूर्ति गढ़ते समय जो गड़दा बन गया था, उसवा नाम उत्तरगानस (उत्तरार्क्षकुण्ड) पड़ा । वही वालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना बरनेपर कि 'वर्करीकुण्डमित्यास्य वर्ककुण्डम्य जायनाम् ।' (-स्कन्दपु०, काशीवण्ड ४७ । ५६) अर्थात् 'अर्ककुण्ड' (उत्तरार्क्षकुण्ड)का नाम वर्करी-कुण्ड हो जाय, वही कुण्ड वर्करीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ । वर्तमानमें उसीका विवृत रूप 'वर्करियाकुण्ड' है । यह अल्लौपुराके समीप है । उत्तररूपमें ही गथी शिलारे मूर्ति बननेके कारण उनका उत्तरार्क नाम पड़ा । उत्तरार्कका माहात्म्य बड़ा ही अद्भुत और विलक्षण है । पहले पौष्टिकसंक रविवारोंको वहाँ बड़ा मेला लगता था, जिन्हें सम्प्रति वह मूर्ति भी लूप है ।

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणुयाच्छ्रुद्यान्वितः ।  
... ... ... ...

लभते वाञ्छितां सिद्धिसुत्तरार्कप्रसादितः ।  
(आदिलघु०, रविवारवतकथा ३६-३८)

(३) साम्बादित्यकी कथा—किसी समय देवर्पिनी नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पश्चारे । उन्हे देवकर सब यादवकुमारोंने अभ्युत्थान एव प्रणाम बर उनका सम्मान किया; किंतु साम्बने अपने अव्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही; प्रत्युत उनकी बेपभूपा और खपपर हँस किया । साम्बका यह अविनय देवर्पिनीको अच्छा नहीं लगा । उन्होंने इसका थोड़ा-सा इङ्ग्रित भगवान्के समक्ष कर दिया ।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें गोपीण्डुलके मध्य बैठे थे । नारदने बाहर बिल रहे माघसे कहा—'कस ! भगवान् वृषभको मेरे आगमनकी गूचना दे दो ।' साम्बने सोचा, एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिल हृष्ट थे । यदि आज भी उनका बहना न गान्ते, तो और भी अभिक खिल होंगे; सम्भवतः शाय दे दालें । उधर बिनार्जी एकान्तमें गातृमण्डलके मध्य रिवन हैं । अनुपयुक्त स्थानपर आनंदे ते भी अप्रसन्न हो सकते हैं । क्या कहूँ, जाऊँ या न जाऊँ ? मुनिके क्रोधसे बिनार्जीका क्रोध बहरी अट्टा है—यह सोचका वे अन्तःपुरमें चल गये । दूसरे ही बिनार्जीको प्रणाम बर नारदके आगमनकी गूचना उन्हें भी । साम्बके पीछे-हाँ-पीछे नारदजी भी बहाँ चले गये । उन्हें देवकर सबने अपने वय गोगाले ।

नारदजीने गोपीजनोंमें बुद्ध विष्णुनि ताङ्गुर भगवान्से कहा—'भगवन् ! राम्यके अनुल सौन्दर्यसे ही इसमें बुद्ध चाल्लन्यवा आविर्गति हृष्टा प्रतीत होता है ।' यद्यपि साम्ब मर्मी गोपीजनोंको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे, तथापि दुर्माल्यवज भगवान्ने साम्बको बुलाकर यह कहते हृष्ट शाय दे दिया कि एक तो तुम अनवसामें मेरे निवाट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देवकर चल हृष्ट है, इरालिये तुम बुध्रोगसे आकाश हो जाओ ।'

धृषित रोगके भयसे साम्ब बोप गये और भगवान्के समक्ष मुक्तिके लिये बहूत अनुनय-विनय करनेलगे । तब श्रीकृष्णने भी पुत्रको निर्देश जानकर दूर्दीवयश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हे काशी जानेका आदेश दिया । तदनुसार साम्बने भी काशी जाकर विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एवं भक्तिभावसहित सूर्योर्ध्वनासे रोग-विगुक्त हुए ।

तभीसे सब व्याधियोंको हरनेवाले साम्बादित्य सकल समक्षियाँ भी प्रदान करते हैं । इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड

मुहुल्लेमे कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी बड़ा चमत्कारी है।

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः ।  
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः ॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८ । ४७ )

(४) द्रौपदादित्यकी कथा—प्राचीन कालमे जगत्-कल्याणकारी भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पॅच पाण्डवोंके रूपमे प्रादुर्भूत हुए एव जगजननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुई। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमे अवतीर्ण हुए।

महावलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमे पड़ गये। उन्हे राज्य त्यागकर बनोकी धूलि फॉकती पड़ी। अपने पतियोके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयेगे वे सब-केसब इस बटलोईके अन्तसे तृप्त हो जायेंगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाट यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमे सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमे तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हे क्षुधा-नीड़ा कमी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-वटके नीचे स्थित है। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमे काशीखण्डमे बहुत माहात्म्य है। उसीकी यह एक बानगी है—

आदित्यकथामेतां द्रौपद्यागाधितस्य चै ।  
यः श्रोप्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति ॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९ । २४ )

(५) मयूखादित्य-कथा—प्राचीन कालमे पञ्चगङ्गाके निकट 'गमस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एव भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः ब्रैलोक्यको तप करनेमे समर्थ है। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप हो उठे। ब्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोने तीव्रतम सूर्य-तेजमे फतिंगा बननेके भयसे आकाशमे गमनागमन त्याग दिया। सूर्य-के ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणे ही दिखायी देती थी। उनके प्रखरतम तेजसे सारा ससार कोप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोप है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा है, जगचक्षु है। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रातःकालमे प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्यापारोंके संचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्य भगवान् अत्यन्त निश्चल एव समाधिमे इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हे अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्रय हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान् ने अपने अमृत-वर्षा हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी ओंखे खोलीं और उन्हे दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—‘सूर्य! उठो, सब भक्तोंके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों

स्तवनोंका पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे जब प्रिय-वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूर (किरणे) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम मयूरादित्य होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याप्ति

नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेमें दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्त्वयां कथित व्याप्तिः प्रभविष्यति ।  
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारं त्वदीक्षणात् ॥  
(—सन्दुपनाण, काशीमण्ड ६९ । १४)

मयूरादित्यका मन्त्र मङ्गलगांगमें है।

(जेप अग्ने अद्देद)

## आचार्य श्रीसूर्य और अध्येता श्रीहनुमान्

[ एक भावात्मक कथा-विवेचन ]

( लेखक—श्रीगमपदारथसिंहजी )

प्रकाश विकीर्ण कर लोगोंको सम्बन्धिता ज्ञान देनेवाले एवं अचेतनोंमें चेतनाका संचार करनेवाले सर्वग्रंथक सूर्यदेव आचार्योचित पूजाके योग्य हैं। उनके ज्ञान-दानकी प्रशंसा वेदकी ऋचाओंमें भी सुशोभित है। तथ्योदयाटनके लिये एक प्रमाण यहाँ पर्याप्त होगा—

केतुं कृष्णवक्तव्ये पेशो मर्या धरेशसे ।  
समुपद्धिरजायथाः ॥ (—ऋ० १ । ३ । ६ )

‘हे मनुष्यो ! अज्ञानीको ज्ञान देते हुए, अस्तपको रूप देते हुए ये सूर्यस्ता इन्द्र किरणोद्धारा प्रकाशित होते हैं।’

सूर्यदेवद्वारा वेद-वेदाङ्ग-कर्मयोगादिकी शिक्षा दी जानेकी चर्चा अन्य आर्प ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होती है। उनसे मनु, याज्ञवल्यम, साम्व आदि शिक्षित होकर कृतार्थ हुए। अज्ञानादेवीके अङ्कमें विमुचनगुरु शिव जब अवतरित हुए, तब उनके भी आचार्य सूर्यदेव ही बने। श्रीआज्ञेय सविधि विद्या-अध्ययनके लिये उन्हेंके पास गये—‘भानु सौं पठन हनुमान गये’ (—हन० वा० ४)।

भगवान् सूर्य और हनुमानजीके मध्य गुरु-शिष्य-सम्बन्धका प्रारम्भ जिस ढंगसे हुआ, वह बड़ा ही रहस्यपूर्ण और संकेतिक है। आदिकाव्यमें कथा आती है कि

बाल हनुमानको एक बार बड़ी भूख लगी। उन्होंने उर्दीयमान सूर्यको लाल फल समझा और उछलकर उन्हें निगल लिया। उसी प्रसङ्गका स्मरण हनुमानचारालीसामें निम्नाङ्कित रूपमें है—

जुग सहन जाजन पर भान् ।  
लीस्यौ नाहि मधुर फल जान् ॥

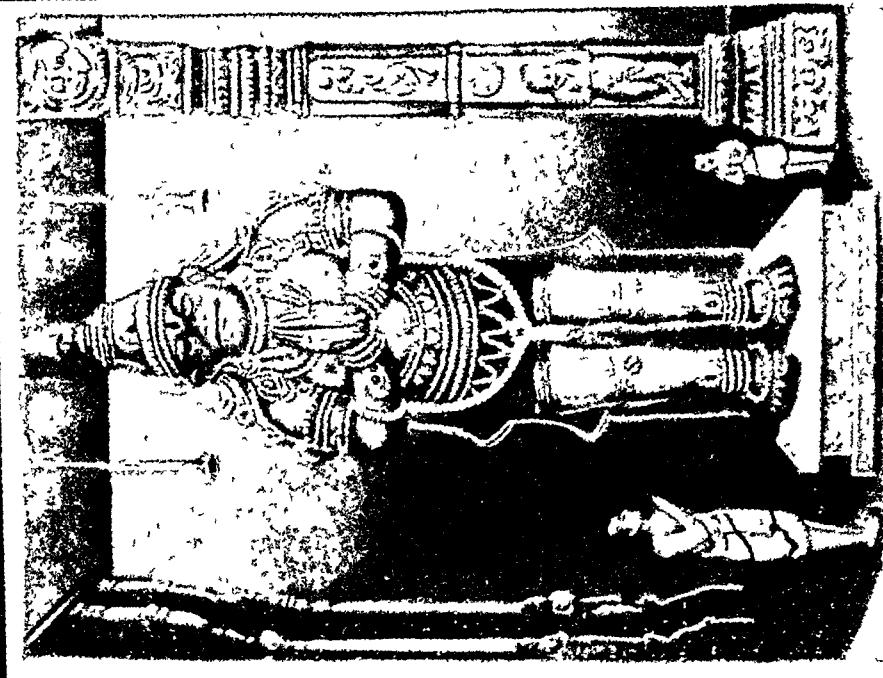
(—हनुमानचाराली १८)

उस दिन सूर्यग्रहण होनेवाला था। राहु हनुमान-जीके डरसे भाग और सुरेन्द्रसे शिकायत करने गया कि उसका भक्ष्य दूसरेको क्यों दे दिया गया ? देवराज ऐरावतपर चढ़कर राहुको आगे कर घटनास्थलको चले। राहु उनके भरोसे सूर्यदेवकी ओर बड़ा कि हनुमानजी उसे बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े। वह ‘इन्द्र-इन्द्र’ कहता हुआ भाग ! देवराज ‘डरो मत’ कहते हुए आगे बढ़े कि हनुमानजी ऐरावतको ही बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े ! वह मी उल्टे पौत्र भाग। इन्द्र भी डरे और उन्होंने बचावके लिये बज्रप्रहार कर दिया, जिससे हनुमानजीका चिकुक कुछ टेबा हो

गया और उन्हें तनिक मूर्छा भी आ गयी ! इससे पवनदेवको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने कुद्द होकर अपनी गति बंद कर दी जिसके कारण सबके प्राण संकटमें

दाक्षिणात्य प्राचीन मूर्तियाँ

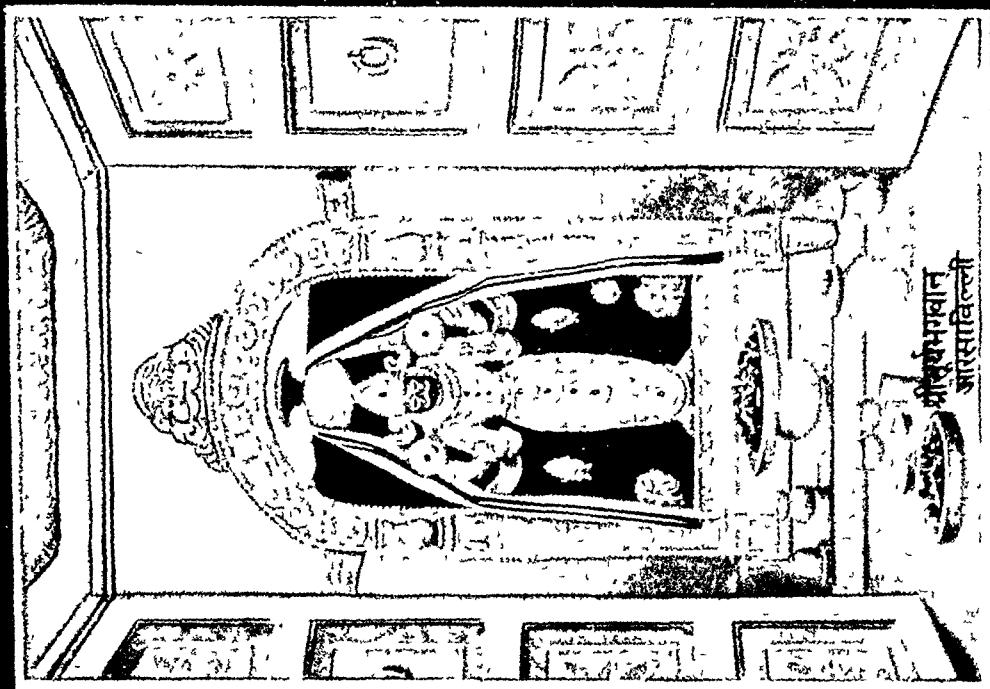
श्रीमंजनेय  
शुचि-द्वाम



आचार्य सूर्य और अध्येता हनुमान्

कल्याण

श्रीसूर्यभगवान्  
ज्ञारसातिलसी





पड़ गये । इसके बाद सब देवता ब्रह्माजीको साथ लेकर पवनदेवके पास गये और उन्हे प्रसन्न किया तथा हनुमान्जीको आशीर्वाद और अपने-अपने शशाखोंसे अवध्यताका वर दिया । उस समय सूर्यदेवने भी उन्हे अपने तेजका शतांश देते हुए शिक्षा देकर अद्वितीय विद्वान् बना देनेका आश्वासन दिया; यथा—

मार्त्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र                    भगवांस्तिमिरापहः ।  
तेजसोऽस्य मर्दीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥  
यदा च शास्त्राण्यथेतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।  
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ।  
(—वा० रा० ७ । ३६ । १३-१४)

उपर्युक्त परिस्थितिमें सूर्य भगवान्नने हनुमान्जीको शिक्षा देनेका जो आश्वासन दिया, वह विचारणीय है । उन्हे अपने तेजका शतांश ही देना था तो दूसरे देवताओंकी भौति अपने शस्त्रास्त्रोंसे अवध्यताका वर देते या कोई दूसरी वस्तु; जैसे श्रीमद्भागवतके अनुसार राज्याभिपेक्के समय महाराज पृथुको जब सब अपने-अपने पासकी कुछ-न-कुछ उत्तम वस्तु देने लगे, तब सूर्यदेवने उन्हे रश्मिमय वाण दिये—‘सूर्यो रश्मिमयानिपून्’ (—४ । १५ । १८) । हनुमान्जीको भी वैसा ही कुछ दिया जा सकता था, पर उन्हे मिल शिक्षाका आश्वासन । इससे ध्वनित होता है कि वे सूर्यदेवके पास ज्ञानके लिये ही गये थे । उनकी ऊँची उडान आचार्याभिमुख होनेके निमित्त हुई थी ।

ज्ञान जीवनका फल है । सूर्यदेव ज्ञानस्वरूप हैं । अतः ज्ञानस्वरूपी फलकी प्राप्तिके लिये बाल हनुमान् उनकी ओर उडे । उनके भावकी शुद्धताका प्रमाण यह भी है कि सूर्यदेवने उन्हे निर्देप ही नहीं बरन् दोपानभिन्न भी समझा और जलाया नहीं । यथा—

शिशुरेप त्वदोपक्ष इति मत्वा दिवाकरः ।  
कार्यं चासिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥  
(—वा० रा० ७ । ३५ । ३०)

‘यह बालक दोपको जानता ही नहीं है और आगे इससे बड़ा कार्य होगा, यह विचारकर दिवाकरने इन्हे जलाया नहीं ।’

हनुमान्जीकी भूख शुभेच्छाका प्रतीक है, जो ज्ञानकी प्रथम भूमिका है । अतः उन्हे सूर्यदेवकी अनुकूलता प्राप्त हुई । सम्पाती भी सूर्यदेवके समीप उड़कर चले गये थे, पर शुभेच्छापूर्वक नहीं, अभिमानपूर्वक । उन्होंने स्वयं स्वीकारा है—‘मैं अभिमानी रविनिभरावा’ (—रा० च० मा० ४ । २७ । २) । परिणाम प्रतिकूल हुआ । उनके पंख जल गये—‘जरे पंख अति तेज अपारा’ (—रा० च० मा० ४ । २७ । २) । हनुमान्जी ज्ञानके भूखे थे, सम्पातीकी भौति मानके भूखे नहीं थे । उनकी तीव्र भूख सद्गुणकी थी । सद्गुणके उत्कर्पसे ज्ञान होता है—‘सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्’ (—गीता १४ । १७) । इसीलिये ज्ञानस्वरूप सूर्यदेवने उन्हे विद्या देनेका आश्वासन दिया ।

देवराज इन्द्रका बाहन ऐरावत गज वस्तु—वाहनादिके लोभका और राहु प्रमादका प्रतीक है, जो क्रमशः रजोगुणी और तमोगुणी है । लोभ और प्रमाद ज्ञानके वाधक हैं । प्रमादी शरीर-सुखको जीवनका बड़ा फल समझता है और ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता । वह विद्याको उठरपूर्तिका साधन समझता है; यथा—

मातु पिता बालकन्हि वोलावर्हिं उटर भरै सोइ धर्म सिखावर्हिं  
(—रा० च० मा० ७ । ९९ । ४)

लोभी दृष्ट-अदृष्ट सुखको जीवनका बड़ा फल समझ-कर उसके लिये प्रयत्न करता है, ज्ञानके लिये नहीं । अतः लोभ भी ज्ञानका शत्रु है और प्रकारान्तरसे प्रमादकी सहायता करता है । इसीलिये राहुकी सहायतामें ऐरावत आता है । ज्ञानेच्छुको प्रमाद और लोभको दवाना चाहिये । हनुमान्जी राहु और ऐरावतको डराकर दूर कर देते हैं । वे वायु, गरुड़ और मनको भी मात

कर देनेवाली गतिसे सूर्यदेवकी ओर आकाशमें उडे थे । वे यदि राहु और ऐरावतको सचमुच पकड़ना चाहते तो वे दोनों वचकर भाग नहीं सकते थे । इससे मालूम होता है कि हनुमान्‌जी उन्हे बड़ा फल समझकर पकड़नेकी मुद्रामें उनकी ओर ढौड़कर उन्हे भयभीत कर भगाना ही चाहते थे ।

राहुके लिये ज्ञानखरूप सूर्य भक्षणीय हैं और हनुमान्‌जीके लिये सुरक्षणीय । अतः उन्होंने उन्हे सुरक्षाकी दृष्टिसे मुखमें रख लिया; क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे अधिक सुरक्षित मुखस्थ ज्ञान होता है और महत्त्वपूर्ण वस्तुको मुखमें सुरक्षित रखनेका उनका ख्वभाव भी है । श्रीसीताजीको पहचानमें देनेके लिये भगवान् श्रीरामद्वारा उन्हे जो मुद्रिका मिली थी, उसे वे मुखमें ही रखकर लङ्घा गये थे; यथा—

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं । जलधि लोधि गए अचरज नाहीं ॥  
( —हनुमानचा० १९ )

सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव हनुमान्‌जीकी भावनासे संतुष्ट ही हुए, रुष नहीं । विविध विक्षोकी विजयके बाद ज्ञान-प्राप्तिकी साधना करनेवालोंके समझ देवता वाधक बनकर आते हैं । रामचरितमानसके ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है; यथा—

जैं तैहि विघ्न दुष्कि नहिं वाधी । तौ वहोरि सुरकरहि उपाधी ॥  
( —रा० च० मा० ७ । ११८ । ५ )

देवराजकी भूमिका ऐसी ही है, पर अदम्य ज्ञानेच्छाके समझ उनके कठिन कुलिशके मद-रद टूट गये और ज्ञान-सूर्यने हनुमान्‌जीसे संतुष्ट होकर ज्ञान देनेका आश्वासन दिया । देवावतार रामायणका यह प्रसङ्ग वैदिक ऋचाओंकी भौति ही आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अभिग्रायोंसे युक्त है ।

कुछ समयके पश्चात् अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ । उनकी अध्ययनशैली अद्भुत है । आदिकविने उस ओर सकेत करते हुए कहा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीयन्  
सूर्योन्मुखः प्रणुमनाः कर्पीन्द्रः ।  
उद्यदगिरेस्तगिरिं जगाम  
ग्रन्थं महद्वारयनप्रमेयः ॥ ४५ ॥  
( —वा० गा० ७ । ३६ । ४५ )

‘अप्रमेय वानरेन्द्र ये हनुमान् व्याकरण सीखनेके लिये सूर्यके सम्मुख हो प्रदृश करते हुए, महाग्रन्थको बाद करते हुए उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाने थे ।’ गोस्वामी तुलसीदासने भी इस अध्ययन-अध्यापनकी अद्भुतताका वर्णन किया है—

भानुमां पढ़न हनुमान गये भानु मन-  
भनुमानि सिमुकेलि कियो फेरफार सो ।  
पाछिले पगानि गम गरान मगन-मन  
क्रमको न भ्रम, कपि वालकन्यिहार सो ॥  
( —२० वा० ४ )

आशय यह है कि सूर्यभगवान्के पास हनुमान्‌जी पढ़ने गये, सूर्यदेवने वाल-कीड़ा समझकर टालमटोल की कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और विना आमने-सामने-के पढ़ना-पढ़ाना असम्भव है । वे हनुमान्‌जीकी ज्ञानेच्छाकी पुनः परीक्षा ले रहे थे । हनुमान्‌जीकी ज्ञान-की प्रवल भूखने कठिनाइयोंकी तनिक भी परवाह नहीं की । उन्होंने सूर्यदेवकी ओर मुख करके पीठकी ओर पैरोंसे प्रसन्नमन आकाशमें वालकोंके खेल-सदृश गमन किया और उससे पाठ्यक्रममें किसी प्रकारका भ्रम नहीं हुआ ।

सूर्यदेव दो हजार, दो सौ, दो योजन प्रति निमिपाद्धकी चालसे चलते हुए वेद-वेदाङ्गो एवं सम्पूर्ण विद्याओंके रहस्य जल्दी-जल्दी समझाते चले जाते थे और हनुमान्‌जी सब कुछ धारण करते जाते थे । ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापन इन्द्रादि लोकपाल तथा त्रिदेवादिने कभी देखा नहीं था । इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी और्खे चौधिया गयीं—

क्रौतुक विलोकि लोकपाल हरि हरि विधि,  
लोचननि चक्रार्चौधी चित्तनि सभार सो ॥  
(—८० वा० ४)

हनुमान् जीने सूर्यभगवान् से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र  
ही पढ़ लीं। एक भी शाखा उनके अध्ययनसे अद्यूता  
नहीं रहा; यथा—

स सूत्रवृत्तर्थपदं महार्थं  
संसंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।  
न हास्य कश्चित् सहशोऽस्ति शास्त्रे  
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥  
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने  
प्रस्पर्धते यं हि गुरुं सुराणाम् ।  
(—वा० ८० ७। ३६। ४५-४६)

अर्थात्—‘बानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक  
और संग्रह—सहित ‘महाभाष्य’ प्रहण कर उनमें सिद्धि  
प्राप्त की। इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई  
नहीं है। ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें  
बृहस्पतिके समान हैं।’

गोस्यामी तुलसीदासने भी हनुमान् जीको ‘ज्ञानिनाम-  
ग्रगण्यम्’ और ‘सकलगुणनिधानम्’ माना है और  
उनकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

जयति वेदान्तविद् विविध-विद्या-विशद्  
वेद-वेदांगविद् व्रहवादी ।  
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो  
विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥  
(—वि० ८० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान् जीकी जब पहले-पहल  
बातचीत हुई, तब श्रीभगवान् वडे प्रभावित हुए और  
उनकी विद्वत्ता एवं वामिताकी प्रशसा करते हुए  
लक्षण्याजीसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।  
नासामवेदविदुपः शष्यमेवं विभापितुम् ॥

\*—संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब उपलब्ध नहीं है।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन वहुधा श्रुतम् ।  
वहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥  
(—वा० ८० ४। ३। २८-२९)

अर्थात्—‘जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने  
यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका  
विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता।  
निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार  
अध्ययन किया है; क्योंकि वहुतसी बाते बोलनेपर भी  
इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।’

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय  
सुरसाद्वारा ली गयी वडी परिक्षामें हनुमान् जीकी  
बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामें उन्होंने पग-पगार  
बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ  
सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन  
करने लगे। इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी  
झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी  
सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है। हनुमान् जीकी  
बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि  
है। हनुमान् जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये  
इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया। निष्काम सूर्यदेवने  
शिष्य-संतोषार्थ अपने अशोद्धूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी  
कामना की। हनुमान् जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी  
प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्यज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ ।  
मातुराहामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥  
(—शतरुद्रसं० ३। २०। १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भौति रहकर उनकी  
सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे। श्रीभगवान् के

राज्याभिपेकके बाद जब सब वानर अपने-अपने स्थानको भेजे जाने लगे, तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवसे प्रार्थना की कि श्रीभगवान्‌की सेवामें केवल दस दिन और रहकर पुनः आपके पास पहुँच जाऊँगा। सुग्रीवने उन्हे सदाके लिये श्रीभगवान्‌की सेवामें ही रह जानेका आदेश दे दिया।

सुग्रीव अब निर्भय और सुरक्षित थे। सुग्रीवका उपकार कर हनुमान्‌जीने अपने गुरु भगवान् सूर्यका दण्डिणा पूरी की। अध्येता हनुमान्‌के अध्यापक आचार्य सूर्यठेव हमारे अध्ययनको तेजस्वी बनाये—‘तेजस्वि नावधीतमस्तु’!

## साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

( लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर )

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होने बलदेवजीसे अख्यविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महामारतमें इनका विस्तृत वर्णन मिलता है।\* ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब वलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हे तपसे श्रीणकाय देखकर साम्बने उनका परिवास किया। इससे दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दिया कि ‘तुम

अति शीत्र कोढ़ी हो जाओ।’ उपहास बुरा होता है वही हुआ। साम्ब शत होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये; परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि ‘महाराज ! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है, स्वर दबा जा रहा है, पीड़ासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी अमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असद्य हुँखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दे।’

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—‘पुत्र ! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अविक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन विफल नहीं होता।

साम्बके संदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—शास्त्र और अनुमानसे हजारो देवताओंका होना सिद्ध होता है,

\* आदिपर्व १८५। १७, सभा० ३४-३५ १४, ५७, ३४। १६, वन० १६। ९-१६-१७-२०, १२०। १३-१४, विगट० ७२। २२, आश० ६६। ३, मौसल० १। १६-१७। १९। २५। ३। ४४, स्वर्ग० ५। १६-१८।

किंतु प्रत्यक्षमें सूर्यनारायणसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हासे उत्पन्न हुआ है और इन्हमें लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, दिवा, भूः भुवः, स्वः आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता, नाग-नग एवं समस्त भूतप्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वेद, पुराण, इतिहास सभीमें इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुण्ठ मिटाकर ससारमें सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-मुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विष्णुर्वक्त सूर्यनारायणकी आरावना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तुमको कभी नहीं होगे। ( सूर्यदेवकी समाराधना खस्थ-सुखी वनाती है। )

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य कर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रमें गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापनाकर उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्होंने मूर्तिकी स्थापनां की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्पुर' नामक एक नगर भी बसाया, जिसे आजकल पंजाबका मुलताननगर कहते हैं। ( साम्बरी नामकी एक जादूगरी विद्या भी है, जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था। ) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करने लगे। उन्होंने ऐसा धोर तप किया कि शरीरमें अस्थि-मात्र शैव रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे

॥ सूर्यसहस्रनामस्तोत्र गीतप्रेससे प्रकाशित है।

† इक्षीस नाम ये हैं—

ॐ विकर्तनो विवस्वाश्च मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुमहेश्वरः ॥

लोकसाक्षी चिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिष्वहा । तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्वाहनः ॥

..... । गमस्तिहस्तो व्रहा च सर्वदेवनमस्तुतः ॥(—भविष्यपुराण )

गदद होकर—'यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं चाजर-मव्ययम्'—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायण-की स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करते समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे।\*

इस आराधनसे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान् ने खप्तमें दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुण और पवित्र इक्षीस नामोका पाठ तुम्हे ब्रताते हैं † जिनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है। जो दोनों सन्ध्याओमे इस स्तोत्रका पाठ करते हैं वे सब पापोंसे छूट जाते हैं और धन, आरोग्य, संतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं।' साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे, तो वह निश्चय ही सब रोगोंसे छूट जाय।

साम्ब भगवान् सूर्यके आदेशानुसार इक्षीस नामोका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अठल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'तत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर मांगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब मक्तिभावमें अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होंने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब उजित-से होकर साम्बने

दूसरा वर मॉगा—‘भगवन् । यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलंक निवृत्त हो जाय ।’ कुष्ठ जीवनका सबसे बड़ा पाप-फल समझा जाता है ।

सूर्यनारायणके ‘एतमस्तु’ कहते ही साम्बका रूप दिव्य और खर उत्तम हो गया । इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये; जैसे कि—‘यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा । हम तुमको स्वप्नमें दर्शन देते रहेगे; अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमें हमारी प्रतिमा स्थापित करो ।’

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके

तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी ।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीरगति प्राप्त की । मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्त्रकी कृपासे ये विश्वदेवोंमें प्रविष्ट हो गये ।

[ साम्बकी कथा और भक्ति-पद्धतिसे हजारो—लाखों लोगोंने लाभ उठाया है और सूर्याधनासे खाल्य और सुख प्राप्त किया है । साम्बपुराण ( उपपुराण )में साम्बकी कथा, उपासना और उससे सम्बद्ध ज्ञानव्य वातें विस्तारसे वर्णित हैं । अन्य पुराणोंमें भी साम्बकी कथा और उपासनाकी चर्चा है । ]

## भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

( लेखक—आचार्य श्रीवल्लभामजी शास्त्री, एम० ए० )

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्मके अवतार थे । महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उन्होंने कभी धर्मका त्याग नहीं किया । ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यतक्रीड़ामें सम्मिलित हो गये । जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें अपने शत्रुओंके विनाश करनेमें लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूँमें अपना राज्य, धन-धान्य एव समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी । अन्तमें उन्हे वारह वर्षोंका बनवास भी जूँमें हार-स्वरूप मिला । महाराज युधिष्ठिर अपने पैंचों भाइयोंके साथ बनवासके कठिन दुःखको झेलने चल पडे । साथमें महासती द्रौपदी भी थीं । महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दृश्य भी चल पड़ा, जो अपने धर्मात्मा राजाके विना अपना जीवन व्यर्थ मानता था । उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—‘ब्राह्मणो ! जूँमें मेरा सर्वख हरण हो गया है । हम फल-फूल तथा अन्के आहारपर रहने-

का निश्चय कर संतप्त-हृदयसे बनमें जा रहे हैं । वनकी इस यात्रामें महान् कष्ट होगा; अतः आप सब मेरा साथ छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायें ।’ ब्राह्मणोंने दृष्टान्तके साथ कहा—‘महाराज ! आप हमारे भरण-पोपणकी चिन्ता न करे । अपने लिये हम खयं ही अन आदिकी व्यवस्था कर लेगे । हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसङ्गसे आपके मनको प्रसन्न रखेगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेगे ।’ ( महाभा० बनपर्व २ । १०-११ )

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोंके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये । उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—‘जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना

करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अतः धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड़ लगाकर पुनः उसके धोनेसे कीचड़ नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थस्य विच्छेहा वरं तस्य निरीहता ।  
प्रक्षालनाद्वि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥  
(—महाभा० वनपर्व २ । ४९ )

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना भरम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमें स्वागत कैसे किया जा सकेगा? युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।  
सतमेतानि गेहेपु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥  
(—महाभा० वनपर्व २ । ५४ )

‘हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमें कभी नहीं रहता।’ इनके द्वारा अतिथि-सेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामें उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्की उपासनामें जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके अष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्र (एक सौ आठ नामोंका जप) का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोंका पालन करते हुए सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोंका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्वं भानो जगतश्चशुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् ।  
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ॥  
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम् ।  
अनावृतार्गला द्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षतम् ॥

त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाशते ।  
त्वया पवित्राक्रियते निर्व्यजं पाल्यते त्वया ॥  
(—महा०, वन० ३ । ३६-३८ )

‘हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्पत्तिस्थान हैं और सब जीवोंके कर्मानुष्ठानमें लोहुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण सांख्योगियोंके प्रापत्य स्थान हैं। आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं। सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस संसारका विना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।’

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत्तेऽभिलपितं किञ्चित्तत्त्वं सर्वमवाप्यसि ।  
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः ॥  
(—महा० वन० ३ । ७१ )

‘धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।’

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना ‘अक्षयपात्र’ प्रदान किया, जिसमें वना भोज्य पदार्थ ‘अक्षय’ वन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र ‘वटलेई’ थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें वना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय वना रहता था, जबतक सती द्वौपदी भोजन नहीं कर लेती थीं। पुनः जब वह पात्र मौज-धोकर पवित्र कर दिया जाता था और पुनः उसमें भोज्य पदार्थ वनता था तो वही अक्षयता। उसमें आ जाती थी

गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।

यावद् वत्स्यति पाञ्चाली पावेणानेन सुव्रत ॥

फलमूलायिपं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।

चतुर्विंधं तदन्नाद्यमक्षश्चं ते भविष्यति ॥

(—महा०, वन० ३ । ७२-७३ )

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरको उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपत्र' प्रदान किया और युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये ।

महाभारतमें उसी प्रसङ्गमें वह भी लिखा है कि जो कोई मानव या यक्षादि मनको संयममें रखकर—चिन्तवृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वाग प्रयुक्त स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वा भी मार्गेण तो भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना  
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन् ।

तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीपितं  
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम् ॥

(—महा०, वन० ३ । ७५ )

—६४—

## सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

( लेखक—गाधु श्रीवल्लभदासजी महाराज )

प्रसेनो द्वारचत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम् ॥

दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् ।

तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥

( हरिवंशपु० १ । ३८ । १३-१४ )

प्रसेन द्वारकापुरीमें विराजमान थे । उन्हे स्यमन्तक नामकी एक दिव्य मणि अपने बड़े भाई सत्राजितसे प्राप्त हुई थी । वह सत्राजितको समुद्रके तटपर भगवान् सुत्रन भास्करसे उपलब्ध हुई थी । सूर्यनारायण सत्राजितके प्राणोंके समान प्रिय मित्र थे ।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वशपरम्परामें अनमित्रके पुत्र निधन नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई । वे शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे ।

एक समयकी बात है—रथयोमें श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रिके अन्तमे स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये थे । जिस समय सत्राजित् सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण

उनके सामने आकर खड़े हो गये । सर्वत्रक्षिसम्भव भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके मध्यमें विराजमान थे, जिससे सत्राजित्को सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था । इसलिये उन्होंने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—‘ज्योर्निर्मय ग्रह आदिके स्वामिन् ! मैं आपको जैसे प्रतिदिन आकाशमें देखता हूँ; यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए आपको अपने सामने अब भी खड़ा देखूँ तो फिर आप जो मित्रतावश मेरे यहां पवारे—इसमें विशेषता ही क्या हुई ?’

इन्हा सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और एकान्तमें अलग स्थानपर रख दिया । तब राजा सत्राजित् स्पष्ट अवयवों-बाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तमर ( दो घड़ी ) वार्तालाप किया । बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजितने

ग्रथैव योग्नि पञ्चामि सदा त्वा ज्योतिपापते ॥  
तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरतः स्थितम् । को विनेपोऽस्ति मे त्वतः सख्येनोपागतस्य वै ॥

(—हरिवंशपु० १ । ३८ । १७-१८ )

उनसे प्रार्थना की—‘भगवन् ! आप जिस दिव्यमणिसे तीनों लोकोंको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये\* ।

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी-मणि राजा सत्राजितको दे दी । वे उसे कण्ठमें धारण कर द्वारकापुरीमें गये । ‘ये सूर्य जा रहे हैं’—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े । इस प्रकार नगरवासियोंको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमें चले गये ।

वह मणि वृण्णि और अन्धकुलवाले जिस व्यक्तिके घरमें रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी । उस देशमें मेघ समय-पर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याखिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था । वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थीं ।

जब भगवान् भी ससारी लोगोंके साथ क्रीड़ा करने-के लिये अवतार धारण करते हैं तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मवन्धनमें बैठा हुआ समझते हैं । वे उनके कायोंपर शङ्खा करते हैं, लाञ्छन लगनेवाली समालोचना भी कर बैठते हैं । जब भगवान् को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते ।

लोभका ऐसा वृण्णि प्रभाव है कि उसके कारण भाई-भाईमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु वन जाते हैं । इसी भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् स्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी । इस स्यमन्तक-मणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाका कथा-प्रसङ्ग विस्तृतरूपसे श्रीमद्भागवतके दशम रक्षणके ५६-५७ अध्यायोंमें आया है ।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिमें उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमात्रको कलङ्क लगनेकी सम्भावना होती है । चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलङ्कका निवारण हो जाय, इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो ( ५६-५७ ) अध्यायोंका कथाप्रसङ्ग पढ़ना एवं सुनना अत्यन्त लाभप्रद है ।

इस स्यमन्तकोपाख्यानकी फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—‘सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है । जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है ।†

—६३—

\* तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि ॥

(—हरिवंशगुण० ३८ । २१ )

+ चार धानकी एक गुज्जी या एक रस्ती होती है । पॉच रस्तीका एक पल ( आधे मासेसे कुछ अधिक ), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल ( जो ढाई छॅट्टोंको लगभग होता है ), सौ पल-( सोलह सेरेके लगभग-)की एक तुला होती है, वीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है ।

‡ यस्त्वेतद् भगवत् ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याद्यं वृजिनहर् सुमङ्गल च ।

आख्यान पठति शृणोत्थनुसरेद् वा दुष्कीर्ति दुरितमपेष्य याति आन्तिम् ॥ (—श्रीमद्भा० १० । ५७ । ४२ )

## सूर्यभक्त क्रृष्णि जरत्कारु

(—व्रलीन परमश्रद्धेय श्रीजगदयालजी गोयन्दका )

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बड़े भारी तपस्त्री और मनस्त्री थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी वहिन अपने ही नामकी नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा। एक वारकी वात है; क्रृष्ण अपनी धर्मपत्नीकी गोदमे सिर रखे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्योस्तका समय हो आया; किंतु क्रृष्ण जागे नहीं, वे निद्रामे थे। क्रृष्णिपत्नीने सोचा कि क्रृष्णिकी सायंसन्ध्याका समय हो गया; यदि इन्हे जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सन्ध्याकी वेला टल जाती है और क्रृष्णिके धर्मका लोप होता है। धर्मप्राणा क्रृष्णिपत्नीने अन्तमें यही निर्णय किया कि पतिदेव मेरा परित्याग चाहे भले ही कर दे, परंतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर

उसने पतिको जगा दिया। क्रृष्ण अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर गेप प्रकट किया और अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको ढोड देनेपर उनाल हो गये। जगानेका कारण वतानेपर कहा—  
‘हे मुख्य ! तुमने इन्हे दिन मेरे साथ गृहकर भी मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी सन्ध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। फिर क्या आज सूर्य-भगवान् मेरा अर्थ लिये विना ही अस्त हो सकते थे ? कभी नहीं’—

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावन्तः ।  
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तने ॥

(—महा० आदि० ४७ । २५-२६ )

सच है, जिस भक्तकी उपासनामे इतनी दृढ़ निष्ठा होती है, सूर्यभगवान् उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य कर नहीं सकते। हठीले भक्तोंके लिये भगवान्को अपने नियम भी तोड़ने पड़ते हैं !

(—तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५० मे )

## मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये

( डॉ० श्रीछोटेलालजी शर्मा, ‘नागेन्द्र’, एम० ए०,  
पी-एच० डी०, वी० एड० )

अन्धकारके विकट वैरी अंगुमाली विभो !

मेटि भव-जड़ता प्रकाश विकसाइये ।

दौर्यैत्य-दुरित-मलिन-हीन

मानसमें

प्रखर-मरीचि-सुख

बीचि सरसाइये ।

भवज-निशीथिनीमें

कवसे भटक रहे

दीजिये प्रकाश राशि नहीं तरसाइये ।

मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये देव ।

नीरस रसा पै ऐसा रस वरसाइये ॥



## कलियुगमें भी सूर्यनारायणकी कृपा

( लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' )

आप विश्वास करे, इस कलियुगमें भी देवगण कृपा करते हैं तथा समय पड़नेपर वे साक्षी भी देते हैं। 'भक्तमाल'में वर्णित प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथधामके पास श्रीसाक्षीगोपालजीके मन्दिरके विप्रयमे तो सभी जानते ही हैं, परतु कच्छकी यह एक नवीन घटना भी श्रद्धा बढ़ानेवाली वस्तु है।

कच्छके राजाओंमें राव देशलक्ष्मी श्रद्धा तथा भगवद्-भक्ति लोकविश्रुत है संत्रत १८०५मे वैशाख शुक्ल १, शुक्लवारसे 'भुज'में 'शिवरामण्डप'के उत्सव-प्रसङ्गमेआपने सबा लाख सठोकी लगातार दस दिनोंतक सेवा की थी। निम्नलिखित घटना उसीसे सम्बद्ध है, जो सत्यको प्रोत्साहित तथा श्रद्धाभावनाको दृढ़ करती है। सक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

एक दिन कच्छकी राजधानी 'भुज'में एक अद्भुत वाद ( फरियाद ) आया। एक साहूकारने एक पटेलपर दावा दायर कर दिया। वह दस्तावेज लिखकर देनेवाला किसान गरीब था—उसने उसमें लिखा था कि—'कोरी ( स्थानीय रजतमुद्रा ) रावजी ( तत्कालीन राजा ) के छापकी एक हजार रोकड़ी मैने तुम्हारे पाससे व्याजपर ली है। समयपर ये कोरियाँ मै आपको व्याजके साथ भर दूँगा। दस्तावेजके नीचे साक्षियोंके नाम हैं। सबसे नीचे 'साख श्रीसूरजकी' लिखा है।'

आज उसी दस्तावेजने राजदरबारके सामने एक विकट समस्या खड़ी कर दी है। किसान कहता है—एक हजार कोरियाँ व्याजसहित साहूकारको भर दी हैं।

साहूकार कहता है—'वात असत्य है। हमको एक कोरी भी नहीं मिली है। यह झूठ बोलता है। मेरे पास पटेलकी सहीवाला दस्तावेज मौजूद है।'

इधर दस्तावेज कहता है—'किसानको एक हजार कोरियाँ भरनेको हैं।' किसानने कोरी चुकती कर दी, इस बातका कोई साक्षी नहीं है—कागजपर ऐसा

कोई चिह्न भी नहीं है। अदालतने साक्षी, तर्क एवं कानूनके आधारपर पूरी छानबीनकर सभी प्रमाण किसान पटेलके विरुद्ध प्राप्त किये। कोई भी वात किसानके पक्षमें नहीं है। प्रमाणसे सिद्ध होता है—'किसान झूठा है' और पटेलके विरुद्ध फैसला भी सुना दिया जाता है।

'भुज'की राजगद्दीपर उस समय राव देशलजी वाला विराजमान थे। प्रखर मध्याह्नका समय था। सूर्य मानो अग्निकी ज्याला वरसा रहे थे। वे भुजके पहाड़ों प्रचण्ड उत्तस तापसे तपाकर अपनी सम्पूर्ण गरमी भुज नगरीपर फेक रहे थे। ऐसी गरमीमें कच्छके रावजीकी ओरें अभी जरा-सी ही मिली थीं कि बाहरसे करुण-कन्दन सुनायी पड़ा—

'महाराज ! मेरी रक्षा करो—रक्षा करो, मै गरीब मनुष्य बिना अपराधके मारा जा रहा हूँ।'

किसानकी करुण चीख सुनकर रावजीकी ओरें खुल गयीं। कच्छका मालिक नंगे पांच यकायक बाहर आया। राजधर्मका यही तकाजा है।

'कौन है भाई ?' महारावकी शान्त, मीठी वाणीने बातावरणमें मधुरता भर दी।

'चिरंगीव हो रावजी !' किसानका कण्ठ छलाछल भर गया। वह वैर्य धारण कर बोला—'मै एक हजार कोरीके लिये ऑसू नहीं बहाता हूँ। मेरे सिरपर झूठ बोलनेका कलङ्क आता है, वह मुझसे सहा नहीं जाता; धर्मवितार ! मुझे सच्चा एवं उचित न्याय चाहिये, गरीबनिवाज !'

पटेलने अपनी सारी राम-कहानी कच्छके अधिपति देशलजी वालाके चरणोंमें निवेदित की। महारावने सभी कागजात भुजकी अदालतसे अपने पास मँगवाये। उसके एक-एक अक्षरको ध्यानपूर्वक पढ़ा। किसानकी सच्चाई कागजोंमें



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!

तो कहीं दीख न पड़ी, किंतु उसके नेत्रोंमें निर्दोषता झौंक रही थी।

कागजोंको देखकर कल्पके अविष्टितेने निरागापूर्ण निःश्वास लेते हुए कहा—‘क्या बारूँ भाई! तजे कोरियों भर दी हैं, पर इसका कुछ भी प्रमाण इन कागजोंमें उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।’

‘प्रमाण तो है, अनन्दाता! मैंने अपने हाथसे ही इस दस्तावेजपर काली स्याहीसे चौकड़ी (× ऐसे निशान) लगाये हैं—किसानने अपनी प्रामाणिकताका निवेदन करते हुए कहा।

‘चौकड़ी! महाराज देशलज्जी बाबाने चौककर कहा। ‘हाँ धर्माक्षतार! चौकड़ी!! काली रेशनाईकी बड़ी-सी चौकड़ी!!! चारों कोरोंपर कागजके चारों ओर मैंने अपने हाथसे लगायी हैं, चार काली चौकड़ियाँ।’

‘अरे, चौकड़ी तो क्या, इसपर तो काला चिन्दू भी कहीं दिखायी नहीं देता’—राजाने कहा।

‘यह सब चाहे जैसे हुआ हो, राजन्! आपके चरणोंपर हाथ रखकर मैं सत्य ही कहता हूँ’—किसानने बाबाके दोनों चरणोंपर अपने दोनों हाथ रख दिये।

पटेल (कल्वी)की बाणीमें सचाई साफ-साफ झलकती थी। यह समस्या अब और भी कठिन हो गयी। महारओंके सिरपर पसीना आ गया, और खोकी ल्पोरियों चढ़ गयी। तुरंत उस साहूकारको बुलाया गया। वह राजा-के समुख उपस्थित हुआ। अब तो कच्छहरीके सभी लोग भी आकर बैठ गये थे तथा किसानके न्यायको तौलते हुए इस संत आत्मा न्यायमूर्ति राजाके न्यायको देख रहे थे।

‘सेठ! मनमें कुछ भी छल-कपट हो तो निकाल देना।’ राजाने साहूकारको गम्भीरतापूर्वक कहा।

‘अनन्दाता! जो कुछ होगा, वह तो यह कागज स्थिर ही कहेगा, देख लीजिये।’

राजानं पुनः दम्भावेज हाथमें लिया। राजा-की दृष्टि कागजके कोने-कोनेपर भीभी चली जा रही थी। परंतु ‘चौकड़ी’के प्रधनका उत्तर किंगी प्रकार नहीं मिल रहा था। इनमें राजाकी दृष्टि कागजके अन्तिम अंशरोपर पड़ी—‘साथ श्रीनूरजकी।’

अब विचार राजाके मस्तिष्कमें चढ़ गये—मूरज सम्म साक्षी देंगे? और उन्होंने वह दम्भावेजका कागज सूर्य भगवान्-के सामने रख दिया।

‘हे सूर्यदेव! इस दम्भावेजमें आपकी साक्षी लियी है। मैं ‘शुज’का गजा वर्दि आज न्याय न कर सका तो दुनिया मेंी हैंगी उड़ायगी। राजाने मन-ही-मन श्रीमूर्यनारायणसे शुद्धिदानकी प्रार्थना की और कागजको सूर्यके समुख रख दिया। फिर वे टकटकी लगाकर व्यानपूर्वक कागजको देखने लगे। एक चमक्कार उमग! एक हल्की-सी पानीके दाग-सरीखी सष्ठ चौकड़ी दम्भावेजके कागजपर ढाकनेलगी। फिर तो कच्छविपति ऐसे आनन्दसे हर्षित हो गये मानो उन्होंने किसी महान्-देशको जीत किया हो। आकाशमें जग-मगाते हुए सूर्यनारायणके सामने उनके दोनों हाथ जुड़ गये।

अब राजाने किसानसे पूछा—‘तुमने कागज-पर चौकड़ी लगायी, उसका कोई साक्षी भी है?’

‘काला कौआ भी नहीं गरीब-निवाज! साक्षी तो कोई भी नहीं था।’—पटेलने निवेदन किया।

‘परंतु इसमें तो लिखा है न कि—‘साक्षी श्रीसूर्यजी।’ हैं हैं—अनन्दाता! साहूकारने उत्तर दिया।

‘यह तो ऐसा लिखना पूर्वपरम्परासे चला आता है, रिवाजमात्र है। भला, सूर्य कभी साक्षी देते हैं?’ राजाने किसानसे हँसकर पूछा।

‘देवता तो साक्षी दे सकते हैं, राजन्!’ परतु अब तो कलियुग आ गया है। दुनियाके मनुष्योंकी